तेरहवाँ संस्करण

भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याएँ

(Problems of Indian Economy)

(द्वितीय वर्ष टी०डी०सी० के सिलेबस में स्वीकृत पाठ्य-पुस्तक)

लक्ष्मीनारायण नाथूरामका
पूर्व रीडर, अर्थशास्त्र विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1990

कॉलेज बुक हाउस
जयपुर-3

इस बार कुछ प्रचलित अवधारणाओं जैसे असमानता के विवेचन में जिनी-अनुपात (gini-ratio), विकास की वार्षिक दर के माप, आदि के लिए परिशिष्टों में सांख्यिकीय उदाहरण देकर समझाया गया है ताकि उनके बारे में अधिक सुनिश्चित जानकारी हो सके। "आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रति दृष्टिकोण" पर एक स्वतन्त्र अध्याय जोड़ा गया है जिसमें 29 अगस्त 1989 को योजना आयोग द्वारा अनुमोदित प्रारूप का विस्तृत विवेचन दिया गया है। जवाहर-रोजगार-योजना पर बेरोजगारी के अध्याय में भी एक विस्तृत नोट लिखा गया है।

आशा है अत्यधिक परिवर्तित व परिवर्द्धित रूप में यह संस्करण विश्वविद्यालय व प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी व लाभकारी सिद्ध होगा। लेखक ने अपने RAS व IAS कक्षाओं के "भारतीय अर्थशास्त्र" के अध्यापन के अनुभव के आधार पर विभिन्न खण्डों में काफी नयी व आवश्यक सामग्री जोड़ी है जिससे सभी को बहुत लाभ होगा।

लक्ष्मीनारायण नाथूरामका
बी 17—ए, चोमू हाउस कॉलोनी,
सी स्कीम, जयपुर।

Syllabus

Second Year T D C Arts Examination

ECONOMICS

Part II—Problems of Indian Economy

Section 'A

Salient Features of Indian Economy on the eve of Independence

Population—Growth of population and labour force Occupational distribution

Agriculture—Size and distribution of land holdings, Land Reforms in India Growth of irrigation fertilizer and other inputs, food policy Agricultural credit with special reference to institutional credit

Section 'B

Industry Transport and Labour Role of cottage and small-scale industries Industrial Finance Industrial Policy and Licensing policy Measures to check concentration of economic power Main trends of transport development since 1961 Problems of Trade union movement Social security programmes

Foreign Trade and Foreign Aid—Recent trends in India's foreign trade Foreign trade policy Foreign aid-size and utilization Problems of repayment

Section C

Planning in India—Broad Objectives of Five Year Plans Pattern of public investment under various plans Financing of VI and VII plans A review of economic progress under planning in India Unequal distribution of income and unemployment and underemployment in Indian Economy

Economy of Rajasthan—A brief review of economic resources of the State Land Water Mineral resources and livestock Review of economic progress under planning in Rajasthan with special reference to agricultural and industrial development

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ संख्या

राजस्थान की अर्थव्यवस्था

1

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षण

(Salient Features of Indian Economy on the Eve of Independence)

सन् 1947 में स्वतन्त्रता की पूर्व सन्ध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई व अविकसित दशा में थी। यह मुख्य रूप से ग्रामीण व कृषि-प्रधान थी। इसमें आर्थिक गतिहीनता व गिरावट के चिन्ह विद्यमान थे। विभाजन के बाद भारतीय संघ की जनसंख्या लगभग 34 करोड़ आंकी गयी है। 1951 की जनगणना के अनुसार यह 36·1 करोड़ हो गई थी। इसमें से 85% लोग गाँव में रहते थे जो कृषि व सहायक क्रियाओं में सदियों पुरानी व कम उत्पादक पद्धतियों का उपयोग करके अपना जीविकोपार्जन करते थे। उस समय जीने की औसत आयु लगभग 32 वर्ष की थी जो 1986 में 57 वर्ष हो गयी है।[1] 1951 में साक्षरता का अनुपात 16% था तथा 6 से 11 वर्ष की आयु के लगभग 60% बच्चे स्कूल नहीं जाते थे। मलेरिया, चेचक व हैजा जैसी बीमारियों का काफी प्रकोप रहता था और मृत्यु-दर 27 प्रति हजार तक होने के कारण बहुत ऊँची थी जो अब 12 प्रति हजार पर आ गई है। देश में निर्धनता, निरक्षरता व बीमारी के साथ-साथ विभिन्न समूहों व विभिन्न प्रदेशों के बीच आर्थिक साधनों का वितरण भी काफी असमान था।

1947 में प्रति व्यक्ति आय 62 रुपये थी और इसमें बहुत धीमी रफ्तार से वृद्धि हुआ करती थी। 1900 से 1947 तक की लगभग पाँच दशाब्दियों में इसमें कुल 20% वृद्धि ही हो पायी थी।

---

1. World Development Report 1988, p. 222.

1950–51 म सकल घरेलू उत्पत्ति (GDP) का 59% अश प्राथमिक क्षेत्र (कृपि व सहायक क्रियाओ) से, 14% द्वितीयक क्षेत्र (खनन, विनिर्माण तथा-निर्माण) से तथा 27% तृतीयक क्षेत्र (व्यापार परिवहन, बैंकिंग, सार्वजनिक प्रशासन आदि) से प्राप्त हुआ था। 1987–88 मे ये बदल कर क्रमश 33%, 28% व 39% हो गये हैं। 1950–51 के आकडो का आधार वर्ष 1970–71 है, जबकि 1987–88 के आकडो का आधार-वर्ष 1980–81 है।[1] इसलिए तुलना मे कठिनाई है। फिर भी मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि 1950-51 में राष्ट्रीय आय म प्राथमिक क्षेत्र का अश लगभग 60 प्रतिशत था जो 1987-88 मे घट कर 33 प्रतिशत हो गया है। अन्य क्षेत्रो मे ये प्रतिशत बढे हैं, विशेषतया सेवाओ के क्षेत्र का विस्तार काफी तेजी से हुआ है। अत योजना के प्रारम्भ मे राष्ट्रीय आय मे कृषि का योगदान काफी ऊंचा रहता था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय कृषि व उद्योग की स्थिति का विस्तृत अध्ययन करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि भारतीय अर्थव्यवस्था पर द्वितीय महायुद्ध (1939-45) तथा देश के विभाजन के क्या प्रभाव पडे ? इनका नीचे उल्लेख किया जाता है।

द्वितीय महायुद्ध का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

1. मुद्रास्फीति की समस्या—द्वितीय महायुद्ध ने भारत मे महगाई की समस्या को जन्म दिया। अंग्रेजो ने भारत से कई प्रकार का माल खरीदा जिसका भुगतान पौण्ड-पावना (sterling balances) मे किया गया। मार्च 1939 म भारत सरकार पर स्टर्लिग कर्ज की देनदारी 470 करोड रुपये की थी जो युद्धकाल म समाप्त हो गई तथा मार्च 1946 मे भारत के पक्ष मे 1740 करोड रुपयो की स्टर्लिग-मुद्रा एकत्र हो गई जिसके आधार पर देश मे ज्यादा मुद्रा निकाली गई। इस प्रकार युद्धकाल मे भारत ऋणी से ऋणदाता, अथवा कर्जदार से साहूकार देश, बन गया। स्टर्लिग राशि का युद्ध-काल मे उपयोग नही होने दिया गया और आगे चलकर इसमे से प्रथम योजनाकाल मे 250 करोड रुपये की राशि का उपयोग किया गया। इस प्रकार एक तरफ भारतीय करेंसी की मात्रा बढ गई और दूसरी तरफ देश मे उपभोग्य वस्तुओ का अभाव उत्पन्न हो गया। भारत मे करेंसी की मात्रा 1938-39 मे 182 करोड रुपयो से बढकर जून 1948 मे 1320 करोड रुपये हो गई जो पहले से लगभग सात गुना थी। देश मे मुद्रास्फीति के कारण कई प्रकार के आर्थिक नियन्त्रणो का सहारा लेना पडा, जैसे वस्तुओ के आयातो पर नियन्त्रण, खाद्यान्नो, वस्त्र, चीनी, सीमेन्ट व इस्पात के मूल्यो व इनके वितरण पर नियन्त्रण,

1. Economic Survey 1988-89, p. S-6.

फैक्ट्रियों म रोजगार 1939 मे 18 लाख व्यक्तियों से बढकर 1945 मे 31 लाख व्यक्ति हो गया। उद्योगों की प्रचलित उत्पादन-क्षमता का अधिकतम उपयोग किया गया। युद्धकाल मे कई नये उद्योग प्रारम्भ किये गये, जैसे एल्यूमिनियम, डीजल इन्जन, साइकिलें व सिलाई की मशीनें, रसायन जैसे सोडा एश व कॉस्टिक सोडा एव कई प्रकार क मशीनी औजार व मशीनरी आदि। लेकिन युद्ध का विशेष प्रभाव मध्यम व लघु उद्योगो पर पडा जैसे हल्के इन्जीनियरी पदार्थ, दवा व चाकू-छुरी, आदि। युद्ध के तुरन्त बाद रेयोन, मोटर-गाडी, बाल व रोलर बियरिंग, इन्जन आदि उद्योगो म नया विनियोग किया गया। उर्वरक, सीमेंट, काँच आदि उद्योगो म भी उत्पादन की नई इकाइयाँ स्थापित की गयी।

युद्ध व युद्धोत्तर काल मे औद्योगिक विकास पर मुद्रास्फीति व अभाव की दशाओं का विशेष प्रभाव पडा। परिणामस्वरूप दीर्घकालीन तत्वो, जैसे सबसे अधिक लाभप्रद स्थान का चुनाव पैमाने का चुनाव, कच्चे माल की उपलब्धि बाजार का आकार तथा वित्तीय व तकनीकी सगठन आदि पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा सका। युद्धकाल मे कई शिफ्टो मे काम करने तथा बाहर से मशीनो व कल-पुर्जों के आयात मे कठिनाई उत्पन्न होने से पुरानी मशीनो व उपकरणो को बदलने की समस्या भी काफी गम्भीर हो गयी थी।

स्मरण रहे कि 1923 के बाद औद्योगिक विकास पर सरकार की विभेदात्मक सरक्षण की नीति (Policy of Discriminating Protection) का विशेष रूप से प्रभाव पडा था जो प्रथम फिस्कल आयोग ने 1923 मे सुझायी थी। इसम सरक्षण प्राप्त करने के लिए किसी भी उद्योग को तीन शर्तें पूरी करनी होती थी: (1) उसे प्राकृतिक लाभ हो, जैसे कच्चे माल की बहुतायत, विस्तृत घरेलू माँग सस्ती विद्युत-शक्ति तथा पर्याप्त श्रम की पूर्ति। (2) वह सरक्षण के बिना बिल्कुल न पनप सके अथवा आवश्यक तेज गति से न पनप सके, तथा (3) वह आगे चल कर बिना सरक्षण के विश्व की प्रतिस्पर्धा का सामना कर सके। इन तीन शर्तों को पूरा करने पर उद्योग को सरक्षण प्रदान किया जा सकता था, जिसस उस उद्योग के विदेशों से *आने वाले माल पर आयात-शुल्क लगा दिये जाते ताकि देश मे उस उद्योग का विस्तार* हो सके। इस नीति की छत्रछाया म ही भारत मे इस्पात, सूती वस्त्र, चीनी, माचिस, कागज आदि उद्योग विकसित हुए। उदाहरण के लिए, चीनी उद्योग को 1932 म सरक्षण प्रदान किया गया था। चीनी मिलो की सख्या 1930-31 मे 29 से बढकर 1936-37 म 140 हो गयी तथा उत्पत्ति $3\frac{1}{2}$ लाख टन से बढकर $12\frac{3}{4}$ लाख टन हो गई और देश चीनी मे आत्म-निर्भर हो गया। सरक्षण की यही नीति युद्ध व युद्धोत्तर काल मे भी जारी रखी गयी। लेकिन इसमे नये उद्योगो की उपेक्षा होने तथा सरक्षण की शर्तों को अनावश्यक कड़ाई से लागू करने से सन्तोषजनक परिणाम

नही मिल सके। फिर भी यह नीति कुछ सीमा तक औद्योगिक विकास के अनुकूल सिद्ध हुई और सम्भवतः विदेशी शासन इससे ज्यादा और कुछ कर सकने की सोच भी नही सकता था।

देश के विभाजन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव[1]

1. कृषि पर प्रभाव—भारतीय अर्थव्यवस्था पर दूसरा प्रबल प्रभाव देश के विभाजन का पडा। इसने सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को झकझोर डाला। विभाजन के फलस्वरूप भारतीय संघ मे अविभाजित भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 77 प्रतिशत, कृषित क्षेत्र का 73 प्रतिशत तथा कुल जनसंख्या का 82 प्रतिशत भाग आया। शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल का 69% भारतीय संघ मे आया तथा 31% पाकिस्तान के हिस्से मे चला गया। यह स्मरण रखने की बात है कि उस समय पाकिस्तान मे शुद्ध जोते-बोये गये क्षेत्र के 48% भाग मे सिंचाई की जाती थी, जबकि भारतीय सघ के लिए यह अंश लगभग 20% ही था। भारतीय सघ के हिस्से मे कुल गेहूं के उत्पादन का 65 प्रतिशत, चावल के उत्पादन का 68 प्रतिशत, तिलहनो के उत्पादन का 55 प्रतिशत, कपास के उत्पादन का 60 प्रतिशत तथा जूट के उत्पादन का 19 प्रतिशत अंश आ पाया था। इसलिए प्रारम्भ से ही भारतीय सघ को खाद्यान्नो व कच्चे माल के अभाव का सामना करना पडा।

2. उद्योगों पर प्रभाव—देश के विभाजन का औद्योगिक स्थिति पर भी काफी प्रभाव पडा। अधिकाश मिल-कारखाने भारतीय संघ के हिस्से मे आये तथा कच्चे माल के बडे क्षेत्र पाकिस्तान मे रह गये। अनुमान है कि 12675 बडे औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे से 91% अर्थात् 11,462 औद्योगिक प्रतिष्ठान भारतीय संघ के हिस्से मे आये और शेष 9% पाकिस्तान मे रह गये। जूट, लोहा व इस्पात व कागज के सभी कारखाने भारत में रह गये। सूती वस्त्र, माचिस, काच व चमडे के लगभग सभी कारखाने भारत के हिस्से मे आये। सीमेट के 90% कारखाने भारत के हिस्से मे आये और शेष पाकिस्तान मे रह गये।[2]

इस प्रकार भारतीय संघ की स्थिति बडी औद्योगिक इकाइयो की दृष्टि से ज्यादा अच्छी रही। लेकिन प्रारम्भ मे कपास व कच्चे जूट के अभाव के कारण इनके आयात की व्यवस्था करनी पडी तथा देश मे इनका उत्पादन बढाने के उपाय करने पडे।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर द्वितीय महायुद्ध व विभाजन के प्रभावो का वर्णन करने के बाद अब हम स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षणो का उल्लेख करेंगे।

---

1. Report of the National Commission on Agriculture, 1976, Part I, p. 219.
2. Report of the Fiscal Commission 1950, Vol. I. p. 24.

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारतीय कृषि की दशा
(Indian Agriculture on the Eve of Independence)

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है सरकार ने द्वितीय महायुद्ध की अवधि में कृषि में स्थाई सुधार करने के उपाय किये तथा 1943 से खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने की जिम्मेदारी भी अपने कंधों पर ली। इसके अनुकूल प्रभाव सामने आए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय कृषि की स्थिति का परिचय नीचे दिया जाता है :

क्षेत्रफल—विभाजन के समय भारत में समस्त फसलों के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल लगभग 13 करोड़ हेक्टेयर था जिसमें से 81% खाद्यान्नों में तथा शेष 19% अ-खाद्यान्नों के अन्तर्गत था। इससे 15 वर्ष पूर्व भी लगभग यही स्थिति थी। लेकिन 1939-40 के बाद खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्रफल बढ़ाया गया तथा अ-खाद्यान्नों के अन्तर्गत घटाया गया, जिससे खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्रफल का अनुपात कुछ सीमा तक बढ़ा। सरकार ने व्यापारिक फसलों की कृषि को उनके निर्यात कम हो जाने के कारण सीमित करने की जो नीति अपनायी थी तथा साथ में घरेलू माँग को पूरा करने के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाने की जो नीति अपनायी थी, उसके अच्छे परिणाम निकले।

विभाजन के समय भारत में चावल के अन्तर्गत क्षेत्रफल लगभग 3·5 करोड़ हैक्टेयर था जो गेहूँ की तुलना में 2½ गुना था। युद्धकाल में तिलहन व कपास में से क्षेत्रफल निकलकर खाद्यान्नों की तरफ गया था।

कृषिगत उत्पादन—जॉर्ज ब्लिन (George Blyn) के अनुसार "1946–47 को समाप्त होने वाले चालीस वर्षों में भारत में खाद्यान्नों में उत्पत्ति की वृद्धि-दर 12 प्रतिशत रही जो जनसंख्या की 40 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि-दर से बहुत पीछे रह गई थी।"[1] स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व के दो वर्षों में देश में राजनीतिक उथल-पुथल, साम्प्रदायिक दंगों व प्रतिकूल मौसम के कारण उत्पादन को धक्का पहुँचा। 1930-47 की अवधि में कृषिगत उत्पादन लगभग स्थिर बना रहा।

कृषिगत उत्पादकता–विभाजन से पूर्व की अवधि में खाद्यान्नों की उत्पादकता घटी तथा अ-खाद्यान्नों की उत्पादकता बढ़ी। 1900-05 की उत्पादकता को 100 मानने पर 1946-47 में खाद्यान्नों की उत्पादकता का सूचकांक 84 तथा अ-खाद्यान्नों का 107 तथा समस्त फसलों का 90 5 रहा। विभाजन के समय प्रति एकड़ उपज न्यूनतम स्तर पर थी तथा उसमें कोई वृद्धि नहीं हो रही थी।

विभाजन से पूर्व के 40 वर्षों में शुद्ध कृषित क्षेत्रफल (net cropped area) में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई थी। 1910 से 1947 के बीच सकल कृषित

---

1 Georage Blyn, Agricultural Trends in India, 1891-1947, p. 96

क्षेत्रफल (gross cropped area) में केवल 10% वृद्धि हुई थी। इस प्रकार कृषि के क्षेत्र में स्थिरता या गतिहीनता के चिह्न विद्यमान थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय कृषिगत साधनों या इन्पुटों के सम्बन्ध में पायी जाने वाली स्थिति

1931–47 की अवधि में भारतीय कृषि पर सिंचाई, सुधरे हुए बीज व कृषिगत शिक्षा का कुछ प्रभाव प्रकट होने लगा था। लेकिन उर्वरकों का उपयोग ज्यादातर बागानों व व्यापारिक फसलों तक ही सीमित था क्योंकि इनके लिए लाभकारी मूल्य मिल सकते थे। कृषि की विधियाँ पुरानी व पिछड़ी हुई थीं। कृषकों में लोहे के हल भी लोकप्रिय नहीं हो पाये थे क्योंकि इनसे बैलों पर भार पड़ता था तथा इनकी मरम्मत की भी पर्याप्त सुविधाएँ नहीं थीं तथा ये छोटे व बिखरे हुए खेतों के लिए अनुपयुक्त भी थे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारत में चावल, गेहूँ, चना, गन्ना, कपास, जूट, तम्बाकू तथा तिलहन की नई व सुधरी हुई किस्मों का उपयोग होने लगा था। कृषिगत शिक्षा का कुछ सीमा तक विस्तार हुआ था, लेकिन यह उत्साहवर्द्धक नहीं था।

रासायनिक उर्वरकों का उपयोग

अकाल जाँच आयोग ने अपनी 1945 की रिपोर्ट में बतलाया था कि देश में गोबर का 40% अंश ही खाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। शेष में से 40% ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता था तथा 20% एकत्र न किए जाने के कारण नष्ट हो जाता था। हड्डियों का अधिकांश भाग निर्यात कर दिया जाता था तथा खली भी ज्यादातर निर्यात की जाती थी अथवा पशुओं को खिलाई जाती थी।

रासायनिक उर्वरकों का उपयोग बहुत कम मात्रा में हो पाता था क्योंकि लोग इनके लाभों से परिचित नहीं थे। द्वितीय महायुद्ध की अवधि में उर्वरकों के आयात घटे। रासायनिक उर्वरकों की कुल उपलब्धि का ज्यादा अंश बागानों व व्यापारिक फसलों में लगाया जाता था, इसलिए खाद्यान्नों के लिए इनकी बहुत कम मात्रा उपलब्ध हो पाती थी।

सिंचाई

1945-46 में अविभाजित भारत में शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल 28.1 मिलियन हैक्टेयर था जो कृषित क्षेत्रफल का 24% था। इसके 45% भाग पर सरकारी नहरों से सिंचाई की जाती थी। विभिन्न प्रान्तों की स्थिति सिंचाई की दृष्टि से एकसी नहीं थी। इसी वर्ष पंजाब में शुद्ध कृषित क्षेत्रफल के 59% भाग पर सिंचाई की जाती थी। बंगाल में 17% तथा सी पी (Central Provinces) में 6.6% भूमि में सिंचाई की व्यवस्था थी।

जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है, विभाजन के फलस्वरूप केवल 69% सिंचित क्षेत्रफल भारतीय संघ के हिस्से में आया तथा शेष 31% पाकिस्तान को प्राप्त हुआ। पाकिस्तान में शुद्ध कृषित क्षेत्रफल के 48% भाग में सिंचाई की सुविधा थी, जबकि भारतीय संघ में यह केवल 20% में ही थी। इस प्रकार विभाजन ने सिंचाई की दृष्टि से भारतीय संघ पर प्रतिकूल प्रभाव डाला क्योंकि अधिकांश उपजाऊ व सिंचित क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये थे।

1947-1951 की अवधि में परिवर्तन—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू होने से पूर्व की अवधि में कृषिगत उत्पादन बढ़ाने के उपाय किए गए। इस अवधि में समस्त फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल बढ़ा। इस अवधि में चावल, बाजरे व गेहूँ का उत्पादन बढ़ा। जबकि जुवार, मक्का, जौ व चने का घटा। कपास व जूट के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जबकि तिलहन व गन्ने के उत्पादन में कमी आई।

1947-48 व 1949-50 के बीच शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल 1 3 मिलियन हैक्टेयर बढ़ा। इसमें अधिकांश वृद्धि कुओं व सिंचाई के अन्य छोटे साधनों से हुई। नहरों व तालाबों की सिंचाई लगभग स्थिर बनी रही। सिंचाई का अधिक लाभ मुख्यतया खाद्यान्नों की फसलों को मिला।

1950-51 में कुल रिपोर्टिंग क्षेत्रफल 28·4 करोड़ हैक्टेयर भूमि था जिसके 14·2% भाग पर वन थे, 16·7% भाग पर कृषि के लिए उपलब्ध नहीं था, 17·4% भाग अन्य अकृषित क्षेत्र था (चरागाहों, कुँओं व बंजर भूमि के कारण), 9 9% परती भूमि का था तथा 41·8% शुद्ध कृषित क्षेत्रफल था। 1950-51 में कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र कुल भौगोलिक क्षेत्र का 86 5% था तथा शेष 13·5% क्षेत्रफल के लिए आँकड़े उपलब्ध नहीं थे।

1950-51 में 76·7% क्षेत्रफल खाद्यान्नों के अन्तर्गत था तथा शेष 23·3% अखाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत था। इस प्रकार 3/4 क्षेत्रफल पर खाद्यान्नों की फसलें बोयी जाती थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारतीय कृषि की स्थिति का मूल्यांकन

1 भूमि-सुधारों की आवश्यकता—स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारतीय कृषि काफी पिछड़ी हुई दशा में थी। देश की भूमि-व्यवस्था सामन्ती (feudal) थी जिसमें जमींदारी, महालवाड़ी व रैयतवाड़ी प्रथाओं के अन्तर्गत कृषक व कृषि दोनों पिछड़ी अवस्था में थे। काश्तकारों को बेदखली व ऊँचे लगानों की स्थिति का सामना करना पड़ता था। भूमि के उप-विभाजन व अपखण्डन के कारण वैज्ञानिक कृषि सम्भव नहीं थी तथा भूमि का वितरण भी काफी असमान था। इस प्रकार भारत 'छोटे कृषकों' का बना हुआ था तथा उत्पादन का स्तर भी नीचा था। कृषि के क्षेत्र में संस्थागत परिवर्तनों अथवा भूमि-सुधारों की आवश्यकता महसूस की

जा रही थी। कांग्रेस के नारे 'भूमि स्वयं भूमि जोतने वाले की' (Land to the Tiller) को लागू करने की आवश्यकता थी। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान सदैव भूमि-सुधारों पर बल दिया गया था।

2. कृषि का कमजोर तकनीकी आधार—जहाँ एक तरफ देश की भू-स्वामित्व-प्रणाली दोषपूर्ण थी, वहाँ दूसरी तरफ कृषि का तकनीकी आधार (technical base) भी कमजोर व पिछड़ा हुआ था। कृषकों की आर्थिक स्थिति गिरी हुई होने के कारण वे विकास के लिए अधिक साधन लगाने की स्थिति में नहीं थे। कृषि बैलों की सहायता से परम्परागत विधि से की जाती थी तथा सुधरे हुए बीजों, रासायनिक उर्वरकों, कृषिगत यन्त्रों, साख की पूर्ति, सिंचाई आदि की दृष्टि से काफी अभाव की दशा थी। 1950-51 में शुद्ध सिंचित क्षेत्र लगभग 2.1 करोड़ हैक्टेयर था जो शुद्ध कृषित क्षेत्र का 17.6% था। इस प्रकार लगभग 1/6 कृषित भूमि को सिंचाई की सुविधा प्राप्त थी। 1952-53 में तीनों प्रकार के रासायनिक उर्वरकों का उपभोग केवल 66 हजार टन हुआ था। सकल कृषित क्षेत्र के प्रति हैक्टेयर पर उर्वरकों का उपयोग लगभग आधा किलो था। 1952-53 के ये स्तर कितने नीचे थे इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 1987-88 में रासायनिक उर्वरकों का कुल उपभोग बढ़कर लगभग 90 लाख टन हो गया तथा प्रति हैक्टेयर उपभोग लगभग 50 किलो तक पहुँच गया है। उस समय अधिक उपज देने वाली किस्मों (HYV) का आविष्कार नहीं हुआ था। 1951 में देश में कुल 9 हजार ट्रैक्टर थे जबकि आज 4 लाख से अधिक हैं। इसी प्रकार 1951 में तेल-इन्जनों व विद्युत पम्प-सेटों की संख्या भी काफी कम थी। 1950-51 में प्रति हैक्टेयर चावल का उत्पादन 6.7 क्विंटल था जो 1987-88 में 14.7 क्विन्टल एवं गेहूँ का 6.6 क्विन्टल से बढ़कर 20 क्विन्टल हो गया है। इससे पता चलता है कि योजनापूर्व अवधि में प्रति हैक्टेयर चावल व गेहूँ की पैदावार आज की तुलना में काफी कम थी।

कृषकों को साख प्रदान करने की दृष्टि से ग्रामीण साहूकारों व महाजनों का बोलबाला था। इनके लिए संस्थागत साख (सहकारी संस्थाओं, व्यापारिक बैंकों व सरकारी ऋणों) का नितान्त अभाव था। 1950-51 में प्राथमिक सहकारी कृषि साख समितियों ने कृषकों को कुल 23 करोड़ रु. के कर्ज प्रदान किये थे, जबकि 1987-88 में यह राशि 4057 करोड़ रु. (अल्पकालीन तथा मध्यकालीन व दीर्घ-कालीन कर्ज) हो गई है।

इस प्रकार 1947 में किसान महाजन, व्यापारी व जमींदार के आर्थिक शोषण के शिकार थे और देश के प्रमुख व्यवसाय अर्थात् कृषि की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। द्वितीय महायुद्ध की अवधि में कृषिगत सुधार की दिशा में कुछ प्रयत्न अवश्य किए गये थे तथा देश एक राष्ट्रीय खाद्य-नीति के निर्माण की ओर बढ़ रहा था। स्वतन्त्रता

प्राप्ति ने राजनीतिक पराधीनता से मुक्ति दिलाकर भावी विकास की जिम्मेदारी राष्ट्रीय सरकार के कन्धों पर डाल दी थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत की औद्योगिक स्थिति

रूसी लेखक जी. के. शिरोकोव (G. K. Shirokov) के अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सभी उपनिवेशीय व स्वतन्त्र देशों में भारत की औद्योगिक क्षमता सबसे अधिक थी। यहां औद्योगिक उपक्रमों व श्रमिकों की संख्या, सकल औद्योगिक उत्पत्ति व विनिर्माण द्वारा जोड़े गये मूल्य* (Value-added by manufacture) की मात्रा तथा औद्योगिक विविधीकरण अन्य विकासशील कहे जाने वाले देशों से काफी अधिक था। लेकिन इससे अन्य देशों का अत्यधिक औद्योगिक पिछड़ापन प्रकट होता है, न कि भारत के औद्योगीकरण की विकसित दशा का।"[1]

1947 में भारतीय कृषि पिछड़ी हुई थी तथा उद्योग अपर्याप्त व अपूर्ण रूप से तथा सीमित दायरे में ही विकसित हो पाए थे। नीचे उद्योगों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है—

1. देश का औद्योगिक ढांचा (Industrial Structure)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत के औद्योगिक ढाचे में निम्न उद्योगों की प्रधानता थी : चीनी, वनस्पति तेल, सूती वस्त्र, जूट वस्त्र, लोहे व इस्पात की गलाई, रोलिंग, व रिरोलिंग तथा सामान्य इन्जीनियरिंग। 1946-47 में भारत में बिक्री योग्य इस्पात का वार्षिक उत्पादन 9·4 लाख टन था जिसमें अकेले टिस्को का अंश 80% था। इस प्रकार अकेला टाटा का लोहे व इस्पात का कारखाना इस्पात के उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा था। उसी समय सूती वस्त्र का जोड़े गये मूल्य (Value-added) में 46% तथा जूट वस्त्रों का 17·5% स्थान था। रोजगार की दृष्टि से भी ये ही उद्योग प्रमुख थे। सूती वस्त्र उद्योग ने कुल रोजगार में 44·4% योगदान दिया, जबकि जूट वस्त्र उद्योग ने 22·[illegible]% योगदान दिया। उस समय उपरोक्त उद्योगों का कुल जोड़े गये मूल्य में 84% तथा कुल रोजगार में 86% स्थान था।

1951 में देश में उपभोग्य वस्तुओं के उद्योगों की प्रधानता थी तथा पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों का अभाव था। 1950-51 में जोड़े गये मूल्य का 70% अंश उपभोग्य वस्तुओं के उद्योगों से प्राप्त हुआ था। इस प्रकार देश के औद्योगिक ढांचे में उपभोग्य वस्तुओं के कारखानों की प्रधानता थी। भारत का औद्योगिक ढांचा असन्तुलित, अविकसित, विकृत व विपरीत किस्म का था।

---

1 C K. Shirokov, Industrialisation of India, 1973, p. 13.

*विनिर्माण द्वारा जोड़े गये मूल्य को निकालने के लिए उत्पत्ति के मूल्य में से इन्पुटों के मूल्य, अर्थात् कच्चे माल, ईंधन व पावर की लागतें घटायी जाती हैं।

2. व्यावसायिक ढाँचे व राष्ट्रीय उत्पत्ति में विनिर्माण का अंश—1951 में विनिर्माण (manufacturing) व खनन कार्य में श्रम-शक्ति का 9·5% सलग्न था तथा कृषकों व खेतिहर मजदूरों का अनुपात 72% था। उस समय उद्योग व खनन म कुल 1·34 करोड व्यक्ति कार्यरत थे। इसमे से 35 लाख व्यक्ति सगठित उद्योग व खनन मे लगे थे तथा 99 लाख व्यक्ति लघु इकाइयो में लगे हुए थे। 1948-49 मे राष्ट्रीय आय लगभग 8,650 करोड रु. थी, जिसमे से उद्योगो से लगभग 17% राशि प्राप्त हुई थी। इसमे सगठित उद्योग व खनन से कम राशि प्राप्त हुई थी तथा असगठित क्षेत्र से अधिक राशि प्राप्त हुई थी। इस प्रकार स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय खनन व उद्योग का रोजगार व राष्ट्रीय आय की दृष्टि से योगदान क्रमश: 9·5% व 17% था।

3 परिवहन व सचार की स्थिति—देश की औद्योगिक स्थिति परिवहन व सचार के विकास पर निर्भर करती है। भगवती व देसाई के अनुसार 1947 तक भारत परिवहन व सचार की दृष्टि से काफी प्रगति कर चुका था। देश मे सडको की लम्बाई 3 लाख मील थी जिसमे से 1/3 दूरी मे पक्की सडकें थीं। रेलों की लम्बाई 41 हजार मील थी तथा जहाजरानी की माल ढोने की क्षमता 3·3 लाख टन थी। हवाई यातायात विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे था।

4. विदेशी पूंजी व भारतीय उद्योग—1948 मे भारत मे दीर्घकालीन विदेशी निजी विनियोग की राशि 320 करोड रु. थी जिसमे से 25% राशि खनन व निर्माण उद्योगो मे लगी हुई थी। उद्योगो म कुल विनियोग का 16% खनन म 34% वस्त्र मे तथा 8% लौह धातुओं के उद्योगो मे लगा हुआ था। औद्योगिक विनियोग का 72% ब्रिटेन के द्वारा तथा 6·4% सयुक्त राज्य अमेरिका के द्वारा लगाया हुआ था। विदेशी एकाधिकारियो का घरेलू बाजार पर लगभग एक-चौथाया नियन्त्रण था।

शिरोकोव का मत है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय औद्योगिक क्षेत्र मे भारतीय पूंजी विदेशी पूंजी से ज्यादा मजबूत स्थिति मे थी। भारतीय उद्योगपतियो का देश के उद्योगो तथा बाजार पर अधिक प्रभाव था। इनके हाथों मे पूंजी का केन्द्रीयकरण भी अधिक था।

5 विनिर्मित माल का आयातों मे स्थान—1947-48 मे भारत के खनन व विनिर्मित माल का सकल मूल्य लगभग 1,500 करोड रु. था। आयातित माल की लागत इसका लगभग $\frac{1}{4}$ थी। उत्पादक वस्तुओं के आयात पर भारत की निर्भरता अधिक थी। यदि स्वदेशी बाजार मे माल की माँग घरेलू उत्पादन व आयात के जोड के बराबर मानी जाए, तो 1948 मे आयातित माल की मात्रा कॉस्टिक सोडा, साइकिलो, अमोनियम सल्फेट, शीट काच तथा एल्यूमिनियम मे इनकी कुल माँग का काफी ऊँचा अंश थी। देश मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय अधिकाश मशीनरी बाहर

से मगायी जाती थी। प्रथम पचवर्षीय योजना के समय देश मे सूती वस्त्र मशीनरी को छोडकर अन्य मशीनें नहीं बनती थी। इस प्रकार मशीनो, औजारो व उपकरणो के लिए देश पूर्णतया आयातो पर निर्भर रहता था।

6. **श्रम की नीची उत्पादकता**—उस समय भारत मे बड़े व विकसित उद्योगो मे श्रम की उत्पादकता विकसित देशो की तुलना मे नीची थी। उदाहरण के लिए 1949 मे सूती वस्त्र उद्योगो मे प्रति श्रम घण्टे सूत का उत्पादन भारत मे 1·9 किलोग्राम, जापान मे 3·3 किलोग्राम तथा सयुक्त राज्य अमेरिका मे 6 9 किलोग्राम होता था। 1947 मे भारत मे प्रति श्रमिक सकल उत्पत्ति का मूल्य 5,000 रुपये था, जबकि ब्रिटेन मे (1948 मे) यह 24,400 रुपये था (लगभग पाँच गुना)। इससे भारत व अन्य विकसित देशो के बीच श्रम की उत्पादकता के अन्तर का पता लगता है।[1]

7. **औद्योगिक दक्षता, औद्योगिक श्रम तथा औद्योगिक वित्त आदि**—1947 मे देश में दक्ष श्रमिको का अभाव था। टाटा समूह ने स्वदेशी दक्षता को विकसित करने का प्रयास किया था। उस समय देश मे आधुनिक फैक्ट्री क्षेत्र मे 20 लाख श्रमिक कार्यरत थे। यह कुल श्रम-शक्ति का 2% था। समय के साथ-साथ श्रम-शक्ति स्थिर होती जा रही थी। औद्योगिक वित्त देश की व्यावसायिक फर्मों के स्वय के साधनो से प्रदान किया जाता था जो व्यापार करने व उधार देने से प्राप्त हुआ था। देश मे 400 सयुक्त पूँजी वाले बैंक व शाखाएँ थी। देश मे शहरीकरण की वृद्धि हो रही थी। 1951 मे 17·6% व्यक्ति शहरो मे निवास करते थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय औद्योगिक स्थिति का मूल्याकन

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत औद्योगिक दृष्टि से काफी पिछडा हुआ था, हालाकि अन्य कई विकासशील देशो की स्थिति भारत से भी बदतर थी। यहाँ का औद्योगिक ढाचा विकृत व असन्तुलित था। इसमे उपभोग वस्तुओ के उद्योगों की प्रधानता थी तथा पूँजीगत वस्तुओ के उद्योगो का नितात अभाव था। ब्रिटिश-शासन काल मे स्वदेशी उद्योगों का पतन हुआ, लेकिन उनका स्थान लेने के लिए आधुनिक ढग के बडे पैमाने के कारखाने पर्याप्त मात्रा मे विकसित नही हो पाये। इस प्रकार देश को एक तरफ से अनौद्योगीकरण (de-industrialisation) की प्रक्रिया का सामना करना पडा। **इसके अन्तर्गत देश के पुराने उद्योग प्रायः नष्ट होते गये, लेकिन इनका स्थान नये उद्योग नहीं ले पाये।** फिर भी उस समय देश मे सूती वस्त्र, जूट, चीनी, वनस्पति तेल व कई प्रकार के अन्य कारखाने विद्यमान थे। पूँजीगत वस्तुओ के कारखानो का काफी अभाव था। कुटीर व ग्रामीण उद्योगो को कई प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पड रहा

1. शिरोकोव, पूर्वोद्धृत, पृ. 45.

था। उद्योगों के लिए वित्त व विकास की व्यवस्था करने के लिए राष्ट्रीय व राज्यीय स्तरों पर निगमों का सर्वथा अभाव था। 1951 में सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार के गैर-विभागीय औद्योगिक व व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में केवल 5 औद्योगिक उपक्रम थे जिनमें विनियोजित पूँजी की राशि केवल 29 करोड़ रु. थी, जबकि 31 मार्च 1988 को यह 221 उपक्रमों में 71,299 करोड़ रु. हो गई है।

चूँकि अंग्रेज भारत को 'कच्चे माल का उत्पादक देश' ही देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने ऐसी औद्योगिक नीति प्रस्तुत नहीं की जो औद्योगिक विकास की दिशा में देश को आगे बढ़ा सके। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक नीति, औद्योगिक टेक्नोलोजी, औद्योगिक विकास, औद्योगिक वित्त व औद्योगिक प्रबन्ध की दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं जिनका वर्णन आगे चलकर यथास्थान किया जायगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सार्वजनिक वित्त की स्थिति—

ब्रिटिश भारत में भू-राजस्व (land-revenue) से 1946-47 में 31.3 करोड़ रु. की आय प्राप्त हुई थी जो समस्त कृषिगत आय का केवल 2% थी।

इस समय सार्वजनिक व्यय व कुल राजस्व की स्थिति इस प्रकार थी[1]—

	सार्वजनिक व्यय (करोड़ रु.)	कुल राजस्व (करोड़ रु.)
1946-47	797·3	594·2
राष्ट्रीय आय का अंश	16%	12%

इस प्रकार 1946-47 में सार्वजनिक व्यय राष्ट्रीय आय का 16% तथा कुल राजस्व राष्ट्रीय आय का 12% था। उस समय केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों को करों से कुल आय 442 करोड़ रु. की हुई थी जिसमें कस्टम्स (आयात-निर्यात शुल्कों) का स्थान 22%, उत्पादन-शुल्कों का 22% तथा आय-करों का 37% था। कुल सार्वजनिक व्यय का 26% अंश सुरक्षा पर व्यय किया जाता था जो काफी ऊँचा था।

सारांश—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि *स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था उपनिवेशिक (colonial), अर्द्ध-*सामन्ती (semi-feudal), पिछड़ी हुई (backward), गतिहीन (stagnant), पूँजी की कमी से ग्रसित (depleted) तथा अंग-भंग या अंग-विच्छेदित (amputated) किस्म की अर्थव्यवस्था थी। इसका उपनिवेशिक स्वरूप तो इस प्रकार सामने आया कि अंग्रेजों ने भारत को अपने लिए कच्चे माल का स्रोत व विनिर्मित माल का

1. The Cambridge Economic History of India, 1984, Vol. 2, p. 926.

बाजार बना दिया था। अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों में ब्रिटिश पूँजी का प्रवेश हो गया था। यह अर्द्ध-सामन्ती इसलिए थी कि जमींदारी बन्दोबस्त के अन्तर्गत वास्तविक कृषकों से लगान वसूल करने के लिए मध्यस्थ नियुक्त कर दिये गये तथा उद्योगों में भारतीय व विदेशी पूँजीवादी क्षेत्र विकसित हो गया। वह पिछड़ी हुई इसलिए थी कि कृषि पर 70% श्रम-शक्ति निर्भर थी तथा प्रति व्यक्ति आय बहुत नीची थी और भारत मशीनों के लिए पूर्णतया विदेशों पर आश्रित था। यह गतिहीन इसलिए थी कि ब्रिटिश शासन काल में लगभग एक शताब्दी तक प्रति व्यक्ति आय में वार्षिक वृद्धि-दर मुश्किल से आधा प्रतिशत हो पायी थी तथा देशवासी लम्बी अवधि तक उपनिवेशिक व सामन्ती शोषण के शिकार रहे। द्वितीय महायुद्ध की अवधि में अर्थव्यवस्था में पूँजी की काफी कमी आ गई थी क्योंकि विदेशों से मशीनों व कल-पुर्जों का आयात नहीं किया जा सका था, जिससे युद्ध के बाद देश में वास्तविक पूँजी में गिरावट प्रतीत होने लगी थी। इस समय पूँजी-निर्माण की दर राष्ट्रीय आय की 6% थी। इसी प्रकार इसे अगभंग या अंगविच्छेदित अर्थव्यवस्था इसलिए कहा गया कि 1947 में राजनीतिक विभाजन के कारण देश के टुकड़े हो गये जिसके पीछे मूलत: अंग्रेजों की 'विभाजन करो व शासन करो' (divide and rule) की नीति ही जिम्मेदार थी। हम देख चुके हैं कि विभाजन ने भारतीय संघ में किस प्रकार कच्चे माल व खाद्यान्नों का अभाव उत्पन्न कर दिया था। देश को बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगों तथा शरणार्थियों की समस्या का सामना करना पड़ा था।[1]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था, हालांकि देश में परिवहन की व्यवस्था व प्रशासनिक ढांचा आर्थिक विकास का आधार प्रदान करने की दृष्टि से विद्यमान थे। यदि केवल भावी विकास की सम्भावनाओं की दृष्टि से ही देखा जाय तो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई थी, हालांकि यह विश्व के कई अन्य विकासशील देशों की तुलना में अधिक विकसित थी। इतने पर भी कृषि में प्रति हैक्टेयर उपज कम थी एवं इसमें भूमि-सुधार व तकनीकी परिवर्तनों की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। देश में पूँजीगत व उत्पादक वस्तुओं के उद्योगों का नितान्त अभाव था तथा औद्योगीकरण की दिशा में तेजी से आगे बढ़ने के लिए भारी उद्योगों का विकास करना आवश्यक समझा जा रहा था। साथ में लघु उद्योगों की समस्याओं का समाधान करना भी आवश्यक था। इस प्रकार देश में आर्थिक विकास की विशाल सम्भावनाएँ विद्यमान थी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के

---

1. K.S. Gill, Evolution of the Indian Economy, Second Edition, May, 1985, Chap. 3. (NCERT Publication).

बाद भारत सरकार ने नियोजित विकास की पद्धति के द्वारा देश के आर्थिक साधनों का विदोहन, संरक्षण व उपयोग करके जनता का जीवन-स्तर ऊँचा करने का संकल्प लिया है। आगे के अध्यायों में योजनाकाल में विविध क्षेत्रों में हुई आर्थिक प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है।

प्रश्न

1 सन् 1947 में भारतीय कृषि व उद्योगों की मूलभूत विशेषताएँ क्या थीं? क्या उस समय ये दोनों पिछड़ी अवस्था में थे?

(Raj IIyr T D.C, 1987)

2 स्वतन्त्रता की पूर्व सन्ध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था की क्या विशेषतायें थीं?

(Raj IIyr T D C., 1982, 1984 and 1986)

3 स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षण क्या थे? तब से अब तक क्या विशेष परिवर्तन आये हैं?

(Raj IIyr T D C, 1989, ऐसा ही प्रश्न 1988)

[उत्तर-संकेत—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारतीय कृषि व उद्योग पिछड़ी दशा में थे। कृषि में सामन्ती प्रथा का बोलबाला था। मध्यस्थ-वर्ग का प्रभाव था। महाजन व गाँव के व्यापारी कृषक से ऊँचा ब्याज लेकर उसका शोषण करते थे। कृषि में सिंचाई, उर्वरकों, उत्तम बीजों व अन्य इन्पुटों का अभाव था। साख की सुविधाएँ कम थीं। कृषि परम्परागत व जीवन-निर्वाह का साधन मात्र थी।

योजनाकाल में भूमि-सुधारों के अन्तर्गत मध्यस्थ-वर्ग को समाप्त किया गया है। संस्थागत साख के माध्यम से सहकारी साख का विकास किया गया। सहकारी बिक्री का भी विकास हुआ है तथा कृषि में उन्नत बीजों, उर्वरकों, कीटनाशक दवाइयों, आदि का उपयोग बढ़ा है। 1966 से हरित क्रान्ति हुई है। कृषि का आधुनिकीकरण व व्यवसायीकरण हुआ है। अब किसान बाजार के लिए फसल उगाने लगा है।

इसी प्रकार योजनाकाल में उद्योगों में विविधता आयी है। मशीनों व रासायनिक पदार्थों के कारखानें विकसित हुए हैं। कई सूर्योदय-उद्योग (sun-rise industries) जैसे इलेक्ट्रोनिक्स, पेट्रो-रसायन व कम्प्यूटर आदि विकसित हुए हैं। उद्योगों के लिए वित्त की नई व्यवस्था सामने आयी है। औद्योगिक प्रबन्ध-व्यवस्था बदली है। औद्योगिक टेक्नोलोजी उन्नत हुई है। औद्योगिक नीति के फलस्वरूप औद्योगिक विकास की दर तेज हुयी है। देश का औद्योगीकरण किया गया है।

भारत ने आत्म-निर्भरता, आधुनिकीकरण, विकास, समानता, आदि की दिशाओं में कदम बढ़ाये हैं। लेकिन भविष्य में पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण विकास की दिशा में आवश्यक कदम उठाने बाकी हैं, जिसके लिए प्रयास किये जा रहे हैं।]

———

2

जनसंख्या, श्रम-शक्ति एवं व्यावसायिक वितरण

(Population, Labour-Force and Occupational Distribution)

भारत में जनसंख्या की वृद्धि

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान आता है। भारतीय जनसंख्या की वृद्धि के आंकड़े काफी रुचिप्रद हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य (300 ईसा पूर्व) के समय से लेकर ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक वर्षों (1845) तक भारतीय उपमहाद्वीप की जनसंख्या लगभग 12 करोड़ पर स्थिर बनी रही। आज के भारतीय संघ की जनसंख्या 1845 में 10 करोड़ से बढ़कर 1981 की जनगणना के अनुसार 68.52 करोड़ (असम व जम्मू-कश्मीर सहित) हो गई है, जो पूर्व सरकारी अनुमानों से अधिक निकली है। इस प्रकार 136 वर्षों की अवधि में यह लगभग सात गुनी हो गयी है। विश्व के प्रत्येक सात व्यक्तियों में से एक व्यक्ति भारतवासी माना जाता है। विश्व विकास रिपोर्ट 1988 के अनुसार 1986 के मध्य में भारत की जनसंख्या लगभग 78.1 करोड़ व्यक्ति थी, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका की 24.2 करोड़ तथा सोवियत संघ की 28.1 करोड़ थी। अतः भारत की जनसंख्या अमेरिका व सोवियत संघ की मिली-जुली जनसंख्या से भी अधिक है। एक और रुचिप्रद तुलना इस प्रकार से भी की जा सकती है कि भारत की जनसंख्या अफ्रीका के समस्त 55 देशों व लैटिन अमरीका की जनसंख्या के जोड़ के बराबर मानी है। भारत में विश्व के क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत अंश आता है तथा यहाँ की जनसंख्या विश्व की कुल आय के 1.6 प्रतिशत अंश पर अपना गुजारा करती है। विश्व में चीन की जनसंख्या सर्वाधिक है और 1986 के मध्य में वहाँ की जनसंख्या 105.4 करोड़ व्यक्ति हो गई थी।

1901 में भारत की जनसंख्या लगभग 23.8 करोड़ थी जो बढ़कर 1981 में 68.5 करोड़ हो गई है। अब देश में प्रतिवर्ष लगभग 1.6 करोड़ व्यक्ति

जनसंख्या में जुड़ जाते है जो आस्ट्रेलिया की वर्तमान जनसंख्या के बराबर है। इस प्रकार यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारत प्रतिवर्ष एक नया आस्ट्रेलिया उत्पन्न कर देता है। निम्न तालिका में 1911-1981 तक की अवधि के लिए भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर्शायी गई है—

1911 से 1981 तक की अवधि में जनसंख्या की वृद्धि-दर[1]

वर्ष	कुल जनसंख्या (करोड़ में)	दस वर्षीय वृद्धि दर (%)
1911	25 2	5 7
1921	25 1	(—) 0·3
1931	27·9	11·0
1941	31·9	14 2
1951	36 1	13·3
1961	43 9	21·6
1971	54·8	24 8
1981	68 52*	25·0

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि 1921 तक काफी अनियमित तथा धीमी बनी रही, लेकिन 1921 के बाद यह काफी तीव्र हो गई। *1951* के जनगणना अधिकारी ने वर्ष *1921* को भारतीय जनसंख्या

1. Statistical Outline of India 1988-99, June 1988, p. 39, (Tata Services Limited), ये अनुमान 1 मार्च के लिये है, केवल 1971 की जनगणना के लिये 1 अप्रैल से सम्बद्ध है।*

* के. सुन्दरम् का मत है कि 1981 की जनगणना में कुछ लोग गिनती से छूट गये थे, विशेषतया 0-4 वर्ष के आयु-समूह में जनसंख्या की गिनती कम हुई है। इसको सुधारने पर 1 मार्च, 1981 को संशोधित जनसंख्या 70·35 करोड़ आती है, जो जनगणना के अंक से 1·8 करोड़ अधिक है। इतने लोग गिनती से भले ही छूट जायें, लेकिन वे भोजन, वस्त्र व रोजगार वगैरा तो अवश्य मांगेंगे। अतः इन पर ध्यान देना आवश्यक है। ये जनसंख्या के भावी अनुमानों को भी प्रभावित करेंगे। देखिए—

K. Sundaram, Registrar General's Population Projections 1981-2001, An Appraisal and Alternative Scenario, EPW, August 25, 1984, p. 1479.

के इतिहास में एक महान विभाजक (The great divide) बतलाया है क्योंकि इससे पूर्व जनसंख्या में अकाल, मलेरिया व अन्य महामारियों के प्रकोप के कारण वृद्धि नहीं हो पाती थी बल्कि 1911-21 के बीच में कुल जनसंख्या में थोड़ी गिरावट आई थी। पिछले 40 वर्षों में चिकित्सा की सुविधाओं के बढ़ने एवं खाद्यान्न की पूर्ति के अधिक नियमित होने से जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। 1921-51 तक तो जनसंख्या की दस वर्षीय वृद्धि की दर 11 से 14 प्रतिशत के बीच में रही थी। लेकिन 1951-61 के बीच में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस अवधि में 21.6 प्रतिशत वृद्धि की दर अथवा लगभग 7.8 करोड़ व्यक्तियों की वृद्धि वास्तव में जनसंख्या की दृष्टि से एक विस्फोटक अवस्था को उत्पन्न करने वाली रही है। यदि 1921 के वर्ष को एक 'महान विभाजक' (A great divide) कहा जाय तो 1951-61 की अवधि को 'आगे एक लम्बी छलांग' (A great leap forward) कहा जा सकता है। 1961-71 की अवधि में दशवर्षीय वृद्धि-दर 24.8 प्रतिशत तथा 1971-81 की अवधि में 25 प्रतिशत रही है।

1971-81 के दशक में भारत में जनसंख्या की वार्षिक चक्रवृद्धि दर 2.2%, रही जो पिछले दशक के समान थी। विश्व बैंक की विकास रिपोर्ट (1988) के अनुसार 1980-86 की अवधि में जापान में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि-दर 0.7%, अमेरिका की 1%, रूस की 1% तथा संयुक्त अरब अमीरात की 5.6% रही। यू. के. में यह केवल 0.1% तथा फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी में यह (–) 0.2% तथा इसी अवधि में भारत के लिए यह 2.2% रही। इस प्रकार विकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर काफी नीची पायी जाती है। फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी व हंगरी में तो यह ऋणात्मक हो गयी है।

भारत में प्रतिवर्ष 1.6 करोड़ व्यक्तियों का बढ़ जाना रोजगार, कीमतों, उपभोग के स्तर, प्रति व्यक्ति वास्तविक आय, आदि पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला तत्व है। हमारे देश में प्रत्येक डेढ़ सेकण्ड में एक बच्चा जन्म लेता है। एक वर्ष में लगभग 2.5 करोड़ बच्चे जन्म लेते हैं और लगभग 90 लाख व्यक्ति मर जाते हैं। इस प्रकार 1.6 करोड़ व्यक्ति प्रतिवर्ष जनसंख्या में जुड़ जाते हैं। भारत में जनसंख्या की वृद्धि की गम्भीरता इस बात से जानी जा सकती है कि 1971-81 की अवधि में जो 13.7 करोड़ की वृद्धि हुई जो जापान की वर्तमान जनसंख्या 12 करोड़ से अधिक थी। इसी प्रकार 1951-81 के 30 वर्षों में जो 32.4 करोड़ व्यक्तियों की जो वृद्धि हुई वह सोवियत संघ (28.1 करोड़ व्यक्ति) अथवा अमरिका (24.2 करोड़ व्यक्ति) में से प्रत्येक की कुल वर्तमान जनसंख्या से अधिक थी। 1989 के मध्य में भारत की जनसंख्या 82 करोड़ से कुछ अधिक मानी जा सकती है जबकि 1951 में यह 36 करोड़ थी। इस प्रकार जनसंख्या की दृष्टि से योजनाकाल में एक नए भारत का निर्माण और हो गया है।

विभिन्न राज्यों में 1971-81 की अवधि में जनसंख्या की दसवर्षीय वृद्धि दरें[1]—भारत में विभिन्न राज्यों में जनसंख्या की दसवर्षीय वृद्धि-दरों में काफी असमानता पाई गई है। 1971-81 की अवधि में समस्त देश में जनसंख्या की वृद्धि-दर 25 प्रतिशत रही है। इसी अवधि में दिल्ली संघीय प्रदेश की जनसंख्या में वृद्धि-दर 53 प्रतिशत रही, जबकि तमिलनाडु में यह 17·5 प्रतिशत ही रही। कुछ अन्य राज्यों में वृद्धि-दरें इस प्रकार रहीं—आंध्र-प्रदेश 23·1% असम 36·1%, बिहार 24·1%, पंजाब 23·9%, उत्तर प्रदेश 25·5, मध्य प्रदेश 25·3%, राजस्थान 33%, पश्चिमी बंगाल 23·2%, गुजरात 27·7%, कर्नाटक 26·8% तथा केरल 19·2%। इस प्रकार केरल व तमिलनाडु में यह 20% से कम रही है। राजस्थान में 33% वृद्धि-दर काफी ऊँची रही है।

1981 में भारत की कुल जनसंख्या 68·52 करोड़ व्यक्ति थी जिसमें उत्तर-प्रदेश का अंश 16·2%, बिहार का 10·2%, महाराष्ट्र का 9·2%, पश्चिम बंगाल का 8% तथा राजस्थान का 5% था। इस प्रकार देश की लगभग आधी आबादी इन 5 राज्यों में केन्द्रित थी।

भारत में जन्म-दर व मृत्यु-दर सम्बन्धी आँकड़े

किसी भी देश में जन्म-मृत्यु, स्वास्थ्य व औसत आयु से सम्बन्धित आँकड़ों को 'जन्म-मरण के आँकड़े' (Vital Statistics) कहते हैं। भारत में ये आँकड़े बहुत अपूर्ण तथा कम विश्वसनीय माने जाते हैं। हमारे देश में जन्म व मृत्यु की स्थिति का ठीक से रजिस्ट्रेशन नहीं कराया जाता। यही कारण है कि भारत में जन्म-दर व मृत्यु-दर के रजिस्ट्रेशन से प्राप्त व जनगणना से प्राप्त आँकड़ों में अन्तर पाया जाता है।

1981-85 की अवधि में जन्म-दर 33·2 प्रति हजार तथा मृत्यु-दर 12·2 प्रति हजार एवं जनसंख्या में वृद्धि-दर 21·0 प्रति हजार आंकी गई थी। लेकिन बाद के अध्ययन से पता चला है कि जन्म-दर 34·6 प्रति हजार तथा मृत्यु-दर 12·4 प्रति हजार एवं जनसंख्या की वृद्धि-दर 22·2 प्रति हजार रही है।[2] यह एक चिंता का विषय है। 1980 में शिशु मृत्यु-दर (Infant mortality rate) (प्रथम जन्म दिवस पूरा करने से पहले अथवा एक वर्ष से कम आयु में मर जाने वाले शिशुओं की संख्या) प्रति एक हजार जीवित जन्मे शिशुओं पर 114 हो गई थी। सत्तर के दशक में यह 125 प्रति हजार थी। विभिन्न राज्यों में जन्म-दर व मृत्यु-दर में अन्तर पाये जाते हैं। आज भी जन्म-दर उत्तरप्रदेश में 40·4 प्रति हजार है, जबकि केरल में यह केवल 25·2 प्रति हजार है। इसी प्रकार मृत्यु-दर उत्तर प्रदेश में 20·2 प्रति हजार है, जबकि केरल में यह 7 प्रति हजार है।

---

1. Statistical Outline of India 1988-89 (Tata Services Ltd.) p. 34.
2. Seventh Five Year Plan 1985-90, Mid-term Appraisal, p. 195.

भारत में पिछले 40 वर्षों में जन्म-दर व मृत्यु-दर दोनों में गिरावट आयी है, मृत्यु-दर में अपेक्षाकृत अधिक गिरावट आयी है। इतना होने पर भी ये दोनों दरें अन्य देशों की तुलना में ऊंची हैं।

चुने हुए देशों की जन्म-दरें व मृत्यु-दरें निम्न तालिका में दी जाती हैं :

प्रति एक हजार जनसंख्या पर (वर्ष 1986)

देश	कूड जन्म-दर	कूड मृत्यु-दर
संयुक्त राज्य अमेरिका	16	9
जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक)	10	12
रूस	19	10
जापान	12	7
भारत	32	12

इस प्रकार विश्व के औद्योगिक देशों में जन्म-दर व मृत्यु-दर दोनों काफी नीची है। न्यूनतम जन्म-दर 10 प्रति हजार फेडरिल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी में पहुँच गई है, जहाँ यह मृत्यु-दर 12 प्रति हजार से भी कम है। जापान में मृत्यु-दर 7 प्रति हजार है जो काफी कम है। उपर्युक्त तालिका में अधिकांश देशों में जन्म-दरें भारत की तुलना में आधी या उससे भी कम हैं।

भारत में पिछले वर्षों में मृत्यु-दर में गिरावट के निम्न कारण रहे हैं— देशव्यापी मलेरिया व अन्य महामारियों की रोकथाम, स्वास्थ्य में सुधार व पीने के पानी की सुविधाएँ एवं दवाओं का अधिक प्रयोग। भविष्य में मृत्यु-दर के और घटने की सम्भावनाएँ हैं।

जनसंख्या वृद्धि के भावी अनुमान

सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप, खण्ड I के अनुसार जनसंख्या के भावी अनुमान इस प्रकार हैं।[1]

वर्ष एक मार्च को	अनुमानित जनसंख्या (करोड़ों में)
1986	76·1
1991	83·7
1996	91·3
2001	98·6

1. Seventh Five Year Plan 1985-90 Vol. I, pp. 11-12, table 2·1.

इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि-दर 1981-86 की अवधि में 21·0 प्रति हजार से घट कर 1996-2001 की अवधि में 15·3 प्रति हजार हो जायगी। विश्व बैंक की विकास रिपोर्ट (1988) के अनुसार भारत की जनसंख्या 2000 में 100 2 करोड़ हो जायेगी। अतः इक्कीसवी शताब्दी की पूर्वसंध्या में भारत में लगभग एक अरब जनसंख्या हो जाने की सम्भावना है।

सातवी पंचवर्षीय योजना में अनुमान लगाया गया है कि भारत में शुद्ध पुनरुत्पादन की दर (Net Reproduction Rate or NRR) 2006–2011 की अवधि में 1 के बराबर हो पायेगी। तब देश की जनसंख्या में स्थिरता की ओर प्रवृत्ति होगी। यह तभी सम्भव होगा जबकि परिवार का औसत आकार 4 2 बच्चों से घट कर 2 3 बच्चे हो जाय एवं जन्म-दर 21 प्रति हजार व मृत्यु-दर 9 प्रति हजार हो जाय तथा 60% दम्पत्ति परिवार-नियोजन के उपाय अपनाने लगें।

NRR = 1 का आशय यह है कि माताओं की प्रत्येक पीढ़ी अपने पीछे अपनी संख्या के बराबर ही पुत्रियाँ छोड़ कर जाती है, जिससे आगे चलकर जनसंख्या स्थिर हो जाती है।

के. सुन्दरम ने अपने पूर्ववर्णित लेख में अनुमान लगाया है कि भारत की जनसंख्या 1981 मे 70·35 करोड़ से बढ़कर 2001 में 105 करोड़ हो जायेगी। इस प्रकार इसमें औसतन प्रतिवर्ष 1·7 करोड़ की वृद्धि होगी। आगामी वर्षों में श्रम-शक्ति भी तेज रफ्तार से बढ़ेगी। अनुमान है कि 1990 की दशाब्दी मे श्रम-शक्ति में प्रतिवर्ष 1 करोड़ की वृद्धि होगी तथा शहरी जनसंख्या का अनुपात 1981 में 23 5% से बढ़कर 2001 में 31·5% हो जायेगा। इन कारणों की वजह से भारतीय नियोजन में शहरी नियोजन अथवा शहरी-पक्ष पर अधिक बल देना आवश्यक हो जायेगा ताकि शहरीकरण से उत्पन्न समस्याओं का सामना किया जा सके।

भारत में जनसंख्या की वृद्धि के कारण

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है, ऊँची जन्म-दर भारत मे जनसंख्या के बढ़ने का प्रमुख कारण है। पिछले वर्षों मे मृत्यु-दर घटने से जनसंख्या की वृद्धि और भी अधिक होने लगी है। लेकिन आधारभूत कारण अभी तक वही है। अतः जो कारण जन्म-दर को ऊँचा रखते हैं वे ही कारण भारत मे जनसंख्या की वृद्धि के लिए प्रमुखतया उत्तरदायी माने जा सकते हैं। भारत में जनसंख्या की वृद्धि के कारण निम्नांकित हैं—

(1) **जलवायु व भौतिक परिस्थितियाँ**—गर्म देशो मे ठण्डे देशो की तुलना म शादी जल्दी की जाती है, क्योंकि जलवायु के प्रभाव से परिपक्वता की अवस्था (maturity) शीघ्र ही आ जाती है। इसलिए सन्तानोत्पत्ति की अवधि अधिक होने से जन्म-दर का ऊँचा होना स्वाभाविक है।

(2) आर्थिक कारण—प्राय: देखा गया है कि निर्धन व्यक्तियों के परिवार बड़े होते हैं, जबकि सम्पन्न व्यक्तियों के परिवार छोटे होते हैं। निर्धन परिवारों में *एक नये बच्चे के आने से रहन-सहन के स्तर पर विशेष प्रभाव महसूस नहीं होता,* क्योंकि इनमें रहन सहन के स्तर का अर्थ ही नहीं समझा जाता है और कई बार तो आने वाला बच्चा छोटी उम्र में ही काम करने लग जाता है जिससे परिवार की अल्प आय में थोडी वृद्धि हो जाती है। इसलिए गरीब परिवारों में शादी व सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत असावधानी बरती जाती है। पाश्चात्य देशों में ऊँचे जीवन स्तर *के कारण जन्म-दर नीची पाई जाती है।*

(3) सामाजिक व धार्मिक कारण—(i) शादी की अनिवार्यता—भारत में शादी केवल जल्दी ही नहीं होती बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को शादी करनी होती है। शादी की प्रथा सर्वव्यापक है। शादी ऐच्छिक नहीं, बल्कि अनिवार्य मानी जाती है। एक विशेष अवस्था प्राप्त करने पर प्रत्येक व्यक्ति को शादी के बन्धन में बंधना पड़ता है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति शादी की उम्र तक पहुँचने के कुछ वर्ष बाद शादी नहीं करना चाहे तो उसे सामाजिक वातावरण ऐसा नहीं करने देता। इसलिए प्राय शादी के लायक प्रत्येक व्यक्ति की शादी कर दी जाती है। भारत में गरीबी शादी में बाधक न होकर साधक होती है। श्रमिकों के परिवार में नई बहू भी काम-काज में हिस्सा बँटाती है और यह केवल घर तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि दैनिक आर्थिक कार्य में भी पाया जाता है।

(i) कम उम्र में शादी—भारत में सामाजिक पिछड़ेपन के कारण अनेक वर्गों में शादी की आयु अपेक्षाकृत नीची रहती है। जनसंख्या-विशेषज्ञों का मत है कि यदि लड़की की शादी 15 वर्ष के स्थान पर 20–21 वर्ष में होने लग जाय तो इसका प्रभाव जन्म-दर को घटाने पर काफी प्रबल रूप में सामने आयेगा। शिक्षा के प्रसार से यह कार्य आसान भी हो गया है। लेकिन अभी तक इस दिशा में अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

(ii) संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रभाव—भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली ने परोक्ष रूप से जन्म-दर बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुई है। व्यक्तिगत परिवार प्रणाली में परिवार नियोजन के सम्बन्ध में जितनी सावधानी व समझदारी बरती जाती है, उतनी संयुक्त परिवार में नहीं बरती जाती। कारण यह कि एक नया

1. कुछ पुस्तकों में जनसंख्या की वृद्धि के कारणों में 'बाल-विवाह' का भी उल्लेख मिलता है। हमारे मत में बाल-विवाह एक सामाजिक अभिशाप व कुप्रथा अवश्य है, लेकिन जनसंख्या की वृद्धि की दृष्टि से 'कम उम्र में शादी' का प्रभाव स्वीकार करना ही काफी होगा।

बच्चा बड़े परिवार में विशेष भार मालूम नहीं पड़ता। सीमित परिवार के सम्बन्ध में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के पनपने के लिए व्यक्तिगत परिवार प्रणाली अधिक अनुकूल मानी गई है।

(iii) धार्मिक व सामाजिक विश्वास एवं संस्कृति का प्रभाव—भारत में शादी के बाद कम से कम एक पुत्र उत्पन्न होना आवश्यक माना गया है, क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि माता-पिता की मोक्ष के लिए एक पुत्र होना बहुत जरूरी है। इसलिए जिनके केवल लड़कियां होती रहती है वे एक लड़के की प्रतीक्षा में परिवार को बढ़ाते जाते हैं। ऐसा प्राय: शिक्षित व अशिक्षित सभी प्रकार के परिवारों में देखने को मिलता है। जिनके केवल लड़के होते है वे उनको परिसम्पत्ति (asset) मानने के कारण परिवार-नियोजन में शीघ्रता नहीं लाते। जब लड़के-लड़की की स्टेट्स बराबर होगी, तब ये मनोदशाएँ बदलेंगी। इसके लिए सामाजिक परिवर्तन की भी आवश्यकता है। यही नहीं बल्कि बड़े परिवार ईश्वर का वरदान समझे जाते हैं। इसी प्रकार सामाजिक व धार्मिक परम्पराएँ भी जन्मदर को बढ़ाने में सहायक रही है, घटाने में नहीं। ऊँची जन्म-दर हमारी संस्कृति का अंग बन गई है। अत: जब स्वेच्छा से अथवा परिस्थितियों के दबाव से समाज की प्रचलित धार्मिक व सामाजिक भावनाएँ बदलेंगी, तभी भारत में जन्म दर घटेगी।

4. **भारत में जनसंख्या की वृद्धि में मृत्यु-दर की गिरावट का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है**—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, मृत्यु-दर चालीस के दशक में 27·4 प्रति हजार से घटकर 1981-85 की अवधि में 12·2 प्रति हजार आंकी गई है। भविष्य में मृत्यु-दर में और गिरावट आने की सम्भावना है। मृत्यु-दर का घटना मानवीय दृष्टि से काफी अच्छा माना जाता है, लेकिन जन्म-दर के स्थिर रहने की दशा में इसका प्रभाव जनसंख्या की वृद्धि के रूप में प्रकट होता है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत में जनसंख्या इसलिए नहीं बढ़ रही है कि अधिक बच्चे जन्म लेने लग गये है, बल्कि यह इसलिए बढ़ रही है कि कम व्यक्ति मरने लग गये है। अत: भविष्य में जन्म-दर को घटाना नितान्त आवश्यक हो गया है।

5. **परिवार नियोजन का अभाव**—शिक्षा की कमी, गरीबी व पर्याप्त साधनों के अभाव में आज भी भारत में परिवार नियोजन का उपयोग देहातों में उतना नहीं होता जितना शहरों में होता है और शहरों में भी यह कुछ शिक्षित व मध्यम श्रेणी के परिवारों में ही अधिक प्रचलित हो पाया है। अभी भी अनेक परिवार इसके उपयोग से दूर हैं जिससे जन्म-दर का ऊँचा रहना स्वाभाविक है। 1981-85 की अवधि में जन्म-दर 33·2 प्रति हजार आंकी गई थी जो वास्तव में 34·6 प्रति हजार निकली है (सातवीं योजना का मध्यावधि मूल्यांकन)। जन्म-दर को कम करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

6 शरणार्थियों का आगमन—भारत में समय-समय पर राजनीतिक कारणों से विभिन्न देशों से शरणार्थियों के आने से भी जनसंख्या का दबाव बढ़ा है। इस सम्बन्ध में पाकिस्तान, बंगला देश, तिब्बत तथा श्रीलंका से आये शरणार्थियों का उदाहरण दिया जा सकता है। जब तक ऐसे शरणार्थी अपने स्थानों पर वापस नहीं लौट जाते तब तक हमारी कठिनाई बनी रहती है। असम में बंगला देश के नागरिकों के काफी संख्या में बस जाने से वहां विदेशी नागरिकों की समस्या उत्पन्न हुई है। समाचार पत्रों में छपी सूचना के आधार पर राजस्थान के सीमावर्ती गांवों में पाकिस्तान से कुछ घुसपैठिया के आने से भी जनसंख्या बढ़ी है, हालांकि इसका प्रभाव पश्चिमी राजस्थान के पांच जिलों तक ही सीमित रहा है।

7 मनोरंजन के साधनों का अभाव—कुछ व्यक्तियों की धारणा है कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि का एक कारण देश में मनोरंजन के साधनों का अभाव है। हालांकि इस कारण की सत्यता से इंकार नहीं किया जा सकता, फिर भी प्रायः इस तत्व को भी पाठ्य पुस्तकों में अनावश्यक रूप से बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है। मुख्य कारण तो परिवार नियोजन के उपायों का व्यापक रूप से नहीं अपनाया जाना है। जैसे जैसे लोग परिवार नियोजन को अपनाते जायेंगे, वैसे वैसे इन कारणों का महत्व कम होता जायगा। देश में बच्चों की बाढ़-सी (Torrent of babies) आ रही है। भारत जनसंख्या के विस्फोट (Population explosion) की स्थिति में से गुजर रहा है। इस पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया जाना चाहिए। जनसंख्या की समस्या का युद्ध स्तर पर मुकाबला करने की आवश्यकता है। इसके लिए प्रभावपूर्ण राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम अपनाया जाना चाहिए।

भारत में जनसंख्या सम्बन्धी बातें

जनसंख्या का घनत्व (Density of Population)

प्रायः जनसंख्या के घनत्व से हमारा अभिप्राय प्रति वर्ग किलोमीटर में बसने वाले निवासियों की संख्या से होता है। यदि किसी देश या क्षेत्र की कुल जनसंख्या का वहां के क्षेत्रफल में विभाजित किया जाय तो वहां की जनसंख्या का घनत्व ज्ञात हो जायगा। हमने देखा कि भारत में जनसंख्या निरंतर बढ़ती जा रही है परन्तु देश का क्षेत्रफल लगभग स्थिर है। फलस्वरूप भारत में जनसंख्या का घनत्व भी बढ़ रहा है। भारत में जनसंख्या का घनत्व 1971 में 177 था जो बढ़कर 1981 में 216 प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया। स्मरण रहे कि जनसंख्या का घनत्व हम किसी भी देश के आर्थिक विकास के बारे में विशेष ज्ञान नहीं कराता। इसका जनाधिक्य अथवा जनाभाव से विशेष सम्बन्ध नहीं होता। घनत्व का अधिक होना आर्थिक पिछड़ेपन का सूचक भी नहीं माना जाता।

भारत मे विभिन्न राज्यो के जनसंख्या के घनत्व मे परस्पर काफी अन्तर पाया जाता है। 1981 मे एक ओर दिल्ली मे घनत्व 4,194 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था तो दूसरी ओर अरुणाचल प्रदेश मे केवल 8 व्यक्ति ही था। अन्य राज्यो मे घनत्व की स्थिति इस प्रकार थी : बिहार (402), मध्यप्रदेश (118), महाराष्ट्र (204), पजाब (333), राजस्थान (100); उत्तर प्रदेश (377) तथा पश्चिमी बगाल (615)।[1] एक राज्य के विभिन्न भागो मे भी जनसंख्या के घनत्व मे काफी अन्तर पाया जा सकता है।

जनसंख्या के घनत्व की विभिन्नता के कई कारण होते है, जैसे भूमि की बनावट, मिट्टी की किस्म, वर्षा, सिचाई, जलवायु, भौगोलिक व आर्थिक साधन एव आर्थिक विकास की अवस्था, आदि। उपजाऊ मिट्टी, सिचाई की उचित व्यवस्था व आर्थिक विकास से जनसंख्या के घनत्व मे वृद्धि होती है।

लिग-अनुपात (Sex-ratio)—प्रति 1000 पुरुषो के पीछे स्त्रियों की संख्या लिग-अनुपात (Sex-ratio) कहलाती है। भारत मे लिग-अनुपात 1971 मे 930 था जो बढकर 1981 मे 933 हो गया। इस प्रकार देश मे पुरुषो की संख्या स्त्रियो की तुलना मे अधिक है। लेकिन 1981 मे केरल मे लिग-अनुपात 1032 था, अर्थात् वहा पुरुषो की तुलना मे स्त्रियो की सख्या अधिक थी। दिल्ली मे यह अनुपात राष्ट्रीय औसत से काफी कम था (808) एव राजस्थान मे 919 था।

भारत मे साक्षरता की दरें (Literacy Rates in India)–भारत मे 1981 मे साक्षरता की दरो मे थोडी वृद्धि हुई है, फिर भी यहाँ पर साक्षरता की दर विश्व मे सबसे कम पायी जाती है। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत मे 36 2% व्यक्ति साक्षर थे। पुरुषो के लिए साक्षरता की दर 47% तथा स्त्रियो के लिए 25% थी। 1971 मे साक्षरता की दर 29 5% थी।

1981 मे कुछ राज्यो मे साक्षारता की दरे इस प्रकार थी :

	(%)
केरल	70·4
उत्तर प्रदेश	27·2
बिहार	26·2
पजाब	40 9
राजस्थान	24·4

स्रोत Statistical Outline of India, 1988-89. p. 35

इस प्रकार केरल मे साक्षारता की स्थिति बहुत उत्तम है। उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि समस्त देश मे आज भी दो-तिहाई व्यक्ति निरक्षर हैं। आर्थिक

1. India 1987, p. 10

विकास मे शिक्षा का काफी योगदान माना जाता है। अतः साक्षरता का विस्तार तेजी से किया जाना चाहिए। इससे परिवार-नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाने मे मदद मिलती है। स्त्री-शिक्षा के प्रचार से शादी की उम्र भी बढ़ती है, जिसका प्रभाव जन्म-दर को घटाने की दृष्टि से अनुकूल होता है। चीन मे प्रयत्न करके लोगो को भारी संख्या मे साक्षर बनाया गया है। हमे उसके अनुभव से लाभ उठाना चाहिए। 1980 मे चीन मे प्रौढ़-साक्षरता (adult-literacy) की दर 69% तथा श्रीलंका मे 85% हो गई थी। प्रोफेसर ए. के. सेन (Prof. A.K. Sen) ने भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति पर अपने विचार प्रकट करते हुए बतलाया है कि 1981 मे भारत मे साक्षरता की दर 36% पाया जाना देश के पिछड़ेपन का सूचक है। इसके विपरीत यहाँ उच्च शिक्षा मे चीन की तुलना मे आठ गुने विद्यार्थी पाये जाते हैं। लेकिन दो-तिहाई जनता साधारण पत्र भी पढ़ या लिख नही सकती। उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर होता है।

पुरुषो की तुलना मे स्त्रियो मे साक्षरता की दर और भी कम पायी जाती है। शहरो की बनिस्बत गाँवो मे साक्षरता की दशा ज्यादा खराब है और गाँवो मे *पुरुषो की तुलना मे स्त्रियो मे साक्षरता की दशा अधिक दयनीय है। राजस्थान मे* **ग्रामीण स्त्रियों मे साक्षरता की दर 1981 मे 5·5% रही, जो भारत मे सबसे नीची थी।** इससे राजस्थान के देहातो मे स्त्रियो में सामाजिक पिछड़ेपन की दशा का अनुमान लगाया जा सकता है।

भारत मे जन्म के समय जीने की प्रत्याशा (Expectation of Life at Birth)

भारत मे जन्म के समय जीने की प्रत्याशा 1986 मे 57 वर्ष हो गयी थी। अब एक औसत भारतवासी पहले की तुलना मे अधिक वर्ष तक जीता है। यह आर्थिक विकास का सूचक तथा देश की प्रगति का प्रतीक माना जा सकता है। लेकिन यहाँ भी चीन व श्री लंका हमसे काफी आगे निकल गये हैं। चीन मे यह 69 वर्ष व श्रीलंका मे 70 वर्ष हो गयी है। सामाजिक सेवाओ के विस्तार व खाद्यान्नो के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता ने इस दशा मे काफी मदद की है।

भारत मे नगरीकरण की प्रवृत्ति व आर्थिक विकास

भारत मे 1971 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या का 19·9% शहरो म निवास करता था और शेष 80 1% गाँवो मे बसा हुआ था। 1981 मे शहरी जनसंख्या अनुपात 23 3% हो गया है। इस प्रकार आज भी 76·7% आबादी ग्रामीण क्षेत्रो मे निवास करती है।

इस प्रकार भारत मे शहरीकरण की दशा मे कुछ प्रगति हुई। 1981 मे 23 3 प्रतिशत जनसंख्या शहरो में बसी हुई थी। चण्डीगढ मे यह अनुपात 93·6% तथा अरुणाचल प्रदेश मे 6·6% था।

1981 की जनगणना के अनुसार 12 नगरो की जनसख्या 10 लाख से ऊपर हो गई थी।[1] इनमे कलकत्ते की जनसख्या 91·9 लाख, बम्बई की 82·4 लाख, दिल्ली की 57·3 लाख तथा जयपुर की 10·1 लाख थी। इन 12 नगरो की कुल जनसख्या (मद्रास, बगलौर, हैदराबाद, अहमदाबाद, कानपुर, पुणे, नागपुर व लखनऊ सहित) 4·16 करोड व्यक्ति थी, जो भारत की कुल जनसख्या का 6·1% थी। महानगरो मे आवास, जल-सप्लाई, सफाइ आदि की समस्याओ के निरन्तर बढने के कारण भारतीय नियोजन मे शहरी-पक्ष पर अधिक ध्यान देना आवश्यक हो गया है। प्रोफेसर के सुन्दरम का भी मत है कि 2001 मे शहरी जनसख्या का अनुपात 31·5% हो जायेगा। शहरो की जनसख्या 1981 मे 16·5 करोड से बढकर 2001 मे 33 करोड व्यक्ति हो जायेगी (दुगुनी)। अत: भविष्य मे शहरी नियोजन पर विशय रूप से ध्यान देना होगा।

भारत में श्रम-शक्ति व इसका व्यावसायिक वितरण

प्रत्येक देश के आर्थिक विकास पर वहाँ की श्रम-शक्ति का बडा प्रभाव पडता है। श्रम-शक्ति मे रोजगार प्राप्त व्यक्ति तथा वर्ष भर बेरोजगार रहने वाले व्यक्ति शामिल माने जाते है। श्रम-शक्ति देश की कुल जनसख्या का एक अश होती है। इस अश को काम मे भाग लेने की दर (Work Participation Rate) कहते हैं जिस पर जनसख्या की वृद्धि-दर, आर्थिक-सामाजिक व अन्य परिस्थितियो का निरन्तर प्रभाव पडता रहता है। 1981 मे श्रमिको का अनुपात कुल जनसख्या का 34% पाया गया था।

सातवी पचवर्षीय योजना के प्रारूप मे बतलाया गया है कि भारत मे मार्च 1985 मे 5 वर्ष व अधिक आयु के श्रमिक 30·5 करोड थे, जो मार्च 1990 मे 34 5 करोड हो जायेगे। इस प्रकार इस समूह मे श्रम-शक्ति मे वार्षिक वृद्धि-दर 2 46% आकी गयी है। इन अनुमानो के लिए राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे के 32वें दौर (1977–78) से प्राप्त की गयी काम मे भाग लेने की दरो का उपयोग किया गया है।

भारत मे वर्तमान समय मे श्रम-शक्ति मे वार्षिक वृद्धि-दर 80 लाख व्यक्ति मानी जा सकती है। आगामी वर्षों मे इसके 1 करोड सालाना होने की सम्भावना है।

1981 की जनगणना मे मुख्य श्रमिको (main workers) व सीमान्त श्रमिको (marginal workers) के सम्बन्ध मे आंकडे एकत्र किये गये थे। मुख्य श्रमिक उनको माना गया जिन्होंने वर्ष मे 183 दिन अथवा 6 महीने या इससे अधिक

---

1 Statistical Outline of India, 1988–89, pp 48–50, (Tata Services Limited, (June,1988)

अवधि के लिए किसी आर्थिक दृष्टि से उत्पादन क्रिया में भाग लिया। सीमान्त श्रमिक उनको माना गया जिन्होंने 183 दिन या 6 महीने से कम अवधि के लिए काम किया, अर्थात् जिन्होंने वर्ष के अधिकांश भाग तक उस क्रिया में भाग नहीं लिया।

मुख्य श्रमिकों (main workers) का कुल जनसंख्या में अनुपात

	(प्रतिशत)
1971	33 1
1981	33·4

1981 की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार देश में मुख्य श्रमिक (main workers) 22 25 करोड़ तथा सीमान्त श्रमिक 2·21 करोड़ थे। इस प्रकार कुल श्रमिक 24 46 करोड़ व्यक्ति थे जिनमें 19 73 करोड़ ग्रामीण व 4·73 करोड़ शहरी थे एवं 18·10 करोड़ पुरुष व 6·36 करोड़ स्त्रियाँ थीं।

जे कृष्णमूर्ति के अनुसार संशोधित मुख्य क्रिया (सीमान्त श्रमिकों सहित) को लेने पर काम में भाग लेने की क्रूड दर (1981 की जनगणना के आधार पर) ग्रामीण पुरुषों के लिए 54%, ग्रामीण महिलाओं के लिए 23%, शहरी पुरुषों के लिए 49% तथा शहरी महिलाओं के लिए 8% रही। इस प्रकार महिलाएं पुरुषों की तुलना में श्रम-शक्ति में कम भाग लेती हैं तथा गांवों की अपेक्षा शहरी महिलाएं श्रम में कम मात्रा में भाग लेती हैं।

विकसित देशों में कार्यशील आयु (Working age) में जनसंख्या कुल जनसंख्या के अनुपात के रूप में विकासशील देशों की तुलना में ऊँची पायी जाती है। **अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समान परिभाषा लेने पर 1985 में भारत में कार्यशील जन-** संख्या (15-64 वर्ष के आयु समूह में) कुल जनसंख्या का 56% आँकी गयी थी, जबकि जापान में यह 68 प्रतिशत, यू के में 65 प्रतिशत तथा फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी में 70% थी।[1]

अब हम श्रम-शक्ति के व्यावसायिक या पेशावार वितरण का अध्ययन करता है। श्रमिक का विभिन्न व्यवसायों या पेशों के अनुसार वितरण इसका व्यावसायिक वितरण कहलाता है। विभिन्न व्यवसायों को प्रायः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

1 **प्राथमिक क्षेत्र** (Primary Sector)—इसमें कृषि पशु-पालन, वन, मछली-पालन, शिकार करना तथा बागान की क्रियाएँ शामिल होती हैं। इनमें प्रायः खनन क्रिया (Mining) शामिल नहीं होती (जैसे डा वी के आर वी राव के अनुसार)। लेकिन केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (C S O) खनन को भी प्राथमिक क्षेत्र में शामिल करता है।

1. World Development Report, 1988 pp 282-283.

2 द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector)—इसमें खनन व पत्थर निकालना घरेलू उद्योग, अन्य विनिर्माण उद्योग तथा निर्माण (Construction) के कार्य शामिल होते हैं।

3 तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector)—इसके अन्तर्गत व्यापार-व्यवसाय परिवहन, संग्रह व संचार तथा सार्वजनिक प्रशासन सुरक्षा व अन्य प्रकार की सेवाएँ आती हैं। आर्थिक विकास के साथ इस क्षेत्र का अपेक्षाकृत अधिक तेजी से विकास होता है।

*कोलिन क्लार्क व साइमन क्यूजनेट्स आदि विद्वानों ने श्रम-शक्ति के व्याव-*सायिक वितरण का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप प्राथमिक क्षेत्र में श्रम-शक्ति का प्रतिशत घटता है, द्वितीयक क्षेत्र में यह बढ़ता है तथा तृतीयक क्षेत्र में यह और भी तेज गति से बढ़ता है।

कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न क्षेत्रों में वितरण विभिन्न देशों में अलग-अलग पाया जाता है। इसका अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है।

1980 में श्रम-शक्ति का व्यावसायिक वितरण[1] (प्रतिशत में)

	कृषि	उद्योग	सेवाएँ	कुल
भारत	70	13	17	100
जापान	11	34	55	100
संयुक्त राज्य अमेरिका	3	31	66	100

इस प्रकार विकसित देशों में श्रम-शक्ति का अधिक अंश सेवाओं के क्षेत्र में पाया जाता है। ध्यान देने की बात है कि भारत में श्रम-शक्ति का 70% कृषि में संलग्न है, जबकि अमेरिका में यह लगभग 3% ही है।

भारत में श्रमिकों का व्यावसायिक वितरण 1901-1951 के 50 वर्षों में इस प्रकार रहा।

1901 में कृषक व खेतिहर मजदूरों का कुल श्रमिकों में 67·5% अंश था जो 1951 में 69·7% हो गया। पशु-पालन, वन, मछली, शिकार, बागान आदि में यह 4·2% से घटकर 2·4%, खनन व विनिर्माण में 11·8% से घटकर 9·6% तथा व्यापार, निर्माण व परिवहन, आदि में 16·5% से बढ़कर 18·3% हो गया। इस प्रकार 1901-51 की अवधि में कृषकों व खेतिहर मजदूरों का अनुपात कुल श्रमिकों में बढ़ा, खनन व विनिर्माण में यह घटा तथा व्यापार, निर्माण व परिवहन में थोड़ा बढ़ा।

1. World Development Report, 1988, pp. 282-283.

निम्न तालिका मे श्रमिकों का व्यावसायिक वर्गीकरण 1971 व 1981 के लिए दर्शाया गया है :— (प्रतिशत मे)

आर्थिक क्रिया	1971	1981
(1) कृषक	43·4	41·6
(2) खेतिहर मजदूर	26·3	24 9
(3) पशुधन, वन, मछली वगैरा	2·4	2·3
(4) खनन व पत्थर निकालना	0 5	0 6
(5) विनिर्माण (घरेलू+अन्य)	9·5	11 3
(6) निर्माण (Construction)	1·2	1·6
(7) व्यापार व वाणिज्य	5·6	6·2
(8) संग्रह, परिवहन व सचार	2·4	2·7
(8) अन्य सेवाएँ	8 7	8·8
	100 0	100 0

	1971	1981
(क) प्राथमिक क्षेत्र (1+2+3)	72·1	68 8
(ख) द्वितीयक क्षेत्र (4+5+6)	11·2	13·5
(ग) तृतीयक क्षेत्र (7+8+9)	16·7	17·7
	100 0	100·0

1. Basic Statistics Relating to the Indian Economy, Vol. I, India, August, 1986 (CMIE, Bombay), table 9·1

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1971 में प्राथमिक क्षेत्र में श्रमिकों का 72 1% अंश लगा हुआ था जो 1981 में घटकर 68 8% पर आ गया। द्वितीयक क्षेत्र में यह 11·2% से बढ़कर 13·5% तथा तृतीयक या सेवा-क्षेत्र में 16·7% से बढ़कर 17 7% हो गया।

इस प्रकार प्राथमिक क्षेत्र में श्रम-शक्ति का अंश लगभग 3·3% घटा है एवं बदले में द्वितीयक क्षेत्र में यह 2 3% तथा सेवा-क्षेत्र में 1% बढ़ा है।

कृष्णमूर्ति का भी यही मत है कि भारत के अधिकांश भागों में पिछले दशक (1971-81) में श्रम-शक्ति का कृषि से अन्य क्षेत्रों म कुछ अन्तरण हुआ है। इस निष्कर्ष की पुष्टि एन. एस एस व सेन्सस दोनों के आँकड़ो से होती है। उनका यह भी कहना है कि यह प्रवृत्ति पिछले दशक में अधिक स्पष्ट हुई है। हो सकता है यह काफी लम्बी अवधि से चली आ रही हो। लेकिन सम्भव है तुलनीय आँकड़ों के सिरीज के अभाव में यह छिपी रह गई हो। इस प्रकार 1981 में पहली बार व्यावसायिक वितरण में एक नया व अनुकूल मोड़ आया है जिसके अनुसार कृषि में श्रम-शक्ति का अनुपात 3 से 4 प्रतिशत तक कम हुआ है। डॉ वी. के आर. वी. राव ने भी अपनी पुस्तक : *India's National Income : 1950-1980* में इन परिवर्तनों की पुष्टि की है।

1965-80 की अवधि में श्रम-शक्ति म कृषि का अंश कई अल्प-विकसित विकासशील देशों में घटा है. कुछ देशों की स्थिति निम्न तालिका में दर्शायी गयी है।[1]

श्रम-शक्ति में कृषि का अंश (प्रतिशत में)

देश	1965	1980	परिवर्तन
1 बंगला देश	84	75	(—) 9
2 पाकिस्तान	60	55	(—) 5
3. भारत	73	70	(—) 3

तालिका से पता लगता है कि 1965-80 की अवधि में भारत व उसके पड़ोसी देशों में कृषि में श्रम-शक्ति का अनुपात घटा है, हालांकि भारत व बंगला देश में आज भी यह काफी ऊँचा बना हुआ है।

1981 में राज्यों में श्रम-शक्ति का व्यावसायिक वितरण—

विभिन्न राज्यों म औद्योगिक श्रेणियों के अनुसार श्रम-शक्ति का वितरण काफी असमान पाया जाता है। उदाहरण के लिए, 1981 म बिहार म कुल श्रमिकों

1. World Development Report 1988, p. 282.

मे 43·6% कृषक तथा 35·5% खेतिहर मजदूर थे। इस प्रकार 79·1% कृषि मे सलग्न थे। यह प्रतिशत सर्वाधिक था।

राजस्थान मे श्रम-शक्ति का वितरण इस प्रकार रहा—

(प्रतिशत)

कृषक	खेतिहर मजदूर	घरेलू उद्योग (विनिर्माण, प्रोसेसिंग, सेवा व मरम्मत)	अन्य
61 6	7·3	3·3	27 8

इस प्रकार राजस्थान मे 69% श्रमिक कृषि मे सलग्न पाये गये, जबकि 1971 मे इसमे 74% लगे हुए थे।

आज भी भारत मे श्रम-शक्ति का व्यावसायिक वितरण काफी असन्तुलित व प्रतिकूल किस्म का है। यहाँ प्राथमिक क्षेत्र मे सबसे अधिक लोग लगे हुए है, जबकि विकसित देशो मे तृतीयक क्षेत्र मे श्रम-शक्ति का अधिक अश पाया जाता है।

आर्थिक विकास के साथ-साथ यह देखा गया है कि गैर-कृषि व्यवसाय मे श्रम-शक्ति का प्रतिशत बढता जाता है और फलस्वरूप कृषि पर जनसख्या का दबाव घटता जाता है। बडे पैमाने की यत्रीकृत खेती का प्रयोग होने से विकसित देशो मे कृषि म कम श्रम-शक्ति पायी जाती है। भारत अभी तक औद्योगीकरण की दिशा मे सन्तोषजनक प्रगति नही कर पाया है। इसलिए कृषि म अधिक लोग लगे हुए है। अब प्रश्न उठता है कि इस दोषपूर्ण व्यावसायिक वितरण को कैसे ठीक किया जाय।

आधुनिक ढग के कुटीर व लघु उद्योगों के विकास की आवश्यकता—इसके *लिए अधिकाश अर्थशास्त्रियो ने सुझाव दिया है कि देश मे छोटे व मध्यम पैमाने के* उद्योगो का विस्तार किया जाना चाहिए। ये उद्योग गाँवो मे स्थापित हो। वे आधुनिक पद्धति पर विद्युत का प्रयोग करके चलाए जाए। इनमे अधिक श्रमिको को खपाया जा सकेगा। पाश्चात्य देशो का पूँजी-गहन औद्योगीकरण हमारे यहाँ उपयोगी नही होगा; क्योकि बडे पैमाने के उद्योगो का विस्तार करके विशाल श्रम-शक्ति को काम देना कठिन है। इसलिए हमे शहरो मे उद्योगो के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नही करना है। देश को सम्पन्न बनाने के लिए हमे विकेन्द्रित पद्धति पर आधारित आधुनिक ढग के लघु व कुटीर उद्योगो का विकास करना चाहिए।

क्या जनसंख्या को कृषि से गैर-कृषि व्यवसायों में से जाना सम्भव होगा ?

जनसख्या के व्यावसायिक वितरण को ठीक करने के सम्बन्ध मे प्राय' यह कहा जाता है कि ऐसा करने के लिए लोगो को कृषि से हटाकर गैर-कृषि व्यवसायो

म ले जाना होगा। लेकिन भारतीय परिस्थिति मे यह सुझाव व्यावहारिक नही लगता है। डॉ वी के आर. वी. राव का मत है कि भविष्य मे कृषि से लोगो को हटाने की बजाय इसमे ही अधिक लोगों के लिए रोजगार की व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार उन्होने लोगो को कृषि से हटाकर अन्यत्र ले जाने की प्रचलित धारणा को गलत सिद्ध किया है। योजना आयोग के पूर्व सदस्य डॉ ए. एम खुसरो ने भी एक अध्ययन मे यह स्वीकार किया था कि कृषि से लोगो को हटाने की बजाय इसमे ही अधिक लोगो के लिए रोजगार की व्यवस्था करनी होगी।

यह निष्कर्ष काफी सरल प्रतीत होता है, लकिन इसके व्यावहारिक पहलू पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रतिवर्ष जनसख्या व श्रम-शक्ति के बढने के कारण हमे यही रास्ता अपनाना होगा। भविष्य मे भी कृषि म काफी लोगो को रोजगार देना होगा। भारत म पूँजीवादी यन्त्रीकृत खेती उपयुक्त नही होगी। यहाँ भू-जोतो पर सीमा-निर्धारण करना भी आवश्यक है। प्रति हैक्टेयर अधिक श्रमिक खाद पानी आदि देकर गहन खेती करनी होगी। पशु-पालन मछली-उद्योग, बागवानी, रेशम के कीड़े पालना मधुमक्खी-पालन, मुर्गी-पालन आदि कृषि के सहायक कार्य भी विकसित करने होगे। कृषिगत क्षेत्र मे ही लोगों के लिए अधिक रोजगार की सम्भावना देखना भावी आर्थिक विकास की योजना के लिए एक चुनौती के समान है।

डॉ राव ने परिवार नियोजन के द्वारा जन्म-दर घटाकर जनसख्या की वृद्धि को नियन्त्रित करने का भी समर्थन किया है। विकसित देशो मे श्रम-शक्ति का अधिक अश सेवा-क्षेत्रो मे लगा हुआ होता है। उदाहरण के लिए 1980 मे जापान मे 55% श्रमिक सेवा-क्षेत्र मे कार्यरत थे तथा अमेरिका मे इस क्षेत्र मे 66% श्रमिक लगे हुए थे। भारत मे निकट भविष्य मे श्रम को कृषि से विनिर्मित माल बनाने वाले उद्योगो की ओर ले जाने की बजाय निम्न आर्थिक क्रियाओ की ओर ले जाना होगा, जैसे शहरी व्यापार व सेवा, असगठित वर्कशाप, परिवहन, व्यक्तिगत पेशेवर व सामाजिक सेवाएँ, (सेवा-केन्द्र पट्रोल-पम्प, होटल, दर्जी, नाई, धोबी व बढई की दूकानें, टैक्सी की सेवाएँ, लाइब्रेरी) आदि। स्मरण रहे कि ये सभी कार्य तृतीयक क्षेत्र (Tertiary sector) मे आते हैं। अत भारत मे प्राथमिक, द्वितीयक एव तृतीयक सभी क्षेत्रो के अनुसार रोजगार के अवसर बढाने होगे। आनुपातिक दृष्टि से प्राथमिक क्षेत्र की सर्वोपरिता कुछ सीमा तक भले ही कम की जा सके, लेकिन फिलहाल इसमे विकसित देशो की भाँति कोई क्रान्तिकारी व तीव्र परिवर्तन कर सकना सुगम नही है, क्योंकि हमारे यहाँ प्रतिवर्ष श्रम-शक्ति तेजी से बढ रही है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है। के. सुन्दरम् के अनुसार 1990 के दशक मे भारत मे श्रम-शक्ति मे सालाना वृद्धि लगभग 1 करोड होने लग जायेगी जिसके लिए रोजगार की समुचित व्यवस्था करना कठिन हो जायगा।

भारत में जनसंख्या की समस्या का स्वरूप
(Nature of the Population Problem in India)

एक देश में जनसंख्या की समस्या के कई पहलू हो सकते हैं जैसे वहां जनाधिक्य या जनाभाव हो सकता है। कुल जनसंख्या में बच्चों व वृद्धों का प्रतिशत अधिक हो सकता है जिससे थोड़े से कमाने वालों पर आर्थिक भार बढ़ जाता है एवं पुरुषों व स्त्रियों के अनुपात में अन्तर आ सकता है। भारत में आश्रितता का भार काफी ऊँचा है। एक व्यक्ति कमाता है तथा कई व्यक्ति उसकी कमाई पर आश्रित रहते हैं।

1 संख्यात्मक पहलू—लेकिन जब कभी 'जनसंख्या की समस्या' का उल्लेख किया जाता है तो प्राय इसके संख्यात्मक पहलू (Quantitative aspect) पर ही अधिक जोर दिया जाता है। 1971 में भारत की जनसंख्या लगभग 54 8 करोड थी। 1981 की जनगणना के अनुसार यह 68·5 करोड (असम व जम्मू-कश्मीर सहित) आंकी गई है। के सुन्दरम ने इस अंक को नीचा माना है और वास्तविक अंक 1·8 करोड बढ़ाकर 70 3 करोड कर दिया है। यह कहा जाता है कि भारत में जन्मदर ऊँची है और मृत्यु-दर घट रही है जिससे जनसंख्या प्रतिवर्ष लगभग 1·6 करोड व्यक्तियों की रफ्तार से बढ रही है। इससे प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों की उपलब्धि रोजगार के अवसरों रहन-सहन के स्तर, प्रति व्यक्ति आय उपभोग्य वस्तुओं की कीमतों, मकानों की सुविधा, शिक्षा के अवसर चिकित्सा व स्वास्थ्य की सुविधाओं आदि पर काफी विपरीत प्रभाव पडता है। डा आशीष बोस के अनुसार जनसंख्या का तीन बातों से गहरा सम्बन्ध है, यथा, Environment (पर्यावरण), Energy (ऊर्जा) तथा Employment (रोजगार)। भारत में जनसंख्या की समस्या का स्पष्टीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है :

यह तो सर्वविदित है कि हमारे देश में भोजन वस्त्र, मकान, शिक्षा व चिकित्सा आदि की दृष्टि से उपभोग का स्तर बहुत नीचा है। काफी लोग आधे भूखे रहते हैं तथा ये अर्धनग्न अवस्था में जीवन बिताते हैं। गांवों में मकानों की दशा बहुत खराब है। शहरों में गन्दी बस्तियों की समस्या बहुत उग्र रूप धारण किये हुए है। स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या तेजी से बढ रही है। अत वास्तविक रूप में जनसंख्या की समस्या गरीबी की समस्या ही है। जनसंख्या की समस्या का अभिप्राय लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा करना है और इस सम्बन्ध में जनसंख्या पर नियन्त्रण स्थापित किया जाना चाहिए। हम जनसंख्या की दृष्टि से इतनी तेज गति से आगे बढ रहे हैं कि प्रगति व परिवर्तन के बावजूद हम आर्थिक दृष्टि से एक ही जगह पर ठहरे हुए हैं। जनसंख्या की वृद्धि के कारण आर्थिक विकास के लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँच पाते। इस तथ्य को देशवासी जितनी जल्दी व जितनी अच्छी तरह से समझ लें उसी में उनका कल्याण है।

2 गुणात्मक पहलू—बहुधा जनसंख्या के गुणात्मक पहलू (Qualitative aspect) पर भी जोर दिया जाता है और कहा जाता है कि लोग स्वस्थ बुद्धिमान,

सभ्य व सुसंस्कृत बने। सच पूछा जाय तो संख्यात्मक पहलू पर इसलिए जोर दिया जाता है कि जनसंख्या का गुणात्मक पहलू भी सुधारा जा सके। अतः इनमे परस्पर कोई विरोध नहीं है।

क्या भारत मे जनाधिक्य है ? (Is India over-populated ?)

अर्थशास्त्रियों मे प्राय इस विषय पर विवाद पाया जाता है कि भारत म जनाधिक्य है अथवा नहीं। एक वर्ग तो यह मानता है कि भारत मे व्याप्त निर्धनता बेरोजगारी, खाद्यान्नो का अभाव व नीचा जीवन-स्तर आदि को देखते हुए देश मे निश्चित रूप से जनाधिक्य है और इसका मुकाबला देशव्यापी परिवार नियोजन को अपनाकर किया जाना चाहिए। दूसरा वर्ग, जिसमे मुख्यतः साम्यवादी या मार्क्सवादी विचारधारा वाले व्यक्ति शामिल हैं यह मानता है कि समस्या मूलत. कम उत्पादन व असमान वितरण की है, जनाधिक्य की नहीं। इनके अनुसार सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन करके जनसंख्या की समस्या का सन्तोषजनक हल निकाला जा सकता है।

यह तो स्वीकार करना होगा कि भारत म आर्थिक समस्या उत्पादन बढाने तथा वितरण को सुधारने की है। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या 1981 मे 68 52 करोड जनसंख्या अथवा 1989 मे लगभग 82 करोड जनसंख्या आवश्यकता से अधिक मानी जायगी ?

उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि भारत मे निश्चित रूप से जनाधिक्य की स्थिति है। इसके लिए निम्न प्रमाण दिये जा सकते हैं—

1 माल्थस के अनुसार देश मे ऊँची जन्म-दर, ऊँची मृत्यु-दर व प्राकृतिक प्रकोपो का पाया जाना जनाधिक्य की स्थिति को प्रकट करता है। भारत मे पिछले वर्षों मे जन्म-दर कुछ कम हुई है, लेकिन आज भी यह लगभग 33-34 प्रति हजार है जो काफी ऊँची है। इसे निकट भविष्य मे 25 प्रति हजार तक लाने मे काफी प्रयास करना होगा। इसी प्रकार हमारे देश मे मृत्यु-दर अन्य विकसित देशो की तुलना मे कुछ ऊँची है। भारत मे अकाल, बीमारी, बाढ व अन्य प्राकृतिक प्रकोपो से भी जान-माल की काफी हानि होती रहती है। आजकल दुर्घटनाओ सगठित हिंसा, एव कानून व व्यवस्था की बिगडती स्थिति के कारण भी अखबारो मे लोगो के मरने की रिपोर्ट काफी बढ रही है। ऐसा प्रतीत होने लगा है कि भारत मे जनसंख्या की *प्रबन्ध-व्यवस्था (management of population) गडबडा गई है। अत माल्थस* के सिद्धान्त के अनुसार भारत व चीन जैसे देशो मे जनाधिक्य की स्थिति निस्सदेह विद्यमान है।

2. भारतवासियो का जीवन-स्तर नीचा है—भारत की प्रति व्यक्ति GNP (सकल राष्ट्रीय उत्पत्ति) 1986 मे 290 डालर थी, जबकि सयुक्त राज्य अमेरिका मे यह 17,480 डालर थी। इस प्रकार आय का यह भारी अन्तर भारत मे निम्न जीवन-स्तर का सूचक है।

नारी मात्रा मे ग्रायात करना पडा है ताकि देश मे इनके मूल्यो को स्थिर रखा जा सके तथा इनकी उपलब्धि ग्रधिक नियमित की जा सके ।

4. बेरोजगारी की दशा—भारत मे बेरोजगारी तथा ग्रल्प-रोजगार की दशा जनाधिक्य का ज्वलन्त प्रमाण है । योजनाग्रो मे रोजगार बढा है, लेकिन साथ म वरोजगारी भी बढी है । राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे के 38 वें दौरे के ग्राधार पर मार्च, 198› मे (सामान्य स्टेट्स या स्थिति के ग्रनुसार) 5 वर्ष व ग्रधिक ग्रायु-समूह मे बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या 92 लाख पायी गयी है । सामान्य स्टेट्स (Usual status) मे काम की स्थिति 365 दिन की ग्रवधि के लिये देखी जाती है, ग्रर्थात् इसमे स्थायी रूप से या वर्ष भर बेरोजगार रहने वालों की सख्या ग्राती है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारत मे वर्तमान समय म जनाधिक्य की स्थिति विद्यमान है । लेकिन इसका समाधान केवल जनसख्या पर नियन्त्रण स्थापित करना ही नहीं है, वल्कि देश का ग्रार्थिक विकास करना भी है, जिसके लिए देश में काफी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं । ग्रत हमे दोनो पक्षो पर एक साथ प्रभावपूर्ण तरीके से काम करना चाहिए ।

ग्रब हम भारत म परिवार-नियोजन तथा जनसख्या-नीति के विभिन्न पहलुग्रो पर प्रकाश डालेंगे ।

भारत में परिवार-नियोजन
(Family Planning in India)

पिछले कई वर्षों से परिवार नियोजन काफी चर्चा का विषय रहा है । यह जनसख्या को नियन्त्रित करने का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम माना जाता है । हाल के वर्षों मे परिवार नियोजन के सदेश मे एक परिवार मे बच्चो की जनसख्या को दो तक सीमित करने पर बल दिया जाने लगा है । सम्भव है हमे भी चीन को भाति 'एक बच्चे" (*one child*) के नारे पर शीघ्र ही ग्राना पडे ।

ग्राजकल एक स्त्री के दो से ज्यादा सन्तान होना 'ग्रविवेकपूर्ण मातृत्व" (Improvident maternity) का सूचक माना जाता है । इसका ग्रर्थ यह है कि माता-पिता ग्रपनी सन्तान व परिवार के सदस्यो के सम्बन्ध मे ग्रावश्यक समझदारी से काम नही ले रहे हैं । परिवार-नियोजन मे दो बातें होती हैं—(1) एक दम्पत्ति के परिवार को दो बच्चो तक सीमित करना, तथा (2) दो बच्चो के सन्तानोत्पत्ति काल के बीच मे पर्याप्त फासला रखना (Proper spacing) । जैसा कि ऊपर कहा गया है ग्राजकल परिवार नियोजन मे 'केवल दो' पर बल दिया जाने लगा है । इसलिए "हम दो हमारे दो" तथा 'पहला बच्चा ग्रभी नहीं, दूसरा बच्चा जल्दी नहीं, तीसरा बच्चा कभी नहीं," "दो मे शान्ति, तीन मे क्रान्ति" ग्रादि नारे सुनने को मिलते हैं ।

हमारे देश मे भी परिवार-नियोजन के प्रबल व कट्टर समर्थक "प्रत्येक सम्पत्ति के केवल एक सन्तान" की चर्चा करने लगे हैं, हालांकि इसके प्रचार मे अभी पर्याप्त तेजी नही आ पाई है। इस प्रकार परिवार-नियोजन एक परिवार मे सदस्यो की सख्या को इस प्रकार से सीमित करता है कि वह परिवार आर्थिक व शारीरिक दृष्टि से सुखी रह सके।

1938 मे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए भारत में परिवार-नियोजन कार्यक्रम अपनाये जाने का समर्थन किया था। भोर समिति ने अपनी 1946 की रिपोर्ट मे जन्म-दर को नियन्त्रित करने के लिए परिवार-नियोजन की आवश्यकता स्वीकार की थी। लेकिन उन्होने सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनो का समर्थन नही किया था। भारत के सभी प्रधानमन्त्रियो ने अपने भाषणो मे परिवार-नियोजन की आवश्यकता पर सदैव जोर दिया है। आजकल राजनीतिज्ञ परिवार-नियोजन मे स्वेच्छा' की भावना पर अधिक जोर देने लगे है। 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे भी परिवार-नियोजन पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाधी ने भी जनसख्या की वृद्धि को भारत की प्रमुख समस्या माना है तथा देश के आर्थिक विकास के लिए परिवार-नियोजन कार्यक्रम को सर्वोच्च स्थान दिया है।

इस प्रकार भारत मे स्वय सरकार ने परिवार-नियोजन आन्दोलन मे रुचि ली है और इसका सामाजिक अथवा धार्मिक सस्थाओ द्वारा विरोध नही हुआ है। विश्व मे अन्यत्र यह एक व्यक्तिगत कार्य माना गया है, लेकिन भारत मे यह एक सामूहिक व राष्ट्रीय जन-आन्दोलन के रूप मे चलाया गया है।

भारत मे परिवार-नियोजन की आवश्यकता के सम्बन्ध म तो कोइ दो मत नही हैं लेकिन साधनो के सम्बन्ध मे अवश्य मतभेद पाये जाते हैं। कुछ लोग आत्म-सयम पर अधिक बल देते हैं और सतति निग्रह के कृत्रिम साधनो के उपयोग को अनैतिक अथवा अनावश्यक मानते हैं। हम यहाँ इस सम्बन्ध म किसी प्रकार के विवाद मे न पडकर इतना ही कहना चाहेंगे कि इस विषय मे कोरा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण अपनाना हितकर नही होगा। प्रमुख आवश्यकता जन्म-दर कम करने की है। इसके लिए सयम देर से शादी सतति-निग्रह के कृत्रिम साधन आदि सभी को व्यक्तिगत पसन्द के अनुसार अपनाया जा सकता है। कृत्रिम साधनों म रासायनिक (Chemical) यान्त्रिक (Mechanical) एव जैविक (Biological) सभी विधियो का प्रयोग किया जा सकता है। स्त्रियो के लिए सन्तानोत्पत्ति बन्द करन का ऑपरेशन (tubectomy) (आजकल दूरबीन से नसबन्दी) एव पुरुषो के लिए नसबन्दी आपरेशन (vasectomy) भी परिवार-नियोजन के प्रभावपूर्ण उपाय हैं। डाक्टर की सलाह पर खाने की गर्भ-निरोधक गोलियो माला-डी तथा माला एन का भी प्रचलन हो गया है। व्यक्तिगत रुचि, उपलब्ध साधन व व्यक्तिगत परिस्थिति के

आधार पर परिवार-नियोजन की पद्धति का चुनाव किया जाना चाहिए। अतः इस सम्बन्ध मे व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना ज्यादा उपयोगी होगा। 1965 मे स्त्रियो के लिए 'लूप* का प्रयोग निकाला गया था। पिछले वर्षों मे गर्भपात (Abortion) को भी कानूनी मान्यता दे दी गई है। इस सम्बन्ध मे भी पहले काफी विवाद रहा था, लेकिन कुछ परिस्थितियो मे अनचाही सन्तान को रोकना ज्यादा आवश्यक समझा गया है। भारत के लिए निरोध के रूप मे सस्ते, सुगम और सुरक्षित साधन की नितान्त आवश्यकता है जिसका प्रयोग विशाल जन-समुदाय द्वारा किया जा सके और देश मे जन्म दर कम की जा सके। इस दिशा मे काफी प्रगति हुई है।

पचवर्षीय योजनाओ में परिवार-नियोजन

1 **व्यय की राशियां**—प्रत्येक योजना मे परिवार-नियोजन पर व्यय हेतु राशि निर्धारित की जाती रही है जिसका उपयोग सेवाओ, साधनो की सप्लाई, शिक्षा, प्रशिक्षण व अनुसधान आदि पर किया जाता है। विभिन्न योजनाओ के अन्तर्गत परिवार नियोजन पर वास्तविक व्यय की राशिया इस प्रकार रही है[1]—

	(करोड रुपयो मे)
प्रथम योजना	0·14
द्वितीय योजना	2·16
तृतीय योजना	24·9
तीन वार्षिक योजनायें (1966–69)	70·4
चतुर्थ योजना	278·0
पचम योजना (1974–79)	491·8
1979–80	118·5
छठी योजना	1448
सातवी पचवर्षीय योजना, 1985–90 (प्रस्तावित)····	3256·3

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रथम योजना मे परिवार नियोजन पर केवल 14 लाख रुपये और द्वितीय योजना मे 2·16 करोड रुपये व्यय किये गये थे। सरकार ने तृतीय योजना से परिवार नियोजन कार्यक्रम को अधिक गम्भीरता से लागू करना प्रारम्भ किया था। पाचवी योजना की अवधि मे परिवार-नियोजन पर 492 करोड रु. व्यय हुए। सातवी योजना मे परिवार-कल्याण-कार्यक्रम पर व्यय हेतु 3256 3 करोड रु की राशि निर्धारित की गई है।

---

*. Intra-uterine contraceptive device (IUCD)

1. Economic Survey 1988–89, p. S-40. (तृतीय योजना से 1979-80 तक के वास्तविक व्यय के लिए)

2. 'लूप की प्रगति'—तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष मे इण्डियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च ने 'लूप' के व्यापक प्रयोग का समर्थन किया था। कानपुर मे लूप बनाने का कारखाना चालू किया गया। जनवरी 1965 से मार्च 1981 तक कुल लगभग 88 लाख लूप लगाये गये। 1975-76 व 1976-77 मे लूप की प्रगति काफी तेज रही थी।

3 बन्ध्यकरण अथवा नसबन्दी की प्रगति—1956 से मार्च 1981 तक वन्ध्यकरण या नसबन्दी के कुल मामले 3 34 करोड आके गये हैं। 1976-77 मे 82 6 लाख व्यक्तियो की नसबन्दी की गई जो अपने आप मे एक रिकार्ड था। बाद मे नसबन्दी की प्रगति धीमी रही, क्योकि सरकार ने आपातकाल जैसी सख्ती नही बरती। लूप की तुलना मे वन्ध्यकरण के आपरेशन ज्यादा सफल हुए हैं।

पिछले वर्षों मे वन्ध्यकरण पर औसत व्यय बढ गया है, क्योकि राज्यो म भवन निर्माण व गाडियो की सप्लाई वगैरा पर व्यय वढा है। लेकिन इनकी तुलना म नसवन्दी, लूप आदि कार्यक्रम अपनाने की दृष्टि से सफलता कम हो गयी है। अत भविष्य में सक्रिय कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान देना होगा। त्रिवेन्द्रम म सार्वजनिक क्षेत्र मे निरोध (Condoms) बनाने का कारखाना स्थापित किया गया है। निरोध की प्राथमिक बिक्री (Primary Sale) कार्यक्रम के चालू होने के बाद से 120 मिलियन इकाई तक पहुँच गई है। यह जनसख्या की समस्या के हल का अधिक उपयुक्त व व्यावहारिक साधन माना गया है। भारत म प्रतिवर्ष औसत रूप से 30 लाख नवदम्पत्ति सन्तानोत्पत्ति के आयु-समूह मे प्रवश करते हैं। इस समूह म इसका उपयाग बढाया जा सकता है।

भारत मे परिवार-नियोजन कार्यक्रम को तेजी से लागू करने के लिए कुछ सगठनात्मक परिवर्तन भी किये गये हैं। **स्वास्थ्य मन्त्रालय को स्वास्थ्य व परिवार नियोजन मन्त्रालय का नाम दिया गया है।** बाद म यह स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मन्त्रालय म परिवर्तित कर दिया गया है। पूर्ण समन्वीकृत परिवार नियोजन व मातृत्व एव शिशु स्वास्थ्य सेवायें उपलब्ध करने के लिए सरकार आधारभूत ढाचा (Infrastructure) तैयार करने मे प्रयत्नशील रही है। इन प्रयासो मे काफी सफलता भी मिली है, लेकिन कुछ कमिया भी रही हैं।

छठी पचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन के लक्ष्य व उपलब्धिया

छठी योजना, 1980-85 में परिवार नियोजन पर व्यय हेतु 1010 करोड रु की राशि निर्धारित की गई थी। NRR को 1996 तक 1 करने का दीर्घकालीन लक्ष्य स्वीकार किया गया था। परिवार-नियोजन के विभिन्न कार्यक्रमों के लक्ष्य व वास्तविक उपलब्धियाँ अग्र तालिका मे दिये गये हैं—

छठी योजना मे परिवार-नियोजन कार्यक्रमो के लक्ष्य व उपलब्धिया[1]

कार्यक्रम	1984-85 तक लक्ष्य	उपलब्धि
(1) वन्ध्यकरण या नसबन्दी (sterilisation)	24 मिलियन	17 मिलियन से कुछ अधिक
(2) लूप (IUD)	7·9 मिलियन	7 मिलियन
(3) निरोध-प्रयोगकर्त्ता (CC-users)	11 मिलियन (1984-85 मे)	9 31 मिलियन
(4) प्रभावपूर्ण दम्पत्ति सुरक्षा-दर[2] (कुल दम्पत्तियो का वह अनुपात जो परिवार-नियोजन अपना रहा होता है)	36·6%	32% (मार्च 1985 मे)

छठी योजना में परिवार-नियोजन की उपलब्धियों की समीक्षा

छठी योजना मे परिवार-नियोजन की उपलब्धियो से निम्न परिणाम निकाले जा सकते हैं—

(1) उपलब्धियां लक्ष्यो से कम रही है, विशेषतया नसबन्दी कार्यक्रम के अन्तर्गत। लूप लगाने व निरोध-प्रयोगकर्त्ताओ के सम्बन्ध मे 80% व अधिक लक्ष्य प्राप्त किये जा सके है।

(2) परिवार-नियोजन अपनाने वाले दम्पत्तियो का अनुपात मार्च 1985 म 32% हो गया था, जो लक्ष्य (36·6%) से नीचा रहते हुए भी पहले के 22% की तुलना मे 10% बिन्दु अधिक था।

(3) दम्पत्ति-सुरक्षा की दर छठी योजना के प्रथम दो वर्षों मे 0·5% व 1% बढी, लेकिन अन्तिम तीन वर्षो मे 2·5% वार्षिक दर से बढी।

---

1 Seventh Five Year Plan, 1985-90, Vol. II, pp. 279-282.

2. Effective Couple Protection Rate. (ECPR)

(4) छठी योजना के अन्तिम वर्ष मे उत्तर प्रदेश, बिहार व राजस्थान मे परिवार-नियोजन अपनाने वाले दम्पत्तियो का अश 20% से नीचा रहा, जबकि राष्ट्रीय औसत 32% हो गया। मध्य प्रदेश व पश्चिमी बगाल मे यह 29% रहा। अत. भविष्य मे प्रभावपूर्ण दम्पत्ति-सुरक्षा-दर को घटाने के लिए इन पाँच राज्यो मे अधिक प्रयास किया जाना चाहिए।

छठी योजना मे उपलब्धियो मे कमी के लिए निम्न कारण उत्तरदायी रहे हैं—

(i) आधारभूत सुविधाओ की कमी, (ii) लक्ष्यो का अपेक्षाकृत ऊँचा निर्धारित किया जाना (iii) उपलब्ध साधनो का अनुकूलतम से कम उपयोग किया जाना, (iv) राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रतिबन्ध, (v) शिशु मृत्यु-दर, जो सत्तर के दशक मे 125 प्रति हजार के समीप थी वह 1980 मे 114 पर आ गई। लेकिन यह अब भी काफी ऊँची है जिससे दम्पत्तियो को अपने बच्चो के जीवित रहने के सम्बन्ध मे पूरा भरोसा नही होता और वे परिवार-नियोजन के लिए आवश्यक उत्साह नहीं दिखाते।

(vi) अन्य देशो की तुलना मे माताओ व बच्चो की मृत्यु-दरें काफी ऊँची पायी जाती है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना, 1985-90 में परिवार कल्याण कार्यक्रम के लक्ष्य

सातवी योजना मे परिवार-कल्याण-कार्यक्रम पर व्यय-हेतु 3256·3 करोड रुपये निर्धारित किये गये हैं। 1990 के लिए प्रभावपूर्ण दम्पत्ति सुरक्षा-दर (परिवार नियोजन काम मे लेने वाले दम्पत्तियो का अनुपात) 42% करने का लक्ष्य रखा गया है। जन्म-दर 29·1 प्रति हजार मृत्यु-दर 10·4 प्रति हजार एव शिशु मृत्यु-दर 90 प्रति हजार प्राप्त करने क लक्ष्य रखे गये हैं। अन्य लक्ष्य इस प्रकार है—

	1989–90 तक
(1) नसबन्दी या बन्ध्यकरण	31 मिलियन
(2) लूप लगाना	21 25 मिलियन
(3) निरोध-उपयोगकर्त्ता-सख्या	14 5 मिलियन (1989-90 मे)

सातवी योजना मे उपर्युक्त लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए निम्न कार्यों व पहलुओ पर जोर दिया जायगा।

(1) प्रोग्राम के आधारभूत ढाचे को अधिक प्रभावशाली बनाया जायगा।

(2) राज्यो को विभिन्न कार्यक्रमो मे आवश्यक फेर-बदल करने की इजाजत दी जायगी।

(3) अपेक्षाकृत युवा-आयु समूह के दम्पत्तियो मे दो सन्तानो के बीच दूरी रखने पर अधिक जोर दिया जायगा।

(4) सूचना, शिक्षा व संचार का उपयोग करके लड़कियों के जन्म के विपक्ष में फैली धारणा को हटाने पर जोर दिया जायगा।

(5) शादी की न्यूनतम आयु का कानून लागू किया जायगा।

(6) उन राज्यों पर अधिक ध्यान दिया जायगा जहां प्रभावपूर्ण दम्पत्ति सुरक्षा दर नीची पायी जाती है। इस सम्बन्ध मे शहरी गन्दी बस्तियों, पहाड़ी व पिछड़े क्षेत्रों व ग्रामीण निर्धन-वर्ग पर ज्यादा ध्यान दिया जायगा।

(7) 10 लाख से ऊपर जनसंख्या वाले नगरों के लिए विशेष कार्यक्रम चलाये जायेंगे ताकि अधिक दम्पति परिवार-नियोजन अपनाने लगें।

(8) ऐच्छिक संगठनों से अधिक योगदान लिया जायगा।

(9) स्त्रियों व युवा-वर्ग का अधिक सहयोग लिया जायगा। ग्रामीण स्वास्थ्य समितियों व महिला मण्डलों के माध्यम से परिवार नियोजन कार्यक्रमों को जन-आन्दोलन में बदलने का प्रयास किया जायगा।

(10) जिन राज्यों ने अभी तक परिवार-कल्याण कार्यक्रमों के बारे में प्रस्ताव पास नहीं किये हैं उन्हें ऐसे प्रस्ताव पास करने के लिए प्रोत्साहित किया जायगा।

आशा है सातवीं योजना के अन्तिम वर्ष में परिवार-नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्धारित विभिन्न लक्ष्य प्राप्त किये जा सकेंगे जिनके फलस्वरूप जन्म-दर लगभग 29 प्रति हजार हो सकेगी।

भारत के लिए राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का प्रश्न
(The Problem of National Population Policy for India)

भारत में आर्थिक विकास के सन्दर्भ में सदैव जनसंख्या नीति (Population Policy) पर ध्यान केन्द्रित किया गया है और पंचवर्षीय योजनाओं में परिवार नियोजन के लिए धनराशि निश्चित की जाती रही है। लेकिन जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि की दर को कम करने की आवश्यकता निरन्तर बनी रही। तत्कालीन केन्द्रीय स्वास्थ्य व परिवार-नियोजन मन्त्री डॉ. करनसिंह (हाल में अमेरिका में भारत के राजदूत) ने 16 अप्रैल, 1976 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति प्रस्तुत की थी जिसकी मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं—

1976 की जनसंख्या नीति—

जैसा कि पहले बताया जा चुका है भारत में विश्व के भू-क्षेत्र का 2·4% अंश है और यहां विश्व की जनसंख्या का लगभग 15% भाग निवास करता है। भारत में प्रति वर्ष जनसंख्या की वृद्धि आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या के बराबर होती है जो हमारे देश से $2\frac{1}{2}$ गुना बड़ा है। यदि जनसंख्या की वर्तमान वृद्धि-दर को कम नहीं किया गया तो यह इस शताब्दी के अन्त तक एक अरब हो जायेगी। जनसंख्या

का यह विस्फोट हमारे आर्थिक विकास की सफलताओं को मिटा सकता है। इसलिए निर्धनता व बीमारी को मिटाने के लिए राष्ट्रीय जनसख्या-नीति पर पुनः ध्यान केन्द्रित किया गया है।

भारत के लिए शिक्षा व आर्थिक विकास के द्वारा जन्म-दर की गिरावट के लिए प्रतीक्षा करना व्यावहारिक नही माना गया है। इसलिए निम्न राष्ट्रीय जनसख्या नीति अपनाने पर जोर दिया गया है—

1 **शादी की उम्र का निर्धारण**—यह निश्चित किया गया कि लडकियो की शादी की न्यूनतम उम्र बढाकर 18 वर्ष तथा लडकों की 21 वर्ष कर दी जाए। इसके लिए कानून भी आवश्यक माना गया। शादियो के अनिवार्य पजीकरण पर बल दिया गया है।

2 **लोकसभा व राज्यों की विधानसभाओं मे प्रतिनिधित्व 1971 की जनगणना के आधार पर 2001 तक स्थिर करने पर जोर दिया गया।** इसका आशय यह है कि 1981 व 1991 की जनगणना के परिणाम लोकसभा व विधानसभाओं की सीटो के सयोजन व सशोधन मे नही गिने जायेगे। इसके लिए सविधान मे सशोधन करना आवश्यक माना गया।

3. केन्द्र के द्वारा राज्यो की योजनाओं मे जो सहायता जनसख्या को आधार मानकर निश्चित की जाती है तथा कर, शुल्क व अनुदान सहायता का केन्द्र से राज्यों की ओर जो हस्तान्तरण जनसख्या के आधार पर किया जाता है, वह 1971 की जनसख्या के आकडों के आधार पर 2001 तक जारी रखने पर जोर दिया गया।

जनसख्या-नीति मे यह कहा गया कि राज्यो की योजनाओ मे केन्द्रीय सहायता का 8 प्रतिशत अश परिवार-नियोजन की उपलब्धि के आधार पर निश्चित किया जायेगा। इसका विस्तृत ब्योरा योजना आयोग तैयार करेगा।

4. **स्त्री-शिक्षा मे सुधार किया जायेगा**—मिडिल स्तर से आगे व पिछडे क्षेत्रो मे युवतियो के लिए अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करने की योजनाएं चालू की जायेगी। बाल-पोषण कार्यक्रम पर अधिक ध्यान दिया जायेगा। राज्य सरकारो को इन दोनो कार्यक्रमो पर विशेष रूप से बल देना होगा।

शिक्षा-प्रणाली म जनसख्या सम्बन्धी मूल्यो (Population values) तथा जनसख्या जैसे विषय का समावेश कराने के लिए पाठ्य-पुस्तको का निर्माण किया जायगा। यह आवश्यक है कि युवा-पीढी जनसख्या की समस्या के प्रति जागरूक होकर आगे बढे और इस सम्बन्ध मे राष्ट्रीय जिम्मेदारी की भावना सुदृढ हो। इस सम्बन्ध मे डॉ. करणसिंह ने, निश्चयपूर्वक कहा था कि "युवा-पीढी पर परिवार-नियोजन के लिए जोर देना ज्यादा उचित है, बनिस्बत उन लोगो के जो जनसख्या के क्षेत्र मे पहले ही अपना योगदान दे चुके हैं।

5. छोटे परिवार को अपनाने का कार्य एक मन्त्रालय की जिम्मेदारी न मानकर विभिन्न मन्त्रालयों व राज्यों पर डाला जायेगा ताकि नागरिक स्वयं में जिम्मेदार की भावना विकसित कर सकें। यह कहा गया कि राज्यों को परिवार-नियोजन की उपलब्धि की सूचना ज्यादा व्यवस्थित रूप में देनी होगी और केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल वर्ष म कम से कम एक बार स्थिति की गहराई से समीक्षा करेगा।

6 वन्ध्यकरण या नसबन्दी (Sterilisation) (पुरुषों व स्त्रियों दोनों के लिए) कराने के लिए मौद्रिक भुगतान की राशि दो या कम जीवित बच्चों की स्थिति म 150 रुपया तीन जीवित बच्चो पर 100 रुपया तथा चार या अधिक बच्चों की स्थिति म 70 रुपया कर दी गयी। भूतकाल का अनुभव यह रहा कि निर्धन परिवारों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह सुविधा 1 मई, 1976 से लागू की गयी। वन्ध्यकरण की सुविधा का तेजी म ग्रामीण क्षेत्रों म बढ़ाने पर जोर दिया गया।

7 समुदाय आधारित प्रेरणाएं (Group incentives) बढ़ाना आवश्यक माना गया ताकि चिकित्सक जिला व पंचायत समितियां, ग्रामीण स्तर पर अध्यापक, सहकारी समितियां व सगठित क्षेत्रों के श्रमिक अधिक मात्रा मे परिवार नियोजन को लोकप्रिय बनाने मे मदद दे सकें। ऐच्छिक सगठनों का सहयोग प्राप्त करने पर भी बल दिया गया। इसके लिए उन्हें सहायता देने की बात भी कही गई।

8 सरकार द्वारा स्थानीय संस्थाओं व पंजीकृत ऐच्छिक सगठनों को परिवार नियोजन कार्यों के लिए धनराशि देने पर **आयकर-निर्धारण मे पूरी रिबेट देने का निश्चय किया गया।** अनुसंधान कार्यों को उचित प्रोत्साहन देने की घोषणा की गई।

9. अनिवार्य वन्ध्यकरण के लिए आवश्यक प्रशासनिक व अन्य तैयारियों का अभाव रहा। अत. इस सम्बन्ध में कोई केन्द्रीय कानून लाने का समर्थन नहीं किया गया। लेकिन यदि कोई राज्य इसके लिए तैयार हो तो वह आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। उसे यह कार्यक्रम तीन बच्चों से अधिक वाले दम्पत्तियों पर जाति, धर्म व समुदाय का भेदभाव किये बिना सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू करना होगा।

10 कुछ राज्य परिवार नियोजन स्वीकार करने वालों को मकान व ऋण आदि देने में प्राथमिकता देते हैं। यह मामला वैयक्तिक राज्यों पर ही छोड़ा गया है। केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को 'छोटा परिवार' अपनाने के लिए प्रेरित करने हेतु उनके सेवा/आचरण नियमों मे आवश्यक परिवर्तन करने पर भी जोर दिया गया।

स्थानों में तो लोगों के खेतों व पहाड़ों में छिप जाने तक की घटनाएं भी सुनने को मिली, हालांकि इन सूचनाओं को प्राय: बढ़ा-चढ़ा कर भी प्रस्तुत किया गया था।

5. नसबन्दी के लक्ष्य को पूरा करने के 'नशे' में अधिक उम्र के व्यक्तियों की नसबन्दी, कम उम्र के व्यक्तियों की नसबन्दी व दुबारा नसबन्दी के मामले भी सामने आये इससे वाछित लक्ष्य पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा।

6 आवश्यक साधनों की उपलब्धि पर विचार किए बिना ही कुछ स्थानों पर नसबन्दी का कार्यक्रम अत्यधिक व अवांछित तेजी से चलाया गया जिससे लोगों के स्वास्थ्य को क्षति पहुँची और वे बहुत भयभीत हो गए।

उपर्युक्त चर्चा के मुख्य निष्कर्ष श्री डी बनर्जी के लेख (EPW, वार्षिक अंक, फरवरी 1977) में विस्तार से दिये हुए हैं। स्वाभाविक है कि लोकतान्त्रिक परम्परा वाले देश में ऐसे कदमों के प्रति जनता में रोष फैले। मार्च, 1977 में लोक सभा के चुनाव हुए और विरोधी दल ने इसे चुनाव-प्रचार में अपने पक्ष में एक मुद्दा बनाया और उसे काफी राजनीतिक लाभ भी मिला एवं केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार बनी।

जनता सरकार का परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति दृष्टिकोण

जून 1977 में जनता सरकार ने परिवार-कल्याण कार्यक्रम के बारे में अपना नीति सम्बन्धी कथन प्रस्तुत किया जिसमें निम्न बातें शामिल की गई शादी की आयु में वृद्धि, स्त्रियों के शैक्षणिक स्तर में सुधार, जननदर नियन्त्रण के पक्ष में मनोदशा व लघु परिवार के नॉर्म का फैलाव, कार्यक्रम में ऐच्छिक महिला व युवा-संगठनों, मजदूर संघों, पंचायतों, सहकारिताओं आदि को शामिल करना, सन्तति-निग्रह के सभी उपायों को यथोचित प्रोत्साहन देना, केन्द्र व राज्यों में सभी मन्त्रालयों/विभागों द्वारा कार्यक्रमों को महत्व देना तथा इसके लिए कार्य करना आदि। जनसंख्या-नीति सम्बन्धी कथन की अन्य बातें इस प्रकार थी - (i) ऐच्छिक बन्ध्यकरण के लिए नकद भुगतान की व्यवस्था जारी रखना, (ii) राज्यों की योजनाओं के लिए 8% केन्द्रीय सहायता परिवार-कल्याण की सफलता से जोड़ना, (iii) राज्यों में केन्द्रीय साधनों का बँटवारा 2001 तक 1971 की जनगणना के आधार पर करना, (iv) परिवार-कल्याण के लिए दिये गये चन्दों को आयकर से पूर्णतया मुक्त रखना, (v) परिवार कल्याण कार्यक्रम के लिए नि:शुल्क सेवाएँ उपलब्ध करना।

मुख्य बातों का स्पष्टीकरण नीचे दिया जाता है—

परिवार कल्याण पर बल—परिवार नियोजन कार्यक्रम को संकीर्ण दायरे से निकालकर 'परिवार-कल्याण' की ओर मोड़ने पर बल दिया गया। अत: कार्यक्रम के लिए 'परिवार-नियोजन के स्थान पर 'परिवार-कल्याण' नाम रखा गया। परिवार-कल्याण के क्षेत्र से अनिवार्यता का तत्व सदा के लिए समाप्त कर दिया

गया। कहा गया कि ऐच्छिक व शैक्षणिक दृष्टिकोण के जरिए परिवार-नियोजन के प्रचार में कोई कमी नहीं रखी जायगी।

गर्भ-निरोध की सभी विधियों पर समान बल—गर्भ-निरोध की सभी विधियों पर समान बल दिया गया। यह कहा गया कि प्रत्येक परिवार अपनी पसन्द की विधि स्वयं चुनेगा। केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, स्थानीय संस्थाओं आदि के कर्मचारी लघु परिवार के आदर्श को अपना कर दूसरों के सामने दृष्टांत प्रस्तुत करेंगे।

मौद्रिक भुगतान की व्यवस्था जारी रखी गई—परिवार-नियोजन व परिवार कल्याण को अपनाने के लिए मौद्रिक भुगतान देने की व्यवस्था जारी रखी गई और अन्य सेवाएँ भी निःशुल्क प्रदान करना जारी रखा गया।

'कैम्प दृष्टिकोण' की जगह पुनः विस्तार दृष्टिकोण—यह स्पष्ट किया गया कि केन्द्रीय व राज्य सरकारें प्रचार के लिए विस्तार दृष्टिकोण (Extension approach) अपनायेंगी ताकि लोगों को समझाकर स्वेच्छा से लघु परिवार के लिए तैयार किया जा सके। जनता सरकार ने पूर्व राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के कुछ पहलुओं को स्वीकार किया था जैसे परिवार कल्याण के लिए दान देने पर आय-कर में रियायत, सभी मन्त्रालयों का सहयोग आदि।

ध्यान से देखने पर प्रतीत होता है कि जनता सरकार के परिवार-कल्याण कार्यक्रम में अधिकांश बातें वही थीं जो राष्ट्रीय जनसंख्या नीति तथा चौथी व पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूपों में दी गई थीं। लेकिन जनता सरकार ने स्वेच्छा की भावना पर अधिक जोर दिया और उसके कार्यकाल में परिवार नियोजन कार्यक्रम की उपलब्धियां नीची रहीं।

भारत के लिए एक विवेकपूर्ण व व्यावहारिक जनसंख्या-नीति
(A Rational and Pragmatic Population Policy for India)

हम पहले बतला चुके हैं कि भारत में आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए जनसंख्या पर नियन्त्रण करना बहुत आवश्यक है। तदर्थ हमको आर्थिक योजनाओं के अन्तर्गत आर्थिक साधनों के उपयोग, आर्थिक विकास की दर और जनसंख्या की वृद्धि की दर में आवश्यक तालमेल बैठाना होगा। भारत को एक विवेकपूर्ण, प्रभावशाली व्यावहारिक तथा सामयिक जनसंख्या-नीति की नितान्त आवश्यकता है। इसके प्रमुख तत्व नीचे दिये जाते हैं :—

1 जन्म दर कम करना—हमें हर सम्भव उपाय अपना कर जन्म-दर कम करनी चाहिए। पहले कहा जा चुका है कि आज भारत 'जनसंख्या-विस्फोट' (Population explosion) की अवस्था से गुजर रहा है। देश में बच्चों की बाढ़-सी आ रही है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में स्वास्थ्य सुधार व चिकित्सा

की सुविधाएँ बढ़ने से मृत्यु-दर गिरी है और लगातार गिरती जा रही है। लेकिन देश में सामाजिक दृष्टिकोण व सामाजिक आदतें न बदलने से जन्म-दर पर्याप्त रूप से नहीं गिरी है। योजना के प्रथम वर्षों में परिवार-नियोजन पर थोड़े से व्यय की व्यवस्था करना इस बात का द्योतक है कि हमारे योजनाधिकारी भी स्थिति की गम्भीरता से पूर्णतया परिचित नहीं थे। लेकिन 1961 से 1981 तक की तीन जनगणनाओं ने हमारी आंखें खोल दी। जनसंख्या पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए व्यापक व गहन कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता है। लोगों को शिक्षित करना होगा और उन्हें परिवार-नियोजन का महत्व समझना होगा। हमें ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार-नियोजन के लिए अधिक सफल विधि तलाश करनी होगी। इसके लिए आवश्यक अनुसन्धान जारी है और बर्थ कन्ट्रोल के लिए 'गोलियाँ' (pill) (माला-डी तथा माला-एन) का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया है। लेकिन अभी तक यह प्रयोगशाला में ही है। अतः नसबन्दी (पुरुष व स्त्री में से किसी एक के लिए) के ऑपरेशन करने पर अधिक बल देना होगा। गर्भ-निरोधक के अन्य उपायों का भी प्रचार बढ़ाना होगा।

सरकार ने वर्ष 2000 तक 60 प्रतिशत दम्पत्तियों को प्रभावपूर्ण ढंग से सुरक्षित ग्रुप (Couples effectively protected) में लाने का लक्ष्य रखा है ताकि जनसंख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सके। यह कार्य असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इतने दम्पत्तियों द्वारा गर्भ-निरोध के उपाय अपनाने से जन्म-दर में अवश्य कमी होगी।

2 परिवार-नियोजन व परिवार कल्याण में आवश्यक तालमेल—विस्तृत शिक्षा व जनता में आवश्यक प्रचार के जरिये परिवार-नियोजन के प्रति व्यापक जागरूकता तो उत्पन्न हो गयी है, लेकिन आज भी जागरूकता व व्यावहारिक प्रयोग के बीच की खाई को पाटने के लिए एक नई दिशा की आवश्यकता है। परिवार-नियोजन की आवश्यकता 'जनसंख्या के विस्फोट' की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि व्यक्ति को सहायता देने वाले कार्यक्रम के रूप में भी प्रस्तुत की जानी चाहिए। परिवार-नियोजन का सम्बन्ध बच्चों के स्वास्थ्य व शिक्षा एवं स्त्रियों के लिए उचित पोषण व उनकी ज्यादा अच्छी देखभाल के साथ किया जाना चाहिए। यह सन्देश पंचायती राज संस्थाओं समाज कल्याण संस्थाओं एवं महिला-मण्डलों, मजदूर-संघों आदि ऐच्छिक संस्थाओं के माध्यम से दूर-दूर तक फैलाया जाना चाहिए। जनसंख्या की वृद्धि व नियन्त्रण सम्बन्धी विषय स्कूल-स्तर के पाठ्यक्रमों में शामिल किये जाने चाहिएँ।

भारत में प्रतिवर्ष औसतन 10 करोड़ प्रजननशील दम्पत्तियों के 2·2 करोड़ बच्चे होते हैं। इनमें से 1·3 करोड़ प्रथम, द्वितीय व तृतीय क्रम के बच्चे होते हैं और 90 लाख चतुर्थ व पंचम क्रम के बच्चे होते हैं। यदि सभी दम्पत्ति 3 बच्चों

नक सीमित रह तो एक वर्ष मे 90 लाख सन्तानें उत्पन्न होने से रोकी जा सकती है। जन्म-दर को 25 प्रति हजार पर लाने का यह एक कारगर उपाय हो सकता है।

३ **विभिन्न राज्यो की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओ पर अधिक ध्यान देना—** अर्थशास्त्रियो का मत है कि राष्ट्रीय जनसख्या नीति मे विभिन्न राज्यो की भिन्न-भिन्न परिस्थितियो को अवश्य ध्यान मे रखा जाना चाहिए। असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक व राजस्थान मे 1971-81 की अवधि मे अधिक तेजी से जनसख्या बढी है। पहले बताया जा चुका है कि **उत्तर प्रदेश बिहार व राजस्थान मे प्रभावपूर्ण दम्पति सुरक्षा-दर (effective couple** protection rate) क्रमश 16·7%, 16 8%, 19·3% पायी गयी है। (छठी योजना के अन्त मे)। ये दरें राष्ट्रीय औसत (32%) से काफी कम है।[1] प्रोफेसर के. सुन्दरम के अनुसार वर्ष 2000 मे इन राज्यो मे ये दरें क्रमश: 35·2%, 25·6% तथा 31·7% ही हो पायेंगी, जबकि समस्त राज्यो के लिए इस सम्बन्ध मे 60% का लक्ष्य रखा गया है। अत. परिवार-नियोजन व संयम को जनसंख्या की दृष्टि से इन समस्याग्रस्त राज्यो मे अधिक फैलाना चाहिए। जनसख्या-नीति मे प्रादेशिक दृष्टिकोण को अपनाना काफी लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

जनसख्या-नियन्त्रण के सम्बन्ध मे एक नया दृष्टिकोण यह सुझाया गया है कि गहन कृषि-जिला कार्यक्रम की भाति गहन परिवार-नियोजन जिला कार्यक्रम देश के उन जिलो मे सचालित किया जाना चाहिए जिनमे पुरुषो व स्त्रियो की शादी की औसत आयु बहुत नीची पायी जाती है। भारत मे मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार व उत्तर-प्रदेश मे लडकियो की शादी अन्य राज्यो की अपेक्षा कम उम्र मे होती है।

1981 में कुछ राज्यों में लडकियो की शादी की औसत उम्र इस प्रकार रही है[2]—

राज्य	(वर्षों मे)	राज्य	(वर्षों मे)
राजस्थान	17·0	उत्तर प्रदेश	18 3
बिहार	17·1	केरल	21·9
मध्य प्रदेश	17·2	पजाब	21·1

अत: जिन राज्यो मे शादी की औसत उम्र 17-18 वर्ष है, वहा इसे बढाकर 20-21 वर्ष तक लाने का प्रयास करना बहुत जरूरी है। इससे जन्म-दर को कम करने मे मदद मिलेगी। इन राज्यो मे भी वे जिले विशेष रूप से लिये जा सकते है, जहाँ शादी की औसत आयु भी नीची पायी जाती है।

---

1. Seventh Five Year Plan 1985-90, Vol. II, p. 280.
2. Ashish Bose, Presidential Address, Indian Association For the Study of Population, Dec. 1983, Jaipur.

4. शिक्षा का प्रसार आवश्यक—समाज मे प्राय: यह चर्चा भी सुनने को मिलती है कि परिवार-नियोजन कार्यक्रम हिन्दुओ मे तेजी से अपनाया जा रहा है, लेकिन अभी तक यह मुसलमानो में बहुत कम लोकप्रिय हुआ है। शिक्षा के अभाव मे सम्भवत लोग यह सोचे कि अमुक जाति या सम्प्रदाय की जनसंख्या ज्यादा होने से उसे भविष्य मे उसका अधिक राजनीतिक लाभ मिलेगा। लेकिन ऐसा सोचना अनुचित व भ्रामक है और संकीर्ण मनोवृत्ति का सूचक है। सरकार को व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करके एव आवश्यक प्रभावपूर्ण प्रचार द्वारा इन गलत धारणाओ को दूर करना चाहिये। सरकार को ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए जिनमे लोग स्वेच्छा से परिवार-नियोजन कार्यक्रम को अपना सके। निरक्षर लोगो की सभी प्रकार की शकाएँ व आशकाएँ दूर की जानी चाहिएँ और उन्हे निरन्तर व धैर्यपूर्वक समभा-बुझाकर सीमित परिवार के लिए तैयार करना चाहिए।

हमारे देश मे स्त्रियो मे, विशेषत. ग्रामीण स्त्रियो मे, साक्षरता का अनुपात बहुत नीचा है। 1981 मे यह समस्त देश के लिए 18% (ग्रामीण महिलाओ के लिए) था, जबकि ग्रामीण राजस्थान मे यह 5·5%, मध्यप्रदेश मे 9·0%, उत्तरप्रदेश मे 9·5% तथा बिहार मे 10·2% था।

राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश व बिहार मे 10-14 वर्ष की 20%से कम लडकियाँ स्कूल जाती है। इन राज्यो मे 15-19 वर्ष के आयु समूह की लगभग 2/3 लडकियाँ (1981 की जनगणना के अनुसार) विवाहित थी। ऐसी स्थिति मे परिवार-नियोजन के मार्ग मे आने वाली कठिनाई का अनुमान लगाया जा सकता है। अत स्त्री-शिक्षा के प्रचार से शादी की उम्र थोडी आगे खिसकेगी, जिससे जन्म दर को कम करने की दृष्टि से काफी अनुकूल प्रभाव पडेगा।

5 निर्धन वर्ग मे अधिक प्रचार की आवश्यकता तथा 'रेस्त्रां दृष्टिकोण का महत्व—इस प्रकार परिवार-नियोजन के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उचित संगठन, प्रशासन, व्यक्तिगत सम्पर्क व प्रेरणा एव निरन्तर प्रयास करने की आवश्यकता है। इस आन्दोलन का निर्धन जनता मे अधिक प्रचार किया जाना चाहिए। अधिकाश जनसंख्या-विशेषज्ञ शादी की उम्र को बढाने और गर्भपात के नियमो को उदार बनाने के पक्ष मे है। श्रमिक वर्ग व निर्धन वर्ग पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वभाव व पसन्द के अनुसार परिवार-नियोजन की उपयुक्त व उचित पद्धति का चुनाव करना चाहिए। यह रेस्त्रां दृष्टिकोण (Cafeteria approach) माना जाता है जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत पसन्द के अनुसार परिवार-नियोजन की विधि का चुनाव किया जाता है।

6 नकद राशि या अन्य प्रेरणाओं का उपयोग—लोकतान्त्रिक देशो मे जनसंख्या नियन्त्रण के कार्य मे पूरी सफलता पाने के लिए 10-15 वर्ष का समय लग सकता है। यह किसी शीघ्र परिणाम देने वाले कार्यक्रम के रूप मे सम्पन्न नही किया जा सकता। सरकार निम्न आय वाले समूह मे लोगो को नकद राशि देकर

परिवार नियोजन के लिए प्रेरित करने लगी है। हमे हर सम्भव उपाय अपनाकर जन्म-दर मे शीघ्र व प्रभावपूर्ण कमी करने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिनायकवादी व्यवस्थाओ म कठोर नीति लागू करके जन्म-दर मे अधिक शीघ्रता से गिरावट लायी जा सकती है जैसा कि पिछले पाँच वर्षों मे चीन मे किया गया है।[1]

हाल के कुछ अध्ययनो से पता चलता है कि यदि लडकियो की शादी की न्यूनतम उम्र 18 वर्ष से 20 वर्ष कर दी जाए तो जन्म-दर मे 10 से 30 प्रतिशत की कमी आ जायगी। देश मे ग्रामीण युवक-युवतियो को इस दिशा मे विशेष प्रयास करना होगा क्योकि शहरो मे तो शिक्षा के प्रचार-प्रसार से शादी की उम्र मे स्वाभाविक रूप से थोडी वृद्धि अपने आप हो रही है। वस्तुत. जनसख्या की समस्या का युद्ध स्तर (War-footing) पर मुकाबला किया जाना चाहिए एव विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रो मे इसका प्रभावपूर्ण समाधान निकाला जाना चाहिए।

7 आर्थिक विकास को तेज किया जाय—विद्वानो का मत है कि विकास स्वय एक सर्वोत्तम निरोध होता है' (Development is the best contraceptive)। इसलिए आर्थिक विकास की गति को तेज किया जाना चाहिए। स्त्रियो को रोजगार दिया जाना चाहिए ताकि वे आर्थिक क्रियाओ मे अधिक समय लगा सके। जनसख्या के सम्बन्ध मे प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाकर भारत मानवीय शक्ति का उपयोग आर्थिक विकास मे कर सकता है। चीन म भूमि-श्रम-अनुपात भारत से भी ज्यादा विपरीत है, लेकिन उसने खाद्यानो मे आत्म-निर्भरता प्राप्त कर ली है। जहाँ एक ओर हमारे देश मे 'जनसख्या के विस्फोट' के सम्बन्ध मे गम्भीर रूप से चिन्तित होने की आवश्यकता है, वहाँ इस विस्फोटक शक्ति' को रचनात्मक कार्यो म लगाये जाने की सम्भावना पर भी विचार किया जाना चाहिए। फिलहाल आगामी कुछ वर्षों मे जन्म-दर को 25 प्रति हजार पर लाने के लिए भरपूर प्रयास किया जाना चाहिए।

8 शिशु मृत्यु-दर को कम किया जाय—भारत मे शिशु मृत्यु-दर (Infant mortality rate) के ऊँचा होने से (1980 मे यह 114 प्रति हजार थी) लोग नसबन्दी कराने मे हिचकिचाते हैं। इसलिए शिशु-मृत्यु दर को कम किया जाना चाहिए। पिछले वर्षों मे विश्व के विभिन्न देशो मे यह गिरी है। शिशु मृत्यु-दर घटाने से परिवार-नियोजन कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय होगा। भारत मे 2000 ईस्वी मे इसे 60 प्रति हजार से नीचे लाने का लक्ष्य रखा गया है।

9. कुछ लोगो का मत है कि तीन या तीन से अधिक जीवित बच्चो वाले दम्पत्तियो मे से पुरुष अथवा स्त्री का अनिवार्य बन्ध्यकरण कर दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध मे महाराष्ट्र के नमूने पर कानून बनाया जा सकता है, जिसमे परिवार-नियोजन न अपनाये जाने पर सजा की व्यवस्था भी की जा सकती है। इससे परिवार-नियोजन के प्रति आस्था बढेगी और इसमे शीघ्र सफलता मिलेगी।

---

1. चीन म जनसख्या की वार्षिक वृद्धि दर 1965-80 की अवधि मे 2·2 प्रतिशत से घटकर 1980-86 की अवधि मे 1·2 प्रतिशत पर आ गई है। इन्ही अवधियो मे भारत मे यह 2 3प्रतिशत से घटकर केवल 2 2 प्रतिशत पर ही आयी है। (World Development Report, 1988, p 274)

10 **डॉ सी. गोपालन की ग्रामीण लड़कियो के लिए एक योजना**—डॉ सी गोपालन ने सातवी योजना, 1985-90 मे शामिल करने के लिए ग्रामीण लडकियो के लिए एक स्कीम प्रस्तुत की थी जिसको आगामी वर्षों में लागू करने से अच्छे परिणाम निकल सकते है। यह 11 से 20 वर्ष की ग्रामीण लडकियो के लिए है (इनको गांवो मे आधे दिन तक ध्वनि व चित्र के साधनो का उपयोग करके होम साइन्स व व्यावसायिक ट्रेनिंग दी जानी चाहिए। सभी लडकियो को 25 रु मासिक भुगतान व प्रति माह 15 किलो खाद्यान्न दिया जाना चाहिए। शादी देर से करने के लिए शादी-बोनस व ब्याज वाले बाड 50 रु मासिक के अनुसार पांच वर्ष तक दिये जाए जिनको 5 वर्ष बाद या लडकी की 20 वर्ष की आयु होने पर ही भुनाया जा सकता है। समय से पहले शादी कर लेने पर बॉड रद्द माना जाना चाहिए। इस स्कीम के माध्यम से व्यावहारिक शिक्षा का विस्तार होगा, महिला-वर्ग मे चेतना आयेगी तथा जन्म-दर कम हो सकेगी। सरकार द्वारा इस स्कीम की छानबीन की जानी चाहिए तथा इसे आवश्यक संशोधन व तैयारी के साथ लागू किया जाना चाहिए। इससे सरकार पर वित्तीय भार तो पडेगा लेकिन इसके परिणाम काफी स्थायी व लाभकारी होगे।

स्मरण रहे कि ऐच्छिक-परिवार नियोजन का अन्त विफल परिवार नियोजन मे नहीं होना चाहिए। परिवार-नियोजन कार्यक्रम को विभिन्न प्रकार की ज्यादतियो त्रुटियो तथा अन्य कमियो से मुक्त रखना होगा, लेकिन इसे बडी गम्भीरता से लागू करना होगा ताकि आर्थिक विकास के लाभ सर्वसाधारण तक पहुँच सकें। इस सम्बन्ध मे लोगो मे काफी जागरूकता उत्पन्न करनी होगी। सरकार ने सातवी पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष तक 3 1 करोड नसबन्दी, 2·1 करोड लूप लगाने व 1 45 करोड निरोध-प्रयोगकर्ताओ के लक्ष्य रखे है तथा प्रभावपूर्ण-दम्पत्ति सुरक्षा-दर के लिए 42% का लक्ष्य रखा है। लोगो का कर्त्तव्य है कि वे इस सबन्ध मे सरकार को अपना पूरा सहयोग प्रदान करें। विद्वानो ने अध्ययन करके बतलाया है कि सन्तानोत्पत्ति रोकने के लिए सरकार द्वारा किया गया व्यय कभी फिजूल नही जाता, क्योकि एक सन्तान की शिक्षा, चिकित्सा भोजन, वस्त्र आदि पर जो व्यय होता है वह उस राशि से कही अधिक होता है जो उसको रोकने मे व्यय की जाती है। अत सरकार को परिवार-नियोजन पर व्यय बढाकर अधिक लाभकारी परिणाम प्राप्त करना चाहिए। लेकिन परिवार-नियोजन के व्यय से आवश्यक तथा आशानुकूल परिणाम प्राप्त करना बहुत जरूरी है। हमे ग्रामीण महिला-वर्ग पर हर प्रकार से अधिक ध्यान देना चाहिए। इससे वांछित परिणाम प्राप्त हो सकेंगे। साथ मे शहरी गन्दी बस्तियो पहाडी जाति व पिछडी जाति के लोगो मे परिवार-नियोजन का सदेश शीघ्र पहुँचाया जाना चाहिए, अन्यथा आगे चलकर जनसख्या की भावी स्थिति नियन्त्रण से बाहर हो सकती है। अत समय रहते सभी व्यक्तियो को, 'एक या दो बच्चो' वाले सीमित परिवार के सिद्धात को अपना लेना चाहिये। इसमे अब अधिक विलम्ब नही किया जाना चाहिए। क्योकि जनसख्या के दबाव चारो तरफ दिखायी देने लगे है। शहरो मे ट्रैफिक की दशा, पानी व आवास की कमी व कठि-

नाई तथा शिक्षा व चिकित्सा की सुविधाओं की कमी, आदि जनसंख्या के नियन्त्रण की आवश्यकता के सूचक हैं।

जनसंख्या को नियन्त्रित करने का कार्य युद्ध-स्तर पर होना चाहिए।

प्रश्न

1. "तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या भारत जैसे विकासशील देश के आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा सरकार की जनसंख्या (नियन्त्रण) नीति की संक्षेप में चर्चा कीजिए।
(Raj II year T D C, 1988)

2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
(i) भारत में जनसंख्या का व्यवसायानुसार वितरण।
(Raj II year T D C, 1984)

3. भारत में जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण की समस्या का संक्षेप में वर्णन कीजिए। यह वितरण लगभग स्थिर सा क्यों रहा? क्या श्रम-शक्ति को कृषि क्षेत्र से हटा कर उद्योगों में लगाना सम्भव होगा?
(Raj II year TDC, 1989)

उत्तर संकेत—भारत में श्रम-शक्ति को कृषि-क्षेत्र से हटाकर उद्योगों में लगाना सम्भव नहीं होगा क्योंकि (i) शहरों में श्रम-शक्ति बढ़ रही है जिसे उद्योगों में लगाया जा सकता है (ii) स्वयं कृषि में सिंचाई का विकास करके अधिक श्रम शक्ति का उपयोग करना होगा (iii) गांवों में कृषि के सहायक उद्योगों का विकास करके श्रम शक्ति को काम देना होगा जैसे पशु पालन मछली पालन, कुटीर उद्योग, आदि। कृषिगत माल की प्रोसेसिंग का काम बढ़ा कर रोजगार बढ़ाया जा सकता है (iv) सेवा क्षेत्र का विकास करके रोजगार बढ़ाया जा सकता है।

अतः श्रम-शक्ति के कृषि से उद्योगों की तरफ हस्तान्तरित करने की बात भारत में व्यावहारिक नहीं जान पड़ती।)

4. भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारणों की विवेचना कीजिए। पिछले दशक में भारत सरकार ने जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लिए क्या कदम उठाये हैं? (Raj II year T D C 1981 & 1985)

5. भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के आर्थिक परिणामों की विवेचना कीजिए। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को रोकने के लिए सरकार द्वारा कौन से उपाय किये जा रहे हैं? (Raj II year T D C 1982)

सन्दर्भ

1 P M Visaria The Demographic Dimensions of Indian Economic Development Chapter 41 in the Development Process of the Indain Economy edited by P R Brahmananda and V R Panchamukhi

---

3

भू-जोतों का आकार व वितरण-उप-विभाजन व अपखण्डन की समस्याएं

(Size and Distribution of Land Holdings–Problems of Sub-division and Fragmentation)

कृषि के उत्पादन पर सम्भवतः सबसे ज्यादा प्रभाव भू-जोतों के आकार (*size* of land holdings) का पड़ता है। भारत में छोटी जोतों की संख्या अधिक है। पीढ़ी दर पीढ़ी भूमि के निरन्तर बटवारे के कारण खेतों का आकार छोटा होता जाता है, जिसे खेतों का उप-विभाजन (sub-division) कहते हैं। यही नहीं वल्कि एक व्यक्ति के कई खेत एक स्थान पर इकट्ठे नहीं पाये जाते तथा वे दूर-दूर तक बिखरे हुए होते है। यह समस्या अपखण्डन (fragmentation) की होती है जो उप-विभाजन से भी ज्यादा गम्भीर मानी जाती है। भारतीय कृषि को आधुनिक व अधिक कार्यकुशल बनाने के लिए उप-विभाजन व अपखण्डन की समस्या का उचित समाधान निकाला जाना चाहिए।

जोतों का आकार

कृषिगत संगणना के आधार पर 1970–71 मे कार्यशील जोतो (Operational holdings)[1] का औसत आकार 2·30 हैक्टेयर था जो घटकर 1976-77

---

1. यहाँ पर कार्यशील जोत (Operational holding) व स्वामित्व की जोत (Ownership holding) में अन्तर किया जाना चाहिए। मान लीजिए एक कृषक 50 हैक्टेयर भूमि का स्वामी होकर इसे पांच समान टुकड़ो मे विभाजित करके खेती करवाता है तो स्वामित्व की जोत का आकार तो 50 हैक्टेयर है लेकिन कार्यशील जोत का आकार 10 हैक्टेयर माना जायेगा।

   कृषिगत विकास के कार्यक्रम मे निर्णय लेने की दृष्टि से मूलभूत इकाई कार्यशील जोत (Operational holding) ही होती है। परिभाषा— यह वह समस्त भूमि होती है जिसे कृषिगत उत्पादन मे पूर्णतः या अंशतः काम मे लिया जाता है। यह एक टेक्नीकल इकाई के रूप मे एक व्यक्ति या अन्य के साथ काम मे ली जाती है और इसमे अधिकार (टाइटल) कानूनी स्वरूप, आकार या स्थिति से कोई सम्बन्ध या सरोकार नहीं रहता।"

मे 2 हैक्टेयर तथा 1980–81 म 1 82 हैक्टेयर हो गया है। इस प्रकार भारत मे जोतों का औसत आकार पहले से घटा है । विभिन्न राज्यो मे जोतो के आकार मे काफी अन्तर पाये जाते हैं जनसख्या की तीव्र वृद्धि ने भूमि-श्रम अनुपात को प्रतिकूल बना दिया है जिससे भूमि कम व श्रम अधिक हो गया है। परिणामस्वरूप प्रति श्रमिक कृषिगत भूमि की मात्रा घट गयी है। 1976-77 मे राजस्थान मे कार्यशील जोत का औसत आकार 4 65 हैक्टेयर एव उत्तर प्रदेश तथा विहार मे 1·1 हैक्टेयर पाया गया था। एक तरफ नागालैण्ड मे जोतो का औसत आकार 7·61 हैक्टेयर था जो सर्वोच्च था तो दूसरी तरफ केरल म 0 49 हैक्टेयर था, जो न्यूनतम था।

भारत में कार्यशील जोतों का आकार के अनुसार वितरण
(Size Distribution of Operational Holdings in India)

भारत मे अधिक व्यक्तियो के पास कुल भूमि का थोडा हिस्सा और थोडे व्यक्तियों के पास कुल भूमि का अधिक हिस्सा पाया जाता है। अत भू-स्वामित्व थोडे व्यक्तियो के हाथो मे केन्द्रित हो गया है तथा कृषिगत सीढ़ी के सबसे निचले भाग पर अत्यधिक भीड भाड पायी जाती है।

भारत मे प्रथम कृषिगत सगणना 1970–71 तथा द्वितीय 1976–77 के लिए की गई थी। 1980–81 की अवधि के लिए की गयी तृतीय कृषिगत सगणना के आँकडो के अनुसार देश मे कुल कार्यशील जोतें (operational holdings) 8 94 करोड थी जिनमे 16 28 करोड हैक्टेयर भूमि समाई हुई थी। इनम से 56·5% जोतें एक हैक्टेयर से कम की थी जिन्हे सीमात जोतें कहा जाता है। 1970–71 व 1980–81 के लिए भू-जोतों का आकारानुसार तुलनात्मक वितरण निम्न तालिका मे दिया गया है -

1970–71 व 1980–81 में कार्यशील भू-जोतो का आकार के अनुसार वितरण[1]

भूजोतों का आकार (हैक्टेयर में)	1970–71 कुल जोतो का प्रतिशत	1970–71 कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	1980–81 कुल जोतों का प्रतिशत	1980–81 कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
(सीमान्त) 1 0 हैक्टेयर से कम	51 0	9 0	56·5	12·2
(लघु) 1 0-2 0 हैक्टयर	18 9	11 9	18-0	14 1
(अर्द्ध-मध्यम) 2 0-4 0 हैक्टेयर	15 0	18 5	14 0	21·2
(मध्यम) 4 0-10 0 हैक्टेयर	11 2	29 7	9 1	29 7
(बडी) 10 0 व अधिक हैक्टयर	3 9	30 9	2 4	22 8
कुल	100 0	100 0	100 0	100 0

1. Statistical Outline of India 1988–89, (Tata Services Ltd), June 1988, p 62.

भारत मे 1970–71 मे एक हैक्टेयर से नीची जोतो (सीमान्त जोतो) की सख्या 3 62 करोड थी जो बढकर 1980-81 मे 5 05 करोड हो गई है। इस प्रकार 10 वर्षों म इनकी सख्या 1 43 करोड बढ गई है। इसे भू-जोतो के सीमान्तीकरण (marginalisation) की प्रक्रिया कह सकते हैं, अर्थात, सीमान्त जोतो की सख्या में प्रतिवर्ष काफी तेज रफ्तार से वृद्धि हुई है।

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1980–81 म एक हैक्टेयर तक की जोतो की सख्या कुल कार्यशील जोतो की 56 5 प्रतिशत थी लेकिन उनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का लगभग 12% अश था, जबकि 10 हैक्टेयर व अधिक की जोतें कुल जोतो का 2 4% थी और उनमे क्षेत्रफल का लगभग *23% भाग समाया हुआ था*। इस प्रकार 1980–81 म भी भूमि के वितरण मे काफी असमानता पायी गयी है। आज भी हमारे देश मे सीमान्त कृषको की सख्या ज्यादा है, लेकिन उनके पास कुल कृषित भूमि का अश बहुत कम है। बड कृषक सख्या म थोडे है लेकिन उनके अधिकार म कृषित भूमि का अधिक अश पाया जाता है। 1970-71 मे 2 हैक्टयर से नीचे की जोतो के अन्तर्गत क्षेत्रफल 21% था जो 1980–81 मे 26% हो गया। इसके विपरीत 1970-71 म 10 हैक्टेयर व इससे ऊपर जोतो म कृषित भूमि का लगभग 31% अश था जो 1980–81 मे घटकर 23% हो गया है। इसका अर्थ यह है कि कृषित भूमि का वितरण कुछ सीमा तक बडी जोतो से छोटी जोतो की तरफ हुआ है। लेकिन भूमि के वितरण की असमानता 1980–81 मे भी जारी रही है।

यदि हम अपने देश के खेतो के आकार की तुलना अन्य देशो के खेतो के आकार से करे तो हमे ज्ञात होगा कि हमारे देश के खेतो का आकार कई देशो की तुलना मे बहुत कम है। भारत मे 1980–81 मे कार्यशील जोतो का औसत आकार 1 82 हैक्टेयर था, जो अमेरिका व कनाडा की तुलना मे काफी नीचा था क्योंकि वहा बडे खेतो पर मशीनो की सहायता से खेती की जाती है।

जोतो का अपखण्डन

अपखण्डन के तथ्य— भारत म भूमि का उप-विभाजन (Sub-division) प्राय अपखण्डन के साथ-साथ पाया जाता है। हमारे खेतो का आकार केवल छोटा ही नही है बल्कि वे एक स्थान पर स्थित न होकर कई स्थानो पर बिखरे हुए पाये जाते हैं। इससे खेती करने वालो को बडी कठिनाई उठानी पडती है। भारत म प्रभावपूर्ण कृषिगत नियोजन व कृषिगत उत्पादकता बढाने के मार्ग मे सबसे गम्भीर बाधा भू-जोतो का अत्यधिक टुकडो मे बिखरा होना है।

1980–81 मे कुल 8 94 करोड कार्यशील जोतो मे से अधिकाश जोतें 4 से 8 टुकडो मे एक दूसरे से दूर बिखरी हुयी थी। एक भूखण्ड (Plot) का

औसत आकार लगभग $\frac{1}{2}$ हैक्टेयर आता है। इस प्रकार का अपखण्डन एक गम्भीर समस्या है।

जोतों के उपविभाजन तथा अपखण्डन के कारण

1. **उत्तराधिकार के नियम**—इगलैण्ड मे ज्येष्ठाधिकार का नियम प्रचलित है जिसके अनुसार पिता की मृत्यु के बाद उसकी भू-सम्पत्ति का विभाजन नही होता वरन् सबसे बड़ा पुत्र उसकी सारी भू-सम्पत्ति का स्वामी हो जाता है। फलस्वरूप वहा खेतो का आकार बड़ा होता है। हमारे देश मे हिन्दुओं और मुसलमानो दोनो के उत्तराधिकार के नियमो के अनुसार पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी भू-सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों मे बट जाती है। प्रत्येक उत्तराधिकारी को उसके पूर्वज की भूमि का एक अश प्राप्त होता है। प्रत्येक हिस्सेदार पारिवारिक भूमि की प्रत्येक किस्म की भूमि में अपना हिस्सा लेना चाहता है। वह अपना सारा हिस्सा एक ही स्थान मे लेना पसन्द नही करता। फलस्वरूप प्रत्येक हिस्सेदार को कई छोटे-छोटे टुकडे एक-दूसरे से काफी दूर पर प्राप्त होते हैं।

2 **भूमि पर जनभार की वृद्धि**—भारत की जनसख्या उत्तरोत्तर बढती जा रही है। यहाँ उद्योग-धन्धो का विकास पर्याप्त तेजी से नही हुआ, बल्कि विदेशी माल की प्रतियोगिता के कारण ब्रिटिश काल मे स्वदेशी उद्योग-धन्धे काफी सीमा तक नष्ट हो गये। फलस्वरूप भूमि पर आश्रित लोगो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि होती गई।

उद्योग और व्यवसाय के अभाव मे प्रत्येक उत्तराधिकारी परिवार की भू-सम्पत्ति मे अपना हिस्सा लेने का इच्छुक रहता है। इस प्रकार परिवार मे सदस्यो की सख्या म वृद्धि होने से प्रत्येक का क्षेत्रफल घटता जाता है। हमारे देश म कृषि पर आश्रित प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से मे औसतन एक एकड से भी कम भूमि आती है। इस प्रकार एक औसत परिवार के पास भूमि की मात्रा काफी कम होती है।

3 **सयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन**—प्राचीनकाल मे हमारे देश मे सयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। परिवार के सब सदस्यों की सम्पत्ति सामूहिक व अविभाजित रहती थी पर तु वर्तमान अवस्था मे व्यक्तिगत स्वार्थ सदेह और ईर्ष्या के कारण इस प्रणाली का केवल नाम ही शेष रह गया है। परिवार के सदस्य पारिवारिक हित से व्यक्तिगत हित को अधिक महत्व देते हैं और पारिवारिक सम्पत्ति का विभाजन करके अपने हिस्से की सम्पत्ति को अलग रखना पसन्द करते है। फलस्वरूप जो भू-सम्पत्ति पहले अविभाजित रहती थी उसके अब टुकडे मे बट जाती हैं।

4 **साझेदारी की प्रथा**—अनेक भू-स्वामी अपनी भूमि स्वय खेती नही करते। वे किसानो द्वारा खेती कराते है। वे सारी भूमि एक ही किसान को नही देते

वल्कि अलग-अलग किसानो को देते हैं। इस प्रथा मे स्वामित्व अविभाजित रहते हुए भी खेती अलग-अलग भू-खण्डो पर होती है और प्रत्येक किसान को छोटे-छोटे खेत प्राप्त होते हे। बहुधा एक ही किसान कई भू-स्वामियो के साथ साझे के सम्बन्ध रखता है और उसको दूर-दूर स्थित खेतो पर काम करना पड़ता है।

उप-विभाजन और अपखण्डन के दोष—

भारत के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो बी एस. मिन्हास का मत है कि 'प्रत्येक जोत कई टुकडो मे विभक्त है ही, लेकिन ये टुकडे इतने अस्त-व्यस्त ढग से बिखरे हुए है कि जहाँ सिंचाई सुलभ है वहाँ उसका सर्वोत्तम उपयोग नही हो सकता, और जहा कृषि वर्षा पर आश्रित है वहाँ मिट्टी व नमी के उत्तम सरक्षण की दशाएँ बिगड जाती है। इन्ही कारणो से भूमि व जल-निकास का भावी नियोजन एव पानी के निकास व नमी की रक्षा के कार्य भी बिगड जाते हैं।" इन शब्दो से अपखण्डन का घातक व विनाशकारी परिणाम साफ तौर पर प्रकट हो जाता है।

बहुत छोटे खेतो पर खेती करने से कई तरह के अपव्यय होते है जिनसे लागत बढ जाती है और खेती आर्थिक दृष्टि से अलाभप्रद हो जाती है। इसके मुख्य दोष इस प्रकार होते है :

1. पूंजीगत साधनो का घटिया व अपूर्ण उपयोग—खेतो का क्षेत्रफल छोटा होने के कारण बैलो और औजारो के लिए पूरा काम नही मिलता। मान लीजिए, एक जोडी बैल और हल की सहायता से एक किसान दस बीघा भूमि पर अच्छी तरह काश्त कर सकता है, किन्तु उसके पास केवल पाँच बीघा ही भूमि हो तो वह अपने साधनो का पूरा लाभ नही उठा सकेगा। फलस्वरूप, प्रति इकाई उत्पादन-लागत अधिक आती है। कोई-कोई खेत तो इतने छोटे होते है कि वे भली-भाति जोते-बोये भी नही जा सकते। उनमे काश्त करने का व्यय उनकी पैदावार के मूल्य से अधिक आता है। उन पर खेती करना अलाभकारी (uneconomic) होता है। कभी-कभी इस प्रकार के खेत बिना खेती किये ही छोड दिये जाते है एव आगे चल-कर उन पर खेती का काम बन्द कर दिया जाता है।

2. छोटे-छोटे और दूर-दूर स्थित खेतो मे अलग-अलग बाड़ लगाने व मेडें बनाने मे व्यय करना होता है तथा भूमि खेती के काम नही आ पाती है। यदि बाडे नही लगाई जाती है तो जानवर फसले नष्ट कर देते है।

3. छोटे-छोटे और बिखरे हुए खेतो के लिए अलग-अलग कुएँ नहीं खोदे जा सकते क्योंकि छोटे खेत के लिए अलग कुआँ बनाना लाभकारी नही होता है। कुओ के अभाव मे इन खेतो की सिंचाई का उचित प्रबन्ध नही हो पाता। दूसरो के

कुओं से पानी लाने म व्यय अधिक होता है और रास्ते मे पानी व्यर्थ नष्ट होने और आपसी झगड़े होने का डर रहता है। यदि परस्पर साझेदारों में कुएँ बनाये जाएँ तो मरम्मत के अभाव म वे शीघ्र ही खराब हो जाते हैं।

4 छोटे-छोटे और बिखरे हुए खेतो मे श्रम की बचत करने वाले यन्त्रों का प्रयोग नहीं हो सकता। यान्त्रिक खेती असम्भव हो जाती है क्योंकि ट्रैक्टर, हार्वेस्टर बुल-डोजर थ्रेशर इत्यादि मशीनें काम मे नहीं लायी जा सकतीं। इस प्रकार उपविभाजन व अपखण्डन के कारण आधुनिक किस्म की प्रगतिशील और वैज्ञानिक खेती असम्भव हो जाती है।

6 दूर-दूर पर स्थित खेतो मे खेती करने मे खाद, बीज व अन्य साधन तथा औजारों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने-ले जाने मे समय, शक्ति और धन का अपव्यय होता है।

6 खेतो के बिखरे हुए होने से बाड़ें बनाने तथा पानी की नालियां बनाने के सम्बन्ध म अनेक प्रकार के झगड़े होते रहते हैं और अनावश्यक मुकदमेबाजी मे कृषकों की शक्ति व धन का ह्रास होता रहता है।

7 छोटे-छोटे और दूर-दूर पर स्थित खेतों पर निगरानी करना कठिन और खर्चीला होता है।

8 छोटे-छोटे खेतो की जमानत पर आसानी से रकम उधार नहीं मिलती और ब्याज की ऊँची दरें देनी पड़ती है।

9 छोटे-छोटे खेतो पर खेती करने से होने वाली हानि से बचने का एक तरीका जापान की तरह गहरी खेती करने का है। परन्तु जब किसानो को एक ही चक मे खेती करने के बजाय अलग-अलग बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतो पर खेती करनी होती है तो वे किसी एक खेत पर अपना पूरा ध्यान नहीं दे सकते। इस प्रकार खेतो के अपखण्डन से गहन व वैज्ञानिक खेती को अपनाने मे कठिनाई होती है।

उप-विभाजन और अपखण्डन के पक्ष में तर्क

खेतों के उप-विभाजन और अपखण्डन के पक्ष मे भी निम्नलिखित दलीलें दी जाती हैं

1 उप विभाजन के पक्ष मे कहा जाता है कि इससे भूमि का अपेक्षाकृत समान वितरण होता है और भूस्वामियो के एक ऐसे वर्ग का उदय होता है जो लोकतन्त्र व विकास का समर्थक व पोषक होता है। परन्तु हमे यह नहीं भूलना चाहिए कि अत्यधिक छोटे छोटे खेतो पर काश्त करने वाले लोग प्राय बहुत गरीब होते हैं, जिससे राष्ट्र कमजोर हो जाता है।

2 खेतो के अपखण्डन के पक्ष मे भी इसी प्रकार की बातें कही जाती है: (1) अलग-अलग खेतो मे मिट्टी अलग-अलग तरह की होती है और उन पर अलग-

करण का एक साधन मात्र माना गया है। यही कारण है कि चकबन्दी के कार्यक्रम ने पंजाब व उत्तर प्रदेश में निजी सिंचाई का विस्तार किया गया है जिससे पैदावार बढ़ी है तथा लागत में कमी आयी है एवं कई अन्य लाभ प्राप्त हुए हैं जिनका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा।

2 चकबन्दी की प्रक्रिया—चकबन्दी अधिकारी ग्राम सलाहकार समिति अथवा ग्राम-पंचायत से मिलकर चकबन्दी की योजना तैयार करते हैं। समिति के निर्माण के बाद भूमि के रिकार्ड से संशोधित व सही रूप में बनाये जाते हैं और चकबन्दी की स्कीम का प्रारम्भिक मसौदा तैयार किया जाता है। उत्तर प्रदेश व जम्मू-काश्मीर में चकबन्दी के नियम भी बनाये गये हैं, जैसे भू-स्वामी को भूमि वहाँ मिलगी जहाँ उसका सबसे बड़ा टुकड़ा होगा, आदि। चकबन्दी अधिकारी योजना बनाकर एवं कृषकों से स्वीकृत कराकर समझौता कमिश्नर को देते हैं जो इस पर अपनी स्वीकृति दे देता है।

3. चकबन्दी के लिए भूमि का मूल्यांकन करना—चकबन्दी में भूमि के मूल्यांकन करने का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण होता है। लेकिन यह काफी कठिन होता है। इसमें मिट्टी की किस्म, सिंचाई की सुविधाएं, भूमि की उत्पादकता, भू-खण्ड की गाँव से दूरी, आदि तत्वों पर ध्यान देना होता है। मूल्यांकन के लिए लागत-मूल्य अथवा भूमि का बाजार-मूल्य अथवा उत्पादकता को आधार बनाया जाता है। यदि किसी को उसकी भूमि के मूल्य से कम मूल्य की भूमि दी जाती है तो उसके लिए क्षतिपूर्ति आवश्यक हो जाती है। इसके लिए उसको मुद्रा देने की व्यवस्था करनी होती है।

4 भविष्य में होने वाले अपखण्डन की रोक—इसके लिए भूमि के टुकड़े करने, इसका हस्तान्तरण करने अथवा इसको गिरवी रखने की स्वतन्त्रता को नियन्त्रित करना होता है। इस कार्य के लिए स्टैण्डर्ड क्षेत्र का निर्धारण आवश्यक हो जाता है। स्टैण्डर्ड क्षेत्र भूमि का वह न्यूनतम क्षेत्र होता है जो लाभप्रद ढंग से जोता जा सकता है। स्टैण्डर्ड क्षेत्र निर्धारित करने के बाद इससे नीचे के सभी टुकड़ों का गाँव के खेतों में टुकड़ों (fragments) के रूप में लिखा जाता है। स्टैण्डर्ड आकार के टुकड़ों व इससे छोटे टुकड़ों में विभाजन आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं। तमिलनाडु, केरल, जम्मू-काश्मीर व हिमाचल प्रदेश को छोड़कर अन्य राज्यों में अपखण्डन की रोक के लिए आवश्यक कानूनी व्यवस्था की गयी है।

5. चकबन्दी की लागत—चकबन्दी की लागत विभिन्न कर्मचारियों, पुनर्सर्वेक्षण एवं माप पर किये गये व्यय पर निर्भर करती है। इसमें चकबन्दी के वास्तविक काम पर होने वाला व्यय भी शामिल होता है। महाराष्ट्र व गुजरात में समस्त लागत पूर्णतया राज्य सरकारों के द्वारा वहन की जाती है। अन्य राज्यों में यह भू-स्वामियों से मालगुजारी के साथ वसूल की जाती है।

व होशियारपुर) व उत्तर प्रदेश के तीन जिलों (मुजफ्फरनगर, देवरिया व झांसी) में चकबन्दी के प्रभावों का अध्ययन किया था जिससे पता चला कि यह कार्यक्रम बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके प्रमुख लाभ निम्नांकित रहे हैं—

1 इससे गांवों में परस्पर सहयोग का वातावरण उत्पन्न हुआ है और मुकदमेबाजी में कमी हुई है।

2 कृषि के लिए नई भूमि प्राप्त हुई है क्योंकि खेतों की मेड़ें तथा हदबन्दियाँ बदलने से काश्त के लायक अतिरिक्त भूमि निकल सकी है।

3 निजी तौर पर सिंचाई (Private irrigation) का तेजी से विस्तार किया गया है इसलिए इन्पुट का अधिक उपयोग करने से उत्पादन व उत्पादकता बढ़ी है जिससे लागत में कमी आयी है।

4. फसलों के प्रारूप (cropping pattern) में परिवर्तन आया है व्यापारिक या नकद फसलों का विस्तार किया गया है जिससे किसानों की आमदनी बढ़ी है।

5 चकबन्दी से फसलों की बटाईदारी की प्रथा में कमी आई है क्योंकि अब भूस्वामी स्वयं काश्त में अधिक भाग लेने लगे हैं, जबकि पहले बटाई के आधार पर काश्त करवाते थे। इस प्रकार चकबन्दी से कई प्रकार के आर्थिक लाभ प्राप्त हुए हैं जिससे इसकी उपयोगिता में किसी को सन्देह नहीं रह गया है।

(आ) उप विभाजन की समस्या के हल

1. सहकारी संयुक्त खेती (Co-operative Joint Farming)—सहकारी संयुक्त खेती में कृषक अपनी छोटी-छोटी जोतों को मिलाकर खेती करते हैं। लेकिन वे अपने-अपने टुकड़ों के स्वामी बने रहते हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व संयुक्त खेती के प्रश्न को लेकर हमारे देश में काफी विवाद हुआ था और इस विवाद में स्वर्गीय चौधरी चरणसिंह, मीनू मसानी, एन जी रंगा तथा स्वर्गीय प्रोफेसर राजकृष्ण आदि ने भारतीय परिस्थितियों में सहकारी संयुक्त खेती की उपयोगिता के बारे में काफी सन्देह प्रकट किये थे। लेकिन कई विचारकों का मत था कि अत्यधिक छोटी व अनार्थिक किस्म की जोतों की समस्या को हल करने का एक मात्र उपाय संयुक्त हो हो सकता है। छोटे खेतों के स्वामियों को अपने टुकड़े आपस में मिला लेने चाहिए और उन पर संयुक्त रूप से खेती करनी चाहिए। इससे उनकी आमदनी बढ़ेगी और भूमि का सदुपयोग भी किया जा सकेगा।

हम यहाँ पर इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कि संयुक्त खेत का आकार कितना हो, इस पर उपज का बँटवारा कैसे किया जाए, आदि। मुख्य बात यह है कि अत्यधिक छोटे खेतों को मिलाकर खेती करने से सबको लाभ प्राप्त होगा। यही नहीं बल्कि इस प्रकार की खेती एच्छिक एवं प्रजातान्त्रिक आधार पर संगठित की जा सकती है। पहले सरकार ने संयुक्त खेती का प्रचार करने के लिए कई तरह की

सुविधाएँ प्रदान की थी, जैसे वित्त, औजार, रासायनिक उर्वरक व अन्य तकनीकी सहायता आदि। संयुक्त खेती का विकास करने के लिए राष्ट्रीय सहकारी कृषि सलाहकार बोर्ड की स्थापना की गई थी। लेकिन भारतीय कृषक सहकारी दृष्टिकोण के स्थान पर वैयक्तिक दृष्टिकोण को अधिक महत्व देता रहा है। भूतकाल में लोगों में यह भ्रम फैलाने का भी प्रयास किया गया था कि सहकारिता के दरवाजे से सरकार उनकी जमीनें छीन कर समितियों को दे देगी। इन सब कारणों से भारत में सहकारी संयुक्त कृषि के कार्यक्रम को विशेष सफलता नहीं मिल पाई और इस सम्बन्ध में आन्दोलन की प्रगति आगे चलकर काफी धीमी हो गई। आजकल तो कहीं सहकारी संयुक्त कृषि की चर्चा भी सुनने को नहीं मिलती। लेकिन हम यह भी स्मरण रखना होगा कि समय गुजरने के साथ-साथ विभिन्न आर्थिक समस्याओं के पुराने, व्यावहारिक व सही हल पूर्णतया व्यर्थ नहीं हो जाते। आज भी ऐच्छिक आधार पर अनार्थिक जोतों के स्वामी संयुक्त खेती को अपनाए तो उन्हें तथा समस्त समाज को इस कार्य से काफी लाभ हो सकता है।

2. सहकारी सेवा समितियों (Co-operative Service Societies) का विकास करके सभी कृषक भूमि की उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। उत्तम बीज, औजार खाद, साख आदि की व्यवस्था सहकारी समिति के द्वारा करने से कृषकों को काफी लाभ पहुँचता है। इस पद्धति में भूमि के टुकड़ों को मिलाए बिना भी उत्तम खेती (Better Farming) की जा सकती है। इसके विकास का सभी ने समर्थन किया है क्योंकि सहकारी सेवा समितियों के विकास में कोई विवादग्रस्त बात नहीं है। कृषक सहकारी सेवा-समिति के सदस्य हो जाते हैं, जहाँ से उनको रियायती शर्तों पर विभिन्न कृषिगत साधन प्राप्त होते हैं। साख की सुविधा मिलती है तथा बिक्री की सुविधा भी प्राप्त होती है। अतः सहकारी सेवा समितियाँ छोटे कृषकों के लिए काफी लाभकारी सिद्ध हो सकती है। सेवा-सहकारितायें लोकतान्त्रिक व्यवस्था में विशेष रूप में उपयोगी मानी गई है। अतः इनको प्रयत्न करके कामयाब बनाया जाना चाहिए।

3. आर्थिक जोत (Economic holding) का निर्धारण और अनार्थिक जोतों के स्वामियों को अधिक भूमि उपलब्ध करने की व्यवस्था करना—खेतों के अत्यधिक उप-विभाजन और अपखण्डन को रोकने के लिए भूमि की आर्थिक जोत निर्धारित करने का भी सुझाव दिया जाता है। आर्थिक जोतों की परिभाषा व माप का कार्य काफी जटिल माना गया है। यह कहना गलत होगा कि सभी छोटी जोतें अनार्थिक और सभी बड़ी जोतें आर्थिक होती हैं। भूमि के काफी उपजाऊ होने पर छोटी जोतें भी आर्थिक हो सकती है और अनुपजाऊ होने पर बड़ी जोतें भी अनार्थिक हो सकती हैं। अतः केवल जोत का आकार ही उसे आर्थिक या अनार्थिक नहीं बनाता, बल्कि हमें साथ में वर्षा, सिंचाई की मात्रा, खाद, उत्तम बीज, औजारों व

बोई जाने वाली फसलों की किस्मों आदि बातों को भी देखना चाहिए जिनका भूमि की उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है। अत आर्थिक जोत का विचार स्थिर (Static) न होकर प्रावेगिक (dynamic) होता है। प्रायः इस सम्बन्ध मे यही कहा जाता है कि खेतों का आकार कम से कम इतना अवश्य होना चाहिए कि औसत कृषक परिवार इन पर काम करके आवश्यक व्यय निकाल कर शेष आय के आधार पर आराम से अपना गुजर-बसर कर सके। यह तभी सम्भव हो सकता है जब उसके परिवार के लोगो को खेतो पर साल भर लगातार काम मिलता रहे और पर्याप्त मात्रा मे उपज और आमदनी प्राप्त हो सके।

आर्थिक जोत और अनुकूलतम (Economic holding and optimum holding) म भी अन्तर होता है। काग्रेस भूमि सुधार समिति (कुमारप्पा समिति) ने अपनी 1949 की रिपोर्ट मे बतलाया था कि अनुकूलतम जोत या अधिकतम जोत का आकार आर्थिक जोत का तिगुना होना चाहिए। बाद मे जब योजना-प्रपत्रो म पारिवारिक जोत (जो वस्तुत आर्थिक जोत से मिलती-जुलती धारणा है) का प्रयोग किया जान लगा तो यह कहा गया कि एक कृषक परिवार को सीमा-निर्धारण म ज्यादा से ज्यादा पारिवारिक जोत की तिगुनी मात्रा दी जा सकती है। द्वितीय योजना मे पारिवारिक जोत पर दो तरह से विचार किया गया यथा एक तो कार्यशील इकाई (operational unit) के रूप मे जिस पर एक कृषक के श्रम व पूंजीगत साधनो को पर्याप्त मात्रा मे काम मिल सके और दूसरे भूमि का वह क्षेत्र जिससे लगभग 1600 रु की औसत वार्षिक आय प्राप्त की जा सके। इसे आमदनी इकाई (income unit) की धारणा कह सकते है। अत बहुत छोटी जोतो को मिलाकर आर्थिक जोत बनायी जा सकती है जिससे कृषि अधिक कार्यकुशल हो जाती है। जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं आर्थिक जोत निर्धारित करने के लिए मिट्टी के उपजाऊपन, वर्षा की मात्रा, सिंचाई के उपलब्ध साधन, उपलब्ध पूंजी तथा खेती के लिए अपनाए जाने वाले तरीको, आदि कई बातो पर ध्यान दिया जाना चाहिए। फिर भी खेती का व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले किसी भी समझदार व्यक्ति के लिए यह अनुमान लगाना कठिन नही होगा कि सभी बातो को ध्यान मे रखते हुए किसी विशेष क्षेत्र म आर्थिक जोत की मात्रा कितनी होगी।

बीस वर्ष पूर्व डी एस मेहरा ने आर्थिक जोत की कुछ परिभाषाओ पर विचार करके इसकी निम्न परिभाषा सुझायी थी जो काफी ठीक प्रतीत होती है। यह "प्रति परिवार भूमि की वह मात्रा है जिस पर खेती की लागत निकालने के बाद एक परिवार के श्रमिको को इतनी रोजी-रोटी मिल जाती है कि उन्हें अपनी जीविका चलाने के लिए कृषि के अलावा कहीं भी अतिरिक्त काम करने की आवश्यकता नहीं होती (EPW, 23 सितम्बर 1969)" कहने का आशय यह है कि आर्थिक जोत से कृषि की उत्पादन-लागत के साथ-साथ पारिवारिक श्रमिको का उपभोग व्यय भी निकल जाना चाहिए।

1966 से भारत मे हरित क्रान्ति की शुरुआत से अधिक उपज देने वाली किस्मो, रासायनिक उर्वरको सिचाई आदि के उपयोग से स्थिति काफी बदली है और निरन्तर बदलती जा रही है। पहले की कुछ अनार्थिक जोतें बदली हुई परिस्थितियो मे सम्भवत. आर्थिक बन गई है। इस प्रकार आर्थिक जोतो का आकार पहले से कम हो गया है।

अत. जोतो के आकार सम्बन्धी प्रश्नो पर अब नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है।

आर्थिक जोत की चर्चा करने के बाद यह प्रश्न उठता है कि अनार्थिक जोतो के स्वामियो को आर्थिक जोत प्राप्त करने मे किस प्रकार मदद की जाए। यह प्रश्न भूमि के पुनर्वितरण (Redistribution of Land) से जुड़ा हुआ है। भारत में भूमि सुधारो के कार्यक्रम मे सीमा-निर्धारण पर बल दिया गया है। बहुत बड़े आकार के खेतो का बहुधा कुशल प्रबन्ध नही हो पाता। अत सामाजिक न्याय और कुशल उत्पादन दोनो दृष्टियो से ऐसे खेतो का सीमा-निर्धारण के जरिए विभाजन कर दिया जाना चाहिए। इससे सरकार को अतिरिक्त भूमि प्राप्त होगी। प्रश्न उठता है कि इस अतिरिक्त भूमि का उपयोग कैसे किया जाए? इस सम्बन्ध मे यह सुझाव दिया गया है कि इस पर व्यक्तिगत अथवा सहकारी ढग पर भूमिहीन श्रमिको को बसाया जा सकता है। लेकिन इस अतिरिक्त भूमि में से कुछ हिस्सा अनार्थिक जोतो के स्वामियों के लिए भी रखा जा सकता है। उनके लिए अधिक भूमि की व्यवस्था इस शर्त पर की जानी चाहिए कि वे सहकारी सयुक्त खेती को अपना लेंगे। इस प्रेरणा व प्रोत्साहन से सम्भवतया वे सहकारी सयुक्त खेती को अपना सकेंगे। हमे यह स्मरण रखना होगा कि अतिरिक्त भूमि मे अनार्थिक जोतो के स्वामियो को हिस्सा देते समय पुन: चकबन्दी का प्रश्न खड़ा हो जाएगा। लेकिन उसका समाधान कर सकना कठिन नही होगा, क्योकि इस कार्यक्रम मे अनार्थिक जोतो के स्वामियो का अपना आर्थिक हित व कल्याण भी छिपा हुआ है। नयी भूमि के वितरण के समय भी यथासम्भव अनार्थिक जोतो के आकार को बढाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

काग्रेस भूमि-सुधार समिति ने 1949 मे 'बेसिक जोत' या 'बुनियादी जोत' (basic holding) के विचार का भी समर्थन किया था। बुनियादी जोत आर्थिक जोत से कम आकार की होती है, लेकिन इस पर भी खेती करके किसान अपना गुजर-बसर कर सकते हैं। बुनियादी जोत से कम भूमि निश्चित रूप से अलाभप्रद खेती को जन्म देती है और साथ मे अनेक समस्याये भी पैदा करती हैं। लेकिन सामाजिक न्याय के आधार पर बुनियादी जोत पर की जाने वाली खेती का समर्थन किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनार्थिक जोतो के स्वामियो को अपनी जोतों के आकार मे वृद्धि करने का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए।

4. **ग्रामीण क्षेत्रो व अन्य पिछड़े क्षेत्रों का औद्योगीकरण**—भारत मे भूमि पर जनसख्या का भार कम करने के लिए सभी किस्म के उद्योगो का विकास किया

जाना चाहिए। लेकिन हमारे देश के लिए विशेष रूप से आधुनिक ढंग पर चलाए जाने वाले कुटीर ग्रामीण व छोटे पैमाने के उद्योगों का महत्त्व है। गैर-कृषि व्यवसायों का तेजी से विकास करने से ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि की भूख नहीं बढ़ेगी और बढ़ती हुई श्रम शक्ति को उद्योगों में काम करने का अवसर भी मिल जायेगा। इसके लिए ग्रामीण उद्योगों के विकास पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

७ जनसंख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण—यहाँ पर यह कहना उचित होगा कि भारत में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि से विभिन्न समस्यायें काफी जटिल बनी हुई हैं। हम पहले बतला चुके हैं कि जनसंख्या की वृद्धि से भूमि के उप-विभाजन व अपखण्डन की समस्या अधिक पेचीदा हो गई है। अतः भविष्य में जनसंख्या की वृद्धि पर भी प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया जाना चाहिए।

छोटे कृषकों व सीमान्त कृषकों की आर्थिक प्रगति के लिए सरकारी प्रयत्न

छोटे कृषकों में बहुधा एक से दो हैक्टेयर जोतों के कृषक आते हैं और सीमान्त कृषकों में एक हैक्टेयर तक की जोतों के कृषक आते हैं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना व बाद में लघु कृषक विकास एजेन्सी (SFDA) कार्यक्रम के माध्यम से इनके कल्याण के लिए आवश्यक योजनायें संचालित की गई थीं। पाँचवीं योजना में देश के 1818 खण्डों में 168 परियोजनाओं पर कार्य किया गया जिससे छोटे कृषकों को सिंचाई की सुविधायें मिलीं।

अब SFDA कार्यक्रम एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) का अंग बना दिया गया है। इस सम्बन्ध में गहन कृषि, बहु फसल कार्यक्रम, बागवानी, लघु सिंचाई, भू संरक्षण, भूमि विकास व अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रचार प्रसार के अलावा सूखी खेती के कार्यक्रमों, दुग्ध उत्पादन, मुर्गी पालन, सूअर पालन, भेड़-बकरी पालन आदि पर भी बल दिया जा रहा है। इस प्रकार लघु सीमान्त कृषकों को आर्थिक लाभ पहुँचाने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के मार्फत प्रयास किया जा रहा है। एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम गरीबी दूर करने का कार्यक्रम है। इसके अन्तर्गत चुने हुए गरीब परिवारों को कोई परिसम्पत्ति (asset) जैसे दुधारू पशु, सिलाई की मशीन आदि दी जाती है। इसके लिए सरकार सब्सिडी देती है तथा बैंक कर्ज दिया जाता है। यह स्वरोजगार (Self employment) प्रदान करने का तरीका है।

कुछ लोगों का विचार है कि भूमि के उप-विभाजन व अपखण्डन की समस्या का कोई स्थाई समाधान नहीं निकाला जा सकता क्योंकि एक बार चकबन्दी हो जाने के बाद पुनः अपखण्डन का खतरा बना रहता है। उत्तराधिकार का नियम बराबर क्रियाशील होने से सुधरी हुई स्थिति पुनः बिगड़ सकती है। इस सम्बन्ध में हम पहले बता चुके हैं कि भूमि की एक स्टेण्डर्ड मात्रा तय की जानी चाहिए जिससे नीचे की मात्रा के हस्तान्तरण (transfer), व विभाजन (division) पर कानूनी रोक लगायी जानी चाहिए। सहकारी सेवा समितियों के विकास से भी स्थिति में काफी सुधार होगा। तीव्र गति से ग्रामीण औद्योगीकरण व प्रभावपूर्ण परिवार नियोजन से

भी इस समस्या को हल करने मे मदद मिलेगी। स्मरण रहे कि वैयक्तिक कृषि-प्रणाली (individual farming) या कृषक-स्वामित्व प्रणाली (Peasant Proprietorship) को कायम रखते हुए भूमि के उप-विभाजन व अपखण्डन की समस्या को हल करने के लिए हमारे समक्ष उपर्युक्त मार्ग ही खुले हैं। जिन देशो मे सरकारी अथवा पूँजीवादी खेती (जो क्रमश. सोवियत सघ व अमरीका मे) बडे पैमाने पर यन्त्रीकृत खेती के रूप मे की जाती है, वहां उपविभाजन एव अपखण्डन का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः इस समस्या का सम्बन्ध विशेषतया एक क्षेत्र मे प्रचलित कृषि की पद्धति से होता है। हम भारत मे ग्रामीण उद्योगो का विकास करना होगा तथा साथ मे लघु-कृषकों, सीमान्त कृषकों तथा खतिहर मजदूरों के आर्थिक लाभ के लिए विशेष प्रकार के कार्यक्रम सचालित करने होगे, तभी इनकी आर्थिक दशा सुधारी जा सकेगी। इसमे कोई सन्देह नही कि भूमि के उप-विभाजन व अपखण्डन की स्थिति आधुनिक कृषि के मार्ग मे बाधक है और इस समस्या का उचित व स्थायी समाधान निकाला जाना चाहिए। सरकार को पचायती राज सस्थाओ के माध्यम से पुन नये सिरे से सहकारिता के विकास पर बल देना चाहिए। इससे देश को बहुत लाभ होगा।

प्रश्न

1 सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—
 (i) भारतीय कृषि मे उप-विभाजन व विखडन की समस्या।
 (Raj IIYr. T.D C., 1988)

2. भारत म जोतो का उप-विभाजन एव अपखण्डन किस प्रकार कृषि के विकास मे बाधक है? इन कठिनाइयो को किस प्रकार दूर किया जा सकता है?
 (Raj IIYr T D C., 1985)

3 सहकारी खेती की भारत मे क्या आवश्यकता है? इसके मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो का वर्णन कीजिये। (Raj IIYr. T.D C., 1982)

[उत्तर-सकेत—सहकारी खेती के कई रूप होते हैं जैसे (1) सहकारी उन्नत खेती, (2) सहकारी सयुक्त खेती, (3) सहकारी सामूहिक खेती, (4) सहकारी काश्तकार खेती। सहकारी उन्नत खेती मे सदस्यो को सभी प्रकार के कृषिगत इन्पुट समय पर एव उचित भावो पर उपलब्ध किये जाते हैं ताकि व उत्पादन बढा सकें। सहकारी सयुक्त खेती मे छोटे किसान अपने खेत मिलाकर सयुक्त खेती करके उत्पादन व उत्पादकता बढाते है। सहकारी सामूहिक खेती मे भूमि व अन्य साधन समिति के हो जाते हैं और कृषको को मजदूरी करनी होती है। सहकारी काश्तकार खेती मे सदस्य काश्तकार एक योजना के मार्फत काम करते है तथा यह भी प्राय: नई भूमि पर खेती के लिए अपनाई जाती है।

भूतकाल मे भारत मे सहकारी सयुक्त खेती को लागू करने की आवश्यकता पर काफी बल दिया गया था। लेकिन इसके मार्ग मे निम्न कठिनाइया पाई गई है:

1 कृषकों का अपनी भूमि के प्रति प्रगाढ़ मोह होने के कारण वे दूसरों के साथ अपनी भूमि का टुकड़ा मिलाने के लिए तैयार नहीं होते.

2 पैदावार के वितरण की समस्या काफी गम्भीर होती है.

3 प्रशासनिक कठिनाइयां सामने आती हैं एवं

4 आजकल सहकारी संयुक्त खेती पर जोर काफी घट गया है। ऐसी स्थिति में हमारे सामने विवादरहित विकल्प यही रह गया है कि देश में सहकारी सेवा समितियों को सफल बनाया जाय। कृषकों को इनका सदस्य बनाया जाना चाहिए। ये बहुउद्देश्यीय हों तथा कृषकों को साख की सुविधा देने के अलावा उर्वरक, बीज, औजार व अन्य कृषिगत इन्पुट उपलब्ध करें तथा उनकी उपज की बिक्री की व्यवस्था करें एवं उनको आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएँ उचित भावों पर उपलब्ध करें। ये सुझाव ऊपर से बड़े सरल लगते हैं. लेकिन प्रशासनिक व्यवस्था के अभाव में प्रगति संतोषजनक नहीं हो पाती। अतः जो कुछ सैद्धान्तिक दृष्टि से सही जान पड़ता है उसे व्यावहारिक, प्रशासनिक, संगठनात्मक व वित्तीय दृष्टि से आठवीं योजना में सफल बनाया जाना चाहिए।

भारत में प्रत्येक समस्या के जाने-माने हल विद्यमान हैं, आवश्यकता है उनको कड़ाई से लागू करके समस्या का समाधान करने की। इसके लिए प्रबल राजनीतिक इच्छाशक्ति आवश्यक होती है।

जिस प्रकार सरकार ने हाल में पंचायती राज संस्थाओं को सक्रिय करने की ठान ली है, उसी प्रकार यदि सहकारी कृषि व उत्पादन की दिशा में ठोस प्रयत्न हों तो ग्रामीण क्षेत्रों को काफी लाभ पहुँच सकता है।।

4

सिंचाई, उर्वरक व अन्य साधन तथा कृषि में यन्त्रीकरण

(Irrigation, Fertiliser, Other Inputs and Mechanisation of Agriculture)

भारतीय कृषि को 'मानसून का जुआ' कहा जाता है। वर्षा पर निर्भर रहने के कारण ही हमारी कृषि में अनिश्चितता व अस्थिरता पाई जाती है और कृषि के वार्षिक उत्पादन में भारी उतार-चढ़ाव आते रहते है। सिंचाई के लिए साधनों का विकास करके कृषि में अधिक स्थिरता की दशाएँ उत्पन्न की जा सकती हैं।

भारत में सिंचाई का महत्व

अन्य देशों की अपेक्षा भारत जैसे देश में सिंचाई का विशेष रूप से महत्व है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :

(1) **वर्षा की अनिश्चितता**—भारत में वर्षा के सम्बन्ध में अनिश्चितता की स्थिति पायी जाती है। किसी वर्ष वर्षा कम होती है, तो किसी वर्ष ज्यादा। कभी शुरू में अच्छी वर्षा हो जाती है, लेकिन बाद में कई महीने व सप्ताह सूखे निकल जाते हैं और फलस्वरूप पैदावार नष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति में खेती पूर्णतया *'मानसून का जुआ' बन जाती है। ऐसी दशा में सिंचाई की व्यवस्था होने से ही* मानसून की अनिश्चितता से मुक्ति मिल सकती है।

(2) **वर्षा की अपर्याप्तता**—भारत में वर्षा का वितरण सर्वत्र एक-सा नहीं है। एक ओर चेरापूँजी में वर्षा का वार्षिक औसत 428 इंच पाया जाता है, तो दूसरी तरफ जैसलमेर में 4 इंच ही। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा होने से ही खेती की जा सकती है।

(3) **वर्षा की मौसमी प्रकृति**—भारत में वर्षा अधिकतर वर्षा-ऋतु में ही होती है जिसकी अवधि जून से अक्टूबर तक होती है। इन महीनों में होने वाली फसलें तो वर्षा के सहारे भी हो सकती हैं, लेकिन साल के शेष महीनों में सिंचाई की बहुत आवश्यकता होती है। पंजाब में थोड़ी वर्षा जाड़े के दिनों में भी होती है,

लेकिन वह अपर्याप्त रहती है। इसलिए सारे वर्ष खेती करने के लिए सिंचाई की *उचित व्यवस्था का होना आवश्यक माना जाता है* । भारत में एक से अधिक फसलों के कार्यक्रम अथवा बहु-फसल कार्यक्रम (multiple cropping) को सफल बनाने के लिए सिंचाई का विस्तार करना बहुत आवश्यक है ताकि देश में कृषिगत उत्पादन *बढ़ाया जा सके* ।

(4) विशेष फसलों के लिए—गन्ने व चावल की खेती को पर्याप्त मात्रा में जल की आवश्यकता होती है और यह सिंचाई से ही मिल सकता है। आजकल खाद्यान्नों के कुल उत्पादन में रबी के उत्पादन का अंश बढ़ रहा है। यह 1960 की दशा दी में 1/3 से कम था, जो 1987-88 में 45% से भी कुछ अधिक हो गया है। इसके भी सिंचाई ने महत्व बढ़ गया है क्योंकि रबी की फसलों में गेहूँ, जौ चना आदि फसलें सिंचाई की सहायता से अधिक पैदावार दे सकती हैं।

(5) अकाल के भय से छुटकारा—सिंचाई के अभाव में अकाल पड़ने का भय बना रहता है। यह देखा गया है कि अकालग्रस्त क्षेत्र वे होते हैं जहाँ वर्षा की कमी रहती है और उस कमी की पूर्ति के लिए सिंचाई के साधन नहीं होते हैं। जब से भारत में सिंचाई के साधनों का विकास हुआ है तब से अकालों की संख्या व भीषणता में कमी आयी है। पहले सिंचाई के साधनों में उत्पादक (productive) व रक्षात्मक (protective) नाम से दो भेद किये जाते थे। इनमें रक्षात्मक साधनों का उद्देश्य अकाल के भय से मुक्ति दिलाना ही होता था।

(6) गहन खेती सम्भव एवं कृषिगत उत्पादकता में सुधार—भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्नों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए गहन खेती बहुत आवश्यक है। प्रति हैक्टेयर उपज बढ़ाने के लिए सिंचाई, उत्तम बीज, खाद व औजारों की आवश्यकता होती है। इन सबका प्रयोग एक साथ किया जाना चाहिए अन्यथा उपज नहीं बढ़ेगी। अतः गहन खेती के कार्यक्रम में सर्वोच्च स्थान सिंचाई का ही दिया गया है। इससे कुल उत्पत्ति में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि होती है। कृषि-विकास की नई नीति में सिंचाई का स्थान प्रमुख माना गया है, क्योंकि अधिक उपज देने वाली किस्में आवश्यक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशक दवाइयों के साथ बहुधा सिंचित क्षेत्रों में ही प्रयुक्त की जाती हैं।

(7) उपज की किस्म में सुधार—भारत में सिंचाई के उपयोग से उपज की मात्रा में बढ़ने के साथ-साथ उसकी किस्म में सुधार होता है जिससे किसानों की आय बढ़ती है और उनका रहन-सहन का दर्जा ऊँचा होता है।

(8) नई भूमि पर खेती करना सम्भव—भारत में कुछ कृषि-योग्य भूमि बेकार पड़ी है। सिंचाई के साधनों का विस्तार करके अतिरिक्त भूमि खेती के अन्तर्गत लायी जा सकती है। सिंचाई के अभाव में ऐसी भूमि को खेती के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। राजस्थान में इन्दिरा गाँधी नहर के बन जाने से नयी भूमि पर पहली

बार कृषि प्रारम्भ की गई है। इस प्रकार सिंचाई से विस्तृत खेती (extensive cultivation) की सम्भावनाएँ भी बढती है। सातवी योजना मे अनुमान लगाया गया है कि सिंचित क्षेत्र मे 1% की वृद्धि से कुल कृषित क्षेत्र मे 0 31% की वृद्धि होगी।

(9) रोजगार मे वृद्धि–ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार बढाने की दृष्टि से सिंचाई का विस्तार करना बहुत आवश्यक माना गया है। इसम शुरू मे सिंचाई के निर्माण कार्यों मे रोजगार मिलता है और बाद मे उत्पादन बढाने पर अन्य सहायक कार्यों म भी रोजगार बढता है। इस प्रकार सिंचाई के विकास से ग्रामीण क्षेत्रो मे काफी मात्रा मे रोजगार के नये अवसर बढते हैं।

(10) सरकारी आय मे वृद्धि—सिंचाई की व्यवस्था बढने से सरकार की आय म प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनो प्रकार से वृद्धि होती है। कृषको की आय बढने से सरकार को भूमि-करो व कृषिगत आय-करो से अधिक आमदनी होती ह। यह सरकार की आय मे प्रत्यक्ष वृद्धि मानी जा सकती है। कृषिगत उपज के बढने से रेलो को अधिक माल ढोने के लिए मिलता है जिससे रेलो को माल भाडे से प्राप्त आय भी बढ जाती है। यह सरकारी आय मे परोक्ष रूप से होने वाली वृद्धि कही जा सकती है।

(11) यातायात की सुविधा—नहरो से सिंचाई के साथ-साथ यातायात की सुविधा भी बढती है। रेलो से केवल यातायात ही हो पाता है, जबकि नहरो स सिंचाई व यातायात दोनो सम्भव हो जाते ह।

(12) सिंचाई से मूल्य स्थिरीकरण मे सहायता मिलती है—क्योकि कृषिगत उत्पादन से अनिश्चितता का तत्व काफी सीमा तक कम हो जाता है। इसलिए अनाज व कच्चे माल के भाव अधिक स्थिर हो जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था म सिंचाई बहुत महत्वपूर्ण है। नहरो की सिंचाई से प्राय हानियाँ भी होती है और विशेषतया अव्यवस्थित किस्म की सिंचाई कई बार भारी क्षति पहुँचा देती है।

हानियाँ—(1) भूमि की ऊपरी सतह पर नमक जमा हो जाता है जिससे क्षारयुक्त या खारी मिट्टी (alkaline soils) की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इससे बहुत सी भूमि खेती के योग्य नही रहती। (2) मलेरिया व अन्य रोग उत्पन्न होने लगते हैं। (3) बाढ का भय उत्पन्न हो जाता है।

सिंचाई की उपर्युक्त हानियाँ पानी के उचित बहाव की व्यवस्था (proper-drainage) करके तथा पक्की नहरें आदि बनाकर कम की जा सकती हैं।

विभिन्न स्रोतो व फसलो के अनुसार सिंचित क्षेत्रफल

भारत के विभिन्न भागो मे धरातल की रचना एक-सी न होने से देश मे कई प्रकार के सिंचाई के साधन काम मे लिये जाते है। उत्तरी भारत मे नहरो और कुओ की सिंचाई की प्रधानता है और दक्षिण मे तालाबो का सिंचाई के लिए विशेष रूप से उपयोग किया जाता है।

भारतीय योजनाओं में सिंचाई के विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई है। 1950-51 में 2 26 करोड़ हैक्टेयर भूमि में सिंचाई की गई जो बढ़कर 1986-87 में 6 44 करोड़ हैक्टेयर में होने लगी। इसमें बृहद् व मध्यम स्कीमों का अंश 2·65 करोड़ हैक्टयर तथा लघु स्कीमों का अंश 3 79 करोड़ हैक्टेयर पाया गया है। इस प्रकार कुल सिंचित क्षेत्र में लघु योजनाओं का योगदान अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। 1987-88 में सिंचित क्षेत्रफल 6 63 करोड़ हैक्टेयर हो गया था।

1971-72 में सकल सिंचित क्षेत्रफल कुल कृषित क्षेत्रफल का 24% था जो 1984-85 में 33 7% आंका गया है। इसके 1989-90 में 37 6% हो जाने का लक्ष्य रखा गया है।[1] इस प्रकार भारत में अब लगभग 1/3 कृषित क्षेत्र में सिंचाई की जाने लगी है।

भारत में सिंचाई की विशेष सुविधा गन्ने, गेहूँ, जौ व चावल की फसलों को प्राप्त है। अन्य फसलों के लिए सिंचाई का प्रायः अभाव पाया जाता है। 1985-86 में गन्ने के कुल क्षेत्रफल 87·3% भाग पर सिंचाई की गई। गेहूँ के 75% क्षेत्रफल जौ के 49·0% क्षेत्रफल व चावल के 42 1% क्षेत्रफल में सिंचाई की गई। ज्वार का सिंचित क्षेत्रफल केवल 4·6% व बाजरे का 5·4% ही रहा। कपास के 27 9% तथा तिलहनों के 16 0% क्षेत्रफल में सिंचाई की गई।[2]

पहले के वर्गीकरण के अनुसार सिंचाई के साधनों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।[3]

1. कुएँ—1983-84 की सूचना के अनुसार भारत में सिंचित क्षेत्रफल के लगभग 46·5% भाग में कुओं से सिंचाई की गई थी। कुएँ दो प्रकार के होते हैं नलकूप व अन्य। पंजाब, हरियाणा व उत्तर-प्रदेश में ट्यूब-वैल का बहुत प्रयोग हुआ है। योजनाकाल में इन राज्यों में ट्यूब-वैल लगाने का कार्यक्रम रखा गया था जिससे कुओं की सिंचाई का क्षेत्रफल काफी बढ़ा है।

2. तालाब—उसी वर्ष विशुद्ध सिंचित क्षेत्र के लगभग 9% भाग में तालाबों से सिंचाई की गई थी। कर्नाटक, हैदराबाद, राजस्थान का दक्षिणी-पूर्वी पहाड़ी भाग और मध्य प्रदेश तालाबों की सिंचाई के लिए उपयुक्त हैं। तमिलनाडु का पेरियार बांध काफी विख्यात रहा है। दक्षिणी भारत में नदियों की धाराएँ तेज होती हैं। वे साल भर नहीं बहती हैं। भूमि समतल नहीं हैं एवं पथरीली है। इसलिए

---

1. Seventh Five Year Plan: Mid Term Appraisal, 1988, p 79.
2. Economic Survey 1988-89, p. S–22.
3. Statistical Outline of India, 1988-89, p. 59.

धरातल की बनावट तालाब बनाने के लिए ज्यादा उपयुक्त पायी गई है। तालाबों की सिचाई मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि इनमे वर्षा का पानी एकत्र होता है, इसलिए जिस साल वर्षा कम होती है, उस साल इनमे पानी कम आता है। इनमे मिट्टी भी भर जाती है। भारत मे बहुत से तालाबो मे प्रायः मरम्मत की आवश्यकता बनी रहती है।

3. नहरें—विशुद्ध सिंचित क्षेत्र के 38 7% लगभग (2/5) भाग पर नहरो से सिचाई की जाती है एव शेष 5 7% भाग मे अन्य साधनो से सिंचाई की जाती है। नहरो की सिंचाई मे सरकारी नहरो का अश 37·5% तथा गैर-सरकारी या प्राइवेट नहरो का 1·2% है। भारत मे नहरो की कुल लम्बाई ससार मे सबसे अधिक है। नहरो की सिचाई सस्ती, सुविधाजनक और सुनिश्चित होने से आजकल बहुत प्रचलित हो गयी है। नहरें तीन प्रकार की होती हैं—

(1) बाढ वाली नहरें (inundation canals), (2) बाघ वाली नहरें (perennial canals), (3) स्टोरेज या जलाशय की नहरे (storage canals)।

(1) बाढ की नहरो मे नदी मे बाढ आने पर ही पानी आता है। अत. इनसे थोडे समय के लिए ही सिंचाई हो पाती है। आजकल इस प्रकार की नहरो का प्रचलन बहुत कम हो गया है। (2) बाध की नहरें नदी पर बाँध बनाकर निकाली जाती है। इनसे साल भर सिचाई होती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पूर्वी पजाब, उत्तर-प्रदेश, उडीसा, पश्चिमी बगाल, राजस्थान व अन्य राज्यो मे बाँध वाली नहरे बनायी गयी हैं। (3) स्टोरेज की नहरो मे वर्षा का जल घाटी के आर-पार बाँध बनाकर एकत्र किया जाता है। ऐसी नहरे तमिलनाडु व दक्षिण भारत मे पायी जाती है। इन नहरो का सम्बन्ध नदियो से नही होता है।

भारत में सिचाई के साधनों का विकास

सिंचाई के साधन बडे, मध्यम व छोटे—तीन भागो मे बाटे जाते हैं। पहले 10 लाख रुपये या इससे कम लागत की सिंचाई की योजनाएँ छोटी (minor), 10 लाख रुपये से 5 करोड रुपये तक की मध्यम (medium) और 5 करोड रुपये से अधिक लागत की योजनाएँ बडी (major) मानी जाती थी। लेकिन अप्रैल, 1978 से सिचाई के साधनो का निम्न वर्गीकरण लागू किया गया है—

(अ) लघु स्कीम—2,000 हैक्टेयर तक कृषियोग्य कमाण्ड क्षेत्र (culturable command area) (CCA),

(ब) मध्यम स्कीम—2,000 हैक्टेयर से अधिक, लेकिन 10,000 हैक्टेयर तक का कृषियोग्य कमाण्ड क्षेत्र,

(स) वृहद् स्कीम—10,000 हैक्टेयर से अधिक कृषियोग्य कमाण्ड क्षेत्र।

यह ध्यान देने की बात है कि भारत मे सिंचित क्षेत्र विश्व के अन्य सभी देशो के मुकाबले मे सबसे अधिक है। लेकिन हमारे देश की आवश्यकताओ को देखते हुए

आज भी यह कम है। आजकल भारत में कुल सिंचित क्षेत्र सकल कृषित क्षेत्र का 33 प्रतिशत हो गया है। जापान में यह आधे से भी अधिक है। मिस्र में शत-प्रतिशत कृषित भूमि में सिंचाई की जाती है। पाकिस्तान में भी यह 40% से अधिक है। इस प्रकार सिंचाई की दृष्टि से भारत की स्थिति पहले से काफी सुधरी है, हालांकि इसमें और प्रगति की जा सकती है।

पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई के साधनों का विकास

सिंचाई पर व्यय—1951-80 की अवधि में सिंचाई की वृहद् व मध्यम योजनाओं पर 7510 करोड़ रु. तथा लघु योजनाओं पर 2503 करोड़ रु. व्यय किये गये। इस प्रकार सिंचाई पर कुल 10,013 करोड़ रु. व्यय किये गये। यह जानना रुचिप्रद होगा कि छठी पंचवर्षीय योजना, 1980-85 की अवधि में सिंचाई की वृहद् व मध्यम योजनाओं पर 7516 करोड़ रु. व लघु योजनाओं पर 1802 करोड़ रु. व्यय होने का अनुमान लगाया गया था। इस प्रकार छठी योजना में सिंचाई के विकास पर 9318 करोड़ रु. की राशि के व्यय होने का अनुमान था। सातवीं योजना, 1985-90 की अवधि में वृहद् व मध्यम सिंचाई कार्यक्रमों के लिए 11556 करोड़ रु. तथा लघु योजनाओं के लिए 2805 करोड़ रु. निर्धारित किये गये हैं। इस प्रकार सिंचाई के विकास के लिए कुल 14361 करोड़ रु. की राशि निर्धारित की गई है जो पहले से काफी अधिक है।[1]

1950-51 से 1986-87 तक की अवधि में सिंचाई का विकास निम्न तालिका में दर्शाया गया है।[2] (करोड़ हैक्टेयर में) (सचयी जोड़)

सिंचाई के साधन	1950–51		1986–87	
	सम्भाव्यता	उपयोग	सम्भाव्यता	उपयोग
1. वृहद् व मध्यम स्कीम	0 97	0·97	3 12	2 65
2. लघु स्कीमें	1 29	1 29	4 08	3 79
कुल	2 26	2·26	7·20	6 44

1 Seventh Five Year Plan 1985-90, Vol II, p 73, p. 87 and p 91.

2 Ibid, p. 72, & Economic Survey 1988-89, p. 20, and p S-21.

जैसा कि पहले भी बतलाया गया है 1950-51 मे सिंचाई का उपयोग 2 26 करोड हैक्टेयर मे किया गया था जिसे बढाकर 1986-87 मे 6 44 करोड हैक्टेयर मे किया गया है। छठी योजना की अवधि मे सिंचित क्षेत्रफल मे लगभग 23 लाख हैक्टयर प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई जो उत्साहवर्धक मानी जा सकती है। 1986-87 म सिंचाई की सम्भाव्यता (Irrigation potential) 7 2 करोड हैक्टयर मे उत्पन्न कर दी गई थी लेकिन सिंचाई का वास्तविक उपयोग (utilisation) 6 44 करोड हैक्टयर मे किया गया। इस प्रकार सिंचाई की सम्भाव्यता व उपयोग मे अन्तर पाया जाता है जो विशेषतया वृहद् व मध्यम योजनाओ के अन्तर्गत अधिक देखने को मिलता है। भारत म सिंचाई की अन्तिम सम्भाव्यता (ultimate potential) लगभग 11 35 करोड हैक्टयर आकी गयी है, जिसम 5 85 करोड हैक्टयर वृहद् व मध्यम स्कीमो के अन्तर्गत तथा शेष 5 50 करोड हैक्टयर लघु स्कीमो क अन्तर्गत है। इसके प्राप्त कर लिये जाने पर कृषित क्षेत्र के आधे भाग पर सिंचाई होने लगेगी।

भारत म सिंचाई की सम्भाव्यता व इसके वास्तविक उपयोग के बीच अन्तर 1986-87 मे 76 लाख हैक्टयर रहा।

सिंचाई की सम्भाव्यता के कम उपयोग के लिए निम्न तत्व जिम्मेदार रहे है। सिंचाई के प्रोजेक्ट के मुख्य कार्य पूरे हो जाने पर भी कमांड-क्षेत्र-विकास का काम धीमा रह गया। खेतो मे नालिया व बहाव के मार्ग बनाने में विलम्ब पाया गया, सिंचाई-व्यवस्था के ऊपरी मार्ग पर कृषको ने ज्यादा पानी खीच लिया, फसलो का प्रारूप ऐसा अपना लिया जो प्रोजेक्ट-रिपोर्ट से सर्वथा भिन्न निकला एव पानी के जमीन म अत्यधिक सोखे जाने से भी सिंचाई की उत्पन्न-क्षमता का पूरा उपयोग नहीं किया जा सका है।

भारत म सिंचाई का विकास सभी राज्यो म समान रूप से नही हो पाया है। कुछ राज्यो मे सिंचित क्षेत्रफल का अश बहुत ऊँचा है और कुछ मे बहुत नीचा है।

सिंचाई के विकास की दृष्टि से राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात व मध्य प्रदेश की स्थिति पिछडी हुई है, जबकि तमिलनाडु, पजाब आदि की स्थिति काफी अच्छी है। पजाब मे सकल कृषित क्षेत्र के लगभग 88 प्रतिशत भाग पर सिंचाई की जाती है जबकि मध्य प्रदेश मे 12 प्रतिशत भाग पर ही की जाती है (1983-84 को समाप्त होने वाले तीन वर्षो का औसत लेने पर)। भविष्य मे पिछडे राज्यो मे सिंचाई के विकास पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।[1]

भारत मे आजकल सिंचाई के छोटे साधनो पर विशेष बल दिया जाने लगा है क्योकि उन पर थोडा व्यय होता है और कृषिगत पैदावार अल्पकाल मे ही बढ

---

1 Seventh Plan—Mid-Term Appraisal, 1988, p. 97.

जाती है। इसके अतिरिक्त उनकी व्यक्तिगत देख-रेख की जा सकती है और प्रबन्ध आदि की कठिनाई भी नहीं होती। भारत मे कृषि की पैदावार बढाने के लिए छोटे, मध्यम व बडे सभी प्रकार के सिंचाई के साधनो का विकास किया जाना चाहिए। इनमे परस्पर प्रभावपूर्ण ताल-मल व समन्वय भी स्थापित किया जाना चाहिए।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पिछले वर्षों से एक समस्या और सामने आयी है। वह यह है कि सिंचाई की नयी उत्पन्न की गयी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो रहा है। सरकार उत्पन्न-क्षमता व वास्तविक उपयोग के अन्तर को कम करने का प्रयास कर रही है।

1986-87 मे लगभग 76 लाख हैक्टयर मे सिंचाई की क्षमता का उपयोग नही हो पाया था। बिहार, मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र मे विशेष रूप से सिंचाई की क्षमता के उपयोग का अभाव पाया गया है। बिहार मे कोसी व मध्य प्रदेश मे चम्बल क्षेत्र म सिचाई की क्षमता का कम उपयोग हुआ है। महाराष्ट्र मे भी कई परियोजनाओ मे यह लक्षण पाया गया है। सिंचाई की बडी परियोजनाओ की लागत के अनुमानो म निरन्तर बढोतरी हो रही है जिससे सरकार के समक्ष वित्तीय कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं।

सिंचाई के साधनो का उपयोग बढाने के लिए खेतो तक पानी की नालियाँ (field channels) बनानी होती हैं। गुजरात व उत्तर प्रदेश मे कृषि योग्य कमाण्ड क्षेत्र के लगभग दो-तिहाई भाग म एव कर्नाटक व महाराष्ट्र के लगभग आधे भाग मे फील्ड चैनल्स का काम मार्च 1982 तक पूरा कर लिया गया था, लेकिन अन्य राज्यो की स्थिति असन्तोषजनक थी। पचायत समितियो व ग्राम-पचायतो की देख-रेख मे यह कार्य किया जाना चाहिए। किसानो को नई फसलो का ज्ञान एव सुधरी हुई खेती की पद्धतियों की जानकारी कराई जानी चाहिए। पानी के प्रयोग मे किफायत की जानी चाहिए। सुधरे हुए बीज, खाद, साख, बिक्री, गोदाम व परिवहन की व्यवस्था तेजी से करनी चाहिए जिससे सिंचाई का अधिकतम लाभ मिल सके। प्रारम्भिक वर्षों म सिंचाई के लिए पानी की दरों मे रियायतें दी जा सकती हैं।

भारत मे सिंचाई की मुख्य परियोजनाएँ[1]

योजनाकाल मे सिंचाई की वृहद् परियोजनाओ तथा बहुउद्देश्यीय परियोजनाओ पर काफी बल दिया गया है। नदी-घाटी परियोजनाओ का उद्देश्य सिंचाई के अलावा विद्युत, नौकायन पर्यटन, भूसरक्षण, वृक्षारोपण आदि का विकास करना भी है।

आगे सिंचाई की महत्वपूर्ण परियोजनाओ का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है :

---

1. India 1984 pp 275-282. आगे India 1987 मे ये नहीं दी गयी है।

1. भाखड़ा-नागल परियोजना (पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान)—यह भारत की सबसे बड़ी बहुउद्देश्यीय नदी-घाटी योजना मानी गयी है। यह 236 करोड़ रुपये की लागत से पूरी की गई है। इसके अन्तर्गत भाखड़ा के पास सतलज के आर-पार 518 मीटर लम्बा तथा 226 मीटर ऊँचा सीधा ग्रेविटी बांध, 29 मीटर ऊँचा नागल बाध, 64 किलोमीटर लम्बी नागल हाइडल चैनल, भाखड़ा बाध पर दो बिजली घर तथा हाइडल चैनल पर गगुवाल व कोटला बिजली घर तथा 1,110 किलोमीटर लम्बी नहरें व 3,400 किलोमीटर लम्बी वितरिकाएँ आती हैं। भाखड़ा की नहरो से 14 6 लाख हैक्टेयर भूमि मे सिचाई की जाती है।

2. दामोदर घाटी निगम (पश्चिमी बगाल तथा बिहार)—इसमे तिलैया, कोनार, माइथन व पचेट पहाड़ी नामक चार बाध बनाये गये हैं। चारो बाँधो के साथ पन बिजली घर बनाये गय हैं। बोकारो, दुर्गापुर एव चन्द्रपुरा मे तीन ताप (थर्मल) बिजली घर बन हैं। दुर्गापुर मे एक सिचाई जलाशय बना है जिससे नहरें एव शाखाएँ निकाली गयी हैं। दुर्गापुर (पश्चिमी बगाल) मे दामोदर नदी पर एक जलाशय बनाया गया है।

3. हीराकुड (उडीसा)—हीराकुड बांध महानदी पर बनाया गया है और यह विश्व का सबसे लम्बा बाँध है। इसका प्रथम चरण पूरा हो गया है और उससे सम्बलपुर एव बोलनगीर जिलो मे सिचाई होने लगी है। द्वितीय चरण मे चिपनिमा बिजली घर की स्थापना एव हीराकुड बिजली घर का विस्तार कार्य पूरा हो गया है। महानदी डेल्टा सिचाई स्कीम पर काम जारी है। इसके पूरा होने पर कटक और पुरी जिलो मे सिचाई की जा सकेगी।

4 तुंगभद्रा (आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक)—इसमे मल्लापुरम मे तुगभद्रा नदी पर एक बांध बनाया गया है। इसमे बायें किनारे की नहर एव ऊँची व नीची सतह वाली नहर आन्ध्र प्रदेश तथा कर्नाटक मे सिंचाई का कार्य करेगी। इस योजना पर अभी काम जारी है।

5. कोसी (बिहार)—इस परियोजना से बिहार मे बाढ की क्षति कम हुई है। इसकी प्रथम इकाई मे नेपाल मे हनुमाननगर के पास जलाशय, दूसरी इकाई मे बाढ की पालें व अन्य कार्य एव तीसरी इकाई मे पूर्वी कोसी नहर प्रणाली शामिल किये गये हैं। पूर्वी कोसी नहर प्रणाली से उत्तरी बिहार मे पूर्णिया एव सहरसा जिलो मे सिचाई होगी।

कोसी परियोजना के दूसरे चरण म कोसी बिजलीघर, पश्चिमी कोसी नहर, राजपुर नहर एव पूर्वी बाढ की पालो का विस्तार कार्य शामिल है। इन सभी पर काम जारी है। इसकी सिचाई की अन्तिम क्षमता 8·48 लाख हैक्टेयर होगी।

6. चम्बल (मध्य प्रदेश एवं राजस्थान)—इसके प्रथम चरण मे गांधी सागर बांध, इसका 115 मेगावाट का बिजलीघर, वितरण की व्यवस्था, कोटा जलाशय

(barrage) एवं दोनों तरफ की नहरें हैं, जो पूरी हो चुकी है। दूसरे चरण में राणाप्रताप सागर बांध और इसके नीचे एक बिजलीघर का निर्माण कार्य पूरा हो गया है। तीसरे चरण के अन्तर्गत जवाहर सागर बांध और एक बिजलीघर का निर्माणकार्य जारी है। तीनों चरणों के पूरा होने पर 5·15 लाख हैक्टेयर में सिंचाई हो सकेगी।

7 ब्यास (पंजाब हरियाणा तथा राजस्थान)—इसकी पहली इकाई में ब्यास सतलज कड़ी है दूसरी में पोंग स्थान पर ब्यास बाँध है तथा तीसरी में ब्यास ट्रांसमिशन सिस्टम है। तीनों इकाइयों की कुल लागत 715 करोड़ रुपये अनुमानित है। ब्यास-सतलज कड़ी (link) मुख्यतया एक पावर प्रोजेक्ट है। पोंग पर ब्यास बाँध मुख्यतया एक सिंचाई की योजना है। यह बाँध 1974 में पूरा हो गया था। यह योजना राजस्थान, पंजाब तथा हरियाणा में 17 लाख हैक्टेयर में स्थाई सिंचाई की सुविधा प्रदान करेगी। ब्यास परियोजना राजस्थान को प्रत्यक्ष रूप से सिंचाई की सुविधा नहीं देगी, बल्कि यह स्थायी रूप से इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना के लिए जल की पूर्ति करेगी।

इराडी आयोग की 1 मई 1987 की रिपोर्ट के अनुसार पंजाब को रावी-ब्यास नदियों के जल का 50 लाख एकड़ फुट पानी हरियाणा को 38 3 लाख एकड़ फुट पानी तथा राजस्थान को 86 लाख एकड़ फुट पानी मिलेगा। राजस्थान के हिस्से में कोई वृद्धि नहीं की गई है। इस प्रकार राजस्थान के हितों की पूरी तरह रक्षा नहीं हो पायी है।

8 राजस्थान नहर (अब इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना राजस्थान)—यह पंजाब में सतलज और ब्यास नदियों के संगम पर बने हरीके जलाशय (Harike (barrage) से निकाली गई है। इस परियोजना के दो भाग हैं—राजस्थान फीडर: 204 किलोमीटर लम्बी होगी जिसका प्रथम 167 किलोमीटर का भाग पंजाब तथा हरियाणा में होगा और शेष 37 किलोमीटर राजस्थान में। (ii) राजस्थान मुख्य नहर यह 445 किलोमीटर लम्बी होगी और राजस्थान तक ही सीमित होगी। मुख्य नहर गंगानगर जिले में हनुमानगढ़ के 40 मील उत्तर से चलकर जैसलमेर जिले में रामगढ़ तक जायगी। इस नहर पर जून, 1958 से कार्यारम्भ हो गया था। इसके पूरा हो जाने से अकाल-राहत पर व्यय घटाया जा सकेगा। इससे रावी तथा ब्यास के जल का भी पूरा उपयोग हो सकेगा।

यह परियोजना दो चरणों में पूरी की जा रही है। प्रथम चरण में सम्पूर्ण फीडर नहर और 189 किलोमीटर राजस्थान मुख्य नहर व 3075 किलोमीटर लंबी वितरण प्रणाली है। फीडर नहर और मुख्य नहर का काम पूरा हो गया है। मुख्य लूनकरनसर-बीकानेर लिफ्ट नहर तथा पूगल शाखाएँ भी पूरी कर ली गई हैं। प्रथम चरण का महत्व बढ़ गया है क्योंकि राज्य की योजना में क्षेत्रीय विकास पर बल

दिया जा रहा है और विश्व बैंक से भूमि-विकास के लिए सहायता मिली है। दूसरे चरण में 256 किलोमीटर मुख्य नहर एवं उसकी 4800 किलोमीटर लम्बी वितरण व्यवस्था होगी। इस योजना से नई भूमि पर खेती की जायेगी। योजना के पूर्ण होने पर बीकानेर, श्रीगंगानगर व जैसलमेर जिलों में 13·88 लाख हैक्टेयर भूमि में सिंचाई की जा सकेगी।

आगामी 10 वर्षों में जैसलमेर का क्षेत्र गंगानगर से भी ज्यादा हरा-भरा हो जायगा। अनुमान है कि सिंचाई के फलस्वरूप 37 लाख टन अनाज पैदा होगा एवं करोड़ों रु. की अन्य फसलें उगाई जा सकेंगी। दोनों चरणों की कुल अनुमानित लागत 1186 करोड़ रुपये रखी गयी है। इसमें प्रथम चरण की 255 करोड़ रु तथा द्वितीय चरण की 931 करोड़ रु रखी गयी है।

जनवरी 1987 तक मुख्य नहर का काम लगभग पूरा हो गया था। मोहनगढ़ से आगे राजस्थान नहर के अन्तिम छोर से लीलवा शाखा निकाली जा रही है जिसका निर्माण भी तेजी से प्रारम्भ किया गया है। एक और बड़ी शाखा दीघा भी निकाली जायगी। जैसलमर जिले को समृद्ध बनाने में लाठी सिरीज के क्षेत्र का भारी योगदान होगा। वहाँ की समतल भूमि में पानी पहुँचते ही खेती होने लगेगी। *आज भी वहाँ मामूली वर्षा से सीवण घास पैदा होती है जो पशुओं के लिए काफी पौष्टिक मानी गई है।*

इन्दिरा गांधी सशोधित योजना में छः जलोत्थान या लिफ्ट योजनाओं— साहवा, गजनेर, कोलायत, फलौदी, पोकरन तथा बाड़मेर से थार रेगिस्तान में खेती व पेड़ों का विस्तार करने पर काम चल रहा है। इनके अन्तर्गत 60 मीटर ऊँचाई तक नहरी पानी को उठाकर सिंचाई की व्यवस्था की जायेगी।

इसके अलावा सिंचाई की अन्य बड़ी योजनाओं में पंजाब के थीन बाँध (Thein dam) को लिया जा सकता है जो पंजाब में रावी नदी पर बनाया जा रहा है। *इसे उच्च प्राथमिकता दी गई है। अन्य योजनाओं में नागार्जुन सागर (आंध्र-प्रदेश), पोचमपाड (आंध्र), गंडक (बिहार व उत्तर प्रदेश), काकरापारा, उकई और माही (गुजरात) भाद्रा,* ऊपरी कृष्णा, व मालप्रभा (कर्नाटक), तावा (मध्य प्रदेश) भीमा, जयकवाड़ी (महाराष्ट्र), सारदा सहायक व रामगंगा (उत्तर प्रदेश) तथा मयुराक्षी व कांगसावाटी (पश्चिमी बंगाल) के नाम उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारत में सिंचाई एवं बहुउद्देश्यीय योजनाओं में काफी धनराशि का विनियोजन किया गया है। इनके लाभ काफी लम्बी अवधि तक प्राप्त होंगे और देश में कृषिगत पैदावर बढ़ेगी।

भारत में सिंचाई की परियोजनाएँ समय पर पूरी क्यों नहीं होती ?

प्राय यह देखा गया है कि सिंचाई की परियोजनाओं को पूरा करने में बहुत विलम्ब हो जाता है। इससे लागत अनुमान से ज्यादा हो जाती है और योजनाओं

से लाभ मिलने मे देर हो जाती है। अप्रैल 1976 से पूर्व चालू की गई 40 परियोजनाएँ अभी तक पूरी नहीं हो पाई हैं।

छठी योजना मे 5 74 मिलियन हैक्टेयर मे अतिरिक्त सिंचाई की क्षमता उत्पन्न करने का लक्ष्य रखा गया था, जबकि वास्तविक उपलब्धि केवल 4 0 मिलियन हैक्टेयर हो रही हैं।

सिंचाई की परियोजनाओ के समय पर पूरा नहीं होने के लिए निम्न कारण उत्तरदायी माने जा सकते हैं—

1 मुद्रास्फीति के कारण प्रोजेक्टो की लागत मे वृद्धि 2. पर्याप्त वित्तीय साधनो का अभाव 3 प्रोजेक्टों की भरमार जिससे, 4. साधनों को अनेक प्रोजेक्टो पर थोड़ा-थोड़ा फैलाना पड़ता है, 5. भूमि प्राप्त करने मे विलम्ब, 6 पुनर्वास की समस्यायें, 7 विदेशी सहायता नये प्रोजेक्टो के लिए मिलती है एव चालू परियोजनाओ के लिए स्वदेशी साधनो पर निर्भर रहना होता है, 8 सीमेन्ट, इस्पात व विस्फोटक पदार्थों का अभाव होता है तथा 9. आवश्यक प्रशिक्षित कर्मचारियो का अभाव पाया जाता है।

सरकार की सिंचाई नीति—द्वितीय सिंचाई आयोग ने 1972 में एक उच्चस्तरीय राष्ट्रीय जल साधन परिषद" की स्थापना की सिफारिश की थी जो नीतियाँ व प्राथमिकतायें निर्धारित करती है। नदी घाटी योजनाओ को तैयार करने व प्रोजेक्ट के अनुसार विकास कार्यक्रम बनाने के लिए नदी घाटी आयोगो की स्थापना का सुझाव दिया गया था। सूखाग्रस्त क्षेत्रो मे सिंचाई के कार्यक्रमो को ऊँची प्राथमिकता देने, नहरी क्षेत्रों मे सतह व भूतल के जल के इकट्ठे उपयोग पर बल देने, चालू सिंचाई के कार्यक्रमो मे सुधार करने और बहाव व पानी के निकास को अधिक व्यवस्थित करने के सुझाव दिये गये थे।

कुछ वर्ष पूर्व कैप्टिन दस्तूर ने गारलेण्ड नहर योजना (Garland Canal Plan) प्रस्तुत की थी जिसमे हिमालय की तलहटी के जल-साधनो को दक्षिण भारत की नहरो से जोड़ने का सुझाव दिया गया था। डॉ के एल राव ने गगा-कावेरी नहर लिंक योजना का सुझाव दिया था जिसके अन्तर्गत गगा के जल को कावेरी मे मिलाने का कार्यक्रम था, ताकि दक्षिण भारत मे सिंचाई का विस्तार किया जा सके। आर्थिक साधनो के अभाव मे इन योजनाओ को कार्यान्वयन के लिए स्वीकार नहीं किया जा सका। पिछले वर्षों मे सरकार की सिंचाई नीति की मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं —

I केन्द्रीय जल आयोग के तत्वावधान मे (एक केन्द्रीय मोनिटरिंग (monitoring) सगठन स्थापित किया गया है जो चालू परियोजनाओ की प्रगति की देख-रेख करता है और विभिन्न प्रकार की बाधाओ को दूर करने के सुझाव देता है। इसने कुछ राज्यो मे चुने हुए प्रोजेक्टो मे काफी प्रगति करने मे मदद की है। ऐसे ही सगठन राज्यों मे भी स्थापित किये जाने चाहिए।

2. भूतल के जल-साधनों (ground water resources) के विकास को ऊँची प्राथमिकता दी गई है। परिणामस्वरूप खुदे हुए कुओं, (dug-wells), नल कूपों, पम्प-सेटो (डीजल व विद्युत) का तेजी से विस्तार किया गया है।

भूतल के जल-साधनों का अध्ययन किया जाना चाहिए और इनका पूरा लाभ उठाने के लिए अपखण्डन की समस्या हल की जानी चाहिए तथा चकबन्दी के कार्यक्रम को सफल बनाया जाना चाहिए। साथ मे गाँवो मे विकास का आधार-ढाचा भी सुदृढ किया जाना चाहिए।

3 कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम पर ध्यान दिया गया है। पाँचवी योजना मे एक एकीकृत कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम लागू किया गया था। इसके लिए कमाण्ड क्षेत्र विकास-प्राधिकरण (CADA) की स्थापना की गई थी। इसका उद्देश्य सिंचाई परियोजनाओं के कमाण्ड क्षेत्रो म भूमि व जल प्रयोग के प्रबन्ध मे सुधार करना था ताकि सिंचाई की उत्पन्न क्षमता का पूरा उपयोग किया जा सके।

इस कार्यक्रम मे खेतो की नालियो (फील्ड चेनलो) का निर्माण करने, भूमि को समतल बनाने (Land levelling) व सिंचाई की व्यवस्था को आधुनिक बनाने पर बल दिया गया है। छठी योजना के आरम्भ मे 76 परियोजनाओं पर काम जारी था जो बढ कर सातवी योजना के आरम्भ मे 102 हो गई हैं।

छठी योजना मे इस कार्यक्रम पर 818 करोड रु. व्यय किये गये तथा सातवी योजना मे 1671 करोड रु के व्यय का प्रावधान किया गया। फील्ड चैनल बनाने, भूमि को समतल करने व 'वाराबदी (Warabandi) जल-वितरण प्रणाली लागू करने के कार्यक्रमो को आगे बढाया जायेगा। वाराबन्दी प्रणाली मे प्रत्येक सप्ताह बारी-बारी से कृषकों को सिंचाई का पानी उपलब्ध कराया जाता है ताकि सबको समान रूप से सिंचाई का पानी मिल सके।

सातवीं पचवर्षीय योजना 1985–90 में सिंचाई के विकास का कार्यक्रम

भारत मे सिंचाई की अन्तिम सम्भाव्यता (Ultimate Irrigation Potential) 11·35 करोड हैक्टेयर आँकी गई है जिसमे 7·35 करोड हैक्टेयर मे सतह के जल की है तथा 4 करोड हैक्टयर मे भूतल के जल की है। सातवी योजना की अवधि मे सिंचाई के विकास के लिए 14361 करोड रु. की धनराशि आवटित की गई है (11556 करोड रु बृहद् व मध्यम योजनाओं के लिए तथा शेष 2805 करोड रु. लघु योजनाओं के लिए)।

यह अनुमान लगाया गया है कि सिंचाई का क्षेत्रफल 1984–85 मे 6 04 करोड हैक्टेयर से बढकर 1989–90 मे 7·1 करोड हैक्टेयर हो जायगा। इस प्रकार सातवी योजना म अतिरिक्त सिंचाई का लक्ष्य लगभग 1·1 करोड हैक्टेयर रखा गया

जिसम 39 लाख हैक्टेयर वृहद व मध्यम योजनाओं के अन्तर्गत तथा 70 लाख हैक्टेयर लघु कार्यक्रमो के अन्तर्गत होगा ।

1988–89 मे बहुउद्देश्यीय नदी परियोजनाओं पर 1,546 करोड रु का घाटा रहने का अनुमान है । इससे पूर्व भी इनमे काफी घाटा हुआ है। कई सिचाई की स्कीमे 15-20 वर्षों से चल रही है, लेकिन अभी तक पूरा होने का नाम नही लेती, जैसे नागार्जुनसागर (आन्ध्र प्रदेश), गडक व कोसी (बिहार), मालप्रभा (कर्नाटक), कल्लाडा (केरल), तावा (मध्य प्रदेश) तथा कागसाबाटी (पश्चिमी बगाल) ।

भारत मे सिचाई की सम्भाव्यता का पूरा उपयोग नही हो रहा है, क्योंकि खेतो मे नालियाँ व जल-मार्गों के निर्माण, भूमि को समतल करन व भूमि को सही शक्ल मे लाने मे काफी विलम्ब हुआ है। सिंचाई से पानी के रुकने व क्षारयुक्त भूमि के बनन की समस्या उत्पन्न हो गई है । सातवी योजना मे भूमि को समतल करने, भूमि को ठीक स्वरूप प्रदान करने, खेतो मे नालियो का निर्माण करन, जल-वितरण की वाराबदी प्रणाली को शुरू करने (जिसके अन्तर्गत फेर-बदल कर (by rotation) जल की पूर्ति की जाती है) तथा मिट्टी-फसल-जल-प्रबन्ध की एकीकृत पद्धति को लागू करन पर अधिक ध्यान दिया जायगा ।

सातवीं पचवर्षीय योजना मे सिचाई-विकास के मुख्य उद्देश्य (main objectives) नीचे दिये जाते है ।

1. उन सिचाई परियोजनाओं को पूरा करने के लिए प्राथमिकता देना जो काफी आगे की अवस्था मे पहुँच चुकी है । अनुसूचित जाति व अनुसूचित जन-जाति, सूखाप्रभावित क्षेत्रों व अन्य पिछड़े क्षेत्रो को लाभ पहुँचान वाली सिचाई योजनाओं का प्राथमिकता देना।

2 सूखाग्रस्त क्षेत्रो व पिछडे क्षेत्रों मे ही नये मध्यम दर्जे की परियोजनाओं को लागू किया जायगा तथा शीघ्र लाभ प्राप्त करन की दृष्टि से लघु सिचाई कार्यक्रमो पर बल दिया जायगा ।

3 सिचाई की वर्तमान क्षमता का पूरा उपयोग करने के लिए खेतो म नालियाँ बनाने व भूमि को समतल करन पर अधिक ध्यान दिया जायगा एव जल-वितरण की वाराबदी योजना लागू की जायगी ।

4 सिंचित क्षेत्रो मे क्षारयुक्त भूमि व पानी के रुकने की समस्या के हल के लिए जल-निकास स्कीमो (drainage schemes) पर अधिक ध्यान दिया जायगा ।

5 देश के पूर्वी व उत्तरी पूर्वी प्रदेशो मे भूमि के नीचे के जल (ground water) की खोज व विदोहन का कार्य तेज किया जायगा ।

6. नहरों व वितरण-प्रणालियों के रख-रखाव (maintenance) के लिए वित्तीय साधन आवटित किये जायेंगे।

7 राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की सिफारिशें लागू की जायेंगी ताकि बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में अतिक्रमण रोका जा सके।

सरकार उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए चुने हुए प्रोजेक्टों पर धन-राशि आवटित करेगी, कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रमों को लागू करेगी, पानी की दरों में संशोधन करेगी तथा जल-प्रबन्ध में सुधार करके अधिकतम लाभ प्राप्त करेगी।

ड्रिप-सिंचाई या टपक-विधि की सिंचाई (Drip Irrigation)—1987-88 के अभूतपूर्व सूखे के वर्ष में ड्रिप-सिंचाई का गुजरात में प्रयोग किया गया। इसके अन्तर्गत पानी कुए या नहर से लिफ्ट करके खेत पर एक टैंक में जमा किया जाता है। वहाँ से कन्ड्यूट-पाइपों द्वारा सारे खेत को दिया जाता है। इसमें कन्ड्यूट-व्यवस्था को स्थापित करने का खर्च आता है लेकिन पानी की काफी बचत होती है। इस विधि में थोड़े पानी से अधिक लाभ मिलता है। इसमें पानी की मात्रा के अनुसार चार्जेज लिये जाते हैं न कि क्षेत्रफल के आधार पर। इसलिए प्रति हैक्टेयर पानी के चार्जेज कम हो जाते हैं। पानी के अभाव की दशा में ड्रिप-सिंचाई (टपक-विधि की सिंचाई) बहुत लाभकारी रहती है। इससे फसल को काफी फायदा होता है।

रासायनिक उर्वरक (Chemical Fertilisers)

भारत में कृषिगत विकास के लिए रासायनिक उर्वरकों का महत्व दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। 1966 के बाद अधिक उपज देने वाली किस्मों के उपयोग के बढ़ने से रासायनिक उर्वरकों की माँग में तेजी से वृद्धि हुई है। नीचे रासायनिक उर्वरकों के उपभोग, उत्पादन, आयात, आदि की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

उपभोग—भारत में रासायनिक उर्वरकों की खपत विशेषतया पिछले दशक में बढ़ती चालू हुई है। नाइट्रोजन उर्वरक, फास्फेट उर्वरक तथा पोटाश उर्वरकों की खपत 1960-61 में 3 लाख टन से बढ़कर 1987-88 में 90 लाख टन हो गई। अग्र तालिका में पिछले वर्षों में रासायनिक उर्वरकों की प्रगति दर्शायी गयी है।

चुने हुए वर्षों के लिए विभिन्न प्रकार के उर्वरकों की खपत (Consumption) अग्र तालिका में दर्शायी जाती है।[1]

---

1 Economic Survey 1988-89, p. S-21, & P. 23.

(मिलियन टनों म)

	1970-71	1987 88	1988 89 (लक्ष्य)
नाइट्रोजन (N)	1 49	5 82	7 38
फोस्फट (P_2O_5)	0 46	2 27	2·81
पोटाश (K_2O)	0 23	0 92	1 14
कुल NPK	2 18	9 01	11 33

इस प्रकार उर्वरकों का उपभोग 1987-88 म लगभग 90 लाख टन पर पहुँच गया जबकि 1970 71 मे यह 21 8 लाख टन ही था।

व्यापारिक फसलो के उत्पादक बहु पोषण उर्वरकों (multi nutrient fertilisers) की ज्यादा माँग करने लगे हैं। इसे उचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, अ यथा खाद्य व अखाद्य फसलो की उत्पादकता मे अन्तर बढ जायेंगे। कुछ वर्षों क अनुभव से यह भी देखने म आया है कि विभिन्न फसलो के लिए सुझायी गयी उर्वरको की मात्राएँ ऊँची सिद्ध हुई है। अत उनम उचित परिवर्तन किया जाना चाहिए। उवरको की खपत बढाने के लिए साख, सग्रह व वितरण आदि की व्यवस्था सुधारी जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार के उर्वरकों का स तुलित उपयोग (balanced use) किया जाना चाहिए। इसके लिए फास्फेट उवरको का उपयाग बढाना चाहिए। सरकार ने उवरको क उपयोग मे कृषको को प्रशिक्षित करने के लिए कई जिलो म कायक्रम चालू किय हैं। सरकार को विभिन्न क्षेत्रो विभिन्न फसलो तथा विभिन्न प्रकार के कृषको मे उर्वरको की खपत बढानी चाहिए।

भारत मे उवरको के उपयोग मे प्रदेश मौसम व फसलो के अनुसार काफी अन्तर पाये जाते हैं। आजकल भारत में प्रति हैक्टेयर सकल कृषित क्षत्रफल पर 50 किग्रो उवरक का उपयोग होने लगा है। पजाब म उर्वरको का उपयोग राष्ट्रीय औसत का तिगुना तमिलनाडु मे दुगुना तथा राजस्थान मध्य प्रदेश व उडीसा म काफी कम होता है। लगभग 1/3 कृषित क्षेत्रफल म उवरक इस्तेमाल किय जाते है। उवरको का ज्यादातर उपयोग धान गेहूँ गन्न व सकर कपास म किया जाता है। मोट अनाजो तिलहन व दालो म उर्वरको का उपभाग काफी कम पाया जाता है। देश म ऑरगेनिक खादो का भी उपयाग किया जाता है। बायो-गैस प्रोग्राम का भी विकास किया जा रहा है।

उत्पादन व आयात—भारत मे सुपर फॉस्फेट व अमोनियम सल्फेट थोडी मात्रा मे द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भी उत्पन्न किये जाते थे, लेकिन वे मुख्यत: बागान फसलो मे प्रयुक्त किये जाते थे। योजना-काल मे रासायनिक उर्वरको का उपयोग विशेष रूप से प्रचलित हुआ है। इस समय उर्वरकों का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र व सहकारी क्षेत्र मे होता है। लेकिन देश मे उत्पादन की मात्रा मांग से कम रहती है। इसलिए उर्वरको का आयात करना होता है। पोटाश खाद का तो पूर्णतया आयात किया जाता है।

इस समय उर्वरको के उत्पादन मे भारत का विश्व मे चौथा स्थान है जो अमेरिका, चीन व रूस के बाद आता है। पिछले वर्षों मे देश मे नाइट्रोजन व फॉस्फेट उर्वरको का उत्पादन तेजी से बढाया गया है। 1951-52 मे नाइट्रोजन उर्वरको का उत्पादन 16 हजार टन से बढकर 1987-88 मे 54·7 लाख टन एव फॉस्फेट उर्वरको का 11 हजार टन से बढकर 16 7 लाख टन पर आ गया था।

इस समय सार्वजनिक क्षेत्र मे उर्वरको का उत्पादन करने वाले निम्न उपक्रम है—(i) भारतीय उर्वरक निगम [चार उर्वरक उत्पादन इकाइयाँ (सिंदरी, गोरखपुर, तलचर (उडीसा) व रामगुण्डम (आन्ध्र-प्रदेश) तथा एक जिप्सम निकालने के लिए जोधपुर माईनिंग सगठन], (ii) हिन्दुस्तान उर्वरक निगम लि (तीन इकाइयाँ उत्पादन मे [नामरूप (असम.)दुर्गापुर (पश्चिमी बगाल) व बरौनी (बिहार)] तथा दो प्रोजेक्ट निर्माणाधीन), हल्दिया व नामरूप (III), (iii) राष्ट्रीय केमिकल्स व उर्वरक लि. (दो इकाइयाँ) (iv) राष्ट्रीय उर्वरक लि. (चार इकाइयाँ) (v) उर्वरक व रसायन ट्रावनकोर लि. (FACT) (तीन इकाइयाँ], (vi) मद्रास उर्वरक लि. (एक सयुक्त उपक्रम वाली कम्पनी) (vii) पारादीप फॉस्फेट लि. (viii) दी प्रोजेक्ट्स एण्ड डेवलपमेंट इण्डिया लि. जो पहले उर्वरक (नियोजन व विकास इण्डिया लि.) था तथा (ix) पाइराइट्स, फोस्फेट एव केमिकल्स लि। राउरकेला इस्पात सयन्त्र, नैवेली लिग्नाइट निगम व हिन्दुस्तान ताबा लि मे उर्वरक उपोत्पत्ति के रूप मे उत्पन्न किया जाता है। भारतीय कृषक उर्वरक सहकारी सगठन की गुजरात व उत्तर प्रदेश मे उर्वरक इकाइयाँ है।

निजी क्षेत्र की इकाइयाँ कानपुर, कोटा, गोआ, विशाखापटनम, तूतीकोरिन बडौदा, मगलोर, एन्नोर व वाराणसी मे स्थित हैं।

भारतीय गैस प्राधिकरण लि. (GAIL) हजीरा-बीजापुर-जगदीशपुर (HBJ) गैस पाइपलाइन प्रोजेक्ट 17 अरब रुपये की लागत से पूरा करने मे जुटा है। यह पाइपलाइन 1730 किलोमीटर लम्बी होगी। यह गुजरात मे हजीरा से प्रारम्भ होकर मध्य प्रदेश, राजस्थान व यू. पी. मे जायगी और इस पर गैस-आधारित बडे आकार के छ: नाइट्रोजन युक्त उर्वरक सयन्त्र स्थापित किये जायेंगे जिनमे चार उत्तर

प्रदेश में, एक मध्य प्रदेश मे तथा एक राजस्थान होगे। यह पावर-संयत्रो को भी सप्लाई करेगा।

भारत मे रासायनिक खाद के उत्पादन व आयात की स्थिति निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाती है।[1]

[पोषण के हजार टनो मे]

वर्ष	नाइट्रोजन खाद		फॉस्फेट खाद		पोटाश खाद	कुल (NPK) खाद
	उत्पादन	आयात	उत्पादन	आयात	आयात	
1960–61	98	399	52	—	20	569
1987–88	5466	175	1665	—	809	8115

तालिका से पता लगता है कि योजनाकाल मे तीनो प्रकार की खादो की सप्लाई काफी बढायी गई है। पोटाश के लिए आवश्यक कच्चे माल के अभाव मे हम आयातो पर निर्भर रहना पडा है। उदयपुर के पास झामर-कोटरा के क्षेत्र मे रॉक-फॉस्फेट के उत्पादन के चालू हो जाने से फॉस्फेटिक खाद के लिए आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध हुआ है जिससे इस किस्म के उर्वरक का आयात घटाया जा सकेगा।

भारत मे खाद के प्रोजेक्टो को लागू करने मे विलम्ब हुआ है। इसके लिए निम्न कारण उत्तरदायी माने जा सकते हैं : (1) इस्पात की कमी, (2) स्थानीय निर्माताओ (fabricators) द्वारा साज-सामान की सप्लाई मे विलम्ब (3) विदेशी विनिमय के लिए लम्बी अवधि के समझौते न होना। फास्फेट खाद के उत्पादन मे भी लक्ष्य की तुलना म कमी रही है।

अब तक प्रस्थापित क्षमता का पूरा उपयोग न होने के निम्न कारण रहे है।

(1) राउरकेला म कोक ओवेन गैस की अपर्याप्त उपलब्धि, (2) सिंदरी मे जिप्सम व कोयले की कमी व घटिया किस्म, (3) कुछ कारखानो के सम्बन्ध मे डिजाइन व साज-सामान की कमी, (4) सिन्दरी मे एलवाय कारखानो मे 25 वर्षों से

2 Economic Survey, 1988–89, p S—26

साज-सामान की कम कार्यकुशलता, (5) नागल मे पावर की कटौती एव अन्य मे पावर की रुकावटें, (6) कुछ इकाइयो मे औद्योगिक विवाद । सरकार इन बाधाओ को दूर करने मे प्रयत्नशील है । भारत मे क्रूड उर्वरक व तैयार उर्वरक आयात किया जाता है जिनकी कुल राशि 1987-88 मे लगभग 310 करोड रु. रही । सरकार उर्वरक का उपभोग बढाने के लिए सब्सिडी देती है, जिसकी राशि 1987-88 मे 2,164 करोड रु. हो गई थी तथा 1988–89 मे इसके 3000 करोड रु (आयातित उर्वरको पर 250 करोड रु व घरेलू उत्पादन पर 2750 करोड रु.) रहने का अनुमान है ।[1] इस प्रकार सरकार पर उर्वरक सब्सिडी का वित्तीय भार बहुत ज्यादा हो गया । भारत को तेल के स्थान पर कोयला-आधारित उर्वरकों के उत्पादन पर अधिक बल देना चाहिए ।

आजकल ऑरगेनिक खाद व रासायनिक उर्वरको का सन्तुलित उपयोग करने तथा देश मे गोबर-गैस व बायो-गैस सयन्त्रो का कार्यक्रम तेज करने तथा बायो-गैस सयन्त्रो के माध्यम से गोबर के उपयोग पर विशष ध्यान दिया जा रहा है ।

उर्वरक प्रोत्साहन नीति मे उर्वरको को अधिक क्षेत्रो व अधिक कृषको मे फैलाकर अनुकूलतम परिणाम प्राप्त करने का प्रयास किया गया है, बनिस्बत इसके कि इन्हे सीमित क्षेत्र मे प्रयुक्त करके अधिकतम लाभ प्राप्त किया जाय । उर्वरको का उपयोग उन इलाको मे बढाया जा रहा है जहाँ वितरण व सचार की व्यवस्थाएँ अपर्याप्त हैं । कृषको को उर्वरक उचित समय पर व उचित मूल्यो पर उपलब्ध कराने की नीति अपनाई जा रही है ।

उर्वरकों का उपयोग बढाने की नीति के फलस्वरूप भारत का नाइट्रोजन युक्त उर्वरको के उपयोग मे चीन, अमेरिका व रूस के बाद चौथा स्थान हो गया है । फॉस्फेट उर्वरको के उपभोग मे भारत का छठा स्थान है । 1980–81 म भारत मे प्रति हैक्टेयर उर्वरको का उपभोग 31 किलोग्राम हो गया था, जबकि चीन मे यह 155 किलोग्राम एव विश्व का औसत 80 किलोग्राम था । अत भारत मे उर्वरकों का उपभोग बढाने की काफी गुजाइश है ।

पौध-सरक्षण (Plant Protection)

अधिक उपज देने वाली किस्म के विस्तार के फलस्वरूप पौध-सरक्षण का महत्व बढ गया है । फसलो को कीटाणुओ व बीमारियो से बचाने के लिए आवश्यक दवाइयो का उपयोग किया जाना चाहिए । इसके लिए आवश्यक साज-सामान की सप्लाई व वितरण का ठीक करना होगा । कपास, दाल व तिलहन मे कीटाणुओ के नियन्त्रण पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । आधुनिक अध्ययनो से पता चला है कि 1976 77 मे कृषित क्षेत्रफल के लगभग 20% भाग मे कीटाणुओ व बीमा-

1. Economic Survey 1988-89, p. 23

म्यों का प्रकोप था, जबकि कीटनाशक दवाइयों का उपयोग केवल 7·2% क्षेत्र में ही किया गया था। जिन फसलों की सर्वाधिक हानि हुई है वे इस प्रकार हैं : मूंगफली कपास, धान व गन्ना। इनसे कुल कृषिगत उत्पादन का 10 से 15% भी नष्ट माना जाय तो भी एक वर्ष में हजारों करोड़ रुपयों का कृषिगत माल यों ही बरबाद हो जाता है। प्रथम योजना के प्रारम्भ में 100 टन कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग किया गया था जो 1987-88 में 75 हजार टन का लक्ष्य रखा गया है। 1986-87 में कीटनाशक दवाइयों का उपयोग 72 हजार टन हुआ है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में कीटनाशक दवाइयों (टेक्नीकल) का उपयोग 50 हजार टन से बढ़ाकर 75 हजार टन करने का लक्ष्य रखा गया है जिसके प्राप्त हो जाने की आशा है।

अधिक उपज देने वाली किस्मों के कार्यक्रम (HYVP)

1966 से हरित क्रांति के फलस्वरूप विभिन्न फसलों में नयी किस्म के बीजों का उपयोग बढ़ाया जा रहा है। धान, मक्का, ज्वार, बाजरा व गेहूँ में अधिक उपज देने वाली किस्मों का उपयोग बढ़ा है। 1970-71 में यह कार्यक्रम 1·54 करोड़ हैक्टेयर में फैला दिया गया था जो 1986-87 में 5·61 करोड़ हैक्टेयर में फैल गया है। 1987-88 में सूखे के कारण यह घटकर 5·12 करोड़ हैक्टेयर पर आ गया था। पुनः 1988-89 के लिए लक्ष्य 6·5 करोड़ हैक्टेयर रखा गया है।

विभिन्न फसलों के अनुसार कार्यक्रम की प्रगति आगे दी जाती है[1]—

	1970–71	1987-88	सातवीं योजना के अन्तिम वर्ष 1989–90 में (लक्ष्य)
(1) धान (मिलियन हैक्टेयर)	5 6	20 8	32·0
(2) गेहूँ (,, ,,)	6 5	19 6	22·0
(3) मक्का (,, ,,)	0 5	1 9	3 0
(4) ज्वार (,, ,,)	0 8	5·4	6 5
(5) बाजरा (,, ,,)	2 0	3 5	6 5
कुल HYP (मि हैक्टेयर)	15 4	51 2	70 0

देश में गेहूँ की तुलना में चावल का उपभोग अधिक होता है। अतः चावल की किस्मों में परिवर्तन करना अधिक आवश्यक हो गया है। अभी तक हरित क्रांति मुख्यतया गेहूँ की क्रान्ति रही है। 1987-88 में गेहूँ के क्षेत्रफल का लगभग

1. Economic Survey 1988-89 p. S-21.

86·5% तथा चावल के क्षेत्रफल का 54·8% अधिक उपज देने वाली किस्मों (HYV) के अन्तर्गत आ गया था। बाजरे में भी यह 36% तक पहुँच गया था। ज्वार व मक्का में लगभग 1/3 भूमि में HYV का उपयोग होने लगा है। सातवी योजना मे कुल HYV क्षेत्रफल लगभग $5\frac{1}{2}$ करोड हैक्टेयर से बढाकर 7 करोड हैक्टेयर करने का लक्ष्य रखा गया है।

योजना आयोग के सदस्य डॉ वाई. के अलक ने नवम्बर, 1987 मे प्रथम इन्दिरा प्रियदर्शिनी स्मृति व्याख्यान मे बतलाया कि भारत मे गेहूँ व धान मे लगभग समस्त सिंचित क्षेत्रफल HYV के अन्तर्गत आ चुका है जिससे भविष्य मे इनकी पैदावार बढाने के लिए घटिया मिट्टी व घटिया जलवायु वाले क्षेत्रो में जाना होगा। छठी योजनाविधि में 84 लाख हैक्टेयर सिंचित क्षेत्र बढने पर भी सकल कृषित क्षेत्रफल नही बढ पाया है। अतः भविष्य मे जल-प्रबन्ध सुधारना होगा तथा सूखी-कृषि की पद्धति पर अधिक ध्यान देकर उत्पादन बढाना होगा।

आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा व पश्चिमी बगाल में नयी किस्मो के अन्तर्गत क्षेत्रफल को बढाने की दृष्टि से प्रगति धीमी रही है। राष्ट्रीय बीज निगम राष्ट्रीय स्तर पर फाउण्डेशन बीज के लिए उत्तरदायी है। पिछले वर्षो में बीज-वितरण की दृष्टि से इसका कार्य काफी महत्वपूर्ण रहा है। देश मे कपास, दाल, तिलहन व चारे की फसलो के लिए उत्तम किस्म के बीजो का अभाव रहता है जिसकी पूर्ति की जानी चाहिए।

भू-संरक्षण (Soil Conseruation)

कृषिगत साधनो में सिंचाई, रासायनिक खाद, पौध-सरक्षण व नयी किस्म के बीजो के साथ-साथ भू-सरक्षण के उपायो का भी उल्लेख करना आवश्यक है। यह कार्य राज्यो की योजनाओं में किया जाता है। 1970-71 में भू-सरक्षण के कार्य 1·3 करोड हैक्टेयर भूमि में व्याप्त थे जिन्हे 1988-89 के अन्त तक 3·29 करोड हैक्टेयर भूमि तक फैला देने का लक्ष्य रखा गया है। नदी घाटी परियोजनाओ के क्षेत्रो (Catchment areas) मे भू-सरक्षण का कार्य केन्द्रीय सरकार चला रही है।

अन्य साधन (Other Inputs)

कृषिगत साधनो मे सुधरे हुए कृषिगत औजार, फार्म मशीनरी, ट्रैक्टर व कृषिगत साख, वगैरह का भी स्थान होता है। कृषिगत साख का विस्तृत विवेचन आगे एक पृथक अध्याय मे किया गया है। इस बात पर बल देना आवश्यक है कि कृषको को सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको से मिलने वाले प्रत्यक्ष व परोक्ष वित्त मे काफी वृद्धि हुई है। जून 1969 के अन्त मे प्रत्यक्ष वित्त की बकाया राशि कृषि के अन्तर्गत 40 21 करोड रुपये थी जो जून 1987 के अन्त मे 9,300 करोड रुपये हो गयी है। परोक्ष वित्त की राशि भी काफी बढी है। आजकल कृषि व ग्रामीण विकास का

योजनाकाल मे काफी बढ गया है । ट्रैक्टर व अन्य मशीनो का मूल्य इतना ज्यादा नही बढा है । वर्ष के जिस भाग मे कृषक बेकार बैठा रहता है उस समय पशुओ पर व्यय जारी रहता है । लेकिन ट्रैक्टर का व्यय शून्य हो जाता है ।

3 ट्रैक्टर से प्रति हैक्टेयर उपज बढ़ती है एव कुल कृषित क्षेत्रफल बढ़ता है क्योकि बहु-फसल कार्यक्रम व नयी भूमि को तोडने के कार्य तेजी से पूरे हो जाते है । यह देखा गया कि गहरी जुताई से धान या ज्वार की उपज 20 से 25 प्रतिशत बढती है ।

4 बढती हुई मजदूरी क कारण भी देहातो म श्रम के स्थान पर पूँजी को प्रतिस्थापित करने की प्रवृत्ति जोर पकडती जा रही है । भूमि-सुधारो ने भू-स्वामियों को श्रमिको के स्थान पर मशीनें लगाने के लिए प्रेरित किया है ।

5 सस्ते ब्याज पर यन्त्रो को खरीदने की सुविधा ने भी यन्त्रीकरण पर अनुकूल प्रभाव डाला है ।

6 फार्म यन्त्रीकरण से फार्म-रोजगार तो कम होता है, लेकिन यन्त्र बनाने वाले उद्योगों औजारो को सुधारने के केन्द्रों तथा गहन कृषि के अन्य कार्यक्रमो में श्रमिको को अधिक रोजगार मिलने लगता है। इस प्रकार य त्रीकरण से सम्भवत कुल रोजगार म थोडी वृद्धि की आशा की जा सकती है । इस प्रकार फार्म-यन्त्रीकरण से दोनो प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रहती है—

पहली प्रक्रिया म श्रम की माग घटती है और दूसरी प्रक्रिया मे श्रम की माग बढती है तथा कुल परिणाम को देखकर यह पता लगता है कि श्रम की माग थोडी बढती है घटती नही ।

7 अधिक उपज देने वाली किस्मो (HYV) के आने से यन्त्रीकरण को बढावा मिला है और अधिक उपज देने वाली किस्में व यन्त्रो का उपयोग दोनो एक साथ मिलकर अधिक श्रम को प्रयुक्त कर सकते हैं । अधिक उपज देने वाली किस्मो को बोने पर प्रति हैक्टेयर अधिक श्रम दिनो का उपयोग किया जाता है ।

कृषि मे यन्त्रीकरण के दोष—अब हम यन्त्रीकरण के दोषो का उल्लेख करेंगे । ये निम्नांकित है

(1) यन्त्रीकरण ने पशु-शक्ति की माँग घटा दी है जिससे फालतू पशुओ की समस्या उत्पन्न हो गयी है और ट्रैक्टरो का उपयोग बढने से यह समस्या दिनोदिन अधिक तीव्र होती जा रही है ।

(2) बडे पैमाने पर कृषि का यन्त्रीकरण करने से अथवा अन्धाधुन्ध यन्त्रीकरण करने से बेरोजगारी का खतरा उत्पन्न हो सकता है जो भारतीय परिस्थिति म एक नयी समस्या का रूप ग्रहण कर सकता है ।

(3) य त्रो को चलाने क लिए डीजल तेल आदि की माग बढेगी और भारत म इनकी सप्लाई का अभाव है । अत. हम इनका आयात बढाना होगा जिससे हमारी

विदेशों पर निर्भरता बढ़ती जायेगी । डीजल तेल के भाव बढ़ जाने से समस्या और भी जटिल हो गई है । आज देश के समक्ष डीजल तेल का सकंट विद्यमान है ।

(4) भारत के सुदूर देहातों की स्थानीय परिस्थितियों में प्राय विदेशों से मगाये गये ट्रैक्टर पूर्णतया सफल प्रमाणित नहीं होते । उनमें खराबी आ जाने से यान्त्रिक ज्ञान की कमी व अन्य कठिनाइयों के कारण (कल-पुर्जों के अभाव व आवश्यक मरम्मत की सुविधाओं की कमी) उनका उपयोग कष्टदायक प्रतीत होने लगता है ।

(5) ऊँची लागत के कारण अधिकांश कृषकों के पास इनको खरीदने के लायक पर्याप्त मात्रा में पूँजी नहीं होती । इसलिए सरकार को साख की व्यवस्था करनी पड़ती है । यदि यन्त्र कारगर सिद्ध होता है तो भुगतान में कठिनाई नहीं होती; अन्यथा भुगतान में दिक्कतें उत्पन्न हो जाती हैं ।

(6) प्राय यह देखा गया है कि स्थानीय आवश्यकताओं व छोटे कृषकों के लायक आवश्यक यन्त्रों का अभाव होता है । अत देश की परिस्थिति के अनुसार यन्त्रों का निर्माण व प्रचार अधिक सार्थक सिद्ध हो सकता है ।

भारत में कृषि के यन्त्रीकरण के मार्ग में बाधायें

भारत में पिछले वर्षों में, विशेषतया 1966–67 में, कृषि के यन्त्रीकरण को बढ़ावा मिला है । देश में पम्प-सैटों व ट्रैक्टरों आदि की माँग बढ़ रही है और कृषि का व्यवसायीकरण होने लगा है । इससे कई समस्यायें उत्पन्न हो गयी हैं जिनका हल शीघ्र ही निकाला जाना चाहिये । ये समस्यायें इस प्रकार हैं ।

1 यन्त्रों के उत्पादन में कमी—नये यन्त्रों के उत्पादन में कच्चे माल की कमी व अनुसंधान का अभाव बाधा डालते हैं । सरकार ने उत्पादन की क्षमता तो उत्पन्न कर दी है, लेकिन साधनों के अभाव में वास्तविक उत्पादन कम हो रहा है ।

2 कृषकों के पास यन्त्र खरीदने के लिए वित्त की कमी—कृषकों के पास क्रय-शक्ति का अभाव है । अत उनको साख प्रदान करनी होती है और इसमें काफी विलम्ब हो जाता है । भूमि को गिरवी रखने की शर्त पेचीदा होती है ।

3 सेवा सुविधाओं व मरम्मत का अभाव—फार्मों के आस पास मरम्मत व अन्य सेवाओं को प्रदान करने की व्यवस्था नहीं होती है जिससे मामूली खराबी से भी यन्त्र बेकार हो जाता है ।

4 विस्तार सेवाओं की कमी—कृषकों को सही किस्म के औजारों के चुनाव में मदद देने वाली विस्तार संस्थाओं (extension institutes) का अभाव पाया जाता है । उन्हें मशीनों का उपयोग भली प्रकार समझाया जाना चाहिए ताकि वे देश में निर्मित यन्त्रों का अधिकाधिक मात्रा में उपयोग कर सकें ।

5 छोटे कृषकों की कठिनाइयाँ—भारत में छोटे कृषक कीमती मशीनें खरीदने की स्थिति में नहीं होते । उनकी आमदनी कम होती है जिससे वे कृषि में

पूँजी-निवेश नही कर पाते। अत उनको किराये पर मशीनें उपलब्ध की जानी चाहिए। किराये पर मशीनें देने की व्यवस्था दो तरह से की जा सकती है। एक तो मध्यम श्रेणी के किसान मशीनें किराये पर देकर अपनी आमदनी बढा सकते है और छोटे किसानो को लाभ पहुँचा सकते है। दूसरे सहकारी एजेन्सियाँ किराये पर मशीनें देने का कार्यक्रम चला सकती हैं। कृषक-सेवा-केन्द्रो (Farmer s Agro-Service Centres) के माध्यम से उद्यमकर्त्ताओ, कृषक-समूहो व सहकारी कर्मचारियो को प्रशिक्षण व सहायता प्रदान की जाती है ताकि वे लघु व सीमान्त कृषको को विभिन्न प्रकार की सप्लाई व सेवाएँ उपलब्ध कर सकें।

6 **खेतो का छोटा आकार यन्त्रीकरण मे बाधक**—भारत मे छोटे व बिखरे खेतो की भरमार यन्त्रीकरण के मार्ग मे बाधक है। इसके लिए खेतो की चकबन्दी व सयुक्त खेती को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से यन्त्रीकरण ज्यादा लाभकारी सिद्ध हो सकेगा।

भारत में यन्त्रीकरण ने 'विकास की प्रक्रिया से उत्पन्न समस्याओ'' को जन्म दिया है जिनका कुशलतापूर्वक मुकाबला किया जाना चाहिए। हमे नियन्त्रित व धीमी रफ्तार से यन्त्रीकरण करके भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण व व्यवसायीकरण को बढावा देना चाहिये। जनाधिक्य की समस्या के कारण भारत मे स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार ही यन्त्रीकरण किया जाना चाहिए और श्रम का उपयोग विभिन्न विकास कार्यों मे बढाना चाहिए।

भारत मे ट्रैक्टरो का उपयोग उन क्षेत्रो मे किया जाना चाहिए, जहाँ बैलो की शक्ति ठीक समय पर पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नही होती और सीमित अवधि मे नमी का उपयोग करने के लिए ट्रैक्टरो की सहायता आवश्यक होती है। कृषि के लिए नई भूमि या जटिल भूमि को काम म ले सकने के लिए भी ट्रैक्टर प्रयुक्त किये जा सकते हैं **लेकिन कृषि मे अनियन्त्रित किस्म का यन्त्रीकरण ग्रामीण बेरोजगारी को बढा सकता है। इसलिए चुने हुए ढग से ही यन्त्रीकरण (selective mechanisation) किया जाना चाहिए। हमारे लिए चुनाव यन्त्रीकरण करने अथवा न करने के बीच नहीं है बल्कि देश की जरूरतो के मुताबिक चुने हुए ढग का यन्त्रीकरण करने से है।**

प्रश्न

1 भारतीय आर्थिक जीवन मे सिंचाई के महत्व को बतलाइये भारत मे सिंचाई की सुविधाओ को बढाने के लिए पिछले बीस वर्षों मे क्या किया गया है?

(Raj IIyr T D C, 1987)

2 सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) भारतीय कृषि का यन्त्रीकरण (मशीनीकरण)

(Raj IIyr T.D C, 1983)

———

5

भूमि सुधार
(Land Reforms)

भारत में कृषिगत उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने के लिए संस्थागत परिवर्तनों (institutional changes) पर जोर दिया गया है। बहुधा अर्थशास्त्री संस्थागत परिवर्तनों में भू-स्वामित्व की प्रणाली, कृषिगत साख तथा कृषिगत बिक्री के परिवर्तनों को शामिल करते हैं। एक प्रगतिशील संस्थागत परिवर्तन के अन्तर्गत भूमि को जोतने वाला भूमि का मालिक हो जाता है और साख व बिक्री के लिए सहकारी संस्थाओं का उपयोग होने लगता है। आजकल निर्धन-वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इनमें विस्तार-सेवाओं (extension services) को शामिल करने पर भी बल दिया जाता है। लेकिन संस्थागत परिवर्तनों में भूमि सुधारों का स्थान केन्द्रीय तथा सर्वोच्च माना गया है। भूमि सुधारों में काश्तकारी सुधारों[1] (tenancy reforms) के अलावा भू-जोतों पर सीमा निर्धारण, चकबन्दी, सहकारी कृषि भूमिहीनों में भूमि का वितरण, आदि कई प्रकार के कार्यक्रम शामिल होते हैं जिनको अपनाने से कृषि का उत्पादन बढ़ता है और साथ में सामाजिक न्याय का वातावरण भी तैयार होता है। इस प्रकार भूमि-सुधारों का काम कृषि के ढांचे व संगठन में आवश्यक परिवर्तन करना माना गया है। कृषि का सामन्ती ढांचा भूमि के

---

1 काश्तकारी सुधारों में काश्तकारों को भूमि का मालिक बनाना, उनसे उचित लगान वसूल करना तथा उनकी बेदखली से रक्षा करना शामिल होता है। काश्तकारी सुधार भूमि-सुधारों के आवश्यक अंग होते हैं और इनका सम्बन्ध काश्तकारों के कल्याण से होता है। इस प्रकार भूमि-सुधारों का दायरा काश्तकारी सुधारों से अधिक व्यापक होता है।

भूमि सुधारों का भूमि को समतल करने, उसमें घास-पात हटा कर उसे खेती के लायक बनाने आदि के अर्थ में नहीं लिया जाता। इनका अर्थ भूमि-व्यवस्था या भूमि के सम्बन्धों (land relations) के परिवर्तनों से लगाया जाता है जिनसे सरकार, किसान व जमींदार के परस्पर नये सम्बन्ध आते हैं।

रहती है, जो कृषि का विकास नहीं होने देती। ग्रार्थिक विकास के लिए भूमि का न्यायपूर्ण बटवारा ग्रावश्यक माना गया है।

भूमि-सुधारों से ही सहकारिता ग्रान्दोलन पनप सकता है। इनको कार्यान्वित करने से एक ऐसा मनोवैज्ञानिक वातावरण बन जाता है जिसमे सहकारिता का प्रयोग कृषि, साख बिक्री ग्रादि क्षेत्रों मे फैल सकता है।

कई बार यह कहा जाता है कि कृषिगत उत्पादन बढाना तो एक तकनीकी समस्या है जो उचित मात्रा मे खाद, बीज व सिंचाई की व्यवस्था ग्रादि को ग्रपनाने से ग्रपने ग्राप हल हो जाती है। लेकिन यह धारणा सही नहीं है। जब तक भूमि-सुधार के जरिये भूमि-सम्बन्धों या भूमि-ग्रधिकारों की समस्या हल नहीं की जाती तब तक ग्रकेले तकनीकी परिवर्तन ग्रपना पूरा प्रभाव नहीं दिखा सकते। इसलिए भूमि-सुधारों व तकनीकी सुधारों को साथ-साथ लागू किया जाना चाहिए।

किसान खाद, बीज व सिंचाई की चिन्ता उस समय करता है जब वह भूमि का मालिक बन जाता है, ग्रथवा उसे काश्त को पूर्ण सुरक्षा मिलती है ग्रौर बेदखली (भूमि से हटा दिये जाने) का भय नहीं होता। यह एक सामान्य बात है कि जब तक रोग की जड़ें नहीं कटती, तब तक पौष्टिक पदार्थ ग्रपना उत्तम प्रभाव नहीं दिखा पाते ग्रौर रोगी कमजोर बना रहता है। ठीक उसी प्रकार जब तक भूमि-सुधार नहीं होते, तब तक ग्रन्य तकनीकी सुविधाएँ ग्रपना पूर्ण प्रभाव नहीं दिखा पाती। ग्रतएव कृषिगत विकास के लिए सर्वप्रथम भूमि-सुधारों पर ग्रावश्यक बल दिया जाना चाहिए।

भारत मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भू-धारण की तीन प्रथाएँ विद्यमान थी। (1) जमींदारी प्रथा (2) महालवाड़ी प्रथा, ग्रौर (3) रैयतवाड़ी प्रथा। इन प्रथाग्रो मे वास्तविक काश्तकार का शोषण होता था ग्रौर कृषि मे पूँजी लगाने की प्रेरणा सरकार, भू-स्वामी व कृषक तीनों मे से किसी को भी नहीं थी। परिणाम-स्वरूप कृषि व कृषक की दशा ग्रत्यन्त शोचनीय व पिछड़ी हुई थी। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम भूमि-सुधारों की ग्रावश्यकता प्रतीत हुई।

भारत में भूमि-सुधार—नीति व प्रगति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने काश्तकारों, उप-काश्तकारों, बटाईदारों व भूमिहीन मजदूरों की दशा सुधारने के लिए नयी भूमि-नीति ग्रपनायी। वैसे 1947 से पूर्व भी काश्तकारों की सुरक्षा व लगान-नियमन के लिए समय-समय पर विभिन्न राज्यों में कानून बनाये गये थे, लेकिन व्यवहार मे उनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। काश्तकारों की स्थिति मे स्थायी सुधार करने के लिए भूमि व्यवस्था मे क्रांतिकारी परिवर्तनों की ग्रावश्यकता निरन्तर बनी रही। ग्रन्त मे प्रथम पचवर्षीय योजना मे यह निश्चय किया गया कि भूमि का मालिक स्वयं किसान को ही बनाया जाना चाहिए तभी सामाजिक परिवर्तन हो सकेगा ग्रौर कृषिगत उत्पादन बढ़ सकेगा। प्रथम योजना मे भूमि-सुधार सम्बन्धी निम्न कार्यक्रम ग्रपनाने पर जोर दिया गया,

(क) मध्यस्थो का अन्त (ख) लगान मे कमी और काश्तकारो को भू-स्वामी के अधिकार दिलाना। भू-स्वामी के लिए खुदकाश्त के वास्ते भूमि छोडना, (ग) जोतो पर सीमा निर्धारित करना और अतिरिक्त भूमि बाटना, (घ) जोतो की चकबन्दी और भूमि का अपखण्डन रोकना (ड) सहकारी कृषि का विकास और सहकारी ग्राम प्रबन्ध की ओर अग्रसर होना।

प्रथम योजना की अवधि मे म यस्थो का लगभग अन्त कर दिया गया लेकिन भूमि-सुधार के अन्य पहलुओ पर काम करना शष रह गया था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना म भूमि-सुधारो पर ज्यादा जोर दिया गया ताकि देश समाजवादी ढग के समाज की स्थापना की ओर अग्रसर हो सके। बाद मे यह महसूस किया जाने लगा कि भूमि-सुधारो मे अनावश्यक देर होने एव अनिश्चितता बनी रहने से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे अस्थिरता उत्पन्न हो जायेगी और कृषि व औद्योगिक उत्पादन पर इसका विपरीत प्रभाव पडेगा। दूसरी योजना म खुदकाश्त के विचार को सुनिश्चित बनाने का प्रयास किया गया। सीमा-निर्धारण व सहकारी खेती के कार्यक्रमो को लागू करने पर जोर दिया गया एव कृषि के पुनर्गठन के लिए आवश्यक सुझाव दिये गये।

दिसम्बर, 1969 मे सत्तारूढ काग्रेस के बम्बई अधिवेशन मे एक वर्ष मे भूमि सुधारो को कार्यान्वित करने की आवश्यकता स्वीकार की गई। केन्द्रीय भूमि सुधार समिति ने अगस्त 1971 से 'भू-सीमा' को घटाकर 10 से 18 एकड के बीच मे करने का सुझाव दिया था। 22 जुलाई, 1972 को काग्रेस कार्यकारिणी समिति ने भूमि सुधारो पर अपने निर्णय घोषित किये। मार्च, 1976 मे मुख्य-मन्त्रियो के सम्मेलन मे सीमा-निर्धारण कानूनो को 30 जून, 1976 तक लागू करने का कार्यक्रम घोषित किया गया था।

यह सब अब इतिहास के पन्नो की वस्तु बन गई है लेकिन इन तथ्यो का उल्लेख इसलिए किया गया है कि पाठको को भूमि-सुधारो की पृष्ठभूमि की जानकारी हो सके। आज भी सरकार के समक्ष भूमि-सुधारो को लागू करने की समस्या बनी हुई है।

जून, 1978 म स्वर्गीय राजकृष्ण की अध्यक्षता मे नियुक्त भूमि-सुधार समिति ने इस बात पर जोर दिया था कि भूमि-सुधारो को कारगर ढग से लागू करने के लिए ऐसे समस्त कानूनो को सविधान की नवी अनुसूची (Ninth Schedule of the Constitution) मे शामिल किया जाना चाहिए, ताकि भूमि-सुधारो को अदालतो म चुनौती न दी जा सके। ऐसा करने से भूमि-सुधारो को लागू करने मे अधिक सुविधा हो जायगी।

अब हम भारत मे पिछले 38 वर्षो म भूमि-सुधारो की प्रगति की समीक्षा करेंगे ताकि अब तक के अनुभवो से भविष्य मे लाभ उठाया जा सके।

croppers) द्वारा उपज का आधा या इससे अधिक हिस्सा लगान के रूप में दिया जाता था। लगान के अतिरिक्त अन्य भुगतान भी काश्तकारों के द्वारा किये जाते थे।

आन्ध्र प्रदेश पंजाब व हरियाणा को छोड़कर शेष सभी राज्यों में लगान सकल उपज के 1/4 से घटाकर 1/5 कर दिये गये। अन्य राज्यों में भी लगान घटाने के प्रयास किये जा रहे हैं। पश्चिमी बंगाल में सारी निम्न श्रेणी की रैयत या अण्डर-रैयत को राज्य के सीधे सम्पर्क में ला दिया गया लेकिन बरगदारों (बटाईदारों) को शामिल नहीं किया गया हालांकि उनकी ऐच्छिक बेदखली से रक्षा की गयी।

काश्तकारी कानून बन जाने के बाद प्रारम्भिक वर्षों में पुरानी दर में ही लगान लिये जाते रहे। यदि भूमि का मालिक किसान को बीज, बैल व सिंचाई की सुविधा प्रदान करता तो वह उससे अधिक लगान ठहरा लेता। काश्तकारों को अपने कानूनी अधिकारों का पूरा ज्ञान नहीं है और अपनी सामाजिक और आर्थिक दशा खराब होने से भी वे कानूनों का पूरा संरक्षण प्राप्त नहीं कर सके हैं। तृतीय योजना में यह सुझाव दिया गया कि राज्य सरकारों को चाहिए कि वे भू-स्वामियों को काश्तकार से प्राप्त लगान की रसीदें देने के लिए बाध्य करें और काश्तकार रेवेन्यू अफसर के पास लगान की रकम जमा करा दें एवं भू-स्वामियों को सूचित कर दें।

लगान नियमन कानून को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करना एवं स्वामित्व के अधिकार देना अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

(ख) भू-धारण की सुरक्षा (Security of Tenure)—कई राज्यों में भू-धारण की सुरक्षा सम्बन्धी कानून बनाये गये। इनके द्वारा काश्तकारों की बेदखली रोकी गई है। लेकिन ऐच्छिक परित्याग (Voluntary surrenders) के बहाने काश्तकारों की बेदखली की गई है। द्वितीय योजना की अवधि में ऐच्छिक परित्याग के मामलों में रजिस्ट्री करवाने का सुझाव दिया गया था। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया था कि काश्तकार से भूमि का परित्याग कराते समय भू-स्वामी केवल खुदकाश्त में रखी जा सकने वाली भूमि की मात्रा ही अपने पास रखने का अधिकारी माना जाय। लेकिन ये दोनों ही बातें व्यवहार में लागू नहीं की जा सकी हैं।

द्वितीय योजना में खुदकाश्त' (Personal cultivation) की परिभाषा में भू-स्वामी पर चार शर्तें लागू करने का सुझाव दिया गया था : (1) निजी देखरेख (2) गांव या उसके पड़ोस में रहना (आजकल भूमि में पांच किलोमीटर की दूरी का सुझाव दिया जाता है), (3) निजी श्रम, (4) कृषि की जोखिम उठाना। महाराष्ट्र व राजस्थान में पहली और चौथी शर्त लागू की गई। असम में दूसरी शर्त लागू की

गई। लेकिन 'निजी श्रम' की शर्त किसी भी राज्य मे लागू नहीं की जा सकी। भूमि-सुधार के पेनल का सुझाव था कि जब प्रमुख कृषि-कार्य होते हैं, उस अवधि मे भू-स्वामी गाव में या उसके आस-पास अवश्य रहे।

बिहार, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश के आन्ध्र क्षेत्र, गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र, पजाब व हरियाणा मे काश्तकारो व बटाईदारो की दशा वर्तमान कानून के अन्तर्गत अरक्षित पाई गई है।

(ग) काश्तकारियो का पुनर्ग्रहण (Resumption of Tenancies)—इस सम्बन्ध मे राज्यो को चार श्रेणियों मे बाटा जा सकता है :

(अ) वे राज्य जिनमे भू-स्वामियो को पुनर्ग्रहण को इजाजत नहीं मिली, जैसे उत्तर प्रदेश, दिल्ली व पश्चिम बगाल की निम्न श्रेणी की रैयत।

(आ) वे राज्य जिनमे खुदकाश्त के लिए सीमित क्षेत्र ग्रहण करने का अधिकार दिया गया, लेकिन साथ मे यह शर्त लगा दी गई कि काश्तकार के पास एक न्यूनतम क्षेत्र या जोत का टुकड़ा अवश्य छोड़ा जाये। ऐसा बिहार, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उडीसा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश व मणिपुर मे किया गया।

(इ) वे राज्य जिनमे पुनर्ग्रहण का अधिकार इस शर्त पर मिला कि काश्तकारो को एक निर्धारित सीमा तक भूमि प्रदान की जायेगी। भूमि राज्य ही तलाश करेगा। ऐसा पजाब व असम मे किया गया।

(ई) वे राज्य जिनमे ग्रहण करने का अधिकार सीमा-निर्धारण के स्तर तक दिया गया और काश्तकार के लिए एक न्यूनतम क्षेत्र की व्यवस्था की गई। ऐसा आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु मे किया गया।

खुदकाश्त के लिए भू-स्वामियो की पुनर्ग्रहण का अधिकार मिलने से काश्तकारो की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पडा है। लेकिन छोटे भू-स्वामियो के साथ विशेष रियायत होनी चाहिए। बेसिक जोत (पारिवारिक जोत का 1/3) से कम के भू-स्वामियो को समस्त क्षेत्र खुदकाश्त मे रखने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जिस काश्तकार के पास भूमि न रहे, अथवा बेसिक जोत से कम रहे, उसे स्वय सरकार भूमि देने की व्यवस्था करे।

खुदकाश्त के लिए भूमि-ग्रहण करने का कार्य एक निश्चित अवधि तक लागू किया जाना चाहिए था। ऐसा नहीं होने पर मध्यम श्रेणी के भू-स्वामी भूमि का हस्तान्तरण करके छोटे भू-स्वामी बनने का प्रयास करते हैं।

(घ) काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार देना—(Ownership rights for Tenants)-द्वितीय योजना मे यह कहा गया था कि पुनर्ग्रहण न किये जाने वाले क्षेत्रो मे काश्तकारो को भूमि का मालिक बना दिया जाय। मालिक बनाने के लिए

ऐच्छिक अधिकार (Optional rights) न दिये जायें, क्योंकि व्यवहार मे इनका उपयोग नही हो पाता है ।

यह कार्य तीन प्रकार से किया गया :

(अ) काश्तकारों को मालिक घोषित कर दिया गया और उनसे मालिकों को उचित किस्तो मे मुआवजा दिलाने की व्यवस्था की गई । सरकार ने मालगुजारी की बकाया के रूप मे न चुकाई गई किस्तों को वसूल करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली । ऐसा गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश व राजस्थान मे किया गया ।

(आ) सरकार ने मुआवजा देकर स्वय स्वामित्व के अधिकार प्राप्त कर लिये और काश्तकारो को भूमि का मालिक बना दिया तथा मुआवजा उचित किस्तो मे वसूल करने की व्यवस्था की । ऐसा दिल्ली मे किया गया ।

(इ) सरकार ने भू स्वामियो के अधिकार प्राप्त कर लिए और काश्तकारो से सीधे सम्बन्ध स्थापित कर लिए । काश्तकारो को यह छूट दी गई कि वे सरकार को उचित लगान देकर पहले की भांति ही अपना कार्य जारी रखें अथवा निर्धारित मुआवजा देकर भूमि के पूरे मालिक बन जायें । ऐसा केरल और उत्तर प्रदेश मे हुआ ।

सभी राज्यो मे काश्तकारो के लिए भूधारण की सुरक्षा प्रदान करने के लिए कानून बनाये गये । परिणामस्वरूप 80 लाख काश्तकारो/बटाईदारो को स्वामित्व के अधिकार प्राप्त हुए । पश्चिमी बगाल मे बटाईदारो (share-croppers) का पजीकरण अधिकार सम्बन्धी रिकार्ड (records of rights) मे किया गया ताकि उन्हे काश्त की सुरक्षा के लाभ मिल सकें ।

छठी योजना के मध्यावधि मूल्याकन के अनुसार असम, गुजरात, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु व पश्चिमी बगाल मे 70 लाख पजीकृत काश्तकार/बटाईदार पाये गये, जिनमे 24 4 लाख अकेले केरल मे थे ।

पी एस अप्पू का मत है कि भारत मे ज्यादातर काश्तकारी सुधार (tenancy reforms) विफल रहे है तथा काश्तकारी-प्रथा को नियमित व नियन्त्रित करना बहुत कठिन रहा है क्योंकि देश मे भूमिहीन श्रमिको की भरमार है । इसलिए मौखिक व अनौपचारिक (oral and informal) काश्तकारी प्रथा प्रचलन मे अधिक देखने को मिलती है । इसके अन्तर्गत जबानी तौर पर काश्तकारो को भूमि काश्त के लिए दे दी जाती है और इस सम्बन्ध मे कोई लिखा-पढी नही की जाती । इससे रिकार्ड मे तो काश्तारी प्रकट नही होती, लेकिन व्यवहार मे काश्तकारी, उपकाश्तकारी तथा बटाईदारी प्रथाओ का बोलबाला रहता है । कुछ कृषि-अर्थशास्त्रियो का मत है कि छोटे कृषको को अपनी भूमि पट्टे पर दूसरो को देने (lease-out) की मनाही नही होनी चाहिए, क्योंकि भारत मे कृषि से गैर-कृषि कार्यों मे श्रम की गतिशीलता को प्रोत्साहन देने के लिए यह लाभकारी सिद्ध होगी ।

काश्तकारी सुधारों के सम्बन्ध में वर्तमान सरकार तीन दिशाओं में कदम उठाने की बात सोच रही है : (i) कृषिगत भूमि को गैर-कृषकों के हाथ में जाने पर तुरन्त रोक लगाई जाए : (ii) भूमि को लीज पर देने की व्यवस्था रोकी जाए [illegible] एवं (iii) आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा व तमिलनाडु आदि राज्यों में धार्मिक संस्थाओं के अधिकार में काफी भूमि पायी जाती है। इन संस्थाओं के लिए उचित व्यवस्था करने के बाद इनकी भूमि पर काश्तकारों को भू-स्वामित्व के अधिकार देने की व्यवस्था की जाय, जैसा कि अन्य भूमियों के लिए किया गया है। इस सम्बन्ध में यह उचित होगा कि ऐसी भूमि पर सरकार स्वयं [illegible] थोड़ा मुआवजा लेकर काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार देने की व्यवस्था करे।

(3) सीमा निर्धारण (Land Ceilings)—दूसरी योजना में सीमा निर्धारण पर पुनः जोर दिया गया और इसके लिए सीमा में 'पारिवारिक जोत' का तिगुना निश्चित करने का सुझाव दिया गया। एक औसत परिवार खेती के पुराने औजारों की सहायता से जितनी भूमि में साधारण रूप से खेती कर सकता है, उतनी भूमि को पारिवारिक जोत समझा जाता है। सीमा-निर्धारण के दो पहलू होते हैं.

(क) भावी जोतों पर सीमा—इसमें यह निश्चित किया जाता है कि भविष्य में एक व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा कितनी भूमि प्राप्त कर सकेगा। विभिन्न राज्यों में भावी जोतों पर सीमा निर्धारित की गई है।

(ख) वर्तमान जोतों पर सीमा—वर्तमान जोतों पर सीमा लागू करना ज्यादा कठिन होता है विभिन्न राज्यों में सीमा निर्धारण के कानून पास किये जा चुके हैं। असम में 6.74 हैक्टेयर और पश्चिमी बंगाल में 5 से 7 हैक्टेयर तथा राजस्थान में 7.25 से 21 8 हैक्टेयर के बीच सीमा निर्धारित की गई है।

सीलिंग से ऊपर की भूमि राज्य सरकारें अपने अधिकार में ले लेती हैं। अतिरिक्त भूमि पर भूमिहीन किसानों व छोटे किसानों को बसाने का कार्यक्रम रखा जाता है।

सीमा निर्धारण के पक्ष में तर्क

(1) भारत में भूमि का बटवारा काफी असमान है—1980–81 की तृतीय कृषिगत गणना के आंकड़े भूमि के वितरण की असमानता को ही प्रकट करते हैं। इसके अनुसार 2 हैक्टेयर तक की लगभग 3/4 जोतों में 1/4 कृषिगत भूमि समाई हुई थी जबकि 10 हैक्टेयर में अधिक वाली 2 4% जोतों में 23% अथवा लगभग 1/4 कृषित भूमि समाई हुई थी। इस प्रकार भारत में अधिक भूमि थोड़े हाथों में केन्द्रित हो गई है। भूमि के वितरण की यह असमानता सामाजिक असन्तोष व तनाव उत्पन्न करने वाली है। अत: एक ओर बहुत बड़े फार्म हैं जिनका प्रबन्ध करना कठिन हो रहा है और उन पर कुशलतापूर्वक खेती नहीं की जाती है, तो दूसरी ओर

बहुत से छोटे फार्म हैं जिन्हें अनार्थिक जोत कहते हैं। उन पर साधनों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता और खेती अकुशल और अलाभप्रद रहती है। अत बहुत बड़े फार्म और बहुत छोटे फार्म दोनों स्थितियों को समाप्त करके उचित आकार के फार्म बनाने के लिए भूमि पर सीमा निर्धारित करना उचित ठहराया गया है।

(2) सीमा निर्धारण के बाद अपेक्षाकृत छोटे खेतों पर रोजगार की मात्रा बढ़ेगी—सीमा निर्धारण के पक्ष म विशेषता नीची सीमा-निर्धारण के लिए एक तर्क यह दिया जाता है कि इससे रोजगार की मात्रा बढ़ेगी। कारण यह है कि बड़ी जोतों के स्वामी मजदूरी पर श्रमिक रखते है जिनसे वे श्रमिकों को उस बिन्दु तक काम पर लगाते है जहाँ अन्तिम श्रमिक को काम पर लगाने से प्राप्त उत्पत्ति की वृद्धि उसको दी जाने वाली मजदूरी के बराबर नहीं हो जाती। छोटे खेतों पर यह शर्त लागू नहीं होती, क्योंकि उन पर पारिवारिक श्रम का अधिक उपयोग किया जाता है। रोजगार के वैकल्पिक अवसर नहीं होने से पारिवारिक श्रम उस बिन्दु से काफी अधिक दूरी तक लगाया जाता है जहाँ प्रति इकाई श्रम की सीमान्त उत्पत्ति मजदूरी के बराबर होती है। अत छोटे खेतों पर गहन कृषि के कारण अधिक श्रमिकों को काम मिल सकता है। प्रो ए के सेन ने कहा है कि छोटे खेतों पर अधिक लोगों को रोजगार मिल सकता है। आर पी डोर ने अपनी पुस्तक *Land Reforms in Japan'* म बतलाया है कि वहाँ सीमा निर्धारण के बाद प्रति एकड उत्पादकता बढ़ी है। ऐसा विशेषतया चावल की पैदावार म हुआ है।

(3) भूमिहीनों में भूमि का वितरण—सीमा से ऊपर की भूमि भूमिहीनों म बाँटी जा सकेगी जिससे उनम आत्मविश्वास बढ़ेगा। उनका समाज मे स्थान ऊँचा हो सकेगा। इससे गाँवों में निर्धन लोगों की आय बढ़ेगी। जिन लोगों को नई भूमि मिलेगी उनम उत्तरदायित्व की ज्यादा भावना होने से वे उत्पादन म वृद्धि करेंगे। लेकिन इसके लिए यह आवश्यक होगा कि जिन लोगों को भूमि आवन्टित की गई है उनको पर्याप्त मात्रा म कृषिगत साधन भी उपलब्ध किये जायें ताकि आवटित भू-खण्डों पर खेती करके वे स्वय को व समाज को लाभ पहुँचा सकें तथा उत्पादन बढ़ा सकें।

(4) सहकारिता की प्रगति—सीमा लगने से गाँवों म समानता के आधार पर समाज म एक ऐसा वर्ग उत्पन्न होगा जिससे सहकारिता आन्दोलन तेजी से पनप सकेगा। इससे उत्पन्न कृषि का बढ़ावा मिलेगा।

(5) भूमि का सदुपयोग व उत्पादन मे वृद्धि—कुछ लोगों के पास इतनी ज्यादा जमीन है कि वे इसका पूरा उपयोग नहीं कर सकते और कभी-कभी भूमि बिना जोते पड़ी रह जाती है। सीमा लगाने से उत्पादन बढ़ेगा, क्योंकि भूमि का सदुपयोग होगा और गहन कृषि के लाभ प्राप्त किये जा सकेंगे।

(6) पारिवारिक श्रम का अधिक उपयोग—छोटे खेतों के स्वामी अपने खेतों पर अधिक ध्यान देते हैं जिससे तम्बाकू, लाल मिर्च, सब्जी आदि की पैदावार बढ़ती

है, क्योंकि इनके लिए पारिवारिक श्रम का अधिक मात्रा मे उपयोग किया जाता है। केरल मे धनी किसान धान की खेती के स्थान पर नारियल के बागान लगाना ज्यादा पसन्द करते हैं। लेकिन छोटे कृषक ऐसा नही करते क्योंकि उनके पास पारिवारिक श्रम की अधिकता रहती है। धनी किसानो को मजदूरी पर श्रमिक रखने होते हैं।

7 सामुदायिक विकास व ग्राम पचायतो की प्रगति के लिए—गाँवो मे पचायतो के विकास एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम एव सहकारी ढग पर आर्थिक क्रियाओ का विकास करने के लिए भूमि का समान वितरण करना बहुत आवश्यक है। जब तक गाँवो म समानता का वातावरण उत्पन्न नही होता तब तक सामाजिक व राजनीतिक समानता की प्राप्ति एक सुदूर का स्वप्न बनी रहेगी। इसके लिए समानता के आधार पर भूमि का पुनर्वितरण किया जाना चाहिए।

8 भूमि व धन का केन्द्रीयकरण कम करने के लिए—योजनाकाल मे सिचाई, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण विकास, सडक निर्माण, कृषि विस्तार, आदि से अपेक्षाकृत अधिक लाभ धनी व मध्यम श्रेणी के कृषको को मिले हैं। इससे कृषि की उत्पादकता म उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इससे अधिक भूमि वाले किसान ज्यादा सम्पन्न हो गये हैं और उनके हाथो मे धन का केन्द्रीयकरण बढा है जो राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्तो के विपरीत है। ऐसी दशा मे सीमा-निर्धारण का उपाय निर्धन लोगो की सामाजिक स्थिति को सुधारने का एक प्रमुख साधन बन सकता है।

गाँवो की एक मात्र सम्पत्ति भूमि ही होती है। उसके स्वामित्व म असमानता का बना रहना ज्यादा अनुचित है। भूमिहीनो की आर्थिक-सामाजिक स्थिति बहुत निम्न कोटि की मानी जाती है। इसके विपरीत भू-स्वामियो को सामाजिक सम्मान व राजनीतिक अधिकारो के उपयोग करने का अधिक अवसर मिलता है।

सीमा निर्धारण के पक्ष मे ऊपर कई प्रकार के तर्क दिये गये हैं। लेकिन कुछ विचारको न इसकी उपयोगिता मे सन्देह प्रकट किया है उनका कहना है कि सीमा-निर्धारण (विशेषतया नीची सीमा लगाने से) देश की कृषि-व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो जाएगी उत्पादन घट जायगा और सर्वत्र छोटे-छोटे अनार्थिक खेत ही नजर आने लगेंगे।

सीमा निर्धारण के विपक्ष में तर्क

1 सीमा लगाने से ग्रामीण आय व शहरी आय मे अन्तर बढ जायेगा। यदि भूमि पर सीमा लगाकर गाँव के निवासियो की आमदनी सीमित की जाती है तो प्रश्न उठता है कि अन्य उद्योगो व व्यवसायो से होने वाली आय भी सीमित क्या नही की जाती? शहरो म प्रति वर्ष विभिन्न व्यक्तियो को कारखानो, व्यापार एव मकानो से लाखो-करोडो रुपए की आय होती है। स्वर्गीय डी आर गाडगिल का मत था कि "यदि गैर-कृषि-आय पर सीमा लगाने का विचार नहीं किया जाता तो

कृषि आय पर सीमा लगाना अन्यायपूर्ण ही नहीं होगा, बल्कि समाज मे भारी असन्तुलन व असतोष उत्पन्न कर देगा।" गाँव के लोग अपनी सन्तान को उच्च शिक्षा (डॉक्टरी, इन्जीनियरिंग आदि) नहीं दिला सकेंगे। समाज मे उनका राजनैतिक प्रभाव घट जायेगा। शहरी वर्ग ग्रामीण वर्ग पर शासन करने लगेगा। उद्यमी व उत्साही व्यक्ति कृषि व्यवसाय मे न लगकर शहरो की ओर जायेंगे। इससे कृषि और भी ज्यादा पिछड़ जायेगी और उसमे पूँजी-निवेश घट जायेगा।

2. छोटे पैमाने की खेती—सीमा लगन के बाद छोट पैमाने पर खेती होगी जिसमे पशुओ व यन्त्रों का प्रयोग ठीक से नही किया जा सकेगा। अत बड़े पैमाने की खेती की किफायतें या बचतें नही मिल पायेंगी'। लकिन इस समस्या का समाधान सेवा-सहकारिताओ का विकास करके किया जा सकता है जिसमे बड़े पैमाने की किफायतें छोटे खेतो को भी मिल सकती हैं।

सीमा लगने से उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? इस सम्बन्ध मे कुछ भी निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता। आज स्वामित्व की जोत (ownership holding) बड़ी होने पर भी कृषि की जोत (operational holding) कई भागो मे बटी होने से छोटी ही होती है। सीमा लगन के बाद यदि सिचाई का प्रयोग करके गहन कृषि की जाय तो उत्पत्ति के घटने का प्रश्न ही नही उठता। सीमा-निर्धारण का उद्देश्य अनार्थिक जोतें बनाना नही है, बल्कि अत्यधिक बड़ी जोतो के आकार का सीमित करना अथवा कम करना है। अत्यधिक नीची सीमा लगने से उत्पादन के घटने का भय हो सकता है जापान, बेल्जियम व नीदरलैण्ड मे छोटे खेतो पर भी प्रति एकड उपज काफी ऊँची पायी जाती है। अत. भू जोतो पर सीमा लगने से प्रति एकड उपज का घटना आवश्यक नहीं है।

3 बिक्री योग्य बचत मे कमी की सम्भावना—सीमा लगने के बाद छोटे-छोटे बहुत से भू-स्वामी बन जायेंगे। वे कुल उत्पत्ति मे से अपने लिए मात्र भर का अनाज रखकर शेष को बिक्री के लिए बाजार म ले जायेंगे। स्वर्गीय गुन्नार मिर्डल ने भी स्वीकार किया था कि इससे बिक्री-योग्य बचत (marketable surples) म कमी आने की सम्भावना हो सकती है। इससे शहरो म खाद्यान्नो की कमी आने से मूल्य बढ़ेंगे और देश मे मुद्रास्फीति की समस्या उत्पन्न हो जायगी। विद्वानो का मत है कि बड़ी जोतो पर बिक्री-योग्य बचतें अधिक होती हैं।

4 अनार्थिक जोतो के बढ़ने का भय—सीमा लागू करन के बाद यदि उत्तराधिकार के नियम के अनुसार भूमि का विभाजन जारी रहा तो एक ही पीढी म एक साथ सारे देश म अनार्थिक जोते उत्पन्न हो जायेंगी और उस स्थिति को सम्भालना बहुत मुश्किल हो जायगा। इस सम्बन्ध मे भी गुन्नार मिर्डल का मत है कि यह भय निराधार है, क्योकि भारत मे आज भी खेती बटाईदारो व काश्तकारो तथा खेतिहर मजदूरो की सहायता से छोट-छोटे खेतो पर ही की जाती है।

5 विभिन्न प्रशासनिक कठिनाइयाँ——सीमा निर्धारण के विरुद्ध म एक तक यह भी दिया जाता है कि इसमें कई प्रकार की प्रशासनिक कठिनाइयाँ हैं जिनका हल निकालना बहुत कठिन ह जैसे—(अ) सीमा ऊँची हो या नीची हो ? (आ) सीमा निर्धारण का आधार क्या हो ? आय को आधार माना जाय या भूमि के आकार को ? (इ) अतिरिक्त भूमि का सर्वोत्तम उपयोग कैसे किया जाय ? (ई) अतिरिक्त भूमि का मुआवजा कैसे निर्धारित किया जाय ? (उ) अनुचित अन्तरणों (malafide transfers) (बेनामी व फर्जी अन्तरणों) को कैसे रोका जाय ?

6 भूमिहीनों को पर्याप्त भूमि नहीं मिल पायेगी—सीमा निर्धारण से जो भूमि प्राप्त होगी वह भूमिहीनों म बाँटने के लिए पर्याप्त नहीं होगी और उससे उनकी गरीबी नहीं मिटेगी। भारत म अधिकांश जत छोटे होने से सीमा निर्धारण का प्रभाव सम्पन्न किसानों को दरिद्र बनाना होगा।

7 ग्रामीण बेरोजगारी मे वृद्धि का भय—सीमा निधारण से जो लोग बड फार्मों पर मजदूरी करके अपना पेट भरते हैं उनके रोजगार दन की जटिल समस्या खडी हो जायगी। इस प्रकार सीमा निधारण से गाँवों में बेरोजगारी या अद्ध बरोजगारी के बढन का भय हो सकता है।

8 नये लोगो के पास विनियोग का अभाव—सीमा निर्धारण के विरुद्ध एक तक यह दिया जाता है कि भूमि के पुर्नवितरण से जिन नये लोगों को भूमि मिलेगी उनके पास विनियोग के लिए पूँजी इतनी कम होगी कि वे खेती क लिए आवश्यक धन राशि नहीं जुटा पायेंगे। परिणामस्वरूप भूमि का पूरा उपयोग नहीं हो सकेगा और कृषिगत उत्पादन घट जायगा। इस तक म कुछ सार अवश्य है लेकिन भारत म सहकारी संस्थाओं व्यावसायिक बैंकों तथा ग्रामीण बैंकों के माध्यम से उत्पादन ऋण (Production loan) की व्यवस्था करके इस समस्या का उचित समाधान निकाला जा सकता है।

की जा सकती है, क्योंकि टेक्नोलोजी बडे व छोटे दोनो प्रकार के खेतो पर समान रूप से लागू की जा सकती है। यह वस्तुत: उत्पादन के पैमान के प्रति तटस्थ (scale-neutral) होती है।

11 महाजन के प्रभाव में वृद्धि की आशका—बटाईदारो व भूमिहीन श्रमिको को भूमि के अधिकार मिल जाने से उनकी कर्ज लेने की क्षमता व इच्छा बढ जायेगी जिसमे वह महाजन के चगुल मे फस जायेगे और अन्त मे अपनी भू-जोतें खो बैठेग।

12 अनार्थिक व बहुत छोटी जोतो की भरमार—दाडेकर व रथ ने अपने सुप्रसिद्ध अध्ययन 'Poverty in India' मे बताया है कि सीमा-निर्धारण से देश मे अनार्थिक व अलाभप्रद जोतों की सख्या बढ जायेगी क्योंकि हमारे दश मे बाँटन के लिए पर्याप्त भूमि नही मिल पायेगी। भूमि के छोटे-छोटे स्वामी या तो अपनी भूमि बेच देग अथवा बडे कृपको को किराय पर उठा देंगे जिससे उल्ट या विपरीत ढग की काश्तकारी प्रथा प्रचलित हो जायगी। **यही कारण है कि दांडेकर व रथ ने सीमा-निर्धारण के स्तर को नीचा करने का समर्थन नहीं किया है।**

इस प्रकार सीमा-निर्धारण के विपक्ष मे कई प्रकार के तर्क पश किये गये है। अत यह प्रश्न बहुत पेचीदा है और कई प्रकार की समस्याओ से घिरा हुआ है। वास्तव म इतना क्रान्तिकारी कदम आसान हो भी नही सकता। इससे करोडो भू-स्वामियो काश्तकारो व भूमिहीन मजदूरो के आर्थिक जीवन पर प्रभाव पडता है। फिर उसका लागू करना और भी कठिन माना गया है। पिछले वर्षों मे सीलिंग से ऊपर की भूमि सम्बन्धियो मित्रो आदि म बाँट दी गई है और अनुमान है कि सीलिंग ऊँची रखने से अतिरिक्त भूमि (surplus land) कम मिलती है और नीची रखने मे गाँवो के उत्साही व कर्मठ कृपक निराश हो जाते है। इन सब कारणो से सीमा-निर्धारण का मामला व्यवहार मे काफी जटिल बन गया है।

भारत में सीमा-निर्धारण की दिशा में प्रगति

सीमा-निर्धारण से सम्बन्धित सभी प्रकार के प्रश्नो की जाँच करने का कार्य केन्द्रीय भूमि सुधार समिति को सितम्बर 1970 मे सौपा गया था जिसने अपनी रिपोर्ट अगस्त, 1971 मे पेश की थी। इसम विभिन्न राज्यो के सीमा-निर्धारण-कानूनो मे समानता लाने हेतु कई सुझाव दिये थ। 23 जुलाई, 1972 को नई दिल्ली म मुख्य मन्त्रियो के सम्मेलन मे सीमा-निर्धारण के सम्बन्ध मे निम्न सिफारिशे की गई थी—

(i) सीमा सम्पूर्ण परिवार के लिए लागू हो तथा परिवार में पति-पत्नी व नाबालिग बच्चे शामिल माने जाएँ।

(ii) परिवार मे सदस्यो की सख्या पाच से अधिक होने पर प्रत्येक सदस्य के लिए अतिरिक्त भूमि की व्यवस्था की जाय लेकिन एक परिवार के पास निर्धारित सीमा के दुगुने से ज्यादा भूमि न रहने दी जाय।

(iii) पाँच सदस्यों के परिवार के लिए सीमा 10 से 18 एकड स्थायी सिंचित भूमि या दो फसल उगाने लायक सिंचित भूमि रखी जाय। विभिन्न राज्यो एव एक ही राज्य के विभिन्न भागो मे मिट्टी की दशाओ भूमि की उर्वरता, उगाई गई फसल की किस्म म अन्तर होने स य सीमाएँ सुझायी गयी थी।

(iv) सूखे क्षेत्रो के लिए भी पाँच सदस्यो के परिवार के लिए एक निरपेक्ष सीमा (Absolute Ceiling) 54 एकड सुझायी गयी थी जिसम विशेष परिस्थितियो को देखकर ही परिवर्तन किया जाना चाहिए जैसे मिट्टी की किस्म, वर्षा, सूखे की दशाएँ आदि।

(v) राज्यों के प्रचलित कानूनों मे यन्त्रीकृत खेतो सुनियोजित खेतो आदि के सम्बन्ध में जो छूटें दी गई हैं, वे हटा लेनी चाहिए।

(vi) चाय, कहवा, इलाइची व रबड आदि बागानो के पक्ष म दी गई छूटो की सम्बन्धित मन्त्रालयो व राज्य सरकारो के साथ मिलकर ध्यान स जाँच की जानी चाहिए। उसके बाद उन छूटों के सम्बन्ध म राष्ट्रीय नीति निर्धारित करने के लिए मुख्य-मन्त्रियो से बातचीत की जानी चाहिए।

सीमा-निर्धारण के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति—बाद मे अधिकाश राज्यों म सीमा निर्धारण कानूनो मे सशोधन किये गये और ज्यादातर राज्यो मे सीमा का स्तर नीचा किया गया और परिवार को लागू करने की इकाई माना गया। केवल उडीसा मे अकेले भू-स्वामी को ही इकाई माना गया।

चुने हुए राज्यों मे जोतो पर वर्तमान सीमा का स्तर (हैक्टेयर मे)

राज्य	सिंचित भूमि	असिंचित भूमि
(1) बिहार	6 07—10 12	12 14—18 21
(2) मध्य-प्रदेश	7 28—10 93	21 85
(3) राजस्थान	7 28—10 93	21 85—70 82
(4) उत्तरप्रदेश	7 30	10 95—18 25
(5) पश्चिमी बगाल	5	7

इस प्रकार विभिन्न राज्यो म सीमा-निर्धारण के स्तरो म काफी असमानताएँ पायी गयी हैं। नागालैंड मेघालय, अरुणाचल प्रदेश व मिजोरम म भूमि प्राय 'समुदाय' के द्वारा रखी जाती है इसलिए इनको छोडकर अन्य सभी राज्यो मे

सीमा-निर्धारण के कानून बनाये गये हैं, लेकिन सीलिंग से ऊपर की भूमि को ग्रहण करने तथा उसका वितरण करने का काम काफी धीमा रहा है। अब तक लगभग 29 7 लाख हैक्टेयर भूमि अतिरिक्त भूमि (surplus) घोषित की गई है जिसमे से 23 6 लाख हैक्टेयर भूमि राज्य ने अपने अधिकार म ली है तथा 18 2 लाख हैक्टेयर भूमि का वितरण 33 7 लाख व्यक्तियो म किया जा चुका है। इससे कई लाख परिवार लाभान्वित हुए है, जिनमे अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के परिवारो का अश आधे से ज्यादा रहा है। अतिरिक्त घोषित भूमि के 6 6 लाख हैक्टयर के सम्बन्ध म मुकदमेबाजी चल रही है जो आध्र प्रदेश बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र पश्चिमी बगाल म अधिक है।[1] सीलिंग से ऊपर की भूमि पर बसाये गये लोगो को खेती म मदद देने के लिए वित्तीय सहायता भी दी जाती है।

सीलिंग कानूनो को व्यवहार मे लागू करने की दृष्टि से काफी कमिया रही है जिससे अतिरिक्त भूमि की मात्रा लक्ष्य से बहुत कम मिली है। द्वितीय कृषिगत सेन्सस 1976–77 के अनुसार 'अतिरिक्त या सरप्लस भूमि' की मात्रा 88 84 लाख हैक्टयर होनी चाहिए थी, जबकि राज्यो द्वारा 29 7 लाख हैक्टयर ही सरप्लस घोषित की गई है। इन दोनो मे विशाल अन्तर का प्रमुख कारण भूमि के बेनामी व फर्जी हस्तान्तरण हैं जिन्हे न रोकने से यह स्थिति बनी है।

4. कृषि का पुनर्गठन : (क) चकबन्दी (Consolidation of holdings)—भूमि के बिखरे हुए टुकडो को एकत्र करना ही चकबन्दी कहलाता है। अब तक विभिन्न राज्यो मे 5 26 करोड हैक्टेयर भूमि मे चकबन्दी की जा चुकी है जो देश मे कुल कृषित भूमि का 33 प्रतिशत (लगभग 1/3)है। योजनाओ मे चकबन्दी के लिए धनराशि का प्रावधान किया जाता रहा है। उत्तर प्रदेश, पजाब व हरियाणा मे चकबन्दी का कार्य लगभग पूरा किया जा चुका है। अन्य राज्यो मे उसकी प्रगति धीमी रही है। चकबन्दी से काश्तकारो व बटाईदारो को हानि भी हुई है, क्योकि भू-स्वामी बडे खेतो पर स्वय खेती करने लगे है। कई राज्यो म भूमि के हस्तान्तरण व टुकडो पर रोक लगाई गई है, और भूमि की न्यूनतम सीमा भी निर्धारित की गयी हैं जिसके नीचे भूमि का विभाजन नही होने दिया जाता।

---

1 D Bandyopadhyay's article on Land Reforms in India, EPW, June 21–28, 1986, p A-50 ऊपर सीलिंग के आकडे भी इसी लेख से लिये गये हैं। India 1987 (पृ 399) के अनुसार जून, 1987 तक 44·2 लाख एकड भूमि 41 लाख भूमिहीन खेतिहर मजदूरो व अन्य व्यक्तियो मे बाटी गयी है। एक हैक्टयर=2·471 एकड होता है।

हम पहले बतला चुके हैं कि चकबन्दी से अपखण्डन के दोष दूर हो जाते हैं और भूमि की उत्पादकता में सुधार होता है। एक कृषक के विभिन्न टुकड़े एक जगह पर आ जाने से उत्पादन लागत कम हो जाती है और खेतों की देखभाल अच्छी होती है और कार्यशील जोत का आकार भी बढ़ जाता है जिससे आधुनिक कृषि को प्रोत्साहन मिलता है। प्रोफेसर बी० एस० मिन्हास ने कृषिगत सुधारों में चकबन्दी पर काफी बल दिया है जिससे इसका महत्व स्पष्ट हो जाता है। हम उपविभाजन व अपखण्डन के अध्याय में बतला चुके हैं कि पंजाब व उत्तरप्रदेश में चकबन्दी से काफी लाभ हुए हैं जैसे अतिरिक्त भूमि पर खेती होने लगी है (सीमाओं व मेड़ों में से भूमि निकाली गई है जो काश्त में लाई गई है) फसलों का प्रारूप व्यापारिक फसलों के पक्ष में बदला है जिससे किसानों की आमदनी बढ़ी है निजी तौर पर सिंचाई का विस्तार होने से कृषिगत उत्पादन व उत्पादकता बढ़ी है उत्पादन की लागत घटी है तथा गांवों में मुकदमेबाजी कम हुई है तथा ग्रामीण समाज पहले से अधिक पारस्परिक सहयोग के आधार पर काम करने लगा है।

(ख) भूमि के प्रबन्ध में सुधार—इसके अन्तर्गत बंजर भूमि का उपयोग सुधरे हुए बीजों का प्रयोग कीटनाशक दवाइयों का उपयोग आदि आते हैं। प्रथम व द्वितीय योजनाओं में भूमि के प्रबन्ध में सुधार करने पर जोर दिया गया था। उनमें यह सुझाव दिया गया था कि सर्वप्रथम भूमि का कुशल प्रबन्ध व प्रयोग उन क्षेत्रों में होना चाहिए जहाँ इसके लिए अनुकूलतम परिस्थितियाँ विद्यमान हैं।

(ग) सहकारी खेती—पहले बताया जा चुका है कि भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर संयुक्त खेती करना भारत के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। भूतकाल में सरकार ने ऐच्छिक सहकारी खेती को बढ़ावा देने के लिए वित्तीय सहायता, लगान व आय कर में रियायत आदि दी थी।

हमारे देश में उन्नत कृषि सहकारी समितियाँ अथवा सहकारी सेवा समितियां चालू करने पर जोर दिया गया है ताकि किसानों को खाद बीज एवं औजार खरीदने व बिक्री आदि कार्यों में मदद मिल सके।

30 जून 1981 को देश में 5 345 संयुक्त कृषि समितियाँ (Joint farming societies) थी जिनकी सदस्य संख्या 2 07 लाख व क्षेत्रफल 4 7 लाख हैक्टेयर था। इसी अवधि में 3 7?8 सामूहिक कृषि समितियाँ (Collective farming societies) थी जिनकी सदस्य संख्या 1 50 लाख व क्षेत्रफल 2 4 लाख हैक्टेयर भूमि था। इनमें से बहुत कम समितियाँ लाभ में चल रही थी।

इस प्रकार 30 जून 1981 को कुल सहकारी कृषि समितियाँ 9,103 थी [illegible]

[illegible] भारत में आजकल सहकारी संयुक्त कृषि का प्रचार बहुत कम हो गया है। कृषिगत विकास की नीति में इस पर विशेष जोर नहीं दिया जाता। वस्तुतः छोटे खेतों [illegible]

के लिए तथा नये क्षेत्रों मे भूमिहीनो को बसाने के लिए इनकी उपयोगिता से इन्कार नही किया जा सकता।

(घ) भूमिहीन मजदूरो को बसाना एवं भूदान-आन्दोलन—1951 मे भूदान आन्दोलन भूमिहीन मजदूरो को भूमि पर बसाने के लिए प्रारम्भ किया गया था। इसमे इच्छा से प्रत्येक भू-स्वामी से 1/6 भूमि दान मे माँगी गई थी। बाद मे यह आन्दोलन ग्राम-दान मे परिवर्तित हो गया। 1952 मे स्वर्गीय विनोबा भावे ने विहार मे 'पदयात्रा' करके 8 4 लाख हैक्टेयर भूमि भूदान म प्राप्त की थी। अब तक भदान मे लगभग 42 लाख एकड भूमि प्राप्त हुई है जिसमे से 13 लाख एकड भूमि का ही आवटन किया गया है। राज्य सरकारो ने भूदान की भूमि के विकास के लिए आवश्यक कार्य नही किया है। देश मे 1 67 करोड हैक्टेयर कृषियोग्य व्यर्थ-भूमि भी उपलब्ध है लेकिन इसका भी समुचित उपयोग व विकास नही हो पाया है।

भूदान आन्दोलन का मूल्यांकन—भूदान या ग्रामदान आन्दोलन ने भूमि-सुधार के लिए और विशेषतया सहकारी ग्राम-प्रबन्ध के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया था। भारत मे भूमि-सुधार के कार्यक्रमो को लागू करना बहुत आवश्यक है। यह कार्य केवल सरकारी कानूनो से पूरा नही हो सकता है। व्यवहार मे सरकारी कानूनो को ठीक ढग से लागू नही किया जा सका है, जिससे वाछित परिणाम नही निकले है। ऐसी परिस्थिति मे भूदान ग्रामदान व सम्पत्ति-दान आदि के रूप मे जो सर्वोदयी विचारधारा उभरी थी, उसके महत्व से इन्कार नही किया जा सकता। यह एक शान्तिपूर्ण व अहिंसक क्रान्ति का मार्ग माना गया है और गांधीजी के विचारो पर आधारित है। निस्सदेह इससे नये समाज की रचना सच्चे अर्थ मे हो सकती है।

लेकिन व्यवहार मे भूदान आन्दोलन को कई प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पडा है। इसकी प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नाकित है

(1) सच्चे कार्यकर्ताओ का अभाव पाया गया है। (2) भूदान मे प्राप्त भूमि का काफी भाग बजर व अनुपयुक्त किस्म का पाया गया है। (3) कुछ भूमि के कानूनी अधिकारो के सम्बन्ध मे विवाद पाया गया है। (4) भूमिहीनो को केवल भूमि का वितरण कर देने से पर्याप्त लाभ नही होगा; उन्हे कृषि के लिए अन्य साधन भी उपलब्ध कराने होगे जिनका प्राय: अभाव पाया जाता है। (5) आजकल लोगो का यह विचार हो चला है कि भूमि-क्रान्ति से ही वास्तविक समस्या हल हो सकती है और इसके लिए सरकार ही भूमि-सुधारो को कठोरता से लागू करे तो ज्यादा अच्छे परिणाम सामने आ सकते है। निहित स्वार्थो वाला वर्ग भूमि पर से आसानी से अपने अधिकार छोडने वाला नही है। (6) भूदान से भूमि के उप-विभाजन व अपखण्डन की समस्या का हल नही निकल पाया है।

उपर्युक्त बाधाओं को देखते हुए भूदान व ग्रामदान का भूमि-सुधारों की दृष्टि से महत्व बहुत सीमित हो गया है। लेकिन ग्रामीण श्रमिकों व ग्रामीण निर्धनों को संगठित करने मे सर्वोदयी नेता महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं जिसकी आज की परिस्थितियों मे नितान्त आवश्यकता है। गाँव के गरीबों व भूमिहीनों को सगठित करके उनको विभिन्न साधन प्राप्त करने मे मदद की जानी चाहिए जो सरकार उन तक पहुँचाना चाहती है।

भूमिहीन मजदूरों के लाभ के लिए स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्रीमती गाधी ने 1 जुलाई, 1975 को घोषित किये गये 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे निम्न सुझाव दिये थे :

(1) भू-जोतो पर सीमा लगाकर भूमिहीनो मे अतिरिक्त भूमि का वितरण करना; (2) भूमिहीनो व निर्धनो के लिए रिहायशी मकानो की व्यवस्था करना; (3) भूमिहीन श्रमिकों, लघु कृषको व कारीगरो को ग्रामीण कर्ज से मुक्ति दिलाना, तथा (4) न्यूनतम कृषि-मजदूरी के कानूनो की पुन. जाँच करना। इस प्रकार 20 सूत्री कार्यक्रम मे ज्यादा ध्यान भूमिहीनों की आर्थिक दशा को सुधारने पर दिया गया था। 14 जनवरी, 1982 के सशोधित 20 सूत्री कार्यक्रम मे भी भूमिहीन मजदूरो के लिए निम्न कार्यक्रम रखे गये थे : (i) खेतिहर श्रम के लिए न्यूनतम मजदूरी की समीक्षा करना तथा उसे प्रभावपूर्ण ढग से लागू करना (ii) बधुआ श्रम को फिर से बसाने की व्यवस्था करना (iii) ग्रामीण परिवारो को रिहायशी भूखण्ड आवटित करना तथा निर्माण-सहायता के कार्यक्रमो का विस्तार करना।

भारत में भूमि-सुधारो की प्रगति का मूल्यांकन

असंतोषजनक क्रियान्वयन—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारत मे *योजनाकाल मे भूमि-सुधार सम्बन्धी कानूनो की बाढ-सी आ गयी थी।* *मध्यस्थ-वर्ग* की समाप्ति, काश्तकारो की बेदखली से रक्षा करने, लगान का नियमन करने, भूमि को जोतने वाले को भूमि का मालिक बनाने, सीमा-निर्धारण करने, सहकारी खेती, चकबन्दी एव भूदान आदि के सम्बन्ध मे विभिन्न राज्यो मे आवश्यक अधिनियम पास किये गये। भारत मे भूमि-सुधारो के सम्बन्ध मे विभिन्न राज्यो मे काफी असमानता रही है। राज्यो ने क्रियान्वयन मे पर्याप्त तत्परता व गम्भीरता नही दिखाई है, बल्कि अनावश्यक देरी व ढील-ढाल की है, जिससे प्राप्त परिणाम बहुत-कुछ निराशाजनक रहे हैं।

जब हम यह देखते है कि भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनो को कहाँ तक लागू किया गया है, व्यवहार मे काश्तकारो की बेदखली से कहाँ तक रक्षा हुई, लगान कहाँ तक कम हो पाये हैं, कितने किसान भूमि के वास्तविक मालिक बन पाये है, *सीमा-निर्धारण से कितनी अतिरिक्त भूमि मिली है, कितनी अतिरिक्त भूमिहीनो* मे वितरित की गई है कितने सच्चे सहकारी खेत चल रहे हैं, एव कितने भूमिहीन

मजदूरो अथवा किसानो को नई भूमि पर बसाया गया है, तब हमे असन्तोषजनक स्थिति ही मिलती है। देश मे कानून तो बहुत बनाये जा चुके है, लेकिन उन पर पूरी तरह अमल नही किया गया है। कानूनो में कहीं-कही ऐसे छिद्र छोड दिये गये जिनका दुरुपयोग निहित स्वार्थी-वर्ग ने अपनी स्थिति को मजबूत करने मे किया है और कानूनो को अदालतो मे बराबर चुनौती दी गई है। भूमि-सुधारो को ठीक से लागू नही किया जाना एक भारी चिन्ता का विषय है, क्योकि इससे गाँवो मे अनिश्चितता व असन्तोष का वातावरण उत्पन्न हुआ है। स्वय सरकारी प्रकाशनो मे यह स्वीकार किया गया है कि भारत मे भूमि-सुधार-कार्यक्रमो मे ग्रामीण क्षेत्रो मे सामाजिक अन्याय को मिटाने एव भूमि को जोतने वाले की सुरक्षा के लिए बहुत कुछ किया गया है, लेकिन अन्य क्षेत्रो जैसे सहकारी कृषि सीमा-निर्धारण से अतिरिक्त भूमि को प्राप्त करने तथा उस पर भूमिहीन मजदूरो को बसाने व काश्तकारो को भू-स्वामित्व के अधिकार प्रदान करने की दिशा मे पर्याप्त रूप से प्रगति नही हुई है।

भूमि-सुधारो के कानूनो का लाभ विस्तृत क्षेत्रो मे काश्तकारो को नही मिल पाया है। भू-स्वामियो ने खुदकाश्त के नाम पर काफी जमीनें स्वय दबा ली है और काश्तकारो को बेदखल कर दिया गया है। उन्हे भूमि का ऐच्छिक परित्याग (Voluntary Surrender) करने को बाध्य किया गया है। प्रोफेसर गुन्नार मिर्डल ने अपने ग्रन्थ (Asian Drama) (खण्ड I) मे कहा है कि भूमि सम्बन्धी कानूनो के पारित हो जाने से काश्तकारो मे बेदखली की एक लहर-सी दौड गयी और तथाकथित 'खुदकाश्त' के लिए भूमि का पुनर्ग्रहण किया गया। खुदकाश्त की भूमि पर प्राय: बटाईदार व खेतिहर श्रमिक कार्य करते है। सीमा-निर्धारण से बचने के लिए अनियमित व अवैधानिक अन्तरण (Malafide Transfers) भी किये गये है और अतिरिक्त भूमि नगण्य मात्रा मे ही मिल पायी है।

1 जाली सहकारी कृषि समितियाँ—प्राय: यह देखा गया है कि सहकारी कृषि-समितियाँ बडे भू-स्वामियो द्वारा बनायी गयी है जिनके माध्यम से विभिन्न सहकारी सुविधाओ व साधनो का अनुचित लाभ उठाया गया है। ऐसी सहकारी कृषि-समितियाँ नगण्य है जो अनार्थिक जोतो के स्वामियो अथवा भूमिहीन मजदूरो के द्वारा उन्ही के लाभ के लिए बनाई गई हो। इससे सहकारी सगठन भी अनावश्यक रूप से बदनाम हो गया है जो अनुकूल राजनीतिक वातावरण मे ज्यादा अच्छे परिणाम दे सकता था।

ऐसी स्थिति के होने से ही भूमि का असली जोतने वाला व्यक्ति आज भी अपने आपको असहाय, निर्धन व शोषित ही मानता है। भारतीय भूमि-सुधारो के विशेषज्ञ स्वर्गीय डेनियल थौर्नर का भी यही कहना था कि भूमि-सुधार अपने केन्द्रीय व घोषित उद्देश्यो मे सफल नही हुए है।

2. काश्तकारों व बटाईदारों की शोचनीय दशा—काश्तकारों की भूतकाल में बेदखली की गई है और भू-स्वामी काश्तकारी कानूनों को विफल करने के लिए एक प्लाट से दूसरे प्लाट पर काश्तकारों को बदलते रहते हैं। दीर्घकाल से जारी रहने वाले काश्तकार भी अपने आपको अरक्षित (insecure) महसूस करते रहे हैं। इस प्रकार काफी संख्या में कृषकों को 'लीज' की भूमि पर कोई हक नहीं मिला है। वे ऊँचे लगान भरते रहे हैं और अपनी स्थिति के बारे में कभी निश्चित नहीं रहे हैं। उनके पास गुजारे के लिए कम धन-राशि रही है और विनियोग के लिए तो और भी कम।

जब तक भू-स्वामी स्वीकृति न दें, ग्राम-सेवक काश्तकार-किसान के लिए उत्पादन-योजना बनाने में हिचकिचाते हैं। अतः उन्हें साख की सुविधा नहीं मिल पाती है। विद्वानों का मत है कि भूमि के नवीनतम रिकार्ड तैयार करने चाहिए, फसलों के रूप में लगान को नकदी लगान में बदल देना चाहिये तथा काश्तकारों को बिना ग्रहण करने लायक भूमि पर स्वामित्व के अधिकार दे देने चाहियें। यदि सहकारी समितियाँ काश्तकारों को ऋण न दें तो सरकार को इन्हें तकावी ऋण देने चाहिएँ।

3 ऊँचे लगान—भूमि सुधारों की समीक्षा करते हुए डॉ. के एन. राज ने कुछ वर्ष पूर्व कहा था कि 'मुख्य बात यह है कि भारत में पिछली दो दशाब्दियों में भूमि-सम्बन्धी कानून तो काफी बने हैं और अंशतः लागू भी किये गये हैं, लेकिन आज भी कुल कृषिगत क्षेत्र का बड़ा भाग काश्तकारी-प्रथा (tenancy) के अन्तर्गत आता है और लगान प्रायः कानून द्वारा निर्धारित सीमा से काफी ऊँचे देखने को मिलते हैं। भूमि सम्बन्धी कानूनों ने वास्तव में अनेक प्रदेशों में काश्तकारी के कुछ रूपों को तो मिटा दिया है और उनके स्थान पर अनौपचारिक (informal) व दमनकारी फसल बटाई व्यवस्था को लागू कर दिया है। इसका कारण यह है कि भू-स्वामी अब काश्तकारों को मिल सकने वाले अधिकारों से काफी डर गये हैं। भूमि पर जन-भार अधिक होने से भू-स्वामी भूमिहीन किसानों पर ऐसी व्यवस्था लादने में समर्थ हो जाते हैं जो शोषण पर आधारित होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में समाज-व्यवस्था और राजनीतिक शक्तियों के सन्तुलन के कारण काश्तकारों के लिए उन अधिकारों को प्राप्त कर लेना कठिन होता है जो उन्हें कानून की ओर से मिले हुए होते हैं।' फसल-बटाई के आधार पर काम करने वाले काश्तकारों को स्थायी मजदूर श्रमिकों में शामिल मान लिया गया है। सिंचित क्षेत्रों में लगान ऊँचे होने से काश्तकार-कृषकों को उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा नहीं मिलती। देश के सिंचित व अधिक उपजाऊ क्षेत्रों में लगान कुल उपज के 50% से 60% (कभी-कभी और भी अधिक) तक पाये जाते हैं और फसल-बटाई पद्धति व काश्तकारों की सुरक्षा के अभाव में समय-समय पर बदलते भी रहते हैं। इस प्रकार व्यवहार में ऊँचे लगान पाये जाते हैं।

4. सीमा निर्धारण के क्रियान्वयन मे देरी—सीमा-निर्धारण के कानूनो मे कई कमियाँ व दोष रह गये हैं। इसमे काफी छूटें दी गई हैं। कानूनो को लागू करने म विलम्ब, अकार्यकुशलता व भ्रष्टाचार पाया गया है।

विद्वानो का मत है कि तथाकथित अधिकांश अतिरिक्त भूमि घटिया किस्म की पाई गई है एव कुछ तो बाँटने के लायक ही नही है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है द्वितीय कृषिगत सगणना (सेन्सस), 1976-77 के अनुसार अतिरिक्त भूमि की मात्रा 88·84 लाख हैक्टेयर होनी चाहिए थी लेकिन राज्यो द्वारा घोषित अतिरिक्त भूमि की मात्रा केवल 29 7 लाख हैक्टयर ही रही है। अतिरिक्त (सरप्लस) घोषित की गई भूमि कुल कृषित क्षेत्रफल का 2 प्रतिशत से भी कम रही है। इतने भारी अन्तर के लिए कई कारण उत्तरदायी माने जाते है—जैसे बेनामी (किसी दूसरे के नाम से) व फर्जी अन्तरण पिछली तारीख मे कुछ व्यक्तियो के नाम काश्तकारी दिखा देना (बाद मे उनकी भूमि बेच देना या दे देना) ट्रस्ट व सस्थाओ का निर्माण करना, भूमि के विभाजन की व्यवस्था कर लेना आदि। इस सम्बन्ध म वास्तविक स्थिति का अध्ययन करने की आवश्यकता है। कुछ क्षेत्रे मे वन-भूमि व कॉमन-भूमि भी बाँट दी गई है जो भूमि-सुधारो का उद्देश्य नहीं था। इस प्रकार के वितरण से लोगों की कठिनाइयाँ घटने के बजाय बढ गई है।

5 भूमि सुधारो से बचने के प्रयास—हमने भूमि-सुधार जैसे क्रान्तिकारी कार्यक्रम को प्रजातान्त्रिक व शान्तिपूर्ण तरीको से अपनाने का रास्ता अपनाया है। भारतीय सविधान मे किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति के ले लिए जाने पर सरकार ने उचित मुआवजा देने की व्यवस्था स्वीकार की है। भूतकाल मे भूमि-सुधार कार्यक्रम के सम्बन्ध मे सरकार पहले अपने इरादे की घोषणा करती थी, फिर बहुत देर से आवश्यक कानून बनता था, तत्पश्चात् उस कानून को लागू करने की कोशिश की जाती थी। इस बीच मे निहित स्वार्थी-वर्ग सावधान हो जाता है और कानून से बचने के अनेक हथकण्डे व तरीके तलाश कर लेता है। गांवो मे महाजनो व जमीदारो की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का प्रभाव अभी तक समाप्त नही हो पाया है। ऐसी हालत म वर्षों का शोषित काश्तकार, जिस पर कर्ज का भार लदा हुआ है, जो कानून या तो समझता नही अथवा समझते हुए भी अपने अधिकार लेने के लिए अपने आपको असमर्थ पाता है, वह भूमि-सुधारो के लाभो से वचित ही रहेगा।

6. भूमि के वितरण मे परिवर्तन का अभाव—कई वर्षो के भूमि-सुधारो के बाद भी भूमि के स्वामित्व मे विशेष परिवर्तन नही आया है। सीमा-निर्धारण के कानूनो के लागू न होने से स्वामित्व की स्थिति पहले जैसी बनी हुई है। कार्यशील जोतो के वितरण मे भी विशेष अन्तर नहीं आया है 1980-81 की तृतीय कृषि सगणना के अनुसार 1 0 हैक्टेयर तक की सीमान्त जोतें 56·5 % थी और उनमे 12% क्षेत्र समाया हुआ था, जबकि 10 0 हैक्टयर से अधिक आकार की जोतें

(2·4%) थी और उनमें 23% क्षेत्र समाया हुआ था। लगभग इसी प्रकार की स्थिति 20 वर्ष पूर्व 1960-61 में पायी गयी थी, हालांकि इस बीच बड़ी जोतों से मध्यम व छोटी जोतों की ओर मामूली परिवर्तन की स्थिति अवश्य पाई गई है। इस प्रकार देश में आज भी छोटे खेतों की भरमार बनी हुई है। नियोजन के 38 वर्ष बाद भी भू-जोतों का आकारानुसार वितरण काफी असमान बना हुआ है जो इस बात का सूचक है कि भूमि-सुधार भू-जोतों के वितरण को अधिक समान बनाने में असमर्थ रहे हैं।

भूमि सुधारों की धीमी प्रगति के कारण

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में भूमि-सुधारों का क्रियान्वयन दोषपूर्ण रहा है। इसके निम्न कारण माने जाते हैं.

1 राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी (lack of political will)—भूमि-सुधारों जैसा सक्रिय व क्रान्तिकारी कार्यक्रम राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव में लागू नहीं किया जा सका है। भू-स्वामियों के हितों के समर्थकों ने राज्यों में भूमि-सुधारों को लागू नहीं होने दिया है। स्थानीय रेवेन्यू स्टॉफ व बड़े कृषकों में परस्पर साठ गांठ पायी जाती है जिससे विभिन्न भूमि-सुधार-कार्यक्रम व्यवहार में लागू नहीं हो पाते हैं।

2 काश्तकारों व अन्य शोषित वर्गों के दबाव व राजनीतिक संगठन की कमी—खेतिहर मजदूरों व काश्तकारों और उपकाश्तकारों ने भूमि-सुधारों को लागू करवाने के लिए सरकार पर आवश्यक दबाव नहीं डाला है। उनमें आवश्यक राजनीतिक संगठन का भी अभाव पाया गया है। अतः गांवों में खेतिहर मजदूरों को संगठित करना नितान्त आवश्यक हो गया है।

3 कानूनी रुकावटें व प्रशासनिक दोष—कानूनों में दोष रह जाने से भू-स्वामी मुकदमेबाजी का सहारा लेते हैं और उन कानूनों को लागू होने से रुकवा देते हैं। प्रशासकों का रुख भी भू-स्वामियों के पक्ष में रहा है जिससे वे कानूनों को लागू करने के प्रति उदासीन पाये गये हैं।

4 भूमि के नवीनतम रिकार्डों का अभाव—आश्चर्य की बात है कि ऐसा महत्वपूर्ण कार्यक्रम बिना ताजा रिकार्ड व सही सूचना के लागू किया जाता रहा है जिससे इसके मार्ग में कई प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं।

5 भूमि सुधारों के एकीकृत कार्यक्रम (integrated programme) का अभाव—हमने भूमि-सुधारों के अलग अलग कार्यक्रमों जैसे चकबन्दी, सहकारी कृषि व सीमा-निर्धारण के बीच परस्पर ताल-मेल बैठाने की चेष्टा नहीं की है। इसी प्रकार भूमि के वितरण के साथ कृषिगत साख के कार्यक्रम नहीं जोड़े गये हैं। अतः भूमि सुधारों को कई टुकड़ों में लागू करने से भी कम सफलता मिल पायी है।

सरकार को चाहिये कि वह ऐसे असहाय, निर्बल व निर्धन लोगो की विभिन्न प्रकार के अत्याचारो से रक्षा करे।

जून 1978 मे भूमि-सुधारो की प्रगति की जाच करने व आवश्यक सुझाव देने के लिए स्वर्गीय राजकृष्ण की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की गई थी। समिति ने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि भूमि-सुधारो को संविधान की नवी अनुसूची (ninth schedule) मे शामिल कर लिया जाय ताकि इन्हे अदालतो मे चुनौती न दी जा सके। इससे भूमि-सुधारों के क्रियान्वयन पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा तथा भूमि पर सीमा निर्धारण कानून लागू करना सम्भव हो जायगा।

सातवीं पंचवर्षीय योजना, 1985-90 मे भूमि-सुधारो के सम्बन्ध मे प्रस्तावित कार्यक्रम—

सातवी योजना मे भूमि-सुधार-कार्यक्रमो को निर्धनता-उन्मूलन नीति व कार्यक्रम का आवश्यक अग माना गया है। इस योजना मे भूमि-सुधार सम्बन्धी निम्न कार्यक्रमो पर जोर दिया गया है:

(i) जिन राज्यो ने काश्तकारों के अधिकारो की सुरक्षा व लगान-नियमन के कानून नहीं बनाये हैं, वे सातवीं योजना मे ये कानून बनायेंगे।

अनुसूचित जाति व जनजाति के भूमि के अधिकारो की रक्षा की जायगी ताकि उनसे भूमि न छिन जाय।

(ii) सीलिंग मे घोषित भूमि व वितरित भूमि का अन्तर कम किया जायगा। कमाण्ड क्षेत्रो व अन्य नए सिंचित क्षेत्रो मे सीलिंग से ऊपर की भूमि का पुन. जायजा लिया जायगा। जो अतिरिक्त भूमि खेती के लायक न होने से वितरित नही की जा सकती उसे राज्य सरकारे अपने अधिकार मे ले लेंगी ताकि उनका भावी विकास किया जा सके।

(iii) सीलिंग से ऊपर की अतिरिक्त भूमि जिन लोगो को मिली है, उन्हें वित्तीय सहायता दी जायगी। इनके लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम व अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमो का भूमि-सुधारो से ताल-मेल बैठाया जायगा ताकि ऐसे लोगो को मदद मिल सके।

(iv) देश के पूर्वी भाग मे चावल का उत्पादन बढाने के लिए चकबन्दी का काम पूरा किया जायगा। चकबन्दी कार्यक्रम मे लघु व सीमान्त कृषको की आवश्यकताओ पर अधिक ध्यान दिया जायगा ताकि भूतल व जल का अधिक उपयोग किया जा सके तथा कृषिगत सेवाओ व इनपुटो का उपयोग अधिक किफायत से किया जा सके।

(v) सभी राज्यो में भूमि-रिकार्डों को नवीनतम बनाने पर पूरा ध्यान दिया जायगा। बिना मापी गई भूमि का वैज्ञानिक सर्वेक्षण किया जायगा। काश्तकारो व बटाईदारो के अधिकारों के रिकार्ड बनाए जायेंगे। इस कार्य में राज्य सरकारो को मदद दी जायगी ताकि वे रेवेन्यू मशीनरी को सुदृढ़ कर सकें। कर्मचारियो को

प्रशिक्षण दिया जायगा और उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाने की कोशिश की जायगी।

(vi) सीलिंग से ऊपर की भूमि प्राप्त करने वाले लोगो को वित्तीय सहायता दी जायगी ताकि वे उत्पादन बढाने में सफल हो सकें।

इस प्रकार सातवी योजना मे भूमि-सुधार कार्यक्रमो को लागू करने पर पुन. ध्यान केन्द्रित किया गया है।

भूमि-सुधार व तकनीकी परिवर्तन—दोनों की समान आवश्यकता

निष्कर्ष—भारत मे 1966-67 से कृषि-विकास की नयी नीति के लागू होने से उद्यमकर्त्ता किसान या व्यवसायी कृषक-वर्ग का उदय हुआ है। कृषि भी उद्योग का स्वरूप धारण करती जा रही है। ऐसी दशा मे कुछ विद्वान यह मानने लगे है कि अब भूमि-सुधारो के बजाय तकनीकी सुधारो, जैसे सिंचाई, अधिक उपज देने वाली किस्मो, रासायनिक उर्वरक, औजार, साख व कीटनाशक दवाइयो आदि पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि उत्पादन बढ सके। ये विचारक कृषिगत क्षेत्र मे बढी हुई आय पर आय-कर लगाने का समर्थन करते है और खेतिहर मजदूरो को उचित मजदूरी देने का भी समर्थन करते हैं। लेकिन वह भूमि-सुधार कार्यक्रम मे केवल काश्तकारी (tenancy reforms) तक ही जाना चाहते हैं, जैसे उचित लगान व भू-धारण की सुरक्षा, आदि। वे सीमा-निर्धारण व सहकारी खेती आदि की विशेष आवश्यकता नहीं समझते।

लेकिन अधिकाश अर्थशास्त्रियो ने स्वीकार किया है कि कृषि मे केवल तकनीकी परिवर्तन ही पर्याप्त नही होगे, बल्कि चकबन्दी, सीमा-निर्धारण, अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनो मे वितरित करने, आदि का भी समान रूप से महत्व है। अतः कृषि मे संस्थागत परिवर्तनो की दृष्टि से भूमि-सुधारो को अवश्य कार्यान्वित किया जाना चाहिए अन्यथा देहातो मे असन्तोष बढेगा और सामाजिक दृष्टि से विस्फोटक व विपरीत किस्म का वातावरण उत्पन्न हो जाएगा। सरकार को हरिजनो व आदिवासियो को धनी व शक्तिशाली भू-स्वामियो व सवर्ण हिन्दुओ के अत्याचारो से बचाना चाहिए और यह प्रयास करना चाहिए कि भविष्य मे कोई भी उनसे भूतकाल मे आवटित की गई भूमि अनुचित दबाव डालकर न छीन सके।

अत: लगान कम करने, काश्तकार को भू-धारण की सुरक्षा दिलाने, काश्तकार को भू-स्वामी के अधिकार दिलाने, चकबन्दी करने, सहकारी सेवा समितियो को सुदृढ करने, सीमा-निर्धारण करने व अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनो मे बाँटने आदि कार्यक्रमो के प्रति नये जोश-खरोश से काम करने की आवश्यकता है। तभी तकनीकी परिवर्तन ज्यादा मात्रा मे सफल प्रमाणित होगे। भूमि-सुधारो मे दी गई ढील व शिथिलता बहुत गम्भीर परिणामो को जन्म दे सकती है। अतः हमे भूमि सुधार, तकनीकी परिवर्तन व कृषि के आधार-ढांचे (इन्फ्रास्ट्रक्चर) को सुदृढ करने के लिए किए जाने वाले सार्वजनिक विनियोग में आवश्यक तालमेल बैठाकर कृषिगत उत्पादन

बढाना चाहिए। प्रोफेसर एम. एल दांतवाला का मत है कि विभिन्न स्थानों व विभिन्न समयों की आवश्यकताओं के अनुरूप ही कार्यक्रम अपनाये जाने चाहिए। जहां भूमि-सुधार हो गये हैं वहां तकनीकी प्रगति व कृषिगत इन्पुटों की सप्लाई पर अधिक जोर देना चाहिए एव जहां कृषिगत विकास की नयी नीति लागू हो गयी है और भूमि सुधार लागू नहीं किए गए है वहां भूमि-सुधारों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

सभी क्षेत्रों में सडक, विद्युत, सिचाई आदि की सुविधा बढायी जानी चाहिए। इस प्रकार हरित क्रांति व भूमि-सुधार दोनों पर समन्वित रूप से जोर दिया जाना चाहिए, तभी ग्रामीण अर्थव्यवस्था अधिक उत्पादक अधिक न्याय-सगत व अधिक प्रगतिशील बन सकेगी। भूमि-सुधार व तकनीकी परिवर्तन दोनों की समान रूप से आवश्यकता है। भूमि-सुधार तकनीकी परिवर्तन के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि बनाते हैं तथा तकनीकी परिवर्तन कृषिगत विकास की दर को ऊंचा करने में सहायक होते हैं।

जून 1989 में केन्द्र ने भूमि-सुधारों के लिए 7 सूत्री योजना तैयार करके राज्य सरकारों के विचारार्थ भेजी है। इसके सात सूत्र इस प्रकार हैं—(i) सरप्लस भूमि के आवटन म 40% भूमि स्त्रियों के लिए सुरक्षित करना, (ii) भूमि के बेनामी व फर्जी सौदों की पहचान करना, (iii) जबानी, अनौपचारिक व बटाईदारों को न्याय दिलाना, (iv) वनवासियों को स्थायी अधिकार दिलाना, (v) अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों को आवटित भूमि का सत्यापन (Verification) करना,(vi)कानूनी झगडों में फसी सरप्लस भूमि के शीघ्र वितरण की व्यवस्था करना, तथा (vii) सभी ग्रामीण निर्धन परिवारों को मकान देने की व्यवस्था करना।

सरकार विवादों म उलझी भूमि को मुक्त कराने के लिए कानूनों म सशोधन करने पर भी विचार कर रही है। भूमि, मकान व पेडों के पट्टे स्त्रियों के लिए रिजर्व करने से भूमि की प्रबन्ध-व्यवस्था को सुधारने में मदद मिलेगी। आशा है इन नये प्रयासों को कार्यान्वित करने में पचायती राज सस्थायें उचित भूमिका निभायेंगी।

प्रश्न

1. भारत म 1951 से अब तक लागू किये गये भूमि-सुधारों के कार्यक्रम का मूल्यांकन कीजिए। (Raj IIyear, T.D C 1983)
2. भारत म भूमि-सुधार विफल हुए हैं, लेकिन इन्हें भविष्य में सफल बनाया जाना चाहिए ? क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? विवेचन कीजिए। (Raj IIyear, T.D C. 1980)
3. भारत म 1951 से अपनाये गये भूमि-सुधारों की समीक्षा कीजिए। (Raj IIyear, T.D.C. 1988)
4. भूमि सुधार से क्या तात्पर्य है ? भारत में भूमि सुधार की प्रगति असतोषजनक क्यों रही है ? तर्कसहित समझाइये (Raj. IIyr, T.D C 1989)

———

6

खाद्यान्नों का उत्पादन व खाद्य-नीति

(Food Output and Food Policy)

भारत मे खाद्यान्नो का उत्पादन बढाने की नितान्त आवश्यकता है क्योंकि देश मे जनसंख्या बढ रही है और निर्धन जनता का उपभोग का स्तर ऊँचा करने के लिए भी अधिक मात्रा मे खाद्यान्नों की आवश्यकता है। खाद्यान्नो म आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की राष्ट्रीय स्वावलम्बन की दृष्टि से भी महत्व है। पहले 'काम के बदले अनाज' की योजना के द्वारा देश मे रोजगार बढाने का प्रयास किया गया था। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme) (NREP) के अन्तर्गत भी खाद्यान्नो का उपयोग रोजगार बढाने के लिए किया गया है। इससे गाँवो मे श्रमिको को अनाज मिल जाता है तथा नहरें, सडकें व अन्य सामुदायिक परिसम्पत्तियो का निर्माण करने मे मदद मिलती है।

भारत में खाद्य-समस्या की प्रकृति

भारत मे खाद्य-समस्या के चार पहलू माने जाते है—मात्रात्मक (quantitative), गुणात्मक (qualitative), प्रशासनिक (administrative) और आर्थिक (economic)। इनमे से प्रत्येक पर नीचे प्रकाश डाला जाता है :

1 **मात्रात्मक पहलू**—इनका सम्बन्ध खाद्यान्नो की कुल माँग और कुल पूर्ति से होता है। भारत मे विभाजन के बाद से निरन्तर खाद्यान्नो का अभाव रहा है, जिसकी पूर्ति के लिए विदेशो से प्रतिवर्ष इनका आयात करना पडा है। इस रूप म खाद्य-समस्या भारत के लिए एक अल्पकालीन सकट नही, बल्कि एक पुरानी व दीर्घकालीन समस्या मानी गई है। खाद्यान्नो का उत्पादन बढ़ाकर ही माँग और पूर्ति म आवश्यक सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। यदि किसी वर्ष प्राकृतिक प्रकोप व मौसम की प्रतिकूलता के कारण उत्पादन कम हो जाता है तो खाद्यान्नो का अभाव बढ जाता है और आयात किये बिना काम नही चल सकता। 1966 मे खाद्यान्नो का विशुद्ध आयात (net imports) एक करोड तीन लाख टन हुआ था।

बाद में आयातों की मात्रा घटी, लेकिन आयात बराबर जारी रहे। 1978 से 1980 की अवधि में खाद्यान्नों के आयात ऋणात्मक (negative) रहे, अर्थात् आयातों की तुलना में निर्यात अधिक हुए, जिससे पता चलता है कि देश की खाद्य स्थिति पहले से बेहतर हुई। 1981 में पुनः खाद्यान्नों का आयात धनात्मक (positive) हो गया (निर्यातों से आयात अधिक)। 1983 में खाद्यान्नों के शुद्ध आयातों की मात्रा 40·7 लाख टन तथा 1984 में 23.7 लाख टन रही। ये आयात देश में अनाज का बफर स्टॉक बनाये रखने के लिए किये गये ताकि खाद्यान्नों के अभाव की स्थिति का मुकाबला किया जा सके। 1985 से 1987 के वर्षों में पुनः शुद्ध आयात ऋणात्मक रहे। जिससे पता चलता है कि देश की खाद्य स्थिति में सुधार हुआ। 1988 में अभाव के कारण खाद्यान्नों के शुद्ध आयात 18 7 लाख टन रहे।

भारत की खाद्य-स्थिति सुधरने से इसे खाद्यान्नों की दृष्टि से आत्म-निर्भर कहा जाने लगा है। लेकिन अभी तक हमारे देश ने "स्थायी किस्म की आत्म-निर्भरता" प्राप्त नहीं हुई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत से अब कुछ मात्रा में अनाज का निर्यात भी किया जाने लगा है। अतः मात्रात्मक पहलू की दृष्टि से पहले की तुलना में स्थिति बेहतर अवश्य हुई है, लेकिन भविष्य में आमदनी व क्रयशक्ति के बढ़ने से खाद्यान्नों की मांग बढ़ेगी जिससे कम उत्पादन के वर्षों में देश में खाद्यान्नों की कमी महसूस हो सकती है। भारत को खाद्यान्नों में लम्बी अवधि तक आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के लिए उत्पादन बढ़ाना होगा तथा जनसंख्या की वृद्धि पर भी नियन्त्रण करना होगा।

2 गुणात्मक पहलू—अधिकांश देशवासियों को असन्तुलित भोजन मिलता है। हमारे भोजन में दूध, फल, मांस आदि रक्षात्मक पदार्थों का बहुत अभाव पाया जाता है। अतः लोगों को पर्याप्त मात्रा में पोषण-तत्व नहीं मिल पाते हैं। यही कारण है कि साधारण व्यक्ति की कार्यक्षमता कम होती है और उसका स्वास्थ्य कमजोर रहता है। अन्न खाद्य-समस्या का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि सर्व-साधारण को सन्तुलित और पौष्टिक आहार नहीं मिल पाता। ऑक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय में पोलिटिकल इकोनोमी के ड्रमोंड प्रोफेसर तथा 1987 के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन (International Economic Association) के प्रथम भारतीय प्रेसीडेण्ट डॉ. अमर्त्य सेन का कहना है कि भारत में ग्रामीण जनता का लगभग एक-तिहाई भाग नियमित रूप से भूख व कुपोषण का शिकार रहता है। लोग भूख से मरते तो नहीं (क्योंकि सरकार अभाव से उनकी रक्षा करती है) लेकिन वे भूख अवश्य सहते रहते हैं।

3. प्रशासनिक पहलू—इसका सम्बन्ध खाद्यान्न के वितरण-पक्ष से होता है, न कि उत्पादन-पक्ष से। प्रायः ऐसा भी हो सकता है कि खाद्यान्नों का उत्पादन तो

बढ़ जाय, लेकिन वितरण-व्यवस्था के दोषपूर्ण होने से खाद्य-समस्या बनी रहे। ऐसी स्थिति में खाद्य-समस्या प्रशासनिक रूप धारण कर लेती है। सार्वजनिक वितरण की उचित व प्रभावपूर्ण व्यवस्था ही खाद्य समस्या के इस रूप का निराकरण कर सकती है। यदि सरकार की खाद्य-नीति अस्पष्ट, ढिलमिल तथा अव्यावहारिक होती है, तो खाद्य-समस्या और भी जटिल हो जाती है। भारत में पिछले वर्षों में खाद्यान्नों की सार्वजनिक वितरण प्रणाली को शहरों में अधिक विकसित किया गया है। इसे भविष्य में अधिक व्यापक व उपयोगी बनाने के लिए गांवों में भी विकसित करना होगा ताकि ग्रामवासियों को भी खाद्यान्नों की सप्लाई अधिक नियमित की जा सके।

4 आर्थिक पहलू—भारत में कई बार यह भी देखा जाता है कि महंगे अनाज को खरीदने के लिए लोगों के पास आवश्यक क्रय शक्ति का अभाव रहता है। अतः 'खाद्यान्नों के अकाल' (food-famine) के स्थान पर मुद्रा या 'क्रय-शक्ति का अकाल' (money famine) पाया जा सकता है। इस पहलू का सम्बन्ध आम जनता की गरीबी तथा खाद्यान्नों के ऊँचे भावों से होता है। अतः सर्वसाधारण की आय में वृद्धि करके एवं खाद्यान्नों के भावों में समुचित कमी लाकर ही खाद्य-समस्या के इस रूप का उचित समाधान निकाला जा सकता है। प्रोफेसर सेन का कहना है कि भारत में प्रायः 'खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता' प्राप्त कर लेने की बात सुनने को मिलती है। खाद्यान्नों के सम्बन्ध में बाजार-मांग व बाजार-पूर्ति में सन्तुलन स्थापित होने पर देश आत्म-निर्भर तो हो सकता है, फिर भी क्रय-शक्ति की कमी होने से बहुत से लोगों की 'अनाज की आवश्यकता' इसकी बाजार मांग में परिवर्तित नहीं हो पाती जिससे तथाकथित आत्म-निर्भरता की दशा में भी काफी लोग भूख व कुपोषण के शिकार बने रहते हैं। अतः लोगों की क्रयशक्ति बढ़ाकर खाद्य-समस्या के इस रूप का हल निकाला जा सकता है।

पंचवर्षीय योजनाओं में खाद्यान्नों का उत्पादन

अग्र तालिका में 1950–51 से 1987–88 की अवधि में देश में खाद्यान्नों के उत्पादन की स्थिति दिखलाई गई है।[1]

---

1 The Economic Survey, 1988–89, p S-15 (1970–71 व बाद के आँकड़ों के लिए)

1988–89 में भी खाद्यान्नों का उत्पादन 17 करोड़ टन या अधिक रहने की आशा है।

इस प्रकार क्षेत्रफल की दृष्टि से गेहूँ का अंश बढ़ा है तथा मोटे अनाजों का घटा है एवं चावल व दालों के यथास्थिर रहे हैं।

इसी तरह उत्पादन की दृष्टि से भी विभिन्न खाद्यान्नों के अनुपात बदले हैं। चावल का अंश कुल खाद्यान्नों के उत्पादन में 1950–51 से 1986–87 के बीच 40% से बढ़कर 42% हो गया, जबकि गेहूँ का 13% से बढ़कर 32% हो गया एवं मोटे अनाजों (Coarse cereals) का 30% से घटकर 18% हो गया तथा दालों का 17% से घटकर 8% पर आ गया। इस प्रकार योजनाकाल में मोटे अनाजों व दालों का कुल खाद्यान्नों के उत्पादन में अनुपात काफी घट गया है जिससे निर्धन वर्ग की कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं।

1980–85 से 1985–86 की अवधि में विभिन्न खाद्यान्नों के उत्पादन की स्थिति इस प्रकार बदली है। 1980–81 में चावल का उत्पादन 5·4 करोड़ टन से बढ़कर 1987–88 में 5·6 करोड़ टन, गेहूँ का 3·6 करोड़ टन से बढ़कर 4·5 करोड़ टन एवं दालों का 1·1 करोड़ टन पर स्थिर रहा है। इसी अवधि में मोटे अनाजों का उत्पादन 2·9 करोड़ टन से घटकर 2·1 करोड़ टन हो गया है जो एक चिन्ता का कारण है।[1]

खाद्यान्नों के वार्षिक उत्पादन में काफी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। प्रायः एक वर्ष उत्पादन बढ़ जाता है तो दूसरे वर्ष घट जाता है। अतः खाद्यान्नों का उत्पादन अस्थिर रहा है। सिंचाई के साधनों का विकास करके यह अस्थिरता कम की जा सकती है।

खाद्यान्नों के आयात[2]

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से खाद्यान्नों का निरन्तर आयात किया गया है। वर्ष 1966 में इनके विशुद्ध आयात एक करोड़ टन हुए जो अभूतपूर्व थे। उसके बाद आयातों में कमी आई और ये 1977 में घटकर केवल 1 लाख टन पर आ गये। 1978–80 की अवधि में अनाज के आयात से निर्यात अधिक हुए जिससे शुद्ध आयात ऋणात्मक (negative) रहे। 1981 से पुनः शुद्ध आयात धनात्मक (positive) हो गये (निर्यात से आयात अधिक)। पिछले कुछ वर्षों में आयात की स्थिति अग्र तालिका से स्पष्ट हो जाती है :

---

1. Economic Survey, 1988–89, p. S–15.
2. ibid, p S.–23.

वर्ष	खाद्यान्नों के विशुद्ध आयात (net imports) (लाख टन में)
1983	40·7
1984	23·7
1985	(–) 3·5
1986	(–) 0·6
1987	(–) 3·8
1988	18·7

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1985 से 1987 तक के तीन वर्षों में शुद्ध आयात ऋणात्मक रहे, लेकिन 1988 में अभूतपूर्व सूखे के कारण आयात फिर प्रारम्भ किये गये और इस वर्ष आयात की मात्रा लगभग 19 लाख टन रही है।

भूतकाल में भारत ने अमेरिका से पी. एल. 480 के अन्तर्गत काफी मात्रा में खाद्यान्नों व अन्य वस्तुओं का आयात किया था जिनके अधिकांश भुगतान की व्यवस्था रुपयों में की जाती रही है। पहले इस समझौते के अन्तर्गत भारत में काफी धनराशि अमेरिका के पक्ष में एकत्र हो गई थी। इन रुपयों के उपयोग से भारतीय अर्थव्यवस्था पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना थी। अमेरिका ने एक समझौते के अन्तर्गत 1973 में भारत को लगभग 1,664 करोड़ रुपये की राशि भेंट-स्वरूप प्रदान कर दी थी, जिससे इस सम्बन्ध में ऋण-भार काफी हल्का हो गया था। भारत से विदेशों को प्रायः चावल का निर्यात किया जाता है।

*भारत में खाद्य-समस्या के कारण**

पिछले वर्षों से भारत की खाद्य-स्थिति में सुधार हुआ है और देश को खाद्यान्नों में आत्म-निर्भर माना जाने लगा है। लेकिन अकाल व सूखे के वर्षों में आयात पुन. करने होते हैं तथा मूल्य स्थिर रखने के लिए भी आयात किये गये हैं। लोगों के पास क्रय-शक्ति का अभाव रहने से उनकी प्रभावशाली माग कम होती है। अत. खाद्य-

---

*भारत म वर्तमान समय म खाद्य-स्थिति में सुधार होने से इन कारणों को ऐतिहासिक दृष्टि से ही देखा जाना चाहिए। यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में भारत की खाद्य-स्थिति कैसी रहेगी? जन-संख्या के बढ़ने दबावों व लोगों के पास क्रय-शक्ति के अभाव को देखते हुए तथा लगातार सूखे की दशाओं के कारण यह कहना सही नहीं जान पड़ता कि भारत ने खाद्य-समस्या स्थायी रूप से हल करली है।

समस्या को समाप्त नहीं माना जा सकता । ऐतिहासिक दृष्टि से इस समस्या के कारण नीचे दिये जाते हैं :—

1. जनसंख्या की वृद्धि—पहले बताया जा चुका है कि 1971-81 के दशक में भारत में जनसंख्या की चक्रवृद्धि-दर' प्रतिवर्ष लगभग 2·2% रही। वैसे योजना-काल में खाद्यान्नों का उत्पादन भी 3 से 3·4% वार्षिक दर से बढ़ा है, लेकिन जनसंख्या के बढ़ने व देश में आमदनी के बढ़ने से खाद्यान्नों की माग भी बढ़ी है जिससे अकाल व सूखे के वर्षों में देश में खाद्यान्नों की कमी महसूस की जाती है। हमारे देश में जनसंख्या की वृद्धि खाद्य-समस्या का प्रमुख कारण मानी जा सकती है।

2. देश का विभाजन—1947 में देश के विभाजन का भी हमारी खाद्य-स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। विभाजन के फलस्वरूप भारतीय संघ को अविभाजित भारत की 82 प्रतिशत जनसंख्या मिली, परन्तु वास्तविक सिंचित क्षेत्र का 69 प्रतिशत और प्रमुख खाद्यान्नों की पूर्ति का 75 प्रतिशत अंश ही मिल पाया था। इसके साथ ही बड़ी संख्या में विस्थापितों के भारत में आने के फलस्वरूप खाद्यान्नों की माग काफी बढ़ गई थी।

3 प्राकृतिक कारणों से फसलों को हानि—भारतीय कृषि वर्षा पर निर्भर करती है। जब कभी वर्षा बहुत कम या अधिक होती है या समय पर नहीं होती तो फसलें खराब हो जाती हैं और खाद्यान्नों की पैदावार काफी घट जाती है। वर्षा की अनिश्चितता के अतिरिक्त प्रतिवर्ष आंधी, तूफान व ओलों आदि से भी फसलों को नुकसान होता रहता है। इसी प्रकार टिड्डियाँ, चूहे आदि बड़ी मात्रा में फसलें नष्ट कर देते हैं। फसलों को बीमारियों से काफी नुकसान होता है। इन सब कारणों से खेती की उपज घट जाती है और खाद्यान्नों का संकट पैदा हो जाता है। 1965-66 1966-67, 1972-73, 1974-75, 1976 77, 1979-80, 1982-83 एव 1984-85 व 1987-88 के वर्ष कृषिगत उत्पादन की दृष्टि से खराब रहे और इन वर्षों में विशेषतया सूखे के कारण देश के अधिकांश भागों में फसलों को क्षति पहुँची तथा खाद्यान्नों का उत्पादन नीचा हुआ। 1987-88 में खाद्यान्नों का उत्पादन 13·8 करोड़ टन हुआ था।

4 उपभोग के स्वरूप में परिवर्तन—पिछले कुछ वर्षों से हमारे देश में अनेक कारणों से ज्वार, बाजरा, मक्का आदि घटिया अनाजों के स्थान पर गेहूँ, चावल आदि बढ़िया अनाजों की खपत बढ़ गई है। देहातों में खाद्यान्नों का उपभोग बढ़ जाने से शहरों में खाद्य-स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त मोटे अथवा घटिया अनाजों की पैदावार में थोड़ी कमी हुई है। 1980-81 में ज्वार, बाजरा व मक्का का उत्पादन 2·9 करोड़ टन हुआ था, जो 1987–88 में लगभग 2·1 करोड़ टन हो गया। इस प्रकार मोटे अनाजों के उत्पादन में गिरावट आयी है,

तथा स्वाद मे अनाजो के उपभोग के स्वरूप में परिवर्तन होने से खाद्य-समस्या अधिक जटिल हो गई है।

5. योजनाकाल में आय के बढ़ने से माग में वृद्धि—भारत मे 1951 से आर्थिक विकास के लिए पचवर्षीय योजनायें लागू की गई हैं जिनसे सार्वजनिक क्षेत्र मे विनियोगो के बढ़ने से लोगो की आमदनी बढ़ी है। निर्धन देश मे आमदनी के बढ़ने से खाद्यान्नो का उपभोग तेजी से बढ़ता है। खाद्यान्नो के लिए माग की औसत आय लोच (income elasticity of demand for foodgrains) 0 4 से 0 5 के आस-पास होती है। सबसे निर्धन लोगो की खाद्यान्नो के लिए सीमान्त आय-लोच 0 7 से 0 8 के समीप होती है। इसका अर्थ है कि निर्धन व्यक्ति की एक रुपया आय बढ़ने पर इनमे से 70 से 80 पैसे खाद्यान्नो पर व्यय किये जाते हैं। अतः आर्थिक विकास के प्रारम्भिक वर्षों मे खाद्यान्नो की माग का तेजी से बढ़ना खाद्य-समस्या को उत्पन्न कर देता है। यही कारण है कि खाद्य-समस्या को हल करने के लिए उत्पादन मे काफी वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है।

6. आयातो की आसानी से होने वाली उपलब्धि एव इन पर निर्भरता के कारण सम्भवत आन्तरिक उत्पादन को बढ़ाने पर पर्याप्त रूप से ध्यान नही दिया गया। यदि हमारा देश योजना के प्रारम्भ से ही पूरी शक्ति से खाद्यान्नो का उत्पादन बढ़ाने मे जुट जाता तो हम खाद्यान्नो मे कभी के आत्म-निर्भर हो गये होते।

7 खाद्यान्नो के सग्रह की प्रवृत्ति—खाद्य-सकट का एक कारण उत्पादक, व्यापारी व उपभोक्ता सभी के द्वारा अनाज को सग्रह करने की प्रवृत्ति भी है। काली मुद्रा की सहायता से भी प्राय: व्यापारियो के द्वारा अनाज का सग्रह कर लिया जाता है जिससे खाद्यान्नो के मूल्यो मे वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार सट्टे के उद्देश्य के लिए अनाज का सग्रह किया जाता है जिससे कृत्रिम अभाव उत्पन्न हो जाने से मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

8 एक प्रभावपूर्ण व दीर्घकालीन खाद्य-नीति का अभाव—भारत मे खाद्य समस्या का एक कारण देश के लिए एक प्रभावपूर्ण, सुनिश्चित तथा दीर्घकालीन राष्ट्रीय खाद्य-नीति का अभाव भी माना जा सकता है। सरकार ने पिछले वर्षो मे अनाज खरीद कर बफर स्टॉक बनाने का कार्य किया है। 1973 मे गेहूँ के थोक व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित करने का कदम उठाया गया था जिसमे सफलता न मिलने से 1974 मे खाद्य-नीति मे कुछ परिवर्तन किये गये। बाद मे 1975 मे पुन खाद्य-नीति बदली गई। अप्रेल, 1977 मे जनता सरकार ने खाद्य-नीति मे परिवर्तन किये और खाद्यान्नो की अनिवार्य लेवी की व्यवस्था समाप्त कर दी। उसी नीति को 1978 व 1979 मे जारी रखा गया। बाद के वर्षों मे कॉंग्रेस (आई) सरकार ने खाद्यान्नो के वसूली मूल्यो मे वृद्धि की है तथा पूर्व खाद्य-

नीति को ही जारी रखा है। इनका आगे चलकर वर्णन किया गया है यहाँ पर इतना कहना पर्याप्त होगा कि हम एक दीर्घकालीन सुनिश्चित व सुदृढ खाद्य-नीति का निर्माण करना चाहिए और उसे काफी प्रशासनिक कार्यकुशलता व कड़ाई से लागू करना चाहिए।

भारत में खाद्यान्नो की कीमतें

भारत मे भूतकाल मे खाद्यान्नो की क्षेत्रीय व्यवस्था (zonal system) व फलस्वरूप खाद्यान्नो के भावो म क्षेत्रीय अन्तर (regional variations) पाय गय हैं। क्षेत्रीय व्यवस्था मे खाद्यान्नो का एक क्षेत्र स दूसरे क्षेत्र के बीच स्वतन्त्रतापूर्वक आना-जाना नही हो पाता था। लकिन एक क्षेत्र क अन्दर एक भाग से दूसरे भाग म खाद्यान्नो की गतिशीलता हो सकती थी। हमारे देश म विभिन्न मौसमो म भी खाद्यान्नो के भावो मे अन्तर पाया जाता है। साधारणतया फसल के तुरन्त बाद अनाज के भावो मे गिरावट आती है बाद म धीरे-धीरे भाव बढते जाते है। अनाज के थोक भावो व फुटकर भावो मे भी अन्तर होता है। यहाँ पर हम खाद्यान्नो के थोक मूल्यो के सूचकाको के आधार पर इनके भावो की प्रवृत्तियो का अध्ययन करते हैं।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे अनाज के मूल्यो मे काफी कमी हुई थी। मार्च 1951 के अन्त मे अनाज के थोक मूल्यो का सूचकाक 100 था (1952-53 = 100) जो मार्च, 1955 के अन्त मे 70 हो गया था। सरकार को खाद्यान्नो के गिरते हुए भावो को रोकने के लिए निश्चित मूल्यो पर इनको खरीदने की व्यवस्था करनी पडी। जुलाई 1955 मे पुन मूल्य बढने लगे। मार्च, 1956 के अन्त मे अनाज के भावो का सूचनाक बढकर 86 पर पहुँच गया था। बाद मे द्वितीय योजना की अवधि म अनाज व दालो के भावो म निरन्तर वृद्धि होती गयी। मार्च 1961 के अन्त तक अनाज के थोक मूल्यो का सूचनाक 100 पर आ गया था। इस प्रकार प्रथम योजना की अवधि मे अनाज के भाव घटे और द्वितीय योजना म बढे। तृतीय योजना की अवधि मे भी अनाज के भावों मे तीव्र गति से वृद्धि हुई और वे ड्योढे से भी अधिक हो गये। अनाज के भावो की यह वृद्धि 1966-67 मे भी जारी रही। बाद म थोक मूल्यो के सूचनाको का आधार वर्ष 1952-53 से बदल कर 1961-62 कर दिया गया। 1961-62 = 100 मानने पर खाद्यान्नो के थोक भावो का सूचनांक (सप्ताहो का औसत लेने पर) 1968-69 मे 201 पर आ गया। बाद के वर्षो मे यह वृद्धि जारी रही। 1974-75 मे खाद्यान्नो के भावो मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई जिससे सूचनांक 401 पर जा पहुँचा। यदि दालो का सूचनाक देखें तो यह 1974 75 म सप्ताहो का औसत लेने पर 507 रहा। **अब थोक मूल्यो के सूचनाक का आधार वर्ष 1970-71 कर दिया गया है।** 1987-88 मे सप्ताहो का औसत लेने पर खाद्यान्नो का थोक मूल्य सूचनाक 332 तथा दालो का 494 हो गया था।

दिसम्बर 1988 म खाद्यान्नो का मूल्य-सूचनाक 404 तथा दालो का 715 रहा। इस प्रकार 1970-71 के बाद दालो के भावो मे काफी वृद्धि हुई है।

पहले बतलाया जा चुका है कि अनाज के भावो के बढने का प्रमुख कारण माँग का पूर्ति से अधिक होना है। योजना-काल मे सार्वजनिक व निजी विनियोगो मे वृद्धि हुई है जिससे खाद्यान्नो की प्रभावपूर्ण माँग भी बढी है। अब हम सरकार की खाद्य-नीति का विवरण प्रस्तुत करेंगे।

सरकार की खाद्य-नीति

(Food Policy of the Government)

1 **उत्पादन मे वृद्धि**—भारत मे खाद्य-समस्या एक प्रमुख राष्ट्रीय समस्या है। सरकार ने खाद्य-समस्या का समाधान करने के लिए कई प्रकार के उपाय काम मे लिये है। इसने खाद्यान्नो का उत्पादन बढाने के लिए आवश्यक कदम उठाय है इन उपायो के अन्तर्गत सिचाई का विस्तार, अधिक उपज देने वाली किस्मो का उपयोग साख की सुविधा, वसूली मूल्यो का निर्धारण, आदि कार्यक्रम आते है। इनम कुछ का वर्णन पहले किया जा चुका है। सरकार को गेहूँ का उत्पादन बढाने म विशेष रूप से सफलता मिली है जो 1970-71 मे 2 4 करोड टन से बढकर 1987-88 मे 4 5 करोड टन हो गया है। चावल का उत्पादन 1970-71 मे 4 2 करोड टन से बढकर 1987-88 मे 5 6 करोड टन हो गया है, हालाकि 1985-86 मे यह 6 4 करोड टन हो गया था।

2 **आयात की व्यवस्था**—देश मे खाद्यान्नो का अभाव दूर करने के लिए सरकार ने खाद्यान्नो के आयात की व्यवस्था भी की है, ताकि आन्तरिक सप्लाई बढाई जा सके। इस पर विस्तार से पहले प्रकाश डाला जा चुका है। आजकल देश मे पैदावार अच्छी होने पर भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुचारू रूप से चालू रखने के लिए एव बफर स्टॉक बनाये रखने के लिए खाद्यान्नो का थोडा-बहुत आयात जारी रखा जाता है। उदाहरण के लिए 1981 से पुन अनाज का विशुद्ध आयात बढा एव 1983 मे यह 40 7 लाख टन रहा। 1984 म यह घट कर 23 7 लाख टन के स्तर पर आ गया। 1985 स 1987 तक शुद्ध आयातों के ऋणात्मक रहने के बाद 1988 म पुन आयात 18 7 लाख टन किये गय।

3 **सरकार द्वारा खाद्यान्नो की वसूली व सार्वजनिक वितरण**—पिछले वर्षों म सरकार ने खाद्यान्नो के वसूली मूल्य (Procurement Prices) निर्धारित किये है और निर्धारित भावो पर अनाज खरीद कर सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) के माध्यम से आम जनता मे अनाज के उचित वितरण का प्रयास किया है। 1988 म खाद्यान्नो की सरकारी खरीद 1 4 करोड टन रही तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से 1 8 करोड टन खाद्यान्न आम जनता को उपलब्ध किया गया।

खाद्यान्नों के भावों को स्थिर रखने की दृष्टि से बफर स्टॉक का महत्व

सरकार प्रतिवर्ष खाद्यान्नों के वसूली-मूल्य घोषित करती है और उन पर अनाज खरीदने की व्यवस्था करती है। सरकार अनाज का बफर स्टॉक बनाये रखना चाहती है। **बफर स्टॉक बनाने के पीछे मुख्य उद्देश्य अनाज की कीमतों में स्थिरता लाना होता है।** यदि अनाज के मूल्य बढते है तो सरकार बफर स्टॉक में से निर्धारित भावों पर अनाज बेचने की व्यवस्था करती है जिससे खुले बाजार में कीमतें स्थिर हो जाती हैं। यदि कीमतें गिरने लगे तो बफर स्टॉक का उद्देश्य उल्टा हो जाता है। सरकार निर्धारित भावों पर अनाज खरीद कर बफर स्टॉक बढा लेती है। **इस प्रकार सरकार बफर स्टॉक की क्रियाओं के माध्यम से उत्पादक व उपभोक्ता दोनों के हितों की रक्षा करने का प्रयास करती है।**

सरकार ने जनवरी, 1962 में भारतीय खाद्य-निगम (Food Corporation of India), (FCI) की स्थापना की थी जिसको अनाज की खरीद, संग्रह, परिवहन व वितरण का काम सौंपा गया है। सरकार अनाज को खरीद कर उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से राशन कार्डों पर उपभोक्ताओं को बेचने की व्यवस्था भी करती है। अभाव के वर्षों में सार्वजनिक वितरण-प्रणाली पर भार बढ जाता है। सार्वजनिक वितरण-प्रणाली तभी ठीक से चल सकती है जबकि सरकार के पास अनाज के पर्याप्त मात्रा में भण्डार विद्यमान हो। इसके लिए सरकार को एक तरफ देश में अनाज को खरीदने की व्यवस्था करनी पडती है, और दूसरी तरफ अनाज के आयात का भी इन्तजाम करना पडता है। यदि सरकार को आन्तरिक खरीद में पर्याप्त मात्रा में सफलता न मिले तो सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए कठिनाई उत्पन्न हो सकती है।

निम्न तालिका में सरकार के द्वारा की गई खाद्यान्नों की खरीद व सार्वजनिक वितरण की प्रगति का उल्लेख किया गया है।[1]

वर्ष	खाद्यान्नों की शुद्ध उपलब्धि (मिलियन टनों में)	खरीद (procurement) (मिलियन टनों में)	सार्वजनिक वितरण (मिलियन टनों में)	सार्वजनिक वितरण की मात्रा (कॉलम 4) खाद्यान्नों की शुद्ध उपलब्धि (कॉलम 2) *के प्रतिशत के रूप में*
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1966	73 5	4 0	14·1	19 2
1987	134·6	15 7	18 4	13 8
1988	128 4	14 1	18·3	14 3

. Economic Survey 1988-89, p S-24.

उपर्युक्त तालिका के कॉलम (3) मे खाद्यान्नो की सरकारी वसूली/खरीद के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं। 1988 को खाद्यान्नो की वसूली 14 मिलियन टन रही, 1988 मे सार्वजनिक वितरण की मात्रा खाद्यान्नो की शुद्ध उपलब्धि का 14 3% रही जबकि 1966 में यह 19 2% तक पहुँच गयी थी। अत भविष्य मे सार्वजनिक वितरण के अंश को बढाना होगा।

4 **खाद्यान्नो की क्षेत्रीय व्यवस्था**—भारत मे पहले के वर्षों मे खाद्यान्नो के लिए क्षेत्रीय व्यवस्था का उपयोग किया गया था जिसके अन्तर्गत एक क्षेत्र मे तो अनाज के आने जाने की छूट होती थी, लेकिन निर्धारित क्षेत्र से बाहर अनाज को भेजने की स्वतन्त्रता नही होती थी। सरकार ने क्षेत्रीय व्यवस्था के समर्थन में यह कह दिया था कि इससे अनाज की वसूली में सहूलियत रहती है। पहले यह सोचा जाता था कि क्षेत्रीय व्यवस्था के टूट जाने से सरकारी खरीद का काम कठिन हो जायगा। लेकिन समय-समय पर इस व्यवस्था में ढील दी गई है। कुछ अर्थशास्त्रियो ने अनाज की क्षेत्रीय व्यवस्था को सकीर्ण व अनुचित बतलाया है। अप्रैल 1977 में सरकार ने गेहूँ के क्षेत्र (Wheat-zones) समाप्त कर दिये और इसके लिए सम्पूर्ण देश को एक क्षेत्र ही मान लिया था। आजकल गेहूँ के अन्तर्राज्यीय आवागमन पर रोक-टोक नही है। यही वजह है कि तमिलनाडु केरल व प बगाल जैसे घाटे के राज्य पजाब हरियाणा व अन्य राज्यो के खुले बाजारो मे अनाज खरीदकर अपने नागरिको की आवश्यकता की पूर्ति करने लगे हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि खाद्य-नीति मे प्रमुख प्रश्न निम्नांकित होते है—(1) सरकार खाद्यान्नो की वसूली के भाव क्या रखे ? (2) किस प्रकार ज्यादा से ज्यादा अनाज खरीद कर सार्वजनिक वितरण-प्रणाली के सचालन को सुदृढ कर सके ? (3) किस प्रकार उत्पादको व उपभोक्ताओ के हितो की रक्षा की जा सके ? दूसरे शब्दो मे, उत्पादको को प्रेरणादायक मूल्य मिलें ताकि व उत्पादन बढायें एव उपभोक्ताओ को उचित मूल्य पर अनाज मिल सके ताकि उनके उपभोग का स्तर कायम रह सके।

5 खाद्यान्नो के सम्बन्ध में मूल्य नीति (Price policy regarding food-grains)—**खाद्यान्नो के सम्बन्ध में मूल्य-नीति खाद्य नीति का एक आवश्यक अग होती है।** वैसे कुछ अध्ययनो से यह निष्कर्ष निकला है कि भारत मे कृषिगत पैदावार पर कृषिगत मूल्यो म किये गए परिवर्तनो का विशेष प्रभाव नही पडता। फिर भी कृषक की आय मे होने वाले परिवर्तन पैदावार की मात्रा को कुछ सीमा तक अवश्य प्रभावित करते हैं।

सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य (minimum support price), सरकारी खरीद/वसूली मूल्य (Procurement prices) व सार्वजनिक सस्थाओ के लिए विक्री

मूल्य या निकासी मूल्य (issue prices) निर्धारित करके खाद्यान्नो के मूल्यो को प्रभावित किया है। इनकी आवश्यकता व निर्धारण विधि नीचे दी जाती है :

(अ) न्यूनतम/समर्थन मूल्य (minimum/support prices)—इन्हे प्राय समर्थन-मूल्य कहा जाता है। नियमानुसार ये फसल बोने से पूर्व घोषित किये जाते हैं और इन पर सरकार कृषको द्वारा प्रस्तुत समस्त खाद्यान्न खरीदने के लिए उद्यत रहती है। इससे कृषको मे अनिश्चितता दूर होती है और वे उचित समय पर उत्पादन सम्बन्धी निर्णय ले सकते हैं।

इनके निर्धारण पर औसत लागत तथा प्रतिफल की उचित दर का प्रभाव पडता है। औसत लागत 'कुशल कृषक' (efficient farmer) की न होकर 'रेण्डम' आधार पर चुने गये प्रतिनिधि कृषक' (representative farmer) की होनी चाहिए। यह 3 से 5 वर्षों की चल औसत लागत (moving average cost) के बराबर होनी चाहिए, ताकि इनके निर्धारण मे वार्षिक उतार-चढावो का पर्याप्त रूप से ध्यान रखा जा सके।

न्यूनतम मूल्य वसूलो-मूल्यो से नीचे रखे जाते हैं। लेकिन बहुत नीचे होने पर ये अवास्तविक हो जाते हैं। अभाव के वर्षों मे बाजार-भाव ऊँचे होने से ये निरर्थक व निष्क्रिय हो जाते हैं। उत्तम फसलो के वर्षों मे ये उपयोगी हो सकते है। भारत मे 1977 से वसूली-मूल्यो को ही न्यूनतम मूल्यों में बदल दिया गया है। आजकल सरकार विभिन्न प्रकार के खाद्यान्नो के लिए वसूली/खरीद मूल्य घोषित करती है जिन पर कृषक द्वारा बाजार मे प्रस्तुत किये जाने वाले माल को खरीदा जाता है। ये ही न्यूनतम समर्थन-मूल्यो का काम करते हैं।

(आ) वसूली-मूल्य (Procurement Prices)—ये लेवी मूल्य भी कहलाते है। सरकार बफर स्टॉक का निर्माण करने के लिए वसूली-मूल्यो पर व्यापारियो या किसानो से अनाज खरीदने की व्यवस्था कर सकती है। वसूली-मूल्य बाजार मूल्यो से नीचे होते हैं। इनके निर्धारण पर निम्नलिखित तत्वो का प्रभाव पडता है (i) फसल की पैदावार के अनुमान, (ii) बाजार-मूल्य की प्रवृत्ति, (iii) वसूली की मात्रा का अनुमान, (iv) अन्य सम्बन्धित फसलो के मूल्य, (v) कृषिगत इन्पुटो के भाव (input prices)। ये मूल्य फसल कटने के समय घोषित किए जाते हैं और प्रायः साथ मे वसूली की मात्रा के लक्ष्य भी घोषित किये जाते हैं। आजकल कृषक पारिवारिक श्रम की लागत, जोखिम व परिवहन-लागत मे वृद्धि के कारण ऊँचे वसूली मूल्यो के लिए आन्दोलन करने लगे है। इनकी मागो पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए क्योंकि ऊँचे वसूली मूल्यो से मुद्रास्फीति की आग भडक सकती है। लेकिन कृषको को लागत-वृद्धि के लिए उचित मूल्य-वृद्धि की गारन्टी देनी आवश्यक होती है।

(इ) निकासी मूल्य (Issue Prices)—ये वे मूल्य होते हैं जिन पर भारतीय खाद्य-निगम राज्य सरकारों को सार्वजनिक वितरण के लिए खाद्यान्न उपलब्ध कराता है। ये आटा मिलों से थोड़े ऊँचे लिए जाते हैं। ये वसूली मूल्यों से ऊँचे व साधारण बाजार मूल्यों से नीचे होते हैं। भारत में निकासी मूल्य नीचे रखने पड़ते हैं जिससे खाद्यान्नों की बिक्री पर आर्थिक सहायता के रूप में करोड़ों रुपयों की हानि उठानी पड़ती है। 1989-90 के केन्द्रीय बजट में खाद्यान्नों की सब्सिडी के लिए 2200 करोड़ रुपये की धनराशि रखी गयी है। स्मरण रहे कि वसूली मूल्य ऊँचा करने तथा निकासी मूल्य यथास्थिर रखने का अर्थ होता है खाद्यान्नों पर सब्सिडी की राशि में वृद्धि करना। एक अनुमान के अनुसार भारत में गेहूँ के वसूली मूल्य 152 रु. प्रति क्विन्टल रखने पर इसकी अन्तिम लागत लगभग 210 रु. प्रति क्विंटल आती है, क्योंकि परिवहन व्यय, बोरों में भरने की लागत व अन्य कई प्रकार के चार्जेज होते हैं। ऐसी स्थिति में खाद्यान्नों की सब्सिडी की राशि का बढ़ना स्वाभाविक है।

गेहूँ के वितरण व वसूली मूल्यों के सम्बन्ध में सरकारी नीति

अप्रैल 1973 में गेहूँ के थोक व्यापार को सरकारी नियन्त्रण में लेने की नीति घोषित की गयी थी। इसका उद्देश्य थोक व्यापारियों द्वारा मध्यम वर्ग के शोषण को समाप्त करना व बिक्री की अधिक कार्यकुशल प्रणाली को विकसित करना था। लेकिन किसानों व व्यापारियों के विरोध के कारण यह नीति सफल नहीं हो सकी। बाजार में आने वाले गेहूँ की मात्रा कम हो गयी जिससे खाद्य स्थिति अधिक जटिल बन गयी थी। सरकार के द्वारा गहूँ की खरीद लक्ष्य से काफी नीची रही। आवश्यक तैयारी के अभाव में सरकार की गेहूँ के थोक व्यापार के समाजीकरण की नीति पूर्णतया विफल रही थी।

अप्रैल 1974 में सरकार ने गहूँ के वसूली-मूल्य 76 रु से बढ़ाकर 105 रुपय प्रति क्विंटल कर दिय जो पिछले वर्ष से 38% अधिक थे। सरकार ने व्यापारियों पर लेवी की व्यवस्था लागू कर दी तथा उन्हें अपनी खरीद का 50% अश निर्धारित भावों पर सरकार को बेचने के लिए कहा गया। इस नीति के अनुसार भी सरकार अपने वसूली के लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकी।

मार्च 1975 में उत्पादकों से लेवी लेने की नीति अपनायी गयी। वसूली-मूल्य 105 रुपये क्विंटल ही जारी रखे गये। सरकार ने इन भावों पर नियमित बाजारों में अनाज खरीदने की नीति अपनाई। 1976 में यही नीति जारी रखी गई। सरकार को वसूली में काफी सफलता मिली।

अप्रैल 1977 में जनता सरकार ने गेहूँ के वसूली-मूल्य 110 रुपये प्रति क्विंटल कर दिये और वसूली मूल्य समर्थन-मूल्यों में बदल दिये। उत्पादकों व व्यापा-

रियों से लेवी लेना समाप्त करके सरकार ने 110 रुपये प्रति क्विटल पर सीधे किसानो से गेहूँ खरीदना चालू कर दिया। गेहूँ की क्षेत्रीय व्यवस्था समाप्त कर दी गई। बाद मे प्रति वर्ष गेहूँ के वसूली मूल्यो मे वृद्धि की गयी है। 1990-91 की रबी-मौसम के लिए गेहूँ के वसूली भाव 200 रु प्रति क्विटल रखे गये हैं जो पिछले वर्ष से 17 रुपये प्रति क्विटल अधिक है। ये मूल्य कृषि-मूल्य आयोग (अब कृषि लागत व मूल्य आयोग) द्वारा निर्धारित किये जाते है।

सरकार ने अन्य अनाजो के भी वसूली/समर्थन-मूल्य घोषित किये हैं, ताकि कृषको को प्रेरणादायक मूल्यों की गारण्टी मिल सके। इस प्रकार सरकार उत्पादकों व उपभोक्ताओं के हितो को ध्यान म रखते हुए उचित खाद्य-नीति का निर्धारण व क्रियान्वयन कर रही है। इस नीति के सचालन के लिए सरकार को खाद्यान्नो के लिए भारी मात्रा मे आर्थिक सहायता (food subsidy) भी देनी पडती है।

हमने देखा कि 1977 से 1989 तक की नीतियो मे न्यूनतम समर्थन/वसूली मूल्यों का महत्व काफी बढ गया है। सरकार ने जौ, चना दालो, सरसो, मूगफली, सनफ्लोवर बीज, सोयाबीन, कपास, गन्ना आदि के लिए भी समर्थन-मूल्य लागू किये हैं। यह नीति खाद्यान्नो के उत्तम वर्ष के लिए तो उपयुक्त मानी जा सकती है, लेकिन इसमे स्वतन्त्र व्यापार की ओर अधिक झुकाव प्रतीत होता है। यह खाद्यान्नों के अभाव मे वर्ष मे अनुपयुक्त व कठिनाई उत्पन्न करने वाली सिद्ध हो सकती है। अत. भारत मे आज भी एक दीर्घकालीन व अधिक स्थायी खाद्य-नीति की आवश्यकता बनी हुई है जिसमे खाद्यान्नो की वसूली, सग्रह, मूल्य व सार्वजनिक वितरण आदि म आवश्यक समन्वय या तालमेल बैठाया जा सके और जो उत्पादक व उपभोक्ता दोनो के हितो की समान रूप से रक्षा कर सके। भारत मे एक देशव्यापी खाद्यान्नो की वितरण व्यवस्था के विकास की नितान्त आवश्यकता है।

भारत की खाद्य-समस्या को हल करने के लिए सुझाव
अथवा
भारत के लिए एक उचित खाद्य-नीति क्या होनी चाहिए ?

भारत मे जनसख्या की वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्नो की माँग मे तेजी से वृद्धि हो रही है। योजनाओ मे सार्वजनिक व निजी विनियोगो के बढने से खाद्यान्नो के लिए 'प्रभावपूर्ण माँग' का बढना स्वाभाविक है। सरकार ने खाद्य समस्या का हल करने के कई प्रयत्न किये हैं, लेकिन उसको खाद्य-समस्या के सभी पहलुओ का उचित हल निकालने म अभी तक पूरी सफलता नही मिली है। खाद्य-समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1. आधुनिक व गहन खेती की आवश्यकता—भारत मे नई भूमि पर विस्तृत खेती की सम्भावनाएँ बहुत कम है। अत: प्रचलित कृषि भूमि पर गहन खेती के उपाय अपनाकर प्रति हैक्टेयर उपज म वृद्धि की जानी चाहिए। इसके लिए सुधरे

1 The Economic Times, August 30, 1989.

हुए बीजों, उत्तम खाद और रासायनिक उर्वरकों, उत्तम हल तथा अन्य औजारों और मशीनों के सुधरे हुए तरीकों का प्रयोग करना चाहिए। सिंचाई के विस्तार द्वारा जिन खेतों पर एक फसल उगायी जाती है उन पर दो या अधिक फसलें उगाई जानी चाहिए। इस दिशा में जितना भी प्रयत्न किया जा सके उतना ही उत्तम रहेगा। भारत को जल और मिट्टी के सर्वोत्तम उपयोग के सम्बन्ध में बहुत कुछ करना बाकी है। *खाद्यान्नों में स्थायी आत्मा-निर्भरता प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए।* योजनाकाल में चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा व मक्का आदि में प्रति हैक्टेयर पैदावार बढ़ी है। 1955-56 में चावल की प्रति हैक्टयर पैदावार 874 किलोग्राम थी, जो 1987-88 में 1473 किलोग्राम हो गयी है एवं गेहूँ की 708 किलोग्राम से बढ़कर 1995 किलोग्राम हो गयी है। 1985-86 में यह और भी अधिक रही थी क्योंकि 1987-88 एक अभूतपूर्व सूखे का वर्ष रहा था, इसलिए उसमें उपज नीची रही थी। कृषि की उन्नत विधियों को अपनाकर प्रति हैक्टेयर उपज और बढ़ायी जा सकती है।

2 सूखी खेती के विस्तार की आवश्यकता (Need for Dryland Farming)—

भारत में वर्षा पर आश्रित कृषि क्षेत्र से लगभग 42% खाद्यान्न प्राप्त होते हैं।

भारत में विभिन्न स्त्रोतों से कुल कृषित क्षेत्रफल के लगभग 33% भाग में सिंचाई की जाती है और शेष 67% क्षेत्र वर्षा पर आश्रित रहता है। लगभग समस्त मोटे अनाज व दालें, अधिकांश कपास व तिलहन वर्षा पर आश्रित क्षेत्रों में उत्पन्न किये जाते हैं। इन क्षेत्रों में उत्पादन में काफी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, जिससे कृषिगत अर्थव्यवस्था अस्थिर बनी रहती है।

वर्षा पर आश्रित खेती वाले क्षेत्रों में सूखी खेती की विधियों को अपनाकर अनाज का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इन क्षेत्रों में उपलब्ध नमी की रक्षा करने की आवश्यकता है। पानी को तालाबों व बन्धा आदि में संग्रह करके रखना चाहिए ताकि वह पूरक सिंचाई के रूप में इस्तेमाल किया जा सके। मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में सूखी खेती की विधियों को अपनाकर खरीफ की फसलों को सूखे के प्रभाव से बचाया जा सकता है, रबी की फसलों के लिए बोने से पूर्व सिंचाई की जा सकती है, दर में पक कर तैयार होने वाली फसलों जैसे लाल चना, अण्डी (castor) आदि के लाभ के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार जल की सुरक्षा के आधार पर फसल उगाने की तकनीक (Water harvesting technology) का उपयोग करके खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इस दिशा में अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। सूखी खेती में भूमि व नमी के प्रबन्ध पर जोर दिया जाता है।

तब उपभोक्ता भी आवश्यकता से अधिक अनाज संग्रह करने लगते हैं जिससे भाव बहुत ऊँचे हो जाते हैं। इस समस्या को हल करने के लिए अशोक मेहता समिति ने मूल्यों के स्थिरीकरण का सुझाव दिया था। समिति ने राज्य द्वारा अनाज का थोक व्यापार अपने हाथ मे लेने और सस्ते अनाज की दूकानों, सहकारी समितियों व नियोक्ताओं के सगठनों द्वारा अनाज के वितरण की सिफारिश की थी। आजकल अनाज की सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से निर्धारित भावों पर आम जनता को अनाज उपलब्ध किया जाता है। भारतीय खाद्य-निगम इस सम्बन्ध मे काफी सक्रिय रूप से काम करता रहा है। सरकार को बफर स्टॉक की नीति को अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता है।

8 उपभोग मे सुधार—एक औसत भारतवासी के दैनिक भोजन मे अनाज की प्रधानता होती है। अनाज के स्थान पर केले शकरकन्द व आलू आदि अधिक उपज देने वाली फसलों का उपभोग बढाया जाना चाहिए तथा फल, सब्जी अण्डे, मास-मछली आदि पौष्टिक पदार्थों का उत्पादन बढा कर तथा इनकी कीमतें नीची रख कर सर्वसाधारण द्वारा इनके उपभोग मे वृद्धि की जानी चाहिए ताकि कम अनाज से काम चलाया जा सके और आम नागरिक की दैनिक खुराक की क्वालिटी मे भी सुधार हो सके।

9 जनसख्या का नियन्त्रण—खाद्यान्नो की समस्या का स्थायी हल करने के लिए कृषिगत उपज बढाने, फसलो की रक्षा तथा उपभोग मे सुधार करने के साथ-साथ राष्ट्रव्यापी परिवार नियोजन आन्दोलन द्वारा जनसख्या की वृद्धि की रफ्तार को भी कम किया जाना चाहिए। जनसख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण स्थापित किये बिना खाद्यान्नो मे स्थायी आत्म-निर्भरता प्राप्त करने मे कठिनाई होगी। भारत मे जन-सख्या मे वार्षिक वृद्धि-दर को 2 1% से घटाकर 1·8% या इससे भी कम पर लाने का प्रयास तेज किया जाना चाहिए।

10. छोटे कृषको और काश्तकारो के सम्बन्ध मे दृष्टिकोण बदलना होगा—जिसमे इन्हे साख की अधिक सुविधाएँ मिल सकें और ये उत्पादन बढाने मे अपना अधिक सहयोग दे सकें। इसके लिए सातवी योजना के एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development programme) (IRDP) को कामयाब बनाया जाना चाहिए।

11 खाद्यान्नो के लिए आर्थिक सहायता (Food subsidy) कम करने की आवश्यकता—पिछले वर्षों म खाद्यान्नो की बिक्री पर आर्थिक सहायता काफी बढ गयी है। *1989-90 के केन्द्रीय बजट मे खाद्यान्नो के लिए सब्सिडी की राशि* 2200 करोड रु० रखी गयी है। यदि सरकार खाद्यान्नो के वसूली मूल्यो मे वृद्धि करती है और निकासी मूल्य (issue prices) स्थिर रखती है तो खाद्य-सब्सिडी का बढना स्वाभाविक है। खाद्यान्नो के सग्रह-व्यय, वितरण-व्यय आदि मे

कमी करके आर्थिक सहायता कम की जानी चाहिए। खाद्य-प्रशासन को अधिक कार्य-कुशल बनाये जाने की भी आवश्यकता है। इससे जनता पर कर-भार कम करने में मदद मिलेगी। खाद्य-सब्सिडी कम करने के लिए निकासी मूल्य बढ़ाने होते हैं जिनसे निर्धन-वर्ग पर आर्थिक भार पड़ता है। अतः भारत में खाद्य-सब्सिडी की राशि को घटाना आसान नहीं है। पिछले वर्षों के अनुभव के अनुसार यह निरन्तर बढ़ती जा रही है।

12 खाद्यान्नों के सम्बन्ध में उचित मूल्य-नीति की आवश्यकता—पिछले वर्षों में खाद्यान्नों की मूल्य-नीति के प्रश्न पर काफी विवाद हुआ है। सरकार ने उत्पादकों को प्रेरणा देने के लिए उचित मूल्य निर्धारित करने की आवश्यकता स्वीकार की है। खाद्यान्नों के वसूली मूल्यों में वृद्धि की गयी है। इसका कारण यह बतलाया गया है कि उर्वरक, डीजल तेल व अन्य कृषिगत साधनों के भावों में वृद्धि हुई है। कृषिगत वर्ष 1990-91 के लिए गेहूँ के वसूली-मूल्य (जो समर्थन-मूल्य भी है) 200 रु. प्रति क्विंटल रखे गए हैं जो पिछले वर्ष से 17 रु. प्रति क्विंटल अधिक हैं। इस प्रकार अभाव के वर्षों में अनाज की वसूली व वसूली मूल्यों का महत्त्व होता है, तो आधिक्य के वर्षों में समर्थन मूल्यों का अधिक महत्त्व होता है। कृषि-लागत व मूल्य-आयोग अनाज के मूल्य-निर्धारण का कार्य काफी दक्षता से कर रहा है। सरकार को इनकी सलाह पर अधिक ध्यान देना चाहिए और मूल्य-निर्धारण के प्रश्न को राजनीति से दूर रखना चाहिए। यदि धनी किसानों के कहने पर वसूली-मूल्य बढ़ाये जाते रहे, तो मुद्रास्फीति को बढ़ावा मिलेगा। इसलिए समस्त स्थिति पर आर्थिक दृष्टि से ही विचार किया जाना चाहिए। कृषकों की उचित माँग पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा पर विपरीत प्रभाव न पड़े।

13 अधिक स्थिर व अपेक्षाकृत अधिक स्थायी व दीर्घकालीन खाद्य-नीति की आवश्यकता—योजना आयोग के पूर्व सदस्य तथा भारत के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. बी. एस. मिन्हास का मत है कि "एक स्थिर खाद्य-नीति के अभाव में खाद्यान्नों के उत्पादन के क्षेत्र में हमारी कमियाँ और भी तीव्र हो जाती हैं। हमारी खाद्य नीति काफी अस्थिर भी रही है। एक वर्ष खुले बाजार में खरीद, दूसरे वर्ष एकाधिकारी खरीद, तीसरे वर्ष व्यापारियों व मिलर्स पर लेवी और चौथे वर्ष में इनमें से कुछ का मिश्रण तथा पाँचवें वर्ष में पुनः इनमें से किसी भी एक पर वापस चले जाने की स्थिति आदि। इस प्रकार पिछले दस वर्षों में एक स्थायी व स्थिर खाद्य-नीति की कमी ने हमें बहुत क्षति पहुँचायी है। इसी के फलस्वरूप हमें खाद्यान्नों के आयात की शरण लेनी पड़ी है जिसमें दीर्घकाल तक रियायती शर्तों पर पी एल 480 के आयातों के अलावा आजकल के व्यावसायिक आयात भी शामिल हैं।"

भारत जैसे विशाल देश के लिए जहां खाद्यान्नों का उत्पादन काफी अस्थिर रहता है, वहाँ एक सुदृढ व स्थायी किस्म की खाद्य-नीति की आवश्यकता से इन्कार नही किया जा सकता। सरकार को खाद्यान्नो की खरीद, संग्रह व वितरण की एक ऐसी व्यवस्था अपनानी चाहिए जो अभाव व आधिक्य दोनों प्रकार के वर्षों की कठिनाइयो को दूर करके उत्पादको व उपभोक्ताओ के हितो की भली-भाँति रक्षा कर सके। इसके लिए प्रो मिन्हास द्वारा बतलायी गई कमी को दूर करके एक सुदृढ व दीर्घकालीन खाद्य-नीति विकसित की जानी चाहिए।

सातवीं पचवर्षीय योजना 1985-90 में खाद्यान्नो के उत्पादन में वृद्धि के लक्ष्य व नीति[1] —

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है सातवी पचवर्षीय योजना मे 1989-90 के लिए खाद्यान्नो के उत्पादन का लक्ष्य 17 8 करोड टन से 18 3 करोड टन के बीच रखा गया है। मोटे तौर पर यह 18 करोड टन माना जा सकता है। इस प्रकार खाद्यान्नों के उत्पादन में वार्षिक वृद्धि-दर का लक्ष्य $3\frac{1}{2}\%$ से 4% तक रखा गया है। राज्य सरकारे इन लक्ष्यो को जिलावार व फसलवार निर्धारित करेंगी ताकि उत्पादन व उत्पादकता को अधिकतम किया जा सके।

खाद्यान्नो के उत्पादन के लक्ष्य निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाते हैं :—

(करोड टन में)

फसल	1984-85 का अनुमानित आधार-स्तर	1989-90 का लक्ष्य
(1) चावल	6 0	7 4
(2) गेहूँ	4·5	5 6
(3) मोटे अनाज (जौ, मक्का व बाजरा)	3 2	3 4
(4) दालें	1 3	1 6
कुल	15 0	18 0

तालिका से स्पष्ट होता है कि सातवी योजना मे चावल व दालो के उत्पादन को बढाने पर विशेष रूप से बल दिया जायगा। चावल के उत्पादन मे वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 4 से $4\frac{1}{2}\%$ रखा गया है।

1989-90 मे 18 करोड टन के खाद्यान्नो के उत्पादन के लक्ष्य मे कुछ राज्यो के अश इस प्रकार रखे गये हैं .

1 Seventh Five Year Plan 1985-90, Vol II, pp 5-6

(करोड टन मे)

1	उत्तर प्रदेश	3 63
2	पजाब	1 70
3	मध्य प्रदेश	1 55
4	आन्ध्र प्रदेश	1 30
5	बिहार	1 30
6	महाराष्ट्र	1 25
7	राजस्थान	1 00
8	तमिलनाडु	1 00
9	पश्चिमी बगाल	1 00
		13 73

इस प्रकार खाद्यान्नो के उत्पादन का लगभग 3/4 अश इन नौ राज्यों से प्राप्त होने की आशा है। देश के पूर्वी भाग मे चावल का उत्पादन बढाया जायगा। लगभग 20% खण्डो (blocks) मे चावल का उत्पादन बढाने का एक विशेष कार्यक्रम चलाया जायगा।

दालों के उत्पादन को बढाने के लिए निम्नलिखित नीति का उपयोग किया जायगा

(I) सिचित क्षेत्रो मे दालो का श्रीगणेश (II) चावल की परती भूमि पर मूग व उडद की जल्दी पक कर तैयार होने वाली फसलो को उगाना, (III) अन्य फसलो के साथ अरहर, मूँग व उडद की दालो को उगाना, (IV) सुधरे हुए बीजो का उपयोग करना (V) पौध सरक्षण के उपाय अपनाना (VI) उर्वरको का उपयोग बढाना *(VII) फसल के बाद की टेक्नोलोजी मे सुधार करना (VIII) प्रेरणादायक* मूल्य देना तथा (IX) बिक्री की व्यवस्था मे सुधार करना। सरकार दालो का उत्पादन बढाने के लिए एक राष्ट्रीय दाल विकास कार्यक्रम सचालन करेगी।

सातवी योजना मे खाद्यान्नो के उत्पादन के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकारें इन लक्ष्यो को जिलावार व फसलवार तथा सिंचित व असिंचित क्षेत्रवार विभक्त करें एव उत्पादन बढाने के विभिन्न कार्यक्रमो मे परस्पर ताल मेल स्थापित कर। तभी सातवी योजना की अवधि मे खाद्यान्नो का उत्पादन 15 करोड टन से बढकर 18 करोड टन हो सकेगा। 1988-89 म अनुकूल मौसम *के कारण उत्पादन के 17 करोड टन या अधिक रहने की* आशा है। अत सातवी *योजना म* खाद्यान्नो के उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त हो जाने की आशा है।

प्रश्न

1. भारत मे खाद्य समस्या के विभिन्न पक्षो की विवेचना कीजिये। इसको हल करने के लिए क्या किया गया है ?

(Raj. IIyr. T. D. C., 1985)

2. भारत मे हाल के वर्षों मे सरकार की खाद्य-नीति की आलोचनात्मक जांच कीजिए। कोई सुझाव हो तो दीजिए।

(Raj IIyr. T. D. C., 1981)

3. सक्षिप्त टिप्पणी दीजिए :—

(अ) भारत मे खाद्य-समस्या

(Raj. IIyr T. D C., 1982, 1984 and 1986)

4. हाल के वर्षों मे भारत की खाद्य-स्थिति की जांच कीजिए। क्या देश खाद्यान्नो मे आत्म-निर्भर हो गया है ? सरकार की खाद्य-नीति का विश्लेषण कीजिए। (Raj. IIyr. T D. C., 1980)

7

कृषि--साख

(Agricultural Credit)

महत्व—भारत मे कृषिगत अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का एक कारण साख की सुविधाओं का अभाव माना जा सकता है। गांवों मे कई प्रकार की आर्थिक क्रियाओं को सफलतापूर्वक चलाने के लिए पर्याप्त मात्रा मे साख की आवश्यकता होती है। कृषि ग्रामीण उद्योग, प्रोसेसिंग के कार्य, पशु-पालन आदि सभी कार्यों के लिए साख की आवश्यकता होती है। ग्रामीण जनता की आमदनी बहुत कम होती है, अत उसकी बचत भी कम होती है। आर्थिक कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए साख की आवश्यकता पड़ती है। नियोजित अर्थव्यवस्था मे कृषि का तेजी से विकास करने के लिए तो साख की आवश्यकता दिनोदिन बढती जा रही है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे विविधता लाने के लिए गैर-कृषि-उत्पादन को बढाने की भी आवश्यकता है। अत भविष्य मे ग्रामीण क्षेत्रो मे पूंजी की मांग तेज गति से बढ़ेगी। ग्रामीण साख की एक सुनियोजित एव सुसगठित योजना के द्वारा ही उसकी पूर्ति की जा सकेगी।

ग्रामीण साख मे कृषि-साख के अतिरिक्त कुटीर व विभिन्न प्रकार के ग्रामीण उद्योगो के लिए आवश्यक साख की मात्रा शामिल की जाती है। फिर भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था म सबसे ज्यादा पूंजी की आवश्यकता कृषिगत कार्यों के लिए ही होती है। *कृषिगत उत्पादन व उत्पादकता बढाने के लिए साख की उपलब्धि उचित समय* पर, उचित मात्रा मे व उचित ब्याज की दर पर होनी चाहिए।

कृषि-साख का वर्गीकरण—*भारतीय किसान की साख सम्बन्धी आवश्यकताओं* का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है जैसे—(अ) अवधि के अनुसार, (आ) उद्देश्य के अनुसार, (इ) जमानत के अनुसार, (ई) ऋणदाता के अनुसार। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

(अ) अवधि के अनुसार (Period-wise) (1) अल्पकालीन—इसकी अवधि 15 महीने तक होती है। अल्पकालीन ऋण चालू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राप्त किये जाते हैं, जैसे खाद, बीज आदि के लिए किसान गाव के महाजन या

सहकारी समिति से इस प्रकार के ऋण लेता है। ऐसे ऋण उपभोग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी लिये जाते है।

(ii) मध्यमकालीन—इनकी अवधि 15 महीने से 5 वर्ष तक की होती है। किसान बैल की जोडी खरीदने के लिए, कुआं खुदवाने एव भूमि मे कई प्रकार के सुधार करने के लिए ऐसे ऋण लेता है। शादी व मृत्यु पर उपभोग-खर्च के लिए भी मध्यमकालीन ऋण लिए जाते है।

(iii) दीर्घकालीन—इनका भुगतान पांच वर्ष के बाद होता है। ये पुराने ऋण चुकाने लघु सिंचाई भू सरक्षण बजर भूमि को तोडने भूमि खरीदने व भूमि मे स्थाई सुधार करने भारी मशीनरी जैसे ट्रैक्टर आदि खरीदने एव ग्रामीण विद्युतीकरण आदि के लिए लिए जाते हैं। भूमि विकास बैक दीर्घकालीन ऋण देते है। गाँवो मे महाजनो से भी दीर्घकालीन ऋण प्राप्त किये जाते है।

विभिन्न अवधि ऋणो की मांग का अनुमान

भारत मे कृषि विकास की नयी नीति अपनाने के बाद 1966 से अल्पकालीन, मध्यमकालीन व दीर्घकालीन साख की मांग मे काफी वृद्धि हुई है और भविष्य मे यह वृद्धि जारी रहेगी।

सातवी पचवर्षीय योजना 1985-90 मे सहकारी ऋणो के लिए निम्न लक्ष्य प्रस्तावित किये गये है।[1]

(करोड रु मे)

सहकारिताओ के माध्यम से	1984-85 मे प्रत्याशित उपलब्धि का स्तर	1989-90 के लिए लक्ष्य
अल्पकालीन कर्ज	2500	5540
मध्यमकालीन कज	250	500
दीघकालीन कज	500	1030
कुल	3250	7070

इस प्रकार सहकारिताओ के माध्यम से सभी अवधियो के लिए कुल कर्ज की मात्रा *1984-85 मे 3250 करोड रु से बढाकर 1989-90 मे लगभग 7070* करोड रु करने का लक्ष्य रखा गया है।

(आ) उद्देश्य के अनुसार (Purpose-wise)—ऋण उत्पादक व अनुत्पादक (उपभोग के लिए) दो प्रकार के होते है। उपभोग के लिए प्राप्त किये गये ऋण भी दो भागों मे बांटे जा सकते है फसल की अवधि मे किसान अपने परिवार के भरण पोषण के लिए ऋण लेने को बाध्य हो जाता है। इसके अलावा शादी, मृत्यु, मुकदमेबाजी आदि मे व्यय करने के लिए भी ऋण लेने पडते है। प्रथम श्रेणी के ऋण

1 Seventh Five Year Plan 1985-90 Vol II, p 18

उपभोग के लिए, लिए जाने पर भी उत्पादक ऋणों की भाँति ही होते हैं, और उनका लेना बुरा नहीं होता है। लेकिन द्वितीय श्रेणी के उपभोग-ऋण पूर्णतया अनुत्पादक होते हैं और इन्हें यथासम्भव कम किया जाना चाहिए, क्योंकि इनका चुकाया जाना काफी कठिन होता है।

(ई) जमानत के अनुसार (Security-wise)—प्राय ऋण जमानत या बिना जमानत दोनों प्रकार से दिये जाते हैं। महाजन प्राय बिना जमानत के भी अल्पकालीन ऋण देता है, लेकिन सहकारी संस्थाएं भूमि की जमानत पर ही ऋण प्रदान करती है। इससे बड़े किसानों को ही विशेष लाभ पहुँच पाता है और छोटे व मध्यम श्रेणी के किसान सहकारी साख प्राप्त करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। यदि 'भूमि की जमानत' के स्थान पर 'भुगतान की क्षमता' के आधार पर ऋण दिये जाएँ तो ऐसे कृषकों को ज्यादा लाभ मिल सकता है।

(इ) ऋणदाता के अनुसार (Creditor-wise)—भारत में ऋणदाता के अनुसार किसानों को साख प्रदान करने के साधन दो भागों में बाँटे गये हैं। (1) व्यक्तिगत (Individual) (2) संस्थागत (Institutional)। व्यक्तिगत साधनों में साहूकार, देशी बैंकर, व्यापारी, जमींदार व किसानों के मित्र-सम्बन्धी आदि आते हैं और संस्थागत साधनों में सहकारिताएँ, राज्य सरकारें, अनुसूचित व्यापारिक बैंक, प्रादेशिक ग्रामीण बैंक व ग्रामीण विद्युतीकरण निगम आते हैं। आजकल संस्थागत साधनों को बढ़ाने पर अधिक जोर दिया जाने लगा है ताकि कृषकों को महाजन व साहूकारों के आर्थिक शोषण से बचाया जा सके, छोटे किसानों की आवश्यकताओं की पूर्ति पर अधिक ध्यान दिया जा सके तथा कृषि के लिए कर्ज की कुल मात्रा में वृद्धि की जा सके।

कृषि के लिए संस्थागत वित्त

(Institutional Finance for Agriculture)

कृषि के लिए संस्थागत वित्त को भी दो भागों में बाटा जा सकता है—(अ) प्रत्यक्ष वित्त (direct finance) इसके अन्तर्गत सहकारी समितियाँ, राज्य सरकारें, अनुसूचित व्यापारिक बैंक व प्रादेशिक ग्रामीण बैंक किसानों को प्रत्यक्ष रूप से ऋण देते हैं। प्राथमिक कृषि साख समितियाँ कृषकों को अल्पकालीन व मध्यमकालीन कर्ज देती हैं तथा भूमि विकास बैंक दीर्घकालीन कर्ज देते हैं। राज्य सरकारें किसानों को 'तकावी' ऋण देती हैं। अनुसूचित व्यापारिक बैंक (प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों सहित) कृषि व सहायक क्रियाओं के लिए अल्पकालीन व सावधि-कर्ज (term loan) प्रदान करते हैं। (ब) परोक्ष वित्त (indirect finance) इसके अन्तर्गत राज्य सहकारी बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक, अनुसूचित व्यापारिक बैंक, प्रादेशिक ग्रामीण बैंक व ग्रामीण विद्युतीकरण निगम परोक्ष रूप में कृषि को वित्त प्रदान करते हैं। इन्हें परोक्ष ऋण इसलिए कहा जाता है कि इनमें ऋण देने वाली संस्था किसी अन्य संस्था के मार्फत किसान

को कर्ज देती है; जैसे अनुसूचित व्यापारिक बैंक कहीं-कहीं प्राथमिक कृषि साख समितियों के मार्फत किसान को कर्ज देते हैं जो परोक्ष कर्ज के अन्तर्गत दिखाया जाता है। इसी प्रकार सहकारी समितियाँ खाद्यान्नों की वसूली, कृषि पदार्थों की बिक्री आदि के लिए ऋण देती है। कृषि-साख की नई व्यवस्था में प्रत्यक्ष व परोक्ष संस्थागत वित्त दोनों का योगदान बढ़ाया जा रहा है।

कृषि-साख की पूर्ति के साधन

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण ने अपनी दिसम्बर, 1954 की रिपोर्ट में 1951-52 की अवधि से सम्बन्धित कृषि-साख के विविध पहलुओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला था। भारतीय रिजर्व बैंक ने अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण व विनियोग सर्वेक्षण (All India Rural Debt and Investment Survey, के अन्तर्गत 1961-62 तथा 1981-82 की अवधि के लिए आँकड़े एकत्र किये गये थे। निम्नलिखित तालिका से प्रकट होता है कि ग्रामीण साख की पूर्ति में 1951-52 से 1981-82 की अवधि में विभिन्न एजेन्सियों का तुलनात्मक स्थान काफी बदल गया है।

कृषि-साख के स्रोत[1]

साख प्रदान करने की एजेन्सी	कृषकों की कुल उधार में प्रत्येक एजेन्सी से प्राप्त उधार का प्रतिशत अश 1951-52	1961-62	1981-82
सरकार	3·3	2·6	4·0
सहकारी समितियाँ	3·1	15·5	28·6
कृषक के सम्बन्धी	14 2	8 8	38·8 (कृषक के सम्बन्धी से व्यापारी व कमीशन एजेण्ट तक सम्मिलित)
भू-स्वामी	1·5	0·6	
कृषक-महाजन	24·9	36·0	
पेशेवर महाजन	44·8	13 2	
व्यापारी व कमीशन एजेण्ट	5 5	8·8	
व्यापारिक बैंक	0·9	0·6	28·0
अन्य	1·0	13·9	0·6
	100·0	100·0	100·0

उपर्युक्त तालिका से प्रकट होता है कि ग्रामीण साख की एजेन्सी के रूप में 1951-52 से 1981-82 की अवधि में सरकार, सहकारी समितियों व व्यापारिक

* RBI Bulletin, June 1986, for All India Debt and Investment Survey 1981-82 results.

नोट—कुछ पुस्तकों में इसी क्रम के आँकड़े अन्य वर्षों के लिए दिये गये हैं। लेकिन उनका कोई स्रोत या आधार नहीं होने से वे मनगढ़न्त व मिथ्या है। अतः उनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। अखिल भारतीय ऋण व विनियोग सर्वेक्षण के आकड़े ही सही व विश्वसनीय माने जाते हैं। पाठक इसका विशेष ध्यान रखें।

बैंकों तीनों के द्वारा दी जाने वाली साख, अर्थात् सस्थागत साख (Institutional credit) का अश 7% से बढकर 61% हो गया है। निजी एजेन्सियो जैसे महाजन, व्यापारी, कमीशन एजेन्टो तथा सम्बन्धियो आदि का स्थान 93% से घटकर लगभग 39% हो गया है। इस प्रकार 1981-82 सस्थागत एजेन्सियो व निजी एजेन्सियो का योगदान लगभग 60 40 के अनुपात मे रहा है। इस प्रकार सस्थागत एजेन्सियो का योगदान 60% से भी अधिक हो गया है जो एक सही दिशा की ओर प्रगति है और आगामी वर्षों मे इसको और सुदृढ करने की आवश्यकता है।

कृषि के लिए संस्थागत वित्त[1]
(Institutional Finance for Agriculture)

सहकारिताएँ, अनुसूचित व्यापारिक बैंक व प्रादेशिक ग्रामीण बैंक तीन मुख्य सस्थागत एजेन्सियां हैं जो कृषिगत साख प्रदान करती हैं। जुलाई 1982 मे नाबार्ड की स्थापना से कृषिगत साख के क्षेत्र में पुनर्वित्त की सुविधा काफी बढ गई है जिसका लाभ विभिन्न एजेन्सियो ने उठाया है।

सहकारिताओं, अनुसूचित व्यापारिक बैंको, प्रादेशिक ग्रामीण बैंको व राज्य सरकारो ने 1986-87 मे कृषिगत कार्यों के लिए प्रत्यक्ष वित्त (direct finance) के रूप मे 7,921 करोड रु. प्रदान किये जो पिछले वर्ष से 10 6% अधिक थे। इनमे से 49 3% राशि सहकारिताओ द्वारा प्रदान की गई। दूसरा स्थान व्यापारिक बैंको का रहा। इन्होने लगभग 42·1% राशि दी। प्रादेशिक ग्रामीण बैंको द्वारा 6% तथा राज्य सरकारों द्वारा शेष 2·6% राशि प्रदान की गई।

राज्य सहकारी बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक, अनुसूचित व्यापारिक बैंक, प्रादेशिक ग्रामीण बैंक व ग्रामीण विद्युतीकरण निगम कृषि के लिए परोक्ष वित्त (indirect finance) प्रदान करते है। राज्य व केन्द्रीय सहकारी बैंको के मार्फत परोक्ष ऋण की राशि 1986-87 मे 4803 करोड रु से बढकर 1987-88 मे 6047 करोड रु हो गई। 1983-84 व 1984-85 प्रादेशिक ग्रामीण बैंक प्रति वर्ष परोक्ष कर्ज के रूप मे 8 से 9 करोड रु देते रहे हैं लेकिन बाद मे नही दिया है। ग्रामीण विद्युतीकरण निगम ने परोक्ष ऋण के रूप में 1986-87 मे 440 करोड रु दिये जिनकी मात्रा 1987-88 मे बढ कर 655 करोड रुपये हो गयी (वित्तीय वर्ष अप्रैल-मार्च)

सस्थागत साख के क्षेत्र मे प्रमुख समस्या

देश मे कृषिगत साख सस्थाओं की दशा काफी निराशाजनक है। कई राज्यो मे जानबूझकर समय पर भुगतान न करने व बढते हुए ओवरड्यूज की समस्या काफी गम्भीर हो गई है। यहाँ तक कि महाराष्ट्र व गुजरात जैसे सहकारी दृष्टि से

1. Report on Currency and Finance 1987-88, Vol. I, pp. 199-202.

विकसित राज्यो की दशा भी खराब है। कुछ राज्यो ने कृषिगत ऋणो को बट्टे खाते लिखकर तथा सहकारी खजाने से सब्सिडी देकर देश के समक्ष गलत किस्म का दृष्टात रखा है। यदि यही प्रवृत्ति जारी रही तो संस्थागत एजेन्सियाँ कोषो के अभाव में अपना काम ठीक से नही कर पायेंगी।

पिछले कुछ वर्षों से ओवरड्यूज की राशि माग के अश के रूप मे 40% से अधिक रही है। जून 1987 के अन्त मे प्राथमिक कृषि साख समितियों के ओवरड्यूज माँग-राशि का 41 1 प्रतिशत तथा राज्य व केन्द्रीय भूमि विकास बैंको के लिए 48 1 प्रतिशत रहे हैं। हरियाणा केरल व पजाब को छोड़कर अन्य राज्यो मे कर्ज की वसूली सतोषजनक नही रही है।[1]

इतने ओवरड्यूज रहने से कोषो की गतिशीलता रुक जाती है।

सातवी योजना मे वर्ष 1989-90 तक के लिए विभिन्न सस्थागत एजेन्सियो के लिए कृषिगत साख के निम्न लक्ष्य रखे गये हैं— (करोड रु मे)

I सहकारिताएँ	
(अ) अल्पकालीन कर्ज	5540
(ब) मध्यकालीन ,,	500
(स) दीर्घकालीन ,,	1030
II व्यापारिक बैंक (प्रादेशिक ग्रामीण बैंको सहित)	
(अ) अल्पकालीन कर्ज	2500
(ब) अवधि कर्ज	3000
कुल	12570

इतनी बडी राशि का ऋण प्रदान करने के लिए विभिन्न एजेन्सियो के कार्यों मे काफी ताल-मेल बैठाना होगा एव जिला-साख-योजनाएँ तैयार करनी होगी। अत भविष्य मे सस्थागत साख के क्षेत्र मे कई प्रकार की चुनौतियो का सामना करना है। कर्ज की राशि की वसूली पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

1987-88 की अवधि मे सस्थागत एजेन्सियो से कुल साख का वितरण 7991 करोड रु तक हो गया था तथा 1988-89 के लिए लक्ष्य 11751 करोड रु रखा गया है। इसमे सहकारिताओ का योगदान 5,441 करोड रु तथा बैंको का 6,310 करोड रु. आंका गया है।[2]

इस प्रकार कृषि साख मे सस्थागत एजेन्सियो का योगदान काफी बढा है।

नीचे ग्रामीण साख के विभिन्न साधनो का सक्षिप्त विवेचन किया जाता है—

1. महाजन—किसान को सबसे ज्यादा ऋण महाजन से मिलता है। महाजन दो प्रकार के होते हैं, एक तो खेतिहर महाजन और दूसरे पेशेवर महाजन।

---

1 Report on Trend and Progress of Banking In India, 1987-88, p 156.

2 Economic Survey 1988-89 p 24

खेतिहर महाजन खेती भी करते हैं लेकिन पेशेवर महाजन केवल उधार देने का ही व्यवसाय करते हैं और इनका देहातों में अधिक प्रभाव पाया जाता है। पिछले वर्षों में विभिन्न राज्यों में महाजनी प्रथा के नियमनकारी कानूनों के द्वारा इनकी गतिविधियों पर कुछ सीमा तक अंकुश लगाया गया है।

महाजन के काम करने के तरीके बड़े सरल, लचीले व निराले होते हैं। वह अल्पकालीन मध्यमकालीन व दीर्घकालीन सभी प्रकार के ऋण देता है। उसे ऋण के उद्देश्य—उत्पादन या उपभोग से विशेष सरोकार नहीं होता। वह जमानत व बिना जमानत दोनों तरह के ऋण देता है। महाजन बहुत शीघ्रता से उचित समय पर ऋण देता है। इन विशेषताओं के कारण आज भी महाजन ग्रामीण साख के क्षेत्र में जमा हुआ है।

महाजन के काम करने के अपने ही ढंग होते हैं। उसे ऋणी किसान की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। वह उसके आचरण व चुकाने की क्षमता से भी परिचित होता है। कृषक से ऋण वसूल करने के लिए वह शायद ही कभी अदालत या कानून का सहारा लेता है। कई प्रकार से आर्थिक व सामाजिक दबाव डालकर वह अपने ऋण की रकम वसूल कर लेता है। आर्थिक दबाव में वह उधार बन्द करने की धमकी देता है अथवा किसान पर जमींदार या व्यापारी के मार्फत दबाव डलवाता है। प्रायः वह स्वयं जमींदार या व्यापारी भी होता है या इनसे सम्बन्ध रखता है। सामाजिक दबाव में वह किसान को अपमानित करने अथवा सामाजिक या जाति-बहिष्कार करवाने का भय भी दिखाता है। वह बड़े धैर्य से इन्तजार करता है और अन्त में ब्याज सहित अपनी रकम वसूल कर लेता है। महाजन की ब्याज की प्रभावपूर्ण दरें काफी ऊँची रहती हैं।

महाजन अपनी हरकतों के लिए काफी बदनाम रहा है। अग्रिम ब्याज, गिरहखुलाई व अन्य भेंट, खाली कागज पर अंगूठे की निशानी लेकर मनमानी रकम भर लेना, हिसाब में गड़बड़, आदि के कारण उसे कृषक का शोषक माना गया है। भूतकाल में उस पर कानून के द्वारा नियन्त्रण करने के प्रयत्न किये गये हैं, लेकिन उनमें विशेष सफलता नहीं मिल पाई है। 1954 की अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण की रिपोर्ट (गोरवाला समिति की रिपोर्ट) के अनुसार, "महाजन द्वारा किसान को दी जाने वाली साख में लोच व शीघ्र प्राप्ति के गुणों के अतिरिक्त कोई भी अन्य सराहनीय बात नहीं है और कुछ बातें इसको निकृष्ट व हेय ही बनाने वाली हैं।"

सहकारी साख समितियों के पर्याप्त विकास से ही कृषकों पर महाजनों का शिकंजा दूर किया जा सकता है। इनके लिए भारी प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

2. व्यापारिक बैंक—1969 में 14 बड़े व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से पूर्व इन्होंने प्रत्यक्ष रूप से कृषकों के लिये साख की व्यवस्था करने में बहुत कम भाग

लिया था। इस सम्बन्ध मे इनका ज्यादातर कार्य ग्रामीण व शहरी महाजनो, देशी बैंकरो व व्यापारियो को पूँजी देना रहा था। 1951-52 मे किसानो को अपनी कुल उधार का मुश्किल से 0·9% व्यापारिक बैंको से मिल पाया था जो काफी कम था, लेकिन 1981-82 मे यह अनुपात बढकर 28% हो गया है। 1955 से स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया ने भी देश के विभिन्न भागो मे अपनी शाखाएँ खोलकर अपनी बचतो को एकत्र करने एव ग्रामीण साख की सुविधाएँ बढाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

राष्ट्रीयकृत बैंको का कृषि-साख मे योगदान—सितम्बर, 1967 से बैंको पर सामाजिक नियन्त्रण की नीति के अन्तर्गत व्यापारिक बैंक कृषिगत मशीनरी की खरीद व पम्प-सैट लगाने आदि के लिए साख प्रदान करने लगे थे। जुलाई, 1969 मे 14 बडे व्यापारिक बैंको के राष्ट्रीयकरण के पीछे एक उद्देश्य यह था कि बैंक कृषि व अन्य क्षेत्रो को अधिक मात्रा मे कर्ज दे सकेंगे। 15 अप्रैल 1980 को 6 और बैंको का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। पिछले वर्षों मे व्यापारिक बैंकों ने अपनी शाखाओ का तेजी से विस्तार किया है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको ने काफी नई शाखाएँ खोली हैं। 30 जून, 1969 से 30 जून 1988 के बीच मे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको के कार्यालय की सख्या 6596 से बढकर 47385 हो गयी है। इस प्रकार इनकी सख्या मे 40789 की वृद्धि हुई है, जिनमे से 65·4% कार्यालय ग्रामीण केन्द्रो (जहाँ की जनसख्या 10,000 तक हो) मे स्थापित किये गये है। जून 1969 मे कृषि को दिये गये प्रत्यक्ष वित्त (direct finance) (बागान को छोडकर) की बकाया राशि लगभग 40 करोड रुपया एव परोक्ष वित्त की राशि 122 करोड रुपया थी जो जून 1987 के अन्त मे बढकर क्रमश: 9300 करोड रुपये व 1366 करोड रुपये हो गयी है।[1] सातवी योजना मे इनके कार्यों का विस्तार किया गया है, विशेषतया समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमो (IRDP) के लिए इसके द्वारा साख की मात्रा बढायी गयी है।

भारतीय रिजर्व बैंक ने एक अध्ययन दल नियुक्त किया था जिसे भूमि-सुधारो के सम्बन्ध मे राज्यीय कानूनो की विभिन्न व्यवस्थाओ की जाँच करने के लिये कहा गया था ताकि व्यापारिक बैंको के द्वारा कृषि-साख के मार्ग मे आने वाली उन बाधाओ को दूर किया जा सके जो इन कानूनो की वजह से उत्पन्न होती हैं। विशेषज्ञ दल ने ऐसी कानूनी अडचनो की तरफ राज्य सरकारो का ध्यान आकर्षित किया था। राज्यो के कानूनो मे प्रमुख बाधा भूमि-अधिकारो को हस्तान्तरित करने के बारे मे पायी गयी है, विशेषतया अनुसूचित जाति व अनुसूचित जन-जाति के भू-स्वामियो, काश्तकार-कृषको, भूदान की भूमि व सरकारी भूमि के प्राप्त करने वालो के भूमि के अधिकारो को हस्तान्तरित करने मे अडचन आती हैं। अध्ययन दल ने सिफारिश की

---

1. Economic Survey 1988–89, p. S–53 & S–54.

तकावी ऋणो की कमियो को दूर करने के लिए निम्न उपाय किये जाने चाहिए—(1) ऐसे ऋणो को सहकारी समितियो के मार्फत प्रदान करने की नीति को प्रभावपूर्ण ढग से लागू किया जाय। (2) सरकार ने जो धनराशि कृपको के उत्पादन व भूमि की उन्नति के लिए उधार देने के वास्ते रख छोडी है उसका उपयोग सहकारी समितियो के साधनो को बढाने मे किया जाय। (3) सहकारी समितियो को उनकी उधार देने की ब्याज की आर्थिक दर और निर्धारित ब्याज की दर के अन्तर के बराबर सब्सिडी दी जाय। राज्य सरकारो की तरफ से कृषि के लिए प्रत्यक्ष कर्ज की मात्रा 1977-78 मे लगभग 98 करोड रु थी। इसकी मात्रा बढकर 1983-84 मे 220 करोड रु. हो गई। यह अल्पकालीन कर्ज के अन्तर्गत आता है।

4 सहकारी सगठन[1]—भारत मे सहकारिता आन्दोलन बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे चालू हुआ था। इसका ज्यादातर प्रयोग किसानो को साख प्रदान करने मे किया गया है। इस कार्य को केन्द्रीय स्तर पर राज्य सहकारी बैंक जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक एव ग्राम स्तर पर प्राथमिक कृषि-साख समितियाँ (PACS) कर रहे हैं। इसके अलावा बडे आकार की बहुउद्देश्यीय समितियाँ (Large-sized Multipurpose Societies) (LAMPS) भी कृपको को कर्ज के अलावा अन्य इन्पुट प्रदान करती हैं। **आजकल नाबार्ड के माध्यम से सहकारी बैंकों को वित्त की काफी सुविधा दी जाती है।**

ऊपर बताया जा चुका है कि 1951-52 मे ग्रामीण साख के सहकारी समितियो का योगदान 3·1% था, जो 1981-82 मे बढकर 28·6% हो गया। 1950-51 मे प्राथमिक कृषि साख समितियो ने अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋणो के रूप मे केवल 23 करोड रु ही कृपको को प्रदान किये गये थे, जबकि 1986-87 मे इन्होने अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋणो के रूप मे 3,149 करोड रुपये प्रदान किये। इसी वर्ष राज्य/केन्द्रीय भूमि विकास बैंको ने कृषि के लिए 552 करोड रु के दीर्घकालीन कर्ज प्रदान किये। इस प्रकार प्रत्यक्ष वित के रूप मे सहकारिताओ द्वारा कुल 3701 करोड रु प्रदान किये गये। यह प्रगति काफी सराहनीय मानी जा सकती है, लेकिन साथ मे कुछ कमिया भी सामने आयी हैं जिन्हे दूर किया जाना चाहिए। ये इस प्रकार है :

(i) **लघु कृपको को सस्थागत साख मे कम अंश**—अनुमान लगाया गया है कि सीमान्त व लघु कृपको को (2 हैक्टेयर से कम भूमि वालो को) कुल सस्थागत उत्पादन-साख का 1/3 अश मिला है, हालाकि उनके पास कुल जोतो का 70% अश रहा है। इस प्रकार यद्यपि पिछले वर्षों मे लघु कृपको की आवश्यकता पर भी ध्यान दिया जाने लगा है, फिर भी भविष्य मे इनके लिए विशेष प्रयास करने होगे।

---

1. Report on Trend and Progress of Banking in India, 1987-88, pp 155-157

'फसल-ऋण-योजना' (Crop Loan System) अपनाकर ही सीमान्त व लघु कृषकों की आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं।

(ii) बढ़ते हुए ओवरड्यूज की समस्या—सहकारी साख की दूसरी गम्भीर समस्या बकाया ऋणों की वसूली की है। प्राथमिक कृषि साख समितियों (PACS) के लगभग 2/5 ऋण अवधि बीत जाने पर भी नहीं लौटाये जाते हैं। इससे सहकारी संस्थाओं की वित्तीय स्थिति पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। ओवरड्यूज की समस्या केन्द्रीय सहकारी बैंकों व भूमि विकास बैंकों के सम्बन्ध में भी काफी गम्भीर बनती जा रही है। इससे कोषों की गतिशीलता रुक जाती है। अतः सहकारी संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है।

(iii) विकास में प्रादेशिक असमानताएं—भारत में सहकारी साख-समितियों की विशेष प्रगति आंध्र प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, महाराष्ट्र व पंजाब राज्यों में हुई है। इस प्रकार सहकारी साख के सम्बन्ध में काफी प्रादेशिक असमानताएं पायी जाती हैं। भविष्य में सहकारी साख समितियों की विविध समस्याओं के हल करने पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए।

पिछले वर्षों में कृषकों को साख की सुविधाएं बढ़ाने के लिए अन्य संगठन भी स्थापित किए गये हैं जिनका वर्णन नीचे किया जाता है। इनमें कृषि पुनर्वित्त व विकास निगम (Agricultural Refinance and Development Corporation (ARDC), कृषि वित्त निगम लि (Agricultural Finance Corporation Limited) (AFC) तथा राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (National Bank for Agriculture and Rural Development) (NABARD) (नाबार्ड) के नाम उल्लेखनीय हैं।

5 कृषि पुनर्वित व विकास निगम(Agricultural Refinance and Development Corporation) (ARDC)—प्रारम्भ में इसका नाम कृषि पुनर्वित निगम (ARC) था। यह जुलाई 1963 में स्थापित किया गया था तथा 15 नवम्बर 1975 में इसका नाम बदल कर कृषि पुनर्वित्त व विकास निगम (ARDC) कर दिया गया था। 12 जुलाई, 1982 को कृषि व ग्रामीण विकास पर राष्ट्रीय बैंक (नाबार्ड) की स्थापना के बाद ARDC के कार्य नाबार्ड को सौंप दिये गये हैं। अतः भविष्य में नाबार्ड की भूमिका कृषि साख में सर्वोपरि रहेगी।

उद्देश्य व कार्य-प्रणाली—कृषि-पुनर्वित्त निगम का प्रमुख कार्य कृषि के विकास से सम्बन्धित बड़े कार्यक्रमों के लिए पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान करना रखा गया था, क्योंकि भूमि-बन्धक बैंक अथवा राज्य सहकारी बैंक वित्त की मात्रा अथवा अदायगी की शर्तों के कारण इन कार्यक्रमों में पूंजी नहीं लगा सकते थे। निगम का कार्य सुदृढ़ व आर्थिक दृष्टि से लाभकारी एवं विशेष देखभाल के लायक परियोजनाओं पर अधिक बल देना था। यह निम्न कार्यों के लिए वित्तीय सहायता देना था।

(क) भूमि को कृषि योग्य बनाने व इसके विकास के लिए वित्त प्रदान करना जिससे सिंचाई की सुविधाओं का पूर्ण उपयोग किया जा सके।

(ख) विशेष फसलों के विकास के लिए वित्तीय सुविधा देना, जैसे सुपारी, नारियल, काजू, इलायची, फलों के बाग, अंगूर के उद्यान आदि।

(ग) यन्त्रीकृत खेती का विकास, ट्यूब-वैल व पम्प-सैट आदि के माध्यम से बिजली का प्रयोग करना। निगम मान्यता प्राप्त संस्थाओं के द्वारा विदेशों से खरीदे जाने वाली पूँजीगत माल के सम्बन्ध में स्थगित भुगतान पर गारण्टी देने का कार्य भी करता था।

निगम से निम्न संस्थाओं को सुविधा मिलती थी जिससे कृषि, पशुपालन, दुग्ध-व्यवसाय, मछली-उद्योग व मुर्गी-पालन के विकास के लिए मध्यम कालीन व दीर्घकालीन साख की सुविधा बटी थी (1) राज्य भूमि विकास बक (SLDB), (2) राज्य सहकारी बैंक; (3) अनुसूचित व्यापारिक बैंक; और (4) सहकारी समितियां (राज्य भूमि विकास बैंक या राज्य सहकारी बैंक को छोड़कर) जिनको यह निगम पुर्नवित्त के रूप म ऋण व अग्रिम राशि देता रहा और इनके डिबेंचर खरीदता रहा।

पूँजी—आरम्भ मे निगम की अधिकृत पूँजी 25 करोड रुपये की हो गयी थी जो 15 हजार शेयरो मे (प्रत्येक शेयर 10 हजार रुपये का) विभाजित की गयी थी। 15 नवम्बर, 1975 के सशोधन के अनुसार यह 100 करोड रु. कर दी गयी। इसके शेयर रिजर्व बैंक, भूमि विकास बैंक, राज्य सहकारी बैंक, अनुसूचित व्यापारिक बैंक, जीवन बीमा निगम आदि ने खरीदे थे।

निगम की प्रगति—ARDC ने 1981–82 (जुलाई-जून) मे काफी प्रगति दिखलाई थी। इसने इस वर्ष 600 करोड रुपये की राशि वितरित की, जबकि पिछले वर्ष 499 करोड़ रु. की राशि वितरित की थी। इसने अन्तर्राष्ट्रीय विकास एसोसिएशन (IDA) के द्वारा स्वीकृत कर्ज का वितरण भी किया था।

15 नवम्बर, 1975 के सशोधन से इसका कार्यक्षेत्र बढ गया था और इसकी शेयर पूँजी भी चौगुनी हो गई थी। ARDC ने प्रादेशिक असन्तुलन कम करने मे योगदान दिया था। निगम ने समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को क्रियान्वित करने पर विशेष रूप से ध्यान दिया और इसके दायरे मे अधिक विकास खण्ड लाये गये। जुलाई 1982 से इसका कार्य नाबार्ड को सौंप दिया गया जिसका वर्णन आगे किया गया है।

6 कृषि वित्त-निगम (Agricultural Finance Corporation) (AFC)—कृषि-वित्त निगम अप्रैल, 1968 मे स्थापित किया गया था। इसका रजिस्ट्रेशन सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी के रूप मे किया गया। इसने कृषि सम्बन्धी क्रियाओ मे सलाहकारी संगठन के रूप मे काफी दक्षता प्राप्त की है। यह व्यापारिक

बैंकों को कृषि साख बढ़ाने में सहयोग प्रदान करता है। यह राज्य सरकारों या सदस्य बैंको से प्राप्त कृषिगत कार्यक्रमो या स्वय कम्पनी द्वारा निर्मित कार्यक्रमो की तकनीकी जांच व मूल्यांकन करता है। फिर ऋण पुनर्भुगतान के आधार पर वितरित किये जाते हैं। इस प्रकार निगम का मुख्य कार्य कृषिगत साख को बढ़ावा देना है जिसमे इसकी भूमिका काफी सराहनीय रही है। यह ऋणो के उचित उपयोग की भी देख-भाल करता है। निगम प्रत्यक्ष रूप से व्यवस्था केवल उन कृषि-कार्यों के लिए करता है जो तकनीकी दृष्टि से ऊँची श्रेणी म आते हैं।

कृषि-वित्त निगम ने राज्य बिजली बोर्डों, केरल बागान निगम लिमिटेड आदि को ऋण प्रदान किये है। इसने सदस्य बैंको को पिछड़े प्रदेशो मे जाने के लिए प्रेरित किया है। निगम की सहायता से पम्पसैटो की खरीद हुई है। अच्छी किस्म के पम्प-सैटो का प्रचार बढ रहा है। निगम ने इसकी अच्छी किस्म, उचित मूल्य व बिक्री के बाद भी सेवाओ पर समुचित ध्यान दिया है।

निगम ने विभिन्न साख प्रदान करने वाली सस्थाओ के समन्वय स्थापित करके एक समन्वयात्मक एजेन्सी (Coordination agency) का काम भी किया है। निगम की अधिकांश परिदत्त पूँजी राज्य विद्युत बोर्डों मे लगी हुई है। भविष्य म स्वीकृत ऋणो की सम्पूर्ण राशि सदस्य बैंको के द्वारा ही प्रदान की जायेगी। 14 राष्ट्रीयकृत बैंक इस निगम की 86 प्रतिशत शेयर पूँजी मे हिस्सेदार हैं। बैंको के राष्ट्रीयकरण के बाद इस निगम का सार्वजनिक स्वरूप और भी उभर कर सामने आया है।

निगम प्रोजेक्ट-निर्माण/मूल्यांकन के कार्यक्रम अपने हाथ म लेता है। इनमे कमाण्ड-क्षेत्र विकास, खण्ड स्तर पर नियोजन, समन्वित आदिवासी विकास, वाटरशेड प्रबन्ध व कमजोर वर्ग के क्षेत्रों मे पशु-पालन के कार्यक्रम शामिल होते हैं।

AFC कुछ विकासशील देशों व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के लिए सलाहकारी सगठन का काम करता है। अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो म कृषिगत विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्व बैंक, एशियन विकास बैंक, अफ्रिकन विकास बैंक, इस्लामिक विकास बैंक आदि के लिए यह प्रोजेक्ट निर्माण वगैरा का काम करता है। इसने बगला देश मे उर्वरक-मूल्य विनियन्त्रण के लिए अध्ययन किया है। इस प्रकार AFC के विशेषज्ञ तृतीय विश्व के देशो मे प्रोजेक्ट तैयार करने में अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं।

जुलाई, 1982 म 'नाबार्ड' के बन जाने पर AFC का सलाह देने का कार्य अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

7 राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (National Bank for Agriculture and Rural Development) (NABARD)—इसकी स्थापना

12 जुलाई, 1982 को लोकसभा मे आवश्यक विधेयक पारित करके की गई थी। इसने ARDC के समस्त कार्य तथा रिजर्व बैंक के कृषिगत साख-विभाग के प्रमुख कार्य अपने हाथ मे ले लिए हैं। नाबार्ड की शेयर पूँजी 100 करोड रु. है जिसमे केन्द्रीय सरकार व भारतीय रिजर्व बैंक का बराबर का हिस्सा है। यह रिजर्व बैंक व भारत सरकार से उधार भी ले सकता है। यह बाड व ऋण-पत्र बेचकर भी वित्तीय साधन जुटाता है।

नाबार्ड के मुख्य कार्य नीचे दिये जाते हैं

(i) यह कृषि, लघु उद्योगो, कारीगरो, कुटीर व ग्रामीण उद्योगो, दस्तकारियो व अन्य सहायक आर्थिक क्रियाओ के लिए सभी प्रकार के उत्पादन व विनियोग-साख के लिए पुनर्वित की सुविधा प्रदान करता है।

(ii) कर्ज की जरूरतो को पूरा करने के लिए इसको धनराशि भारत सरकार, विश्व बैंक व अन्य बहुपक्षीय व द्विपक्षीय ऐजेन्सियो से प्राप्त होती है। यह बाजार से उधार भी ले सकता है तथा राष्ट्रीय ग्रामीण साख (दीर्घकालीन कार्य व स्थायीकरण कोषो से भी उधार ले सकता है। रिजर्व बैंक भी नाबार्ड को अल्पकालीन कार्यों के लिए उधार देता है।

(iii) राज्य सहकारी बैंको, प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों व अन्य वित्तीय सस्थाओ को अल्पकालीन, मध्यमकालीन व दीर्घकालीन साख प्रदान करने के अलावा यह राज्य सरकारो को 20 वर्ष तक की अवधि के लिए कर्ज देता है ताकि वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहकारी साख समितियों की शेयर पूँजी मे अपना अशदान दे सकें। यह केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति से, कृषि व ग्रामीण विकास मे सलग्न किसी भी सस्था को दीर्घकालीन कर्ज प्रदान कर सकता है तथा उसकी शेयर-पूँजी मे हिस्सा ले सकता है।

(iv) यह लघु व ग्रामीण उद्योगो के विकास के लिए भारत सरकार, योजना आयोग, राज्य सरकारो आदि के कार्यों मे समन्वय स्थापित करता है।

(v) इसने कृषि व ग्रामीण विकास मे अनुसधान को आगे बढ़ाने के लिए एक रिसर्च व विकास कोष स्थापित किया है। यह विभिन्न क्षेत्रों के लिए प्रोजेक्ट/कार्य-क्रम बनाता है।

(vi) विभिन्न प्रोजेक्टो के क्रियान्वयन व मूल्याकन की जिम्मेदारी नाबार्ड की होती है, तथा

(vii) यह प्रादेशिक ग्रामीण बैंको व सहकारी बैंको (प्राथमिक सहकारी बैंको को छोडकर) की जाँच के लिए जिम्मेदार होता है। इन्हे शाखाएँ खोलने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के पास आवेदन-पत्र नाबार्ड के माध्यम से भेजने होते है।

इस प्रकार नाबार्ड का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक रखा गया है।

नाबार्ड की प्रगति[1]—30 जून, 1988 तक उसने कुल 62,615 योजनाएं स्वीकृत की जिनका सम्बन्ध लघु सिंचाई, भूमि विकास, कृषि मशीनीकरण, बागान/फलों के उद्यान, मुर्गी-पालन/भेड पालन व सूअर-पालन, मछली-पालन, डेरी विकास, भंडारण व मंडियो के निर्माण-कार्य, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि से था।

30 जून 1988 तक इसने स्वीकृत योजनाओं के लिए 9,435 करोड रु की राशि वितरित की।

1987-88 (जुलाई-जून) अवधि के लिए नाबार्ड के वायदे की राशि 2,037 करोड रु तथा वितरण की राशि 1482 करोड रु. रही, जबकि पिछले वर्ष ये राशियाँ क्रमश 1483 करोड रु. तथा 1,334 करोड रु. रही थी।

(अ) प्रयोजनवार (Purpose-wise) वितरण—1987-88 मे नाबार्ड द्वारा 1482 करोड रु. की वितरित राशि मे से सर्वाधिक राशि लघु सिंचाई के लिए थी जो 473 करोड रु. थी। द्वितीय स्थान कृषि-मशीनीकरण का रहा (200 करोड रु) शेष राशि वृक्षारोपण/बागान, भूमि विकास, मुर्गी-पालन, भेड पालन, सूअर पालन, मछली पालन, डेयरी विकास, भण्डारण व मण्डी यार्ड वगैरा के लिए वितरित की गई। एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (एग्राधिका) के लिए 783 करोड रु की राशि वितरित की गई (फरवरी 1988 तक)

(आ) एजेंसीवार (Agency-wise) वितरण—1987-88 मे 1482 करोड रु की वितरित राशि का सर्वाधिक अश व्यापारिक बैंको के माध्यम से (प्रादेशिक ग्रामीण बैंको सहित) (951 करोड रु.), फिर राज्य भूमि विकास बैंको के माध्यम से (467 करोड रु) एव शेष राज्य सहकारी बैंको के माध्यम से (64 करोड रु) प्रदान किया गया। इन सस्थाओं को नाबार्ड द्वारा पुनर्वित्त के रूप मे सहायता दी जाती है।

(इ) क्षेत्रवार वितरण (Region-wise Disbursements)—1987-88 म नाबार्ड द्वारा वितरित कुल राशि का 28 5% दक्षिणी क्षेत्र को, 19 2% उत्तरी क्षेत्र को, 20 8% मध्यवर्ती क्षेत्र को, 14 6% पश्चिमी क्षेत्र को, 14·6% पूर्वी क्षेत्र तथा 2 3% उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र को प्राप्त हुआ। राजस्थान को 72 करोड रु. की राशि मिली जो 1482 करोड रु का 4 8% थी।

नाबार्ड की स्थापना ग्रामीण अर्थव्यवस्था के कृषि व कृषीतर दोनो क्षेत्रो के विकास के लिए हुई है। इसने लघु सिंचाई को बढावा दिया है। लघु व सीमान्त कृपको के लिए व्यापक राष्ट्रीय सहायता कार्यक्रम चलाया गया है। भूमि-विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमि को समतल बनाने, इसको खेत का स्वरूप देने, नालियां

---

1 Report on Currency and Finance, 1987-88, Vol. I, pp-214-216.

बनाने आदि पर जोर दिया गया है। कृषि की सहायक क्रियाओं मे पाडी (female buffalo calves) पालने की योजनाओ जो बढावा दिया गया है। नए 20 सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन मे योगदान दिया गया है।

कृषीतर ग्रामीण कार्यकलापो मे हथकरघो के आधुनिकीकरण, बुनकरो द्वारा शेयरों के अधिग्रहण, रेशम, नारियल के रेशे, कुटीर व ग्रामीण उद्योगो, ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोतो के विकास आदि पर बल दिया गया है।

सस्थागत साख की वसूली पर जोर दिया गया है। प्राथमिक कृषि साख समितियो के पुनर्गठन व पुनर्स्थापन पर बल दिया गया है। आशा है भविष्य मे नाबार्ड का ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास मे स्थान अधिक सुदृढ हो सकेगा।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी साख में योगदान (ग्रामीण साख के सन्दर्भ में)

अन्य देशो के केन्द्रीय बैंको की तुलना मे भारतीय रिजर्व बैंक की यह विशेषता रही है कि इसने ग्रामीण साख के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण रूप से भाग लिया है। ऐसा करना आवश्यक भी था, क्योकि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि है जिसके लिए साख की सुविधाये बढाना अत्यन्त आवश्यक है। प्रारम्भ से ही रिजर्व बैंक अधिनियम मे एक कृषि-साख विभाग स्थापित करने की व्यवस्था की गई थी।

रिजर्व बैंक के सुझाव पर भारत सरकार ने 1945 मे ग्रामीण बैंकिंग जाच समिति नियुक्त की थी जिसने ग्रामीण क्षेत्रो मे बैंको के विस्तार के लिए कई सिफारिशें पेश की। श्री ए. डी. गोरवाला की अध्यक्षता मे एक अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण की रिपोर्ट दिसम्बर, 1954 मे प्रकाशित की गई। इसमे ग्रामीण साख की विस्तृत रूप से जाच की गई और इस बात पर बल दिया गया कि सहकारिता आन्दोलन को सबल व सफल बनाने की आवश्यकता है। ग्रामीण साख की एकीकृत योजना (Integrated Scheme of Rural Credit) का सुझाव दिया गया जिसमे सहकारी सगठन मे राज्य की साझेदारी, साख व गैर-साख दोनो क्षेत्रो मे सहकारी आन्दोलन का विकास एव कर्मचारियो के प्रशिक्षण पर काफी जोर दिया गया। नयी योजना को कार्यान्वित करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक को ग्रामीण साख मे केन्द्रीय स्थान दिया गया।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वित्तीय सहायता का स्वरूप—रिजर्व बैंक कृषकों को प्रत्यक्ष रूप से वित्त प्रदान नहीं करता। राज्य सहकारी बैंको के मार्फत यह किसान तक साख की सुविधा पहुंचाता है। इनको रिजर्व बैंक की ओर से अल्पकालीन साख या तो पुनर्कटौती (Rediscounts) के रूप मे मिलती है, अथवा अग्रिम (Advances) के रूप मे मिलती है। पुनर्कटौती व अग्रिम की सुविधाओ का विवरण आगे दिया जाता है:

अल्पकालीन ऋण—रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17 (2) (a) के अन्तर्गत वास्तविक व्यापारिक सौदों से उत्पन्न प्रॉमिसरी नोट व बिलों की, जो 90 दिन में परिपक्व होते हैं, पुनर्कटौती की व्यवस्था की गयी है। धारा 17 (2) (b) के अन्तर्गत 15 महीनों में परिपक्व होने वाले उन प्रॉमिसरी नोटों/बिलों की पुनर्कटौती की व्यवस्था की गई है जो मौसमी कृषिगत कार्यों या फसलों की बिक्री के लिए बनाये जाते हैं। इस धारा के नीचे मिश्रित व कृषि परिनिर्माण-कार्य भी शामिल किये गये हैं।

धारा 17 (4) (c) के अन्तर्गत स्वीकृत बिल व प्रॉमिसरी नोटों की जमानत पर अग्रिम राशि देने की व्यवस्था की गई है।

जिन राज्यों में सहकारिता आन्दोलन पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो पाया है, उनमें बैंक इन बिलों व प्रॉमिसरी नोटों की जमानत पर राज्य सहकारी बैंकों को ऋण तभी देता है जब उन पर राज्य सरकारों की ओर से पूरी गारण्टी दी जाती है। व्यवहार में ये ऋण 12 महीने के लिये दिये जाते हैं।

अल्पकालीन साख के क्षेत्र में राज्य सहकारी बैंकों को मौसमी कृषिगत कार्यों के लिए साख की सुविधा बैंक-दर से 3% कम पर दी जाती है।

मध्यमकालीन ऋण—धारा 17 (4AA) के अन्तर्गत राज्य सहकारी बैंकों को राष्ट्रीय कृषि-साख (दीर्घकालीन) कोष व राष्ट्रीय कृषि-साख (स्थायीकरण) कोष में से मध्यमकालीन साख उपलब्ध होती है। इन ऋणों की अवधि 15 महीने से 5 वर्ष तक की होती है। उत्पादन-कार्यों में ऋणों का उपयोग बढ़ाने के लिए रिजर्व बैंक ने राज्य सहकारी बैंकों पर यह बन्धन लगा दिया है कि वे मध्यमकालीन ऋणों का ज्यादा भाग निम्न कार्यों में ही लगायें : (1) कुओं व अन्य लघु सिंचाई कार्यक्रमों का विकास, (2) कुओं व अन्य सिंचाई की स्कीमों की मरम्मत, (3) पम्प-सैट आदि मशीनरी की खरीद, (4) कृषि-औजारों की खरीद।

दीर्घकालीन ऋण—(अ) रिजर्व बैंक राष्ट्रीय कृषि-साख (दीर्घकालीन क्रियाएँ [NAC (LTO)* कोष में से केन्द्रीय भूमि विकास बैंक को दीर्घकालीन ऋण देता है। अब यह कोष नाबार्ड को हस्तान्तरित कर दिया गया है।

(आ) रिजर्व बैंक राज्य सरकारों को दीर्घकालीन ऋण देता है जिससे वे सहकारी साख संस्थाओं की शेयर पूँजी में हिस्सा ले सकें।

(इ) रिजर्व बैंक केन्द्रीय भूमि विकास बैंकों के ऋण-पत्र खरीद सकता है। यह राज्य सहकारी बैंकों को रियायती दर पर साख की सुविधा प्रदान करता है। राज्य सहकारी बैंकों को यह सुविधा मौसमी कृषिगत कार्यों व फसलों की बिक्री के

---

* National Agricultural Credit (Long Term Operations fund. इसका नाम बदलकर National Rural Credit (Long Term Operations) Fund कर दिया गया है।

लिए दिये गये अल्पकालीन ऋणों पर मिलती है। के द्रीय भूमि विकास बैंकों के साधारण ऋण पत्रों में सहकारिताओं केन्द्र व राज्यों जीवन बीमा निगम व व्यापारिक बैंकों के अलावा रिजर्व बैंक भी भाग लेता है। इसके अलावा रिजर्व बैंक सहकारी बैंकों का निरीक्षण करता है तथा सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। रिजर्व बैंक की कृषि साख पर एक स्थायी सलाहकार समिति भी बनायी गई है।

इस प्रकार भारतीय रिजर्व बैंक ग्रामीण साख व्यवस्था के विकास में महत्व-पूर्ण भाग ले रहा है। पहले इसका कार्य सलाह आदि देने तक सीमित था लेकिन योजनाकाल में इसने सहकारी संस्थाओं को काफी वित्तीय साधन उपलब्ध किये हैं ताकि कृषकों तक अधिक मात्रा में आवश्यक वित्त पहुँचाया जा सके। भारतीय रिजर्व बैंक का कार्य कृषिगत साख के क्षेत्र में काफी सराहनीय माना गया है। अब इन कार्यों को नाबार्ड अधिक व्यापक व व्यवस्थित रूप से सम्पादित करने लगा है।

भारतीय स्टेट बैंक का ग्रामीण साख में योगदान

अखिल भारतीय ग्रामीण साख-सर्वेक्षण समिति की सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि भारत के इम्पीरियल बैंक पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित करके भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना की जाय। मूलकाल में व्यापारिक बैंकों ने ग्रामीण साख में पर्याप्त रुचि नहीं दिखाई थी। सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार उन्होंने 1951-52 में कृषकों को केवल 0 9% ऋण प्रदान किया था। भारतीय इम्पीरियल बैंक देश का सबसे बड़ा व्यापारिक बैंक था। इसलिए इसके साधनों का उपयोग ग्रामीण साख की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए उपयुक्त समझा गया और दिसम्बर 1954 में इम्पीरि-यल बैंक पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित करके भारतीय स्टेट बैंक के निर्माण का सरकारी निर्णय घोषित किया गया। मई 1955 में भारतीय स्टेट बैंक कानून पास किया गया और 1 जुलाई 1955 से इसकी स्थापना कर दी गई।

प्रारम्भ में इम्पीरियल बैंक के भारत स्थित लेन देन को भारतीय स्टेट बैंक ने अपने हाथों में ले लिया था। इसे ग्रामीण साख की एकीकृत योजना (Integrated Scheme of Rural Credit) को कार्यान्वित करने का काम सौंपा गया था। स्थापना के प्रथम पाँच वर्षों में 400 अतिरिक्त शाखाएँ खोलने का लक्ष्य रखा गया था ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की सुविधाएँ बढ़ाई जा सकें।

भारतीय स्टेट बैंक सहकारी संस्थाओं को वित्तीय साधन प्रदान करता है जिससे कृषि साख की सुविधाएँ बढ़ सकें। साथ में यह ग्रामीण बचत को एकत्र करने में मदद पहुँचाता है। योजनाकाल में ग्रामीण क्षेत्रों में विकास-कार्य पर व्यय होने से जनता की आमदनी बढ़ रही है। इसलिए बचत को एकत्र करने की आवश्य-

कता भी बढ़ रही है। अतः स्टेट बैंक कृषिगत-साख के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रूप में भाग ले रहा है।

स्मरण रहे कि भारतीय स्टेट बैंक को अन्य व्यापारिक बैंकों के सभी काम करने का भी अधिकार है। यह देश के मुद्रा बाजार का शिरोमणि है। अतः यह एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किये हुये है और व्यापार, कृषि, उद्योग, आदि सभी क्षेत्रों में पूँजी का निवेश करके देश का आर्थिक विकास करने में संलग्न है।

प्रगति[1]—सितम्बर 1959 में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया (सहायक बैंक) अधिनियम पास हो गया था जिसके अनुसार निम्न बड़े व राज्यों से सम्बन्धित बैंक (State Associated Banks) भारतीय स्टेट बैंक के सहायक बैंक बना दिये गये थे। इन बैंकों के नाम इस प्रकार हैं : दी बैंक ऑफ बीकानेर, दी बैंक ऑफ इन्दौर, दी बैंक ऑफ जयपुर, दी बैंक ऑफ मैसूर, दी बैंक ऑफ पटियाला, दी ट्रावनकोर बैंक, स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद और स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र।

स्टेट बैंक से निकटतम सम्बन्ध होने से ये बैंक जनता की ज्यादा अच्छी सेवा कर पा रहे हैं। दिसम्बर 1987 के अंत में भारतीय स्टेट बैंक की शाखाएँ 7577 तथा इसके सहायक बैंकों की शाखाएँ 3,784 थी। इस प्रकार सहायक बैंकों सहित स्टेट बैंक समूह के 11361 कार्यालय थे, जो विस्तार की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं।

कृषि की वित्तीय व्यवस्था—भारतीय स्टेट बैंक द्वारा कृषि को प्रदत्त प्रत्यक्ष कर्जे की बकाया राशि (सहायक बैंकों के अलावा) दिसम्बर 1987 में 2487 करोड़ रु. थी तथा खातों की संख्या 52 49 लाख थी। दिसम्बर 1986 के अन्त में प्रत्यक्ष कर्जे की बकाया राशि 2210 करोड़ रु. थी।

दिसम्बर 1987 के अन्त में परोक्ष कर्ज की बकाया राशि 323 करोड़ रु. थी जबकि एक वर्ष पूर्व यह 337 करोड़ रु थी। प्रत्यक्ष कर्ज लेने वालों में अधिकांश कृषक 5 एकड़ या कम की जोतों वाले थे। इस प्रकार स्टेट बैंक छोटे कृषकों की वित्तीय व्यवस्था पर विशेष रूप से ध्यान दे रहा है। कृषिगत साख का आधे से कुछ कम अंश कमजोर वर्गों को प्राप्त हुआ है। आगामी वर्षों में स्टेट बैंक व सहायक बैंकों का काम प्रत्यक्ष व परोक्ष साख में काफी बढ़ेगा। परोक्ष वित्त में उर्वरक-वितरण के लिए अधिक वित्त की व्यवस्था की गई है। परोक्ष वित्त में कृषकों को प्राथमिक कृषि-सहकारी साख समितियों के माध्यम से ऋण प्रदान किया जाता है।

भारतीय स्टेट बैंक ने बिक्री व प्रोसेसिंग से सम्बन्धित सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान की है। इसके लिए माल को गिरवी रखा जाता है। इसने सहकारी चीनी की फैक्ट्रियों को भी वित्तीय सहायता प्रदान की है।

---

1. State Bank of India Monthly Review, April, 1989, p. 234.

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय स्टेट बैंक बिक्री व उत्पादन सम्बन्धी सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता देता है। इस प्रकार यह सहकारिता को गैर-साख के क्षेत्र में बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहा है। भविष्य में गोदामों की व्यवस्था को बढ़ाने से स्टेट बैंक और भी ज्यादा साख की सुविधाएँ प्रदान करेगा। इस प्रकार ग्रामीण बचत एकत्र करके और साख की सुविधाएँ बढ़ाकर यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

प्रादेशिक ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks) व ग्रामीण साख की व्यवस्था—जुलाई 1975 में घोषित नये आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्त देश में प्रादेशिक ग्रामीण बैंक स्थापित करने का निश्चय किया गया था। इसके लिए प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अधिनियम 9 फरवरी 1976 से लागू किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने जून 1988 के अन्त तक 363 जिलों में 196 बैंक स्थापित किये थे जिनके कार्यालय 31 दिसम्बर 1987 को 13 353 थे। इनका उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश व बिहार में काफी विकास हुआ है।

ये बैंक लघु व सीमान्त कृषकों तथा भूमिहीन श्रमिकों तथा ग्रामीण कारीगरों को कर्ज देने के लिए बनाये गये हैं। इनका उद्देश्य कृषि, व्यापार-वाणिज्य, उद्योग व अन्य उत्पादक क्रियाओं के लिए साख की सुविधाएँ प्रदान करना है। ये एक तरफ व्यापारिक बैंकों से सम्पर्क रखते हैं तथा दूसरी तरफ कृषि-सेवा समितियों से।

इनकी शेयर-पूँजी में केन्द्रीय सरकार का योगदान 50% राज्य सरकार का 15% तथा शेष (35%) सम्बद्ध व्यापारिक बैंक का होता है। इनका कार्य-क्षेत्र एक प्रदेश तक सीमित होता है। ये कम साधन वाले व्यक्तियों को कर्ज प्रदान करते हैं। इनकी उधार देने की दरें सहकारी समितियों की दरों के अनुरूप होती हैं।

ये साख की वर्तमान संस्थाओं—व्यापारिक बैंक तथा सहकारी समितियों के पूरक के रूप में काम करते हैं न कि इनके प्रतिस्थापक के रूप में। ये निर्धन लोगों को महाजनों के चंगुल से मुक्त करने के लिए स्थापित किये गये हैं।

दिसम्बर 1987 के अन्त में 196 RRBs द्वारा प्रदत्त अग्रिम राशियाँ (advances) 2232 करोड़ रु थीं जबकि दिसम्बर 1986 के अन्त में ये 1784 करोड़ रु थीं। इन्होंने अधिकांश कर्ज लघु व सीमान्त कृषकों, भूमिहीन मजदूरों व ग्रामीण कारीगरों को प्रदान किये हैं।

प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों को नाबार्ड से पुनर्वित्त की सुविधा प्राप्त होती है। RRBs ने ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अलावा व्यापार, उद्योग व अन्य क्रियाओं पर भी समुचित रूप से ध्यान दिया है।

कृषि-साख की व्यवस्था को विकसित करने के लिए आवश्यक सुझाव

एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था के लिए एक उचित व प्रगतिशील साख की व्यवस्था की आवश्यकता होती है। भारत में इसका तेजी से विकास किया जा

रहा है। कृषि-साख की व्यवस्था में सुधार करने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं—

(1) सहकारी साख और सहकारी बिक्री के कार्यों में आवश्यक ताल-मेल स्थापित किया जाना चाहिए। कृषक को रुपया उधार देते समय इस बात की व्यवस्था की जाय कि वह अपनी उपज प्रमुख सहकारी बिक्री समिति के मार्फत ही बेचे और इस सम्बन्ध में लिखित स्वीकृति दे। साख और बिक्री का तालमेल दोनों क्रियाओं को सफल बनाने में मदद देगा। (2) गाँवों में सहकारिता की भावना का ज्यादा प्रचार होना चाहिए। सहकारी सेवा समितियों (Service Co-operatives) की स्थापना की जानी चाहिए और उनके प्रबन्ध में सदस्यों को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए। (3) सहकारी साख समितियों के पूँजीगत साधन बढ़ाये जायें जिससे वे किसानों की साख सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति में उत्तरोत्तर अधिक भाग ले सकें। (4) व्यापारिक बैंकों को भी कृषि-साख में विशेष दिलचस्पी दिखानी चाहिए। 20 बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण से इस दिशा में काफी प्रगति हो सकती है। (5) गोदाम बनाने का कार्यक्रम तेजी से पूरा करना चाहिए जिससे साख की सुविधाएँ बढ़ सकें। (6) लघु व सीमान्त कृषकों व अन्य काश्तकारों तक साख की सुविधा पहुँचाने के लिए जमानत के लिए 'भूमि' पर जोर न देकर 'चुकाने की योग्यता' पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। (7) जहाँ तक हो सके ऋण वस्तुओं के रूप में दिया जाय, न कि नकद रूप में। (8) यदि ऋण के लिए नकद राशि दी जाती है तो उसके उपयोग की देख-रेख विशेष रूप से की जाय। (9) कृषकों में बचत की आदत बढ़ाई जाय और ग्रामीण बचत को एकत्र करने के सर्वोत्तम उपाय अपनाये जायें। (10) सिंचाई, चकबन्दी, भूमि-सुधार आदि के एकीकृत कार्यक्रम को लागू करके कृषक की साख बढ़ायी जाय और उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाय. (11) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) व ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम (RLEGP) सफल बनाए जाएँ, ताकि गाँवों में रोजगार व आमदनी बढ़े तथा निर्धनता का कुछ सीमा तक उन्मूलन हो सके। *अब जवाहर रोजगार योजना के माध्यम से ग्रामीण निर्धन परिवारों में कम से कम एक व्यक्ति प्रति परिवार रोजगार प्रदान किया जायगा। इसके लिए पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ किया जायगा।*

कृषि-साख के क्षेत्र में नयी नीति

कृषि-साख के क्षेत्र में नई नीति के दो मुख्य पहलू हैं (1) बहु-एजेन्सी (multi-agency) दृष्टिकोण को अपनाकर उत्तरोत्तर संस्थागत साख का अधिक विकास करना, (2) कर्ज का उत्तरोत्तर अधिक अंश निर्धन वर्ग के लोगों के लिए नियत करना, जैसे लघु व सीमान्त कृषक, खेतिहर श्रमिक तथा बटाईदारों को सहकारी व व्यापारिक बैंकों के कर्जों में अधिक हिस्सा दिलाना एवं अनुसूचित जाति

व अनुसूचित जनजाति के लोगो को कर्ज देने की आवश्यकता की पूर्ति के लिए विशेष प्रयास करना।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है सरकार ने राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD) (नाबार्ड) की स्थापना की है जिससे इस दिशा मे एक नया व महत्वपूर्ण कदम उठाया गया है।

सातवीं पचवर्षीय योजना 1985-90 मे कृषिगत साख के सम्बन्ध मे लक्ष्य व नीति

छठी पचवर्षीय योजना मे सहकारिताओ व व्यापारिक बैंको (प्रादेशिक ग्रामीण बैंको सहित) द्वारा कृषि के लिए सस्थागत साख का काफी विस्तार किया गया था। 1979-80 मे इनके द्वारा 2550 करोड रु की कृषिगत साख का वितरण किया गया जिसका स्तर 1984-85 मे बढकर 5810 करोड रु हो गया जो 5415 करोड रु के लक्ष्य से अधिक था। छठी योजना मे सहकारी सस्थाओ व व्यापारिक बैंको द्वारा साख प्रदान करने की विधियो मे सुधार करने, कर्ज की समय पर वसूली करने, ओवरड्यूज को कम करने तथा साख को एक समूह से दूसरे समूह व एक जगह से दूसरी जगह गतिशील करने पर ध्यान दिया गया ताकि निर्धन-वर्ग को कर्ज की सुविधा बढायी जा सके।

सातवी पचवर्षीय योजना मे इस कार्य का विस्तार किया गया है। उपरोक्त एजेन्सियो द्वारा **1989-90 तक के लिए कृषिगत साख का लक्ष्य 12570 करोड रु** रखा गया है जो 1984-85 के स्तर (5810 करोड रु) से लगभग दुगना है। 1989-90 के लक्ष्य मे सहकारी सस्थाओ का अश 7070 करोड रु तथा व्यापारिक बैंको का (प्रादेशिक ग्रामीण बैंको सहित) 5500 करोड रु रखा गया है।

सातवीं योजना मे कृषिगत साख के सम्बन्ध मे नीति

1. समाज के कमजोर वर्गो, कम विकसित क्षेत्रो, विशेषतया उत्तर-पूर्वी प्रदेश, सूखी खेती के क्षेत्रो व दाल तथा तिलहन के विकास के लिए कर्ज की सुविधा बढाई जायगी।

2 कर्ज की वसूली पर ज्यादा ध्यान दिया जायगा।

3 साख-नियोजन (Credit planning) का अधिक प्रयास किया जायगा ताकि राष्ट्रीय, राज्यीय व जिला स्तरो पर समन्वित रूप मे कृषिगत साख का विकास किया जा सके।

4 सस्थागत एजेन्सियो की मानवीय शक्ति, वित्तीय साधन व उधार देने की विधियो को सुदृढ किया जायगा। प्राथमिक सहकारी कृषि साख समितियो को बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियो मे बदलने पर अधिक जोर दिया जायगा ताकि साख के अलावा अन्य क्रियाओ का विस्तार किया जा सके।

केन्द्रीय सहकारी बैंको, राज्य सहकारी बैंको व भूमि विकास बैंको को सुदृढ किया जायगा। अभी तक सिंचित क्षेत्रो मे धान व गेहूँ की फसलो के लिए अधिक

कज दिया गया है, भविष्य म सूखी खेती के इलाकों व दाल तथा तिलहन की खेती का विस्तार करन क लिए कर्ज की सुविधा बढ़ाई जायगी।

5 विभिन्न सस्थागत एजेंसियों के काम में समन्वय स्थापित करने क लिए राज्य-स्तरीय समन्वय समितियाँ स्थापित की गई हैं। लेकिन इनके काम म विशष प्रगति नहीं हो पाया है। परिणामस्वरूप व्यापारिक बैंको का कर्ज भी उन्हीं क्षेत्रो में बढ़ा है जहा पहले स सहकारी ढाचा अधिक मजबूत पाया गया है। सातवीं योजना म जिला-साख योजनाएँ (district credit plans) बनाकर विभिन्न एजेन्सियों के कामो म अधिक तालमेल स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

अत भविष्य म कृषिगत साख म मात्रात्मक व गुणात्मक दोनों प्रकार के सुधारों स ही उत्पादकता म वृद्धि होगी। कर्ज की वसूली पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारतीय रिज़र्व बैंक न 2 अगस्त 1985 को प्रोफसर ए एम खुसरो की अध्यक्षता में कृषिगत साख की समीक्षा के लिए एक वरिष्ठ अध्ययन दल नियुक्त किया है जो इसको सुदृढ़ करन क उपाय सुझायेगा।

प्रश्न

1 भारत म ग्रामीण साख क विभिन्न स्रोतो का सापेक्ष महत्व बताइये। पिछले बीस वर्षों म साख क सस्थागत स्रोतों की प्रगति का सक्षिप्त विवेचन कीजिए। (Raj IIyr T D C 1984)

2 भारत म कृषि साख प्राप्त करने के प्रमुख स्रोत क्या हैं? सस्थागत वित्त प्रदान करने वाली कतिपय एजेन्सियों के योगदान व प्रगति को सक्षप म समझाइये। (Raj IIyr T D C 1983)

3 भारत म कृषि साख प्राप्त करने क प्रमुख स्रोत क्या हैं? पिछले बीस वर्षों म साख क सस्थागत स्रोतों की प्रगति की सक्षिप्त विवेचना कीजिये। (Raj IIyr T D C 1986)

उत्तर-सकेत—कृषिगत साख के प्रमुख स्रोतों को दो भागों म बाँटा जाता है (1) निजी इसम महाजन किसान के मित्र व सम्बन्धी जमींदार, वगैरा आते हैं (2) सस्थागत इसम सहकारिताएँ व्यापारिक बैंक (प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों सहित) सरकार आदि आते हैं। भारत म पिछले वर्षों म सस्थागत स्रोतों स कृषि-साख का काफी विस्तार हुआ है।

जून 1969 के अन्त म सावजनिक क्षेत्र क बैंको द्वारा कृषि को प्रदत्त प्रत्यक्ष कर्जे की बकाया राशि 40 2 करोड़ रु थी जो बढ़कर जून 1987 के अन्त म 9300 करोड़ रु हो गई। इस अवधि म परोक्ष कर्ज की बकाया राशि 122 करोड़ रु से बढ़कर 1366 करोड़ रु हो गई।

जुलाई 1982 मे नाबार्ड की स्थापना से व्यापारिक व सहकारी बैंको के लिए पुनर्वित्त (refinance) की सुविधा काफी बढ गई है। इस सम्बन्ध मे वितरित राशि 1986-87 मे 1334 करोड रु से बढकर 1987-88 म 1482 करोड रु हो गयी है।

सहकारी सस्थाओ ने 1979-80 मे विभिन्न अवधियो के कर्ज 1700 करोड रु के दिये थे, जो 1987-88 मे बढकर लगभग 4057 करोड रु हो गये। 1988-89 के लिए कर्ज का लक्ष्य 5441 करोड रुपयो का तथा 1989-90 के लिए 7070 करोड रु का रखा गया है।

इस प्रकार व्यापारिक बैंको प्रादेशिक ग्रामीण बैंको व सहकारी सस्थाओ द्वारा साख की मात्रा मे काफी वृद्धि की गई है।

लेकिन पिछले वर्षों मे सस्थागत कृषि-साख के सम्बन्ध मे निम्न समस्याएँ उत्पन्न हो गई है जिनका उचित समाधान निकाला जाना चाहिए—

(i) इनके लिए ओवरड्यूज की समस्या गम्भीर हो गई है। कोषो का प्रवाह बढाने के लिए कर्ज को वसूली पर जोर देने की नितान्त आवश्यकता है।

(ii) इन एजेन्सियो के लिए मानवीय शक्ति, वित्तीय साधना व कर्ज देने की विधियो की समस्या जटिल हो गई है।

(iii) विभिन्न एजेन्सियो के कार्यों मे परस्पर आवश्यक ताल-मेल स्थापित करने की समस्या भी उत्पन्न हो गई है।

आगामी वर्षों में जिला-साख योजनाएँ बनाकर सस्थागत कृषि-साख से अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करना होगा। राज्य स्तरीय समन्वय समितियो को अधिक सक्रिय रूप से काम करना चाहिए। सरकार ने 1987 88 मे सूखे से प्रभावित क्षेत्रो के लिए कज की अदायगी की अवधि फिर से निर्धारित की है तथा अल्पकालीन कर्जों को मध्यमकालीन कर्जों मे बदलने की सुविधा दी है एव कुछ मामलो मे ब्याज की दर घटायी है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको को निर्देश दिया गया है कि वे 1988-89 के अन्त तक अपने कुल कर्ज का 17% अश कृषि को प्रत्यक्ष वित्त के रूप मे प्रदान करें। कृषको को राहत पहुँचाने के लिए राष्ट्रीय कृषि-साख राहत-कोष स्थापित किया गया है। भविष्य मे ओवरड्यूज की समस्या का समाधान निकालने पर काफी जोर दिया जा रहा है।

4 टिप्पणी लिखिये —

(i) भारत मे कृषि साख क प्रमुख स्रोत।

(Raj IIyr T. D. C, 1989)

———

8

कुटीर एवं लघु उद्योग

(Cottage and Small Scale Industries)

भारत के आर्थिक विकास में कुटीर, ग्रामीण एवं लघु उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सरकार ने सदैव ग्रामीण उद्योगों के विस्तार पर बल दिया है और योजनाओं में लघु उद्योगों के विकास को रोजगार-नीति में केन्द्रीय स्थान दिया गया है। कुछ लोगों का मत है कि यदि भूतकाल में ग्रामीण उद्योगों के विकास पर पर्याप्त रूप से ध्यान दिया जाता और इसके सम्बन्ध में विकास के लक्ष्य प्राप्त कर लिए जाते तो भारत की आर्थिक स्थिति आज की तुलना में काफी बेहतर होती। भारतीय लोकदल के नेता स्वर्गीय चौधरी चरणसिंह का यह मत विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि "यदि मिलों का सारा वस्त्र निर्यात कर दिया जाय और देशवासी खादी, हथकर्घा व शक्ति करघा पर बने वस्त्रों का ही उपयोग करें, तो देश से बेरोज-गारी तुरन्त समाप्त की जा सकती है।" इन विचारों से चाहे हम पूर्णतया सहमत न हों, लेकिन इनसे भारतीय अर्थव्यवस्था में कुटीर व लघु उद्योगों का महत्व अवश्य स्पष्ट हो जाता है।

हम इस अध्याय में कुटीर व लघु उद्योगों की समस्याओं व योजनाकाल में इनकी प्रगति, आदि की चर्चा करेंगे। प्रारम्भ में कुछ परिभाषाएँ देना उचित होगा।

आर्थिक साहित्य में प्रायः कुटीर, ग्रामीण व लघु उद्योगों की एक साथ चर्चा देखने को मिलती है। लेकिन वैज्ञानिक विवेचन की दृष्टि से यह उचित नहीं है क्योंकि लघु उद्योग प्रायः *आधुनिक क्षेत्र (modern sector)* में आते हैं, जबकि कुटीर व ग्रामीण उद्योग परम्परागत क्षेत्र (traditional sector) में आते हैं। कुटीर या घरेलू या ग्रामीण उद्योगों में बहुधा पारिवारिक श्रम का उपयोग किया जाता है। ये स्थानीय व विदेशी दोनों प्रकार की मांग की पूर्ति कर सकते हैं। भारत में हाथ-करघा उद्योग राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण कुटीर व ग्रामीण उद्योग माना जाता है

1987–88 मे हथकरघा क्षेत्र मे 85·33 लाख व्यक्तियो को रोजगार (अंश-कालिक सहित) मिला हुआ था।[1]

खादी दूसरा ग्रामीण या कुटीर उद्योग है जिसमे 1987-88 मे 14·0 लाख व्यक्ति कार्यरत थे। इसके अलावा बहुत से कारीगर अन्य ग्रामीण उद्योगों मे लगे हुए हैं। ग्रामीण उद्योगो मे कृषि के सहायक धन्धो के अलावा कुछ अन्य उद्योग भी आते है। विभिन्न ग्रामीण उद्योगो मे बागवानी, पशुपालन, मछली-पालन, मुर्गी-पालन, रेशम के कीड़े पालना (sericulture), रस्सी तथा चटाई बनाना, बास और बेत का सामान बनाना, कुटीर माचिस उद्योग, मिट्टी के बर्तन बनाना, साबुन, कुटीर चमडा उद्योग, चपडा उद्योग, फल व सब्जियो की प्रोसेसिंग, हाथ से धान कूट कर चावल तैयार करना, सूत कातना, केन व पॉम-गुड तथा खाडसारी का उत्पादन करना तथा मधुमक्खी पालन, आदि आते है।

गाँवो मे रोजगार देने व लोगो की आय बढाने की दृष्टि से कृषि के सहायक उद्योग-धन्धो का समुचित विकास करना आवश्यक है। आजकल निर्धनता-निवारण की दृष्टि से भी इनका महत्व बढ गया है। इनके अलावा अन्य ग्रामीण उद्योग जैसे जूते बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, लकडी का सामान बनाना, आदि पर भी यथोचित ध्यान देने की आवश्यकता है। कृषि के सहायक धन्धे तो बहुधा कृषक को अधिक काम देने की दृष्टि से महत्वपूर्ण माने गये है। 1987-88 मे खादी, ग्रामीण उद्योगो, हथकरघा, रेशम, दस्तकारी व नारियल की जटा के उद्योगो मे कुल लगभग 2·26 करोड व्यक्ति काम पाये हुए थे। इसके अलावा आधुनिक उद्योगो जैसे लघु उद्योगो व पावरलूम मे 1·41 करोड व्यक्ति कार्यरत थे। इस प्रकार ग्रामीण व लघु उद्योग क्षेत्र (Village and Small Industries Sector) (VSI sector) मे 1987-88 मे कुल 3 67 करोड व्यक्ति काम पाये हुए थे जिसमे पूर्णकालिक व अशकालिक दोनो प्रकार के रोजगार शामिल है। इनमे अशकालिक रोजगार काफी लोगो को मिला हुआ है।

भारत मे लघु इकाइयाँ परम्परागत लघु क्षेत्र व आधुनिक लघु उद्योग क्षेत्र दोनो मे पायी जाती है। परम्परागत उद्योगो मे खादी, ग्रामीण उद्योग, हथकरघा, रेशम, दस्तकारी व नारियल जटा के उद्योग आते है तथा आधुनिक लघु उद्योगो मे पावरलूम, इन्जीनियरी, इलेक्ट्रोनिक्स, रबड, दवा आदि से सम्बन्धित बहुत से लघु उद्योग आते हैं। अब हम लघु उद्योग की वर्तमान परिभाषा को स्पष्ट करेंगे।

---

1. Annual Plan, 1988–89, p, 203, आगे भी 1987–88 के आँकडे इसी स्रोत से लिए गये है।

15 मार्च 1985 को वित्त मन्त्री ने 1985–86 का केन्द्रीय बजट प्रस्तुत करते समय लघु उद्योगों के लिए संयत्र व मशीनरी (plant and machinery) में विनियोग की सीमा 20 लाख रुपये से बढ़ाकर 35 लाख रुपये कर दी थी तथा सहायक उद्योगों (ancillary industries) के लिए 25 लाख रुपये से बढ़ाकर 45 लाख रुपये कर दी थी। इससे पूर्व जुलाई, 1980 में 'टाइनी' (अति लघु) इकाइयों के लिए संयत्र व मशीनरी में विनियोग की सीमा एक लाख रु. से बढ़ाकर दो लाख रुपये की गई थी।

अति लघु, लघु व सहायक इकाइयों के लिए विनियोग की सीमाएँ बढ़ाने से अधिक मात्रा में लघु इकाइयाँ इनको मिलने वाली सुविधाओं का लाभ उठा सकेंगी जिनसे अपेक्षाकृत अधिक इकाइयों का आधुनिकीकरण करना सम्भव हो सकेगा।

विवेचन की सरलता के लिए हम मान लेते हैं कि परम्परागत लघु उद्योग में खादी, हथकरघा, खाद्य-तेल, नारियल के रेशे (coir) से बने पदार्थ, चमड़ा उद्योग, आदि आते हैं तथा आधुनिक लघु उद्योगों में अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने वाली औद्योगिक इकाइयाँ आती हैं। ये पम्प सेट, डीजल इंजन, विद्युत मोटर्स, घड़ियाँ, रेडियो, ट्रांजिस्टर, रेफरीजरेटर, टेलीविजन सैट, बिजली के पंखे, सिलाई की मशीनें, बुनाई की मशीनें, साइकिलें, बिजली के तार, प्लास्टिक व रबड़ की वस्तुएँ, मिक्चर-ग्राइण्डर्स, टेपरिकार्डर, ऑप्टिकल लेन्सेज, टेलिस्कोप लेन्सेज, कैमरा, वैज्ञानिक औजार, अनेक प्रकार के घरेलू विद्युत-उपकरण, होजियरी का सामान, दवाइयाँ आदि बनाती हैं जिनकी खपत देश-विदेश में हो सकती है। इस प्रकार ग्रामीण व लघु उद्योगों का अपना-अपना क्षेत्र होता है। भारतीय परिस्थितियों में ग्रामीण उद्योगों को विकास के क्रम में सर्वोच्च स्थान दिया जाना चाहिए क्योंकि इन्हीं के विकास पर लाखों गाँवों तथा ग्रामवासियों, बनवासियों, व गिरिवासियों का आर्थिक जीवन निर्भर करता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कुटीर, ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का महत्व

प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था में कुटीर, ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ के वस्त्रों की माँग विदेशों में बहुत होती थी। भारत अपने कारीगरों की प्रतिभा व कला के लिए दूर-दूर तक विख्यात था। यह स्थिति कई शताब्दियों तक चलती रही। भारत में अंग्रेजी राज के दिनों में भारतीय वस्त्रों का विदेशों में बड़ा आदर होता था और बदले में भारत को कीमती धातु प्राप्त होती थी। ब्रिटिश काल में हमारे कुटीर उद्योगों की तेजी से अवनति हुई। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि अवनति के बावजूद आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था में इनका

ऊँचा स्थान है और योजनाओं मे भी सदैव इनका महत्व स्वीकार किया गया है जिसके निम्न कारण रहे है —

1 रोजगार—परम्परागत ग्रामीण व आधुनिक लघु उद्योगो मे सलग्न व्यक्तियो की सख्या का सही अनुमान लगाना कठिन है, क्योकि ये उद्योग देश के कोने-कोने मे फैले हुए हैं। फिर भी इनमे काफी लोग काम पाये हुए है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है। 1987-88 मे अकेले हथकरघा उद्योग मे लगभग 85 33 लाख व्यक्ति रोजगार पाये हुए थे। इसी वर्ष खादी व ग्रामीण उद्योगो मे 40 5 लाख व्यक्ति लगे हुए थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है। 1987-88 मे सभी प्रकार के ग्रामीण व लघु उद्योगो (VSI sector) मे 3 67 करोड व्यक्ति को रोजगार मिला हुआ था जो विनिर्माण क्षेत्र मे कुल औद्योगिक रोजगार का 80% था। भविष्य मे भी इनमे काफी सख्या मे अतिरिक्त लोगो को काम दिया जा सकता है। 1989-90 के लिए इनमे रोजगार का लक्ष्य 4 करोड व्यक्तियो का रखा गया है। इस प्रकार देश मे रोजगार बढाने की दृष्टि से इनका स्थान काफी ऊँचा है। भविष्य मे भी रोजगार देने के लिए हमारे पास कुटीर एव लघु उद्योगो के अतिरिक्त अन्य साधनो का अभाव रहेगा। कुटीर एव लघु उद्योग अर्द्ध-रोजगार या अल्परोजगार की समस्या को हल करने मे मदद देते है। किसान अवकाश के समय कृषि के सहायक धन्धो मे काम करके अपनी आय बढा सकते हैं तथा अपने श्रम का सदुपयोग कर सकते हैं।

2 उत्पादन का मूल्य—देश मे कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग आधा अश ग्रामीण व लघु उद्योगो से प्राप्त होता है। 1987-88 मे ग्रामीण व लघु उद्योगो के क्षेत्र (VSI sector) मे प्रचलित मूल्यो पर 85,790 करोड रुपयो की उत्पत्ति हुई। CSO के अनुसार VSI क्षेत्र की उत्पत्ति का मूल्य विनिर्माण क्षेत्र के कुल योगदान का लगभग आधा रहता है। 1989-90 मे इनके उत्पादन का मूल्य सम्भवत' एक लाख करोड रु की सीमा के आगे निकल जायगा। इनमे बडे उद्योगो की तुलना मे कम पूँजी से ज्यादा माल बनाया जा सकता है। छोटे पैमाने की इकाइयाँ बडे पैमाने की इकाइयो की तुलना मे प्रति रुपये विनियोग पर अधिक माल का उत्पादन भी करती हैं। महाराष्ट्र पश्चिमी बगाल व तमिलनाडु मे लघु उद्योगो की पहले से ही काफी प्रगति हो चुकी थी। लेकिन पिछले वर्षों मे पजाब मे इनकी विशेष रूप से प्रगति हुई है। लघु उद्योगो की विशेष प्रगति वस्त्र, मशीनरी, धातु व विद्युत के साज-सामान के निर्माण मे हुई है। फूड-प्रोसेसिंग का कार्य (अनाज व दाल आदि का) व वस्त्रो मे आज भी माल के मूल्य व इकाइयो की सख्या की दृष्टि से इनकी प्रधानता बनी हुई है। लेकिन साथ मे कई नये उद्योग भी पनप रहे है।

3 छोटे पैमाने की इकाइयों की बडे पैमाने की इकाइयो की तुलना मे उत्पादन कार्यकुशलता—प्राय छोटी इकाइयो की उत्पादन सम्बन्धी कार्यकुशलता की

तुलना बड़े पैमाने की इकाइयों में की जाती है। यदि फैक्ट्री स्तर से नीचे की लघु इकाइयों को शामिल किया जाय तो लघु उद्योगों का औद्योगिक उत्पादन में हिस्सा बढ़ जाता है। जैसे वस्त्रोद्योग में हथकरघा, शक्ति करघा तथा खादी सभी विकेन्द्रित क्षेत्र में आते हैं, एवं कुल उत्पत्ति का लगभग आधा भाग प्रदान करते हैं। इस प्रकार लघु उद्योगों का उत्पत्ति में भारी योगदान होता है।

4 कम पूँजी व अधिक श्रम की स्थिति में उपयुक्त—भारत में पूँजी का अभाव है, जबकि श्रम-शक्ति का आधिक्य पाया जाता है। इसलिए हमें ऐसी उत्पादन-विधियां अपनानी पड़ेंगी जिसमें पूँजी कम लगे और श्रमिक अधिक संख्या में काम पा सकें। बड़े पैमाने के उद्योगों में पूँजी ज्यादा लगती है और रोजगार कम लोगों को मिलता है। कुटीर उद्योगों में कम पूँजी से ही काम चल जाता है और ज्यादा लोगों को काम मिलता है। यहां पर यह स्पष्ट करना उचित होगा कि छोटे पैमाने के उद्योगों में मशीनों व शक्ति पर व्यय करने के लिए पूँजी की आवश्यकता कुटीर उद्योगों की तुलना में अधिक होती है। भारत के प्रत्येक गांव में कुटीर उद्योगों का विकास किया जाय तो स्त्री-श्रम का भी उपयोग हो सकेगा और देश की कुल सम्पत्ति बढ़ेगी। तुलनात्मक आंकड़ों से पता चलता है कि एक लाख रुपयों के विनियोजन से बड़ी इकाई में केवल 4 व्यक्तियों को, लघु इकाई में 20 से 25 व्यक्तियों को तथा ग्रामीण उद्योगों में लगभग 70 व्यक्तियों को रोजगार दिया जा सकता है। इससे ग्रामीण व लघु उद्योगों की श्रम गहनता, अर्थात् अधिक श्रमिकों को काम दे सकने की क्षमता का अनुमान लगाया जा सकता है।

5 आर्थिक शक्ति का समान वितरण—पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने के उद्योगों में धन व आर्थिक शक्ति कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है, जिससे आय की असमानता उत्पन्न होती है। कुटीर व लघु उद्योगों के विकास से आर्थिक समानता का वातावरण तैयार होता है। इनसे आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है। आर्थिक शोषण की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं। साथ ही गाँव व शहर के बीच की आर्थिक खाई कम हो जाती है। गाँवों में उद्योग पनपने से उनकी आर्थिक स्थिति सुधरती है और वे स्वयं के प्रयत्नों से ही अपना रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने में सफल हो सकते हैं।

6. रोजगार की अधिक स्थिरता—बड़े उद्योगों में माल की माँग घट जाने पर व्यापक रूप से बेरोजगारी फैलती है। लेकिन कुटीर एवं लघु उद्योगों में प्रायः तीव्र किस्म की मन्दी नहीं आती है और कारीगर देश के विभिन्न भागों में फैले होने के कारण किसी भी संकट का अपेक्षाकृत अधिक सुगमता से मुकाबला कर सकते हैं। इसलिए इनमें रोजगार का अधिक स्थायित्व पाया जाता है। यह बात ग्रामीण उद्योगों पर अधिक लागू होती है।

7. सरल कार्य प्रणाली—कुटीर उद्योगों की स्थापना व कार्य प्रणाली अत्यन्त सरल होती है। इनके लिए उच्चकोटि के प्राविधिक विशेषज्ञों मैनेजरों, विशाल भवनों, विस्तृत हिसाब-किताब एवं प्रशिक्षण आदि के इन्तजाम नहीं करने पड़ते, जो बड़े पैमाने के उत्पादन में आवश्यक होते हैं। इस प्रकार उत्पादक कई प्रकार की कठिनाइयों से बच जाते हैं और सरलतापूर्वक अपना कार्य चला सकते हैं। इसलिए ग्रामीण व लघु उद्योग पिछड़े क्षेत्र व समाज के पिछड़े वर्गों के द्वारा भी चलाये जा सकते हैं।

8 परम्परागत प्रतिभा व कला की रक्षा—इनके विकास से ही हम देशवासियों की परम्परागत प्रतिभा व औद्योगिक दक्षता को बनाये रख सकते हैं। भारत के विभिन्न भागों में उत्पादन के अनेक कलात्मक कार्य प्रचलित हैं। उनके विकास की नितान्त आवश्यकता है। तभी राष्ट्रीय कला, दक्षता व प्रतिभा की रक्षा हो सकेगी, अन्यथा वे कालान्तर में नष्ट हो जायेंगी।

9. सैनिक महत्व—यदि हमारी औद्योगिक शक्ति कुछ ही शहरों में केन्द्रित होती है तो शत्रु राष्ट्र हमें कभी भी भारी नुकसान पहुँचा सकता है। लेकिन यदि छोटे उद्योगों के रूप में यह शक्ति सारे देश में फैली होती है तो हम आसानी से औद्योगिक दृष्टि से कमजोर नहीं हो सकते। अतः लघु उद्योगों का राष्ट्र की सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्व होता है।

10 औद्योगिक समस्याओं की कमी—कुटीर एवं लघु उद्योगों के उत्पादन को प्रोत्साहन देने से हम बहुत सी औद्योगिक समस्याओं से बच जाते हैं। बड़े पैमाने के उत्पादन से औद्योगिक क्षेत्रों में आवास की समस्या, गन्दा वातावरण, तालाबन्दी एवं हड़तालों आदि की समस्याएँ पैदा हो जाती है। छोटे पैमाने के उत्पादन में मालिक-मजदूर का सम्पर्क ज्यादा समीप का होता है। इसलिए बहुत सी समस्याएँ या तो उत्पन्न ही नहीं होतीं अथवा गम्भीर रूप धारण नहीं कर पातीं। उत्पादन अपेक्षाकृत अधिक नियमित व निरन्तर रूप से होता रहता है और प्रबन्ध आदि में भी सुविधा बनी रहती है।

11 उत्पादन की उत्तम किस्म—कुटीर व लघु उद्योगों में बने हुए माल की लागत चाहे ऊँची हो, लेकिन इनका माल प्रायः उत्तम, टिकाऊ एवं कलापूर्ण ढंग का होता है। छोटे उत्पादन में कारीगरों को अपनी कला को दिखाने का और माल में विविधता लाने का पर्याप्त अवसर मिलता है। माल की कई प्रकार की किस्में बनाकर उपभोक्ता को अधिक सन्तोष प्रदान किया जा सकता है।

12. उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन—द्वितीय योजना के प्रारम्भ में अपनाई गयी विकास की महलनोबिस नीति में सुझाया गया था कि भारत के सीमित पूँजी-

गत साधनों का प्रयोग आधारभूत उद्योगों में किया जाना चाहिए और उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन विकेन्द्रित कुटीर व लघु उद्योगों द्वारा किया जाना चाहिए। इस समय यह सोचा गया था कि इससे मुद्रास्फीति को रोकने में मदद मिलेगी तथा जनता को उपभोग की आवश्यक वस्तुएँ भी उपलब्ध हो सकेंगी। बाद में इस नीति को ठीक से कार्यान्वित न कर सकने के कारण वांछित परिणाम प्राप्त नहीं किये जा सके। लेकिन विकास की मूलभूत नीति के रूप में यह तत्कालीन परिस्थितियों में काफी सही नीति मानी गयी थी। इस नीति में सारी उद्योगों के साथ-साथ पारिवारिक उद्योगों (household industries) के विकास पर भी बल दिया गया था।

13 **निर्यात-संवर्धन व देश को आत्म-निर्भरता की ओर ले जाने में सहायक**—लघु उद्योग आयात-प्रतिस्थापन (import substitution) में मदद देते हैं और वे निर्यात की दृष्टि से भी महत्व रखते हैं। इन्होंने आयात-प्रतिस्थापन के माध्यम से प्रतिवर्ष विदेशी मुद्रा बचाने में मदद की है। भारत में हथकरघे पर बना वस्त्र, रेशमी वस्त्र, नारियल के रेशे से बना माल, दस्तकारी का सामान काफी मात्रा में निर्यात किया जाता है और भविष्य में इस क्षेत्र में निर्यात बढ़ाने की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं।

1987-88 में परम्परागत उद्योगों जैसे, खादी हथकरघा, रेशम उद्योग, दस्तकारी व नारियल की जटा के उद्योग का माल निर्यात करके लगभग 3358 करोड़ रु. की विदेशी मुद्रा अर्जित की गई थी। इसके अलावा लघु उद्योगों के माल का निर्यात करके 3300 करोड़ रु प्राप्त किए गये थे। इस प्रकार ग्रामीण व लघु उद्योगों के माल का निर्यात करके कुल 6658 करोड़ रु. की विदेशी मुद्रा अर्जित की गई। भविष्य में इनमें वृद्धि करने के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं तथा 1989-90 तक इस क्षेत्र से लगभग 7444 करोड़ रु की विदेशी मुद्रा अर्जित करने का अनुमान लगाया गया है। इस प्रकार इनका निर्यात-संवर्धन में भी काफी योगदान होता है।

14 *लघु उद्योगों की इकाइयां बड़े पैमाने के उद्योगों की इकाइयों की सहायक हो सकती हैं।* वे इनके लिए आवश्यक कल-पुर्जे व सहायक साज-सामान तैयार कर सकती हैं जिससे इनके कार्यों में परस्पर ताल-मेल बैठाया जा सकता है। पिछले वर्षों में सहायक इकाइयों (ancillary units) की संख्या में वृद्धि हुई है। भविष्य में सहायक इकाइयों के विकास की काफी सम्भावनाएँ हैं।

15 **आजकल निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास पर अधिक जोर दिया जाने लगा है।** इनके माध्यम से रोजगार व आमदनी बढ़ाये जा सकते हैं। इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं में इनके विकास के कार्यक्रम रखे जाते हैं।

16 लघु इकाइयाँ बहुधा कच्चे माल की कमी आदि के कारण थोड़े समय के लिए रुग्ण (sick) होती हैं, जबकि बड़ी इकाइयां रुग्णता से लम्बी अवधि तक

प्रभावित हो जाती है। इसलिए लघु इकाइयो की रुग्णता की समस्या को हल करना अधिक आसान होना है।

कुटीर एव लघु उद्योगों की समस्याएँ

वैसे कुटीर व लघु उद्योगो की समस्त समस्याएँ एकसी नही होती फिर भी उनमें कुछ समानता अवश्य होती है। इसलिए इनकी समस्याओ का बहुधा एव साथ विवेचन किया जाता है।

1 कच्चे माल की समस्या—कारीगरो को प्राय उचित समय पर उचित क़िस्म का कच्चा माल उचित मूल्य पर एव पर्याप्त मात्रा म नही मिल पाता है। व स्थानीय व्यापारियो पर कच्चे माल के लिए निर्भर रहते हैं जो घटिया माल भी ऊँची कीमत पर देते हैं। भारत मे बुनकरो को इस सम्बन्ध मे काफी कठिनाई रही है। वे सूत के लिए मिलो पर निर्भर करत हैं। यदि मिल का सूत समय पर तैय र नही मिलता तो उन्ह काफी कठिनाई का सामना करना पडता है।

लघु उद्योगो को भी दुर्लभ विदेशी कच्चा माल और कल-पुर्जों को प्राप्त करने मे बडी कठिनाई का सामना करना पडता है। उनकी उत्पादन क्षमता के अनुसार उन्ह कच्चा माल नही मिल पाता है। इनके मुकाबले बडे कारखानो को कच्चा माल प्राप्त करने मे आसानी होती है। परिणामस्वरूप, छोटी इकाइयो को अपनी आवश्यकता के बडे अश की पूर्ति खुले बाजार मे ऊँचे मूल्य देकर करनी पडती है जिससे उन्ह प्रतिस्पर्द्धा मे हानि उठानी पडती है। छोटी इकाइयो को प्राप्त होन वाले कच्चे माल मे अधिक अनिश्चितता पायी जाती है। इन्जीनियरी इकाइयो को प्राय इस्पात की कमी का सामना करना पडता है। उन्हे उत्पादन-क्षमता के अनुसार कच्चे माल की सप्लाई की जानी चाहिए। छोटे व बडे उद्योगो के बीच कच्चे माल विशेषतया आयातित कच्चे माल का वितरण अधिक व्यवस्थित रूप से होना चाहिए।

2 उत्पादन का सगठन व उत्पादन की पद्धति कम कार्यकुशल व पुरानी—ग्रामीण व कुटीर उद्योगो के कारीगर प्राय असगठित रूप मे काम करते है। इनका सम्बन्ध अर्थव्यवस्था मे अनौपचारिक क्षेत्र (informal sector) से होता है। उनमे सहकारी सगठन का अभाव पाया जाता है। कारीगरो की शिक्षा व प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था नही होती है। इस क्षेत्र मे आवश्यक अनुसन्धान व विकास का प्राय. अभाव पाया जाता है। वे वर्षों से अपने पुराने व परम्परागत औजारों से काम करते चले आ रहे हैं। नये औजारो, यन्त्रों, मशीनो व पद्धतियो से वे अभी तक अपरिचित हैं अत पुरानी उत्पादन-पद्धति को समाप्त करके नई अधिक कार्यकुशल पद्धति को अपनाने की आवश्यकता है ताकि अधिक मात्रा मे उत्तम व सस्ता माल बनाया जा सके। इस सम्बन्ध में भारतीय कारीगरो की निरक्षरता एव रूढिवादिता का उल्लेख करना भी आवश्यक है। अशिक्षित एव परम्परावादी होने के कारण भारतीय कारीगर नवीन पद्धतियो को आसानी से नही अपनाते। अत उनके काम मे आवश्यक

कुछ सीमा तक कीमतें ऊँची होने पर भी खरीदा जाना चाहिए । इस समय लघु इकाइयों को 15% तक का कीमत-अधिमान मिला हुआ है ।

5. ऊँची लागत, ऊँचा मूल्य व कर भार—कुटीर व छोटे पैमाने पर बने हुए माल की लागत ज्यादा होने से प्राय: इनका मूल्य भी ज्यादा होता है । इसलिए इनकी माग कम हो जाती है । एक शिकायत यह भी की गई है कि व्यापारिक बैंक लघु उद्योगो से ब्याज की ऊँची दर (औसतन 15 प्रतिशत) वसूल करते हैं जिससे इन पर ब्याज का भार भी काफी ऊँचा हो जाता है । नयी विधियो का प्रयोग करके ऊँची लागत व ऊँची कीमत का प्रश्न हल किया जा सकता ह और किया जाना चाहिए ।

जहाँ तक करो का सम्बन्ध है, यह बतलाना आवश्यक है कि विशेषतया लघु व मध्यम पैमाने क उद्योगो को करो की समस्या का सामना करना पडता है । यह समस्या कुटीर उद्योगो के सामने नही है लेकिन यह लघु उद्यमकर्त्ताओ के सम्मुख अवश्य पायी जाती है । इन पर उत्पादन-शुल्क का भार होता है जिसे ये प्राय: उपभोक्ताओ पर डालने मे असमर्थ पाये जाते हैं । इसी प्रकार इन पर बिक्री-कर भी लगाया जाता है । इन दो करो के अतिरिक्त कारखाने वालो को आय-कर भी देना होता है । इस तरह उनके लाभ का बडा भाग कर देने मे चला जाता है । नगरपालिकाएँ भी स्थानीय करो के रूप मे इनसे कुछ राशि वसूल करती हैं । उत्पादन-शुल्क आदि के लिए रिकार्ड रखन व जटिल विधियो म पडने की समस्या उत्पन्न हो जाती है । कर-विभाग के अधिकारी भी लघु इकाइयो को अनावश्यक रूप से परेशान करते हुए पाये जाते हैं ।

इस वर्णन से स्पष्ट होता है हमारे देश मे कुटीर एव लघु उद्योगो के बीच भी एक-सी नीति नही बरती जाती । जितनी उदार नीति कुटीर उद्योगो के साथ बरती जाती है, उतनी लघु उद्योगो के साथ नही बरती जाती । केन्द्रीय सरकार ने लघु इकाइयो को लाभ पहुँचाने के लिये समय-समय पर करो मे राहत दी है । वित्त मन्त्री ने 1989-90 मे सघीय बजट मे मुर्गीपालन (poultry farming) को प्रोत्साहन देने के लिए इसकी आय में $33\frac{1}{3}\%$ की दर से कर मे छूट दी है, ताकि इसमे रोजगार बढाया जा सके ।

6 समय पर भुगतान नहीं मिलना व माल का एकत्र हो जाना—छोटे पैमाने की इकाइयो को अपने माल का भुगतान समय पर नही मिलने से काफी वित्तीय कठिनाई का सामना करना पडता है । भुगतान मे विलम्ब सरकारी विभागो की खरीद तथा निजी क्षेत्र की बडी इकाइयों की खरीद—दोनो मे पाया जाता है । लघु इकाइयो को भुगतान अधिक शीघ्रता से मिलना चाहिए ताकि इन्हें अनावश्यक रूप से वित्तीय असुविधा का सामना न करना पडे ।

मन्दी की अवधि मे लघु इकाइयो को कच्चा माल व निर्मित माल का स्टॉक जमा हो जाने से भी कठिनाई का सामना करना पडता है। बडे पैमाने की इकाइयाँ बहुधा कच्चा माल उधार खरीदती हैं व निर्मित माल नकद बेचती हैं, जबकि लघु इकाइयाँ अपना कच्चा माल नकद खरीदती हैं, व निर्मित माल उधार बेचती हैं, जिससे इनके समक्ष प्राय कार्यशील पूँजी का अभाव उत्पन्न हो जाता है।

7. इन्फ्रास्ट्रक्चर (पावर) की कमी, लघु उद्यमकर्ताओ के लिए व्यावहारिक कठिनाइयां तथा सरकारी नीति का लघु उद्योगो पर दुष्प्रभाव—कुटीर एव छोटे उद्योगो के सामने उपर्युक्त समस्याओ के अतिरिक्त नय यन्त्रों तथा डिजाइनो के लिए अनुसधान की कमी, यातायात के साधनो के अभाव, प्रबन्धकीय दक्षता का अभाव, सस्ती शक्ति की कमी आदि प्रश्न भी होते हैं जिनका समुचित हल निकाला जाना चाहिए। वास्तव मे सब प्रश्नो का एक साथ हल निकालने से ही इन उद्योगों की उन्नति की जा सकेगी। भारत मे कागज पर तो लघु उद्योगो के प्रति बडी उदार नीति प्रतीत होती है लेकिन व्यवहार मे इन्हे कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता है। एक फैक्ट्री डालने के लिए विभिन्न सरकारी एजेन्सियों से सम्पर्क स्थापित करना होता है, जैसे भूमि प्राप्त करने के लिए स्थानीय सस्था से, पूँजी के लिए बैंको या निगमो से कच्चे माल के लिए तीसरी सस्था से, विद्युत के लिए राज्य विद्युत मण्डल से तथा रजिस्ट्रेशन के लिए राज्य उद्योग-निदेशालय से, आदि आदि। इन सब कार्यों मे काफी विलम्ब होता है एव विभिन्न स्तरो पर आवश्यक काम करवाने के लिए काफी रुपया भी व्यय करना होता है तथा लघु उद्यमकर्ता सभी तरह की औपचारिकताएँ पूरी करने मे कठिनाई महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति मे उनके लिए उत्पादन पर पूरा ध्यान दे सकना कठिन हो जाता है। पहले यह आशा की गई थी कि जिला-उद्योग-केन्द्रो (DICs) की स्थापना से इस सम्बन्ध मे सुविधा बढ़ेगी, लेकिन इस दिशा मे अभी तक विशेष प्रगति नही हो पायी है। कुछ परिस्थितियो मे लघु उद्योगो को दक्ष कारीगर नही मिल पाते जिससे माल की किस्म पर विपरीत प्रभाव पडता है।

हाल मे दवाई उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त कर देने से इन उद्योगो की लघु इकाइयों के समक्ष सकट उपस्थित हो गया है, क्योंकि बडी इकाइयो का उत्पादन बढाने का अधिक अवसर मिल गया है। इसी प्रकार नई वस्त्र-नीति (जून 1985) के अनुसार पावर लूम व मिल लूम को समान मान लेन से पावर लूम क्षेत्र' के लिए नई कठिनाइयां उपस्थित हो गई हैं। मिलो के आधुनिकीकरण से इस पर बुरा प्रभाव पडने की सम्भावना है। पावर लूम मे लगे लघु उद्यमकर्त्ताओ के लिए उत्पादन-लागत ऊँची आती है।

कुटीर व लघु उद्योगों के लिए नये संगठन

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से ही भारत सरकार कुटीर एव लघु उद्योगो के विकास के लिए प्रयत्नशील रही है। 1948 के औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव मे

कुटीर एवं लघु उद्योगों का महत्व स्वीकार किया गया था। 1956 की नयी औद्योगिक नीति में उसे पुनः दोहराया गया। 23 दिसम्बर 1977 को तत्कालीन जनता सरकार ने अपनी नई औद्योगिक नीति में ग्रामीण व लघु उद्योगों को उच्च प्राथमिकता प्रदान की और इनके विकास के लिए जिला-उद्योग केन्द्र (DICs) स्थापित करने पर विशेष रूप से बल दिया तथा अति लघु क्षेत्र (tiny sector) के विचार को आगे बढाया ताकि संयन्त्र व मशीनरी में 1 लाख रु तक की सीमा वाली इकाइयों के विकास पर अधिक ध्यान दिया जा सके। जुलाई 1980 में कांग्रेस (आई) सरकार के औद्योगिक नीति वक्तव्य में इनके महत्व को पुन. स्वीकार किया गया। पूर्व-योजनाओं में इनके विकास के लक्ष्य निर्धारित किये गये थे और अन्तर्राष्ट्रीय योजना-दल (1954) कर्वे समिति (1955) व अन्तर्राष्ट्रीय दीर्घकालीन योजना-दल (1963) के सुझावों को अपनाने का प्रयत्न किया गया था। प्रथम योजना में अन्तर्राष्ट्रीय योजना-दल के सुझाव के अनुसार चार प्रादेशिक लघु उद्योग-सेवा-संस्थान (SISI) स्थापित किये गये और 1955 में राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (NSIC) स्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त प्रथम योजना की अवधि में केन्द्र ने विभिन्न उद्योगों के विकास के लिए 6 बोर्ड भी स्थापित किये। इनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

1. **अखिल भारतीय हस्तकला बोर्ड** (All India Handicraft Board)—यह नवम्बर 1952 में स्थापित किया गया था और इसका मुख्य कार्य उत्पादन व बिक्री बढाने का रखा गया था। अप्रैल 1958 में भारतीय हस्तकला विकास निगम स्थापित हुआ जो निर्यात बढाने में सहायता दे रहा है। देश में हस्तकला सप्ताह मना कर निर्मित वस्तुओं का प्रचार किया जाता है। 1987–88 में दस्तकारी के सामान का निर्यात लगभग 3253 करोड रुपये का हुआ जो निर्यात की मदों में सर्वोच्च स्थान पर था। इसमें मोती, कीमती व अर्द्ध-कीमती स्टोन्स के निर्यात की राशि 2614 करोड रु. थी।

2 **अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामउद्योग बोर्ड**(All India Khadi and Village Industries Board)—जनवरी 1953 में एक खादी व ग्रामोद्योग बोर्ड स्थापित किया गया था। 1956 में खादी व ग्रामोद्योग कमीशन (KVIC) भी स्थापित किया गया। इसके पास खादी व अन्य 25 चुने हुए ग्रामोद्योगों के विकास का कार्य है, जैसे साबुन बनाना, तेल निकालना, धान कूटना, दियासलाई बनाना, हाथ का कागज बनाना, मधुमक्खी-पालन, चमडे का सामान बनाना, आटे की चक्कियां और गांव में मिट्टी के बर्तन बनाना आदि। राज्यों में खादी व ग्रामोद्योग बोर्ड (KVIB) बनाये गये हैं। इस समय 26 KVIB, 1114 पंजीकृत संस्थाएँ व 30 008 सहकारिताएँ 1·5 लाख गांवों में फैली हुई हैं। खादी व ग्रामीण उद्योग समिति (अशोक मेहता समिति) ने सुझाव दिया था कि खादी व ग्रामीण उद्योग

कमीशन को ग्रामीण उद्योग कमीशन (Rural Industries Commission) के रूप में पुनर्गठित किया जाना चाहिए । KVIC की क्रियाएं तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर-प्रदेश, बिहार, राजस्थान, कर्नाटक मे अधिक केन्द्रित हैं। खादी में रोजगार उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु तथा गुजरात मे केन्द्रित हैं। खादी में ज्यादा व्यक्तियों को अंशकालिक रोजगार प्राप्त हो पाया है।

अन्य बोर्ड इस प्रकार हैं : अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड, नारियल रेशा बोर्ड, केन्द्रीय रेशम बोर्ड और लघु उद्योग बोर्ड ।

इनके अतिरिक्त कुटीर एव छोटे उद्योगो के विकास के लिए पिछले वर्षों मे कुछ और सगठन बनाये गये है जो बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। उनका सक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है

1. लघु उद्योग सेवा सस्थाएं (Small Industries Service Institutes)—इस प्रकार की चार सस्थाएँ दिल्ली, बम्बई, मद्रास व कलकत्ता मे स्थापित की गयी है। इनकी स्थापना का सुझाव प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योजना दल ने दिया था। ये छोटे उद्योगों को उत्पादन की विधियों, बिक्री एव प्रबन्ध आदि सुधारने मे मदद देती हैं तथा मशीनें, कच्चा माल व पूँजी प्राप्त करने मे सहायता पहुँचाती हैं। इस प्रकार य व्यापारिक एव औद्योगिक सेवाएँ प्रदान करती हैं ।

2. औद्योगिक विस्तार सेवा (Industrial Extension Service)—लघु उद्योग विकास सगठन (SIDO) के अन्तर्गत 27 लघु उद्योग सेवा-सस्थान, 31 शाखा सस्थान एव कुल 37 विस्तार/उत्पादन/प्रशिक्षण केन्द्र कार्य कर रहे हैं। इनका कार्य प्राविधिक सलाह देना एव प्रबन्ध के सर्वोत्तम तरीके सुझाना है ।[1]

3 राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड (The National Small Industries Corporation Limited)—यह फरवरी, 1955 मे स्थापित किया गया था। इसम समस्त पूँजी भारत सरकार द्वारा लगायी गयी है । इसका सम्बन्ध लघु इकाइयो से है। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं

(अ) सरकारी विभागो के लिए छोटे पैमाने पर बनी हुई वस्तुएँ खरीदने की व्यवस्था करना तथा लघु इकाइयो को माल बनाने के लिए आर्डर देना, (आ) आर्डर के अनुसार माल बनाने के लिए पूँजी व तकनीकी सहायता प्रदान करना, (इ) बडे पैमाने एव छोटे पैमाने मे तालमेल बैठाना जिससे छोटे पैमाने पर सहायक माल बनाया जा सके (ई) बिक्री की सुविधायें बढाना एव इसके लिए प्रदर्शनियो, सप्ताह-समारोहो और विक्रय-केन्द्रो की व्यवस्था करना (उ) किश्तों पर मशीनें देना, (ऊ) इसने औखला (नई दिल्ली हावडा मद्रास व राजकोट मे 4 प्रोटोटाइप उत्पादन व प्रशिक्षण केन्द्र खोल है जहाँ मशीनरी के प्रोटोटाइप विकसित करके टक्नोलोजी के अन्तरण (transfer) की व्यवस्था की गई है ।

1. India 1987 p 500

किश्तो पर मशीनें आदि खरीदने के प्रार्थना-पत्र पहले सेवा-संस्थानो के पास आते है। इनकी वहाँ जाँच होती है और फिर ये राष्ट्रीय उद्योग निगम को भेज दिये जाते हैं। यह निगम मशीनें बनाने वालो को आर्डर देता है और मशीनें खरीदने वालो से पेशगी वसूल करता है। इसने निर्यात, कच्चे माल के वितरण, मशीनी औजारो की बिक्री, केन्द्रीय सरकार के स्टोर क्रय-कार्यक्रम (Store Purchase Programme) के अन्तर्गत कई समझौते करने व प्रोटोटाइप-विकास व प्रशिक्षण केन्द्रो पर प्रशिक्षण देने के कार्यक्रम भी पूरे किये है। निगम के समक्ष उधार लेने वालो के द्वारा किश्तो के न चुकाये जाने की समस्या काफी जटिल हो गयी है। अधिकांश इकाइयो को बडी इकाइयो की प्रतिस्पर्धा, कार्यशील पूँजी के अभाव, कच्चे माल की कमी, पावर कटौतियो आदि का सामना करना पड रहा है जिससे किश्तो की रकम वसूल करना व्यवहार मे बहुत कठिन हो गया है। NSIC विकासशील देशो जैसे तन्जानिया, नाइजीरिया व कीनिया को टर्न-की (Turn-key) आधार पर प्रोजेक्टो के निर्यात की भी व्यवस्था करता है। इस व्यवस्था मे निगम उन देशो मे समस्त प्रोजेक्ट का काम करता है तथा उसको चालू करने तक के विविध कार्यों का संचालन करता है।

4 **औद्योगिक बस्तियाँ (Industrial Estates)**—औद्योगिक बस्ती मे बहुत से लघु उद्योग एक स्थान पर चलाये जाते है ताकि कच्चे माल, बिजली, पानी, याता यात, बैंकिंग आदि की इकट्ठी सुविधाएँ मिल सकें। ये कार्यक्रम ग्रामीण व अर्द्ध-शहरी क्षेत्रो की तुलना मे शहरी क्षेत्रो मे ज्यादा सफल हुए है। औद्योगिक बस्तियो का कार्यक्रम जनवरी, 1955 मे प्रारम्भ किया गया था और इसे लागू किये काफी वर्ष हो गये हैं। इस समय देश मे 800 से अधिक औद्योगिक बस्तियाँ हैं, हालाकि ये सभी काम नही कर रही है। इनके निर्माण पर करोडो रु. व्यय किये गये है। इनके माध्यम से लघु उद्योगो का विकास किया गया है ताकि रोजगार बढाया जा सके।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगिक बस्तियो का चुनाव काफी सावधानी से किया जाना चाहिए। कच्चे माल, परिवहन, जल व शक्ति की सप्लाई व उपलब्धि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि वे बस्तियाँ उन क्षेत्रो के आर्थिक विकास का मुख्य अंग बन सकें जिनमे विकास की सम्भावनाएँ अधिक हैं। औद्योगिक बस्तियो मे रोज-गार बढाने पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। इनको ऐसी वस्तुओ का निर्माण करना चाहिए जिससे कृषि मे यन्त्रीकरण, कृषिगत उपज मे सुधार एव ग्रामीण विद्युती-करण को प्रोत्साहन मिल सके। शिक्षित बेरोजगारो व इन्जीनियरो को बहुत उदार शर्तों पर शेड्स मिलने चाहिए। औद्योगिक बस्तियाँ बनने से पूर्व उस क्षेत्र मे इन्फ्रास्ट्रक्चर—सडक, रेल, विद्युत तथा जल आदि की व्यवस्था—को अधिक सुदृढ किया जाना चाहिए। इनके अभाव मे आगे चल कर इनके बन्द पडे रहने की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

अन्य संवर्धनात्मक संस्थाएँ—छठी योजना की अवधि में लघु उद्योगों के विकास के लिए कुछ और संस्थाएँ स्थापित की गई हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—(i) टूल डिजायन का केन्द्रीय संस्थान (Central Institute of Tool Design) (C I T D), (ii) विद्युत माप-यन्त्रों का डिजायन का संस्थान (Institute for Design of Electrical Measuring Instrument) (I D E M I, (iii) लघु उद्योग विस्तार व प्रशिक्षण का राष्ट्रीय संस्थान (National Institute of Small Industry Extension and Training) (N I S I E T) व (iv) उद्यमशीलता व लघु व्यवसाय विकास, आदि के लिए राष्ट्रीय संस्थान (National Institute for Entrepreneurship and Small Business Development etc) NIES-BUD)। इन विभिन्न संस्थाओं की स्थापना से डिजायन, विस्तार प्रशिक्षण, उद्यमशीलता व लघु व्यवसाय के विकास में मदद मिलने की आशा है।

कुटीर व लघु उद्योगों के विकास के लिए सरकारी उपाय

सरकार ने कुटीर व लघु उद्योगों के विकास के लिए कई उपाय काम में लिए हैं जिनका सम्बन्ध विशेषतया इनके लिए कच्चे माल पूँजी, तकनीकी सहायता, बिक्री आदि की सुविधाओं से रहा है। इनका वर्णन नीचे किया जाता है.

1 व्यापक सहायता कार्यक्रम—भारत सरकार ने लघु उद्यमकर्ताओं को सहायता देने के लिए व्यापक सहायता कार्यक्रम अपनाया है। लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO) के अन्तर्गत लघु उद्योग सेवा-संस्थान (SISI) शाखा-संस्थान व विस्तार केन्द्र स्थापित किये गये हैं। SIDO आर्थिक, तकनीकी व प्रबन्धकीय सेवाएँ उपलब्ध करता है। राज्यों में उद्योग-निदेशालय भूमि या फैक्ट्री शेड आवंटित करते हैं तथा इनके लिए कच्चे माल व पूँजी की उपलब्धि में सहायता करते हैं।

2 लघु उद्योगों के लिए क्षेत्र सुरक्षित करने (रिजर्वेशन) की नीति—बड़े पैमाने की इकाइयों की प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए कुछ वस्तुओं के उत्पादन को छोटे पैमाने के लिए रिजर्व या नियत कर दिया गया है। लगभग 5000 मदों में से 873 मदों का उत्पादन पूर्णतया लघु पैमाने के उद्योगों के लिए नियत (रिजर्व) किया गया था। लेकिन भारत सरकार ने एस डी श्रीवास्तव समिति के सुझावानुसार जनवरी 1986 में 250 मदों को रिजर्व सूची से हटाने का फैसला किया। इसका कारण यह है कि कई वर्षों तक इन उद्योगों का विकास नहीं हो पाया—मात्र की मात्रा व किस्म आवश्यकतानुसार नहीं बन पायी। इनमें उच्च टेक्नोलोजी व ऊँची पूँजी की आवश्यकता के कारण पर्याप्त विनियोग नहीं किया जा सका। ऐसी स्थिति में इन क्षेत्रों में बड़े उद्योगों का प्रवेश हो गया जिससे इनको लघु उद्योगों की रिजर्व सूची से हटाना आवश्यक हो गया।

3 दुर्लभ कच्चे माल का आवंटन—सरकार स्वदेशी व विदेशी कच्चे माल के आवंटन में लघु उद्योगों के हितों का ध्यान रखने लगी है। पिछले वर्षों में भारत

सरकार की आयात-निर्यात नीति में लघु इकाइयों को आयात लाइसेन्स देने में अधिक उदारता बरती गयी है। लघु इकाइयों के लिए कच्चे माल, मशीनरी व कलपुर्जों के आयात की व्यवस्था बढ़ायी गयी है।

4. वित्तीय सहायता—लघु उद्योगो को विभिन्न प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए निम्नलिखित सरकारी व संस्थागत एजेन्सियाँ हैं—

(अ) जोखिम पूँजी (Risk Capital) :

(i) राज्य वित्त निगम

(ii) लघु उद्योग निगम

(आ) दीर्घकालीन व मध्यमकालीन कर्ज—

(i) उद्योगों के राज्य-निदेशालय (उद्योगों को राजकीय सहायता अधिनियम के अन्तर्गत)

(इ) अल्पकालीन कार्यशील पूँजी—व्यापारिक बैंक।

(ई) किश्तों की स्कीम (Hire-Purchase Scheme)—

(i) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम

(ii) लघु उद्योग विकास निगम

जोखिम पूँजी—राज्य वित्त निगम उद्यमकर्त्ताओ, विशेषतया नये तकनीकी उद्यमकर्त्ताओ व पिछड़े क्षेत्रो मे प्रोजेक्ट स्थापित करने वाले उद्यमकर्त्ताओ को सीड पूँजी (seed capital) के रूप मे सहायता प्रदान करते हैं। यह सहायता भारतीय औद्योगिक विकास की एक स्कीम के अन्तर्गत दी जाती है। यह शेयर पूँजी उदार शर्तों वाले कर्ज के रूप मे होती है और उस अन्तर को पूरा करती है जो संस्थापक (Promoter) के प्रत्याशित अंशदान (expected contribution) व उसके वास्तविक अंशदान (actual contribution) के बीच होता है। सभी प्रकार के उपक्रम जैसे निजी स्वामित्व वाले, साझेदारी, निजी व पब्लिक लिमिटेड कम्पनी वाले इसका लाभ उठा सकते हैं।

सीड/मार्जिन मुद्रा स्कीम—अर्द्ध-शहरी व ग्रामीण क्षेत्रो मे लघु उद्योगो को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य सरकारें जिला उद्योग केन्द्रो के कार्यक्रम के अन्तर्गत कर्ज के रूप में सीड/मार्जिन मुद्रा की सहायता देती है। यह स्कीम 50 हजार से कम आबादी वाले क्षेत्रो के लिए है। जिन लघु इकाइयों की प्लान्ट व मशीनरी की लागत एक लाख रु से नीची होगी, उनको स्थिर पूँजी का 10% तक 'मार्जिन मनी' के रूप मे दिया जाता है।

लघु उद्योगो को सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको से भी वित्तीय सहायता मिलती है। इनके लिए बैंक वित्त की बकाया राशि जून, 1969 मे 251 करोड रु. से बढ़कर जून 1987 के अन्त मे 9309 करोड रु हो गई। जून 1987 मे लघु उद्योगो के

लिए बकाया राशि प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को दिये गये कुल कर्ज (25500 करोड़ रु.) का 36·5% थी।[1]

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम किश्तों पर मशीनें उपलब्ध कराता है। जुलाई, 1960 से रिजर्व बैंक ने साख गारन्टी स्कीम लागू की है। इस स्कीम के अन्तर्गत व्यापारिक बैंक, राज्य वित्त निगम व सहकारी बैंक लघु इकाइयों को कर्ज देते हैं, लेकिन कर्ज की जोखिम में रिजर्व बैंक का भी हिस्सा होता है।

लघु उद्योग विकास कोष (Small Industries Development Fund) (SIDF) की स्थापना—देश में लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए भारतीय औद्योगिक बैंक ने 20 मई, 1986 को एक लघु उद्योग विकास कोष (SIDF) की स्थापना की है। इस कोष में काफी राशि होगी जब कि इसकी मुख्यतः भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के 100 करोड़ रुपयों के जनरल फंड से की गई है। इस कोष से लघु उद्योगों की इकाइयों को विकास, विस्तार, विविधीकरण, आधुनिकीकरण व पुनर्स्थापना के लिए कर्ज दिये जायेंगे। वित्तीय सहायता राज्य वित्त निगमों, राज्य औद्योगिक विकास निगमों, व्यावसायिक बैंकों व अन्य संस्थाओं के माध्यम से दी जायगी। इस कोष से लघु उद्योगों के विकास के लिए दूरगामी परिणाम सामने आयेंगे।

एक राष्ट्रीय-इक्विटी कोष (NEF) (भारत सरकार की साझेदारी में) स्थापित किया गया है जिसका उद्देश्य रुग्ण लघु पैमाने की इकाइयों के पुनर्स्थापन के लिए इक्विटी-किस्म की सहायता देना है। यह प्रति प्रोजेक्ट 75 हजार रु. तक की सहायता स्वीकृत करेगा जिस पर सर्विस-चार्ज 1% लिया जायगा। यह बैंकों को पुनर्वित्त की सहायता देगा जो उद्योग को कार्यशील पूँजी व अवधि-कर्ज की सुविधा प्रदान करेंगे।

लघु उद्योग विकास कोष (SIDF) व राष्ट्रीय इक्विटी-कोष (NEF) दोनों का संचालन भारतीय लघु-उद्योग विकास बैंक (SIDBI) को सौंपा गया है जो IDBI का सहायक (subsidiary) होगा।

5 इन्जीनियरी स्नातकों, भूतपूर्व सुरक्षा सेवा कर्मचारियों, विज्ञान-स्नातकों आदि को लघु इकाइयाँ स्थापित करने के लिए जो सुविधाएँ दी जाती हैं वे पिछड़े क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों व जन-जातियों के व्यक्तियों को भी दी गई हैं।

6. औद्योगिक बस्तियों के कार्यक्रम द्वारा लघु इकाइयों को लाभ पहुँचाया जाता है।

---

1. Economic Survey 1988-89, p. S-54.

7. सरकार माल की खरीद में लघु इकाइयों को प्राथमिकता देती है। आजकल कई प्रकार की वस्तुएँ लघु इकाइयों से खरीदी जाती हैं ताकि इनकी बिक्री की समस्या काफी सीमा तक हल हो सके।

8 पिछड़े क्षेत्रों में विकास के लिए विशेष रियायतें—1 मार्च, 1973 से सरकार ने पिछड़े क्षेत्र में स्थापित किए जाने वाले उद्योगों के लिए अनुदान (subsidy) की राशि स्थिर पूँजी-निवेश का 15% या 15 लाख रुपये, जो भी कम हो निर्धारित की गई थी। 1971 से परिवहन-अनुदान (transport-subsidy) की स्कीम लागू की गई थी जिसमें पिछड़े क्षेत्रों में कच्चे माल व निर्मित माल की ढुलाई पर परिवहन लागत का 50% अनुदान के रूप में देने की व्यवस्था की गई थी जिसे सितम्बर 1983 में बढ़ाकर 75 % कर दिया गया। इस प्रकार पिछड़े जिलों में लघु व मध्यम इकाइयों के विकास के लिए सब्सिडी की व्यवस्था की गयी है।

9. सरकार निर्यात बढ़ाने में भी लघु इकाइयों की मदद करती है।

10 आजकल सहायक उद्योगों (ancillary industries) के रूप में लघु उद्योगों के विकास पर विशेष रूप से बल दिया जा रहा है। इस कार्यक्रम में लघु उद्योग बड़े उद्योगों के लिए आवश्यक साज-सामान बनाते हैं जिससे दोनों के उत्पादन में प्रभावपूर्ण ताल-मेल व समन्वय बैठाया जा सकता है। सहायक उद्योगों का विकास विशेषतया निम्न क्षेत्रों में किया गया है। सचार, इलेक्ट्रानिक्स व मोटर-गाड़िया, भारी इन्जीनियरिंग तथा कृषि-आधारित उद्योगों। इस क्षेत्र में आगामी वर्षों में अधिक प्रगति की आशा है।

11 सरकार ने लघु उद्योगों के विकास के लिए जिला-उद्योग केन्द्रों (District Industries Centres) को पुनर्संगठित किया है। अब तक स्वीकृत DICs की संख्या 419 हो गई है जो 428 जिलों में फैले हुए हैं। इनमें कई लघु औद्योगिक इकाइयां स्थापित की गई हैं और बहुत से लोगों को रोजगार दिया जा सका है। DICs के माध्यम से साख की व्यवस्था भी की गई है।

12 लघु उद्योगों के लिए चुने हुए क्षेत्रों में टेक्नोलोजी को उन्नत (अपग्रेड) करने के नये कार्यक्रम—मई 1985 में श्री एस. एस पाटिल की अध्यक्षता में नियुक्त एक कार्यकारी दल ने सुझाव दिया था कि इन इकाइयों को साख की सुविधा देने के लिए एक विशेष संगठन बनाया जाना चाहिए। आजकल मशीनों की लागत बढ़ गई है। इसलिए समिति ने सुझाव दिया कि लघु इकाइयों में संयंत्र व मशीनरी में विनियोग की सीमा 50 लाख रु. तथा सहायक इकाइयों के लिए 75 लाख रु. कर देनी चाहिए। इनके लिए टेक्नोलोजी का आयात करने की सुविधा भी बढ़ायी जानी चाहिए।

योजनाकाल में कुटीर व लघु उद्योगों की प्रगति

योजनाकाल में ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र में किये गये व्यय की प्रगति इस प्रकार रही है—

ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की राशियां[1]

(करोड़ रुपयों में)

प्रथम पचवर्षीय योजना	42
द्वितीय पचवर्षीय योजना	187
तृतीय पचवर्षीय योजना	241
तीन वार्षिक योजनाएं (1966-69)	126
चतुर्थ पचवर्षीय योजना	243
पचम पचवर्षीय योजना (1974-79)	593
1979-80	256
छठी पचवर्षीय योजना	1945
सातवीं पचवर्षीय योजना (1985-90)	2753 (लक्ष्य)

चतुर्थ व पचम पचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र के कुल परिव्यय का लगभग 1·5% व्यय किया गया। छठी योजना में यह 1·8% रहा एवं सातवीं पचवर्षीय योजना में यह 1·6% प्रस्तावित किया गया है।

1951-61 की अवधि में अम्बर चरखा बनाने व वितरण करने का कार्यक्रम रखा गया था। कपड़े की कुछ किस्मों का उत्पादन हाथकरघा उद्योग एवं कृषि औजारों की किस्मों का उत्पादन लघु इकाइयों के लिए सुरक्षित किया गया था। वनस्पति तेल, चावलों की मिलों, जूतों, दियासलाई आदि का उत्पादन बड़े पैमाने पर बढ़ाने से रोका गया था। साइकिलों व सिलाई की मशीनों में बड़े व छोटे पैमाने के उत्पादन के अलग-अलग लक्ष्य निर्धारित किये गये थे।

1973-74 में खादी का उत्पादन 56 मिलियन मीटर से बढ़कर 1987-88 में 119 मिलियन मीटर हो गया तथा इसी अवधि में हाथकरघे का 2,100 मि. मीटर से बढ़कर 4000 मि. मीटर तथा शक्ति करघे का 2,400 मि. मीटर से बढ़कर 3669 मि. मीटर हो गया। इस प्रकार योजना काल में विकेन्द्रित क्षेत्र में वस्त्र का उत्पादन काफी बढ़ा है। रेशम का उत्पादन 1973-74 में 29 लाख किलोग्राम कच्चे रेशम से बढ़कर 1987-88 में 95·3 लाख किलोग्राम हो

1 Economic Survey 1988-89 pp. S—40 and S—41 (तृतीय योजना व बाद की अवधि के लिए)

गया।[1] पिछले पन्द्रह वर्षों में लघु पैमाने के क्षेत्र में कई नई मदें शामिल की गयी हैं और लघु उद्योगो में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं जैसे जूते व अन्य चमड़े का सामान, साइकिलें व पुर्जे, कपड़ा सीने की मशीनें व पुर्जे, बिजली के पंखे व मोटरें, मशीन टूल्स व हाथ औजार, पेन्ट व वार्निश और साबुन आदि का उत्पादन काफी बढ़ा है।

सप्लाई व बिक्री के केन्द्रीय निदेशालय ने लघु उद्योगो के माल की खरीद काफी बढ़ायी है। दस्तकारी के माल का निर्यात 1973-74 में 195 करोड़ रु से बढ़कर 1987-88 मे 3253 करोड़ रु हो गया है जिसका निर्यातो मे प्रथम स्थान है। देश मे औद्योगिक सहकारी समितियो का निर्माण किया गया है ताकि लघु उद्योगो का विकास किया जा सके।

ग्रामीण उद्योगो से सम्बन्धित प्रोजेक्टों के कार्यक्रमों की प्रगति (Progress under Rural Industries Projects (RIP) Programme)

देश के विभिन्न भागो में ग्रामीण उद्योगो को पनपाने के लिए 1964 में विशेष कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये थे। शुरू मे 45 प्रोजेक्ट-क्षेत्रो का चुनाव किया गया था तथा 1965 मे 4 अतिरिक्त क्षेत्र शामिल किये गये। इस प्रकार 1965–66 मे प्रोजेक्टो की सख्या 49 हो गई थी। मार्च, 1974 तक इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 11 प्रोजेक्ट और आ चुके थे। इनमे 48 हजार औद्योगिक इकाइयाँ थी और 2 07 लाख व्यक्तियो को काम दिया गया एव 1973-74 मे इनमे 70·3 करोड रुपयो के माल का उत्पादन किया गया। ये प्रोजेक्ट ग्रामीण व पिछड़े क्षेत्रो के विकास मे मदद करते है। ये केन्द्र द्वारा चलाये गये हैं। इनके लिए राज्य सरकारो को शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता दी गई है।

ग्रामीण उद्योग प्रोजेक्टो से निजी बचत के सग्रह व निजी विनियोग को प्रोत्साहन मिला है और रोजगार मे वृद्धि हुई है। इनका कार्य लघु उद्योग विकास सगठन (Small Industries Development Organisation (SIDO) को हस्तान्तरित किया गया है जिसमे विस्तार सेवाओ, कच्चे माल के आवटन व साख की सुविधाओ पर अधिक बल दिया गया है। ग्रामीण उद्योग-प्रोजेक्टो ने जिन उद्योगो को विशेष रूप से मदद दी है वे निम्नलिखित है नारियल के रेशे से वस्तुएँ व चटाइया बनाना, कताई व बुनाई, गुड बनाना, तेल निकालना, बर्तन बनाना, हाथकरघा, कृषि के औजार बनाना, बेंत का फर्नीचर बनाना, सिंचाई व बहाव के लिए स्पन-पाइप बनाना आदि। इस प्रकार के कार्यक्रमो पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

---

1 Annual Plan, 1988–89, (Planning Commission), p 203

पिछले पन्द्रह वर्षों में लघु उद्योगों के विकास के सम्बन्ध में प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार रखे गये हैं : लघु उद्योगों की उत्पादन-विधियों में उत्तरोत्तर सुधार करना जिससे वे उत्तम किस्म की वस्तुएँ बना सकें एवं सबल व कार्यकुशल स्तर प्राप्त कर सकें। उद्योगों के विकेन्द्रीकरण व फैलाव को प्रोत्साहन देना और कृषि-आधारित उद्योगों का विकास करना। अशोक मेहता-समिति ने इनके सम्बन्ध में सब्सिडी के तत्व को कम करने पर बल दिया था। मेहता समिति ने एक महत्वपूर्ण सिफारिश यह की थी कि खादी सहित प्रत्येक परम्परागत उद्योग में तकनीकी सुधार करने के लिए एक सप्तवर्षीय कार्यक्रम अपनाया जाना चाहिए ताकि वे सक्षम स्तर (viable level) पर आ सकें। समिति ने सिफारिश की थी कि भविष्य में परम्परागत अम्बर खादी का अतिरिक्त उत्पादन आत्मनिर्भरता के आधार पर होना चाहिए और तकनीकी परिवर्तन व शक्ति का उपयोग करने की छूट होनी चाहिए। गांवों में कृषि-औजारों को सुधारने के लिए छोटे वर्कशाप स्थापित किये जाने चाहिए। औद्योगिक बस्तियों के सम्बन्ध में पुराने कार्यक्रमों को सुदृढ़ बनाने की नीति सुझाई गई है। यह निश्चय किया गया है कि साधारणतः शहरों व बड़े नगरों के समीप कोई नयी औद्योगिक बस्तियां नहीं बसायी जायेंगी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985-90 में ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास के मुख्य लक्ष्य व विकास-सम्बन्धी नीति व दिशाएँ

सातवीं योजना में VSI क्षेत्र के विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में लगभग 2,753 करोड़ रुपये के व्यय का प्रावधान किया गया है, जबकि छठी योजना में वास्तविक व्यय का स्तर 1,945 करोड़ रु. रहा था।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है सातवीं योजना में ग्रामीण व लघु उद्योग क्षेत्र (VSI sector) में उत्पादन 1984-85 में 65,730 करोड़ रु. से बढ़ाकर 1989-90 में 100100 करोड़ रुपये (एक लाख करोड़ रुपये से अधिक) रोजगार की मात्रा 3.15 करोड़ व्यक्तियों से बढ़ाकर 4 करोड़ व्यक्ति तथा निर्यात की राशि 4 558 करोड़ रुपये में बढ़ाकर 7,444 करोड़ रुपये तक पहुँचाने के लक्ष्य रखे गये हैं।

इस प्रकार उत्पादन में वार्षिक वृद्धि-दर 8.8% तथा रोजगार में वार्षिक वृद्धि-दर 10.2% निर्धारित की गई है।

सातवीं योजना में ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास की व्यूह-रचना या रणनीति निम्न प्रकार की रखी गई है—

1. आधुनिकीकरण करना तथा टेक्नोलोजी को उन्नत करना ताकि उत्पादकता में वृद्धि की जा सके, माल की किस्म सुधारी जा सके, लागतें कम की जा सकें तथा वस्तु मिश्रण (Product mix) बदला जा सके।

2 वर्तमान क्षमताओं का अधिकतम उपयोग करना।

3. घरेलू बाजार मे VSI क्षेत्र का अश बढाना एव इसके लिए प्रचार व बिक्री सम्बन्धी सहायता देना।

4 सहायक इकाइयो को सुदृढ करना।

5 उत्पादन म विशिष्टीकरण लाना तथा निर्यातोन्मुख उत्पादन को बढावा देना।

6 स्वरोजगार बढाने के लिए दक्षता-निर्माण को बढावा देना तथा

7 श्रमिकों के कल्याण, रोजगार की सुरक्षा व बेहतर काम की दशाओं पर अधिक ध्यान देना।

उपर्युक्त व्यूह-रचना या रणनीति को क्रियान्वित करने के लिए निम्न उपाय सुझाये गय हैं—

(i) ग्रामीण व लघु उद्योगो के तीव्र विकास के लिए कर-सम्बन्धी व्यवस्था को अधिक वैज्ञानिक व तर्कसगत बनाना,

(ii) आधारभूत ढाचे (इन्फ्रास्ट्रक्चर) को मजबूत करना,

(iii) प्रबन्ध को आधुनिक विधिया को अपनाना

(iv) उपयुक्त टेक्नोलोजी का विकास व विस्तार करना ताकि काम की नीरसता कम की जा सके व सब्सिडी पर निर्भरता घटाई जा सके,

(v) मजदूरी मे सुधार करना,

(vi) भारत व विदेशो मे बिक्री की व्यवस्था मे सुधार करना,

(vii) यार्न, लोहे व इस्पात, कोयला व कोक, पेट्रो-रसायन व पेट्रोल-पदार्थों की सप्लाई बढाना,

(viii) अति लघु (tiny) इकाइयो को विशेष सुविधाएँ (ix) सहायक मदो को उप-ठेका (sub-contract) पद्धति के आधार पर उत्पादित करना। ग्रामीण उद्योगो व दस्तकारियो के लिए पृथक आयोगों की स्थापना की जाँच की जायगी।

(x) कारीगरो के लाभ के लिए भवन व वर्कशेड की मिली-जुली सुविधाओ तथा बचत-कोष-स्कीम को अपनाने पर जोर दिया जायगा।

आशा है इन उपायो को अपनाने से VSI क्षेत्र उत्पादन, रोजगार व निर्यात वृद्धि के लक्ष्यों को प्राप्त करने मे अधिक सफल हो सकेगा तथा भारतीय अर्थव्यवस्था मे इसका स्थान काफी सुदृढ हो सकेगा।

प्रश्न

1. भारतीय औद्योगिक ढांचे मे कुटीर एव लघु स्तरीय उद्योगो के महत्व का परीक्षण कीजिए। कुटीर एव लघुस्तरीय उद्योगो की वर्तमान वित्त व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिये।

(Raj IIyr. T D C , 1987)

2. 1951 के पश्चात् कुटीर एवं लघु उद्योगों की प्रगति का वर्णन कीजिए। वर्तमान में इनकी क्या समस्यायें हैं ?

(Raj. IIyr. T.D.C., 1984)

3. भारत की अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों के महत्व को समझाइये और इन उद्योगों की मुख्य समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

(Raj. IIyr. T.D.C.,1981)

4. भारतीय अर्थव्यवस्था में कुटीर तथा लघु उद्योगों के महत्व की विवेचना कीजिए। इनको प्रोत्साहन देने के लिए सरकार द्वारा हाल के वर्षों में अपनाये गये विभिन्न उपायों का वर्णन कीजिए।

(Raj. IIyr. T.D.C., 1982, 1983 and 1985)

5. भारतीय अर्थव्यवस्था में कुटीर एवं लघु उद्योगों का क्या महत्व है ? इन उद्योगों की समस्याओं के समाधान के लिए क्या किया गया है ?

(Raj IIyr. T.DC., 1989)

9

औद्योगिक वित्त

(Industrial Finance)

कृषि की भाँति उद्योगो के लिए भी एक उचित वित्त-व्यवस्था की आवश्यकता होती है। उद्योगो को स्थापित करते समय, इनको चलाने के लिए तथा इनमे समय-समय पर विस्तार करने तथा आधुनिकीकरण करने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। उद्योगो के लिए पूँजी की आवश्यकता को साधारणतया दो भागो मे विभाजित किया जाता है—

1. अचल या स्थिर पूँजी (Fixed or Block Capital)—कोई भी नया उद्योग प्रारम्भ करते समय भूमि, इमारत, मशीनें तथा अन्य साज-सामान खरीदने के लिए स्थिर पूँजी की आवश्यकता होती है। चालू उद्योगो को भी आवश्यक परिवर्तन, आधुनिकीकरण व विस्तार कार्यों के लिए स्थिर पूँजी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की पूँजी को अचल या स्थिर पूँजी कहते है।

2. चल पूँजी या कार्यशील पूँजी (Working Capital)—जो पूँजी कच्चा माल खरीदने, मजदूरी चुकाने माल की बिक्री के सम्बन्ध मे आवश्यक विज्ञापन आदि करने एव अन्य दैनिक कार्यों के लिए आवश्यक होती है, उसे चल या कार्यशील पूँजी कहते हैं। औद्योगिक वित्त मे हम चल एवं अचल दोनो प्रकार की पूँजी की पूर्ति के साधनो का अध्ययन करते हैं। प्रायः यह अध्ययन दो भागो मे बाँटकर किया जाता है : (1) बडे पैमाने के उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताएँ। (2) लघु एव मध्यम पैमाने के उद्योगो की वित्तीय आवश्यकताएँ।

बड़े पैमाने के उद्योगों के लिए पूँजी के साधन

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक बडे पैमाने के उद्योगो के लिए पूँजी की सुविधाएँ बहुत कम थी। अप्रैल 1970 मे मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली समाप्त करने से पूर्व उद्योगो को वित्त प्रदान करने मे मैनेजिंग एजेन्टो का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता था। मैनेजिंग एजेन्सिया निजी व्यक्तियो या साझेदारी फर्मों या सयुक्त पूँजी वाली कम्पनियो के अधिकार मे होती थी, जो अपने नियन्त्रण वाली कम्पनी की स्थापना

व वित्तीय व्यवस्था करती थीं तथा उसके प्रबन्ध का कार्य भी देखती थी। ये एजेन्सियाँ स्वयं शेयर व ऋण-पत्र खरीदती थीं तथा मित्रों व बैंकों से पूँजी की व्यवस्था करती थीं। लेकिन इनमें कई प्रकार के गम्भीर दोष उत्पन्न होने के कारण सरकार को इनके स्थान पर नये संगठनों की स्थापना करनी पड़ी। पिछले चार दशकों में भारत में कई महत्वपूर्ण औद्योगिक विकास एवं वित्त निगम स्थापित किये गये हैं जिन्होंने उद्योगों के लिए वित्त की कमी को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया है।

वर्तमान समय में भारत में बड़े पैमाने के उद्योगों के लिए वित्तीय साधनों के निम्न स्रोत पाये जाते हैं—

1 शेयर (Shares) व ऋण-पत्र (Debentures)

2 सार्वजनिक जमाएँ (Public Deposits)

3 व्यापारिक बैंक (Commercial Banks)

4 सार्वजनिक वित्तीय संस्थाएँ (Public Financial Institutions)

(i) भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India)

(ii) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India) (IFCI)

(iii) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (The National Industrial Development Corporation) (NIDC)

(iv) भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम लिमिटेड (The Industrial Credit and Investment Corporation of India Ltd.) (ICICI)

(v) भारतीय यूनिट ट्रस्ट (The Unit Trust of India) (UTI)

(vi) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India) (IDBI)

(vii) भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम लिमिटेड (The Industrial Reconstruction Corporation of India Ltd) (IRCI) अब भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक में परिवर्तित)

(viii) भारतीय सामान्य बीमा निगम तथा इसकी सहायक इकाइयाँ (The General Insurance Corporation of India (GIC) and its subsidiaries)

(ix) आवास विकास वित्त निगम लिमिटेड (Housing Development Finance Corporation Ltd) (HDFC)

(x) भारतीय निर्यात आयात बैंक (The Export Import Bank of India) (EXIM Bank)

नीचे इनका क्रमशः वर्णन किया जाता है।

(1) शेयर व ऋण पत्र—एक कम्पनी कई तरह के शेयर निकाल सकती है, जैसे साधारण शेयर व अधिमान शेयर (Preference Shares)। साधारण शेयर 'इक्विटी' (equity) भी कहलाते है। जो नये शेयर कम्पनी के वर्तमान शेयर होल्डरो को बेचे जाते है उन्हे राइट्स शेयर (Rights Shares) कहते है। कम्पनिया बोनस शेयर भी निर्गमित करती है जो वर्तमान शेयरहोल्डरो को कम्पनी के संचित या इकट्ठे किये गये पूर्व मुनाफो मे से जारी किये जाते है। इससे कम्पनी की रिजर्व राशि पूंजी मे बदल जाती है। विभिन्न प्रकार के शेयर विनियोगकर्ताओ की विभिन्न प्रकृति तथा विभिन्न आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर निकाले जाते है। उदाहरण के लिए, अधिमान शेयरधारी एक निश्चित लाभांश सबसे पहले प्राप्त करते है और पूंजी वापस करते समय भी पहले इनका अधिकार होता है। साधारण शेयरहोल्डरो को लाभ मे हिस्सा इनके बाद मिलता है तथा इनका हिस्सा कम्पनी के लाभ की मात्रा के साथ घटता-बढता रहता है।

पूंजी-बाजार मे शेयरो का क्रय-विक्रय होता रहता है। भारत मे 1947 से 1962 तक का समय पूंजी-बाजार का स्वर्ण-युग कहलाता है, क्योकि इस अवधि मे शेयर-पूंजी का बडा प्रचलन रहा था। 1962 के बाद कई वर्षों तक पूंजी-बाजार मे गिरावट आई। 1985–86 के केन्द्रीय बजट के बाद शेयर बाजार मे काफी प्रगति हुई थी। प्रत्यक्ष करो मे कमी व आर्थिक नियन्त्रणो मे ढील देने के अनुकूल परिणाम सामने आये थे एव शेयर बाजार लोगो के आकर्षण का केन्द्र बन गया तथा पूंजी-निर्गम मे अत्यधिक वृद्धि हुई।

पूंजी निर्गम (Capital issues) **मे साधारण व अधिमान शेयर, ऋण-पत्र व राइट्स शेयर्स शामिल होते है।** 1986-87 मे पूंजी-बाजार का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। गैर-सरकारी पब्लिक व निजी लि. कम्पनियो के लिए इक्विटी व अधिमान शेयर की निर्गमित राशि लगभग 1600 करोड रु., ऋण-पत्रो की राशि 2614 करोड रु. व बोनस शेयरो की 303 करोड रु रही। इस प्रकार कुल पूंजी-निर्गमन (Capital issues) 4517 करोड रु का हुआ, जो पिछले वर्षो मे सर्वाधिक था। 1987-88 मे यह घट कर 2423 करोड रु. पर आ गया। इस वर्ष सबसे अधिक गिरावट ऋण-पत्रो की बिक्री मे रही। ये 687 करोड रु तक ही पहुंच पाये जब कि पिछले वर्ष 2614 करोड रु तक पहुंच गये थे।[1] 1985-86 मे नेशनल थर्मल पावर निगम, इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज व ग्रामीण विद्युत निगम ने (सार्वजनिक क्षेत्र मे) बाड बेचकर लगभग 350 करोड रु. एकत्र किये थे। इस प्रकार पूंजी बाजार का उपयोग सार्वजनिक क्षेत्र के द्वारा भी किया जाने लगा है।

---

1. Report on Currency and Finance, 1987-88, Vol I, p. 317.

ऋणपत्र—ऋणपत्रों को बेचकर पूंजी इकट्ठी करना भी कम्पनियों की पूंजी का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। इन पर कम्पनी को ब्याज देना पड़ता है। ऋण-पत्रधारी कम्पनी के ऋणदाता होते हैं। जो विनियोगकर्त्ता जोखिम से बचना चाहते हैं लेकिन साथ में ब्याज की एक निश्चित राशि से ही सन्तुष्ट रहना चाहते हैं उनके लिए ऋणपत्र बहुत सुविधाजनक व आकर्षक होते हैं। प्रायः ऋण-पत्रों के पीछे कम्पनी की किसी परिसम्पत्ति की जमानत होती है जिसे आवश्यकता पड़ने पर बेचकर ऋणपत्रों का भुगतान किया जा सकता है। भारत में भूतकाल में कई कारणों से ऋणपत्र लोकप्रिय नहीं हुए। औद्योगिक कम्पनियों की असफलता से जनता में इनके प्रति विश्वास नहीं जम पाया। लेकिन पिछले वर्षों में ऋणपत्रों की लोकप्रियता बढ़ी और विशेषतया परिवर्तनीय ऋणपत्रों (Convertible debentures) को भारी मात्रा में खरीदा गया। ये एक अवधि के बाद कम्पनी के शेयरों में परिवर्तित किये जा सकते हैं। इसलिए विनियोगकर्त्ताओं ने ऋणपत्रों की खरीद में अधिक रुचि ली है। इससे कम्पनियों को आवश्यक विस्तार-कार्यों के लिए भी पूंजी उपलब्ध हो सकी है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है 1987-88 में ऋण-पत्रों की खरीद में भारी गिरावट आयी जबकि 1986-87 में ऋण-पत्रों की बिक्री अधिक होने से पूंजी निर्गम में उल्लेखनीय वृद्धि हुई थी। ऋणपत्रों व बांडों का उपयोग वित्तीय साधन जुटाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के द्वारा भी किया गया है।

(2) सार्वजनिक जमाएँ—भारत में व्यावसायिक बैंकों के विकास से पूर्व बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास हुआ। अतः जनता अपनी बचत कारखानों में जमा करना उचित मानती थी। अहमदाबाद व बम्बई में सूती कपड़े की मिलों में इस प्रकार की जमा का काफी प्रचार देखा गया है। इस जमा का प्रयोग बहुधा कार्यशील पूंजी के रूप में किया जाता है। जमा पर ब्याज मिलता है। उचित समय पर सूचना देकर जमा की रकम वापस निकाली जा सकती है। यह साधन जोखिम से भरा हुआ है, क्योंकि जनता का कम्पनी में विश्वास डिग जाने पर वह अपनी जमा-राशि की वापस मांग करती है जिससे कम्पनी की वित्तीय स्थिति डावांडोल हो सकती है। इस प्रकार की सार्वजनिक जमाओं को 'अच्छे मौसम का मित्र' (fair weather friend) कहा गया है। अतः यह साधन सुरक्षित नहीं माना जा सकता। लेकिन कम्पनियाँ आज भी पूंजी एकत्र करने में इस साधन का उपयोग करती हैं। 1971-72 में संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों (गैर-वित्तीय) के पास सार्वजनिक जमाओं की राशि 481 करोड़ रुपया थी जो बढ़कर 1982-83 में 6764 करोड़ रु. हो गई थी। इससे स्पष्ट होता है कि आज भी औद्योगिक वित्त में इसका महत्वपूर्ण स्थान पाया जाता है। इन पर ब्याज की दर प्रायः 15% होती है तथा अधिकतम अवधि तीन वर्ष की होती है।

लिए आवश्यक स्तर (नॉर्म) निर्धारित किये थे ताकि वे माल या इन्वेण्टरी की मात्रा अनावश्यक रूप से अधिक न रखें। पहले वे ज्यादा मात्रा में माल रख लेते थे जिससे बैंक-साख का सदुपयोग नहीं हो पाता था।

यह आशा की गई थी कि टण्डन समिति की सिफारिशों को लागू करने से बैंक-साख का अच्छा नियोजन तथा उत्तम उपयोग हो सकेगा।

रिजर्व बैंक ने नकद-साख प्रणाली की जांच करने के लिए के बी चोरे (K B Chore) की अध्यक्षता में एक कार्यकारी दल नियुक्त किया था जिसने अपनी रिपोर्ट अगस्त, 1979 में प्रस्तुत की थी। इसने उधार की निम्न प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया था :—

(i) उधार के विभिन्न रूप—नकद-साख, ओवरड्राफ्ट, ऋण व बिल-प्रणाली साथ-साथ प्रचलित रहेंगे, लेकिन कुल उधार में नकद-साख का अंश कम किया जायगा।

(ii) एक इकाई अपनी कुल कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं के लिए दीर्घकालीन स्रोतों (स्वय के कोषों व अवधि-कर्जों) पर अधिक निर्भर करेगी। बड़ी औद्योगिक इकाइयां बैंक से कम मात्रा में उधार लेंगी। इस प्रकार वे स्वय के साधनों का ज्यादा उपयोग करेंगी।

(iii) कोषों की अल्पकालीन अप्रत्याशित मांग की पूर्ति के लिए बैंकों का सहारा लिया जायगा जिसकी लागत ऊँची होगी।

(iv) उधार लेने वाले अपनी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में बैंकों को त्रैमासिक सूचना भेजेंगे ताकि नकद-साख की सीमाओं का ठीक ढंग से उपयोग हो सके।

(v) कच्चे माल की एवज में नकद-साख की सीमा का एक अंश बिलों के माध्यम से दिया जायगा जिससे कच्चे माल की खरीद पर इन्वेण्टरी कंट्रोल ज्यादा अच्छा हो सकेगा। इस प्रकार चोरे समिति ने नकद साख प्रणाली के बजाय बिल-प्रणाली को अपनाने पर ज्यादा जोर दिया था।

यह आशा की गई थी कि इन व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए अल्पकालीन ऋणों के उपयोग को प्रोत्साहन मिलेगा, बिल-वित्त का उपयोग बढ़ेगा तथा कुछ सीमा तक नकद-साख का उपयोग घटेगा। व्यावसायिक क्षेत्रों में चोरे कार्यकारी दल के सुझावों को काफी कठोर माना गया और इनको उदार बनाने की राय दी गई।

पिछले वर्षों में उद्योगों की वित्तीय व्यवस्था में बैंकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 1987-88 के अन्त में (अप्रैल-मार्च) उद्योगों (लघु, मध्यम व बड़े) को बैंकों द्वारा दी गई सकल साख की बकाया राशि (outstandings) 36,309 करोड़ रु रही जो पिछले वर्ष से 5216 करोड रु. अधिक थी। मार्च, 1988 के

अन्त में उद्योगों को दी गई साख बकाया कुल बैंक साख का 51·6% हो गई थी, जबकि पिछले वर्ष यह 49 7% रही थी। कर्ज की ज्यादा राशि बड़ी व मध्यम औद्योगिक इकाइयों के लिए रही है तथा लघु इकाइयों के लिए इनसे कम रही है, हालांकि यह पिछले वर्षों में काफी तेजी से बढ़ी है। कर्ज की अधिक बकाया राशि इन्जीनियरी, सूती वस्त्र व रसायन उद्योगों के लिए पायी गई है। बैंकों का योगदान औद्योगिक वित्त के क्षेत्र में काफी बढ़ रहा है तथा भविष्य में इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि बैंक उद्योगों की वांछित वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति अवश्य कर सकें। लेकिन इस सम्बन्ध में कुछ मानक (नार्म) अवश्य निर्धारित हों तथा उनका पालन भी किया जाय और इन्वेण्टरी (माल) की मात्रा जरूरत से ज्यादा न रखी जाय, क्योंकि ऐसा करने से बैंक के कोषों का दुरुपयोग होने लगता है जिसे टाला जाना चाहिए। पिछले वर्षों में उद्योगों के लिए बैंक ऋण की राशि औद्योगिक उत्पादन की तुलना में ज्यादा तेज गति से बढ़ी है। फिर भी उद्यमकर्त्ता कोषों की कमी की शिकायत करते हुए पाये जाते हैं। भविष्य में नकद-साख प्रणाली के बजाय बिल-प्रणाली का अधिक उपयोग किया जाना चाहिए। बिल-प्रणाली यू. के. व अमेरिका में अधिक लोकप्रिय रही है।

(4) सार्वजनिक वित्तीय संस्थाएँ

(Public Financial Institutions)

(1) भारतीय जीवन बीमा निगम

(LIC)

भारतीय जीवन बीमा निगम उद्योगों के शेयर व ऋणपत्र खरीदता है। यह उन्हें मध्यमकालीन व दीर्घकालीन ऋणों की सुविधा देता है। यह शेयरों व ऋणपत्रों का अभिगोपन (Underwriting) भी करता है। यह औद्योगिक वित्त-निगम व राज्य वित्त निगमों की पूँजी में हिस्सा लेकर परोक्ष रूप से औद्योगिक वित्त व्यवस्था को सुदृढ़ करता है। इसके कोषों का 50% सरकारी व अन्य स्वीकृत प्रतिभूतियों में लगाना होता है। शेष राशि 'स्वीकृत विनियोगों' में लगानी होती है जिसमें कम्पनियों के शेयर व ऋण-पत्र भी शामिल होते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीयकरण के बाद भी जीवन बीमा निगम के द्वारा निजी क्षेत्र को पूँजी देना जारी रखा गया है।

भारतीय जीवन बीमा निगम अभिगोपन के रूप में कम्पनियों को अधिक वित्तीय सहायता प्रदान करता रहा है। यह कम्पनी-क्षेत्र के अलावा सहकारी क्षेत्र को भी वित्तीय सहायता देता है।

जीवन बीमा निगम द्वारा उद्योगों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता में वार्षिक उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। 1987-88 की अवधि में वितरित सहायता की राशि 342 3 करोड़ रु रही जो पिछले वर्ष से कम थी।[1]

---

1 Economic Survey 1988-89, p S-56.

इतनी वित्तीय सहायता प्रदान करके भी यह औद्योगिक इकाइयों में एक निष्क्रिय साझेदार (Sleeping Partner) के रूप में बना रहा है क्योंकि इसने सहायता-प्राप्त कम्पनियों के प्रबन्ध में भाग नहीं लिया है। औद्योगिक लाइसेंसिंग जांच समिति (1969) ने इस कमी की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया था।

(II) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम

(IFCI)

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के तुरन्त बाद संसद के अधिनियम के अन्तर्गत 1 जुलाई, 1948 से भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की गयी थी। यह शेयर-धारियों का निगम है। इसके शेयर भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, अनुसूचित बैंकों, जीवन बीमा निगम, सहकारी बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं ने लिये हैं। शेयरों पर भारत सरकार ने गारण्टी प्रदान की है।

निगम का कार्य क्षेत्र—निगम उन सार्वजनिक सीमित दायित्व वाली कम्पनियों, सहकारी संस्थाओं, निजी सीमित दायित्व वाली कम्पनियों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को दीर्घकालीन ऋण देता है जो भारत में पंजीकृत हुए हैं और जो माल की प्रोसेसिंग या निर्माण या खान खोदन, होटल उद्योग या विद्युत के उत्पादन या वितरण या अन्य किसी प्रकार की पावर उत्पन्न करने में सम्बन्धित है। इन कम्पनियों में समुद्री जहाज की कम्पनियों भी शामिल की गई हैं। निगम के क्षेत्र में साझेदारी फर्म, एकाकी उत्पादक एवं लघु उद्योग शामिल नहीं हैं।

12 मार्च, 1982 से लागू औद्योगिक वित्त निगम (संशोधन), अधिनियम के अन्तर्गत इसका कार्य-क्षेत्र बढ़ाया गया है। अब यह निगमित (कम्पनी) क्षेत्रों म स्थापित निम्न औद्योगिक उपक्रमों को भी वित्तीय सहायता प्रदान कर सकता है

(i) सड़क या जल-मार्ग या वायु-मार्ग या रज्जु मार्ग (ropeway) या लिफ्ट द्वारा यात्री व माल का लाना-ले जाना, (ii) मशीनरी या वाहनों या जलपोतों या मोटर नौकाओं या ट्रैक्टरों का रख-रखाव, मरम्मत, परीक्षण या सर्विसिंग, (iii) मशीनरी या पावर की सहायता से किसी भी वस्तु को जोड़कर बनाना, मरम्मत करना या पैकिंग करना, (iv) समीप के किसी क्षेत्र का औद्योगिक बस्तों के रूप में विकास करना; (v) मछली पकड़ना या मछली पकड़ने के लिए तटीय सुविधाएँ देना या रख-रखाव करना, (vi) औद्योगिक विकास के लिए तकनीकी ज्ञान या सेवाएँ देना एवं (vii) प्रक्रिया व वस्तु के लिए रिसर्च व विकास का कार्य।

वित्तीय सहायता के रूप—निगम को निम्न विधियों से वित्तीय सहायता प्रदान करने का अधिकार दिया गया है :

(अ) औद्योगिक कम्पनियों ने खुले बाजार से जो ऋण लिये हैं, उन पर वह गारण्टी दे सकता है। ऐसे ऋणों की अवधि 25 वर्ष तक हो सकती है।

(आ) यह 25 वर्ष तक का ऋण स्वयं दे सकता है अथवा कम्पनियों के ऋण-पत्र खरीद सकता है। यह मध्यम-बड़े (medium-large) तथा बड़े पैमाने के क्षेत्र (large scale sector) में स्थापित किये जाने वाले उन औद्योगिक उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था पर विचार करता है जिनकी प्रोजेक्ट-लागत 3 करोड़ रु से ऊपर होती है। इससे नीचे की लागत वाले प्रोजेक्टों की वित्तीय व्यवस्था राज्य वित्त व विकास निगमों द्वारा की जाती है।

(इ) यह कम्पनियों के स्टॉक, शेयर, बांड या ऋण-पत्रों का अभिगोपन (Underwriting) कर सकता है, लेकिन अभिगोपन की तारीख से 7 वर्ष की अवधि में इनका बेचा जाना अनिवार्य होता है।

1957 से निगम आयातकर्त्ता को विलम्बित भुगतान पद्धति (Deferred Payment System) के सम्बन्ध में भी गारण्टी देने का अधिकार दिया गया था। यदि कोई आयातकर्ता विदेशी उत्पादक से मशीनें आदि खरीदने का इन्तजाम कर लेता है तो निगम उसके लिए गारण्टी दे सकता है जिससे विदेशी मशीनें व साज-सामान भी सुगमतापूर्वक मिल जाते हैं।

दिसम्बर 1960 के संशोधन के अनुसार निगम के द्वारा गारण्टी प्रदान करने का काम काफी बढ़ा दिया गया तथा निगम को औद्योगिक उपक्रमों के शेयर खरीदने का भी अधिकार दे दिया गया, जो उसे पहले नहीं था। निगम की इच्छा से उसके द्वारा दिये गये ऋणों या डिबेंचरों की राशि को उद्योगों के शेयरों में परिवर्तित करना भी सम्भव कर दिया गया।

निगम की पूँजी के स्रोत—निगम की पूँजी के स्रोत निम्नलिखित हैं—

(i) शेयर-पूँजी—1982 के संशोधन-अधिनियम के अनुसार निगम की अधिकृत पूँजी 20 करोड़ रु से बढ़ाकर (केन्द्रीय सरकार के द्वारा निर्धारित करके) 100 करोड़ रु तक की जा सकती है। प्रत्येक शेयर पाँच हजार रुपये का होता है। 30 जून 1988 को इसकी प्रदत्त पूँजी (paid-up-capital) 70 करोड़ रु. थी।

(ii) **बाँड व ऋण-पत्र**—निगम की प्रदत्त पूँजी व रिजर्व कोष के 10 गुने तक बाँड व ऋण-पत्र निर्गमित करने का अधिकार है। निगम द्वारा निर्गमित बाँड के मूलधन व ब्याज पर केन्द्रीय सरकार की गारण्टी होती है। 30 जून 1988 तक बाँडों की शुद्ध बकाया राशि 2083·80 करोड़ रु. हो चुकी थी। 1987-88 में

इसने तीन बार बांड जारी किये। बांड का 50वां सिरीज 14 जून 1988 को जारी किया गया था।

(iii) रिजर्व बैंक से उधार—1982 के संशोधन के अनुसार निगम अब भारतीय रिजर्व बैंक से 18 महीने तक के लिए 15 करोड़ रुपये तक की रकम उधार ले सकता है।

(iv) जमाएँ—अब निगम IDBI द्वारा स्वीकृत शर्तों पर कम से कम 12 महीनों की अवधि के बाद चुकाने की शर्त पर जमाएँ स्वीकार कर सकता है।

(v) केन्द्रीय सरकार से उधार—निगम भारत सरकार से भी कर्ज ले सकता है। 30 जून. 1988 के अन्त में भारत सरकार से लिये गये ऋणों की बकाया राशि 1·40 करोड़ रु. थी।

(vi) IDBI से उधार—यह भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से भी उधार ले सकता है। 30 जून, 1988 को IDBI से ली गई उधार की बकाया राशि 61 85 करोड़ रु थी।

(vii) विदेशी मुद्रा—निगम विदेशी मुद्रा में उधार लेने का अधिकारी है। ऐसे ऋणों पर भारत सरकार की गारण्टी होती है। निगम को पश्चिमी जर्मनी से कई बार ऋण मिल चुके हैं। जर्मन मार्क में प्राप्त ऋणों का उपयोग पूँजीगत माल, इन्जीनियरिंग ज्ञान व सेवाओं के आयात में पश्चिमी जर्मनी के अलावा अन्य देशों से (कुछ देशों को छोड़कर) भी किया जा सकता है। अमेरिका की एजेन्सी फार इण्टरनेशनल डवलपमेंट (AID) से डालर में ऋण प्राप्त हुए हैं। निगम को पेरिस बैंक में फ्रैंक में विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई है। संयुक्त राज्य (U.K) से पूँजीगत माल के आयात में वित्त प्रदान करने के लिए भारत सरकार ने निगम को पौण्ड स्टर्लिंग प्रदान किया है। स्वीडन से क्रोनर में सहायता स्वीकृत हुई है। दिसम्बर 1987 में जापानी येन में कर्ज लिया गया है जिसका कुछ अंश अमरीकी डालर में है तथा शेष जापानी येन में है। इस प्रकार विदेशी ऋणदाता एजेन्सियों से निगम को विदेशी मुद्रा में ऋण प्राप्त हुआ है एवं इसने व्यवहारिक उधार लेने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रवेश किया है।

निगम का प्रबन्ध व कार्य-प्रणाली—निगम का प्रबन्ध 12 सदस्यों के एक सचालक बोर्ड द्वारा होता है जिसके सदस्य केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक, अनुसूचित बैंकों व अन्य संस्थाओं द्वारा निर्वाचित होते हैं।

निगम मकान, भूमि अथवा मशीन की जमानत पर ऋण देता है। ऋण मंजूर होने के दो या तीन साल बाद किश्तों में भुगतान प्रारम्भ हो जाता है। निगम की ब्याज की सामान्य दर 14·0 प्रतिशत तथा पिछड़े क्षेत्रों के लिए यह 12·5 प्रतिशत रही है। अपने हितों की रक्षा के लिए निगम स्वीकृत ऋणों के उपयोग पर भी ध्यान देती है। यदि कोई कम्पनी ऋण चुकाने में गड़बड़ करती है तो निगम

उसका प्रबन्ध अपने हाथ में ले सकता है अथवा गिरवी रखी हुई सम्पत्ति बेच सकता है।

निगम की प्रगति[1]—औद्योगिक वित्त निगम ने 30 जून, 1989 को अपने कार्यकाल के 41 वर्ष पूरे किये है। 1987-88 मे इसने 780 परियोजनाओ के लिए लगभग 1351 करोड रु की वित्तीय सहायता स्वीकृत की तथा 730 करोड रु की वितरित की।

वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाली इकाइयां निजी क्षेत्र, सयुक्त क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र एव सहकारी क्षेत्र मे होती है। प्रतिवर्ष सबसे अधिक सहायता निजी क्षेत्र को प्राप्त होती है।

30 जून 1988 को समाप्त होने वाले 40 वर्षों मे इसने लगभग 5306 करोड रुपये की वित्तीय सहायता मजूर की। वितरित की गयी सहायता की राशि 3612 करोड रुपये रही। यह मजूर की गई राशि का लगभग 68 प्रतिशत थी। 30 जून 1988 तक शुद्ध स्वीकृत सहायता का लगभग 52 प्रतिशत अधिसूचित (notified) कम विकसित जिलों/क्षेत्रो को प्राप्त हुआ था। इस प्रकार निगम ने सन्तुलित प्रादेशिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा मे योगदान दिया है। 30 जून 1988 तक स्वीकृत वित्तीय सहायता की राशि मे सर्वाधिक अंश 14·9% महाराष्ट्र को मिला। गुजरात को 12·0% व उत्तर प्रदेश को 14% राशि मजूर की गई थी। राजस्थान का अंश 4·9% रहा। अब तक की कुल स्वीकृत सहायता मे वस्त्रोद्योग को 12 2%, सीमेंट उद्योग को 10·3% तथा चीनी को 6 5% प्राप्त हुआ। कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 33·4% अंश आधारभूत या मूल उद्योगो (basic industries) को दिया गया जिसमे बेसिक मेटल उद्योग, बेसिक औद्योगिक रसायन, उर्वरक, सीमेंट, खनन व विद्युत-सृजन व वितरण शामिल है। पूंजीगत माल वाले उद्योगो (Capital goods industries) जैसे मशीनरी, विद्युत मशीनरी व परिवहन उपकरण का 16% अंश स्वीकृत हुआ, मध्यवर्ती उद्योगों (Intermediate goods industries) जैसे रसायन उत्पाद, धातु उत्पाद, अधातु उत्पाद, खनिज उत्पाद, पटसन, टायर एव ट्यूब आदि को 21 2% तथा उपभोक्ता माल के उद्योगो को जैसे चीनी, वस्त्र, कागज आदि को लगभग 26 9% एव शेष लगभग 2·5% सेवा-क्षेत्र मे होटल-परियोजनाओ आदि को स्वीकृत किया गया। इस प्रकार स्वीकृत सहायता मे आधारभूत उद्योगो व उपभोक्ता उद्योगो का अंश ऊँचा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों मे निगम को कुछ मामलो मे समय पर अपने ऋणो का वापसी भुगतान न मिल पाने (Default) की समस्या का सामना करना पडा है जो

---

1 IFCI Annual Report 1987-88, Ch. 2, p. 11.

वास्तव मे एक चिन्ता का विषय है। ज्यादातर कठिनाई सूती वस्त्र मिलो की तरफ से उत्पन्न हुई है। गारण्टी देने वाली राज्य सरकारो ने भी पर्याप्त कदम नही उठाये हैं। निगम को समय पर भुगतान न करने वाली फर्मों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने म भी दिक्कतो का सामना करना पडा है।

पिछले 41 वर्षों की अवधि मे इसने भारत के औद्योगिक ढाँचे मे अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। निगम का कार्य-क्षेत्र निरन्तर बढता जा रहा है। इसके वित्तीय साधनो मे भी वृद्धि की गई है। भविष्य मे ज्यादा पूँजीगत साधन होने पर ही निगम उद्योगो की बढती हुई वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। अब यह उद्योगो की शेयर पूँजी म भी भाग ले सकता है, लेकिन निगम उद्योगो के लिए सभी आवश्यक कार्य नहीं कर सकता, जैसे कच्चे माल की व्यवस्था करना, बाजार-माग को उत्पन्न करना एव व्यावसायिक दक्षता का निर्माण करना, आदि। इसलिए निगम की सुविधाओ का उपयोग करने के लिए सक्षम स्कीमो व दक्ष उद्यमकर्त्ताओ की आवश्यकता है। निगम ने एक जोखिम पूँजी प्रतिष्ठान (Risk Capital Foundation) (RCF) जनवरी, 1975 से चालू किया था जो नये उद्यमकर्त्ताओ को उदार शर्तों पर कर्ज देता रहा है ताकि ये शेयर-पूँजी मे सस्थापक का अश (Share of Promoters' equity) प्रदान कर सकें। यह अपने अस्तित्व के 12वें वर्ष (1987) मे जोखिम पूँजी और औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड के नाम से एक कम्पनी मे परिवर्तित कर दिया गया है। इसे सक्षेप मे RCTFC कहते हैं। मार्च, 1974 से निगम के द्वारा स्थापित प्रबन्ध-विकास-सस्थान (Management Development Institute (MDI) व इसके विकास बैंकिंग प्रकोष्ठ (Development Banking Cell) (DBC) ने कई पाठ्यक्रम सम्पन्न किये हैं जिनमे प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओ पर आवश्यक प्रशिक्षण दिया गया है।

आजकल निगम निजी निगमित क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र, सयुक्त क्षेत्र व सहकारी क्षेत्र मे स्थापित उपक्रमो को वित्तीय सहायता देकर भारत का औद्योगिक विकास करने में प्रयत्नशील है। इसने पाँच तकनीकी सलाहकार सगठन (Technical Consultancy Organisations) (TCOs) स्थापित करने मे योगदान दिया है जो ग्रामीण, अति लघु (tiny), लघु व मध्यम पैमाने के उद्यमकर्त्ताओ, सरकारी विभागो, व्यापारिक बैंको राज्यस्तरीय वित्तीय सस्थाओ को औद्योगिक विकास व प्रबन्ध प्रोजेक्ट-निर्माण क्रियान्वयन व मूल्याकन आदि मे मदद देते हैं। इससे नये उद्यमकर्त्ताओ को लाभ पहुँचा है। ऐसे ही नौ तकनीकी सलाहकार सगठन भारतीय औद्योगिक विकास बैंक व तीन भारतीय औद्योगिक साख व विनियोग निगम ने स्थापित किये हैं। इस समय देश मे कुल 18 TCOs काम कर रहे हैं। इनम एक कर्नाटक सरकार ने स्थापित किया है। निगम ने विभिन्न विश्वविद्यालयो मे विकास-बैंकिंग व औद्योगिक वित्त पर छ पीठें (Six Chairs) स्थापित की हैं जिससे इन विषयो पर अनुसधान व उच्च स्तरीय अध्ययन को काफी प्रोत्साहन मिला है।

1982-83 मे निगम ने राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय उद्यमशीलता विकास सस्थान (Extrepreneurship Development Institute of India) (EDII) की स्थापना मे सहायता प्रदान की है। साथ मे विज्ञापन व टेक्नोलोजी/उद्यमशीलता 'विकास कार्यक्रम' की लागत मे अपना हिस्सा लेने की मजूरी दी है। इस प्रकार यह उद्यमशीलता के विकास को भी काफी प्रोत्साहन द रहा है।

वित्तीय सेवाए (Financial Services)

पिछले वर्षा म IFCI की निम्न प्रकार की वित्तीय सेवाए विकसित हुई ह —

(i) **मर्चेन्ट बैंकिग**—यह कार्य 1 जुलाई 1986 से प्रारम्भ किया गया है। इसके अन्तर्गत परियोजना-परामर्श तथा कम्पनी क्षेत्र मे मध्यम व बड़े उपक्रमो को एक मुश्त सुविधाए उपलब्ध करना है ताकि उन्हे नए प्रोजेक्टो के निर्माण व क्रियान्वयन या आधुनिकीकरण या विविधीकरण मे मदद मिल सके। इससे वित्तीय सहायता म मदद मिलती है तथा पूंजी के ढाचे की स्कीम बनाने एकीकरण व समामेलन (merger) के प्रस्तावो को लागू करने म सहायता प्राप्त होती है।

(ii) **उपकरण-लीजिग**—यह 1 जून, 1988 से प्रारम्भ किया गया है। इसके अन्तर्गत चालू औद्योगिक इकाइयो को लीज पर उपकरण (equipment) उपलब्ध किया जायगा। य औद्योगिक इकाइयाँ कम्पनी या सहकारी क्षेत्र म हो सकती है। वित्तीय लीजिग, सिडीकेटेड लीजिग विक्री एव लीजिग के पुन. लीज रूप को अपनाने व आयातित उपकरण की लीजिग की व्यवस्था की जायेगी।

(iii) **सप्लायर्स-उधार-योजना**—यह 1987-88 से चालू की गई है। इससे उपकरण-निर्माता व उपकरण-प्रयोगकर्ता दोनो को लाभ होगा। मशीनरी आदि उधार पर दी जायेगी। भुगतान विलम्बित-आधार पर होगा। उधार के सम्बन्ध मे जो बिल बनेगे IFCI उनके आधार पर अग्रिम राशि (advances) देगा। इस स्कीम को लागू करन से मशीनें काम मे लेने वालो को मशीने उधार पर मिलन लग जायेगी।

आशा है इन वित्तीय सेवाओ से उत्पादको को लाभ पहुँचेगा। इससे देश का औद्योगिक विकास अधिक तेजी से हो सकेगा।

(III) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड (NIDC)

बडे पैमाने के उद्योगो के विकास व वित्त से सम्बन्धित दूसरा महत्वपूर्ण निगम राष्ट्रीय औद्योगिक निगम है जो 20 अक्टूबर, 1954 को स्थापित किया गया था। भारत सरकार ने ही इसमे समस्त पूँजी लगायी है।

उद्देश्य—(1) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम मुख्यत. उन उद्योगो मे पूँजी लगाने के लिए बना है जो नियोजित विकास के दौरान स्थापित किये जाते है। यह पूँजीगत माल, मशीन व अन्य साज-सामान बनाने को प्राथमिकता देता है। यह

औद्योगिक कार्यक्रमों का अध्ययन व जाँच करता है। (2) यह सार्वजनिक व निजी क्षेत्र में सहयोग स्थापित करता है। जहाँ तक हो सकता है निजी क्षेत्र में उपलब्ध औद्योगिक साज-सामान, अनुभव व दक्षता का अधिकतम उपयोग करता है। यह ऐसे उद्योग स्थापित करता है जो आगे जाकर निजी क्षेत्र में सहायक उद्योग स्थापित करने में मदद देते हैं। इस प्रकार यह देश में सन्तुलित व एकीकृत औद्योगिक विकास को बढ़ावा देता है। (3) निगम इन्जीनियरों के दल तैयार करता है जो सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों में आवश्यक तकनीकी सहायता प्रदान करते हैं। (4) यह प्रमुख किस्म के औद्योगिक सामान तैयार करने का विशेष प्रयत्न करता है, जैसे कच्ची फिल्म, एल्यूमिनियम, कृत्रिम रबड़ व दवा, रंग व प्लास्टिक उद्योग का आवश्यक सामान। (5) किसी भी उद्योग को सरकारी ऋण देने के सम्बन्ध में यह सरकारी एजेन्ट के रूप में काम करता है। प्रारम्भ में यह सहायता का कार्यक्रम जूट व सूती वस्त्र उद्योग के आधुनिकीकरण व पुनर्स्थापन के लिए दिये गये सरकारी ऋणों पर लागू किया गया था।

प्रगति—शुरू के वर्षों में इसने सूती वस्त्र, जूट व मशीनी औज़ारों के उद्योगों के विस्तार, पुनर्स्थापन या आधुनिकीकरण के लिए ऋण वितरित किये थे। पिछले वर्षों में NIDC का औद्योगिक विकास के लिए सलाहकारी सेवायें प्रदान करने का काम अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। यह विस्तृत डिजाइनें तैयार करता है तथा इन्जीनियरी सेवायें उपलब्ध करता है। इसकी सेवाओं का उपयोग केन्द्रीय व राज्य सरकार, भारत में सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के उपक्रम एवं विदेशी सरकारें, विदेशी उद्यमकर्ता तथा संयुक्त राष्ट्र संघ, आदि करते हैं।

पिछले वर्षों में इसने भारतीय टेलीफोन उद्योग के लिए नगर-निर्माण, कोल इण्डिया लि. के लिए भवन-निर्माण कम्प्लेक्स तथा भारतीय तेल निगम के लिए अनुसंधान व विकास केन्द्र के लिए इमारत बनाने के लिए डिजाइन आदि तैयार करने व सलाह देने का काम हाथ में लिया था। इसी वर्ष लीबिया, अदन व जञ्जीबार का भी इन्जीनियरी व सलाह का कुछ काम लिया था।

तीन दशकों से अधिक अवधि तक काम करने के बाद भी निगम के कार्य की दिशा स्पष्ट नहीं हो पाई है। यह एक सलाहकारी संस्था बन कर रह गया है। इसकी गतिविधियों में प्रशासनिक विफलतायें, वित्तीय कुप्रबन्ध व तकनीकी अकार्यकुशलतायें पाई गई हैं।

(IV) भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम (ICICI)

5 जनवरी, 1955 को भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम स्थापित किया गया था। इस निगम का उद्देश्य निजी क्षेत्र के लिए पूँजी की व्यवस्था करना है। इसके कार्य अग्रांकित हैं :

(1) निजी क्षेत्र के उद्योगों के निर्माण, विस्तार एव आधुनिकीकरण में मदद पहुँचाना, (2) ऐसे उद्योगों में आन्तरिक व विदेशी निजी पूँजी की भाग लेने के लिये प्रोत्साहन देना, (3) औद्योगिक विनियोग के निजी स्वामित्व को बढ़ावा देना और पूँजी-बाजार का विस्तार करना। इसकी विशेषता यह है (क) पूँजी या तो दीर्घकालीन व मध्यमकालीन ऋणों के रूप में प्रदान करता है अथवा यह शेयरों की खरीद में भाग लेता है, रुपयों में कर्ज 15 वर्ष तक की अवधि के लिए दिए जाते हैं, (ख) नये शेयरों व प्रतिभूतियों का बाजार में अभिगोपन करता है; (ग) अन्य निजी विनियोग के स्रोतों के ऋणों पर गारण्टी प्रदान करता है (घ) जितनी जल्दी सम्भव हो सके उतनी जल्दी एक उद्योग में से विनियोग की रकम निकालकर दूसरे उद्योग में उसके पुनर्विनियोग की व्यवस्था करता है और (ड.) भारतीय उद्योगों को प्रबन्धकीय, तकनीकी व प्रशासनिक सलाह व सेवायें मुहैया करता है। अतः यह निगम निजी क्षेत्र में स्थापित उद्योगों के विकास के लिए भरसक प्रयत्न करता है। 1983 से इसने लीजिंग (leasing) की क्रियायें भी प्रारम्भ कर दी हैं जिनके अन्तर्गत पूँजीगत परिसम्पत्तियों को पट्टे पर लेने वाले व्यक्ति इनके उपयोग से प्राप्त प्रत्याशित या अनुमानित आय के आधार पर लीज की एवज में भुगतान करने की सुविधा का लाभ उठा सकते हैं। यह प्रणाली आजकल विकसित व विकासशील दोनों प्रकार के देशों में बहुत लोकप्रिय हो रही है।

पूँजी—इस संस्था के निर्माण में विदेशी वित्तीय संस्थाओं ने भी हिस्सा लिया है। यह अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सहयोग का एक नमूना प्रस्तुत करता है।

अब निगम की अधिकृत पूँजी 50 करोड़ रुपये की है, जो 100 रुपये वाले 50 लाख शेयरों में बटी हुई है। 1987–88 (अप्रैल-मार्च) में इसने 1946·4 करोड़ रु. के कुल कोष एकत्र किये जिनमें बाह्य साधन 1285 4 करोड़ रु. के तथा आन्तरिक साधन 661 करोड़ रु. के थे। ये 1986–87 से 84 6% अधिक थे। बाह्य साधनों में सरकार व IDBI से उधार, बाँड/ऋण-पत्रों की राशि व विदेशी मुद्रा आती है तथा आन्तरिक साधनों में कर्जदारों की अदायगी व प्राप्त ब्याज तथा प्राप्त लाभांश आते हैं। इसको विश्व बैंक, जर्मनी, ब्रिटेन आदि से कई बार ऋण मिल चुके हैं। यह भारत सरकार व औद्योगिक विकास बैंक से ऋण लेता है और जनता का ऋण-पत्र बचता है।

प्रगति[1]—औद्योगिक साख व विनियोग निगम ने 31 दिसम्बर, 1988 को 34 वर्ष पूरे किये हैं। निगम ने 1987–88 (अप्रैल-मार्च) में सहायता के लिए 1283 करोड़ रुपये स्वीकृत किये तथा 771 करोड़ रुपये वितरित किये। इसमें सप्लायर्स उधार व लीजिंग के रूप में सहायता भी शामिल है।

1. Report on Development Banking in India 1987–88, Published by IDBI, Chapter 6.

स्थापना के समय से लेकर मार्च 1988 के अन्त तक वित्तीय सहायता—मार्च 1988 के अन्त तक कुल सहायता 7094 करोड रुपये की स्वीकृत हुई थी जिसमें 5138 करोड रुपये की सहायता वितरित की गई थी। इसमें रुपयों मे कर्ज, विदेशी मुद्रा मे कर्ज अभिगोपन व शेयरो की सीधी खरीद, गारंटिया आदि सभी शामिल है।

पिछड़े क्षेत्रो मे स्थित प्रोजेक्टो को प्राथमिकता के आधार पर वित्तीय राशि प्रदान की गई है। मार्च 1988 तक स्वीकृत राशि का 11·5% टेक्सटाइल्स, 11 8% विविध रसायनो तथा 9 6 प्रतिशत बेसिक मेंटल उद्योगो के हिस्से मे आया। इसी प्रकार इस अवधि मे स्वीकृत राशि का 24 1% अश महाराष्ट्र को 14 7% अश गुजरात को तथा 9 1% अश उत्तर प्रदेश को तथा 9% तमिलनाडु को मिला। राज्यो के अनुसार स्वीकृत की गई सहायता का विभाजन देखा जाय तो पता चलेगा कि महाराष्ट्र, गुजरात तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश को लगभग 56·4% मिला एव शष अन्य राज्यो को मिला। सहायता का विभिन्न राज्यो मे वितरण काफी असमान रहा है।

निगम ने नई परियोजनाओ मे पूँजी निवेश को बढावा दिया है। यह पूँजी-बाजार का महत्वपूर्ण स्तम्भ रहा है। इसका योगदान औद्योगिक उपक्रमों को विदेशी विनिमय प्रदान करने की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण माना गया है।

(V) भारतीय यूनिट ट्रस्ट (UTI)

औद्योगिक वित्त के क्षेत्र मे यूनिट ट्रस्ट की स्थापना एक महत्वपूर्ण प्रयास है। दिसम्बर 1963 मे भारतीय ससद मे यूनिट ट्रस्ट बिल पास किया गया और 1 फरवरी 1964 से इसकी स्थापना की गई। इसकी प्रारम्भिक पूँजी 5 करोड रुपये रखी गयी जिसमे रिजर्व बैंक का आधा हिस्सा तथा शेष जीवन बीमा निगम, भारतीय स्टेट बैंक और अनुसूचित व्यापारिक बैंको व अन्य वित्तीय सस्थाओ का रखा गया था।

यूनिट ट्रस्ट कम आय वाले लोगो की बचत एकत्र करके विनियोगो मे लगाता है। यूनिटो की बिक्री बढाने के लिए इनसे प्राप्त आय पर आयकर व सम्पत्ति कर मे कुछ छूट दी जाती है।

प्रगति[1]—यूनिट ट्रस्ट ने जुलाई, 1964 से यूनिट ट्रस्ट की बिक्री प्रारम्भ की। इस स्कीम के अन्तर्गत प्रत्येक यूनिट 10 रुपये का रखा गया है। यूनिट 10 के गुणन म बेचे जाते है और कम से कम यूनिट खरीदने पड़ते हैं। 30 जून 1989 को ट्रस्ट ने अपने कार्यकाल के 25 वर्ष पूरे कर लिए है।

---

1 Report on Development Banking in India 1987-88, Chapter 8 pp 36-40

यूनिट ट्रस्ट की विनियोग सम्बन्धी नीति यह है कि पूंजी की सुरक्षा को ध्यान म रखत हुए अधिकतम आय प्राप्त की जानी चाहिये। एक कम्पनी की प्रतिभूतियो मे यूनिट ट्रस्ट अपने कुल विनियोज्य कोषो के 5% से ज्यादा नही लगा सकता है।

यूनिटो की बिक्री मे उतार-चढाव आते रहे हैं। 1987-88 (अप्रैल-मार्च) मे यूनिटो की बिक्री 2059 4 करोड रु की हुई जा एक अभूतपूर्व रिकार्ड था। यह पिछले वर्ष की तुलना मे 63 3% अधिक थी। इस प्रकार 1987-88 मे यूनिटो की बिक्री 2000 करोड रु की सीमा को पार कर गई है। इस वर्ष यूनिट स्कीम 1964 मे यूनिटो की बिक्री सर्वाधिक हुई। (859 3 करोड रु की)। मासिक आय यूनिट स्कीम, अतिरिक्त बोनस सहित साथ म विकास (सख्या 10) 1988 म यूनिटो की बिक्री काफी हुई।

1982-83 मे यूनिट ट्रस्ट ने एक मासिक आय यूनिट स्कीम, 1983 लागू की थी जो 55 वर्ष की आयु से अधिक के व्यक्तियो विधवाओ, शारीरिक व मानसिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियो तथा कुछ सस्थाओ के लिए काफी उपयोगी रही है। इसमे 12% वार्षिक की दर से लाभाश पाच वर्ष तक प्रति माह दिया गया है।

30 जन, 1988 को ट्रस्ट के कुल विनियोज्य कोष 6738 8 करोड रुपये के थे। यूनिट ट्रस्ट ने अपने कोष सुदृढ सस्थाओ मे लगाये हैं। ये सस्थाये वित्तीय सार्वजनिक सेवा व निर्माण-उपक्रमो म सलग्न हैं। 1987-88 म यूनिटो की पुन. खरीद (repurchase) की मात्रा लगभग 292 करोड रुपये रही जो पिछले वर्ष से काफी अधिक थी। 1966 से ट्रस्ट की पुनर्विनियोजन की स्कीम काफी प्रगति कर रही है। यूनिटहोल्डर अपनी आय ट्रस्ट मे ही लगाना पसन्द करने लगे हैं। 1 अक्टूबर, 1971 से यूनिट-सम्बद्ध बीमा-योजना प्रारम्भ की गई थी। इसमे 10 वर्ष की अवधि के लिए 12 हजार रुपये तक की अधिकतम राशि की बचत-योजना होती है और इसमे की गई बचत पर आय-कर म छूट मिलती है।

1969 मे ट्रस्ट ने ऐच्छिक बचत योजना प्रारम्भ की थी। ट्रस्ट ने 1 जुलाई, 1970 से एक बाल-उपहार-योजना प्रारम्भ की थी जिसके अन्तर्गत 15 वर्ष से कम आयु के छोटे बालको के लिए उनके माता-पिता या अन्य सरक्षक यूनिट खरीद सकते हैं (न्यनतम 50)। इसमे लगाई गई राशि बालको के 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर लने पर वापस मिल जाती है जिससे उनकी शादी, उच्च शिक्षा के लिए विदेश-यात्रा, व्यापार-व्यवसाय की स्थापना, आदि कार्य अधिक सुगमता से सम्पन्न किये जा सकते हैं। इसने मासिक-आय-यूनिट-स्कीम, अतिरिक्त विकास सहित (10) 1988 मे लागू की है। इन स्कीमो मे यूनिटो की काफी बिक्री होती है।

1987-88 मे इसके कम्पनी क्षेत्र को 749 करोड रु की सहायता वितरीत की 1 मार्च 1988 तक कुल 2443 करोड रु. की सहायता वितरित की गई।

(VI) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI)

यह औद्योगिक वित्त के क्षेत्र मे एक सर्वोच्च या शीर्ष (apex) संस्था है। इसने 1 जुलाई, 1964 मे कार्यारम्भ किया था और 30 जून, 1989 को इसके कार्यकाल के 25 वर्ष पूरे हो गये हैं। यह पहले के औद्योगिक पुनर्वित्त निगम को अपने मे विलीन करके स्थापित किया गया था। 16 फरवरी, 1976 से इसका पुनर्गठन किया गया जिसका उद्देश्य अखिल भारतीय व राज्यीय स्तर पर वित्तीय संस्था तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको मे परस्पर समन्वय स्थापित करना है। उपर्युक्त तारीख से ही वह रिजर्व बैंक से पृथक कर दिया गया (delinked from the RBI)। IDBI की जो पूँजी रिजर्व बैंक के पास थी, वह भारत सरकार को हस्तान्तरित कर दी गई है। इसके दो प्रकोष्ठ (cells) कर दिये गये : पहला घरेलू वित्त प्रकोष्ठ तथा दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त प्रकोष्ठ।

औद्योगिक विकास बैंक के वित्तीय साधन[1]—जून, 1989 के अन्त मे IDBI की प्रदत्त पूँजी 540 करोड रु हो गई थी। यह भारत सरकार से उधार लेता है। *यह भारतीय रिजर्व बैंक के राष्ट्रीय औद्योगिक साख (दीर्घकालीन क्रिया) कोष से* उधार लेता है जिसके अन्तर्गत 1988-89 मे 375 करोड रु लिये गये। यह जीवन बीमा निगम से भी उधार ले सकता है। सहायता-प्राप्त उपक्रमो के वापसी भुगतान से भी इसके साधनो का निर्माण होता है। यह विदेशी मुद्रा मेउधार लेता है। इसने डालर व येन मे कर्ज लिये है।

अन्य वित्तीय संस्थाओ की तुलना मे इसको अधिक स्वतन्त्रता दी गई है। यह पूँजीगत साधन बढाने मे चालू वित्तीय संस्थाओ को मदद दे सकता है, उनके द्वारा दिये गये ऋणो पर पुर्नवित प्रदान कर सकता है, विशिष्ट प्रोजेक्टों के लिए प्रत्यक्ष रूप से ऋण दे सकता है और नये इन्जीनियरी व अन्य उद्योगो के पूँजीगत माल के निर्यात मे वित्तीय सुविधा दे सकता है। औद्योगिक विकास बैंक औद्योगिक उपक्रमो की छानबीन व जाँच का कार्य भी कर सकता है।

एक विशेष विकास सहायता कोष (Special Development Assistance Fund) का निर्माण किया गया है। इसमे केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान की गयी धन-राशि जमा की गई है। यह कोष भी औद्योगिक विकास बैंक के द्वारा ही सचालित होता है। इसका उपयोग उन आवश्यक उद्योगो मे पूँजी लगाने मे किया जाता है जो विशुद्ध व्यावसायिक आधार पर अथवा साख-संस्थाओ के द्वारा निर्धारित सामान्य स्तरो के आधार पर ऋण प्राप्त करने मे असमर्थ होते हैं। इस प्रकार उन उपक्रमो की भी स्थापना की जा सकती है जिनमे पूँजी लगाने मे साधारण बैंकर अथवा वित्तीय संस्थाएँ तैयार नही होती।

---

1 IDBI Annual Report 1988-89, Chapter 5, pp 63-68.

1 औद्योगिक उपक्रमो को प्रत्यक्ष सहायता (Direct Assistance to Industry)—यह औद्योगिक संस्थानो को प्रत्यक्ष सहायता निम्न रूपो में देता है : (i) ऋण देना (ii) उनके शेयर बाण्ड व ऋण-पत्र खरीदना और/अथवा अभिगोपन करना (iii) ऋण व विलम्बित भुगतानो पर गारण्टी देना। प्रत्यक्ष सहायता नये उपक्रमो की स्थापना तथा पुरानो के विस्तार व आधुनिकीकरण आदि के लिए दी जाती है।

2 पुनर्वित्त की सहायता (Refinance Assistance)—औद्योगिक विकास बैंक का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य औद्योगिक ऋणो पर पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान करना है। यह सुविधा राज्य वित्त निगमो (SFC) व अन्य बैंको को उनके द्वारा लघु व मध्यम उद्योगो (सड़क परिवहन चालको सहित) को दिये गये ऋणो के सम्बन्ध मे दी जाती है। इसका आशय यह है कि लघु व मध्यम उद्योगो के कर्ज तो राज्य वित निगम व व्यापारिक बैंक देते हैं। फिर वे स्वय औद्योगिक विकास बैंक से पुनर्वित्त की सुविधा के अन्तर्गत वित्त प्राप्त कर लेते हैं। लघु उद्योगो व पिछड़े जिलो के लिए पुनर्वित्त की रियायती दरें रखी गयी हैं। पुनर्वित्त सहायता को उत्तरोत्तर अधिक उदार बनाया गया है।

3 पुनर्कटौती की सहायता (Rediscounting Assistance)—औद्योगिक विकास बैंक उन बिलो/प्रोमिसरी नोटो को पुनर्कटौती करता है जो विलम्बित भुगतान के आधार पर स्वदेशी मशीनरी की बिक्री से उत्पन्न होते है। इसका अर्थ यह है कि मशीनरी के उत्पादक या विक्रेता बिलो की कटौती अपने बैंकरो से करा लेते है और बाद मे बैंकर उन्ही बिलो की पुनर्कटौती औद्योगिक विकास बैंक से कराते है। इस व्यवस्था मे स्वदेशी मशीनरी के उत्पादक अपने क्रेताओ को उधार दे पाते है लेकिन वे उत्पन्न बिलो के आधार पर अपने बैंको से धनराशि प्राप्त कर लेते हैं और बैंक पुन औद्योगिक विकास बैंक से पुनर्कटौती-सहायता के अन्तर्गत धनराशि प्राप्त कर लेते है।

4 निर्यात के लिए वित्तीय सहायता (Finance for Exports)—इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार की सहायताएँ आती है (i) निर्यात के लिए प्रत्यक्ष कर्ज प्रदान करना (ii) निर्यात साख के लिए पुनर्वित्त प्रदान करना (iii) विदेशी क्रेताओ या ग्राहको को भारत से पूँजीगत व इन्जीनियरी माल मगाने के लिए (व्यापारिक बैंको की साझेदारी मे) कर्ज मजूर करना (iv) साख की विदेशी लाइनें। इसके अन्तर्गत विदेशी सरकारो को भारत से माल मगाने के लिए कर्ज दिया जाता है तथा (v) निर्यात पर गारण्टी प्रदान करना। इस प्रकार विभिन्न रूपो मे निर्यात के लिए भारतीय व विदेशी फर्मों आदि को वित्त प्रदान किया जाता है। अब यह कार्य Exim Bank (निर्यात-आयात बैंक) को हस्तान्तरित कर दिया गया है।

पिछले वर्षों में विभिन्न देशों में भारतीय माल का निर्यात बढ़ाने के लिए प्रयक्ष कर्ज दिये गये हैं। पहले अल्जीरिया, जाम्बिया व कीनिया में बस, ट्रक, बेरिंग पुर्जे आदि का निर्यात बढ़ाने के लिये कर्ज दिये गये हैं। व्यापारिक बैंकों को पुनर्वित्त की सहायता दी गई ताकि निर्यात के लिए कर्ज दिये जा सकें। इण्डोनेशिया सरकार को भारतीय मशीनरी का निर्यात कर सकने के लिए कर्ज दिया गया ताकि वहां एक टूल-रूम व ट्रेनिंग केन्द्र स्थापित किया जा सके।

कीनिया सरकार, घाना गणराज्य सरकार व जर्मन सरकार को भारत में इन्जीनियरी का माल व मशीनरी खरीदने के लिए विदेशी साख की लाइनें स्वीकृत की गई। इन्डोनेशिया, मलयेशिया, सिंगापुर, ग्रीस, नाइजीरिया व श्रीलंका में संयुक्त-उपक्रमों की भी व्यवस्था की गई।

5 **अन्य वित्तीय संस्थाओं को वित्तीय सहायता** (Assistarce to other Financial Institutions)—औद्योगिक विकास बैंक अन्य वित्तीय संस्थाओं जैसे IFCI, ICICI, SFC, IRBI को उनके शेयर व बॉण्ड आदि खरीदकर वित्त प्रदान करता है। इस प्रकार यह वित्तीय संस्थाओं के पूँजीगत साधन बढ़ाकर उन्हें अधिक काम करने के योग्य बनाता है। यह 'वित्तीय संस्थाओं की वित्तीय संस्था' माना जा सकता है। औद्योगिक विकास बैंक एक समन्वयात्मक एजेन्सी (Coordinating agency) है और विविध प्रकार से औद्योगिक प्रगति को बढ़ावा देने में संलग्न है। यह सार्वजनिक क्षेत्र व संयुक्त क्षेत्र के उद्योगों को भी मदद देता है।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के कार्यों की प्रगति[1]—औद्योगिक विकास बैंक के विविध कार्यों में विशेषतया पुनर्वित्त (Refinance) व पुनर्भुनाई या पुनर्कटौती ***(Rediscount) के कार्यों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।***

बैंक ने बड़े आकार के प्रोजेक्टों पर अपना ध्यान केन्द्रित करने की नीति पर बल दिया है। यह टेक्नीशियन-उद्यमकर्त्ता के द्वारा सुझाये गये छोटे प्रोजेक्टों पर भी ध्यान देता है। बैंक ने सुरक्षा-उन्मुख, आयात-प्रतिस्थापन, निर्यातोन्मुख एवं उपभोक्ता-माल उत्पन्न करने वाले उद्योगों और कृषि-विकास व औद्योगीकरण का आधार तैयार करने वाले उद्योगों को प्राथमिकता दी है।

1964-89 (जुलाई-जून) तक अपने कार्यकाल के 25 वर्षों में इसने सकल वित्तीय सहायता लगभग 34400 करोड़ रुपयों की मंजूर की और 25112 करोड़ रुपयों का वितरित की। मंजूर की गई सहायता में से पिछड़े क्षेत्रों को 14123 करोड़ रुपये प्राप्त हुए जो कुल मंजूर की गई सहायता का लगभग 43% था।

---

1. IDBI, Annual Report 1988-89 Chapter 2, IDBI's Operations

1988-89 मे प्रगति—1988-89 में सहायता के लिए कुल स्वीकृत राशि 4747 करोड रुपये थी जिसमे से वितरित की गई राशि 3381 करोड रुपए थी। इससे लघु उद्योगो को विशेष रूप से लाभ प्राप्त हुआ है। पिछड़े क्षेत्रो को दी जाने रियायती सहायता भी बढ़ायी गयी है।

1988-89 में कुल मंजूर की गई सहायता का बड़ा अंश निम्न उद्योगों को प्राप्त हुआ था बिजली उत्पादन सड़क परिवहन वस्त्र विविध रसायन उर्वरक तथा लोहा व इस्पात। इसमे सड़क परिवहन का अंश सर्वाधिक था।

1964-89 तक कुल मंजूर की गई सहायता में महाराष्ट्र, गुजरात उत्तर प्रदेश आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु के अंश ऊँचे रहे हैं। इस अवधि में कुल मंजूर की गई सहायता का लगभग 43% पिछड़े क्षेत्रो में स्थित औद्योगिक इकाइयों के हिस्से में आया है। इस प्रकार IDBI पिछड़े क्षेत्रो के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन दे रहा है।

विकास सहायता कोष

(Development Assistance Fund (DAF)

जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है विकास सहायता कोष औद्योगिक विकास बैंक के अन्तर्गत ही स्थापित किया गया है ताकि ज्यादा जोखिम वाली औद्योगिक परियोजनाओं को वित्तीय सहायता दी जा सके। मार्च 1965 से मार्च 1989 के अन्त तक DAF के कोषो में कुल सहायता लगभग 903 करोड रुपये की स्वीकृत हुई जिसमे से प्रयुक्त की गई सहायता की राशि 692 करोड रुपये रही।

1986 मे सरकार ने एक भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक स्थापित किया है जो IDBI का सहायक है। यह लघु उद्योग विकास कोष (SIDF) व राष्ट्रीय इक्विटी कोष (NEF) का संचालन करेगा। लघु उद्योग विकास कोष इस से लघु उद्योगो को विस्तार विविधीकरण व आधुनिकीकरण के लिए कर्ज दिये जायेंगे। औद्योगिक विकास बैंक ने जनरल फण्ड से 100 करोड रु की व्यवस्था उपर्युक्त कोष के लिए की है। वित्तीय सहायता राज्य वित्त निगमो व बैंकों आदि के माध्यम से दी जायगी। इस कोष से लघु उद्योगों के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। राष्ट्रीय इक्विटी कोष से बीमार लघु इकाइयों को सहायता दी जायगी।

निष्कर्ष—पिछले वर्षों में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने बड़े व महत्वपूर्ण प्रोजेक्टों के साथ साथ बड़ी संख्या मे मध्यम व लघु-मध्यम प्राजेक्टों को अधिक उदारतापूर्वक सहायता प्रदान की है। बैंक की यह कोशिश रही है कि संस्थागत सहायता के अभाव में कोई भी उपयोगी मध्यम व लघु मध्यम आकार की परियोजना नष्ट न हो जाय। इसके लिए बैंक की पुनर्वित्त व पुनर्कटौती की सहायता-योजनाओं में परिवर्तन किये गये हैं। इसने मध्यमकालीन निर्यात सहायता का भी अधिक उदार

बनाया है। यह सार्वजनिक क्षेत्रों के उद्योगों को भी सहायता देने लगा है। इसने अल्पविकसित क्षेत्रों के विकास पर भी विशेष ध्यान दिया है।

भावी योजनाओं में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को आगे बढाना है। भारत में औद्योगिक विकास बैंक के ऊपर औद्योगिक विकास की नई जिम्मेदारियाँ आई हैं। IDBI की नई स्कीमें :—

(i) उद्यम पूँजी निधि-योजना (Venture Capital Fund Scheme) :- स्वदेशी टेक्नोलोजी के विकास व उपयोग तथा आयातित टेक्नोलोजी के अनुकूलन व विकास के लिए IDBI ने उद्यम पूँजी निधि-योजना चालू की है।

इस योजना में से इन कार्यों के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

(ii) वस्त्रोद्योग आधुनिकीकरण निधि योजना (Textile Modernisation Fund Scheme) इसके अन्तर्गत वस्त्रोद्योग के आधुनिकीकरण के लिए कताई व मिश्रित वस्त्र मिलों को सहायता दी जाती है।

यह अगस्त 1986 से लागू हुयी है। आशा है इन नई स्कीमों से उद्योगों को काफी लाभ होगा।

(VII) भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम (IRCI) अब भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (IRBI)

भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम (Industrial Reconstruction Corporat on of India) अप्रैल, 1971 में बीमार व बन्द मिलों के पुनर्निर्माण व पुनर्स्थापन में मदद देन के लिए स्थापित किया गया था। इसका कार्यालय कलकत्ता में स्थित है। इसकी अधिकृत पूँजी 25 करोड रुपये रखी गयी है और 10 करोड रुपये की निर्गमित पूँजी IDBI, LIC, ICICI, SBI व राष्ट्रीयकृत बैंकों ने ली है। प्रदत्त पूँजी 5 करोड रुपये है। भारत सरकार ने इसे 10 करोड रुपये का ब्याज मुक्त कर्ज भी दिया है। यह रिजर्व बैंक, औद्योगिक विकास बैंक व पूँजी बाजार से आवश्यकतानुसार ऋण भी ले सकता है।

प्रगति[1]—(i) अपनी स्थापना के समय से लेकर 31 मार्च, 1988 तक इसने औद्योगिक इकायों को 725 करोड रुपयों की राशि स्वीकृत की जिसमें से लगभग 511 करोड रुपये की राशि वितरित की गई। 1987-88 में स्वीकृत ऋणों की राशि लगभग 186·5 करोड रु. व वितरित राशि 102 करोड रु. रही। इसने बैंक व अन्य संस्थाओं के माध्यम से भी वित्तीय सहायता की व्यवस्था की है। इन सब सहायता कार्यों से हजारों व्यक्तियों का रोजगार कायम रखा जा सका है। यदि निगम मदद नहीं करता तो ये इकाइयां सम्भवतः बन्द हो जातीं और काफी व्यक्ति बेकार हो जाते।

---

1. Report on Development Banking in India 1987-88, pp. 45-46, ch. 10.

प्राप्त सहायता मे परिवहन उपकरण रबड, वस्त्र, बेसिक मेटल तथा वस्तुओं के उद्योग-समूहों को अधिकांश सहायता मिली है। शेष सहायता कागज, रसायन मशीनरी व अन्य उद्योगों को प्राप्त हुई है।

अगस्त 1984 मे IRCI एक बिल पास करके भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (IRBI) मे बदल दिया गया ताकि यह अपना काम अधिक सुचारु रूप से कर सके।

(VIII) भारतीय सामान्य बीमा निगम (GIC) व इसकी सहायक इकाइयां*

1973 मे देश मे सामान्य बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण के बाद मे GIC व इसकी चार सहायक इकाइयां औद्योगिक परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती रही हैं। यह अपनी सहायता ऋणों अभिगोपन, प्रत्यक्ष अंशदान आदि के रूप मे देता है।

1987-88 (अप्रैल-मार्च) मे इसने 98 करोड रु की सहायता स्वीकार की तथा 104 करोड रु. की वितरित की (पहले की बकाया सहित)। यह सहायता सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र व संयुक्त क्षेत्र के उपक्रमो को दी गई है। निगम की सहायता का विशेष लाभ निम्न उद्योगो को मिला है—टेक्सटाइल्स, मशीनरी, विद्युत मशीनरी, विद्युत सृजन सीमेंट, लोहा व इस्पात आदि।

(ix) आवास-विकास वित्त निगम लि. (HDFC Ltd.)—1977 मे ICICI ने इसकी स्थापना मे मदद दी ताकि मध्यम व निम्न आय वालों को शहरों व गाँवों मे मकान बनाने व खरीदने के लिए दीर्घकालीन कर्ज की सुविधा मिल सके।

यह व्यापारिक बैंकों से अवधि-ऋण लेता है तथा जमाएँ स्वीकार करता है। 1987-88 (अप्रैल-मार्च) मे इसने 297 करोड रु. के ऋण स्वीकृत किये तथा 221 करोड रु वितरित किये। यह अमेरिका के पूँजी-बाजार से कर्ज लेने का भी प्रयास कर रहा है।

(x) भारत का आयात-निर्यात बैंक (Exim Bank)—यह संसद के अधिनियम के अन्तर्गत 1 जनवरी, 1982 को स्थापित किया गया था। इसने 1 मार्च 1982 मे कार्य चालू किया था। इसने IDBI से सभी कार्य ले लिए हैं जिनका सम्बन्ध निर्यातकों को वित्तीय सहायता देने, विदेशी ग्राहकों को उधार देने, निर्यात साख पर पुनर्वित्त की सुविधा देने, आदि से था। इससे परिवहन-उपकरण, शक्ति-सृजन व वितरण-उपकरण के निर्यात की वित्तीय व्यवस्था मे मदद मिली है। दक्षिण-पूर्वी एशिया, अफ्रीका, पश्चिमी एशिया आदि को कई प्रकार की भारतीय मशीनरी

---

*दी यूनाइटेड इण्डिया इन्श्योरेन्स क. लि, ओरियेन्टल फायर एण्ड जनरल इन्श्योरेन्स क. लि, दी नेशनल इन्श्योरेन्स क. लि., तथा दी न्यू इण्डिया एश्योरेन्स क. लि.।

का निर्यात किया गया है। 1987 मे इसने 691 करोड़ रु. की फण्डेड सहायता स्वीकृत की जिसमे से 599 करोड रु. की प्रयुक्त हुई।

लघु व मध्यम श्रेणी के उद्योगों के लिए वित्तीय व्यवस्था

भारत के औद्योगिक ढाचे मे लघु उद्योगो के महत्व को स्वीकार किया गया है। इनके लिए स्थिर पूंजी व कार्यशील पूंजी दोनो की आवश्यकता होती है। इनको पूंजी प्रदान करने वाले कुछ परम्परागत साधन रहे हैं, लेकिन आधुनिक युग मे वे अपर्याप्त सिद्ध हो चुके हैं। लघु उद्योगों के स्वामी प्राय: अपनी पूंजी से कार्यारम्भ करते हैं। उन्हें समय-समय पर सर्राफो, महाजनो व व्यापारियो से पूंजी की सहायता मिलती है। वे अपने मित्रो व सम्बन्धियो से भी पूंजी जुटाते हैं। लेकिन ये साधन अब लघु उद्योगों के विकास के लिए पर्याप्त नही माने जा सकते।

लघु उद्योग प्राय: व्यक्तिगत स्वामित्व, साझेदारी अथवा निजी सीमित दायित्व वाली कम्पनियों के आधार पर सगठित किये जाते हैं। कही-कही ये सार्वजनिक कम्पनियो के रूप मे भी स्थापित किये जाते हैं। इन्हे संगठित मुद्रा-बाजार से पूंजी नहीं मिल पाती है क्योंकि इनके शेयरो का बिकना अत्यन्त कठिन होता है। आजकल लघु उद्योगों को भारतीय स्टेट बैंक तथा राष्ट्रीयकृत बैंको से ऋण की सुविधा काफी बढा दी गई है।

लघु व मध्यम उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति के साधन इस प्रकार हैं: (1) उद्योगों को सरकारी सहायता सम्बन्धी अधिनियमों के अन्तर्गत *(State Aid to Industries Act)* *मिलने वाली पूंजी, (2) राज्य वित्त निगम* (SFC); (3) राज्य औद्योगिक विकास निगम (SIDC), (4) भारतीय स्टेट बैंक व *इनसे सम्बद्ध अन्य बैंक, (5) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, तथा (6) रिजर्व बैंक की* साख गारन्टी-व्यवस्था के अन्तर्गत लघु उद्योगो की वित्तीय सहायता।

1. उद्योगों को सरकारी सहायता अधिनियमों के अन्तर्गत मिलने वाली पूंजी—राज्य वित्त निगम बनने से पूर्व राज्य सरकारें इन अधिनियमो के अन्तर्गत लघु उद्योगो को ऋण प्रदान करती थी। सर्वप्रथम 1952 में तमिलनाडु मे एक अधिनियम पास हुआ था। बाद में अन्य राज्यो में भी ऐसे अधिनियम पास किये गये। इनके अन्तर्गत राज्य सरकारें अपने वार्षिक बजट मे लघु एव मध्यम उद्योगो को उधार देने के लिए धन की व्यवस्था करती रही है। आवेदन-पत्र की पर्याप्त जाच करने के बाद उधार की राशि स्वीकार की जाती है। भारत मे ये ऋण अधिक लोकप्रिय नही रहे हैं। इसके कई कारण हैं, जैसे सरकार प्रतिवर्ष उधार के लिए मामूली रकम अलग रखती है, एक व्यक्ति को थोडी रकम प्राप्त हो सकती है, उधार की राशि स्वीकृत होने मे बहुत समय नष्ट हो जाता है तथा उधार का सौदा गुप्त नही रखा जाता। इन कारणों से इन अधिनियमो के अन्तर्गत मिलने वाली वित्तीय सहायता सफल प्रमाणित नहीं हुई है। केन्द्रीय सरकार राज्यों को ऋण व अनुदान देती है ताकि लघु उद्योगो की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

2 राज्य वित्त निगम (State Financial Corporations) (SFCs)— लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने 1951 में राज्य वित्त निगम अधिनियम पास किया था। इस अधिनियम के अन्तर्गत इस समय 18 राज्य वित्त निगम स्थापित हो चुके हैं। इसमें तमिलनाडु का औद्योगिक विनियोग निगम लि. भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत 1948 में स्थापित किया गया था। लेकिन यह भी अन्य वित्तीय निगमों की तरह ही काम करता है।

राज्य वित्त निगम लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों को मध्यम व दीर्घकालीन साख प्रदान करते हैं। ये भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के ढंग पर ही बने हैं और उसके छोटे रूप हैं। ये निजी उद्यमकर्ताओं, साझेदारी फर्मों एवं निजी सीमित दायित्व वाली कम्पनियों को भी साख प्रदान करते हैं। राज्य वित्त निगमों की पूँजी में राज्य सरकार, रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, अन्य वित्तीय संस्थाओं एवं आम जनता का भाग होता है। राज्य वित्त निगम अधिक से अधिक 20 वर्ष के लिए ऋण दे सकते हैं। एक राज्य वित्त निगम की अधिकृत शेयर-पूँजी प्राय 50 लाख रुपये से लेकर 5 करोड़ रुपये तक होती है। ये बाँड व ऋणपत्र बेचकर भी पूँजी प्राप्त कर सकते हैं। इन्हें जनसाधारण से जमा प्राप्त करने का अधिकार होता है।

राज्य वित्त निगम लघु उद्योगों की सम्पत्ति की जमानत पर ऋण देते हैं और अब ये 60 लाख रुपये तक का ऋण दे सकते हैं। राज्य वित्त निगम कम्पनियों को प्रत्यक्ष ऋण व अग्रिम राशियाँ देते हैं, इनके शेयर व ऋणपत्रों का अभिगोपन करते हैं तथा ऋणपत्रों की बिक्री पर गारण्टी देते हैं एवं ऋणपत्र स्वयं भी खरीदते हैं।

राज्य वित्त निगमों के कार्यों की प्रगति—पिछले वर्षों में राज्य वित्त निगमों द्वारा प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता में काफी वृद्धि हुई है। 1970-71 (अप्रैल-मार्च) में इन्होंने 50 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता स्वीकार की जिसमें से 34 करोड़ रुपये की राशि वितरित की गई। 1987-88 की अवधि के लिए वित्तीय सहायता की स्वीकृत राशि 1308 करोड़ रुपये तथा वितरित राशि 941 करोड़ रुपये रही। राज्य वित्त निगमों द्वारा प्रदत्त लगभग सम्पूर्ण सहायता ऋणों के रूप में पायी जाती है। राज्य वित्त निगमों की सहायता से निम्न उद्योगों ने विशेष लाभ उठाया है—

रसायन व रसायन-पदार्थ, खाद्य प्रोसेसिंग, सेवाएँ तथा टेक्सटाइल्स। पिछड़े क्षेत्रों व लघु क्षेत्रों को विशेष रूप से मदद दी गई है।

राज्य वित्त निगमों के समक्ष एक गम्भीर समस्या यह है कि इनको अपने उधार लेने वालों से मूलधन व ब्याज समय पर नहीं मिल पाता है। असम व उड़ीसा में स्थिति विशेष रूप से गम्भीर है और गुजरात, हरियाणा, राजस्थान, केरल तथा हिमाचल प्रदेश में असन्तोषजनक रही है। परियोजनाओं के निर्माण व चालू करने

1987-88 में इन्होंने 636 करोड़ रुपये की कुल वित्तीय सहायता स्वीकार की तथा 448 करोड़ रुपये की वितरित की। ये राशियां पिछले वर्ष से ज्यादा रही हैं।

इनकी सहायता से वस्त्र उद्योग, रसायन, खाद्य, लोहा व इस्पात, मैटल पदार्थों, कागज, मशीनरी आदि उद्योगों का विशेष रूप से लाभ पहुँचा है। इनको IDBI से पुनर्वित्त की सुविधाएँ मिलने लगी हैं।

IDBI ने सितम्बर, 1976 में नये उद्यमकर्त्ताओं के लिए सीड पूँजी-स्कीम (seed capital scheme) चालू की थी जो SIDCs, SIICs के मार्फत कार्यान्वित की जाती है। इसके अन्तर्गत मध्यम पैमाने की नई इकाइयों के लिए जिनकी प्रोजेक्ट लागत एक करोड़ रुपये से अधिक न हो, सहायता दी जाती है।

राजस्थान में भी 1969 में राज्य औद्योगिक व खनिज विकास निगम (RIMDC) स्थापित किया गया था। 1979 में खनिज निगम के अलग से बन जाने पर इसका नाम राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम लि. (Rajasthan State Industrial Development and Investment Corporation Ltd. (RIICO) कर दिया गया था। यह सार्वजनिक एवं संयुक्त क्षेत्र में उद्योग स्थापित कर रहा है। कुछ वर्ष पूर्व डूंगरपुर जिले में मांडो की-पाल नामक स्थान में स्थापित किये जाने वाले फ्लोराइट बेनीफिसिएशन प्लान्ट पर प्रगति हुई है। टौंक में चमड़ा रंगने का कारखाना स्थापित किया गया जो घाटे में रहा है। अन्य औद्योगिक उपक्रम भी स्थापित किये जा रहे हैं। यह इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग का विकास करने का प्रयास कर रहा है।

4. भारतीय स्टेट बैंक और इसके सहायक बैंकों का लघु उद्योगों के लिये वित्तीय व्यवस्था करने में स्थान—अपनी स्थापना के समय से ही स्टेट बैंक लघु उद्योगों का वित्तीय सहायता पहुँचाने के कार्य में महत्वपूर्ण भाग लेता रहा है। इसने सहायता की उदार योजना के अन्तर्गत लघु उद्योगों को ऋण स्वीकृत किये हैं।

स्टेट बैंक ने लघु उद्योगों को विस्तार व आधुनिकीकरण के लिए मध्यम-कालीन ऋण भी प्रदान किये हैं। इसके अतिरिक्त किस्तों की साख योजना (Instalment Credit Scheme) के अन्तर्गत (जिसमें लघु व मध्यम आकार के व्यवसायी साज-सामान या मशीनरी खरीदने की सुविधा पा सकें) स्टेट बैंक व सहायक बैंकों ने ऋण स्वीकार किये हैं। इसने औद्योगिक सहकारी संस्थाओं को भी वित्तीय सहायता प्रदान की है।

स्टेट बैंक ने राज्य सरकारों के ग्रामीण उद्योग प्रोजेक्टों में लगायी जाने वाली इकाइयों को भी आवश्यक वित्त प्रदान किया है।

5 राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लि. (The National Small Industries Corporation Ltd) (NSIC Ltd)—यह निगम फरवरी, 1955 म स्थापित किया गया था। यह लघु उद्योगों के विकास के लिए विविध प्रकार के कार्य करता है। इसके अ तर्गत लघु इकाइयों की आधुनिक मशीनें किस्तों पर मिल सकती है। 1987-88 मे इसने 21 9 करोड़ रु की मशीने किस्तो पर सप्लाई की। निगम विदेशी मुद्रा भी देता है ताकि विदेशो से मशीनें खरीदी जा सकें। इसने लघु उद्योगों के माल के निर्यात को भी प्रोत्साहन देना चालू किया है। निगम न कच्चे माल के डिपो स्थापित करके विभिन्न प्रकार के कच्चे माल के वितरण की व्यवस्था की है।

6 भारतीय रिजर्व बैंक का लघु उद्योगो की वित्त-व्यवस्था मे योगदान-(अ) राज्य वित्त निगमो के माध्यम से—रिजर्व बैंक न विभिन्न राज्यो म स्थापित वित्त निगमो की पूंजी मे हिस्सा लिया है। यह व्यवस्था दीर्घकालीन ऋणों के सम्बन्ध मे होती है।

(आ) राज्य सहकारी बैंक के माध्यम से – रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17 (2) (bb) के अनुसार यह राज्य सहकारी बैंको को कुटीर व लघु उद्योगो के उत्पादन व बिक्री से सम्बन्धित कार्यों के लिए बनाये गये बिल व प्रॉमिसरी नोटो पर पुनर्कटौती (Rediscount) की सुविधा देता है। ये बिल या नोट 12 महीने की अवधि क होने चाहिए और इनके मूलधन व ब्याज की गारण्टी राज्य सरकार की होती है। इस प्रकार रिजर्व बैंक सहकारी बैंको के माध्यम से लघु उद्योगो के लिए अल्पकालीन पूंजी की व्यवस्था करता है।

(इ) रिजर्व बैंक की साख-गारण्टी स्कीम—1 जुलाई 1960 से रिजर्व बैंक ने 22 जिलो मे साख गारण्टी स्कीम लागू की थी, जिसके अन्तर्गत बैंकों एव अन्य वित्तीय सस्थाओ द्वारा लघु उद्योगो को प्रदान किये गये ऋणो पर रिजर्व बैंक गारटी देता था तथा ऋणों की जोखिम मे भागीदार हो जाता था। गारण्टी स्कीम का उद्देश्य वित्तीय सस्थाओ द्वारा लघु उद्योगों को पूंजी देने के कार्यक्रम को प्रोत्साहन देना था। 1 जनवरी, 1963 से यह स्कीम सारे देश मे लागू कर दी गई। इसे स्थायी आधार पर सचालित करने का निर्णय किया गया तथा पिछले वर्षों म इसको काफी उदार बनाया गया है। गारण्टी कमीशन घटाया गया है जिससे इस योजना का काफी विस्तार हुआ है।

भारत सरकार ने 31 मार्च 1981 को रिजर्व बैंक द्वारा सचालित साख-गारण्टी स्कीम समाप्त करके एक अप्रैल 1981 से एक लघु-ऋण (लघु-उद्योग) गारण्टी स्कीम लागू की है जो जमा बीमा व गारण्टी निगम द्वारा सचालित की जाती है।

यह स्कीम सभी व्यापारिक बैंकों, प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों, राज्य वित्त निगमों व सहकारी बैंकों के लिए खुली है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लघु उद्योगों के लिए पहले की अपेक्षा वित्तीय सुविधाएँ बहुत बढ गई हैं। राज्य वित्त निगम, राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम, भारतीय स्टेट बैंक राष्ट्रीयकृत बैंक, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम एव *विभिन्न व्यापारिक बैंक, (गारण्टी स्कीम का लाभ उठाकर)* लघु उद्योगों को वित्तीय सुविधाएँ बढाने मे लगे हुए हैं। यदि वित्त के अतिरिक्त इनकी अन्य समस्यायें भी हल की जायें तो लघु उद्योगों का भविष्य काफी उज्जवल बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अब तक औद्योगिक वित्त व्यवस्था मे बहुत परिवर्तन हुए हैं। बड़े पैमाने के उद्योगों को वित्त प्रदान करने के लिए कई निगम स्थापित किये गये है। बीमार व बन्द मिलों के पुनर्निर्माण के लिए अब भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (IRBI) काम कर रहा है। लघु व मध्यम आकार के उद्योगों की अल्पकालीन व दीर्घकालीन पूंजी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी कई सस्थाएं स्थापित की गयी हैं। इस प्रकार औद्योगिक वित्त की सुविधाएं काफी बढ गयी हैं। भविष्य मे औद्योगिक वित्त की मांग और बढेगी, क्योंकि देश मे सभी प्रकार के उद्योगों का विकास किया जायगा। वित्त की बढती हुई मांग को पूरा करना आवश्यक होगा, वरना औद्योगिक प्रगति तेजी से नहीं हो सकेगी। भारत मे वित्तीय सस्थाओं का कार्य क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है। विभिन्न सार्वजनिक वित्तीय सस्थाएँ वित्त प्रदान करने के साथ-साथ उद्योगों के लिए विकास-सम्बन्धी कई आवश्यक कार्य भी करती हैं जैसे आवश्यक प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलाना, परियोजनाओं के तकनीकी स्तर की उचित जाँच *करना एव विभिन्न सस्थाओं मे परस्पर तालमेल व समन्वय स्थापित करना आदि।* अत औद्योगिक वित्त के क्षेत्र मे एक गुणात्मक परिवर्तन हो रहा है जो वास्तव मे बहुत सराहनीय है।

पिछली लगभग दो दशाब्दियों मे औद्योगिक वित्त की व्यवस्था बढाने के लिए नये सगठनों का निर्माण किया गया है जिससे इस क्षेत्र मे काफी परिवर्तन आ गया है। 1987-88 (अप्रैल-मार्च) की अवधि मे IDBI, IFCI, ICICI, ISIRBI, *UTI LIC GIC* व उनकी सहायक इकाइयों तथा *SFCs* व *SIDCs* ने कुल *9298* करोड रुपये की वित्तीय सहायता स्वीकार की, जिसमे से 6779 करोड रुपये की वित्तीय सहायता वितरित हुई। कुल स्वीकृत सहायता मे IDBI का अश लगभग आधा था। इसमे ऋण तथा शेयर व डिबेंचरों के अभिगोपन एव इनमे प्रत्यक्ष अश-दान आदि सभी प्रकार की वित्तीय सहायता शामिल हैं। औद्योगिक विकास के लिए अवधि-वित्त-व्यवस्था (term-financing) काफी बढी है और औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना ने इसे एक नया मोड दिया है। इस प्रगति पर सन्तोष प्रकट किया

जा सकता है। लेकिन भविष्य में योजनाकाल में औद्योगीकरण की गति तेज होने से पूँजी की माग तेजी से बढ़ेगी। इसलिए इसकी पूर्ति में वृद्धि करने की आवश्यकता होगी। पिछले वर्षों में औद्योगिक वित्त के क्षेत्र में कुछ कमियाँ भी देखी गयी है जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है।

औद्योगिक वित्त के क्षेत्र में दोष अथवा कमियाँ
(Shortcomings in the field of Industrial Finance)

यद्यपि पिछले तीन दशकों में औद्योगिक वित्त के ढाँचे में काफी सुधार हुआ है। फिर भी कुछ दोष रह गये है जिन्हे निकट भविष्य में दूर किया जाना चाहिए। औद्योगिक लाइसेंस नीति-जाँच समिति ने औद्योगिक वित्त के सम्बन्ध में जुलाई, 1969 की अपनी रिपोर्ट में निम्न कमियों की ओर ध्यान आकर्षित किया था—

1 **विभिन्न संस्थाओं का अव्यवस्थित फैलाव तथा कार्यों में दोहराव—** विभिन्न संस्थाओं के कार्यों में दोहराव (Duplication) की स्थिति उत्पन्न हो गई है। IDBI, IFCI ICICI, के कार्यों में बहुत कुछ समानता दिखलाई देती है। विदेशी ऋण प्रदान करने में IFCI व ICICI के कार्यों में दोहराव पाया जाता है। लेकिन विभिन्न कार्य बढ़ जाने से यह दोहराव आवश्यक समझा जाने लगा है।

2. **LIC, UTI व SBI अपने प्रमुख कार्यों के अलावा उद्योगों को वित्त प्रदान करने के क्षेत्र में काफी आगे आ गये हैं।** इससे इनके विभिन्न कामों के बीच परस्पर समन्वय स्थापित करने की समस्या उत्पन्न हो गयी है।

3 **औद्योगिक वित्त के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट नीति सामने नहीं आ पायी है। प्राय नीची प्राथमिकता वाले उद्योगों को वित्त प्राप्त हो जाता है।** IFCI ने अवश्य सहकारी इकाइयों को ऋण प्रदान किया है।

पिछली दशाब्दी में वित्तीय सहायता का उद्योगवार वितरण देखने से पता चलता है कि सर्वाधिक राशि इन्जीनियरी उद्योगों को मिली है और उपभोक्ता माल के उद्योगों को कम राशि मिली है। इससे देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की मांग व पूर्ति में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है।

4 **वित्तीय संस्थाओं ने बड़े औद्योगिक घरानों को विशेष रूप से मदद देकर भारत में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को बढ़ावा दिया है।** इन्होंने पिछड़े क्षेत्रों में नये उद्यमकर्त्ताओं को प्रोत्साहन देने में अपेक्षाकृत कम सफलता प्राप्त की है।

5 **प्रोजेक्ट की स्वीकृति व सहायता के वितरण में अत्यधिक विलम्ब पाया गया है।** भूतकाल में एक समस्या यह रही है कि एक ही प्रोजेक्ट की जाँच या मूल्यांकन का कार्य विभिन्न संस्थाओं द्वारा अलग-अलग कराया गया है जो अनावश्यक था क्योंकि IDBI के नेतृत्व में एक संस्था का मूल्यांकन ही काफी था। यदि IDBI

किसी प्रोजेक्ट को सुदृढ़ मानता है तो उसे सभी संस्थाओं द्वारा सुदृढ़ माना जाना चाहिए। इससे आवेदनकर्त्ता के लिए काफी सहूलियत हो जायेगी। हाल म कुछ संस्थाओं के द्वारा मिलकर सहायता देने के कार्यक्रम को लागू करने से स्थिति म काफी सुधार हुआ है।

6 निजी क्षेत्र के उद्योगो म पूंजी तो लगायी गयी है लेकिन उनके प्रबन्ध मे सार्वजनिक/विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं ने भाग नहीं लिया है। इस प्रकार निजी क्षेत्र को सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त हो गया है लेकिन समाज के प्रति इन्होंने अपना दायित्व पूरी तरह नहीं निभाया है।

7 श्री एस एल शेट्टी (S L Shetty) का मत है कि सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं ने निजी क्षेत्र मे पूंजी लगाकर पूंजी गहन परियोजनाओं (capital-intensive projects) को प्रोत्साहित किया है जिससे उत्पादन व रोजगार को बढाने मे आवश्यक सफलता नहीं मिल पायी है। इन्होंने देश मे एक ऐसे औद्योगिक ढांचे को पनपाया है जो नागरिकों को पर्याप्त रोजगार नहीं दे सका है।

8 सहायता के राज्यवार वितरण को देखने से पता चलता है कि पिछले वर्षों म अधिक विकसित राज्यों जैसे महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल गुजरात कर्नाटक व तमिलनाडु को ही औद्योगिक विकास के लिए अधिक धनराशि उपलब्ध हुई है। असम उडीसा मध्यप्रदेश राजस्थान व केरल को कुल सहायता कम मात्रा मे मिल पायी है। विकसित राज्यो ने पिछडे प्रदेशों को पिछडे राज्यो के पिछड प्रदेशो/जिलो की तुलना म अधिक महत्व दिया गया है।

9 औद्योगिक उपक्रम अधिकाधिक मात्रा म सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं पर आश्रित रहने लग है और पूंजी बाजार के परम्परागत साधन कमजोर पड गए हैं। यह निर्भरता बड पैमाने के उद्योगों में भी पायी जाती है।

10 SFCs आदि के सम्बन्ध म भुगतान की बकाया राशियो की समस्या जोर पकडती जा रही है। अत ऋणों के उपयोग की देख रेख बढाने की आवश्यकता है। बीमार इकाइयों की समस्या के बढने से भुगतान प्राप्त करने की कठिनाइयां अधिक जटिल हो गई हैं। मार्च 1970 म नियत समय पर न चुकाई जाने वाली राशि का प्रतिशत (default percentage) 17 ३ था जो मार्च 1985 मे बढकर 47 5 हो गया। हिमाचल प्रदेश गुजरात महाराष्ट्र तमिलनाडु असम उडीसा, पश्चिमी बंगाल व केरल मे डिफाल्ट का प्रतिशत ऊँचा पाया गया है।

11 हाल मे सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम जैसे राष्ट्रीय थर्मल पावर निगम भारतीय टेलीफोन उद्योग भारतीय रेलवे वित्त निगम द्वारा बाजार मे बांड बेचकर धन एकत्र करने के प्रयास से निजी क्षेत्र के लिए वित्तीय साधनों की उपलब्धि पर विपरीत प्रभाव पडने लगा है। इन बांडों की खरीद पर आयकर की छूटें भी दी जाती हैं जिससे य बैंको आदि के लिए भी काफी लाभप्रद हो गय है।

सार्वजनिक क्षेत्र के बाडो पर निजी की शर्तें अधिक अनुकूल होने से ये जनता मे लोकप्रिय हुए हैं। अतः भविष्य मे जनता की सीमित बचत के लिए निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो म परस्पर होड लगेगी। सरकार को अपनी तरफ कोष आकर्षित करने के लिए ज्यादा विभेदकारी नीति का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, अन्यथा विकास मे निजी क्षेत्र अपनी कारगर भूमिका नहीं निभा सकेगा।

औद्योगिक वित्त-व्यवस्था में सुधार के सुझाव
(Suggestions for Improvement in the system of Industrial Finance)

1 पूंजी-बाजार को सक्रिय करने की आवश्यकता—औद्योगिक वित्त का प्रमुख स्रोत पूंजी-बाजार माना गया है जहाँ कम्पनियाँ अपने शेयर व ऋण-पत्र बेच-कर वित्तीय साधन जुटाती हैं। यह औद्योगिक वित्त का परम्परागत व प्राथमिक स्रोत कहा जा सकता है। कुछ वर्ष पूर्व पूंजी-बाजार सक्रिय व सबल नहीं था। 1985-86 मे संघीय बजट म प्रत्यक्ष करो म कमी करने व आर्थिक नियन्त्रणों व नियमनों में ढील देने से शेयर-बाजार पर बहुत अनुकूल असर आया था तथा शेयरों की खरीद काफी बढी थी। आशा है आगे भी निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देने वाली नीतियों के अपनाने से पूंजी-निर्गम से अधिक वित्त की व्यवस्था करना सम्भव हो सकेगा जिससे सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं पर भार कम हो जायगा। बडे पैमाने की इकाइयाँ अपने अवितरित मुनाफो का ज्यादा मात्रा मे उपयोग कर पायेंगी।

2 वित्त निगमो एव संस्थाओ के साधनों का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे ये निजी क्षेत्र को ज्यादा ऋण प्रदान कर सकें। लेकिन इसकी भी अपनी मर्यादाएँ होती हैं। अब औद्योगिक इकाइयो का जीवन बीमा निगम तथा भारतीय यूनिट ट्रस्ट जैसे संस्थागत विनियोगकर्त्ताओ पर निर्भर रहना पडता है। लोगो को अधिक बचत करने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

3 आज भी नये उद्यमकर्त्ताओं को (जो मध्यम आकार की फर्मों का निर्माण करना चाहते हैं और जो पिछडे क्षेत्रो मे उद्योग स्थापित करना चाहते हैं) पूंजी की कठिनाई का सामना करना पडता है। लेकिन औद्योगीकरण के विकास व विस्तार के साथ-साथ यह वर्ग बढता जाता है। अत इनके लिए पूंजी की व्यवस्था बढाना आवश्यक हो गया है। वित्त प्रदान करने वाली संस्थाओं को ऋण मन्जूर करते समय ग्राहक के पुराने रिकार्ड व प्रतिष्ठा पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए, वरन् कम्पनी की भावी आमदनी को देखकर जोखिम उठाने के लिए भी तैयार होना चाहिए। इस सम्बन्ध मे ब्याज की दर मे जोखिम की मात्रा के अनुसार वृद्धि की जा सकती है। विशिष्ट वित्तीय संस्थाओ की पूंजी लगाने की क्रियाओ पर लोकसभा व विधान-

6. भविष्य मे अभिगोपन (Underwriting) के कार्य को आगे बढाना चाहिए—आवश्यकता पडने पर विभिन्न वित्तीय सस्थाएं इस सम्बन्ध मे सयुक्त कार्यक्रम भी अपना सकती हैं।

7 तकनीकी जांच सम्बन्धी सस्थाओ का विकास—दीर्घकालीन वित्त प्रदान करते समय सम्बन्धित कार्यक्रमो की विस्तृत तकनीकी व आर्थिक जांच करना आवश्यक होता है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए बडी तकनीकी व आर्थिक सस्थाओ की सेवाओ का उपयोग किया जा सकता है। ये सेवायें व्यापारिक बैंको व सभी विशिष्ट सस्थाओ के काम आ सकती है। ऐसी सस्थाओ की स्थापना व विकास का काम किया जाना चाहिए। पिछले वर्षों मे IFCI, IDBI व ICICI द्वारा तकनीकी सलाहकार सगठन स्थापित किये गये हैं।

8 पहले इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि राज्य वित्त निगमो को आपस मे कोषो का प्रयोग करना चाहिए, जिससे कुछ राज्यो मे वित्त निगमो के पास कोषो का अभाव और कुछ के पास आधिक्य न रहे।

9. सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओ को आवेदन-पत्रो पर शीघ्रतापूर्वक विचार करना चाहिए जिससे सम्बन्धित कम्पनियो को ऋण मिलने मे अनावश्यक विलम्ब न हो। एक प्रोजेक्ट का मूल्यांकन व जांच एक सस्था के द्वारा कर लिए जाने पर उसकी रिपोर्ट का उपयोग किसी अन्य वित्तीय सस्था द्वारा किया जा सकता है जिससे वित्त की स्वीकृति मे होने वाला विलम्ब काफी कम हो जायगा। इससे औद्योगिक परियोजनाओ को चालू करने मे भी सहूलियत रहेगी।

10 नये उद्यमकर्ताओ को प्रोत्साहन—ऊपर जितने भी सुझाव दिये गये हैं, उनसे निजी क्षेत्र मे औद्योगिक उपक्रमो के लिए पूंजी की व्यवस्था मे काफी वृद्धि होगी। लेकिन वित्त की सुविधा बढ जाने मात्र से ही औद्योगिक उपक्रम सामने नही आ जायेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि नये उद्यमकर्ता व नये प्रबन्धक ऐसी योजनाएं प्रस्तुत करें जो काफी स्पष्ट, सुदृढ, लाभप्रद व सबल दिखाई दें और उनमे पूंजी लगाने मे साधारणतया कोई भी वित्तीय सस्था न हिचके। बहुधा यह देखा जाता है कि अधिकाश कार्यक्रम अधूरे, अस्पष्ट व असन्तोषजनक किस्म के होते हैं जिनमे पूंजी लगाना काफी जोखिम से भरा होता है।

11 वित्तीय सस्थाओ को सहायता प्राप्त उद्योगो के प्रबन्ध मे भाग लेना चाहिए। अभी तक इस दिशा मे मामूली प्रगति हुई है। LIC भी एक निष्क्रिय साझेदार बना रहा है। भविष्य मे यह स्थिति बदली जानी चाहिए।

आशा है औद्योगिक वित्त के ढांचे मे किये जाने वाले विभिन्न परिवर्तनो से भविष्य मे उद्योगो के लिए अल्पकालीन, मध्यमकालीन व दीर्घकालीन ऋणो की पूर्ति मे काफी वृद्धि होगी। ग्रामीण, लघु, मध्यम एव बडे पैमाने के उद्योगो के लिए सभी अवधियो के लिए वित्त की पर्याप्त पूर्ति के होने से ही भारत मे औद्योगीकरण की

प्रक्रिया तेज की जा सकेगी। साथ मे यह व्यवस्था सार्वजनिक, निजी, संयुक्त तथा सहकारी सभी प्रकार के क्षेत्रों के उद्योगों के लिए होनी चाहिए। इस प्रकार औद्योगिक वित्त की आवश्यकता विभिन्न प्रकार के उद्योगो के लिए है जिसकी पूर्ति के लिए आगामी वर्षों मे काफी प्रयास करना होगा।

प्रश्न

1. भारत मे औद्योगिक वित्त के महत्वपूर्ण स्रोत क्या है ? औद्योगिक वित्त की पूर्ति कम क्यो है ? (Raj. IIyear T. D. C., 1985)
2. लघु एव कुटीर उद्योगो की वर्तमान वित्त-व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिए। आप इसमे सुधार हेतु क्या सुभाव देंगे ?
3. भारत मे बड़े पैमाने के उद्योगो के लिए वित्त प्राप्त करने के विभिन्न स्रोत लिखिए। इस सम्बन्ध मे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की भूमिका का विवेचन कीजिए। (Raj. IIyr., T. D. C., 1980)

10

औद्योगिक नीति व लाइसेंस-व्यवस्था

(Industrial Policy and Licensing System)

औद्योगिक विकास के लिए एक सुनिश्चित एवं प्रगतिशील औद्योगिक नीति की आवश्यकता होती है ताकि औद्योगिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र का स्थान निश्चित किया जा सके और सरकार की विभिन्न औद्योगिक प्राथमिकताएँ स्पष्ट हो सकें। एक उचित औद्योगिक नीति को अपनाकर ही देश की आवश्यकताओं के अनुरूप औद्योगिक विकास किया जा सकता है। औद्योगिक विकास की गति तेज की जा सकती है, औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार बढ़ाया जा सकता है, औद्योगिक विकास में प्रादेशिक असंतुलन कम किये जा सकते हैं, बहुराष्ट्रीय निगमों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है, औद्योगिक रुग्णता की समस्या हल की जा सकती है तथा ग्रामीण व लघु उद्योगों की समस्याओं का उचित समाधान निकाला जा सकता है। भारत में औद्योगिक नीति काफी चर्चा का विषय रही है। देश का औद्योगिक विकास मूलरूप से 1956 की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत ही हुआ है। भारतीय संसद में 23 दिसम्बर, 1977 को तत्कालीन जनता सरकार ने भी नई औद्योगिक नीति घोषित की थी जिसमें अति लघु या टाइनी क्षेत्र (संयन्त्र व मशीनरी में 1 लाख रुपये तक की विनियोग की सीमा) के विकास व जिला-उद्योग केन्द्रों (DICs) की स्थापना पर विशेष रूप से बल दिया गया था। 23 जुलाई 1980 को केन्द्र में तत्कालीन उद्योग राज्य-मन्त्री डॉ चरणजीत चानना ने संसद में औद्योगिक नीति सम्बन्धी वक्तव्य प्रस्तुत किया था जिसमें औद्योगिक उत्पादन को अधिकतम करने के लिए चुने हुये उद्योगों में अतिरिक्त लाइसेंसशुदा क्षमता को नियमित करने तथा कुछ उद्योगों को प्रति वर्ष 5% स्वतः विकास की सुविधा देने की बात कही गई थी। पिछले वर्षों में औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए सरकार ने कई नये कदम उठाये हैं। नई कम्प्यूटर नीति (नवम्बर 1984), नई इलेक्ट्रोनिक्स नीति (मार्च, 1985) व नई वस्त्र नीति (जून 1985) सम्बन्धित उद्योगों को नई दिशा देने के लिए बनी हैं। 1985-86 के संघीय बजट में औद्योगिक उत्पादन को

1948 के औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव में कुटीर व लघु उद्योगों के विकास पर बल दिया गया था। औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने के लिए उचित मजदूरी व श्रमिकों के लिए मकानों की सुविधा बढ़ाने की आवश्यकता स्वीकार की गई थी एवं विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में सरकारी नीति स्पष्ट की गई थी।

1948 की औद्योगिक नीति में द्वितीय श्रेणी के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की धमकी निहित थी एवं यह पूर्णतया स्पष्ट व सुलझी हुई नीति नहीं थी।

उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1951
[Industries (Development and Regulation) Act, 1951]
(IDR Act, 1951)

निजी क्षेत्र के उद्योगों को उचित दिशा में विस्तार करने एवं उनकी क्रियाओं पर नियमन रखने के लिए 1951 में उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम पास किया गया। यह 8 मई, 1952 से लागू किया गया। धीरे-धीरे इसके दायरे में अधिक उद्योग आते गये और अब यह 38 प्रकार के उद्योग-समूहों में 170 विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्योगों पर लागू है, जो इस अधिनियम की प्रथम अनुसूची में शामिल किए गए हैं। इसके प्रमुख उद्योग-समूह इस प्रकार हैं : विद्युत-उपकरण, औद्योगिक मशीनरी, उर्वरकों के अलावा रसायन सीमेंट व जिप्सम की वस्तुएँ, निरेमिक्स आदि।

इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं :

(1) पंजीकरण (Registration)—अनुसूचित उद्योगों में समस्त चालू औद्योगिक उपक्रमों को एक निर्धारित अवधि तक सरकार के पास अपना पंजीकरण कराना होता है। केन्द्रीय सरकार से लाइसेंस प्राप्त किए बिना कोई नयी औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की जा सकती, अथवा चालू संयन्त्र का काफी विस्तार नहीं किया जा सकता।

(2) विशेष संगठन—1951 के अधिनियम के अन्तर्गत उद्योगों के लिए एक केन्द्रीय सलाहकार समिति (Central Advisory Council), विकास समितियाँ (Development Councils) एवं एक लाइसेंस समिति (Licensing Committee) स्थापित करने की व्यवस्था की गई है।

(क) केन्द्रीय सलाहकार समिति (CAC)—यह मई, 1953 में स्थापित की गयी थी। इसमें उद्योग, श्रम एवं उपभोक्ता-वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। यह समिति उद्योगों की सामान्य समस्याओं पर विचार करती है और पंजीकरण व लाइसेंस के विशेष मामलों पर राय देती है। किसी उद्योग का सरकार द्वारा प्रबन्ध अपने हाथ में लेते समय भी इससे विचार-विमर्श किया जाता है।

1956 की औद्योगिक नीति की मुख्य बातें :

1. **बड़े उद्योग**—इस औद्योगिक नीति में बड़े पैमाने के उद्योगों को तीन श्रेणियों में बाटा गया। इन श्रेणियों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया गया कि इनमें राज्य का किस रूप में एवं कितना स्थान होगा। **प्रथम अनुसूची** (Schedule A) में 17 उद्योग[1] शामिल किए गए जिनके **भावी विकास की एकमात्र जिम्मेदारी सरकार के कन्धों पर डाली गयी।** लेकिन यह कहा गया कि निजी उद्यमकर्ताओं को भी अपने वर्तमान उद्योगों का विस्तार करने दिया जायगा और नई इकाइयां स्थापित करते समय सरकार निजी क्षेत्र का सहयोग ले सकेगी जिससे देश को लाभ हो सके। यदि निजी क्षेत्र का सहयोग लिया गया तो सरकार पूंजी में अधिक भाग लेगी ताकि उस उद्योग की नीति को प्रभावित कर सके। वास्तव में यह श्रेणी 1948 की नीति की प्रथम व द्वितीय श्रेणियों को मिलाकर बनाई गई थी। **17 उद्योगों को देखने से पता चलता है कि इनमें तीन प्रकार के आर्थिक कार्यों पर बल दिया गया था : आधारभूत उद्योग,** परिवहन एवं खनिज पदार्थ। भविष्य में इनका विकास सरकारी क्षेत्र में ही करने की नीति अपनाई गयी। इन तीनों का एक साथ विकास किये बिना औद्योगीकरण की नींव सुदृढ नहीं हो सकती थी। इसलिए सरकार ने उद्योगों में अपना कार्य क्षेत्र बढ़ाने का निश्चय किया जो तीव्र आर्थिक विकास के लिए उचित था। लेकिन इस प्रस्ताव में राष्ट्रीयकरण की पहले वाली धमकी कहीं भी नहीं थी। इसलिए यह अधिक व्यावहारिक व लचीली नीति मानी गयी।

उद्योग की द्वितीय अनुसूची (Schedule B) **में 12 उद्योग रखे गये**[2] **जिनके** बारे में यह कहा गया कि ये **धीरे-धीरे सरकार के स्वामित्व में आयेंगे** (Progre-

---

1 प्रथम अनुसूची के उद्योग इस प्रकार हैं : अस्त्र-शस्त्र अणु-शक्ति, लोहा व इस्पात, लोहे व इस्पात की भारी ढलाई व तैयारी, भारी सयन्त्र व मशीनरी, भारी बिजली के सयन्त्र, कोयला व लिग्नाइट, खनिज तेल, कच्चा लोहा, मैंगनीज, क्रोम, जिप्सम गन्धक, सोने व हीरे की खानें खोदना, तांबा, सीसा, जस्ता, रांगा आदि की खानें खोदना व प्रोसेसिंग करना, अणु-शक्ति के उत्पादन से सम्बन्धित खनिज, हवाई जहाज बनाना, हवाई यातायात, रेल-यातायात, समुद्री जहाज बनाना, टेलीफोन एवं इसके तार, तार एवं बेतार का सामान (रेडियो रिसीविंग सेट छोड़कर) एवं विद्युत का उत्पादन एवं वितरण।

2. ये इस प्रकार थे : छोटे खनिजों को छोड़कर 'अन्य खनिज पदार्थ,' एल्यूमिनियम एवं अलौह धातुएँ जो प्रथम सूची में नहीं हैं, मशीन टूल्स, फैरो-एलोय एवं टूल-स्टील्स, रासायनिक उद्योगों की आधारभूत सामग्री, दवा, खाद, कृत्रिम रबड, कोयले का कार्बोनाइजेशन, रासायनिक घोल, सडक यातायात एवं समुद्री यातायात।

ssively state-owned) और इस क्षेत्र मे भी साधारणतया नये कारखाने सरकार के द्वारा ही स्थापित किये जायेंगे । साथ ही निजी उद्यमकर्ताओ को भी इन उद्योगो का विकास करने का अवसर दिया जायेगा, चाहे व्यक्तिगत रूप मे अथवा सरकार की साझेदारी मे । इस अनुसूची के प्रमुख उद्योग खाद, मशीन टूल्स, दवाएँ, समुद्री एव सडक परिवहन आदि हैं ।

शेष सभी उद्योग तृतीय श्रेणी में रखे गए जिनका विकास सामान्यतया निजी क्षेत्र के लिए छोड दिया गया । लेकिन साथ मे यह भी कहा गया कि यदि सरकार चाहेगी तो इस क्षेत्र मे भी प्रवेश कर सकेगी । इस बात पर बल दिया गया कि सरकार परिवहन, शक्ति व अन्य सेवाओ का विस्तार करके तथा उचित राजकोषीय नीति अपनाकर इस क्षेत्र के उद्योगपतियो की सहायता करेगी । निजी क्षेत्रो को आवश्यक वित्तीय सुविधाएँ प्रदान की जायेगी, विशेषतया सहकारी ढग पर चलाये गये उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जायेगा । राज्य इन उद्योगों के शेयर व डिबेन्चर खरीदकर इनमे पूँजी लगाने को भी तैयार रहेगा । परन्तु निजी क्षेत्र को राज्य की आर्थिक और सामाजिक नीति के अधीन तथा सरकारी नियन्त्रण मे कार्य करना होगा ।

उद्योगो को तीन श्रेणियो मे बाटे जाने का यह अभिप्राय नही था कि ये श्रेणियाँ एक दूसरे से पूर्णतया अलग-अलग थी, बल्कि जैसा कि पूर्व विवरण से स्पष्ट होता है इन विभिन्न श्रेणियों में सार्वजनिक व निजी क्षेत्रो के बीच परस्पर गहरा सम्पर्क स्थापित करने पर जोर दिया गया । इसी नीति के अनुसार सरकार आवश्यकता पडने पर तीसरी श्रेणी मे कोई भी उद्योग चला सकती है और निजी उद्योग को अपने लिए या गौण-उत्पति के रूप मे पहली श्रेणी की वस्तुएँ भी बनाने को दे सकती है । इस प्रकार यह नीति अधिक व्यावहारिक व लोचदार मानी गयी है और देश के नियोजित आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी उपयुक्त व व्यावहारिक समझी गई है ।

इस नीति मे भी कुटीर व लघु उद्योगो के विकास, औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रो के विकास कर्मचारियो के प्रशिक्षण, औद्योगिक शान्ति व विदेशी पूँजी के प्रति भेदभाव न बरतने पर जोर दिया गया ।

1956 की औद्योगिक नीति की विशेषताएँ या गुण

1956 की औद्योगिक नीति द्वितीय योजना के बाद के वर्षों मे देश के औद्योगीकरण के लिए काफी उपयुक्त समझी गयी है । इसका भी आधार 'मिश्रित अर्थ-व्यवस्था' होने के कारण इसमे सार्वजनिक एव निजी दोनो क्षेत्रो का महत्व स्वीकार किया गया है । लेकिन इसमे सार्वजनिक क्षेत्र को आगे बढाने पर अधिक बल दिया गया है ।

सार्वजनिक क्षेत्र पर अधिक बल देने के कारण प्रारम्भिक वर्षों मे औद्योगिक नीति की निजी क्षेत्र के समर्थको ने कटु आलोचना की थी । लेकिन बाद के वर्षों मे

यह स्पष्ट हो गया कि 1956 की औद्योगिक नीति काफी लोचदार व प्रगतिशील है। इसमे अपनाया गया दृष्टिकोण सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक था। उदाहरण के लिए, भारत में उद्योगो के राष्ट्रीयकरण की नीति को एक सिद्धान्त रूप मे नहीं अपनाया गया, जैसा कि साम्यवादी देश मे होता है। सरकार ने बिना सोचे-समझे राष्ट्रीयकरण करना उचित नही समझा। लेकिन यदि राष्ट्रीय हित मे आवश्यक हुआ तो वह राष्ट्रीयकरण करन मे हिचकिचायेगी भी नही । अत. हमारी औद्योगिक नीति काफी व्यावहारिक व लचीली रही हैं। सरकार अपनी पूंजी नये कारखानो के विकास मे लगाना चाहती है। देश मे इतने औद्योगिक कार्य करने पडे हैं कि सरकार एव पूंजीपति दोनो मिलकर उन्हे करें तो भी बहुत कुछ करना शेष रह जायगा । इसलिए सरकार का नई दिशाओ मे बढना अनुचित नहीं कहा जा सकता। वास्तव मे ध्यान से देखने पर पता चलता है कि सरकार ने विकास की दृष्टि से अपने लिए वे ही क्षेत्र रखे जिनमे (क) विशाल मात्रा मे पूंजी की आवश्यकता थी तथा जिनकी व्यवस्था करना निजी क्षेत्र की शक्ति से परे था, (ख) जिनमे जोखिम ज्यादा होने से साधारणतया उद्योगपति प्रवेश करना पसन्द नही करते थे । (ग) जो सार्वजनिक सेवाओ से सम्बन्धित उपक्रम थे जिनमे सरकार का रहना राष्ट्रीय हित मे आवश्यक था, (घ) राष्ट्र के तीव्र औद्योगीकरण की नीव सुदृढ करने के लिए आधारभूत व मूल उद्योगों का विकास निजी क्षेत्र मे छोडा जाना उचित नही था ।

अत सरकार की 1956 की औद्योगिक नीति व्यावहारिक व विकासोन्मुख रही है। **इस नीति की सफलता इस बात से प्रकट होती है कि पिछले तीन दशकों मे** इस नीति ने भारत के औद्योगिक विकास की गति व स्वरूप को प्रभावित किया है। दिसम्बर 1977 मे जनता सरकार की नई औद्योगिक नीति की घोषणा हुई थी, लेकिन उसम 1956 की औद्योगिक नीति को नकारा नही गया था। केवल पिछले वर्षो के अनुभवो को ध्यान मे रखते हुए 1956 की औद्योगिक नीति को एक नया मोड दिया गया था, ताकि वह हमारी आवश्यकताओ को ज्यादा अच्छी तरह से पूरा कर सके। जुलाई 1980 मे काग्रेस (आई) के नये औद्योगिक नीति वक्तव्य मे भी मूलतया 1956 की औद्योगिक नीति को ही स्वीकारा गया था, हालांकि इसमे भी परिस्थितियो के अनुरूप आवश्यक सशोधन किये गये थे।

1970 की लाइसेन्स नीति

भारत सरकार ने नयी लाइसेन्स-नीति 18 फरवरी, 1970 को घोषित की थी जिसमे दत्त-समिति (औद्योगिक लाइसेंसिग नीति जाच समिति) की महत्वपूर्ण सिफारिशो को स्वीकार किया गया था। इससे पूर्व के वर्षो मे औद्योगिक नियोजन एव लाइसेन्स नीति पर विभिन्न क्षेत्रो मे काफी चर्चा रही थी। स्वर्गीय डॉ. आर. के. हजारी ने योजना आयोग के लिए इस विषय पर अपनी रिपोर्ट तैयार की थी। उसमें सुझाये गये उपायो को भी नई लाइसेन्स-नीति के निर्माण मे ध्यान मे रखा गया था।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में औद्योगिक लाइसेन्स-नीति पर कुछ उपयोगी सुझाव दिये गये थे। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी इस विषय पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की थीं।

लाइसेंस नीति की मुख्य बातें

1. प्रमुख क्षेत्र—'प्रमुख' (core) उद्योगों की एक सूची दी गई जिसमें अर्थव्यवस्था के आधारभूत, सुरक्षा सम्बन्धी व केन्द्रीय महत्व रखने वाले उद्योग (Basic Strategic and Critical Industries) रखे गये। इन उद्योगों के लिए विस्तृत औद्योगिक योजनाएं तैयार करने की बात कही गयी और इनके लिए प्रथमिकता के आधार पर आवश्यक साज-सामान उपलब्ध कराने का सुझाव दिया गया। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की अवधि के लिए 9 बड़े उद्योग-समूहों की सूची तैयार की गयी जिसमें कृषिगत सामान (उर्वरक, ट्रैक्टर आदि), लोहा व इस्पात, पेट्रोलियम, भारी औद्योगिक मशीनरी, इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग वगैरह शामिल किए गये।

2. भारी विनियोग क्षेत्र—'प्रमुख' क्षेत्र के अतिरिक्त 5 करोड़ रुपये से ऊपर के नये विनियोग-सम्बन्धी प्रस्ताव 'भारी विनियोग' (Heavy Investment) क्षेत्र में रखे गये। औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के लिए निर्धारित उद्योगों को छोड़कर 'प्रमुख' व 'भारी विनियोग' के क्षेत्र में अपेक्षाकृत बड़े औद्योगिक समूहों (जिनकी पूँजी 35 करोड़ रुपये से अधिक थी) तथा विदेशी कम्पनियों को भाग लेने का अवसर दिया गया।

3. मध्यम क्षेत्र—एक करोड़ से पांच करोड़ रुपये तक के विनियोग के बीच वाले मध्यम क्षेत्र (Middle Sector) में अपेक्षाकृत बड़े औद्योगिक समूहों को छोड़कर अन्य उद्यमकर्ताओं के आवेदन-पत्रों पर विशेष रूप से ध्यान देने और उनको ज्यादा उदारतापूर्वक लाइसेन्स देने की बात कही गई। साथ में यह स्पष्ट किया गया कि बड़े औद्योगिक समूहों व विदेशी कम्पनियों को सामान्य विस्तार के लिए लाइसेन्स दिये जा सकेंगे, जहाँ ऐसा विस्तार लागत-कार्यकुशलता को बढ़ाकर उत्पादन का न्यूनतम आकार या आर्थिक स्तर प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो सके।

4. एक करोड़ रुपये तक के विनियोग की इकाई लाइसेंस-मुक्त—उद्योग (विकास व नियमन) अधिनियम के अन्तर्गत 1 करोड़ रुपये तक की विनियोग की इकाइयों के लिए, नए उपक्रमों के लिए या काफी मात्रा में विस्तार करने के लिए लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं रखी गई।

5. लघु उद्योग के लिए आरक्षण जारी—लघु उद्योगों के क्षेत्र के लिए आरक्षण (Reservation) की वर्तमान नीति जारी रखी गई और यह कहा गया कि जब कभी यह क्षेत्र माग की पूर्ति पर्याप्त रूप से कर सकेगा, तब इसका विस्तार भी किया जा सकेगा।

नयी औद्योगिक लाइसेंस नीति में एकाधिकार व केन्द्रीयकरण की वृद्धि को रोकने के लिए कई उपाय सुझाये गये थे। यह कहा गया कि मध्यम क्षेत्र में जहाँ विनियोग 1 करोड़ रुपये से 5 करोड़ रुपये के बीच होगा अपेक्षाकृत बड़े औद्योगिक समूहों से प्राप्त आवेदन पत्रों पर विशेष परिस्थितियों में ही विचार किया जा सकेगा।

6 पिछड़े क्षेत्रों का औद्योगिक विकास—पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग के विकास के लिए विशेष रूप से प्रयत्न जारी रखने पर जोर दिया गया। यह निश्चय किया गया कि वित्तीय व साख संस्थाएं पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक वित्तीय व्यवस्था के लिए अधिक रियायतें देंगी। केन्द्रीय सरकार पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित किये जाने वाले प्रोजेक्टों की पूँजीगत लागत में (जो 50 लाख रुपये तक हो सकती है) 10% तक सब्सिडी देगी। इससे ऊपर की लागत की परियोजनाओं पर आवश्यकतानुसार सहायता दी जायगी। सब्सिडी को राज्यों—आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, जम्मू कश्मीर, मध्य प्रदेश, नागालैंड, उड़ीसा, राजस्थान व उत्तर प्रदेश में प्रत्येक के दो जिलों में उपलब्ध करने की बात कही गयी। अन्य राज्यों में इसे एक जिले के हिसाब से देने का निश्चय किया गया।

1970 की लाइसेंस नीति में भी यह कहा गया था कि भारतीय टेक्नोलोजी डिजाइन व इंजीनियरिंग में दक्षता का विकास किया जायेगा। उद्योग व अनुसंधान का गहरा सम्बन्ध स्थापित किया जायेगा। विदेशी सहयोग का उपयोग आवश्यक दिशाओं में ही किया जायेगा जिससे यह घरेलू तकनीकी ज्ञान व सेवा के उपयोग में बाधक न बने। विदेशी सहयोग के क्षेत्रों की पहचान के लिए एवं इन्हें स्वीकार करने की पद्धति को अधिक उपयोगी बनाने के लिए एक विदेशी विनियोग बोर्ड (Foreign Investment Board) (FIB) बनाया गया था।

1970 की लाइसेंस सम्बन्धी नीति के लागू होने के बाद पहले से अधिक लाइसेंस दिये गये। उद्यमकर्त्ताओं ने विदेशी सहयोग प्राप्त करने, पूँजीगत माल का आयात करने व सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेने में अधिक सक्रियता व तत्परता दिखलाई। लेकिन बिजली की कमी, कोयला, कोक व कच्चे माल व परिवहन की कठिनाइयों के कारण औद्योगिक विकास में बाधाएं जारी रहीं।

1970 की लाइसेंस नीति में परिवर्तन—मार्च 1973 उद्योगों में उत्पादन क्षमता का अधिक गहरा उपयोग करने अथवा विस्तार करने के लिए सरकार ने जनवरी 1972 में बिना लाइसेंस की औपचारिकता में पड़े प्रमाणित क्षमता के 100 प्रतिशत तक अतिरिक्त उत्पादन क्षमता की स्वीकृति देने का निर्णय घोषित किया। लेकिन साथ में यह शर्त लगाई गयी कि इसके लिए पूँजीगत माल के आयात की जरूरत नहीं पड़ेगी। प्रारम्भ में 54 उद्योगों को इसके अन्तर्गत लिया गया बाद में यह व्यवस्था 11 उद्योगों पर और लागू की गई। अपेक्षाकृत बड़े औद्योगिक घरानों व

विदेशी कम्पनियों से सम्बन्धित फर्मों को उनकी क्षमता में स्वत. विकास का लाभ नहीं दिया गया। इस नीति के फलस्वरूप कई उद्योगों में उत्पादन-क्षमता का विस्तार किया गया।

संशोधित लाइसेंस नीति, 1973

काफी विचार-विमर्श के बाद सरकार ने फरवरी, 1973 में संशोधित औद्योगिक लाइसेंस नीति घोषित की। इसका उद्देश्य औद्योगिक क्षेत्र में अनावश्यक अनिश्चितता को दूर करना और पांचवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन को तेजी से बढ़ाना था। इसकी मुख्य बातें इस प्रकार थी—

1 **प्रमुख उद्योगों की सूची**—सरकार ने उद्योगों की एक सूची प्रकाशित की जो अन्य आवेदकों के साथ-साथ अपेक्षाकृत बड़े औद्योगिक घरानों व विदेशी कम्पनियों की शाखाओं के लिए खुली मानी गई। इस सूची में प्रमुख उद्योग (Core Industries) **इनसे सम्बद्ध उद्योग व निर्यात बढ़ाने लायक उद्योग शामिल किये गये।** लेकिन सूची में ऐसी मदें, जो 1956 के औद्योगिक प्रस्ताव की अनुसूची ए के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के लिए नियत थी, अथवा लघु उद्योग के लिए नियत थी शामिल नहीं की गयीं। इस नीति में भारी विनियोग के क्षेत्र (5 करोड़ रुपये से अधिक) का विचार समाप्त कर दिया गया।

2 **अपेक्षाकृत बड़े औद्योगिक घरानों की परिभाषा में परिवर्तन**—संशोधित नीति में अपेक्षाकृत बड़े औद्योगिक घरानों की परिभाषा बदल दी गई। इसमें 35 करोड़ रुपये की परिसम्पत्ति की सीमा के स्थान पर 20 करोड़ रुपये की सीमा को ही अपेक्षाकृत बड़े औद्योगिक घरानों की परिभाषा के लिए आधार बनाया गया।

3 **लघु उद्योगों के लिए रिजर्वेशन की वर्तमान नीति जारी रखी गई।**

4. **संयुक्त क्षेत्र का विचार**—यह कहा गया कि संयुक्त क्षेत्र की इकाइयों के निर्माण पर प्रत्येक मामले को लेकर अलग-अलग विचार किया जायेगा। लेकिन बड़े औद्योगिक समूहों व विदेशी कम्पनियों को संयुक्त क्षेत्र का उपयोग करके ऐसे उद्योगों में प्रवेश नहीं करने दिया जायेगा जो उनके लिए वर्जित माने गये हैं और यह स्पष्ट कर दिया गया कि सभी संयुक्त क्षेत्र की इकाइयों में सरकार ही नीति प्रबन्ध व संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेगी।

संशोधित लाइसेंस नीति की विशेषताएँ

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है संशोधित लाइसेंस-नीति का उद्देश्य पांचवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना था। इस नीति में बड़े औद्योगिक घरानों के लिए कार्यक्षेत्र बढ़ाया गया। लेकिन साथ में नये, मध्यम व लघु उद्यमकर्ताओं को भी औद्योगिक क्षेत्र में भाग लेने के लिए काफी अवसर प्रदान किये गये ताकि देश में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण कम किया जा सके।

संशोधित नीति में संयुक्त क्षेत्र का विचार अस्पष्ट छोड़ दिया गया, हालांकि सरकार ने इस क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने की घोषणा अवश्य की थी। निजी क्षेत्र के उद्योगपतियों ने नयी नीति का स्वागत किया। यह नीति मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की धारणा व 1956 की औद्योगिक नीति के अनुरूप ही थी। इसकी मुख्य विशेषताएँ 19 उद्योग-समूहों की एक सूची थी जिसमें बड़े औद्योगिक समूहों या विदेशी कम्पनियों को प्रवेश करने की इजाजत दी गई थी। 19 उद्योगों की सूची में धातु-कार्मिक उद्योग विद्युत-उपकरण, परिवहन उपकरण औद्योगिक मशीनरी मशीनी औजार, रासायनिक उर्वरक आदि शामिल किये गये थे। यह सूची काफी लचीली व विस्तृत थी। यह आशा की गई कि इससे निजी क्षेत्र में विनियोग व उत्पादन को बढ़ाने को ज्यादा प्रेरणा मिलेगी।

1973 की संशोधित लाइसेंस नीति का क्रियान्वयन

संशोधित औद्योगिक लाइसेंस-नीति की घोषणा के बाद नवम्बर 1973 में एक परियोजना-स्वीकृति-बोर्ड ((Project Approval Board) (PAB) स्थापित किया गया ताकि लाइसेंस शीघ्रतापूर्वक दिये जा सकें। अनावश्यक विलम्ब दूर कर के लिए 1 नवम्बर, 1973 से नयी पद्धति जारी की गई जिसके अनुसार 90 दिन के भीतर आवेदनकर्ताओं से इन्टेंट-प्रपत्रों (लाइसेंस प्राप्ति से पूर्व जारी स्वीकृत प्रपत्र) विदेशी सहयोग के समझौतों व पूँजीगत माल की स्वीकृति के मामलों में निर्णय लेने की बात कही गई। जहाँ MRTP सम्बन्धी जाँच का मामला होगा उसमें 150 दिन की अवधि निर्धारित की गई। यह कहा गया, कि जहाँ विदेशी सहयोग व पूँजीगत माल की स्वीकृति आवश्यक नहीं होगी वहाँ सीधे औद्योगिक लाइसेंस दिये जा सकते हैं।

परियोजना स्वीकृति बोर्ड (PAB) देख-रेख, निर्देशन व समन्वय का काम करता है। लाइसेंस समिति, विदेशी विनियोग बोर्ड व पूँजीगत माल समिति (CGC) परियोजना स्वीकृति बोर्ड (PAB) की समितियों के रूप में कार्य करते हैं। औद्योगिक विकास मन्त्रालय के अधीन औद्योगिक स्वीकृतियों के लिए एक एकीकृत सचिवालय (A Unitied Secretariat for Industrial Approvals (SIA) स्थापित किया गया। यह सचिवालय (SIA) संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार करके (PAB) के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करता है।

औद्योगिक लाइसेंस नीति में उदारता की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन, 1975

अक्टूबर 1975 में लाइसेंस-नीति को अधिक उदार बनाया गया ताकि औद्योगिक उत्पादन बढ़ाया जा सके। इन परिवर्तनों के अन्तर्गत 21 उद्योगों को लाइसेंस-मुक्त (Delicensed) कर दिया गया। इनमें मूल दवाइयों, मूल कीटनाशक पदार्थ, औद्योगिक मशीनरी, मशीनी औजार, आदि शामिल हैं। 30 अन्य महत्वपूर्ण उद्योगों में (विदेशी कम्पनियों व बड़े घरानों सहित) लाइसेंस प्राप्त क्षमता से परे

असीमित मात्रा तक विस्तार करने की छूट दी गयी । इनमें बेसिक दवा, पोर्टलैण्ड सीमेंट कागज, रसायन, विद्युत का साज-सामान आदि आते हैं । विदेशी कम्पनियों व औद्योगिक घरानों को उत्पादन में असीमित विस्तार का अवसर देते समय कुछ शर्तें लगाई गयी जैसे उन्हें अतिरिक्त माल का निर्यात करना होगा अथवा सरकार की स्वीकृति के अनुसार माल को बेचने की व्यवस्था करनी होगी ।

31 मार्च 1978 को जनता सरकार द्वारा लाइसेंस-नीति में परिवर्तन

जनता सरकार ने रामकृष्ण अध्ययन दल की सिफारिशों को स्वीकार करके औद्योगिक लाइसेंस लेने के लिए छूट की सीमा एक करोड़ रुपये से बढ़ाकर तीन करोड़ रुपये कर दी थी । सरकार ने अध्ययन दल की यह सिफारिश भी मान ली कि ये छूटें MRTP कम्पनियों प्रभुतासम्पन्न उपक्रमों (dominant undertakings) तथा 40% से अधिक विदेशी शेयर वाली कम्पनियों को उपलब्ध नहीं होगी ।

केन्द्र ने एक महत्वपूर्ण सिफारिश यह भी मान ली कि जब तक लघु क्षेत्र के लिए रिजर्व की गई मदों के सम्बन्ध में देश में उत्पादन की पर्याप्त क्षमता का विकास नहीं हो जाता तब तक उनके आयात की व्यवस्था की जा सकती है । इससे *कीमतों को कम रखने तथा उपभोक्ता के हितों की रक्षा करने में मदद मिलेगी ।* लेकिन ऐसे आयातों की अनुमति तभी दी जानी चाहिए जब वर्तमान लाइसेंस-शुदा क्षमता का पूरा उपयोग कर लिया जाय ।

अप्रैल 1982 में लाइसेंस नीति अधिक उदारता की ओर—भारत सरकार ने अप्रैल 1982 में लाइसेन्स नीति को अधिक उदार बनाया । सरकार ने यह घोषणा की कि पांच और क्षेत्रों में जैसे सीमेंट, उर्वरक, वगैरा में, बड़े घरानों की कम्पनियां व विदेशी कम्पनियां पिछले पाच वर्षों में अपने सर्वाधिक उत्पादन से 33·3% अधिक क्षमता का निर्माण कर सकेंगी । यह छूट 25% अतिरिक्त उत्पादन के अलावा होगी । यह सुविधा उन मदों के लिए नहीं दी गई जो लघु क्षेत्र के लिए रिजर्व थी और यह उन उद्योगों को भी नहीं दी गई जिन पर विशेष रूप से नियमन की व्यवस्था थी, जैसे वनस्पति व मिल्क फूड, आदि । इस परिवर्तन का उद्देश्य मूल क्षेत्र (Core Sector) में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देना, निर्यात बढ़ने की सम्भावना वाले उद्योगों या आयात-प्रतिस्थापन वाले उद्योगों को बढ़ावा देना, विकसित व उन्नत टेक्नोलोजी को अपनाने में मदद देना, बड़े पैमाने की किफायतों को प्राप्त करना तथा बड़े पैमाने पर सहायक इकाइयों का जाल बिछाना था ।

भारत सरकार ने 31 मार्च 1983 को औद्योगिक लाइसेंस से छूट की सीमा 3 करोड़ रु से बढ़ाकर 5 करोड़ रु करने का निर्णय किया क्योंकि प्रोजेक्ट लागत में काफी वृद्धि हो गई थी ।

1985-86 के संघीय बजट में मार्च 1985 में MRTP कम्पनियों के लिए परिसम्पत्तियों की सीमा 20 करोड़ रु से बढ़ाकर 100 करोड़ रु. कर दी गई तथा

25 उद्योगों को लाइसेंस मुक्त कर दिया गया ताकि उत्पादन-क्षमता का तेजी से विकास हो सके। बाद में मई 1985 में 27 उद्योगों को MRTP अधिनियम की धारा 21 व 22 के दायरे से हटा दिया गया। दिसम्बर 1985 में इन 27 उद्योगों में से 22 उद्योगों में MRTP व FERA कम्पनियों (एकाधिकारी घरानों की व विदेशी कम्पनियों) को भी लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया। इन पर विस्तार से आगे चर्चा की गई है। सरकार औद्योगिक नीति व लाइसेंस व्यवस्था को उत्तरोत्तर अधिक उदार बनाती जा रही है।

भारत में औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था किस तरह कार्य कर रही है ?[1]

भारत में औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था, औद्योगिक विकास व नियमन अधिनियम (IDR act) 1951 के अन्तर्गत सचालित की गई है। लाइसेन्स व्यवस्था का काफी महत्व माना गया है क्योंकि इसके माध्यम से निम्न बातों को प्रभावित किया जा सकता है :

(i) उद्योग कहां स्थापित किया जाय, अर्थात् उद्योग के लिए स्थान का चुनाव (ii) उद्योग कौन स्थापित करे ? यदि चालू औद्योगिक घरानों की बजाय नये उद्यमकर्त्ताओं को लाइसेन्स मिले तो आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होगा, (iii) किस प्रकार के उद्योग स्थापित हों—उत्पादक बनाम उपभोक्ता, विलासिता की वस्तुओं के या आम जनता के काम की वस्तुओं के ? (iv) उत्पादन की पद्धति कौन-सी हो (बड़ा पैमाना या लघु पैमाना)? (v) विदेशी विनिमय की राशनिंग, (vi) वस्तु-मिश्रण क्या हों, आदि ?

भारत में दुर्भाग्यवश औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली ने आवश्यक कार्यकुशलता से काम नहीं किया है। यह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रही है। इसके द्वारा 'निजी लाभ व सामाजिक हानि' का वातावरण उत्पन्न किया गया है। अतः इस सम्बन्ध में शीघ्र परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

डॉ. एस. के. गोयल व उनके सहयोगियों द्वारा किये गये अध्ययन से निम्न परिणाम सामने आये हैं :

1 प्रस्तावित क्षमता (installed capacity) व लाइसेन्स-शुदा क्षमता (licensed capacity) में अन्तर पाया गया है।

---

1. **Functioning of Industrial Licensing System**—Capacity and Production in Organised Industry, article by S. K. Goyal & the Corporate Studies Group of IIPA, New Delhi, and Published in EPW, April 30, 1983, full report also published separately.

3105 लाइसेन्सो की जाच करने से ज्ञात हुआ कि 7% लाइसेन्सो मे कोई प्रस्थापित क्षमता नही पाई गई, 20% मे यह लाइसेन्सशुदा क्षमता से अधिक रही तथा 60% मामलो मे वास्तव मे 75-100% तक ही लाइसेन्स क्षमता स्थापित की गई। इस प्रकार वास्तव मे स्थापित क्षमता लाइसेन्सशुदा क्षमता से आम तौर पर अधिक रही है।

2 वास्तविक उत्पादन लाइसेन्सशुदा क्षमता से अधिक पाया गया है, ऐसा विशेषतया बीयर शराब व इसी प्रकार के अन्य पेय पदार्थों मे हुआ है। कल्याणी ब्रूअरीज (बीयर) मे 83 8% अतिरिक्त उत्पादन पाया गया है। कहीं-कहीं वास्तविक उत्पादन लाइसेंस-शुदा क्षमता से कम भी हुआ है।

3 ये दोष बड़े घराने की कम्पनियों व विदेशी कम्पनियो मे भी पाये गये हैं। इनमे कही-कही वास्तविक उत्पादन लाइसेन्सशुदा क्षमता के दुगुने से भी अधिक किया गया है।

ये सब दोष औद्योगिक लाइसेन्स व्यवस्था (ILS) के होते हुए भी पाये गये हैं। इससे अति पूँजीकरण की समस्या को बढावा मिला है तथा विदेशी साधनो का सदुपयोग नही हो पाया है। अतः भारत में लाइसेन्स-व्यवस्था प्रभावहीन साबित हुई है। अब समय आ गया है जब इसमे आवश्यक सुधार किये जायें। इसके लिए गहरी छानबीन करने की आवश्यकता है।

जनता सरकार की औद्योगिक नीति, 23 दिसम्बर, 1977

श्री जॉर्ज फर्नाण्डिज ने 23 दिसम्बर, 1977 को ससद मे जनता सरकार की नई औद्योगिक नीति की घोषणा की थी। इसकी मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं :

(i) लघु इकाइया—यह कहा गया कि नई नीति ग्रामीण क्षेत्रो व छोटे नगरो मे कुटीर व लघु उद्योगो को तेजी से प्रोत्साहन देगी। लघु उद्योगो के लिए सुरक्षित उद्योगो की सूची लगभग 180 मदो से बढाकर 504 मदों तक कर दी गई। लघु उद्योगों की श्रेणी मे एक बहुत छोटा क्षेत्र या टाइनी क्षेत्र भी बनाया गया जिसमे मशीनरी व उपकरण मे विनियोग की सीमा 1 लाख रु. तक रखी गयी।

इनके विकास के उपाय—(i) जिला उद्योग केन्द्र—यह कहा गया कि उन्हे महानगरो व राज्य की राजधानियों से हटाकर जिला-केन्द्रो मे ले जाया जायेगा। प्रत्येक जिले मे लघु व ग्रामीण उद्योगो की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए एक एजेन्सी होगी जिसे जिला उद्योग केन्द्र (District Industries Centre (DIC) कहा गया। इनके सम्बन्ध मे यह स्पष्ट किया गया कि ये जिले मे कच्चे माल व अन्य साधनो की आर्थिक जाच करेंगे तथा मशीनरी की सप्लाई, साख की पूर्ति आदि से सम्बन्धित कार्य करेंगे।

(ii) औद्योगिक विकास बैंक ने ग्रामीण व कुटीर उद्योगो की साख सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक पृथक् इकाई स्थापित की।

(iii) इनके लिए विक्री, वस्तु-मानकीकरण, किस्म-नियन्त्रण, विपणन-सर्वेक्षण पर विशेष ध्यान देने तथा सरकारी खरीद मे इनको प्राथमिकता देने की बात कही गई।

जनता औद्योगिक नीति म 22 ग्रामोद्योगो मे आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीक के आधार पर विकास-कार्यक्रम पर जोर दिया गया।

बडे औद्योगिक व्यावसायिक घरानों (Big Industrial or Business Houses) के प्रति नीति—इनके सम्बन्ध मे निम्न बातो पर बल दिया गया: (i) चालू उपक्रमो का विस्तार व नये उपक्रमो की स्थापना MRTP Act के तहत ही की जायेगी। (ii) इन कार्यों के लिए सरकार से विशेष स्वीकृति लेनी होगी। (iii) बडे घरानो को स्वय के वित्तीय साधनो के द्वारा नई परियोजनाओ की स्थापना या प्रचलित परियोजना के विस्तार की व्यवस्था करनी होगी।

जनता सरकार ने औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे सार्वजनिक क्षेत्र, विदेशी विनियोग, उद्योगो के लिए स्थान-निर्धारण व बीमार इकाइयो की समस्या के समाधान के लिए भी नीति स्पष्ट की थी।

सारांश—इस प्रकार तत्कालीन जनता सरकार ने रोजगारोन्मुख, ग्रामोन्मुख उपभोक्ता-उन्मुख तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण-उन्मुख औद्योगिक नीति प्रस्तुत की थी लेकिन इसमे बहुत छोटे क्षेत्र (tiny sector) व जिला उद्योग-केन्द्रो के अलावा कोई विशेष नई बात नहीं थी। बाकी सब बातें पहले जैसे ही थीं। इसलिए यह 'नई बोतल मे पुरानी शराब' (old wine in a new bottle) की कहावत को चरितार्थ करती थी।

जनता औद्योगिक नीति का क्रियान्वयन—

शुरू म जनता औद्योगिक नीति के कुछ अनुकूल प्रभाव सामने आये जैसे देश म विनियोग का वातावरण सुधरा, औद्योगिक लाइसेन्सो की सख्या 1976-77 म 908 से बढकर 1977-78 मे 1392 हो गयी। सार्वजनिक वित्तीय सस्थाओ ने पहले की तुलना मे अधिक ऋण दिये, विदेशो से अधिक पूँजीगत माल मगाया गया तथा आयात लाइसेन्स भी बढे। 1978-79 म औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि-दर 7 6% रही जो पिछले वर्ष मे लगभग दुगुनी थी। देश म जिला उद्योग केन्द्र स्थापित किये गये। लेकिन 1979-80 मे कोयला-पावर-परिवहन सकट के कारण औद्योगिक विकास की दर ऋणात्मक (–1 4%) रही। औद्योगिक सम्बन्धो मे बिगाड हुआ तथा देशव्यापी सूखे के कारण औद्योगिक उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पडा। जनवरी 1980 म केन्द्र म कांग्रेस (आई) की सरकार पुन सत्तारूढ हुई और उसने जुलाई 1980 मे अपना औद्योगिक नीति सम्बन्धी नया वक्तव्य प्रस्तुत किया तथा बाद के वर्षो मे इसके उद्देश्यो को प्राप्त करने के विभिन्न प्रयास जारी रखे। इनका उल्लेख आगे चलकर किया गया है।

कांग्रेस (आई) सरकार का औद्योगिक नीति सम्बन्धी वक्तव्य, 23 जुलाई, 1980

(Industrial Policy Statement, July 23, 1980)*

केन्द्र में तत्कालीन उद्योग राज्य-मन्त्री चरणजीत चानना ने 23 जुलाई, 1980 को भारतीय संसद में औद्योगिक नीति सम्बन्धी वक्तव्य प्रस्तुत किया जिसमें 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव को इस वक्तव्य का आधार बतलाया गया था। नव वक्तव्य के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों में प्रस्थापित क्षमता (installed capacity) के पूर्ण उपयोग तथा औद्योगिक उत्पादन को अधिकतम करने, रोजगार बढ़ाने प्रादेशिक असन्तुलनों को कम करने, कृषि-आधारित उद्योगों को प्राथमिकता देकर *कृषिगत विकास की नींव को सुदृढ़ करने व अनुकूलतम अन्तर्क्षेत्रीय आर्थिक सम्बन्धों* (Optimum inter-sectoral relationships) को विकसित करने, निर्यातोन्मुख व *आयात-प्रतिस्थापन से सम्बन्धित उद्योगों का अपेक्षाकृत अधिक तेज गति से विकास* करने तथा ऊँचे मूल्यों व घटिया किस्म के प्रति उपभोक्ता-वर्ग को संरक्षण प्रदान करने पर अधिक बल दिया गया। यह कहा गया कि ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में लघु व विकासशील इकाइयों के विनियोग का समान रूप से वितरण किया जायगा। पिछले वर्षों में जनता का सार्वजनिक क्षेत्र में विश्वास कम हो गया था जिसे पुनः स्थापित किया जायगा। सार्वजनिक क्षेत्र की प्रत्येक इकाई की समस्या का अध्ययन करके एक समयबाधित (time-bound) कार्यक्रम को अपनाकर घाटे की इकाइयों की प्रबन्ध व्यवस्था में सुधार किया जायगा।

1980 के औद्योगिक नीति वक्तव्य की प्रमुख बातें—

1. *न्यूक्लियस या केन्द्रस्थ संयन्त्रों (Nucleus Plants) की स्थापना*—आर्थिक संघवाद (economic federalism) के विचार को मूर्त रूप देने के लिए प्रत्येक जिले में कुछ केन्द्रस्थ-संयन्त्र स्थापित किए जायेंगे ताकि सहायक, लघु एवं कुटीर इकाइयों का विस्तार किया जा सके। इसके लिए औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े जिले चुने जायेंगे। एक केन्द्रस्थ संयन्त्र सहायक इकाइयों (ancillary units) की वस्तुओं का संग्रह करने पर ध्यान देगा तथा छोटी इकाइयों के लिए आवश्यक इनपुट उत्पन्न करने का प्रयास करेगा। इनके द्वारा विनियोग का व्यापक रूप से फैलाव होगा तथा औद्योगीकरण के लाभों को दूर-दूर तक पहुँचाया जा सकेगा। इनके माध्यम से लघु इकाइयों की टेक्नोलोजी को भी उन्नत करने में (upgrading the technology) मदद मिलेगी। इस प्रकार ये संयन्त्र औद्योगिक फैलाव या छितराव (industrial dispersal) में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे। इनसे नई उद्यमशीलता का प्रादुर्भाव व विकास होगा। भारती कार प्रोजेक्ट केन्द्रस्थ प्लान्ट का

---

* सरकार की नई औद्योगिक नीति के बारे में पूछे जाने पर इसका विस्तृत वर्णन किया जाना चाहिए।

उदाहरण माना जा सकता है। इसके लिए कारखाने के आस-पास कार के आवश्यक कल-पुर्जे बनाने के लिए सहायक इकाइयों का विकास किया जायगा तथा जापान से आयातित पार्ट्‌न को एकत्र करके कारों का उत्पादन किया जायगा।

2 लघु इकाइयों की परिभाषा में परिवर्तन—लघु इकाइयों में संयत्र व मशीनरी में विनियोग की सीमा बढ़ायी गई है। बहुत छोटी या टाइनी इकाइयों के लिए विनियोग की सीमा एक लाख रुपये से बढ़ाकर दो लाख रुपये लघु इकाइयों के लिए 10 लाख रु से बढ़ाकर 20 लाख रुपये तथा सहायक इकाइयों (ancillaries) के लिए 15 लाख रुपये से बढ़ाकर 25 लाख रुपये कर दी गयी ताकि अधिक मात्रा में लघु इकाइयाँ उनको मिलने वाली सुविधाओं का लाभ उठा सकें तथा अधिक संख्या में इनका आधुनिकीकरण किया जा सके।

3 अतिरिक्त लाइसेंसशुदा क्षमता (excess licensed capacity) को नियमित करना—सरकार ने उत्पादन बढ़ाने के लक्ष्य को ध्यान में रखकर चुने हुए उद्योगों में तथा आम जनता के उपभोग की वस्तुओं के उद्योगों में अतिरिक्त लाइसेंसशुदा क्षमता को नियमित करने की घोषणा की। इसकी अधिसूचना 29 अगस्त 1980 को जारी की गई जिसमें कुछ शर्तों को पूरा करने पर निम्न उद्योगों को यह सुविधा प्रदान की गई 2 फरवरी 1973 की नीति के परिशिष्ट 1 में वर्णित 19 उद्योग, तेल ड्रिलिंग उपकरण व सहायक पुर्जे, व अन्य कई प्रकार के इन्जीनियरी के उद्योग। 19 उद्योगों के अलावा 15 अन्य उद्योगों को भी यह सुविधा दी गई। यह सुविधा उन उद्योगों को नहीं दी गई जिनकी मदें लघु क्षेत्र के लिए रिजर्व की गई है।

4 स्वत विकास की सुविधा-साधनों की कमी को देखते हुए तथा उत्पादन-क्षमता के अधिकतम उपयोग की दृष्टि से सरकार ने अगस्त, 1980 में पाच वर्षों की अवधि में 25% स्वत विकास (automatic growth) की स्कीम 19 अतिरिक्त बड़े उद्योग समूहों पर लागू की। यह स्कीम 1975 में 15 विभिन्न उद्योगों पर लागू की गई थी जिससे कुछ इकाइयों में रुग्णता को टालने में मदद मिली थी। ज्यादातर प्रमुख उद्योगों (core industries) को इस प्रकार की सुविधा मिलने से प्रतिवर्ष 5% का विकास स्वत हो जायगा। यह सुविधा अधिकृत/लाइसेंसशुदा क्षमता में सामान्य 25% की सीमा से ऊपर के विस्तार पर दी गई है। इस प्रकार यह स्वत विकास की सुविधा 34 उद्योगों पर लागू हो गई है।

5 औद्योगिक रुग्णता की समस्या को हल करने के उपाय—औद्योगिक नीति वक्तव्य में कहा गया कि जिन इकाइयों में रुग्णता की समस्या जानबूझ कर कुप्रबंध व वित्तीय दुर्व्यवस्था के कारण हुई है उनके सम्बन्ध में कड़ी कार्यवाही की जायेगी। आयकर की धारा 72-ए के तहत बीमार इकाइयों का स्वस्थ इकाइयों के साथ विलयन/एकीकरण प्रोत्साहित किया जायगा तथा आवश्यकता पड़ने पर औद्योगिक

2 वक्तव्य में MRTP अधिनियम व आयोग का कहीं जिक्र नहीं आया है जिससे लगता है कि सरकार इन्हे कोई महत्व नहीं देना चाहती। इससे निजी क्षेत्र में एकाधिकार के नियन्त्रण व नियमन मे बाधा पहुँचेगी। सरकार न बीमार औद्योगिक इकाइयों का प्रबन्ध निजी क्षेत्र की स्वस्थ इकाइयो द्वारा अपने हाथ म लिए जाने का तो समर्थन किया है, लेकिन साथ मे यह नही देखा कि इससे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण पर क्या प्रभाव पडेगा। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि MRTP अधिनियम के उद्देश्यो को भुला दिया गया है। एक समय ऐसा था जब सरकार न MRTP अधिनियम को अपनी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना था।

3 अतिरिक्त लाइसेंसशुदा क्षमता (Excess Licensed Capacity) को नियमित करने से लाइसेन्स-व्यवस्था का महत्व ही समाप्त हो गया है। ऐसी स्थिति मे नागरिक सरकारी कानूनो के प्रति आदर क्यो दिखायेंगे। लाइसेन्स-व्यवस्था का उद्देश्य उद्योगो के लिए स्थान-चयन औद्योगिक इकाइयो के आकार मशीनो के आयात, विदेशी सहयोग व नये उद्यमकर्ताओ के कार्यों को प्रभावित करना माना गया है। इसलिए उनका उल्लघन करने वाले व्यक्तियो को सजा मिलनी चाहिए न कि अनाधिकृत लाइसेन्स-क्षमता का सृजन करने पर उसको नियमित कर देना तथा सम्बन्धित व्यक्तियो को नियमो का उल्लघन करने पर भी मुक्त कर देना। इसका अर्थ यह हुआ कि सरकार स्वय अपने कानूनो व नियमों को विशेष आदर या महत्व नही देती है। सरकार ने IDR अधिनियम व MRTP अधिनियम को समाप्त किये बिना ही बडे व्यावसायिक घरानों के प्रति उदारता दिखाने का मार्ग अपना लिया है। इस प्रकार नये औद्योगिक नीति वक्तव्य का अधिकाश लाभ बडे औद्योगिक घरानो को ही मिलेगा।

4 नये वक्तव्य में निजी हाथों में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने के लिए 'सयुक्त क्षेत्र' (Joint Sector) की तनिक भी चर्चा नहीं की गई है। इस प्रकार सयुक्त-क्षेत्र' की धारणा का महत्व काफी कम कर दिया गया है। सयुक्त क्षेत्र का विकास निजी क्षेत्र मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने मे कारगर मदद दे सकता है।

5 नय वक्तव्य से बडे औद्योगिक घरानो व विदेशी कम्पनियो को अधिक लाभ प्राप्त होगा क्योंकि अधिकाश अतिरिक्त लाइसेन्स-शुदा क्षमता पर उनका ही अधिकार रहा है। रेफ्रिजरेटर पखे लेम्प व ट्यूब आदि उद्योगो को अधिक लाभ मिलेगा, बनिस्बत पूंजीगत व अनिवार्य उपभोक्ता माल के उद्योगो के। इससे देश का औद्योगिक ढाँचा अधिक विकृत व आम आदमी के हितो के विपरीत हो जाएगा। देश मे आम जनता के हितो का इतना ध्यान नही रखा गया है जितना धनी वर्ग का रखा गया है।

6 केन्द्रस्थ सयन्त्रो (nucleus plants) की चर्चा कोई नई बात नही है, केवल नये शब्दो पर जोर देने से देश का भला नहीं हो सकता। देश मे इस प्रकार के

सयन्त्र स्थापित करने की नितान्त आवश्यकता है। अतः सरकार को कुछ महत्वपूर्ण किस्म के न्यूक्लियस सयन्त्रो को स्थापित करना चाहिए एवं उनका कार्यकुशल ढग से लम्बी अवधि तक सचालन करना चाहिए।

7 लघु इकाइयो के लिए विनियोग की सीमाएँ बढा देने मात्र से इनमे पाई जाने वाली बेनामी व झूठी इकाइयो की समस्या हल नही हो जायेगी।

8. प्रदूषण-नियन्त्रण की आड मे बडी औद्योगिक इकाइयो के लिए उदार शर्तों पर कर्ज की व्यवस्था की जायेगी। अच्छा तो यह होता कि प्रदूषण-नियन्त्रण की लागत का अधिकाश भार औद्योगिक इकाइयो पर ही डाला जाता। अमेरिका मे भी ऐसा ही किया गया है।

अत' डॉ. पराजपे के अनुसार नये औद्योगिक नीति-सम्बन्धी वक्तव्य मे औद्योगिक जगत की विभिन्न समस्याओ का समुचित समाधान नही प्रतीत होता। व्यावहारिक नीति के नाम पर तथा निर्यात-प्रोत्साहन एव अधिकतम उत्पादन आदि की आड मे निजी उद्यम व बडे व्यावसायिक घरानो को ही अधिक सुविधाएं दी गई है जिनसे आम जनता का कल्याण होना सम्भव नही प्रतीत होता। औद्योगिक नीति वक्तव्य मे कही भी यह देखने की कोशिश नही की गई है कि आखिर 1956 की औद्योगिक नीति के लगभग 30 वर्षों के बाद भी निजी हाथो मे आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण क्यो बढ रहा है, औद्योगिक विकास की दर नीची क्यो रही, औद्योगिक क्षेत्र रोजगार बढाने मे अधिक सक्षम क्यों नही हो पाया, श्रम का शोषण क्यो जारी है, निजी विदेशी विनियोग अथवा विदेशी सहयोग की शर्तों मे कौन-से परिवर्तन करने आवश्यक हैं, पिछडे क्षेत्रो मे कारखाने तेजी से क्यो नही पनप रहे हैं, आदि। जब तक इन मूल प्रश्नो के सही, सुनिश्चित, वाछित व व्यावहारिक उत्तर नही दिये जाते तब तक नीति सम्बन्धी वक्तव्यों को दोहराते जाने से देश का विशेष लाभ नही होने वाला है।

डॉ. पराजपे द्वारा प्रस्तुत विभिन्न आलोचनाओ के बावजूद यह कहा जा सकता है कि नये औद्योगिक नीति वक्तव्य मे औद्योगिक उत्पादन को बढाने के लिए लाइसेन्सशुदा क्षमता को नियमित करने तथा उद्योगो को स्वत: विकास की जो सुविधा दी गई है, उससे देश मे कुछ सीमा तक उत्पादन का विस्तार अवश्य होगा।

हाल मे औद्योगिक नीति व लाइसेन्स-व्यवस्था में परिवर्तन[1]

पिछले वर्षों मे औद्योगिक नीति व लाइसेन्स-व्यवस्था को उदार बनाया गया है ताकि औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि हो सके। इसके लिए कई उद्योगों को लाइसेन्स

1. पिछले तीन वर्षों के आर्थिक सर्वेक्षण, विशेषतया Economic Survey, 1988-89, pp 45-48.

देने से मुक्त किया गया है तथा एकाधिकारी घरानों व विदेशी कम्पनियों को भी कुछ चुने हुए उद्योगों में लाइसेन्स-मुक्ति का लाभ दिया गया है। इन सब परिवर्तनों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

1 पिछड़े क्षेत्रों में केन्द्रीय सब्सिडी देने की व्यवस्था—घन बसे शहरों में उद्योगों के जमघट को रोकने व इनके वितरण में प्रादेशिक समानता लाने के लिए औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों को निम्न तीन श्रेणियों में बाँटा गया है—

(i) श्रेणी 'A' में 'बिना उद्योग वाले जिले' (No Industry Districts) लिये गये हैं जिनमें केन्द्रीय विनियोग की सब्सिडी की राशि (Central investment subsidy) विनियोग का 25% अथवा अधिकतम 25 लाख रुपये रखी गई है।

(ii) श्रेणी B में विनियोग-सब्सिडी 15% तथा अधिकतम राशि 15 लाख रुपये रखी गई है।

(iii) श्रेणी C' में सब्सिडी 10% व अधिकतम राशि 10 लाख रुपये रखी गई है।

'A' श्रेणी के लिए 118 जिले 'B' के लिए 55 जिले तथा C' के लिए 113 जिले छाँटे गए हैं। सामान्यतया श्रेणी 'A' से कोई भी स्थान-परिवर्तन की इजाजत नहीं दी जायगी। 'B' से 'A' में जाने की इजाजत मिल जायगी, इसी प्रकार 'C' से 'A' या 'B' में स्थान-परिवर्तन की इजाजत दी जा सकेगी। लेकिन अन्य किसी भी प्रकार के स्थान-परिवर्तन की इजाजत नहीं दी जायगी, जब तक कि वह सार्वजनिक हित में न हो।

2. पच्चीस उद्योगों को लाइसेंस से मुक्ति—केन्द्रीय वित्त मन्त्री ने मार्च 1985 में संघीय बजट पेश करते समय 25 उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त कर दिया था ताकि जिन क्षेत्रों में हम उत्पादन की अतिरिक्त क्षमता बढ़ाना चाहते हैं उनमें कार्य-विधि-सम्बन्धी विलम्ब (procedural delays) कम किये जा सकें। इन उद्योगों में कुछ के नाम इस प्रकार हैं: विद्युत उपकरण, इलेक्ट्रोनिक कल-पुर्जे, गाड़ियों के पार्ट्स, साइकिलें, औद्योगिक मशीनरी, मशीनी औजार, कृषिगत औजार, औद्योगिक सिलाई की मशीनें, कुछ दवाएं, कुछ किस्म के कागज व लुगदी, कुछ वनस्पति तेल, चमड़े की वस्तुएँ, आदि।

3 MRTP कम्पनियों की परिसम्पत्ति की सीमा 20 करोड़ रु. से बढ़ाकर 100 करोड़ रु. कर दी गई क्योंकि 1969 के बाद प्रोजेक्ट-लागतें काफी बढ़ गई हैं। इससे कुछ कम्पनियाँ MRTP के दायरे से निकल गई हैं जिससे उन्हें इस अधिनियम के बंधन से मुक्ति मिल गयी है।

4 लघु इकाइयों में प्लान्ट व मशीनरी में विनियोग की सीमा 20 लाख रु. से बढ़ाकर 35 लाख रु. तथा सहायक इकाइयों के लिए 25 लाख रु. से बढ़ाकर 45 लाख रु. कर दी गई और इनके विकास के लिए फिस्कल उपायों की भी घोषणा की गई।

5. गैर-एम. आर. टी. पी. (non-MRTP) कम्पनियों व गैर-फेरा (non-FERA) कम्पनियों द्वारा दी जा सकने वाली ब्याज की दरें (परिवर्तनीय डिबेंचरों पर 13·5% से बढ़ा कर 15% कर दी गई, ताकि ये बाजार से अधिक मात्रा में वित्तीय साधन जुटा सकें।

6. बड़े व मध्यम क्षेत्र में बीमार औद्योगिक इकाइयों के उपचार हेतु एक औद्योगिक व वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (Board for Industrial and Financial Reconstruction) (BIFR) की स्थापना की गयी है। बीमार औद्योगिक इकाइयों के सम्बन्ध में श्रमिकों की बकाया राशि को अन्य राशियों की भांति ऊँचा स्थान दिया जायगा ताकि उनके हितों की रक्षा की जा सके। इसने 15 मई 1987 से कार्यारम्भ कर दिया है।

7 मई 1985 में 27 उद्योगों को एकाधिकार व प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधियाँ अधिनियम (MRTP Act) की धारा 21 (काफी विस्तार के सम्बन्ध में) तथा धारा 22 (नये उपक्रमों की स्थापना के सम्बन्ध में) से मुक्त कर दिया गया ताकि ये उत्पादन बढ़ा सकें। इन उद्योगों में कुछ के नाम इस प्रकार हैं. पिग लोहा, कुछ इलक्ट्रोनिक कल-पुर्जे, गाड़ियों के पार्ट्स व कल पुर्जे, प्रदूषण-नियन्त्रण-उपकरण, कुछ छपाई की मशीनरी, मशीनी औजार, कुछ दवाएँ, अखबारी कागज, पोर्टलैण्ड सीमेंट, आदि। इन उद्योगों के सम्बन्ध में MRTP अधिनियम की धारा 21 व 22 लागू नहीं की जायगी। इससे उत्पादन बढ़ाने में सहूलियत होगी।

8 दिसम्बर 1985 में इन 27 उद्योगों में से 22 उद्योगों से सम्बद्ध MRTP व FERA कम्पनियों को तो लाइसेंस लेने से मुक्त कर दिया गया था। इन उद्योगों में पिग लोहा, वैकल्पिक ऊर्जा प्रणालियाँ, गाड़ियों के कल-पुर्जे, प्रदूषण-नियन्त्रण-उपकरण, रसायन प्रक्रिया संयन्त्र, आदि शामिल हैं।

9. 1985 के अन्त में सरकार ने उत्पादन-क्षमता की पुन स्वीकृति (re-endorsement) की स्कीम घोषित की जो उन समस्त लाइसेंसशुदा इकाइयों को प्राप्त होगी जिन्होंने 31 मार्च, 1985 को समाप्त होने वाले पिछले वर्षों में से किसी भी वर्ष में अपनी लाइसेंसशुदा क्षमता का 80% भाग प्राप्त कर लिया था। ये इकाइयाँ अपने अधिकतम उत्पादन व इसके 1/3 भाग को जोड़ने से प्राप्त उत्पादन की मात्रा तक लाइसेंसशुदा क्षमता के लिए पुन स्वीकृति ले सकेंगी। इससे उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलेगी।

उपरोक्त स्कीम को अब और अधिक उदार बना दिया गया है। एक औद्योगिक उपक्रम द्वारा 1 अप्रैल 1988 से 31 मार्च, 1990 के बीच प्राप्त अधिकतम उत्पादन के लिए औद्योगिक लाइसेंस स्वतः फिर से जारी कर दिया जायगा। जिन उद्योगों को स्वतः पुन. स्वीकृति की सुविधा नहीं होगी, उनकी संख्या 77 से घटा कर 26 कर दी गई है।

10. सरकार ने उत्पादन बढ़ाने के लिए 28 उद्योग-समूहों में उत्पादकों द्वारा वस्तु या वस्तु-मिश्रण में परिवर्तन करने (broad banding) की इजाजत देने

भारी विनियोग की स्थिति मे कम से कम 5 करोड़ रु. का विनियोग करने पर फिलहाल इसकी भी इजाजत दे दी जायगी।

आशा है इन उपायो से इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगो का विकास होगा जो भारत को इक्कीसवी शताब्दी मे प्रवेश कराने मे महत्वपूर्ण योगदान देगा।

इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगो के विकास के लिए 14 कदम[1]

पिछले दो वर्षों मे इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग मे विकास की वार्षिक दर 40% रही है। कम्प्यूटरो व टी वी के दाम गिरे है। इस उद्योग मे 2500 इकाइयां हैं जिनमे 30% सार्वजनिक क्षेत्र मे, 45% लघु क्षेत्र म तथा 25% सगठित निजी क्षेत्र मे है। 1985-86 मे उत्पादन का मूल्य 2880 करोड रु रहा है तथा 1986-87 मे 3685 करोड रु का अनुमान है। उद्योग मे 2 लाख व्यक्ति रोजगार पाये हुए है।

सरकार न इस उद्योग के विकास के लिए निम्न 14 उपाय किये है—

(i) ब्रोड बॉण्डिग वाले लाइसेंस जारी किये हैं,

(ii) इलैक्ट्रोनिक कल-पुर्जों के उद्योगो को लाइसेंस मुक्त कर दिया गया है,

(iii) विदेशी सहयोग व टेक्नोलोजी के आयात की इजाजत दी गई है,

(iv) टेलीफोन उपकरण व ग्रामीण स्वचालित एक्सचेंजो के लिए टेक्नोलोजी के आयात के केन्द्रीयकृत आधार (centralised basis) पर किये जायेंगे,

(v) राज्य उद्योग निदेशालयो द्वारा लघु पैमाने को प्रोत्साहन दिया जायगा। इसके लिए विनियोग की सीमा 35 लाख रु से बढाकर 45 लाख रु. की गई है;

(vi) इनकी स्थापना स्वीकृत स्थानो पर करने की इजाजत दी गई है,

(vii) पैमाने की किफायतो का लाभ उठाने के लिए इनको आवश्यकतानुसार लघु पैमाने की रिजर्व सूची से हटाया गया है,

(viii) टेलीकम्युनिकेशन, टेलीफोन के विनिर्माण, EPABX टेलीप्रिन्टर्स, आदि मे निजी क्षेत्र के प्रवेश की इजाजत दे दी गई है,

(ix) MRTP कम्पनियो को इस उद्योग के लिए अधिनियम की धारा 21 व 22 से मुक्त रखा गया है ताकि उत्पादन-क्षमता बढायी जा सके,

(x) कम्प्यूटर नीति में नवीनतम टेक्नोलोजी अपनायी जायगी ताकि कीमतें कम की जा सके,

---

1. Economic Survey 1986-87, pp 39-40.

(xi) कच्चे माल, कल-पुर्जों व मशीनरी पर आयात शुल्क घटाया गया है;

(xii) आयात नीति को युक्तिसगत बनाया गया है;

(xiii) सरकारी क्षेत्र मे इलेक्ट्रोनिक्स के उपयोग को प्रोत्साहन दिया गया है एव।

(xiv) कल पुर्जों के उद्योग को फिस्कल प्रेरणाएँ दी गयी हैं।

3 नई वस्त्र (टेक्सटाइल) नीति—यह 6 जून 1985 को घोषित की गइ थी। इसका उद्देश्य वस्त्र उद्योग मे ऐसे परिवर्तन लाना है जिससे वस्त्र का उत्पादन बढ सके। इस उद्योग मे रोजगार बढे एव इसके निर्यातो मे वृद्धि हो सके। इस नीति के द्वारा वस्त्र उद्योग पर से कई प्रकार के अनावश्यक नियन्त्रण व नियमन हटा दिय गये हैं।

इस नीति मे उद्योग के प्रति सम्पूर्ण दृष्टिकोण ही बदल गया है। पहले वस्त्र उद्योग में मिल क्षेत्र, पावरलूम क्षेत्र व हथकरघा क्षेत्र के रूप मे विचार किया जाता था। अब बुनाई कताई व प्रोसेसिंग क्रियाओं के रूप में विचार किया जायेगा। मिलें अब कृत्रिम रेशों व धागो का भी प्रयोग कर सकेगी। कृत्रिम रेशो, सूत व मध्यवर्ती माल पर उत्पादन शुल्क कम किया जायगा। मिलो के आधुनिकीकरण के लिए मशीनरी का आयात कम शुल्क पर किया जायगा। बीमार मिलो को भावी सक्षम (viable) व अक्षम (unviable) दो श्रेणियो मे बाटा गया है। इनमे से द्वितीय श्रेणी की मिलो को बन्द किया जायेगा तथा इनके विस्थापित होने वाले मजदूरो को स्वरोजगार के अवसर देने के लिये रियायती दर पर वित्त प्रदान किया जायगा। सक्षम मिलो के पुनर्स्थापन की व्यवस्था की जायगी।

पावरलूम क्षेत्र को मिल के समान माना गया है। सारे देश मे इनका पजीकरण अनिवार्य कर दिया गया है। पावरलूमो पर से भी अनावश्यक बधन हटा दिये गये हैं। सरकार का मानना है कि यह क्षेत्र अब काफी सुदृढ हो गया है और इसे अब अधिमानो या वरीयताओ की जरूरत नही रही है।

हथकरघा क्षेत्र की पावरलूम क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा से रक्षा की जायगी। नियन्त्रित वस्त्र का उत्पादन अब हथकरघा क्षेत्र की तरफ अन्तरित कर दिया गया है। सातवी योजना के अन्त तक हथकरघा क्षेत्र नियन्त्रित वस्त्र का पूरा उत्पादन करने लगेगा।

इस प्रकार नई वस्त्र नीति म मिलो के आधुनिकीकरण की नीति अपनायी गई है जिसकी देश को नितान्त आवश्यकता थी।

नई इलेक्ट्रोनिक्स नीति व नई वस्त्र नीति के समक्ष चुनौती

नई सरकार ने इलक्ट्रोनिक्स व टक्सटाइल उद्योगों के आधुनिकीकरण व विकास के लिए जिन नीतियो की घोषणा की है वे वस्तुत सही दिशा म हैं। लेकिन

इनके क्रियान्वयन में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना होगा। उदाहरण के लिए, इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग में कम्पोनेन्टों (कल-पुर्जों) का उत्पादन बढ़ाने से ही देश को वास्तविक लाभ मिल सकेगा। इसके लिए इलेक्ट्रोनिक कम्पोनेन्ट उद्योग में भारी मात्रा में विनियोग बढ़ाना होगा, तथा उत्तम श्रेणी का माल बनाने के लिए टेक्नोलोजी के आयात की व्यवस्था करनी होगी तथा इसका उत्पादकता का स्तर काफी ऊँचा रखना होगा। ये कार्य असम्भव तो नहीं लेकिन व्यवहार में कठिन अवश्य हैं। इसलिए वर्ष 1989-90 तक इलेक्ट्रोनिक्स का उत्पादन 10 000 करोड़ रु तक करने में देश को काफी कठिनाई का सामना करना होगा।

इसी प्रकार अक्षम बीमार वस्त्र मिलों (unviable sick textile mills) को बन्द करने से बेरोजगारी का संकट खड़ा हो जायगा जिससे मजदूर संघ आन्दोलन करेंगे एवं सरकार को मजदूरों को वैकल्पिक काम पर लगाने की समस्या का सामना करना होगा। उनको रियायती वित्त देकर स्वरोजगार के कार्यों में लगाना भी आसान बात नहीं लगती। इसके अलावा आलोचकों का मत है कि नई वस्त्र नीति से पावरलूम क्षेत्र को काफी हानि होगी। पावरलूम के उद्यमकर्ताओं का कहना है कि पावरलूम को मिल लूम के समान मानना सही नहीं, क्योंकि उनको कई प्रकार के खर्चे करने पड़ते हैं जिससे उनकी लागत ऊँची आती है। इस प्रकार इस बात की सम्भावना है कि नई वस्त्र नीति से पावरलूम क्षेत्र को भारी क्षति पहुँचेगी। इसके अलावा सम्पूर्ण नियन्त्रित वस्त्र का अन्तरण (transfer) हथकरघा क्षेत्र की तरफ करना भी उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि आजकल साधारण देहाती भी इसको लेना नहीं चाहता, क्योंकि इसकी क्वालिटी घटिया होती है। इसलिए भविष्य में हथकरघा वस्त्र की मांग के अभाव की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

भारत में श्रम के बाहुल्य की स्थिति के कारण आधुनिकीकरण के किसी भी औद्योगिक कार्यक्रम को लागू करना सुगम नहीं होता। इसलिए हमारे देश में टेक्नोलोजी के उत्थान, प्रतियोगिता बढ़ाने, बड़े पैमाने की किफायतों, माल की किस्म में सुधार, उत्पादकता में वृद्धि आदि के मार्ग में अनेक बाधाएं हैं। लेकिन इनको दूर किये बिना भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति व क्षमता भी नहीं बढ़ सकती। इसलिए देश के समक्ष औद्योगिक जगत में भारी चुनौतियाँ विद्यमान हैं। सरकार औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने का सतत प्रयास कर रही है।

भारत सरकार की वर्तमान औद्योगिक नीति व लाइसेंस-व्यवस्था का आलोचनात्मक मूल्यांकन

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि सरकार ने औद्योगिक नीति को उदार बनाने की दिशा में (विशेषतया राजीव सरकार ने) कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाये

हैं। इस सम्बन्ध मे कुछ उद्योगों को लाइसेंस की आवश्यकता से मुक्त किया गया है, वस्तु-मिश्रण को बदलने (broad-banding) की इजाजत दी गई है तथा एकाधिकारी कम्पनियो व विदेशी कम्पनियो को भी कई प्रकार की रियायतें दी गई हैं। लाइसेंस से छूट की सीमा बढायी गयी है। इन सब परिवर्तनो का उद्देश्य उत्पादन के मार्ग मे आने वाली बाधाओ को हटाना है और निजी क्षेत्र को अधिक विनियोग करने के लिए प्रोत्साहित करना है।

सरकारी सूत्रों का कहना है कि औद्योगिक नीति व लाइसेंस-व्यवस्था को उदार बनाने से देश मे औद्योगिक विनियोग के प्रति वातावरण सुधरा है। विदेशी सहयोग की स्वीकृतियो, विदेशी विनियोग की स्वीकृतियों, उद्योगो की स्थापना के लिए इन्टेंट-पत्र व लाइसेंसो की स्वीकृतियो, उद्योगो के रजिस्ट्रेशन, पूंजी-निर्गम के लिए जारी की गई स्वीकृतियों, वित्तीय संस्थाओ के द्वारा सहायता की स्वीकृतियो व वितरण की राशियो आदि मे वृद्धि को देखते हुये ऐसा लगता है कि देश मे औद्योगिक विकास की दर बढेगी। अनावश्यक औद्योगिक नियन्त्रणो को हटाने से लाभ मिलने की आशा की जा सकती है।

उदारता की नीति के फलस्वरूप सीमेंट उद्योग मे उत्पादन-क्षमता 1980-81 मे 2 करोड टन से बढकर 1984-85 मे $4\frac{1}{4}$ करोड टन हो गई है, तथा छठी योजना म सीमेंट का वार्षिक उत्पादन $11\frac{1}{3}\%$ बढा है।

आशा है सातवी पंचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास की औसत वार्षिक दर 8% प्राप्त की जा सकेगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने की दृष्टि से औद्योगिक नीति को उदार बनाना लाभप्रद रहा है। लेकिन सरकार की उदार औद्योगिक नीति की विभिन्न क्षेत्रो मे समीक्षा की गई है। इस सम्बन्ध म निम्न विचार प्रकट किये गय हैं—

1 निजी क्षेत्र के समर्थको का कहना है कि व्यवहार मे उदार नीति से विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है क्योंकि नौकरशाही का दृष्टिकोण पूरी तरह नहीं बदला है। वह तीव्र औद्योगिक विकास मे आज भी बाधा डालती है।

सरकारी नीति के अचानक बदलने से कुछ उद्योग कठिनाई मे पड जाते है जैसे पहले सरकार ने पोलीथीन थैलो के निर्माताओ को प्रोत्साहन देने की नीति अपनायी थी, लकिन बाद म पुन जूट उद्योग को आगे बढान का फैसला कर लिया जिससे पोलीथीन के निर्माताओं को भारी धक्का पहुँचा है। इस प्रकार के आकस्मिक परिवर्तन कई प्रकार की दिक्कतें पैदा कर देते हैं।

2. सरकार ने टेली-कम्यूनिकेशन्स, तेल-अनुसन्धान व हवाई परिवहन को कुछ सीमा तक निजी क्षेत्र के लिए खोलने की नीति घोषित की है, लेकिन इस सम्बन्ध मे कोई स्पष्ट नीति-सिद्धान्त व दिशा-निर्देश सामने नहीं आ पाये है। इसलिए स्थिति अनिश्चित व अस्पष्ट बनी हुई है।

प्रश्न

1. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

   (i) भारत में औद्योगिक लाइसेंस नीति।

   (Raj II year T D. C, 1983, 1986, 1987)

   (ii) भारतीय औद्योगिक नीति।

   (Raj IIyr. T. D C, 1981)

   (iii) भारत की औद्योगिक नीति के प्रमुख लक्षण।

   (Raj IIyr T D C, 1989)

2. भारत सरकार की वर्तमान औद्योगिक नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। यह कहाँ तक सन्तोषप्रद है?

   (Raj IIyr T. D C, 1982)

———

11

भारत में औद्योगिक प्रगति व सातवीं योजना में औद्योगिक विकास की व्यूहरचना

(Industrial Growth in India and Strategy for Industrial Growth in the Seventh Plan)

हमने पिछले अध्याय में भारत में औद्योगिक नीति व लाइसेंस-व्यवस्था के विकास का अध्ययन किया है। प्रायः यह प्रश्न किया जाता है कि योजना काल में औद्योगिक प्रगति पर सरकार की औद्योगिक नीति व लाइसेन्स व्यवस्था का क्या प्रभाव पड़ा है? इस प्रश्न का समुचित उत्तर देना आसान नहीं है, क्योंकि औद्योगिक प्रगति पर औद्योगिक नीति के अलावा इन्फ्रास्ट्रक्चर (विद्युत, रेल-परिवहन आदि) की प्रगति पर सार्वजनिक विनियोग की मात्रा, कृषिगत प्रगति, देश में आमदनी के वितरण, आयात-प्रतिस्थापन की प्रगति, युद्ध, अकाल व राजनीतिक परिस्थितियों आदि का भी प्रभाव पड़ता है। इन सब तत्वों के प्रभाव एक दूसरे से पृथक कर सकना काफी कठिन होता है।

फिर भी हम उपलब्ध सूचना के आधार पर औद्योगिक प्रगति पर औद्योगिक नीति का प्रभाव जानने का प्रयास करेंगे। इस सम्बन्ध में हम श्रीमती ईशर जज अहलूवालिया व योजना आयोग के वर्तमान सदस्य डा. वाई. के. अलघ (Y. K. Alagh) के विचार प्रस्तुत करेंगे।[1] श्रीमती अहलूवालिया ने 1966–67 से औद्योगिक विकास की वार्षिक दर पहले से नीची मानी है, जबकि डॉ अलघ ने 1976–77 से औद्योगिक विकास की वार्षिक दर ऊँची बतलायी है।

भारत में साठ के दशक के मध्य से औद्योगिक विकास की वार्षिक दर पहले से काफी कम हो गई थी, श्रीमती अहलूवालिया के अनुसार 1959-60 से 1965-

---

1. Isher Judge Ahluwalia, Industrial Growth in India : Stagnation since the Mid-Sixties, 1985, &

   Dr. Y. K. Alagh, Some Aspect of Planning Policies in India, 1986.

66 की अवधि में यह 8% वार्षिक रही, जबकि 1966–67 से 1979–80 की अवधि में यह 5 7% वार्षिक रही थी। इस प्रकार द्वितीय अवधि में अर्थात् 1965 के बाद औद्योगिक विकास की दर काफी धीमी हो गयी। विभिन्न अर्थशास्त्रियों जैसे डा के एन राज, दीपक नैयर, सी रंगराजन, अशोक मित्रा, प्रनब वर्धन, ए के बागची, अशोक वी देसाई, श्रीमती ईशर जज अहलूवालिया आदि ने इसके कारणों पर प्रकाश डाला है। दीपक नैयर ने आय के असमान वितरण के कारण उत्पन्न माँग की कमी को धीमी औद्योगिक प्रगति के लिए जिम्मेदार ठहराया है, जबकि डा सी रंगराजन ने औद्योगिक क्षेत्र में पूँजी उत्पत्ति अनुपात की वृद्धि को इसका प्रमुख कारण माना है।

हम आगे चलकर देखेंगे कि श्रीमती अहलूवालिया ने धीमी औद्योगिक प्रगति के लिए भारत में औद्योगिक नीति के ढाँचे या फ्रेमवर्क को बहुत कुछ उत्तरदायी ठहराया है। इसके अंतर्गत औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था, आयात लाइसेंस व्यवस्था, कीमत व वितरण-नियंत्रण, विदेशी सहयोगों के प्रति नीति एवं टेक्नालाजी के हस्तांतरण (transfer) की व्यवस्था आदि आते हैं। भारत में ये औद्योगिक विकास में साधक न होकर बाधक सिद्ध हुए हैं।

औद्योगिक प्रगति का परिचय

डा के एल कृष्णा के मतानुसार 1951–86 के 35 वर्षों में औद्योगिक उत्पादन छः गुना हो गया। इस अवधि में औद्योगिक विकास की वार्षिक विकास दर 5 5% रहा है। 1900–1950 तक यह केवल 2% वार्षिक रही थी।

योजनाकाल में भारत का औद्योगिक ढाँचा काफी व्यापक हुआ है। इसमें काफी विविधता आई है। आज देश में अनेक प्रकार की नई वस्तुओं का उत्पादन होने लगा है, जिनका सम्बन्ध भारी व हल्के इंजीनियरी उद्योगों, इलेक्ट्रानिक्स उद्योगों, रसायन उद्योगों आदि से है। देश में विभिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए मशीनरी बनने लगी है। औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा है। तैयार इस्पात का उत्पादन 1950–51 में 10 4 लाख टन से बढ़कर 1987–88 में 1 करोड़ 6 5 लाख टन, सीमेंट का 27 लाख टन से बढ़कर 3 7 करोड़ टन, कोयले का (लिग्नाइट सहित) 3 3 करोड़ टन से बढ़कर 19 1 करोड़ टन एवं क्रूड तेल का 2 6 लाख टन से बढ़कर 3 04 करोड़ टन (लगभग 115 गुना) हो गया है। अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्षमता, उद्यमशीलता व तकनीकी क्षमता का काफी विकास हुआ है। सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों का विस्तार हुआ है। केन्द्रीय सरकार के व्यापारिक व औद्योगिक उपक्रमों की संख्या मार्च 1951 में 5 थी, जो मार्च 1988 में 221 हो गई तथा इनमें विनियोगों की मात्रा 29 करोड़ रु से बढ़कर 71 299 करोड़ रु हो गई। राज्यों में सड़क परिवहन, विद्युत व सिंचाई के साधनों का विकास किया गया है। ये सब औद्योगिक क्षेत्र की उपलब्धियों को सूचित करते हैं।

औद्योगिक विकास की वार्षिक दर—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है 1959–60 से 1965–66 तक औद्योगिक प्रगति की वार्षिक दर 8 प्रतिशत रही जो 1966–67 से 1979–80 तक 5.7 प्रतिशत पर आ गई थी। बाद के वर्षों में औद्योगिक विकास की वार्षिक दर ऊँची हुई है। सातवी योजना के प्रथम चार वर्षों में यह 8–9 प्रतिशत सालाना रही है जो पहले से बेहतर है।

श्रीमती अहलूवालिया के अध्ययन के अनुसार 1970–82 की अवधि में औद्योगिक विकास की वार्षिक दर भारत में 4.3 प्रतिशत रही जबकि मध्यम आय वाले अन्य देशों में यह 5.3 प्रतिशत रही थी जो भारत से एक प्रतिशत अधिक थी। औद्योगिक विकास की दृष्टि से भारत का 71 देशों में 43वां स्थान रहा है।

विभिन्न योजनाओं में औद्योगिक विकास के लक्ष्य व उपलब्धियों में अन्तर रहा है जो निम्न तालिका में दिया गया है

(% में)

योजना	वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य	वास्तविक वृद्धि दर
I	7	6
II	$10\frac{1}{2}$	$7\frac{1}{4}$
III	$10\frac{3}{4}$	8
IV	12	1968–69 से 1982–83 तक 4.8% वार्षिक (IV व V)
V	8	
VI	7	5.5
VII	8	औद्योगिक उत्पादन के नये सूचनांक (1980–81 = 100 के अनुसार) 1985–86 में विकास की दर 8.7%, 1986–87 में 9.1%, 1987–88 में 7.3%, 1988–89.. 8·8%[1]

इस प्रकार छठी योजना की अवधि तक औद्योगिक विकास की वास्तविक दर लक्ष्य से सदैव नीची रही है।

1960–61 में विनिर्माण द्वारा कुल जोड़े गये मूल्य (total value-added by manufacture) में आधारभूत व पूँजीगत उद्योगों का अंश 38% था जो 1979–80 में 49% हो गया, (लगभग आधा), मध्यवर्ती उद्योगों में यह 21% से घटकर 16% तथा उपभोक्ता उद्योगों में 45% से घट कर 35% (लगभग 1/3) पर

1. The Economic Times, September 8, 1989. (RBI का अनुमान)

तालिका से स्पष्ट होता है कि उद्योगो की प्रथम दो श्रेणियो मे विकास की दर द्वितीय अवधि मे विशेष रूप से घटी। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो ने दोनो अवधियो मे 10% सालाना से अधिक वृद्धि प्राप्त की।

अर्थशास्त्रियो ने द्वितीय अवधि मे आधारभूत व पूँजीगत वस्तुओ के उद्योगो मे धीमी प्रगति की दर पर चिंता प्रकट की है तथा साथ मे उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो की दीर्घकालीन धीमी प्रगति पर भी असतोष व्यक्त किया है।

भारत म 1959–60 से 1979–80 की अवधि मे कुल साधन-उत्पादकता (total factor productivity) प्रति वर्ष 0 2 से 1 3% घटी जबकि तुलनात्मक आधार पर कोरिया मे यह प्रति वर्ष 5 7% टर्की मे 2%, युगोस्लाविया मे 0 8% तथा जापान मे 3 1% बढी। उत्पादन की वृद्धि पूँजीगत स्टॉक के बढने से अधिक हुई हालाकि कुल-साधन-उत्पादकता (TFP) का योगदान ऋणात्मक रहा। भारतीय उद्योगो मे पूँजी-उत्पत्ति अनुपात केवल पूँजी-गहन उद्योगो मे ही नही बढा बल्कि लगभग सभी प्रकार के उद्योगो मे बढा। अत औद्योगिक क्षेत्र मे कुल उत्पादकता घटना एक चिंता का विषय है। इससे औद्योगिक अर्थव्यवस्था ऊँची लागत वाली अर्थव्यवस्था (high cost economy) बन गई है। इससे भारत की विश्व-बाजार मे प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति भी कम हो गई है।

1965–75 के दशक में धीमी औद्योगिक प्रगति के कारण

श्रीमती अहलूवालिया ने इसके लिए चार प्रकार के कारणो को उत्तरदायी ठहराया है —

(1) कृषिगत आय मे धीमी गति से वृद्धि हुई है जिससे औद्योगिक पदार्थों की माँग पर्याप्त तेजी से नहीं बढ पायी है। 1956–57 से 1981–82 की अवधि म कृषि मे विकास की वार्षिक दर केवल 2% रही। यही प्रथम अवधि मे 0 5% तथा द्वितीय मे 3 1% रही। लेकिन औद्योगिक वस्तुओ की माँग मे वृद्धि करने की दृष्टि से यह पर्याप्त नही मानी जा सकती।

(2) सार्वजनिक विनियोग मे वृद्धि की दर धीमी हो गई है। सार्वजनिक विनियोग की वृद्धि दर 1959–60 से 1965–66 तक 8% सालाना रही, जबकि 1967–68 से 1979–80 तक यह 5 5% ही रही थी। इससे इन्फ्रास्ट्रक्चर मे के विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। रेलो को भी [illegible] पटरी गई तथा इनके रख-रखाव (maintenance) पर भी कम व्यय किया गया।

भारत मे सार्वजनिक विनियोग व निजी विनियोग एक दूसरे के पूरक है न कि प्रतिस्थापक। देश मे सार्वजनिक विनियोग के बढने पर निजी विनियोग के बढ़ने की स्थिति उत्पन्न होती है। इसलिए द्वितीय अवधि मे सार्वजनिक विनियोग व सार्वजनिक व्यय म धीमी गति से वृद्धि होने से निजी विनियोग की वृद्धि भी धीमी रही जिससे औद्योगिक विकास की दर नीची रही।

(3) देश के विभिन्न भागों इन्फ्रास्ट्रक्चर (विशेषतया विद्युत) काफी कमजोर स्थिति में पाया गया है। लघु मध्यम व बड़े सभी प्रकार के उद्योगों को आवश्यकतानुसार 'पावर' नहीं मिल पाती, जिससे उत्पादन निर्बाध व निरन्तर गति में नहीं बढ़ पाता। देश के विभिन्न भागों में पावर की कमी, पावर की कटौतियां, पावर के उतार-चढ़ाव आदि आम बात बन गये हैं।

4 जैसा कि पहले बतलाया गया है श्रीमती अहलूवालिया ने औद्योगिक गतिहीनता के लिए विशेषतया औद्योगिक नीति-सम्बन्धी-ढांचे को जिम्मेदार ठहराया है।[1] कई वर्ष पूर्व जगदीश भगवती व पद्मा देसाई ने भी भारतीय औद्योगीकरण पर अपने अध्ययन में, औद्योगिक नीति व लाइसेंस-व्यवस्था को धीमी औद्योगिक प्रगति के लिए दोषी ठहराया था। भारत में प्रमुख उद्योगपतियों व विभिन्न विद्वानों ने भी इसकी ओर समय-समय पर सरकार का ध्यान आकर्षित किया है।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, औद्योगिक नीति सम्बन्धी ढांचे के दायरे में औद्योगिक लाइसेंस-व्यवस्था, आयात लाइसेंस-व्यवस्था, कीमत व वितरण-नियन्त्रण, विदेशी विनियोग व टेक्नोलोजी के समझौते, आदि विषय शामिल होते हैं।

भारत में औद्योगिक नीति सम्बन्धी ढांचे ने औद्योगिक विकास पर जोर न देकर औद्योगिक नियमन पर अधिक जोर दिया है। औद्योगिक नियन्त्रणों व नियमनों का जाल-जंजाल काफी व्यापक हो गया है। इससे कई प्रकार के दुष्परिणाम निकले हैं। सर्वप्रथम, इनके कारण उद्यमकर्ताओं को प्रशासनिक देरी व रुकावटों का सामना करना पड़ा है। हमारे यहां उद्योगों को एक के बाद एक बात की स्वीकृति/अनुमति लेते जाना पड़ता है, जैसे IDR अधिनियम के तहत लाइसेंस की मंजूरी, फिर MRTP अधिनियम से मुक्ति, विदेशी सहयोग की शर्तों का समझौता करना, पूंजीगत माल के आयातों का लाइसेंस लेना, पूंजी-निर्माण कन्ट्रोलर से शेयर जारी करने की स्वीकृति लेना, आदि।

जैसा कि पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है, भारत में लाइसेंस-व्यवस्था काफी धीमी व अकार्यकुशल पाई गई है। वैयक्तिक उद्योगों में प्रवेश करना कठिन रहा है, और उनमें से निकलना उससे भी अधिक कठिन, जैसे मानो कोई चक्रव्यूह तोड़ा जा रहा है, किसी भी उद्योग को मरने नहीं दिया जाता, उसे बीमार रहने दिया जाता है एवं राज्य उसकी निरन्तर देखभाल करता रहता है। उद्यमकर्ता सट्टेबाजी व अल्पकालीन लाभों को अधिकतम करने में लगे रहते हैं। वास्तविक उत्पादन बढ़ाने में कोई रुचि नहीं लेना चाहता। औद्योगिक क्षेत्र में ज्यादातर अल्पाधिकार की स्थिति (oligopoly) पायी जाती है, जिसके अन्तर्गत कुछेक फर्में उपभोक्ताओं

---

1. Ibid, Chapter 8, pp. 147-165.

के शोषण मे लगी रहती है। विभिन्न उद्योगो मे टेक्नोलोजी पुरानी पायी जाती है तथा विदेशो से भी कई बार घटिया मशीनो का आयात कर लिया जाता है। प्रायः निजी विदेशी पूंजी के आयात की जगह निर्यात अधिक हो जाता है। विभिन्न चरणो पर उद्यमकर्ता को अफसरो व अधिकारियो के स्वेच्छिक निर्णयों का शिकार होना पडता है। इस प्रकार कुछ विद्वानो का मत है कि भारत मे औद्योगिक नियन्त्रणो ने औद्योगिक विकास का गला घोट दिया है। स्वर्गीय एल. के. झा ने भी समय-समय पर अपने वक्तव्यो मे औद्योगिक नियन्त्रणो व लाइसेंस-व्यवस्था का पुनरावलोकन करने तथा इनमे आवश्यक ढील देने का समर्थन किया था।

डॉ. वाई. के अलक ने इलाहाबाद मे मार्च, 1985 मे अपने गोविन्द वल्लभ स्मृति व्याख्यान मे बतलाया कि 1976-77 का विभाजक रेखा मानने पर 1976-77 से 1981-82 की अवधि मे पजीकृत विनिर्माण क्षेत्र (registered manufacturing sector) मे विकास की वार्षिक दर 7 6% रही, जबकि 1971-72 से 1975-76 की अवधि मे यह 4 6% रही थी। इस प्रकार डॉ अलक ने औद्योगिक विकास की दर को 1976-77 से आशाजनक व उत्साहवर्धक बतलाया है। उन्होने इसको भारत मे सत्तर के दशक मे बडे औद्योगिक देशो की तुलना मे कम नहीं माना है। इस प्रकार 1966-67 से 1979-80 की अवधि मे औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 1959-60 से 1965-66 की तुलना मे नीची रही (श्रीमती अहलूवालिया के अनुसार), लेकिन 1976-77 से 1981-82 की अवधि मे यह 1971-72 से 1976-77 की तुलना मे अधिक रही (डॉ अलक के अनुसार)। अत. विद्वानो के द्वारा विभिन्न अवधियो को लेकर विभिन्न प्रकार के परिणाम प्रस्तुत किये गये है। लेकिन वस्तु-स्थिति यह है कि देश मे औद्योगिक क्षेत्र मे कई प्रकार की समस्याएं हैं जिनका समाधान करके विकास की दर बढायी जा सकती है जैसे उत्पादन-क्षमता का कम उपयोग, निर्मित माल की घटिया किस्म, पूंजीगत उद्योगो मे आयातित माल से प्रतिस्पर्द्धा, कच्चे माल की कमी, पावर की कमी, औद्योगिक सम्बन्धों मे गिरावट, माग की कमी, पुरानी टेक्नोलोजी से उत्पन्न कठिनाई, आदि।

1985 मे नई सरकार ने आवश्यक औद्योगिक नियन्त्रणो व नियमनो को कम करने की दिशा मे कुछ कदम उठाये है। आयातो के क्षेत्र मे उदार नीति अपनायी गई है तथा 1985-88 व 1988-91 की अवधि के लिए त्रिवर्षीय निर्यात-आयात नीति (Exim-policy) घोषित की गई है। प्रत्यक्ष करो (वैयक्तिक व निगमित) मे कमी की गई है। MRTP अधिनियम के अन्तर्गत विनियोग की सीमा 20 करोड रु से बढाकर 100 करोड रु (पाँच गुनी) कर दी गई है। 25 उद्योगो को लाइसेंस मुक्त किया गया है। 27 उद्योगों को MRTP अधिनियम की धारा 21 व धारा 22 के दायरे से हटा दिया गया है। MRTP व FERA कम्पनियो को पिछडे क्षेत्र मे उद्योग लगाने के लिए परिशिष्ट I व गैर-परिशिष्ट श्रेणी मे काफी उद्योगो मे

लाइसेंस से मुक्त किया गया है। कम्प्यूटर, इलेक्ट्रोनिक्स व टेक्सटाइल उद्योगों में उत्पादन बढ़ाने के लिए नई नीतियाँ घोषित की गई हैं जिनमें आधुनिकीकरण व निम्न-नियन्त्रण का दृष्टिकोण सर्वोपरि प्रतीत होता है। इन सब पर पिछले अध्याय में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला जा चुका है।

यह स्मरण रहे कि औद्योगिक नीति में उदारता की ओर प्रवृत्ति भारत के लिए कोई नई बात नहीं है। यह भूतकाल में भी (1973 से लगातार अब तक) अपनायी गई है। लेकिन नई सरकार ने इसे अधिक स्पष्ट रूप से अधिक व्यापक पैमाने पर तथा अधिक महत्त्वपूर्ण ढंग से अपनाया है। प्रधान मन्त्री श्री राजीव गान्धी ने सार्वजनिक क्षेत्र की उन इकाइयों को बन्द करने की बात कही है जिनमें निरन्तर घाटे की स्थिति बनी रहती है। अन्य घाटे वाली इकाइयों को निजी क्षेत्र को बेचा जा सकता है। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों का घाटा कम करने के नये प्रयास करने पर भी बल दिया गया है।

सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों के सचालक-मण्डलों में निजी क्षेत्र के अनुभवी व्यक्तियों को नियुक्त किया गया है। रतन टाटा को एयर इण्डिया का चेयरमैन तथा राहुल बजाज को इण्डियन एयरलाइन्स का चेयरमैन नियुक्त किया गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि पिछले वर्षों में सरकार ने औद्योगिक नीति को उदार बनाने की दिशा में आवश्यक कदम उठाये हैं। भूतकाल में विभिन्न औद्योगिक नियन्त्रण व्यवहार में औद्योगिक प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हुए थे। इसलिए विद्वानों को इनकी उपयोगिता में काफी सन्देह होने लगा था। ऐसी स्थिति में कुछ उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त करने, उनको MRTP अधिनियम के दायरे से हटाने, उद्योगों को ब्रोड बैंडिंग के द्वारा वस्तु-मिश्रण को बदलने की स्वतन्त्रता देने आदि के पक्ष में वातावरण का बनना स्वाभाविक था। सरकार ने औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए छठी योजनावधि में औद्योगिक व लाइसेंस नीति में कई परिवर्तन किए हैं जिनका विवेचन पहले किया जा चुका है। अधिकांश परिवर्तन 1985 व इसके बाद किये गये हैं जिनके परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास की वार्षिक दर ऊँची हुई है।

औद्योगिक उत्पादन का नया सूचनांक व वृद्धि दर

अब औद्योगिक उत्पादन के सूचनांक का आधार वर्ष 1970 से बदलकर 1980-81 कर दिया गया है जिससे औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 6 से 7 प्रतिशत की जगह 8 से 9 प्रतिशत (1981-82 से 1988-89 की अवधि के लिए) आयी है। यह अग्रतालिका में दर्शायी जाती है? [1]

---

1 Economic Survey 1988–89, p. 43, तथा the Economic Times, Sept. 8, 1989.

वर्ष	नयी शृंखला या सिरीज (1980-81 = 100)
1981-82	9 3
1982-83	3 2
1983-84	6 7
1984-85	8 6
1985-86	8 7
1986-87	9 1
1987-88	7 3

औद्योगिक उत्पादन के प्रचलित सिरीज मे कई प्रकार की कमियाँ महसूस की गयी थी। जैसे दसम रसायन, पेट्रो-रसायन, पोशाकों जेम-कटिंग व इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगो को उचित भार नही दिया गया था जबकि मिल क्षेत्र के सूती वस्त्र उद्योग का आवश्यकता से अधिक भार मिला हुआ था। इसके अलावा प्रचलित सिरीज म लघु उद्योगो का उत्पादन भी भलिभाति प्रगट नही हो पा रहा था।

इन कमियो को दूर करने के लिए नया सिरीज प्रारम्भ किया गया है। इससे औद्योगिक विकास की वार्षिक दर ऊँची हुयी है। यह 1986-87 मे 9 1% रही एव 1987-88 मे सूखे के बावजूद यह 7 3% रही। इससे स्पष्ट होता है कि औद्योगिक उत्पादन पर सूखे का विपरीत प्रभाव बहुत सीमित रहा। औद्योगिक उत्पादन म तज गति से वृद्धि के लिए माँग की अनुकूल दशाओ, कृषिगत विकास की सतोषजनक स्थिति व इन्फास्ट्रक्चर की प्रगति को जिम्मेदार ठहराया गया है। ऐसा लगने लगा है कि भारत की औद्योगिक प्रगति अब कृषिगत विकास मे बन्धी नही रही। 1988-89 म औद्योगिक विकास को दर 8 8% रही है।

सातवी योजना के प्रथम तीन वर्षों मे विद्युत मशीनरी व उपकरण तथा रसायन पदार्थो ने उल्लेखनीय प्रगति की है। लेकिन पेय पदार्थों, तम्बाकू, वस्तुओ जूट लकडी व लकडी से बनी वस्तुओ के उद्योगो मे प्रगति की रफ्तार धीमी रही है।

अब हम सातवी पचवर्षीय *योजना 1985-90 मे औद्योगिक विकास के* उद्देश्यो व्यूहरचना व नीति सम्बन्धी ढाँचे पर प्रकाश डालते है।[1]

(क) सातवीं योजना में औद्योगिक विकास के उद्देश्य (Objectives)

सातवी योजना म औद्योगिक विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य 8% रखा गया था। औद्योगिक विकास के निम्नलिखित उद्देश्य रखे गये।

1 Seventh Five Year Plan 1985-90 Vol II pp 169-175

(i) उचित मूल्यों व उचित क्वालिटी की ग्राम जनता की उपभोग्य वस्तुग्रो व मजदूरी वस्तुग्रो (wage goods) की पर्याप्त सप्लाई करना,

(ii) उत्पादकता मे सुधार करके तथा टेक्नोलोजी को उन्नत करके उत्पादन की वर्तमान क्षमता का अधिकतम उपयोग करना,

(iii) उन उद्योगो पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करना जिनके लिए घरेलू बाजार काफी बडा है तथा निर्यात सम्भावनायें हैं एव भारत उनमे विश्व म नेतृत्व कर सकता है।

(iv) नये उद्योगो पर ध्यान देना जिनमे विकास की काफी सम्भावनाए भरी पडी हैं,

(v) मुख्य क्षेत्रो मे ग्रात्म-निर्भरता के लिए एकीकृत नीति का विकास करना तथा दक्ष व प्रशिक्षित मानवीय शक्ति को रोजगार के ग्रवसर प्रदान करना।

सक्षेप मे सातवीं योजना के दौरान उत्पादकता व ग्रार्थिक क्षमता को बढाने पर जोर दिया गया है। वस्तु की लागत मे कमी करके तथा किस्म मे सुधार करके देशी व विदेशी माग को बढाने का प्रयास किया गया है। एक तरफ पावर, रेलवे व कोयले जैसे क्षेत्रों का विकास किया गया है तो दूसरी तरफ लोगो की क्रय-शक्ति बढाकर माग को बढाने पर जोर दिया गया है।

(ख) सातवीं योजना में ग्रौद्योगिक विकास की व्यूहरचना (Strategy)

ग्रौद्योगिक विकास की व्यूहरचना मे निम्न मुख्य बातें शामिल की गई हैं—

(i) **उद्योगों के ढाचे मे परिवर्तन करना (Restructuring of Industry)**—भारत मे उद्योगों के ढाचे म परिवर्तन करना बहुत ग्रावश्यक हो गया है। हमें परम्परागत उद्योगो से ध्यान कम करके बेसिक मेटल, उर्वरक, नये उद्योगों व सुरक्षा की ग्रावश्यकता को पूरा करने वाले उद्योगो पर ग्रधिक ध्यान दिया जा रहा है। ग्रब ऊँची टेक्नोलोजी व ऊचे ज्ञान पर ग्राधारित उद्योगो जैसे इलेक्ट्रोनिक्स, मशीनरी ग्रौजारो व टेलीकम्यूनिकेशन्स ग्रादि का भी विकास करना होगा। इस प्रकार देश म नवोदित उद्योगो (Sunrise Industries) का महत्व बढ रहा है। इसम इलेक्ट्रोनिक्स, पेट्रोरसायन, कम्प्यूटर ग्रादि उद्योग ग्राते हैं।

(ii) **पूंजी का कार्यकुशल उपयोग**—उत्पादन की वर्तमान क्षमता का पूरा उपयोग करने पर ग्रधिक बल दिया जा रहा है ताकि भावी विकास के लिए बचतें मिल [illegible]

(iii) **ग्राधारभूत सुविधाग्रो का विकास**—पावर के क्षेत्र म वर्तमान क्षमता का पूरा उपयोग करने के साथ-साथ नए सुपर थर्मल व ग्राणविक सयन्त्र स्थापित करने पर बल दिया जा रहा है। जब तक ऊर्जा की स्थिति नही सुधरती तब तक ऐसे ऊर्जा-गहन उद्योगो पर कम बल देना ग्रावश्यक है।

(iv) आधुनिकीकरण व टेक्नोलोजी को उन्नत करना—वस्त्र व चीनी जैसे उद्योगों मे आधुनिकीकरण करना बहुत आवश्यक हो गया है। लागत घटाने व माल की किस्म सुधारने के लिए टेक्नोलोजी को उन्नत करना व प्रतियोगिता का वातावरण बनाना जरूरी है। उद्योगों को बाजार मे नई वस्तुएँ प्रस्तुत करनी चाहिए। इसके लिए अनुसधान पर बल देना होगा तथा इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग के विकास पर जोर देना होगा।

(v) उत्पादकता—देश मे इस्पात, उर्वरक, अलौह धातुओं, पेट्रोरसायन, कागज व सीमेन्ट जैसे उद्योगो मे उत्पादकता बढाने पर अधिक ध्यान देना होगा। इनके लिए कम्प्यूटर की सहायता से सचालित क्रियाओं को बढाना होगा तथा श्रमिकों का उपयोग करना होगा।

(vi) निर्यात के लिए विशेष क्षेत्रों का निर्धारण—विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए चुने हुए उद्योगो मे निर्यात बढाने के लिए उत्पादन-वृद्धि करनी होगी। गैर-परम्परागत निर्यातों को भी बढ़ावा देना होगा। इसके लिए प्रतियोगिता व आवश्यक ... की पूरी तैयारी करनी होगी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सातवीं योजना की औद्योगिक व्यूह-रचना में औद्योगिक ढाचे के परिवर्तन, पूँजी के कार्यकुशल उपयोग, इन्फ्रास्ट्रक्चर के सुधार, आधुनिकीकरण, टेक्नोलोजी को समुन्नत करने, उत्पादकता बढाने व निर्यात-संवर्द्धन पर बल दिया गया है ताकि भारत 21वीं शताब्दी मे एक सबल औद्योगिक राष्ट्र बन कर प्रवेश कर सके।

उपर्युक्त व्यूहरचना के अनुसार औद्योगिक विकास कर सकने के लिए निम्न नीतियों को अपनाने पर जोर दिया गया है।

(ग) सातवीं योजना में नीति सम्बन्धी ढांचा या फ्रेमवर्क

(i) सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों का योगदान—भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र एक-दूसरे के पूरक हैं। आधारभूत उद्योगो व इन्फ्रास्ट्रक्चर उद्योगो मे सार्वजनिक विनियोग के बढने से निजी विनियोग पर अनुकूल असर आता है। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों मे परस्पर प्रतियोगिता की दशा उत्पन्न की जानी चाहिए और इसी प्रकार निजी क्षेत्र में भी प्रतियोगिता बढायी जानी चाहिए। इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र के सचालन मे कार्यकुशलता के विभिन्न उपाय अपनाने आवश्यक है।

(ii) बडे, मध्यम व लघु उद्योगो के लिए एक समन्वित नीति—भारत मे बडे व लघु दोनों प्रकार के उद्योगों का विकास करना होगा। बडे उद्योगो मे आधुनिक टेक्नोलोजी व पैमाने की किफायतों के लाभ है एवं लघु उद्योगो मे रोजगार उत्पन्न करने की क्षमता है। गाडी, इलेक्ट्रोनिक्स व वस्त्र उद्योगो मे इन दोनों का परस्पर पूरकता का भी सम्बन्ध है जिसका लाभ उठाया जाना चाहिए। अन्य क्षेत्रों मे लघु उद्योगों को सरक्षण भी देना होगा।

(iii) औद्योगिक नियन्त्रणों व नियमनों को सकारात्मक (Positive) रूप देना होगा—भारत मे औद्योगिक लाइसेन्स-व्यवस्था, विनिमय-नियन्त्रण, एकाधिकारी कानून, मूल्य-निर्धारण, राजकोषीय व मौद्रिक उपायों का इस दृष्टि से अपनाना होगा कि वे उत्पादन बढ़ाने म मदद दें, न कि इसमें रोड़ा अटकाएँ। जहा कहीं ये उत्पादन बढ़ाने में बाधक सिद्ध होते हैं, वहाँ इनको हटा दिया जाना चाहिए।

(iv) उद्योगों के लिए केन्द्रीय व राज्यीय योजनाओं में समन्वय की आवश्यकता—साधारणतया केन्द्र का पूँजी-गहन बड़े प्रोजक्ट लेने चाहिएँ तथा राज्यों को स्थानीय साधनों का उपयोग करने वाले रोजगार-गहन प्रोजेक्ट लेने चाहिए। जहाँ केन्द्र व राज्यों के प्रोजेक्ट एक-से क्षेत्रों में हों, वहाँ उनमे ताल-मेल बैठाया जाना चाहिए।

(v) संस्थागत व्यवस्था—उद्योगों के विकास के लिए संस्थागत वित्त की व्यवस्था सुदृढ़ होनी चाहिए तथा टेक्नीकल व प्रशासनिक निर्देशन भी व्यापक होना चाहिए।

(vi) उद्योगों का प्रादेशिक छितराव या फैलाव—पिछड़े क्षेत्रों व जिलों म उद्योगों का विकास करने के लिए पावर, सड़क व जल-पूर्ति का विकास करने, सब्सिडी देने, रियायती शर्तों पर वित्त की व्यवस्था करने व उचित लाइसेंस-व्यवस्था अपनाने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

(vii) औद्योगिक रुग्णता—देश मे बीमार औद्योगिक इकाइयों की संख्या बढ़ रही है, उनकी समस्या को हल करने के लिए अधिक कारगर उपाय किए जाने चाहिए। दोषी प्रबन्धकों को कड़ी सजा दी जानी चाहिए। जो औद्योगिक इकाई वापस सक्षम नहीं हो सकती उसे बद कर दिया जाना चाहिए।

(viii) प्रदूषण-नियन्त्रण व पर्यावरण-सुधार पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके लिए उचित टक्नोलोजी का उपयोग किया जाना चाहिए।

(ix) औद्योगिक सुरक्षा (Safety)—औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोकने व सुरक्षा प्रदान करने के उपायों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(x) एक नयी औद्योगिक व्यवस्था के लिए प्रशिक्षण—मजदूरों, मालिकों व सरकारी अफसरों के दृष्टिकोण म परिवर्तन होना चाहिए ताकि वे नयी औद्योगिक व्यवस्था के अनुसार कार्य कर सकें। मजदूरों के ट्रेनिंग प्रोग्राम बढ़ाये जाने चाहिए।

(xi) अन्त में औद्योगिक व प्रगतिशील उद्यमशीलता को बढ़ावा देने की भी आवश्यकता है जिसके बिना नई औद्योगिक संस्कृति नहीं पनप सकती। नए उद्यमकर्ताओं का दृष्टिकोण उत्पादन बढ़ाने व लागत घटाने तथा माल की किस्म सुधारने का होना चाहिए।

सातवीं योजना में औद्योगिक व खनन-विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय हेतु 19,708 करोड़ रु. की राशि का प्रावधान किया गया था। 70% से अधिक धन-राशि इस्पात, उर्वरक, अलौह धातु, पेट्रो-रसायन व सीमेंट के लिए नियत की गई जो मूल क्षेत्र (core sector) में आते हैं।

चुने हुए उद्योगों में उत्पादन के लक्ष्य इस प्रकार रखे गये :

उद्योग	1984-85 (वास्तविक उत्पादन)	1989-90 (उत्पादन का लक्ष्य)
(i) कोयला	14·7 करोड़ टन	22·6 करोड़ टन
(ii) बिक्रीयोग्य इस्पात	87·7 लाख टन	126 लाख टन
(iii) क्रूड तेल	2·9 करोड़ टन	3·4 करोड़ टन
(iv) सीमेंट	3 करोड़ टन	4·9 करोड़ टन
(v) उर्वरक-नाइट्रोजन	39 लाख टन	65·6 लाख टन
(vi) चीनी	62 लाख टन	1 करोड़ टन

इस प्रकार सातवीं योजना में विभिन्न उद्योगों में उत्पादन-वृद्धि के ऊँचे लक्ष्य रखे गये ताकि औद्योगिक विकास की वार्षिक दर लगभग 8% प्राप्त की जा सके। सरकार ने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विकास की व्यूहरचना व नीति का ढांचा भी तैयार किया। भारत के समक्ष प्रमुख चुनौती लागत कम करने व माल की किस्म को सुधार कर माग में अभिवृद्धि करने की है। इसके लिए सम्पूर्ण औद्योगिक अर्थव्यवस्था को एक नया मोड़ देने की आवश्यकता है।

आशा है भावी योजनाओं में केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारें औद्योगीकरण को नई दिशा देने में अधिक सिद्ध सफल होंगी। स्मरण रहे कि भारत में रोजगारोन्मुख औद्योगीकरण व आधुनिक टेक्नोलोजी पर आधारित औद्योगीकरण में एक उचित संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है, जो स्वयं में एक कठिन कार्य है, लेकिन असम्भव नहीं है।

सरकारी सूत्रों के अनुसार औद्योगिक नियन्त्रणों में उत्तरोत्तर अधिक ढील दी जायगी ताकि उत्पादन बढ़ाया जा सके। सरकार लाइसेंस-व्यवस्था के प्रभाव को और सीमित करना चाहती है।

MRTP कम्पनियों के लिए परिसम्पत्ति की सीमा को 20 करोड़ रु से बढ़ा कर 100 करोड़ रु किया जा चुका है। प्रभुतासम्पन्न उपक्रम (dominant undertaking) की परिभाषा को 1 करोड़ रु की परिसम्पत्ति (assets) की सीमा से बढ़ाकर 5 करोड़ रु करने पर विचार चल रहा है। इन्फ्रास्ट्रक्चर के अन्तर्गत पावर की कमी को दूर करने पर ध्यान दिया जा रहा है। आशा है सातवीं योजना में औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 8% प्राप्त की जा सकेगी तथा आठवीं योजना में इसमें और वृद्धि करना सम्भव हो सकेगा।

प्रश्न

1. भारत में औद्योगिक नीति का औद्योगिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है? इसका मूल्यांकन कीजिए तथा सातवीं पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार की औद्योगिक विकास की व्यूहरचना का विवेचन कीजिए।

संदर्भ लेख

K. L. Krishna: Industrial Growth and Productivity in India in "The Development Process of the Indian Economy", edited by Brahmananda and Panchamukhi, 1987

———

12

निजी क्षेत्र में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण व इसको रोकने के उपाय

(Concentration of Economic Power in the Private Sector and Measures to Check It)

निजी क्षेत्र में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण

भारत मे निजी क्षेत्र ने विभिन्न किस्म के उद्योगो व व्यवसायो मे भाग लिया है। देश मे बडे व्यावसायिक घराने (Big Business Houses), जैसे टाटा, बिडला, रिलायन्स, जे के सिंघानिया आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्हे एकाधिकारी घराने (Monopoly Houses) या औद्योगिक घराने (Industrial houses) भी कहा जाता है। इन औद्योगिक घरानो ने देश के औद्योगिक विकास मे महत्वपूर्ण भाग लिया है। अकेले बिडला घराने ने कई उद्योगो व व्यवसायो मे भाग लिया है जैसे सूती वस्त्र मोटरगाडी व साइकिल उद्योग मशीनरी का निर्माण व परिवहन कागज की लुग्दी रेयोन, जूट, चीनी बिजली का सामान, सीमेंट व एल्यूमिनियम उद्योग आदि। इसी प्रकार अन्य औद्योगिक समूहो ने कई प्रकार के उद्योगो व आर्थिक क्रियाओ मे भाग लिया है। नये औद्योगिक घरानो मे रिलायन्स अशोक लीलेण्ड, एम ए चिदाम्बरम, हिन्दुस्तान लीवर व टी वी एस आयगर आदि के नाम प्रमुख है।

योजनाकाल मे निजी क्षेत्र ने औद्योगिक जगत मे काफी प्रगति दिखलाई है। इस प्रगति की यह विशेषता रही है कि निजी क्षेत्र मे एकाधिकार व आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बढावा मिला है। देश की अर्थव्यवस्था पर थोड़े से औद्योगिक व व्यावसायिक घरानो का प्रभुत्व स्थापित हो गया है जो समाजवादी समाज के लक्ष्य के सर्वथा विपरीत है। यह कहना अनुचित न होगा कि योजनाकाल की प्रगति को देखते हुए देश मे पूँजीवादी समाज की ओर प्रगति प्रोत्साहन अधिक

बढ़ी है। इस सम्बन्ध मे कम्पनी व एम आर टी पी अधिनियमो पर उच्चाधिकार प्राप्त समिति (राजिन्दर सच्चर समिति) का कहना है कि "एकाधिकार-जांच-आयोग ने श्री के सी दास गुप्ता की अध्यक्षता मे अपनी अक्टूबर 1965 की रिपोर्ट मे बताया था कि चोटी के 75 व्यावसायिक घरानो के अधिकार मे 1536 कम्पनियाँ थी जिनकी परिसम्पत्ति 2606 करोड रुपये थी, जो देश की समस्त गैर-सरकारी कम्पनियो की कुल परिसम्पत्ति का 47% थी। इन्ही 75 घरानो की परिदत्त पूँजी 646 करोड रुपये थी जो निजी क्षेत्र की कुल परिदत्त पूँजी का 44% थी। इसी प्रकार 1969 मे दत्त समिति ने भी यही निष्कर्ष निकाला था कि लाइसेंस-व्यवस्था ने बडे औद्योगिक घरानो के विकास मे सहायता पहुँचाई है।"[1]

एकाधिकार-जांच आयोग (MIC) के अनुसार आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के प्रमुखतया दो रूप होते हैं—(1) वस्तु के अनुसार केन्द्रीयकरण (Product-wise Concentration), और (2) देश के अनुसार केन्द्रीयकरण (Country wise Concentration)।

1 **वस्तु के अनुसार केन्द्रीयकरण**—वस्तु के अनुसार केन्द्रीयकरण मे एक विशेष वस्तु या सेवा के उत्पादन और वितरण के सम्बन्ध के नियन्त्रण की शक्ति किसी अकेली फर्म अथवा अपेक्षाकृत सीमित फर्मों अथवा काफी अधिक फर्मों (जहाँ इन फर्मों पर नियन्त्रण अकेले परिवार अथवा कुछ परिवारो या व्यावसायिक घरानो का हो) के पास होता है। यह नियन्त्रक शक्ति (Controlling Power) पूँजी के स्वामित्व अथवा अन्य किसी कारण से उत्पन्न हो सकती है। जहाँ एक उद्योग मे एक वस्तु का उत्पादन होता है, वहाँ इसे 'उद्योगानुसार केन्द्रीयकरण' (Industry-wise Concentration) भी कह सकते है।

2 **देश के अनुसार केन्द्रीयकरण**—इसम विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन अथवा वितरण मे सलग्न अनेक फर्मों का नियन्त्रण एक व्यक्ति या परिवार या व्यक्ति-समूह, चाहे वे निगमित (Incorporated) हो या न हो मे होता है। ये वित्तीय अथवा अन्य व्यावसायिक हितो के कारण परस्पर गहरे सम्बद्ध होते हैं। श्री आर सी दत्त ने देश के अनुसार केन्द्रीयकरण को अन्तर-उद्योग केन्द्रीयकरण (Inter-industries concentration) कहा है, क्योकि इसमे एक व्यावसायिक समूह का कई उद्योगो पर एक साथ नियन्त्रण होता है। उदाहरणार्थ, 31 मार्च 1964 को बिडला-समूह के अधिकार म 151 कम्पनियाँ थी जिनकी परिसम्पत्ति लगभग 283 करोड रुपये थी। इस समूह के औद्योगिक हितो का विस्तार काफी व्यापक रहा है। जैसा कि पहले

---

1 Report of the High-powered Expert Committee on Companies and MRTP Acts (Rajindar Sachar Committee), August 1978, p 248

बताया जा चुका है, इन कम्पनियो के कार्यक्षेत्र मे कई प्रकार के उद्योग व व्यवसाय रहे है।

एकाधिकार-जांच आयोग (MIC) ने वस्तु के अनुसार केन्द्रीयकरण का विस्तृत अध्ययन किया था और 100 चुनी हुई वस्तुओ जैसे शिशु दूध, चाय, चीनी, विभिन्न किस्म के वस्त्र, लालटेन- रेफ्रीजरेटर्स माचिस, सिगरेट, जूते, दवाएँ, टायर कारें, सीमेंट आदि मे केन्द्रीयकरण के विस्तार का अनुमान लगाया था। MIC के अनुसार 100 वस्तुओ मे से 65 मे उच्च श्रेणी का केन्द्रीयकरण पाया गया, 10 मे मध्यम दर्जे का एव 8 म नीचे स्तर का केन्द्रीयकरण पाया गया। 17 वस्तुओ मे केन्द्रीयकरण का अभाव था।

औद्योगिक लाइसेंस नीति जांच समिति (ILPIC) की रिपोर्ट (1969) के आधार पर साठ की शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे भारत मे वस्तु के अनुसार केन्द्रीयकरण काफी ऊंचा हो गया था। देश मे कई उद्योगो मे अल्पाधिकार (Oligopoly) की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जिसके अन्तर्गत वस्तुओ के उत्पादन व बाजार पर थोडी-सी फर्मो का नियन्त्रण स्थापित हो गया था। एन एस सिद्धार्थन ने चुने हुए उद्योगो मे बाजार-केन्द्रीयकरण (market concentration) का अध्ययन करके बतलाया है कि भारत मे इन्जीनियरी व रसायन उद्योगो मे विभिन्न प्रकार की वस्तुओ मे चोटी की चार फर्मों का नियन्त्रण काफी ऊंचा रहा है। उदाहरण के लिए, मोटरगाडियो व सहायक उद्योगो की 102 वस्तुओ मे से 96 वस्तुओ मे चोटी की चार फर्मों ने शत-प्रतिशत उत्पत्ति पर नियन्त्रण कर रखा है, दवाइयो मे 97 वस्तुओ मे से 80 वस्तुओ मे तथा कीटनाशक दवाइयो, प्लास्टिक्स व प्लास्टिक्स रसायनो मे 114 वस्तुओ मे से 105 वस्तुओ मे इसी प्रकार का नियन्त्रण पाया गया है। अन्य रसायनो, टूल्स, रबड-विनिर्माण, तेल, साबुन व पेण्ट, भारी रसायन, इन्जीनियरी, विद्युत इन्जीनियरी, चमडा व कागज उद्योगो मे काफी वस्तुओ के उत्पादन मे अल्पाधिकार की दशा विद्यमान रही है।[1]

बम्बई विश्वविद्यालय के औद्योगिक अर्थशास्त्री प्रोफेसर जे सी. सडेसरा के अनुसार 1970 मे जूतो, रबड व रबड-वस्तुओ पेट्रोल-पदार्थों व कोयले तथा मनोरजन की सेवाओ मे उच्च केन्द्रीयकरण (33% या अधिक) पाया गया। 9 उद्योगो म जैसे फर्नीचर बेसिक मेटल उद्योगो, विद्युत मशीनरी के उपकरणो आदि म मध्यम श्रेणी का (16% से 32%) पाया गया तथा शेष मे नीचा पाया गया। इस प्रकार भारत मे बड़े पैमाने के उद्योगो मे ज्यादातर अल्पाधिकारी बाजार की दशाए पायी

---

1 Sudipto Mundle, **Growth, Disparity and Capital Reorganisation in Indian Economy**, EPW, Annual Number, March 1981, p 394.

जाती हैं जिससे औद्योगीकरण की प्रारम्भिक अवस्था में ही भारत में बाजार-केन्द्रीयकरण की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

एकाधिकार-जांच आयोग ने देश के अनुसार केन्द्रीयकरण के लिए 2,259 कम्पनियों के विस्तृत आंकड़े एकत्र किये थे। ये 83 बड़े व्यावसायिक घरानों के अधिकार में थी। 75 समूहों की परिसम्पत्ति 5 करोड़ रुपये से कम नहीं थी। 1963-64 में परिसम्पत्ति में सर्वोच्च स्थान टाटा-समूह का था जिसके अधिकार में लगभग 375 करोड़ रुपये की परिसम्पत्ति तथा 53 कम्पनियां थी। दूसरा स्थान बिड़ला-समूह का था। इस समूह के अन्तर्गत 151 कम्पनियां व लगभग 283 करोड़ रुपये की परिसम्पत्ति थी।

भारत में चोटी के औद्योगिक घरानों की परिसम्पत्तियां, बिक्री आदि निरन्तर बढ़ती रही हैं। इनमें अल्पावधि में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं।

1963-64 में भारत के चोटी के 20 व्यावसायिक घरानों की कुल परिसम्पत्तियों का मूल्य 1347 करोड़ रु. था जो बीस वर्ष बाद 1983-84 में 12262 करोड़ रु. हो गया, हालांकि नये बीस व्यावसायिक घराने वे नहीं रहे जो पहले थे। इस प्रकार इनकी परिसम्पत्तियों (assets) में प्रतिवर्ष 40·5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुयी। यह वृद्धि प्रचलित मूल्यों पर हुयी है। यदि 1983-84 की परिसम्पत्तियों का मूल्य 1963-64 के भावों पर लगाया जाय तो भी परिसम्पत्तियों में वास्तविक वार्षिक वृद्धि-दर लगभग 13·5 प्रतिशत आयगी। स्वाभाविक है कि स्थिर भावों पर यह नीची रहेगी। 1985 में चोटी के 20 व्यावसायिक घरानों की कुल परिसम्पत्ति 20137 करोड़ रुपये हो गयी थी। ताजा आंकड़ों के अनुसार 1986-87 में चोटी के औद्योगिक घरानों की परिसम्पत्तियां निम्न तालिका में दर्शायी गयी हैं—[1]

घराने का नाम (क्रमवार)	करोड़ रु.
1. टाटा	4940
2. बिड़ला	4771
3. रिलायन्स	2022
4. ज. के. सिंघानिया	1427
5. थापर	1151

1. The Economic Times, May 4, 1989

6. मफतलाल	1050
7. मोदी	860
8. लार्सन व टूब्रो	831
9 एम. ए चिदाम्बरम्	808
10. बजाज	778
कुल	18638

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1986-87 म चोटी के दस व्यावसायिक घरानो की कुल परिसम्पत्ति 18638 करोड रुपये हो गई थी जिनम प्रथम स्थान टाटा का हा गया था। टाटा-बिडला दोनों की परिसम्पत्ति 9711 करोड रुपय थी जो इन चोटी के दस घरानो की कुल परिसम्पत्ति का 52% थी।

आजकल अकेले परिसम्पत्ति के मूल्य पर ही ध्यान नही दिया जाता, बल्कि साथ म बिक्री-मूल्य को भी देखा जाता है। अत. परिसम्पत्ति-बिक्री मूल्य-अनुपात (asset-turnover ratio) की जानकारी का महत्व बढ गया है। 1986-87 मे यह अनुपात 1 . 1 3 मोदी घराने के लिए सर्वोच्च रहा; जबकि रिलायन्स के लिए यह 1 : 0 5 ही था। इस प्रकार मोदी घराने की स्थिति अधिक सन्तोषजक मानी जा सकती है हालाकि परिसम्पति के आधार पर घरानो के क्रम मे इसका स्थान सातवाँ था, जबकि रिलायन्स का तीसरा था। अतः चोटी के व्यावसायिक घरानो की कार्यसिद्धि में परिसम्पत्ति का बिक्री-मूल्य से अनुपात देखना ज्यादा उपयोगी रहेगा।

1986-87 में टाटा-बिड़ला की परिसम्पत्तियो का दस व्यावसायिक घरानो की कुल परिसम्पत्तियो मे आधा अश भारत मे 'केन्द्रीयकरण में केन्द्रीयकरण' (Concentration within Concentration) की स्थिति का सूचक माना जाता है। 1980 मे 20 घरानों की कुल परिसम्पत्ति देश मे निजी क्षेत्र की कुल परिसम्पत्ति का लगभग चौथाया अश थी।

प्रनब बर्धन का मत है कि चोटी के दस घरानों के योगदान को देखने के लिए बिक्री-मूल्य ज्यादा अच्छा सूचक है क्योंकि परिसम्पत्ति के मूल्याकन तथा मूल्य-ह्रास आदि का हिसाब लगाने में कई दिक्कते आती हैं।[1]

1 Pranab Bardhan, The Political Economy of Development in India, 1984, p. 42.

बडे व्यावसायिक घरानों में आर्थिक सत्ता कुछ व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है, क्योंकि उन्हें कई प्रकार के निर्णय लेने का अधिकार होता है। ये निर्णय निम्नांकित विषयों से सम्बन्धित होते हैं : आन्तरिक व बाह्य साधनों से पूँजी जुटाना, वित्तीय साधनों को नये उपक्रमों व चालू उपक्रमों के विस्तार के बीच विभाजित करना, चालू स्वतन्त्र कम्पनियों को खरीदना व उनका एकीकरण करना, सयन्त्रों के स्थान का चुनाव करना, टैक्नोलोजी का चुनाव करना, अनुसंधान व विकास सम्बन्धी कार्य करना, उत्पादन की मात्रा व कीमत का निर्धारण करना, रोजगार की मात्रा निश्चित करना, चोटी के व्यवस्थापकों के वेतन व अन्य भुगतानों का निर्धारण करना, आदि। ये निर्णय एकाधिकारी घरानों में कुछ व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित होते हैं जिससे इस व्यवस्था में पारिवारिक प्रबन्ध (family management) विकसित हो जाता है।

व्यावसायिक समूह व एकाधिकार में अन्तर

बडे व्यावसायिक समूह व एकाधिकार के बीच में भी अन्तर पाया जाता है। पहले में आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण (Control over economic power) होता है, जबकि दूसरे में एक वस्तु के बाजार पर नियन्त्रण (Control over Market) होता है। बडे व्यवसाय' को सदैव प्रत्येक वस्तु पर 'एकाधिकार' प्राप्त नहीं होता, जैसे टाटा व बिडला के अधिकार में पायी जाने वाली सूती वस्त्र की मिलों को वस्त्र-बाजार में एकाधिकार प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक एकाधिकारी फर्म किसी बडे व्यावसायिक समूह की ही फर्म हो; उदाहरण के लिए मशीन व चाकू बनाने वाली लाल्डी प्राइवेट लि. का इस वस्तु के बाजार में तो एकाधिकार है, लेकिन यह किसी बडे व्यावसायिक घराने से सम्बन्ध नहीं रखती।

एक बड़े व्यावसायिक घराने के द्वारा किसी कम्पनी पर नियन्त्रण कैसे स्थापित किया जाता है?

एक बडे व्यावसायिक घराने के सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि इसके द्वारा किसी कम्पनी पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वह उस कम्पनी की शेयर-पूँजी में बडा हिस्सा ही ले। यदि वह घराना उस कम्पनी में अकेले अल्पसंख्यक के रूप में सर्वाधिक शेयर (largest single minority shareholding) रखता है तो भी उसका कम्पनी पर नियन्त्रण स्थापित हो सकता है। जिन कम्पनियों की शेयरहोल्डिंग काफी फैली या छितरी हुई होती है, उसमें यह सम्भव हो सकता है कि एक व्यावसायिक घराने के पास थोडे से शेयर होने पर भी अकेले उसी के पास अल्पसंख्यक रूप में सर्वाधिक शेयर-राशि हो। उदाहरण के लिए, टाटा-समूह का टाटा आयरन व स्टील कम्पनी की कुल शेयर पूँजी में 6 या 7 प्रतिशत अधिकार या स्वामित्व रहा है, फिर भी उनका उस पर नियन्त्रण

है क्योंकि अकेले इतनी पूंजी का स्वामित्व अन्य किसी समूह के पास नही है । इसी तरह बिडला-समूह का हिन्दुस्तान मोटर्स मे लगभग 15 प्रतिशत शेयर पूंजी (equity) पर ही नियन्त्रण पाया गया है, फिर भी कम्पनी उन्ही के नियन्त्रण मे मानी जाती है । इसलिए यह भ्रम मिथ्या है कि प्रत्येक कम्पनी मे बडे व्यावसायिक घराने की पूंजी उसकी कुल पूंजी का बहुत बडा हिस्सा होती है । इससे बडे व्यावसायिक समूह व उनके नियन्त्रण मे होने वाली कम्पनी का पूंजी की दृष्टि से परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है जिसको समझना बहुत जरूरी है ।

1981 के अन्त में छः बडे व्यावसायिक घरानो (टाटा, बिड़ला, मफतलाल, जे. के सिंघानिया, थापर व श्रीराम) की शेयर-पूंजी उनके अधिकार वाली कम्पनियो में केवल 3 33% ही थी । अपने नियन्त्रण वाली कम्पनियो म जे के सिंघानिया ग्रुप का शेयर पूंजी मे 7 1% अश था, जो सर्वाधिक था, तथा श्रीराम ग्रुप का 0·5% ही था । यदि कम्पनियो की कुल परिसम्पत्तियो (total assets) मे इन बडे व्यावसायिक घरानों का अश देखा जाय तो वह और भी कम मिलेगा जैसे मफतलाल ग्रुप के लिए यह 0 99% रहा, जबकि श्रीराम ग्रुप के लिए 0 04% ही था । कहने का आशय यह है कि अपने नियन्त्रण वाली कम्पनियो की शेयर-पूंजी व कुल परिसम्पत्ति मे बडे व्यावसायिक घरानो का अश बहुत नीचा पाया जाता है ।

निजी हाथो में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के कारण

1. टेक्नोलोजी की प्रगति—टेक्नोलोजी की तीव्र प्रगति के कारण बडे उत्पादक उत्पादन-लागत घटा सकते है । आजकल औद्योगिक जगत मे सयन्त्र के आकार (Scale of Plant) का महत्व बहुत बढ गया है । निगम के प्रादुर्भाव से 'बडे पैमाने की किफायतें' प्राप्त होने लगी हैं । अनेक व्यक्ति पूंजी की विशाल मात्रा जमा कर लेते है और निगम बना लेते हैं । शेयर-होल्डर प्रबन्ध का कार्य कुछ व्यक्तियो को सौप देते हैं । जो उद्योगपति अपनी दक्षता व उद्यम के गुणों से एक या दो फर्मों पर आधिपत्य स्थापित कर लेते है, वे अपने नियन्त्रण का क्षेत्र आगे बढाते जाते हैं । लोगो का इनमे विश्वास उत्पन्न हो जाता है और वे अपनी बचतें भी इन्हे सौप देते हैं ।

2. मैनेजिंग एजेन्सी का प्रभाव—मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली ने भी आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को बढाने मे मदद पहुँचायी है । इस पद्धति के अन्तर्गत एक निगम का प्रबन्ध दूसरे निगम या साझेदारी फर्म या व्यक्ति को प्रतिफल की एवज मे सौप दिया जाता था । इस प्रकार कुछ परिवारो के हाथो मे आर्थिक सत्ता केन्द्रित होती जाती है । पहले एक मैनेजिंग एजेन्ट के पास कई प्रकार के उपक्रम होते थे, जिससे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण का बढ़ना स्वाभाविक था ।

संस्थाओ की ऋण-नीति भी निजी क्षेत्र मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को बढाने में सहायक रही है।

6 सरकार ने व्यवहार मे औद्योगिक नीति प्रस्तावो की अवहेलना करके बड़े घरानों को उन क्षेत्रों मे लाइसेन्स प्रदान किए हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थापित किये जाने थे। बहुराष्ट्रीय निगमो के साथ साझेदारी का लाभ भी बड़े व्यावसायिक घरानो को ही मिला जिससे निजी हाथो मे आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण बढा है। भारत के बड़े व्यावसायिक घरानो व बहुराष्ट्रीय निगमो के बीच गहरी व्यावसायिक साठ-गाठ पाई जाती है।

7 बड़े व्यावसायिक समूहों को बैंक की सुविधा—बड़े व्यावसायिक घरानो को बैंक व अन्य वित्तीय संस्थाओ से काफी सुगमतापूर्वक रियायती दरो पर वित्त प्राप्त होता रहा है। इससे भी केन्द्रीयकरण का बढावा मिला है। राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंको के सचालक-मण्डल मे व्यावसायिक समूहो के प्रतिनिधि होते थे। बैंक इन्हे ऋण देने मे कम जोखिम मानते थे। राष्ट्रीयकरण के बाद भी बैंको ने बड़े घरानो को ऋण देना जारी रखा है तथा राष्ट्रीयकरण के मूल उद्देश्यो को भुला दिया गया है।

आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के अलावा औद्योगिक व व्यावसायिक जगत मे कई प्रकार की एकाधिकारात्मक व प्रतिबन्धात्मक क्रियाएँ भी देखने को मिलती है जिससे समाज को निरन्तर हानि होती रहती है। इनका वर्णन आगे किया जाता है।

एकाधिकारात्मक व प्रतिबन्धात्मक-व्यापार-विधियाँ या क्रियाएँ—(Monopolistic and Restrictive Trade Practices)—एक बाजार पर कुछ विक्रेताओ का अधिकार होने से एकाधिकारात्मक दशाएँ उत्पन्न हो जाती है। जब एकाधिकारी शक्ति रखने वाले व्यक्ति इस शक्ति का उपयोग स्वय लाभ उठाने के लिए अथवा इसको बढाने व सुदृढ करने के लिए करते है तो इसे एकाधिकारात्मक व्यवहार या क्रिया कहते हैं। एकाधिकारी नये उद्यमकर्ताओ को डराकर आगे आने से रोकने का प्रयत्न करते हुए पाये जाते है।

प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधियाँ या कार्य एकाधिकारियो के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के अलावा ऐसे कार्य होते हैं जो प्रतिस्पर्धात्मक शक्तियो के मार्ग मे बाधक होते हैं अथवा जो अन्तिम वस्तुओ के वितरण मे बाधक होते हैं। व्यवहार मे प्राय. निम्न सात प्रकार की प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधियां देखी गयी हैं।

1. कीमतों का क्षैतिज निर्धारण (Horizontal Fixation of Prices)—व्यापारी माल का संग्रह करके एव कृत्रिम रूप से इसकी कमी करके इसे ऊँचे भावो पर बेचने मे समर्थ हो जाते हैं। हमारे देश मे ऐसा खाद्यान्नो, वनस्पति तेलो, बेबी फूड, टेप, साबुन आदि उपभोक्ता वस्तुओ मे काफी सीमा तक रहा है।

2. कीमतों का उदग्र व लम्बवत निर्धारण और फिर से बेचने के मूल्यों को स्थिर रखना (Vertical Fixation of Price and Resale price Maintenance)—फिर से बेचने की कीमतो को निर्धारित कर देने से वितरकों मे प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है और उपभोक्ता-वर्ग को ऊँचे मूल्य देने पडते है, क्योंकि वितरक चाहे तो भी कीमते घटाकर परस्पर प्रतिस्पर्धा नही कर सकते। इससे उपभोक्ता-वर्ग को हानि उठानी पडती है।

3. उत्पादकों के बीच बाजारों का बटवारा (Allocation of markets Between Producers)—विभिन्न उत्पादक आपस मे बटवारा का वितरण कर लेते हैं। यह भी एक प्रतिबन्धात्मक कार्य होता है। प्रत्येक उत्पादक अपने हिस्से के बाजार मे उपभोक्ताओ का शोषण करता रहता है और इसे रोकने मे कठिनाई होती है।

4. क्रेताओं के बीच भेदभाव (Discrimination Between Purchasers)-जब विभिन्न खरीददारो के बीच भेदभाव की नीति बरती जाती है तो प्रतिबन्धात्मक क्रियाओ को जन्म मिलता है।

5. बहिष्कार (Boycott)—एक उत्पादक अपने वितरको पर यह शर्त लगा देता है कि वे अमुक व्यक्तियो को उसका माल नही बेचेंगे। यह बहिष्कार की विधि कहलाती है। ऐसा प्रायः एक तेल कम्पनी अपने वितरको के लिए करती है ताकि वे उन ग्राहको को माल नही देते जिनके बारे मे कम्पनी रोक लगा देती है।

6 एक ही फर्म का माल बेचने के समझौते (Exclusive Dealing Contracts)—कभी-कभी व्यापारियो से यह समझौता कर लिया जाता है कि वे अन्य प्रतिस्पर्धियों का माल नही बेचेगे। इससे भी समाज को हानि होती है।

7 'जोड देने की शर्तें (Tie-up Arrangements)—कई बार एक उत्पादक अपने व्यापारियो पर यह शर्त लागू कर देता है कि वह अमुक वस्तु के खरीदे जाने पर ही उन्हे अपनी दूसरी वस्तु देगा ' जैसा मान लीजिए, एक बिजली के पखो का उत्पादक बिजली की ट्यूबें भी बनाता है। वह अपने व्यापारियो को कहता है कि उनको पखे लेने पर ही ट्यूबें मिल सकेंगी। ऐसी सूरत मे ट्यूबें लेने वालों को लाचार होकर कुछ पखे भी खरीदने पडते हैं, जिन्हे सम्भवतः वे अन्यथा उससे नही खरीदते। ऐसा उस समय होता है जब ट्यूबे अन्यत्र आसानी से नही मिल पाती हैं। प्रतिबन्धात्मक व्यापार विधि का एक सामान्य दृष्टान्त और देखने को मिलता है। एक गैस कम्पनी नया गैस का कनेक्शन देते समय प्रायः यह शर्त लगा देती है कि गैस का चूल्हा उसी से खरीदा जायगा। ऐसी दशा मे नया कनेक्शन लेने वाला व्यक्ति लाचार होकर उसी से गैस का चूल्हा खरीदता है जिसे शायद वह अपनी

पसन्द के अनुसार किसी अन्य जगह से खरीदता। इस प्रकार मूल्य-निर्धारण उत्पादको के बीच बाजार का वितरण, क्रेताओ के बीच विभेद, बहिष्कार, एक ही कम्पनी का माल बेचने के समझौते एव जोड देने की शर्तों वाले समझौते आदि के रूप मे प्रतिबन्धात्मक व्यापार विधि का व्यवहार मे प्रचलन देखा जाता है।

निजी क्षेत्र में आर्थिक सता के केन्द्रीयकरण के परिणाम

(Consequences of Concentration of Economic Power in the Private Sector)

भारत मे साधारणतया नागरिको की निगाह मे आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण बहुत हेय, हानिकारक व बुरा माना जाता है। देश मे धन व आय की विशाल असमानता व खाई के कारण आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण अनुचित माना गया है।

प्रायः यह शिकायत सुनी जाती है कि सरकारी नीति पर बडे व्यावसायिक घरानो व बडी कम्पनियो का अनुचित प्रभाव प्रडता है। बहुधा लोकसभा मे बडे व्यावसायिक वर्ग के खिलाफ आवाज उठायी जाती है। लेकिन सरकार उनके विरुद्ध कोई सक्रिय कदम नही उठा पाती। प्रमुख उद्योगपति राजनीतिक सत्ताधारी वर्ग को समय-समय पर धन देते रहते हैं (विशेषतया आम चुनावो के समय)। बाद मे वे इसका अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं। बडे व्यवसायी अपनी 'लम्बी जेब' के कारण राजनीतिज्ञो, मन्त्रियो तथा सरकारी अधिकारियो या नौकरशाही को भ्रष्ट करने मे सकोच नही करते और निरन्तर अपना औद्योगिक साम्राज्य बढाते जाते है। इससे देश मे नैतिकता व ईमानदारी का सामान्य स्तर गिर जाता है। चुनावो मे अँधाधुँध व अनाप-सनाप रुपया खर्च करके राजनीतिक सफलता प्राप्त कर ली जाती है। आपातकाल मे अधिकाश बडे व्यावसायिक घरानो ने तत्कालीन सरकार को अपना समर्थन देकर यह सिद्ध कर दिया था कि वे अपने हितो को बनाये रखने के लिए अधिनायकवादी शासन तक का भी समर्थन कर सकते है, एव वे लोकतन्त्र व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की विशेष परवाह नही करते। आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के सामाजिक परिणाम भी प्रतिकूल ही हुए है-धनी अधिक धनी हो गय है और वे अपने आप को समाज के एक पृथक व उच्च वर्ग के अन्तर्गत मानने लगे है।

भारत मे विपक्षी दल के नेताओ ने अपने बयानो मे देश की बडी औद्योगिक फर्मों पर यह दोष लगाया है कि उन्होने स्विस बैंको मे धनराशि जमा करायी है तथा देश के हितो के खिलाफ काम किया है।

प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने भी कहा है कि बडे औद्योगिक घरानो ने निर्यात बढाने मे उतना योगदान नही दिया है जितना लघु इकाइयो ने दिया है। इस प्रकार बडे व्यावसायिक घरानो व बडी कम्पनियो के कार्य-कलापो की समय-समय पर तीक्ष्ण आलोचना की गयी है।

आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के आर्थिक परिणाम

(i) लाभ—कुछ लोगो का मत है कि केन्द्रीयकरण ने औद्योगीकरण की प्रक्रिया मे मदद करके देश को काफी लाभ पहुँचाया है। इससे पूँजी-निर्माण म सहायता मिली है, नये उपक्रम प्रारम्भ किये गये है और उच्च स्तर की प्रबन्ध-पटुता का विकास हुआ है जिससे उत्पादन का स्तर ऊँचा हुआ है, औद्योगिक लाभ प्राप्त किये गये हैं और औद्योगिक जगत मे विफलताएँ कम हुई हैं। विदेशी सहयोग प्राप्त करने म भी इससे मदद मिली है। इस प्रकार आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था के विकास मे भी सहायक रहा है। इससे बड़े पैमाने की बचतें या किफायतें प्राप्त होती हैं जिससे लागत घटाने व माल की किस्म सुधारने का अवसर मिलता है।

(ii) हानियाँ—(अ) एकाधिकार के दोष—इससे एकाधिकार व उससे उत्पन्न बुराइयाँ जैसे ऊँचे भाव, माल की किस्म मे गिरावट और छोटे उद्योगपतियो के प्रवेश पर रोक आदि सामने आयी हैं। बड़े व्यावसायिक समूह लाइसेंस लेने व अन्य सरकारी सुविधाओ का लाभ उठाते रहने के लिए दिल्ली म 'अपने दूतावास' बनाये रखते हैं, जबकि छोटे उद्यमकर्ताओ के लिए यह सब करना सम्भव नही होता। इस प्रकार सरकारी नियन्त्रणो के जाल-जजाल मे से अपना मार्ग बनाने मे बड़े व्यवसायी तो किसी तरह सफल हो जाते हैं क्योकि उनमे सरकारी अफसरो व बड़े राजनीतिज्ञो को प्रभावित करने की काफी क्षमता व दक्षता पायी जाती है। बड़े उद्योगपति अपने समाचार-पत्र चलाते हैं और वे सही राष्ट्रीय सहमति व राष्ट्रीय विचारधारा के निर्माण मे बाधा पहुँचाते है। वे छोटे व्यक्तियो को सामने नही आने देते। प्राय कीमत-युद्ध (price-war) व धमकियो के रूप मे छोटे उद्यमकर्ताओ को निरुत्साहित किया जाता है।

इससे प्रबन्धकीय व उद्यम सम्बन्धी योग्यता व्यापक रूप से विकसित नही हो पाती है। राष्ट्रीय धन व राष्ट्रीय आय के वितरण मे असमानता निरन्तर बढती जाती है।

एकाधिकार आयोग के पूर्व सदस्य डॉ एच के. परांजपे के अनुसार आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण का दो आधारो पर विरोध किया गया है। सर्वप्रथम, इसस मुट्ठी भर लोगो के हाथो मे आवश्यकता से ज्यादा सत्ता केन्द्रित हो जाती है जो लोकतान्त्रिक समाज मे ठीक नही मानी जाती। द्वितीय, इससे आर्थिक व सामाजिक शोषण की सम्भावनाएँ बढ जाती हैं। वस्तुओं मे एकाधिकार की दशा उत्पन्न हो जाती है तथा आमदनी, अवसर व उपभोग की असमानताएँ बढ जाती हैं।

(आ) विनियोग गलत दिशाओ मे—आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण से विनियोगो के गलत दिशा मे जाने (misdirection of investments) की सम्भावनाएँ बढ जाती है। किसी व्यक्ति के पास जितना ज्यादा धन होता है वह उसका उतना

ही अधिक मनमाना उपयोग किया करता है। इसलिए कई बार विनियोग विकास के पक्ष में न जाकर माल की सट्टेबाजी संग्रह व अन्य अनुत्पादक क्रियाओं में चला जाता है। इस प्रकार केन्द्रीयकरण के आर्थिक परिणाम हानिकारक भी हो सकते है और प्राय. होते भी है।

भारत में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए सरकारी उपाय

भारतीय संविधान की धारा 39 (c) के निर्देशक सिद्धान्तों के अनुरूप सरकार आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए कृत-सकल्प है।

सरकार ने 14 मई, 1969 को कम्पनी सशोधन बिल पास कर दिया था जिसके अनुसार मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली 3 अप्रैल, 1970 से समाप्त कर दी गयी थी। इसी सशोधन के अनुसार कम्पनियों द्वारा राजनीतिक दलों को दिये जाने वाले चन्दों पर भी रोक लगा दी गयी थी। कम्पनी-प्रबन्ध अब व्यवसायवाद (Professionalism) की तरफ बढ़ रहा है तथा देश में व्यावसायिक प्रबन्धकों के दल तैयार हो रहे हैं। अब प्रबन्ध-संस्थाओं में शिक्षा व प्रशिक्षण प्राप्त करके जो व्यक्ति निकलते हैं उन्हें प्रबन्ध का कार्य सम्भालने का अधिक अवसर मिलने लगा है। इससे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है उद्योग में 'पारिवारिक प्रबन्ध' (Family management) के स्थान पर व्यावसायिक प्रबन्ध (Professional Management) को बढ़ावा मिला है।

एकाधिकार व प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधियाँ अधिनियम, 1969, (MRTP Act, 1969)

एकाधिकार व प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधियाँ अधिनियम (The Monopolies and Restrictive Trade Practices Act) जून, 1970 से लागू हो गया था। यह वैधानिक व्यवस्था एकाधिकार-जांच आयोग (Monopolies Inquiry Commission, 1951) की सिफारिश के आधार पर की गयी थी। 2 अगस्त, 1970 को सरकार ने तीन व्यक्तियों का एकाधिकार व प्रतिबन्धात्मक व्यापार विधि आयोग स्थापित किया था जिसे सक्षेप में एकाधिकार आयोग (Monopoly Commission) भी कहा जाता है।

MRTP अधिनियम के तीन उद्देश्य रखे गये हैं—

(i) यह देखना कि आर्थिक प्रणाली का सचालन आम जनता के हितों के विरुद्ध देश में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण उत्पन्न न करे,
(ii) एकाधिकार पर नियन्त्रण,
(iii) एकाधिकारात्मक प्रतिबन्धात्मक व अनुचित व्यापार-विधियों या क्रियाओं को रोकना।

इन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए आयोग बड़े व्यावसायिक घरानों व प्रभुतासम्पन्न उपक्रमों (dominant undertakings) की क्रियाओ पर कई तरह से अकुश लगाता है।

अधिनियम की धारा 2 (डी) के अनुसार एक प्रभुतासम्पन्न उपक्रम (dominant undertaking) वह है जो स्वय अथवा कुछ सम्बद्ध उपक्रमो सहित एक वस्तु के उत्पादन, सप्लाई या वितरण की कम से कम एक चौथाई मात्रा को नियन्त्रित करे अथवा भारत मे प्रदत्त सेवाओ मे से कम से कम एक चौथाई सेवाएँ अथवा इनका बडा भाग नियन्त्रण करे। यदि प्रभुतासम्पन्न कम्पनी IDR अधिनियम मे आती है तो इसकी लाइसेंसशुदा क्षमता देश की कुल क्षमता का कम से कम ¼ अश होती है। बड़े व्यावसायिक घराने व प्रभुतासम्पन्न उपक्रम MRTP उपक्रम या कम्पनी कहलाते है।

अधिनियम मे निम्न बातों की व्यवस्थाएँ की गयी है: (i) कम्पनियो के विस्तार मिलन, खरीद व एकीकरण (expansion merger, purchase and amalgamations) एव प्रभुतासम्पन्न उपक्रमो (परस्पर सम्बद्ध उपक्रमो सहित) के सचालको की नियुक्ति का नियमन (regulation)। शर्त यह है कि इन प्रभुतासम्पन्न उपक्रमो की परिसम्पत्तियाँ 1 करोड़ रुपये से कम न हो और अन्य उपक्रम जिनकी परिसम्पत्तियाँ परस्पर सम्बद्ध उपक्रमों सहित) (Inter-connected undertakings) 100 करोड़ रुपयो से कम न हो (ii) ऐसे नये उपक्रमो की स्थापना का नियमन जो ऐसे चालू उपक्रमो से सम्बद्ध हो जायेंगे जिनकी कुल सम्पत्ति 100 करोड़ से कम न हो[1] और (iii) सार्वजनिक हित के विपरीत होने वाली एकाधिकारात्मक व प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधियो पर रोक व नियन्त्रण लगाना। ऐसे सभी उपक्रमो को अधिनियम के अन्तर्गत अपने पजीकरण का सर्टिफिकेट लेना होगा। अधिनियम मे आयोग के कहने पर केन्द्रीय सरकार को एक उपक्रम के व्यवसाय अथवा कम्पनी के विभाजन का अधिकार भी दिया गया है। एकाधिकार आयोग विस्तार, विविधीकरण, मिलन व एकीकरण जैसे विषयो व एकाधिकारात्मक पद्धतियो पर सलाह (advice) देगा। लेकिन प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधियो (RTP) पर यह न्यायिक अधिकार

---

1 D P S Verma, A Decade of MRTPC, a series of four articles in the Economic Times, April 7 to April 10, 1981.

*16 मार्च 1985 को ससद मे पेश किये गये सघीय बजट 1985-86 मे वित्त मन्त्री ने MRTP के अन्तर्गत परिसम्पत्ति की सीमा 20 करोड़ रु. से बढ़ाकर 100 करोड़ रु कर दी थी।

(judicial powers) रखेगा। यह अधिनियम सरकारी क्षेत्र में स्थापित कम्पनियों पर लागू नहीं किया गया है।

MRTP अधिनियम का क्रियान्वयन (Implementation of MRTP Act[1])—जून, 1 1970 से 30 जून, 1978 तक 1395 कम्पनियों ने MRTP की धारा 26 के अन्तर्गत अपना पंजीकरण करवाया था। इनमें से 234 उपक्रमों का पंजीकरण रद्द कर दिया गया। इस प्रकार 30 जून 1978 को शुद्ध पंजीकृत इकाइयों की संख्या 1161 थी।

31 मार्च 1984 को देश में कुल पंजीकृत कम्पनियों की संख्या 96 470 थी जिसमें से 1334 कम्पनियाँ MRTP अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत थीं जो कुल कम्पनियों का 1½% मात्र थी। इनमें से आधी कम्पनियाँ चोटी के 20 व्यावसायिक घरानों की थी। इससे MRTP कम्पनियों की थोड़ी संख्या का अन्दाज लगाया जा सकता है।

इन उपक्रमों को अधिनियम के अन्तर्गत काफी विस्तार (substantial expansion)(धारा 21), नये उपक्रमों की स्थापना (धारा 22), एकीकरण विलयन व खरीद (धारा 23) के लिए केन्द्रीय सरकार से पूर्व स्वीकृति लेनी होती है।

केन्द्रीय सरकार ने प्रथम 10 वर्षों की अवधि में 31 जुलाई, 1980 तक MRTP आयोग को कुल 65 मामले सौंपे गये जिनमें 34 मामले धारा 21 के अन्तर्गत, 24 मामले धारा 22 के अन्तर्गत तथा 7 मामले धारा 23 के अन्तर्गत थे। इनमें से आयोग ने 47 मामलों को निपटा दिया, 16 मामले वापस ले लिये गये अथवा बन्द कर दिये गए (withdrawn or closed) तथा 2 विचाराधीन थे (लेकिन इन्हें भी अगस्त-सितम्बर 1980 तक निपटा दिया गया)।

सरकार ने बहुत से मामलों पर उनको आयोग को सौंपे बिना ही अपनी स्वीकृति दे दी थी। शुरू के वर्षों में सरकार ने आयोग को कुछ मामले सौंपे थे जिनकी संख्या बाद में लगातार घटती गई।

धारा 27 का उपयोग करके सरकार किसी भी उपक्रम (undertaking) को कई उपक्रमों में विभक्त कर सकती है। ऐसा करके वह उपक्रम को एक एकाधिकारात्मक व प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधि अपनाने से रोक सकती है। केन्द्रीय सरकार ने 10 वर्षों की अवधि में धारा 27 के तहत केवल दो मामले आयोग को सुपुर्द किए। प्रथम मामला जियाजी राव कॉटन मिल्स लि ग्वालियर का था जो आयोग को मई 1974 में सौंपा गया था। सौराष्ट्र केमिकल्स नामक औद्योगिक इकाई इस कम्पनी का एक डिवीजन थी जिसके बारे में केन्द्रीय सरकार ने आदेश जारी किया था कि इसने सोडा एश के उत्पादन में प्रभुत्व की स्थिति प्राप्त कर ली है और इसकी कार्य-प्रणाली सार्वजनिक हितों के विपरीत है। इसलिए आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम किया जाना चाहिए। लेकिन कम्पनी के आवेदन पर दिल्ली उच्च न्यायालय ने जून 1974 में 'स्टे' जारी कर दिया था।

एकाधिकार आयोग को सफल बनाने की दिशा में सुझाव

1. धारा 21, 22, 23 व 27 के अन्तर्गत सारे आवेदन-पत्र आयोग को ही भेजे जाने चाहिएँ। इसके लिए आवश्यक दिशा-निर्देश निर्धारित होने चाहिए। सच्चर समिति ने भी इस सुझाव को अंशतः स्वीकार किया था।

एकाधिकारात्मक व्यापार-विधि (MTP) के मामलों में भी आयोग को आदेश देने के कानूनी अधिकार दिये जाने चाहिएँ, जैसा कि इस समय प्रतिबन्धात्मक व्यापार विधि (RTP) के मामलों में प्राप्त हैं। इस समय MTP के मामलों में यह केवल सलाह ही दे सकता है, जो काफी नहीं है।

3 MRTP अधिनियम सार्वजनिक उपक्रमों पर भी लागू किया जाना चाहिए।

4 MTP व RTP की परिभाषाओं में संशोधन करके इनके अन्तर्गत अनुचित व्यापार-विधियों (unfair trade practices) को भी शामिल किया जाना चाहिए जैसे नाप-तौल की गलत विधियाँ, धोखाधड़ी के अन्य मामले, आदि। इस सम्बन्ध में MRTP अधिनियम में 1984 के संशोधन में कुछ सीमा तक प्रयास किया गया है।

5. RTP के मामलों में आयोग को क्षति पहुँचाने वाली पार्टी को मौद्रिक हर्जाना दिलाने का अधिकार भी होना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भविष्य में MRTPC को अधिक प्रभावशाली बनाया जाना चाहिए, ताकि यह अधिक सत्ता व केन्द्रीयकरण को रोकने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके। वर्तमान रूप में इससे अधिक अनुकूल परिणामों की आशा करना व्यर्थ है। लेकिन इस अधिनियम व आयोग को समाप्त करने का विचार भी नितान्त गलत होगा, क्योंकि इनके अभाव में एकाधिकार व केन्द्रीयकरण की प्रवृत्तियाँ और मजबूत हो जायेंगी।

MRTP अधिनियम में संशोधन हेतु सच्चर समिति की सिफारिशें

अगस्त, 1978 में सच्चर समिति ने MRTP अधिनियम में संशोधन करने तथा आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए निम्नलिखित सिफारिशें पेश की थीं—

1. एक कम्पनी के प्रभुत्व की स्थिति को निश्चित करने के लिए बाजार में उसका अंश $\frac{1}{3}$ की बजाय $\frac{1}{4}$ कर देना चाहिए।

2. MRTP अधिनियम को लागू करने के सम्बन्ध में सच्चर समिति ने परिसम्पत्ति की 20 करोड़ रु की सीमा को अपरिवर्तित रखा था।

3 MRTP अधिनियम में एकाधिकारात्मक व प्रतिबन्धात्मक व्यापार-विधियों के अलावा अनुचित विधियों (unfair practices) को भी शामिल किया जाना चाहिए, ताकि उपभोक्ता-वर्ग के हितों की रक्षा की जा सके। फलस्वरूप आयोग का नाम एकाधिकार व व्यापार-विधि आयोग (Monopolies and Trade Practices Commission) कर दिया जाना चाहिए।

4 गुमराह करने वाले विज्ञापनों (misleading advertisements) पर रोक लगायी जानी चाहिए। इनसे उपभोक्ताओं के हितों को हानि पहुँचती है। समिति की सिफारिशों के स्वीकार हो जाने पर उपभोक्ता गुमराह करने वाले विज्ञापनों से होने वाली हानि के लिए हर्जाना ले सकेंगे।

5 चूँकि एकाधिकार कानून का उद्देश्य उपभोक्ता-वर्ग को लाभ पहुँचाना है, इसलिए MRTP अधिनियम सार्वजनिक उपक्रमों पर भी लागू किया जाना चाहिए, जिन्हें अब तक इस अधिनियम से मुक्त रखा गया है।

6 हर्जाना वसूल करने के मामलों की सुनवाई MRTPC के समक्ष ही होनी चाहिए न कि मजिस्ट्रेट के सामने जैसा कि इस समय होता है।

7 यदि 1,000 व अधिक श्रमिकों वाली कम्पनियों के 51% श्रमिक प्रबन्ध में साझेदारी का समर्थन करें तो उनमें यह व्यवस्था अनिवार्यतः लागू कर दी जानी चाहिए।

MRTP अधिनियम में 1982 व 1984 के संशोधन

अगस्त 1982 में MRTP अधिनियम में दो संशोधन किये गये जो इस प्रकार हैं—

1. प्रभुत्व (dominance) की परिभाषा कुल उत्पत्ति के एक तिहाई से बदल कर देश में कुल लाइसेन्स-शुदा क्षमता का एक चौथाई कर दी गई। बहुत से उद्योगों में कुल लाइसेंस-शुदा क्षमता तेजी से बढ़ी है, जिससे प्रभुत्व के लिए 25% क्षमता का माप दण्ड अपनाना अधिक उदार नहीं माना जा सकता। इस परिवर्तन से उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलेगी। इसलिए यह संशोधन उत्पादन बढ़ाने के अनुकूल है।

2 दूसरे संशोधन के अनुसार सरकार ने अपने पास यह वैधानिक अधिकार लेने का प्रयास किया है ताकि यह अधिसूचना जारी कर के उद्योगों, सेवाओं व उपक्रमों को MRTP अधिनियम के अन्तर्गत धारा 21 के तहत काफी विस्तार करने व धारा 22 के तहत नये उपक्रमों की स्थापना करने के लिए इजाजत लेने से मुक्त कर सके। इससे 100% निर्यात इकाइयों को स्थापित करने एवं चालू इकाइयों को विस्तार करने में काफी सहूलियत हो जायेगी। इन प्रस्तावों को लागू करने से वस्तुओं की सप्लाई बढ़ेगी जिससे घरेलू व विदेशी माग दोनों को पूरा करना सम्भव हो सकेगा। मई 1985 में सरकार ने एक अधिसूचना जारी करके 27 उद्योगों को MRTP अधिनियम की धारा 21 व 22 से मुक्त कर दिया था। इनमें से कुछ उद्योगों के नाम इस प्रकार हैं पिग लोहा, कास्टिंग व फोर्जिंग, वैकल्पिक ऊर्जा के उपकरण व प्रणालियाँ, इलक्ट्रोनिक कल-पुर्जे, मोटरगाडी के कल-पुर्जे, रसायन प्रोसेस प्लांट, डयरी उद्योग-उपकरण, मशीनी औजार, कुछ दवाइयाँ, असवग्गी क्लाड व पोर्टलैण्ड सीमेंट आदि। बाद में दिसम्बर 1985 में इनमें से 22 उद्योगों के लिए MRTP व FERA कम्पनियों को भी लाइसेंस लेने से मुक्त कर दिया गया। यह सरकार की उदार लाइसेंस नीति का सूचक है।

लिए खोल दिए गए थे ताकि देश में औद्योगिक उत्पादन बढ़ सके। बाद के वर्षों में लाइसेन्स नीति को बड़े घरानों के प्रति अधिक उदार बनाया गया है। लेकिन साथ ही नए व मध्यम श्रेणी के उद्यमकर्ताओं को भी प्रोत्साहन देना जारी रखा गया है ताकि आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण न बढ़े। 1 मार्च 1985 में MRTP कम्पनी के लिए परिसम्पत्ति की सीमा 20 करोड़ रु से बढ़ा कर 100 करोड़ रु कर दी गई इस प्रकार लाइसेन्स नीति बड़े औद्योगिक] घरानों के प्रति कभी कठोर व कभी नरम होती रही है। सच पूछा जाय तो भारत में औद्योगिक लाइसेंस नीति आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने की दृष्टि से विफल रही है।

2 **सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो का विकास**—भारत म सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो के विकास के पीछे एक प्रमुख उद्देश्य निजी क्षेत्र मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करना रहा है। यह प्रयास किया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था म प्रमुतासम्पन्न स्थिति (commanding position) प्राप्त कर ले। 1951 में केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक उपक्रमो मे (रेलो आदि को छोड़कर) 29 करोड़ रुपयो का विनियोग हुआ था, जो बढ़कर मार्च, 1988 म 71 299 करोड़ रुपए हो गया। जिस सीमा तक सार्वजनिक क्षेत्र का विकास होगा उस सीमा तक आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण निजी हाथो मे कम होगा। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि निजी क्षेत्र मे भी बड़े औद्योगिक घरानों की परिसम्पत्ति, प्रदत्त पूँजी तथा बिक्री व मुनाफो म वृद्धि की राशियां काफी तेजी से बढ़ रही है। इसलिए समस्या के समाधान की दृष्टि से अभी भी बहुत कुछ करना शेष है। भविष्य मे सार्वजनिक क्षेत्र का विकास उपभोक्ता माल के उद्योगों तथा सहायक उद्योगो म करने की आवश्यकता है।

3 **लघु उद्योगो का विकास**—भारत म योजनाकाल में लघु इकाइयो का काफी विस्तार हुआ है और माचिस उद्योग मे लघु उत्पादकों ने विम्को (Western India Match Co) जैसी कम्पनियों का एकाधिकार कम किया है। इसी प्रकार म पेन्सिल, रेडियो, साबुन, सिलाई की मशीनो आदि में भी लघु उत्पादको का महत्व बढ़ा है। लेकिन अभी तक लघु उद्योग कई समस्याओं से घिरे हुए हैं और इनको सफल बनाने की दिशा में काफी प्रयत्न करना होगा। पिछले वर्षों में अधिकाश लघु इकाइयां केवल कच्चे माल को खरीदने व बेचने के लिए बनायी गयी थीं जिससे उत्पादक इकाइयो के रूप में उनका विशेष योगदान नहीं हो पाया। ऐसी परिस्थिति में केन्द्रीयकरण जैसी गम्भीर समस्या पर उनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

4 **सहकारी क्षेत्र में उद्योगो का विकास**—सरकार ने चीनी उद्योग में सहकारी इकाइयो को आगे बढ़ाया है। यदि औद्योगिक उत्पादन के अन्य क्षेत्रों में

व्यापक रूप से सहकारी इकाइयों को विकसित किया जाय तो समस्या के समाधान पर कुछ प्रभाव पड सकता है। इसके लिए लघु उद्योगों का सहकारी ढग पर सगठन करने की आवश्यकता है।

5 सयुक्त क्षेत्र (Joint sector) का विकास—हाल के वर्षों में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण कम करने की दृष्टि से सयुक्त क्षेत्र के विकास पर अधिक बल दिया गया है। डॉ एच के परान्जपे पूर्व सदस्य एकाधिकार आयोग का मत रहा है कि भारत मे छोटी की बडी कम्पनियो का एकाधिकारी घरानो से सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए उनको सयुक्त क्षेत्र मे परिवर्तित कर देना चाहिए। इसके लिए छोटी की कम्पनियो को सार्वजनिक वित्तीय सस्थाओ द्वारा दिये गये ऋणो को शयर पूँजी मे बदल देना चाहिए जिससे इनके सचालक-मण्डलो में सरकारी प्रतिनिधि भी शामिल हो सकेंगे और इनमे सरकार का प्रभाव बढ जायेगा। यह प्रश्न काफी विवादास्पद है इसलिए इस पर अगले खण्ड मे विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

इसमें कोई सन्देह नही कि भारत म निजी क्षेत्र मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण का कम करने की दृष्टि से राष्ट्रीयकरण के विकल्प के रूप मे सयुक्त क्षेत्र के विकास पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित करना होगा। इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के विकास आदि पर भी पर्याप्त रूप से ध्यान देना होगा और उसकी समस्याएँ हल करनी होगी। MRTP अधिनियम व आयोग को प्रभावशाली बनाना होगा। मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढाचे मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने की ये दिशायें ही उपलब्ध हैं, अन्यथा भविष्य मे बड़े औद्योगिक घरानो व छोटी की कम्पनियो के राष्ट्रीयकरण का मार्ग ही शेष रह जायगा।

अगस्त 1978 मे कम्पनी अधिनियम व MRTP अधिनियम पर उच्चाधिकार प्राप्त विशेषज्ञ समिति (राजिन्दर सच्चर समिति) ने अपनी रिपोर्ट पेश की थी। लकिन जनता सरकार अपने आन्तरिक सघर्षों व विरोधो मे फसी रहने के कारण इतने महत्वपूर्ण प्रश्न पर कोई निर्णय नही ले सकी।

अब काग्रेस (आई) सरकार के समक्ष भी निजी क्षेत्र मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को नियन्त्रित करने की समस्या विद्यमान है। इस समस्या का कोई सुगम हल नही प्रतीत होता। विभिन्न व्यक्तियो ने समस्या के समाधान के लिए कई प्रकार के सुझाव दिये हैं। सचर समिति के सदस्य श्री के वी त्रिपाठी ने रिपोर्ट मे अलग से जोड़े गये अपने नोट मे कहा था कि व्यक्तिगत एकाधिकारी घरानो की परिसम्पत्तियो पर सीमा न लगाने के कारण इनमे वृद्धि का होना स्वाभाविक है।

जनता सरकार म तत्कालीन उद्योग मन्त्री जॉर्ज फर्नाण्डिस ने फरवरी 1979 म आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने के लिए एक सुझाव यह दिया था कि इस्पात उद्योग में टिस्को, मोटर उद्योग में टेल्को तथा एल्यूमिनियम उद्योग मे हिण्डालको का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाना चाहिए। इससे औद्योगिक क्षेत्र मे पाय

जाने वाले एकाधिकार मे अवश्य कमी आयेगी। इस सुझाव को भारतीय परिस्थिति मे लागू करना कठिन जान पडता है क्योंकि राष्ट्रीयकरण के मार्ग मे कई प्रकार की कठिनाइयां हैं एव सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो मे कम मुनाफो अथवा घाटे की दशाओ के पाये जाने के कारण इनके प्रति देश मे विशेष उत्साह नही प्रतीत होता।

स्वर्गीय डी के रांगनेकर ने निजी हाथो मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण की समस्या को हल करने के लिए निम्न उपयोगी सुझाव दिये थे।[1]

1 कर-प्रणाली का उपयोग किया जाय—लाइसेंस-व्यवस्था एक नकारात्मक अस्त्र है क्योंकि यह कुछ क्रियाओ पर रोक लगाती है। लेकिन इसको समाप्त करना भी कठिन है। अत विनियोग को सही दिशा मे ले जाने के लिए कर-प्रणाली का उपयोग करना ज्यादा लाभकारी होगा। जैसे विलासता की वस्तुओ के उपयोग पर प्रभावी कर लगाया जाना चाहिए। ऐसे कर से राजस्व की प्राप्ति होगी जिससे आय का पुनर्वितरण धनो से निर्धन वर्ग की ओर होगा तथा विलासिता के माल के निर्यात को भी प्रोत्साहन मिलेगा।

2. पूंजी का विकिरण या छितराव (diffusion of capital) किया जाना चाहिए। *इसके लिए उद्योगो मे श्रम का स्वामित्व बढाया जा सकता है। 1968 मे* फ्रास मे एक कानून द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियो से स्थायी श्रमिको को शेयर पूंजी मे हिस्सा देने की व्यवस्था की गई थी और ऐसी कम्पनियो को वित्तीय छूटें भी दी गई थी। फ्रास के लगभग एक चौथाई औद्योगिक श्रमिक अब शेयर-पूंजी व लाभ-सहभाजन स्कीमो म हिस्सा लेते है। फ्रास का औद्योगिक परिसम्पत्ति का 15–20% अश इस स्कीम के अन्तर्गत आ चुका है।

श्रमिक द्वारा पूंजी का स्वामित्व प्राप्त करने का आन्दोलन अब जर्मनी, नीदरलैण्ड, बेल्जियम, स्विटजरलैण्ड, डेनमार्क व नार्वे मे भी फैल गया है। भारत मे इसमे भी बडे प्रयोग की आवश्यकता है। इससे औद्योगिक सम्बन्धो मे भी सुधार होगा।

भारत सरकार को इन विभिन्न दृष्टिकोणो पर विचार करके निजी हाथो मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने की कोई व्यापक, सुदृढ सुनिश्चित व समयबाधित नीति व योजना घोषित करनी चाहिए। सरकार ने अब तक जो घोषणाएँ की हैं उससे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण मे कमी होने की सम्भावनाएँ नही लगती, क्योंकि MRTP अधिनियम की धारा 21 व धारा 22 से 27 उद्योगो को हटा दिया गया है एव MRTP कम्पनी मे परिसम्पत्ति मे विनियोगों की सीमा 20 करोड रु. से बढाकर 100 करोड रु. कर दी गई है जिससे इस सीमा

---

1. D K Rangneker, Growth of Big Business Houses, in Business Standard Annual 1982, pp.17–18.

से कम विनियोग करने वाली कम्पनियों पर यह नियम लागू नहीं होगा । इसके अलावा दिसम्बर 1985 मे 27 मे से 22 उद्योगो मे MRTP व FLRA कम्पनिया को लाइसेंस लेने से भी मुक्त कर दिया गया है। सरकार की नई आर्थिक नीति निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने की है । ऐसी स्थिति मे निजी क्षेत्र मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने की दिशा मे निकट भविष्य म किसी विशेष प्रगति की सम्भावना नही प्रतीत होती ।

सयुक्त क्षेत्र (Joint Sector)

भारत मे आर्थिक सत्ता को निजी हाथो मे केन्द्रित होने से रोकने के सम्बन्ध मे 'सयुक्त क्षेत्र' को विकसित करने का भी सुझाव दिया गया है। वैसे सयुक्त क्षेत्र का विचार कोई नया नही है। यह 1956 के औद्योगिक नीति के प्रस्ताव मे बीज रूप म विद्यमान था जहाँ परोक्ष रूप मे उद्योगो की तीनो श्रेणियो मे मिश्रित उपक्रमो को आवश्यक स्थान दिया गया था। औद्योगिक लाइसेंस-नीति जाच समिति (दत्त समिति) ने 1969 मे निजी हाथो मे आर्थिक शक्ति के बढ़ते हुए केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए सयुक्त क्षेत्र के विचार को अपनाने पर बल दिया था। प्रमुख उद्योगपति जे आर डी. टाटा ने भारत सरकार को दिये गये औद्योगिक विकास पर अपने 'ममारेण्डम' मे सयुक्त क्षेत्र के विचार का समर्थन किया था। अत सयुक्त क्षेत्र पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालना उपयोगी होगा ।

सयुक्त क्षेत्र का अर्थ

शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से सयुक्त क्षेत्र का विचार बहुत सरल है। जब किसी उपक्रम (enterprise) मे सार्वजनिक व निजी क्षेत्रो का एक साथ योगदान पाया जाता है तो उसे सयुक्त क्षेत्र का उपक्रम कहते हैं। भारत में सयुक्त क्षेत्र की जिस अर्थ मे चर्चा पायी गयी है उसम प्राय यह मान्यता रही है कि इसमे प्रबन्ध तो निजी हाथो म रहेगा और पूँजी सरकार द्वारा उपलब्ध की जायेगी। इसका अर्थ यह नहीं है कि पूँजी म निजी क्षेत्र भाग नही लेगा और प्रबन्ध म सरकारी हस्तक्षेप नही होगा । पूँजी व प्रबन्ध मे निजी या सरकारी दोनो क्षेत्रो का मिश्रित योगदान रहेगा। लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा कि सयुक्त क्षेत्र म निजी क्षेत्र की प्रबन्ध-पटुता का उपयोग करने की तरफ ज्यादा ध्यान रहा है और पूँजीगत साधन विशेषतया सार्वजनिक वित्तीय सस्थाओ के माध्यम से प्रदान किये गये हैं। अत सयुक्त क्षेत्र मे सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र का सहअस्तित्व पाया जाता है। वैसे यदि किसी एक राज्य की सार्वजनिक इकाई किसी दूसरे राज्य की सार्वजनिक इकाई को किसी औद्योगिक उपक्रम की स्थापना मे सहयोग दे तो उसे भी सयुक्त क्षेत्र की इकाई माना जा सकता है। इस प्रकार सयुक्त क्षेत्र की स्थापना व सचालन के पीछे मूल भावना दो प्रकार के सगठनों व इकाइयों के परस्पर मेल-जोल की होती है। लेकिन विशेषतया सार्वजनिक पूँजी व निजी प्रबन्ध के संगम से ही सयुक्त क्षेत्र के विकास पर बल दिया गया है ।

भारत में संयुक्त क्षेत्र के उपक्रमों के निम्न रूप प्रस्तावित किये गये हैं :

1 बड़े औद्योगिक घरानों से सम्बन्धित चोटी की कम्पनियों को संयुक्त क्षेत्र में परिवर्तित कर देना चाहिए। इसके लिए सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों को शेयर-राशि में बदल देना चाहिए ताकि निजी क्षेत्र की बड़ी कम्पनियों में सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभाव बढ़ सके।

2 केन्द्रीय सरकार ऐसी नई कम्पनियों की स्थापना करे जिसमें पूँजी व प्रबन्ध में सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों की साझेदारी हो।

3 स्वयं सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों को संयुक्त क्षेत्र की कम्पनियों में परिवर्तित किया जा सकता है। इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों की शेयर-पूँजी निजी क्षेत्र के लिए खोली जा सकती है। इसका सुझाव भी टाटा के स्मरण-पत्र में दिया गया था।

4. राज्य सरकारें लाइसेन्स की व्यवस्था करके अपने प्रदेशों में औद्योगिक विकास निगमों के माध्यम से नयी औद्योगिक इकाइयां स्थापित करने की योजना बनाती है और उनमें भाग लेने के लिए निजी उद्यमकर्त्ताओं को आमन्त्रित किया जाता है। इस व्यवस्था में निजी उद्यमकर्त्ताओं को विशेष आकर्षण हो सकता है क्योंकि उन्हें लाइसेन्स प्राप्त करने के झंझट से मुक्ति मिल जाती है और उनके लिए सरकार वित्तीय साधन भी जुटाती है। निजी क्षेत्र पूँजी व प्रबन्ध में भागीदार बनाया जाता है।

5. जैसा कि पहले संकेत किया गया था, भारत में एक राज्य की सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई दूसरे राज्य की सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई से मिलकर जो औद्योगिक इकाई स्थापित करती है उसे भी संयुक्त क्षेत्र की इकाई कहा जा सकता है। हालांकि यह मूलतया सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई ही होती है।

भारत में संयुक्त क्षेत्र के विकास के सन्दर्भ में फिलहाल उपरोक्त श्रेणियों में से श्रेणी (1), (2) तथा (4) का ही विशेष महत्व माना जायेगा। श्रेणी (3) के सम्बन्ध में काफी विवाद है और श्रेणी (5) वस्तुतः सार्वजनिक क्षेत्र की ही इकाई है।

संयुक्त क्षेत्र के उद्देश्य व सम्भावित लाभ :

भारत ने निम्न कारणों से संयुक्त क्षेत्र को औद्योगिक विकास की मुख्य धारा में शामिल किया गया है। दूसरे शब्दों में, इससे निम्न लाभ मिलने की आशा है।

1 बड़ी कम्पनियों पर निकट भविष्य में नियन्त्रण—राष्ट्रीयकरण का कठोर कदम उठाये बिना उद्योगों पर सामाजिक नियन्त्रण स्थापित करने का यह एक व्यावहारिक व सुगम मार्ग है। जब बड़ी कम्पनियां संयुक्त क्षेत्र में आ जायेंगी तो वे अपनी उत्पादन नीति को राष्ट्रीय हितों से जोड़ सकेंगी। इस प्रक्रिया में सरकार को मुआवजा नहीं देना पड़ेगा जो राष्ट्रीयकरण करने पर देना पड़ता।

को ध्यान में रखकर तय किया जाएगा यह एक सवर्द्धनात्मक उपाय अथवा बढ़ावा देने वाले उपाय (Promotional instrument) के रूप में अपनाया जायेगा, क्योंकि राज्य सरकारें नये व मध्यम उद्यमकर्त्ताओं के साथ मिलकर प्राथमिकता-प्राप्त उद्योगों के विकास में उनका मार्गदर्शन करेंगी।

2 सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि जिन उद्योगों में बड़े घरानों, प्रभुत्व-सम्पन्न उपक्रमों तथा विदेशी कम्पनियों का प्रवेश मना है उनमें इन्हें संयुक्त क्षेत्र के माध्यम से प्रवेश नहीं करने दिया जायगा।

3 संयुक्त क्षेत्र की इकाइयों के अन्य रूपों में सरकार स्वयं नीति-निर्धारण, प्रबन्ध-व्यवस्था व संचालन सम्बन्धी मामलों में प्रभावपूर्ण ढंग से भाग लेगी। इनका वास्तविक रूप प्रत्येक मामले के अनुसार तय किया जाएगा।

इस प्रकार संयुक्त क्षेत्र में सरकार अपना प्रभावपूर्ण स्थान रखना चाहती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि सरकार देश में संयुक्त क्षेत्र का विकास करना चाहती है और उसमें अपनी भूमिका सबसे ऊँची रखना चाहती है। प्रश्न यह है कि संयुक्त क्षेत्र में पूँजी में किसका हिस्सा कितना हो और इसी प्रकार प्रबन्ध में किसका हिस्सा कितना हो? इस सम्बन्ध में एकाधिकार आयोग के पूर्व सदस्य श्री एच. के. पराजपे के विचार इस प्रकार हैं।

श्री पराजपे के संयुक्त क्षेत्र पर विचार

1. बड़े औद्योगिक घरानों का चोटी की कम्पनियों से सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए उन्हें संयुक्त क्षेत्र के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए। इसके लिए सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं की ऋण-राशि को शेयर-राशि में परिवर्तित कर देना चाहिए। संयुक्त क्षेत्र के उपक्रम में 49% शेयर-पूँजी निजी हाथों में होगी तथा 51% शेयर-पूँजी सरकार के हाथों में होगी ताकि वह अधिक प्रभाव डाल सके। इस प्रकार बड़े व्यवसायिक घरानों तथा चोटी की कम्पनियों के बीच पाये जाने वाले अनावश्यक व अव्यावहारिक सम्बन्ध (dysfunctional inter-connections) समाप्त किये जा सकते हैं।

डा. पराजपे का मत है कि इसके लिए MRTP अधिनियम की धारा 27 का उपयोग किया जा सकता है जिसमें औद्योगिक उपक्रमों के विभाजन की व्यवस्था है। इसके लिए टिस्को, टेल्को, हिन्दुस्तान मोटर्स, हिन्डालको तथा इन्डालको जैसी बड़ी कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता नहीं रहेगी।[1]

---

1 TISCO = Tata Iron & Steel Co. Ltd
TELCO = Tata Engineering & Locomotive Co. Ltd
HINDALCO Hindustan Aluminium Co, Ltd.
INDALCO = Indian Aluminium Co. Ltd.

2 बडी कम्पनियों के संयुक्त क्षेत्र से आ जाने के उनका तकनीकी व आर्थिक आधारों पर विस्तार किया जा सकता है जो आज तक सम्भव नहीं हो पाया है। इससे बड़े पैमाने की किफायतें प्राप्त की जा सकती है जिनसे प्रति इकाई लागत व कीमत कम की जा सकती है।

3. प्रबन्ध का व्यवसायीकरण किया जा सकता है जिससे इनके सामने प्रबन्ध की समस्या नहीं रहेगी। अब पारिवारिक प्रबन्ध से व्यावसायिक प्रबन्ध की ओर बढ़ना बहुत आवश्यक हो गया है।

4. प्रारम्भ मे उन सभी उपक्रमो को संयुक्त क्षेत्र मे बदलने की आवश्यकता नही है जिन्हे सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओ से ऋण की सुविधा मिली है। केवल छोटी की कम्पनियों को ही संयुक्त क्षेत्र मे लिया जाना चाहिए। कालान्तर में जब मध्यम श्रेणी की कम्पनियाँ बड़ी श्रेणी की कम्पनियाँ हो जाएँ, तब उन्हे भी आवश्यकतानुसार संयुक्त क्षेत्र मे लाया जा सकता है।

23 जुलाई, 1980 को प्रस्तुत किये गये नये औद्योगिक नीति वक्तव्य मे 'संयुक्त क्षेत्र' का कोई उल्लेख नही किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि सरकार सम्भवत: निजी हाथो मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने की दृष्टि से इसका विशेष महत्व नही समझती है।

भारत मे संयुक्त क्षेत्र काफी विचार-विमर्श का विषय रहा है। कुछ व्यक्ति इसे निरर्थक मानते हैं और वे सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र की कार्यकुशलता को बढ़ाने पर ही बल देते है। कुछ भी हो, भारत मे विभिन्न प्रकार के औद्योगिक संगठनो का सह-अस्तित्व रहा है और भविष्य मे भी रहेगा। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक किस्म का औद्योगिक संगठन विकास में अपनी वांछित भूमिका निभा सके और देश में उत्पादन बढ़ाने तथा अन्य सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यो की प्राप्ति मे आवश्यक सहयोग प्रदान कर सके।

भारत मे पिछले वर्षों मे संयुक्त क्षेत्र मे औद्योगिक विकास किया गया है। 1984-85 मे संयुक्त क्षेत्र मे देश की कुल फैक्ट्रियो का 1·9% स्थिर पूँजी का 8·2%, तथा विशुद्ध जोड़े गये मूल्य (net Value-added) का 10·2% अंश पाया गया था।[1] संयुक्त क्षेत्र की भी दो श्रेणियाँ की गई हैं : एक संयुक्त क्षेत्र-सार्वजनिक (Joint Sector-public) तथा दूसरा संयुक्त क्षेत्र निजी (Joint Sector-private)। प्रथम श्रेणी की फैक्ट्रियो की संख्या अधिक पाई जाती है। स्थिर पूँजी, कर्मचारियो व विशुद्ध जोड़े गये मूल्य मे भी 'संयुक्त क्षेत्र-सार्वजनिक का स्थान ऊँचा पाया गया है। "संयुक्त-क्षेत्र-सार्वजनिक" वाले उपक्रम में पूँजीगत साधनों मे सार्वजनिक संस्थाओ का विशेष स्थान होता है, जबकि "संयुक्त क्षेत्र-निजी" वाले उपक्रमो मे निजी क्षेत्र की प्रधानता होती है।

---

1. Annual Survey of Industries 1984-85, (C. S. O.) Summary Results For Factory Sector, 1988, p. 22.

(अ) भारतीय रेलें[1]

1987-88 में भारतीय रेल-व्यवस्था लगभग 61976 किलोमीटर लम्बी थी जबकि 1985 86 में यह 91 836 किलोमीटर थी जो एशिया में सबसे बड़ी और विश्व में राज्य के स्वामित्व वाली रेल-व्यवस्था में द्वितीय स्थान पर आती है। यह देश का सबसे बड़ा सार्वजनिक उपक्रम माना जाता है। 1985-86 में रेलों में कर्मचारियों की संख्या 18 33 लाख थी जिनमें 16·13 लाख नियमित कर्मचारी थे तथा 2 2 लाख आकस्मिक थे। 1989-90 के बजट अनुमानों के अनुसार रेलों में पूंजी (Capital at-Charge) की राशि 14518 करोड़ रु. आकी गयी है।

रेलों की लम्बाई 1950-51 में 53,596 किलोमीटर से बढ़कर 1987-88 में 61976 किलोमीटर हो गई है। इनमें 55% ब्रॉडगेज, 39% मीटरगेज व 6% सकरी गेज (narrow gauge) के अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार 37 वर्षों में 8380 किलोमीटर अथवा लगभग 15 6% की वृद्धि को देखकर कोई भी यह कह सकता है कि रेलों का अधिकाश जाल अग्रेजों ने बिछा दिया था और बाद में उन्हीं मार्गों पर अधिक माल ढोया गया तथा अधिक यात्री ले जाये गये हैं। यह तर्क कुछ सीमा तक सही प्रतीत होता है। रेलो ने 1950-51 में 9·3 करोड़ टन माल ढोया था जो 1988-89 में बढ़कर 33·2 करोड़ टन तक पहुँच गया। 1989-90 के लिए 34 5 करोड़ टन का लक्ष्य रखा गया है।

1985-86 के अन्त में 38,184 सवारी गाड़ी के डिब्बे, 9,920 इंजन तथा 3,59,614 वैगन थे। भारतीय रेलवे का रोलिंग स्टॉक योजनाकाल में काफी बढ़ाया गया है। प्रतिदिन रेलें 7,092 स्टशनो के बीच आती जाती हैं।

आज भी देश में राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा व आन्ध्रप्रदेश के विस्तृत भू-भागों में रेलों का बड़ा अभाव है और इसी वजह से उनमें आर्थिक पिछड़ापन भी बना हुआ है। इसके अलावा भारत के रेल-मानचित्र पर चौड़ी गेज, मीटर गेज व सकरी गेज का एक ऐसा अनुपयुक्त व असन्तुलित किस्म का जाल बिछा हुआ है कि कई स्थानों पर माल की ढुलाई का व्यय बहुत ऊँचा आता है और अन्य असुविधाएँ भी होती हैं।

रेलों का पुनर्वर्गीकरण (Regrouping of Railways)—अगस्त 1949 से पूर्व भारत में 37 रेल-प्रणालियाँ थी जिन्हें प्रशासन में मितव्ययिता व कार्यकुशलता की दृष्टि से नौ क्षेत्रों में विभाजित किया गया था।

---

1 India 1987 Chapter 22, The Economic Times, April 20, 1989 and The Railway Budget for 1989-90

1985-86 में इन नौ क्षेत्रों में रेल-मार्ग की लम्बाई इस प्रकार थी[1]

क्षेत्र	प्रधान कार्यालय	मार्ग की लम्बाई (किलोमीटर में)
1 केन्द्रीय	बम्बई	6 486
2 पूर्वी	कलकत्ता	4,281
3 उत्तरी	नई दिल्ली	10 977
4 उत्तरी-पूर्वी	गोरखपुर	5 163
5 उत्तरी पूर्वी सीमान्त	मालीगाँव (गुवाहाटी)	3 763
6 दक्षिणी	मद्रास	6 729
7 दक्षिणी-केन्द्रीय	सिकन्दराबाद	7,138
8 दक्षिणी पूर्वी	कलकत्ता	7 075
9 पश्चिमी	बम्बई-चर्च गेट	10,224
	कुल	61,836

तालिका से स्पष्ट है कि सबसे ज्यादा लम्बाई उत्तरी रेलवे तथा पश्चिमी रेलवे की है जिसमें से प्रत्येक 10 हजार किलोमीटर से अधिक है। पुनर्वर्गीकरण से रेल-सेवा में सुधार हुआ है और व्यय में कमी हुई है लेकिन रेल दुर्घटनाएँ होने से चिन्ताएँ बढ़ गई है। कुछ व्यक्तियों की धारणा है कि पुनर्वर्गीकरण के बाद बडी इकाइयाँ बनने से कर्मचारियों की कार्यकुशलता में कमी आयी है। वस्तु-स्थिति यह है कि हमें रेलों के प्रबन्ध व इनकी क्षमता में आवश्यक सुधार करने के प्रयत्न जारी रखने है और क्षेत्रीय व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं को स्वीकार करना है।

पचवर्षीय योजनाओं में रेलों की प्रगति

प्रत्येक पचवर्षीय योजना की अवधि में कार्यकुशल रेल परिवहन व्यवस्था का विकास करने के साथ साथ एक विशेष उद्देश्य भी रखा गया है। प्रथम योजना की अवधि में यह उद्देश्य पुरानी रेल परिसम्पत्ति को बदलना व इनका पुनर्स्थापन करना था। द्वितीय योजना में रेलों को नये इस्पात कारखानों व कोयले के अधिक उत्पादन से उत्पन्न स्थिति के लिए तैयार करने का उद्देश्य रखा गया था। तृतीय

1 India 1987, p 529

योजना म अतिरिक्त क्षमता (additional capacity) के निर्माण पर ध्यान दिया गया ताकि वह ट्रैफिक-माँग से आगे जा सके और आर्थिक विकास के मार्ग में कोई बाधा नही आये। चतुर्थ योजना मे रेलो की कार्यक्षमता बढाने के लिए इनके आधुनिकीकरण पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। पाँचवी योजना मे वर्तमान रेल-मार्ग व रोलिंग स्टॉक की क्षमता का अधिक अच्छा उपयोग करने पर बल दिया गया ताकि रेलो की कार्य-क्षमता को सुधारा जा सके। ऐसा महसूस किया गया था कि वर्तमान क्षमता का अधिक अच्छा उपयोग करके तथा रेल-मार्ग का आधुनिकीकरण करके वस्तुओ व व्यक्तियो के लाने-ले जाने की ट्रैफिक सम्बन्धी माँग को अधिक मात्रा मे पूरा करना सम्भव हो सकेगा।

पचवर्षीय योजनाओ मे रेलो के विकास पर व्यय की स्थिति नीचे दी जाती है :

		(करोड रु)
प्रथम योजना	..	422
द्वितीय योजना	..	1044
तृतीय योजना	....	1686
चतुर्थ योजना	.. .	1420
पचम योजना		1492
छठी योजना	....	6300
सातवी योजना (प्रस्तावित)	.	12334

इस प्रकार छठी योजना की अवधि मे रेलो के विकास पर सर्वाधिक राशि व्यय की गई। जैसा कि पहले कहा जा चुका है। 1950–51 से 1987-88 तक 8380 किलोमीटर मे अतिरिक्त नई लाइन बिछाने से रेलो का जाल 61976 किलोमीटर मे फैल गया है जिसमे से 8155 किलोमीटर दूरी में विद्युतीकरण (electrification) किया जा चुका है, जबकि 1950-51 मे यह 388 किलोमीटर मे ही था।

भारतीय रेलो ने उपकरण व स्टोर्स के मामले मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करली है। 1950-51 मे भारतीय रेलें इनका 23% आयात करती थी जो घटकर 1985-86 मे 8 3% पर आ गया है। नियोजित विकास के फलस्वरूप यात्री-ट्रैफिक व माल-ट्रैफिक काफी बढा है। योजनाकाल मे डीजल इजनो की सख्या 1951 मे 17 से बढकर 1985-86 मे 3,047 (179 गुनी) हो गई है। विद्युत इजनो की सख्या 18 गुनी से अधिक हो गई है। रेलों द्वारा इस्पात, कोयला, कच्चा लोहा, सीमेंट खाद्यान्न, उर्वरक, पेट्रोल-पदार्थ, अन्य वस्तुएँ व रेलवे की वस्तुएँ ढोयी जाती हैं।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है भारतीय रेलो मे विद्युतीकरण की प्रगति इस प्रकार रही '

वर्ष	विद्युतीकृत मार्ग (किलोमीटर)
1950-51	388
1987-88	8155 (कुल का 13 2%)

रेलो म विद्युतीकरण की अधिक प्रगति तृतीय योजना की अवधि मे हुई थी। भविष्य मे रेलो पर यात्री-ट्रैफिक व माल-ट्रैफिक मे अत्यधिक वृद्धि हो गी जिससे इन पर कार्य-भार बढ़ेगा। अत रेलो के विकास पर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है।

सातवीं पचवर्षीय योजना, (1985-90) मे रेलो के विकास के लक्ष्य—रेलो के विकास के लिए सातवी योजना मे 12334 करोड रु की राशि का प्रावधान किया गया है। विकास-कार्यक्रम की मुख्य बातें इस प्रकार है

(1) योजनावधि मे 96 हजार वैगन (4 व्हीलर के रूप मे) 6970 सवारी गाडी के डिब्बे 950 विद्युत मल्टीपल इकाइयाँ (EMU) तथा 1235 डीजल व विद्युत के इजन प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। (2) मार्ग-नवीनीकरण (track renewals) के लिए 19 हजार से 21 हजार किलोमीटर का लक्ष्य रखा गया है। (3) 3400 किलोमीटर मे विद्युतीकरण का कार्यक्रम रखा गया है एव (4) सवारी गाडी के डिब्बो, EMUs व विद्युत इजनो के उत्पादन की क्षमता बढाई जायगी। सचार के नेटवर्क को उन्नत किया जायगा एव कम्प्यूटर-आधारित माल ढोने की सूचना-प्रणाली को लागू किया जायगा।

रेल-विकास से सम्बन्धित अ य आवश्यक तथ्य

(1) **रोलिंग स्टॉक का उत्पादन**—भारत मे रेलो का सामान विभिन्न फैक्ट्रियो म उत्पन्न किया जाता है और देश रेल उपकरण मे न केवल आत्मनिर्भर हो गया है बल्कि निर्यात करने की स्थिति मे भी आ गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है 1950-51 म आयात किये गये उपकरणो व कल-पुर्जों पर हमारी निर्भरता लगभग 23% थी जो घटकर 1985-86 मे 8 3% रह गयी है। अब सम्पूर्ण डिजाइन व निर्माण का काम भारत मे ही होन लगा है।

रेल-म त्रालय ने इजन व डिब्बे बनाने के लिए तीन इकाइयाँ स्थापित की है जिनका वर्णन नीचे दिया जाता है[1]

1 **चितरजन लोकोमोटिव वर्क्स (CLW)**–इसने 1950 से उत्पादन चालू कर दिया था और दिसम्बर 1971 के अन्त तक 2 351 स्टीम इजन तैयार कर दिये थे।

---

1. India 1987, pp. 531-532.

उसके बाद इनका उत्पादन बन्द कर दिया गया। 1961-62 से यह विद्युत इंजन
बना रहा है। 31 मार्च, 1986 तक इसने 1082 विद्युत इंजन, 512 डीजल-
हाइड्रालिक शन्टर्स व 68 सकरी गेज के डीजल-हाइड्रॉलिक इंजन बनाये थे। इनमें
घरेलू सामान का तत्व काफी ऊँचा हो गया है।

2 डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, (DLW) वाराणसी–यह 1964 में स्थापित
किया गया था। प्रथम इंजन उसी वर्ष प्रारम्भ कर दिया गया था। मार्च 1986 के
अन्त तक इसने विभिन्न प्रकार के 2089 इंजन तैयार कर दिये थे। इनमें भी घरेलू
तत्व का अंश काफी ऊंचा है।

3 इन्टीग्रल कोच फैक्ट्री, (ICF) पेराम्बूर—इसने 1955-56 में उत्पादन
चालू किया था। यहाँ कई प्रकार की सवारी गाडी के डिब्बे बनाये जाते हैं। 31
मार्च 1986 तक इसने 16637 सवारी गाड़ी के डिब्बे (पूरी तरह फर्निश किये हुए)
तैयार किये थे।

इनके अलावा भारत अर्थ मूवर्स लि बंगलौर तथा जेसप एण्ड क. लि.
कलकत्ता ने भी सवारी गाडी के डिब्बे बनाये हैं। वैगन बनाने का काम निजी
क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाता है। तीन रेलवे की मरम्मत सम्बन्धी वर्क
शापों में भी वैगनों का उत्पादन किया जाता है। 1985-86 में 12,651 वैगन
चार व्हीलर इकाई वाले बनाए गए थे जिनमें से 12,097 वैगन उद्योग के द्वारा
निर्मित किये गए थे। इन सभी उत्पादन-इकाइयों में अधिक माल तैयार करने के
प्रयास किये जा रहे हैं।

(2) सरकार ने रेल-कर्मचारियों के कल्याण के लिए आवश्यक कदम उठाए
है तथा रेल-दुर्घटनाएँ रोकने के लिए स्टॉफ बढाया है।

(3) लम्बे मार्ग वाली रेलगाडियाँ चलायी गई हैं जिनमें "गीताजंलि"
मुख्य है जो कलकत्ता व बम्बई के बीच नवम्बर, 1977 से चलने लगी है। इनमें
आम जनता की सुख-सुविधाओं को बढाया गया है। यह विभिन्न ऊंचे व नीचे दर्जों
की खाई को कम करने की दिशा में एक सराहनीय प्रयास है। ऊँची रफ्तार की
रेल गाड़ियाँ भी बढायी गयी हैं। राजधानी एक्सप्रेस गाडियाँ दिल्ली-हावडा तथा
दिल्ली-बम्बई के बीच क्रमश. 130 व 120 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से
चलती हैं।

(4) भारतीय रेलों में ऊंचे स्तर की दक्षता का विकास किया गया है
और हम दूसरे देशों को निर्माण व अन्य कार्यों में सलाह देने की स्थिति में आ
गये हैं।

(5) 1984–85 में भारतीय रेलवे मेट्रो-युग (Metro-Age) में प्रवेश कर
गयी है। कलकत्ते में अस्प्लेनेड (Esplanade) व भोवानीपुर तथा दमदम व
बेलगछिया (Belgachia) के बीच भूमिगत रेलगाडिया चलने लगी हैं।

इस सम्बन्ध से रेल इण्डिया-टेक्निकल एण्ड इकोनोमिक सर्विसेज (RITES) तथा इण्डियन रेल्वेज कन्स्ट्रक्शन कम्पनी (IRCON) के नामो का उल्लेख करना आवश्यक है। ये सगठन भारतीय दक्षता व सेवा का निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित करने के साथ-साथ वैगन, सवारी गाडी के डिब्बे व अन्य वस्तुओ के निर्यात को भी प्रोत्साहित करते है।

इस प्रकार योजनाकाल मे रेलो ने उल्लेखनीय प्रगति दिखाई है जिसे भविष्य मे जारी रखना होगा।

भारत में रेलो को निरन्तर घाटा रहने के कारण

भारत मे हाल के वर्षो म रेलो की वित्तीय स्थिति पर काफी दबाव पडा है। 1979-80 व 1980-81 मे रेलो को घाटा रहा। इससे पूर्व 1964-65 से 1975-76 तक भी कई वर्षो मे रेलो को घाटा रहा था। 1981-82 व 1982-83 मे थोडी बचत की स्थिति रही। लेकिन 1983-84 मे पुन 45 करोड रु का घाटा रहा। 1984-85 मे भी लगभग 196 करोड रु. का घाटा रहा। 1985-86 से रेलवे बजट मे बचत रही है। 1988-89 के सशोधित अनुमानो के अनुसार 28 करोड रु. की बचत रही है तथा 1989-90 के बजट-अनुमानो मे 140 करोड रु की बचत दिखायी गयी है। इस बजट मे माल भाडे मे 11% से 18% की वृद्धि से 876 करोड रु के शुद्ध अतिरिक्त राजस्व का अनुमान लगाया गया है।

लेकिन प्रश्न उठता है कि भूतकाल मे भारतीय रेलो की वित्तीय स्थिति इतनी खराब क्यो रही ? रेलें राष्ट्र की अत्यन्त महत्वपूर्ण परिसम्पत्ति मानी जाती हैं और इनकी वित्तीय स्थिति का नाजुक होना भारी चिन्ता का विषय है। भूतकाल मे रेलो को निरन्तर घाटा रहने के निम्न कारण रहे हैं—

1. **सामान की चोरी**—रेल-सेवाएँ कई कारणो से अस्त-व्यस्त रहने लगी हैं। ऊपरी मार्ग से तारो की चोरी, टेलि-कम्यूनिकेशन केबल व सामान की चोरी, गाडियो व स्टाफ पर हमले, वैगनो व माल वाहनो की सगठित लूट-पाट, वैगन-फिटिंग्स व मार्ग-फिटिंग्स की बडे पैमाने पर चोरी होती रही है। इन चोरियो के कारण रेलो से माल की ढुलाई मे काफी बाधा पडी है जिससे आर्थिक हानि का होना स्वाभाविक है।

2. **अलाभप्रद शाखाएँ**—अलाभप्रद शाखाओ पर प्रतिवर्ष घाटा होता रहा है। यात्री-ट्रैफिक पर करोडो रुपयो का घाटा होता रहा है। प्रतिदिन काफी रेल गाडिया लाखो यात्रियो को लाती-लेजाती हैं। लेकिन भूतकाल मे इससे प्राप्त आमदनी कुल व्यय से कम रही है। यात्री-भाडा भी लागत से कम रहा है। उप-नगरीय रेलो मे कम किरायो के कारण काफी घाटा होता है।

3. **भारी माल की ढुलाई में अधिक व्यय**—भारी माल जैसे कोयला, खनिज पदार्थ, पत्थर, सीमेंट, खाद, अनाज व नमक की ढुलाई मे आय कम व लागत अधिक

प्राती है । खाद्यान्नों व दालों एव कोयले की ढुलाई मे काफी घाटा रहता है. एव चारा खल, खनिज पदार्थ, आदि की ढुलाई मे भी घाटा होता है । कहने का आशय यह है कि रेलों की आय कम व व्यय ज्यादा रहता है ।

4. सचालन-लागत मे वृद्धि—रेलों की सचालन लागत (cost of operation) बढ रही है । पिछले वर्षों मे स्टॉफ पर व्यय बढ गया है । कोयले, बिजली व डीजल तेल के भाव बढ गये हैं । इस प्रकार सचालन-लागत मे वृद्धि हुई है । इसके विपरीत, यात्र-भाड़ा व माल-किराया अपेक्षाकृत कम बढा है । इस प्रकार लागत-वृद्धि पूरी तरह नहीं निकल पायी है । 1988-89 के सशोधित अनुमानों के अनुसार सचालन-अनुपात (operating ratio) अर्थात् कुल कार्यशील व्यय सकल प्राप्तियों के प्रतिशत के रूप मे 93% रहा जिसके 1989-90 के बजट-अनुमानों मे 92·01% रहने का अनुमान है ।

5 वेतन-वृद्धि—रेल कर्मचारियों के वेतन व महगाई भत्ते म वृद्धि करने से रेलों पर वित्तीय भार काफी बढ गया है । मुद्रास्फीति के कारण सभी सार्वजनिक उपक्रमों मे वेतन-बिल ऊचा होता जाता है जिससे उनको घाटा होने लगता है ।

6 कर्मचारियों के सहयोग मे कमी—स्टॉफ-आन्दोलन धीमा काम व हड़ताल आदि के कारण भी रेलों में वित्तीय सचालन-लक्ष्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है ।

7 ऊर्जा-संकट (Energy Crisis)—ऊर्जा-सकट ने भविष्य के लिए हाईस्पीड डीजल (HSD) आदि के सम्बन्ध में नई समस्याएँ खड़ी कर दी हैं ।

अत राष्ट्र के इस प्रमुख सार्वजनिक उपक्रम को सुव्यवस्थित करके इसे लाभ की स्थिति म बनाये रखने की नितान्त आवश्यकता है । इसके लिए लोकों-कर्मचारियों का सहयोग बहुत आवश्यक है । सरकार को इस सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाने चाहिए । भारतीय रेल-व्यवस्था एक शताब्दी से भी अधिक पुरानी हो चली है । पुराने रोलिंग स्टॉक को बदलने व वर्तमान लाइनों को सुधारने की आवश्यकता नई लाइनें बिछाने से भी ज्यादा प्रतीत होती है ।

रेल-वित्त[1]

1988-89 के सशोधित अनुमानों के अनुसार सकल ट्रैफिक-प्राप्तियां 9376 करोड़ रु व कुल व्यय 8725 करोड़ रु. रहा जिससे शुद्ध ट्रैफिक-प्राप्तियां 651 करोड़ रु रही । 1989-90 के बजट-अनुमानों मे ये राशियां क्रमश 10633 करोड़ रु व 9788 करोड़ रु रखी गई हैं जिससे शुद्ध ट्रैफिक-प्राप्तियां 845 करोड़ रु.

---

1. Railway Budget, 1989-90, The Economic Times, February 24, 1989 p 1.

पर ग्रा गयी है। रेलो को सामान्य राजस्व खाते मे लाभाश की राशि देनी होती है जो 1989-90 के बजट मे 805 करोड रु रखी गयी है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है ग्रन्य प्राप्तियो का समायोजन (adjust) करने पर 1988-89 के सशोधित ग्रनुमानो के ग्रनुसार रेलो को 28 करोड रु. की बचत रहेगी। 1989-90 के बजट-ग्रनुमानो के ग्रनुसार यह 140 करोड रु रखी गयी है। 1989-90 के रेल-बजट मे माल-भाडो म वृद्धि की गयी है। इस प्रकार रेल-बजट मे बचत दिखाई गयी है।

रेलो पर कार्य-भार निरन्तर बढता जा रहा है। इन्हे सूखा-क्षेत्रो म पेयजल पहुँचाना होता है। रेल कर्मचारियो को उत्पादकता से जुडी बोनस दी जाती है। हाई स्पीड डीजल (HSD) के भाव बढ गये हैं। इसलिए बढते हुए व्यय को पूरा करने के लिए ग्रधिक वित्तीय साधन जुटाने ग्रावश्यक हो गए हैं। भविष्य म रेल-सेवा की कार्यकुशलता मे वृद्धि करने की भी ग्रावश्यकता है।

सरकार ने भारतीय रेल वित्त निगम (Indian Railway Finance Corporation) (IRFC) की स्थापना की है जो बाजार मे बाड बेचकर धनराशि जुटायी है। इससे रेलो को विकास के लिए वित्तीय साधन प्राप्त हुए हैं।

(ग्रा) भारत में सडक-परिवहन

भारत मे पिछडे क्षेत्रो के विकास की दृष्टि से सडको का विशेष महत्व माना गया है। देश मे रोजगार बढाने की दृष्टि से भी सडक-विकास बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है। भारत मे सडको के विकास की विशेष जिम्मेदारी राज्य सरकारो के कधो पर रही है।

प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाग्रो व तीन वार्षिक योजनाग्रों की ग्रवधि कुल (1951-69) म सडक विकास पर 1104 करोड रु. व्यय किये गये। चतुर्थ योजना मे व्यय की राशि 862 करोड रु व पचम योजना मे 1353 करोड रु रही। छठी योजना मे सडको के विकास पर 3439 करोड रु व्यय हुए।[1] सातवी योजना मे सडको के विकास के लिए कुल 5200 करोड रु की राशि का प्रावधान किया गया है जिसमें केन्द्रीय क्षेत्र के लिए 1020 करोड रु रखे गये हैं।

योजनाकाल में सड़कों का विकास

सडको की कई श्रेणियाँ होती हैं जैसे राष्ट्रीय राजमार्ग (national highways), राज्यीय सडकें, जिलो, गाँवो, नगरो व प्रोजेक्टो की सडकें। योजनाकाल मे इनकी कुल लम्बाई 1950-51 म 4 लाख किलोमीटर से बढकर 1984-85 मे लगभग 17 7 लाख किलोमीटर हो गई है। इस प्रकार वार्षिक वृद्धि की दर 4'5 प्रतिशत रही है।

---

1. India 1987, pp 535-536.

भारत में सड़कों की स्थिति अन्य देशों की तुलना में काफी पिछड़ी हुई है। यही नहीं बल्कि देश के विभिन्न भागों में भी सड़कों का विकास काफी असमान रूप से हुआ है। 1985-86 में राष्ट्रीय राजमार्ग की कुल लम्बाई 31,987 किलोमीटर है जिसके द्वारा कुल सड़क-ट्रैफिक का 1/3 माल ढोया जाता है। ग्रामीण सड़कों का जाल 64% गांवों को परस्पर जोड़ता है, हालांकि इनमें सभी मौसम वाली सड़कें कम हैं। *देश में आज भी 36% गांवों में किसी भी प्रकार की सड़कें नहीं हैं* तथा 65% गांवों में सभी मौसम वाली (all weather) सड़कें नहीं हैं।

सातवीं योजना में केन्द्रीय क्षेत्र में सड़कों के विकास के लिए 1020 करोड़ रु तथा राज्यीय व संघीय प्रदेशों के लिए 4180 करोड़ रु रखे गये हैं। सड़कों के विकास के सम्बन्ध में निम्न उद्देश्य रखे गये हैं :—

(i) राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्यीय राजमार्ग व जिला सड़कों के स्तर को ऊँचा करना; (ii) **गांवों में सड़कों का विकास करके 1990 तक न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (MNP) के लक्ष्यों को प्राप्त करना।** इसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि 1990 तक 1500 व अधिक जनसंख्या वाले सभी गांवों को ग्रामीण सड़कों से जोड़ दिया जायगा तथा 1000-1500 के बीच जनसंख्या वाले 50% गांवों को सड़कों से जोड़ दिया जायगा। सातवीं योजना में MNP के अन्तर्गत सड़कों के विकास हेतु 1729 करोड़ रु रखे गये हैं, (iii) ऊर्जा-संरक्षण पर बल दिया जायगा, (iv) सड़कों की पर्यावरण गुणवत्ता को बनाये रखा जायगा एवं उसे बढ़ाया जायगा, (v) सड़क दुर्घटनाओं में कमी की जायगी, (vi) सड़क परिवहन की उत्पादकता में सुधार करने के लिए सड़कों को ठीक किया जायगा, (vii) भीड़भाड़ वाले क्षेत्रों में नयी सड़कों का विकास हाथ में लिया जायगा एवं (viii) सड़क निर्माण के जरिए रोजगार में वृद्धि की जायगी। इसके लिए ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम व कमाड क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम, आदि को *अधिक सफल बनाया जायगा।*

सड़क-विकास की प्रमुख समस्याएँ

सड़क विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विकास का दृष्टिकोण सड़कों का विस्तार करने का था, न कि इनको गहन करने का। विस्तार दृष्टिकोण के अनुसार सड़कों को नये क्षेत्रों में ले जाने का प्रयास किया जाता है, जबकि गहन दृष्टिकोण में प्रचलित सड़कों के क्षेत्रों में ही अधिक विकास किया जाता है। पिछले वर्षों में गहन दृष्टिकोण अपनाने के कारण निम्न समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं

1 ***बड़े औद्योगिक खनिज-सम्बन्धी व अन्य विकास-परियोजनाओं से*** **सम्बन्धित सड़कों की व्यवस्था**—नय सिंचाई व जल-विद्युत परियोजनाओं के समीप सड़कों का तेजी से विकास होने से ही उनकी आर्थिक सम्भावनाओं का पूरा-पूरा

उपयोग हो सकता है। इस सम्बन्ध में दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

2 ग्रामीण सड़कें—गावों तक रासायनिक खाद, औज़ार व अन्य साज-सामान पहुँचाने के लिए ग्रामीण सड़कों का गहन विकास किया जाना चाहिए। अभी तक इस दिशा में प्रगति सन्तोषजनक नहीं हुई है। भूतकाल में ग्रामीण सड़कों का काम स्थानीय ग्राम-समुदायों पर छोड़ दिया गया था जिससे इनकी प्रगति में बाधा पहुँची है। प्रत्येक राज्य में जिलेवार ग्रामीण सड़कों के विकास की योजना बनायी जानी चाहिए। गहन कृषि-विकास के क्षेत्र में सड़कों के निर्माण पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। राज्यों की योजना में सड़कों पर किये जाने वाले व्यय का कम से कम पाचवाँ हिस्सा ग्रामीण सड़कों पर रखना चाहिए।

3 पिछड़े हुए व पहाड़ी क्षेत्रों के लिये सड़कें—इसके लिए भी केन्द्र की ओर से राज्यों को अनुदान मिलना चाहिए। सड़कों का विकास ऐसे क्षेत्रों के लिए वरदान सिद्ध होगा।

4. बड़े नगरों में सड़कें—कलकत्ता व बम्बई जैसे शहरों में सड़कों की समस्या ने विकट रूप धारण कर रखा है। मद्रास, दिल्ली, कानपुर आदि नगरों में भी स्थिति पर शीघ्र ही ध्यान दिया जाना चाहिए। इनमें सड़कों के निर्माण की दीर्घकालीन योजना बनायी जानी चाहिए जिससे सड़कें बढ़ते हुए भार को वहन करने में समर्थ हो सकें।

भविष्य में सड़क विकास की योजना का औद्योगिक व आर्थिक विकास से अधिक ताल-मेल बैठाना चाहिए। राष्ट्रीय, राज्यीय व स्थानीय स्तरों पर सड़क-विकास की समन्वित योजना बनायी जानी चाहिए। केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारों के द्वारा सड़क-नियोजन-बोर्ड स्थापित किये जाने चाहिए। ये बोर्ड उच्च स्तरीय प्राविधिक सलाहकार संस्थाओं का काम करेंगे और ट्रैफिक सर्वे, लागत-लाभ-अध्ययन, निर्माण-लागतों में किफायतें, सड़क-विकास से अधिकतम लाभ प्राप्त करने, पिछड़े हुए क्षेत्रों में सड़कों का विकास करने, ग्रामीण सड़कें बनाने और बड़े नगरों में सड़कों का विकास करने के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देंगे। आगामी वर्षों में सड़कों के विकास पर निरन्तर ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारत में सड़क परिवहन[1]
(Road Transport in India)

सड़क परिवहन का थोड़ी व मध्य दूरी के परिवहन में महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। यह लचीला, विश्वसनीय व उपयोगी साधन होता है।

1. Seventh Five Year Plan, 1985–90, Vol. II, pp. 219-221.

1950–51 मे देश मे बसों की संख्या 34 हजार से बढ़कर 1984–85 मे 2 लाख 6 हजार हो गई। इस प्रकार औसत रूप से 5·4% वार्षिक दर से वृद्धि हुई। इसी अवधि मे ट्रकों की संख्या 82 हजार से बढ़कर 7 लाख 63 हजार हो गई (वार्षिक वृद्धि-दर 6 8%)।

1960–61 में यात्री-ट्रैफिक में सड़क व रेलों का अनुपात 42 : 58 था, जो बदल कर 1977–78 म 59 : 41 हो गया। इसी प्रकार माल-भाड़ा ट्रैफिक म यह 1960–61 म 28 : 72 था जो बदल कर 1977–78 मे 32 : 68 हो गया। इस प्रकार सड़कों का योगदान पहले से काफी बढ़ा है।

1984–85 मे 38% बसें सार्वजनिक क्षेत्र मे आ चुकी थी, लेकिन ट्रक परिवहन लगभग निजी क्षेत्र मे ही केन्द्रित रहा है।

व्यापारिक मोटर-परिवहन-गाड़ियों के लिए परमिट लेना पड़ता है जिसके लिए प्रादेशिक परिवहन अधिकारी, राजकीय परिवहन अधिकारी और अन्तर्राज्यीय परिवहन आयोग से स्वीकृति लेनी होती है।

रेल-सड़क समन्वय (Rail-road Co-ordination)—रेल-सड़क प्रतियोगिता को दूर करने के लिए इन साधनों मे परस्पर समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। समन्वय का अर्थ यह है कि प्रत्येक परिवहन के साधन का उपयोग उसी क्षेत्र मे किया जाय जिसके लिए वह सबसे ज्यादा उपयुक्त हो। एक परिवहन का साधन दूसरे परिवहन के साधन के क्षेत्र मे प्रवेश न करे। ऐसा करने से परिवहन की सुविधाएँ सस्ती व कार्यकुशल हो सकेंगी और समाज को अधिकतम लाभ मिलेगा।

परिवहन के साधनों मे समन्वय स्थापित करने के कई तरीके हैं। एक तरीका तो राष्ट्रीयकरण का है जिसमे सब साधन एक ही अधिकारी के नीचे आ जाते हैं और उनमें परस्पर प्रतियोगिता का अन्त हो जाता है। दूसरा वैधानिक समन्वय (Statutory Coordination) का तरीका है जिसमे एक वैधानिक संस्था विभिन्न परिवहन के साधनो के कार्यक्षेत्र निर्धारित व नियमित करती है। लाइसेंस आदि देने पर नियन्त्रण किया जा सकता है। पहली विधि मे परिवहन के साधनों पर राज्य का अधिकार हो जाता है, जबकि दूसरी विधि में यह आवश्यक नहीं होता। साधन निजी व्यक्तियों के हाथों मे रह सकते हैं। लेकिन उनके उपयोग पर नियन्त्रण होता है। भारत मे इस समय रेल-सड़क समन्वय की दूसरी विधि (वैधानिक समन्वय) चल रही है लेकिन पहली विधि (राष्ट्रीयकरण) की ओर भी प्रवृत्ति दिखाई देती है।

समन्वय की समस्याओं को हल करने के उपाय—

1 *लागत कम की जाय*—परिवहन के विभिन्न साधनों का उपयोग ऐसे अनुपात मे किया जाना चाहिए जिससे समाज की कुल आवश्यकताओं की पूर्ति न्यूनतम लागत पर हो सके।

2 सामाजिक लागत-लाभ पर विचार किया जाय—समन्वय के प्रश्न पर विचार करते समय सामाजिक लागतो का महत्व बढ जाता है। सामाजिक लागतो के साथ सामाजिक लाभो पर विचार करना भी आवश्यक होता है। परिवहन के नियोजन मे पूँजी, विदेशी विनिमय, दुर्लभ पदार्थ एव कर्मचारी आदि पर ध्यान देना होगा, जो विभिन्न सेवाओ के लिए आवश्यक होगे और साथ मे विनियोग के प्रतिफलो को भी देखना होगा।

3 आवश्यक सूचनाएँ व आंकडे एकत्र किए जायें—समन्वय की समस्या को हल करने के लिए परिवहन के विभिन्न साधनो के बारे म आर्थिक व सांख्यिकीय सूचना को एकत्र करने की आवश्यकता होती है। रेल व सडक-परिवहन दोनो क लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न अनुमानो और ट्रैफिक के विशिष्ट-प्रवाहो (specific flows) के सम्बन्ध मे कुल व सीमान्त लागत के बारे मे लगातार कुछ समय तक कई अध्ययन करवाये जायं जिससे ऐसी सामग्री प्राप्त हो सके जिसके आधार पर उचित निर्णय लिये जा सकें।

4. विनियोग मे लागत-लाभ के आधार का उपयोग किया जाय—रेल व सडक की लागतो की तुलना करते समय औसत लागत पर निर्भर करना जोखिमपूर्ण होगा। इसलिए यातायात के विशिष्ट-प्रवाहो की जाँच की जानी चाहिए। परिवहन के क्षेत्र मे भी विनियोग व लागत-लाभ के आधार लागू किये जाने चाहिएँ। योजनाओ मे विनियोग की नीतियो के माध्यम से परिवहन की विभिन्न सेवाओ मे समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

रेलो मे अधिकाश नया विनियोग रेल परिवहन की वर्तमान कार्यकुशलता बढाने मे लगाया जाना चाहिए बजाय विस्तार मे लगाने के। नये व कम विकसित क्षेत्रो मे सडको की सुविधाएँ बढानी चाहिए। गावो म आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए, कृषि, ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था व शहरो के अन्दर भी आवागमन को बढान के लिए सडको का विकास किया जाना चाहिए।

5 तीन प्रकार के सहायक उपाय—परिवहन के विकास की योजना मे यातायात के आवटन की स्कीम और विनियोग की योजना भी मुख्य अग होते हैं। रेल व सडक परिवहन के बीच समन्वय के लिए तीन किस्म के उपायो पर विचार किया जाना चाहिए (अ) राजकोषीय उपाय व मूल्य-निर्धारण की नीतियाँ (आ) नियमन, और (इ) सगठन व कार्यों मे एकीकरण। करो व आर्थिक सहायता के जरिए परिवहन के विशेष साधनो को प्रोत्साहन दिया जा सकता है अथवा उन्हे हतोत्साहित किया जा सकता है।

सडक-परिवहन के नियमन के लिए लाइसेन्सिग प्रणाली पर नियन्त्रण करना आवश्यक है। अन्तर्राज्यीय सडक परिवहन तो केन्द्रीय सरकार के अधिकार मे होना चाहिए और एक ही राज्य के विभिन्न भागो मे सडक-परिवहन पर राज्य सरकारो

का नियन्त्रण होना चाहिए। पिछड़े हुए प्रदेशो मे परिवहन की एकीकृत योजनाओं का विशेष रूप से महत्व होता है। ऐसे क्षेत्रो मे सड़क-परिवहन के विकास पर विशेष रूप से जोर देना चाहिए।

सड़क-परिवहन को एक सगठित उद्योग का रूप लेना चाहिए। इसे समाज के प्रति जिम्मेदारी के आधार पर काम करना चाहिए। जहाँ आवश्यक हो, इसे रेलो से पूरक सम्बन्ध स्थापित करके कार्य करना चाहिए और देहातो में कम विकसित क्षेत्रो मे विकास को प्रोत्साहन देने मे प्रमुख रूप से भाग लेना चाहिए। सरकार ने परिवहन के विभिन्न साधनो मे समन्वय स्थापित करने के लिए एक परिवहन-विकास-परिषद (Transport Development Council) की स्थापना की है।

सड़क परिवहन का राष्ट्रीयकरण (Nat onalisation of Road Transport)

पिछले वर्षों मे सड़क-परिवहन का राष्ट्रीयकरण काफी चर्चा का विषय रहा है। सरकार की नीति सार्वजनिक क्षेत्र का विकास करने की रही है जिसे उत्पादन के क्षेत्र के अलावा बैंकिंग, बीमा, परिवहन व व्यापार (आन्तरिक व विदेशी दोनो) मे बढ़ाया गया है।

मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण के निम्न लाभ बतलाये गये हैं—

(1) इससे रेल-सड़क प्रतियोगिता की समस्या को हल करने मे मदद मिलेगी क्योंकि दोनो मे ज्यादा प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित किया जा सकेगा।

(2) परिवहन-विकास की योजना ज्यादा सफलीभूत हो सकेगी। देश के आर्थिक विकास के लिए परिवहन के साधनो का विकास अधिक आवश्यक होता है। अत राष्ट्रीयकरण से सड़क विकास को प्रोत्साहन मिलेगा।

(3) उपभोक्ता को निजी बस चालको व ट्रक-चालको के द्वारा की जाने वाली अनियमितताओं व शोषण से मुक्ति मिलेगी।

(4) सरकार सड़क-परिवहन मे भाग लेकर अपनी आमदनी मे वृद्धि कर सकेगी जिससे आर्थिक योजनाओ के लिए अधिक धनराशि जुटाई जा सकेगी।

(5) सड़क-परिवहन-सेवाओं मे सुधार किया जा सकेगा जिससे जनता को लाभ मिलेगा।

राष्ट्रीयकरण की दिशा में प्रगति—गोआ, दमन व दीव तथा पाण्डिचेरी को छोड़कर अधिकांश राज्यो एव सघीय प्रदेशो मे विभिन्न अशो मे राष्ट्रीयकृत यात्री-बसें चालू की गयी हैं। आज गुजरात, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा व दिल्ली म अधिकाश मार्गों पर राष्ट्रीयकृत बसें चलती है। 1984-85 मे कुल बसो की सख्या लगभग 2 लाख 6 हजार थी जिनमे सार्वजनिक क्षेत्र का अश 38% तथा निजी क्षेत्र का 62% था। इसी प्रकार निजी क्षेत्र 62% यात्री-सेवाओ का संचालन

करता है, जबकि लगभग सम्पूर्ण ट्रक-व्यवसाय निजी क्षेत्र के पास है। यात्री-परिवहन का भी कुछ सीमा तक राष्ट्रीयकरण किया जा चुका है। अन्य राज्यों में भी विभागीय तौर पर बस-सेवाएँ जारी की गई हैं। माल-परिवहन अभी तक निजी क्षेत्र में ही है, हालांकि केन्द्रीय सडक-परिवहन निगम असम व पश्चिमी बगाल मे काफी गाडियो के जरिए माल की ढुलाई भी कर रहा है।

सरकार ने राष्ट्रीयकृत सडक-परिवहन सेवाओ के विकास के लिए प्रत्येक पचवर्षीय योजना मे धनराशि की व्यवस्था की है। अभी तक राज्य सडक-परिवहन निगम पर्याप्त मात्रा मे लाभ नही कमा रहे हैं। इन्हें अपनी कार्य क्षमता बढाकर अधिक प्रतिफल कमाने चाहिए ताकि योजनाओ के लिए अधिक धन राशि जुटायी जा सके। अत इनकी कार्यकुशलता मे सुधार करके घाटा समाप्त किया जाना चाहिए।

(इ) भारत में जल-परिवहन

जल-परिवहन तीन भागो मे बांटा जा सकता है (1) अन्तर्देशीय जल-परिवहन (Inland Water Transport), (2) तटीय-परिवहन (Coastal Transport), और सामुद्रिक परिवहन (Oceanic Transport)। अन्तर्देशीय जल-परिवहन के अन्तर्गत देश के आन्तरिक भागो मे नदियो व नहरो का जल-परिवहन आता है। तटीय परिवहन मे देश के एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक का जल-परिवहन आता है और सामुद्रिक परिवहन मे एक देश से दूसरे देश तक समुद्री जहाजो से होने वाला परिवहन आता है।

भारत के लिए उपर्युक्त तीनो प्रकार के जल-परिवहन का महत्व है। इनमे से प्रत्येक की वर्तमान स्थिति का उल्लेख आगे किया जाता है—

1 अन्तर्देशीय जल परिवहन[1]
(Inland Water Transport)

भारत मे लगभग 14 500 किलोमीटर लम्बा अन्तर्देशीय जल-मार्ग है। जिसका लगभग पाँचवाँ भाग नाव्य है। देश मे विभिन्न नदियाँ व नहरे नाव्य (navigable) है। अन्तर्देशीय जल परिवहन-सेवाएँ इस समय मुख्यतया असम, पश्चिमी बगाल बिहार, केरल आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु मे चलती हैं। देश की परिवहन व्यवस्था मे अन्तर्देशीय जल-परिवहन का अश केवल 1% है। अन्तर्देशीय जल परिवहन राज्यो का विषय है।

---

1 Seventh Five Year Plan, Vol II, pp 228-230, & Report of NTPC, May 1980 Ch. 15

योजनाकाल में प्रगति

प्रथम योजना में केन्द्रीय सरकार और उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल व असम की सरकारों ने मिलकर गंगा-ब्रह्मपुत्र जल परिवहन बोर्ड स्थापित किया था। इसका उद्देश्य भाग लेने वाली सरकारों के गंगा व ब्रह्मपुत्र प्रणालियों पर जल-परिवहन के विकास के प्रयत्नों में ताल-मेल बैठाना था। इसका एक कार्य इस बात की जाँच करना था कि पिछड़े जल-मार्गों पर आधुनिक नावें कहाँ तक चलायी जा सकती हैं।

द्वितीय योजना में पाण्डु (गौहाटी) में आन्तरिक बन्दरगाह का निर्माण, केरल में बाडागरा से माही तक पश्चिमी तटीय नहर का विस्तार और दामोदर घाटी में कई नाव्य कार्य शामिल किये गये। आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु में बकिंघम नहर से कीचड़ निकालने (Dredging) का कार्य प्रयोग के तौर पर करने की भी व्यवस्था की गयी।

तृतीय योजना में केन्द्र में एक ऐसे संगठन की स्थापना का कार्य शामिल किया गया जो अन्तर्देशीय जल परिवहन के विकास पर प्राविधिक सलाह व निर्देशन दे सके। पाण्डु में आन्तरिक बन्दरगाह का कार्य पूरा करके और दामोदर घाटी निगम नहर पर नाव्य-कार्य करने के कार्यक्रम रखे गये। तृतीय योजना में गंगा-ब्रह्मपुत्र बोर्ड के द्वारा सुन्दर वन में एक प्रयोगात्मक नाव खींचने का प्रोजेक्ट (Pilot Towing Project) शामिल किया गया। सुन्दरवन और ब्रह्मपुत्र के लिए ड्रेजर्स और लॉन्चेज खरीदने का कार्यक्रम रखा गया। गौहाटी के तटीय भागों (Foreshores) के सुधार की व्यवस्था की गई और प्रशिक्षण के लिए धन-राशि रखी गयी। केरल में पश्चिमी तटीय नहर का विस्तार उड़ीसा में तालडण्डा और केन्द्रपारा नहरों के सुधार के कार्यक्रम रखे गये जिससे पारादीप से कच्चे लोहे के निर्यात में सहूलियत हो सके।

पिछले दो दशकों में केन्द्रीय क्षेत्र में जो वृहद स्कीमें कार्यान्वित की गई हैं वे इस प्रकार हैं—असम में पाण्डु व जोगीगोपा बन्दरगाहों का निर्माण, राजबगान डॉकयार्ड व कुछ्ध वर्कशापों का विकास तथा जहाज को डूबने से बचाने के उपकरणों का निर्माण, आदि।

सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985-90 में आन्तरिक जल परिवहन (IWT) के विकास के लिए 226 करोड़ रु की राशि रखी गयी है जिसमें केन्द्रीय क्षेत्र के लिए 155 करोड़ रु. की राशि तथा राज्यीय क्षेत्र के लिए 71 करोड़ रु की राशि है।

सातवीं योजना में केन्द्रीय आन्तरिक जल-परिवहन-निगम (CIWTC) 83 नये तटीय जहाज प्राप्त करने का प्रयास करेगा तथा राजबगान डॉकयार्ड का विकास

किया जायगा एव अन्य आवश्यक सर्वे किये जावेंगे। राजबगान डॉयकार्ड के विकास से इसकी प्रति वर्ष 4 जहाज निर्माण करने तथा 14 जहाजो की मरम्मत करने की क्षमता हो जायेगी। सातवी योजना के अन्त तक इसकी जहाज-निर्माण क्षमता बढकर 8 प्रतिवर्ष होने की आशा है। केन्द्रीय आन्तरिक जल-परिवहन निगम की स्थापना एक कम्पनी के रूप में 22 फरवरी, 1967 को हुई थी। इसके तीन खण्ड (divisions) है—(i) नदी सेवा खण्ड, (ii) राजबगान डॉकयार्ड, (iii) गहरे समुद्र के जहाजो की मरम्मत का खण्ड।

आतंरिक जल-परिवहन व अन्य साधनो में समन्वय की आवश्यकता—

रेल सडक व अन्तर्देशीय जल परिवहन के विकास में परस्पर समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। जहाँ जल मार्ग रेल व सडको के समानान्तर हो जाते है वहाँ समस्त यातायात के अनुकूलतम वितरण की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे परिवहन के प्रत्येक साधन से अधिकतम लाभ प्राप्त किये जा सकें। द्वितीय जहाँ अन्तर्देशीय जल-परिवहन का जल-मार्गा से दूर स्थित स्थानो के लिए रेल या सडक परिवहन से मिलता है वहाँ जल मार्गों व परिवहन के अन्य साधनो म नावान्तरण (Transhipment) की लागत व समय कम करने के तरीको का पता लगाना चाहिए।

जल-मार्गों के विकास की दीर्घकालीन योजना बनायी जानी चाहिए। इसके लिए आवश्यक वित्त की व्यवस्था भी करनी होगी।

2 तटीय जहाजरानी
(Coastal Shipping)

तटीय जहाजरानी का विकास लम्बी दूरी तक भारी माल ढोने का एक सस्ता साधन माना गया है, बशर्ते कि माल तट पर स्थित किसी स्थान तक पहुँचाना होता है। भारत का तट 7517 किलोमीटर में फैला है। अत तटीय जहाजरानी का परिवहन विकास में महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है।

तटीय जहाजरानी की टन-भार क्षमता 1950–51 में 2 2 GRT (Gross-Registered Tonnage) थी जो 1979-80 मे 2·54 लाख GRT तथा 1984-85 मे 5 लाख GRT हो गई। 1950-51 मे 36 लाख टन माल ढोया गया जो बढकर 1984-85 में 55 लाख टन तक पहुँच गया। 1989-90 तक इसके 70 लाख टन होने की आशा है।

तटीय जहाजरानी की 35% टन भार क्षमता पुरानी पड चुकी है जिसे शीघ्र बदलने की आवश्यकता है। इसके अलावा 17% क्षमता सातवी योजना मे इसी श्रेणी म आ जायेगी।

तटीय जहाजरानी मे पुराने जहाज ईधन के उपयोग की दृष्टि से अकार्य-कुशल माने जाते हैं। बन्दरगाहो पर अत्यधिक विलम्ब की समस्या भी पायी जाती

है। अत: सातवीं योजना मे इन कठिनाइयो को हल करने का प्रयास किया जायेगा।

3 सामुद्रिक जहाजरानी एवं जहाज निर्माण
(Overseas Shipping and Ship-building)

अपने विस्तृत तट और विश्व मे उत्तम स्थिति के कारण भारत कुशल और सुदृढ जहाजरानी अथवा पोत-परिवहन का विकास कर सकता है। शान्ति और युद्ध दोनो मे राष्ट्रीय जहाजरानी का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारत एशिया मे दूसरा सबसे बड़ा सामुद्रिक जहाजरानी वाला देश है तथा विश्व में इसका सोलहवाँ स्थान है।

योजनाकाल में सामुद्रिक जहाजरानी व जहाज-निर्माण की प्रगति

भारतीय जहाजरानी का विश्व के जहाजी बेड़े मे केवल 1% अश है। 1950-51 मे इसकी टन-भार क्षमता 3·9 लाख जी आर. टी थी जो बढ कर 1986-87 मे 57 74 लाख जी. आर. टी. हो गई है।

तृतीय योजना मे स्थगित भुगतानो की शर्तों पर जहाज खरीदे गये, पुराने जहाज सस्ते भावो पर प्राप्त किये गये, हिन्दुस्तान शिपयार्ड की क्षमता का पूरा उपयोग किया गया और नयी जहाजी कम्पनियो ने विस्तार के कार्यक्रम अपनाये। तृतीय योजना मे 11 भारी सामान ढोने के जहाज (Bulk Carriers) और 4 समुद्र-पार जाने वाले टैंकर्स प्राप्त किये गये ताकि खाद्यान्न, खनिज पदार्थ व पेट्रोल की वस्तुओ को ढोने मे आसानी रहे। यह सन्तोषप्रद प्रगति मानी जा सकती है।

उपर्युक्त प्रगति जहाजरानी उद्योग मे सरकार की साझेदारी के कारण सम्भव हो सकी थी। 1950 मे ईस्टर्न शिपिंग कॉरपोरेशन स्थापित किया गया और 1956 मे दूसरा शिपिंग कॉरपोरेशन बनाया गया तथा अक्टूबर, 1961 मे दोनो एक शिपिंग कॉरपोरेशन मे मिला दिये गये। पिछले वर्षों मे जहाज निर्माण उद्योग और बन्दरगाहो के विकास मे काफी प्रगति हुई है जो जहाजरानी के विकास के लिए आवश्यक है। आजकल बडे जहाजों का प्रचलन बढ गया है। भारत म भी बडे जहाजो को अपनाने का प्रयास किया जा रहा है लेकिन इसके लिए बन्दरगाहो का विकास भी बहुत आवश्यक है। भारतीय जहाज समुद्रपार के व्यापार मे ज्यादा हिस्सा लेकर विदेशी मुद्रा को अर्जित करने मे सहायक सिद्ध होने लगे हैं।

इस समय भारतीय समुद्री जहाज देश के कुल सामुद्रिक व्यापार का 41% सचालित करते हैं। देश का विदेशी व्यापार पिछले वर्षों में काफी बढा है। आज भी हमारे जहाज तेल के आयात व कच्चे लोहे के निर्यात व्यापार मे कम भाग ले पा रहे हैं।

कन्टेनर जहाजो की सख्या मे काफी वृद्धि हुई है।

1950-51 मे बड़े बन्दरगाहो पर 19·2 मिलियन टन माल ढोया गया जो बढ़कर 1984-85 मे 106·7 मिलियन टन हो गया। माल मे पैट्रोल, तेल व चिकनाई (POL), कच्चा लोहा कोयला व उर्वरक, खाद्यान्न आदि शामिल होते हैं। भविष्य म बन्दरगाहो को अधिक माल ढोना पड़ेगा। अनुमान है कि 1989-90 मे 147 मिलियन टन (14·7 करोड़ टन) माल ढोना पड़ेगा। इस समय बड़े बन्दरगाहो की माल ढोने की कुल क्षमता 13·3 करोड़ टन है। 1989-90 मे इसके बढ़कर 16·1 करोड़ टन होन की आशा है।

जहाज-निर्माण उद्योग—देश मे विशाखापटनम म समुद्री जहाज बनाने का कारखाना है, लकिन इसकी उत्पादन-क्षमता सीमित है। दूसरा शिपयार्ड कोचीन मे विकसित किया जा रहा है। भारतीय कम्पनियो को जहाजो की मरम्मत पर विदेशी मुद्रा व्यय करनी होती है। इसलिय मरम्मत की व्यवस्था बढ़ाने की आवश्यकता है।

भारतीय जहाजो को कठिनाई के समय मदद देने के लिए एक बचाव-इकाई (Salvage Unit) की आवश्यकता है। राष्ट्रीय जहाजरानी बोर्ड ने एक बचाव-इकाई की स्थापना पर बल दिया है। इसके लिए विदेशी विनिमय की कठिनाई महसूस की जा रही है। जहाज तो स्थगित भुगतान पद्धति पर प्राप्त किये जा सकने हैं, लेकिन बचाव की इकाई इस प्रकार से प्राप्त नही की जा सकती।

जहाजरानी कम्पनियाँ (Shipping Companies)

इस समय देश मे 54 जहाजरानी कम्पनियाँ हैं, जिनमे से दो कम्पनियाँ—भारत का जहाजरानी निगम लि तथा मुगल लाइन लि. सार्वजनिक क्षेत्र मे हैं जो कुल माल का 55% सचालित करती हैं तथा शेष निजी क्षेत्र मे है। 12 कम्पनियो के पास कुल शिपिंग टन-भार क्षमता का 90% अश पाया जाता है।

जहाज निर्माण कार्य

भारत मे तीन जहाज-निर्माण स्थल हैं—विशाखापटनम मे हिन्दुस्तान शिपयार्ड, कलकत्ता मे गार्डन रीच वर्कशाप्स तथा बम्बई मे मझगांव डॉक। चौथा शिपयार्ड कोचीन मे बनाया जा रहा है। सभी शिपयार्ड सार्वजनिक क्षेत्र मे हैं।

बन्दरगाहो का विकास

भारत के लगभग 6000 किलोमीटर लम्बे समुद्र तट पर 11 बड़े बन्दरगाह (कलकत्ता, बम्बई, नया मगलोर, पाराद्वीप, तूतीकोरिन, मद्रास, विशाखापटनम, कोचीन, कांदला, मारमगोआ व नेवा शेवा) तथा 139 छोटे कार्यरत बन्दरगाह है। आजकल बन्दरगाहो पर खाद्यान्न, कच्चे लोहे व पेट्रोल की वस्तुओ का यातायात काफी बढ़ गया है। 1965-66 मे सब मौसमो के लिए एक नया बन्दरगाह

पारादीप चालू किया गया था। पहले बताया जा चुका है कि 1984-85 में बड़े बन्दरगाहों पर 106 7 मिलियन टन माल ढोया गया था, जबकि 1950-51 में 19 2 मिलियन टन ढाया गया था। भविष्य में पेट्रोल पदार्थों, कच्चे लोहे व उर्वरकों के लिए ट्रैफिक में वृद्धि की विशेष सम्भावना है। चतुर्थ योजना में हल्दिया डॉक-व्यवस्था (dock system at Haldıa), मंगलोर व तूतीकोरिन पर खनिज पदार्थ टान की सुविधा को आधुनिक बनाने, विशाखापटनम पर एक बाहरी पोताश्रय का निर्माण करने एवं बम्बई के लिए नेवा शेवा (Nheva Sheva) पर एक उपग्रह बन्दरगाह (Satellite port) बनाने के कार्यक्रम रखे गये थे।

सातवीं योजना में परिव्यय व कार्यक्रम

छठी योजना में बन्दरगाहों के विकास पर 627 करोड़ रु. व्यय हुए। सातवीं योजना में इनके लिए 1105 करोड़ रु. की धनराशि प्रावटित की गई है। इसमें नेवा-शेवा बन्दरगाह के विकास हेतु 402 4 करोड़ रु. की राशि रखी गयी है। सातवीं योजना में चालू परियोजनाओं को पूरा किया जायगा तथा बन्दरगाहों की सुविधाओं का विस्तार व आधुनिकीकरण किया जायगा।

सातवीं योजना में छोटे बन्दरगाहों के विस्तार पर 126 करोड़ रु. की राशि व्यय के लिए निर्धारित की गई है। भारतीय ड्रेजिंग निगम के लिए 95 करोड़ रु. की राशि रखी गयी है ताकि आधुनिक ड्रेजर्स भी खरीदे जा सकें।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय जहाजरानी के विकास में पिछले वर्षों में तीव्र प्रगति हुई। भविष्य में इस दिशा में और प्रगति होने की आशा है। विदेशी विनिमय की कठिनाइयां हमारे मार्ग में बाधक रही हैं। अतः इनको दूर करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(ई) भारत में वायु परिवहन

(Air Transport in India)

भारत में वायु-परिवहन के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं, जैसे देश का महाद्वीपीय आकार, जो लम्बे हवाई मार्ग के लिए लाभप्रद है, अनुकूल समशीतोष्ण जलवायु और स्वच्छ वायुमण्डल (वर्ष के कुछ महीनों को छोड़कर) उड़ने की सुविधा प्रदान करने के लिये विस्तृत मैदान एवं भारत की विश्व में केन्द्रीय स्थिति। इतनी सुविधाओं के बावजूद भी भारत में वायु परिवहन एक विलासिता की वस्तु ही बना हुआ है। अभी तक इसके विकास की सम्भावनाओं का पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो पाया है।

हवाई यातायात का राष्ट्रीयकरण—सरकार ने नौ एयरलाइन्स के राष्ट्रीयकरण का निर्णय करके अगस्त 1953 में एयर कॉरपोरेशन अधिनियम पास कर दिया था जिसके अन्तर्गत हवाई परिवहन के स्वामित्व का संचालन का काम सरकार के हाथों में आ गया था।

राष्ट्रीयकरण के पक्ष में सरकार ने निम्न दलीलें प्रस्तुत की थीं-(1) उपलब्ध साज-सामान का अधिकतम लाभ की दृष्टि से उपयोग किया जा सकेगा, (3) सुरक्षा की दृष्टि से राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक है; (1) वायु-परिवहन एक सार्वजनिक सेवा का उद्योग है। अत. इसमें मुनाफे का उद्देश्य सर्वोपरि नहीं होना चाहिए (4) भावी विकास के लिए प्राविधिक प्रगति को देखते हुए इसका सार्वजनिक क्षेत्र में होना उपयुक्त रहेगा। 1 अगस्त, 1953 से भारत में वायु-परिवहन न एक नया मोड़ लिया है। अधिनियम के अन्तर्गत दो निगम स्थापित किए गए हैं (1) एयर इण्डिया जो अन्तर्राष्ट्रीय हवाई सेवाएँ सचालित करता है और (2) इण्डियन एयरलाइन्स जो देश में और पडौसी देशों के बीच हवाई सेवाएँ सचालित करता है।

राष्ट्रीयकरण के बाद से अब तक की प्रगति—विभिन्न कठिनाइयों के बावजूद दोनों निगमों के कार्यों में तीव्र गति से विस्तार हुआ है। उपलब्ध साधनों का नियोजित ढग से उपयोग किया गया है, पुराने मार्गों पर वायु परिवहन का विस्तार किया गया है, नये मार्ग खोले गये हैं और यातायात की क्षमता बढ़ायी गयी है।

1960-61 में 7-9 लाख यात्रियों ने हवाई परिवहन का उपयोग किया था। 1984-85 में इनकी संख्या 85·1 लाख यात्री हो गई है लेकिन आज भी घरेलू हवाई यात्री-ट्रैफिक कुल यात्री ट्रैफिक का 1% ही हो पाया है।

1986-87 में एयर इण्डिया 18 लाख यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले गया। आज इण्डियन एयरलाइन्स 69 स्टेशनों को अपनी सेवायें प्रदान करता है, जिनमें 62 भारत में स्थित हैं एवं शेष अफगानिस्तान, बगला देश, श्रीलंका, मालदीव्ज, नेपाल व पाकिस्तान जैसे पडौसी देशों में स्थित हैं। एयर इण्डिया 41 देशों में 45 नगरों तक जाता है।

एयर इण्डिया का एयरक्राफ्ट फ्लीट 1987 में इस प्रकार था : 9 बोईंग-747, 3 एयर-बसें A 300-B-4 तथा 5 एयरबसें A 310-300। एयर इण्डिया का एक विमान बोईंग-747 (कनिष्क) 23 जून 1985 को आयरलैण्ड के तट से दूर दुर्घटनाग्रस्त होकर एटलांटिक महासागर में जा गिरा था जिससे 329 व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी थी। यह एक भारी दुःखद घटना थी। 'इण्डियन एयरलाइन्स' को बड़े हवाई जहाज बढ़ा रहा है। इसमें एच. एस. 748 ट्रान्सपोर्ट एयरक्राफ्ट को शामिल करने का कार्यक्रम है। इस समय इण्डियन एयरलाइन्स के पास 11 एयर बसें 27 बोईंग-737, सात HS—748 तथा पाँच F-27 (एयरक्राफ्ट) हैं।

वायुदूत—भारत में ऐसे क्षेत्रों में वायु-परिवहन की सुविधा उपलब्ध करने के लिए जो पहुँच से परे हैं। (inaccessible), वायुदूत (Vayudoot) के द्वारा अपनी सेवाएँ 10 नागरिक हवाई अड्डों, तीन सुरक्षा हवाई अड्डो, एक राज्य सरकार के हवाई अड्डे तथा दो लाइसेंसशुदा निजी हवाई अड्डो के माध्यम से दी जाती हैं।

वायुदूत सेवा जनवरी 1981 मे प्रारम्भ की गई थी। इसके द्वारा महत्वपूर्ण सुदूर स्टशनों को इण्डियन एयर लाइन्स मार्ग के स्टशनो से जोडा गया है। इसका उद्देश्य पर्यटन को बढावा देना है।

भारत मे हवाई अड्डो का विकास किया गया है। योजनाकाल मे नय हवाई अड्डे बनाय गये हैं : जैसे उदयपुर, पन्तनगर, कमलपुर, मुजफ्फरपुर, कादलो, रक्सोल, खजुराहो, आदि। देश मे 4 अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे तथा 85 अन्य हवाई अड्डे हैं। अब बडे हवाई जहाजो का युग आ गया है और 400 यात्रियो की क्षमता के हवाई जहाज प्रयुक्त होने लगे हैं। भारत को बम्बई कलकत्ता, दिल्ली व मद्रास के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डो का विकास करना चाहिए।

वायु-परिवहन उद्योग की सफलता हवाई जहाज के सही चुनाव पर बहुत निर्भर करती है। आन्तरिक हवाई सेवाओ की लाभदायकता विभिन्न प्रकार के हवाई जहाजो को चलाने की लागत और मार्गों की प्रकृति पर विशेष रूप से निर्भर करती है।

इण्डियन एयर लाइन्स की सेवाएँ ट्रंक मार्गों पर तो पर्याप्त है- लेकिन प्रादेशिक मार्गों पर अभी विकास की सम्भावनाएँ बनी हुई हैं। कुछ प्रदेशो के आर्थिक विकास व प्रशासन मे सुधार करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे वायु-सेवाओं की आवश्यकता है। असम, मध्य प्रदेश व आन्ध्र प्रदेश के कुछ मार्गों मे हवाई-सेवा के विस्तार की आवश्यकता है। दक्षिण प्रदेश मे भी हवाई परिवहन का विकास किया जा सकता है। वर्तमान समय की आर्थिक और औद्योगिक आवश्यकताओ को देखते हुए विकास व लाभदायकता दोनों उद्देश्यों मे उचित समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

भारत सरकार ने नागरिक उड्डयन विकास कोष (Civil Aviation Development Fund) की एक करोड रुपये के प्रारम्भिक अनुदान से स्थापना की है जो इण्डियन एयरलाइन्स निगम को आर्थिक सहायता देगा ताकि यह सरकार के कहने पर प्रादेशिक आवश्यकताओं को पूरा करने एव पर्यटन-प्रोत्साहन आदि कार्यो मे भाग ले सके।

इण्डियन एयरलाइन्स कॉरपोरेशन की कुल आय का 70% ट्रंक-सेवाओ से प्राप्त होता है। इसलिए सेवाओ के प्रादेशीकरण की अपनी मर्यादाएँ हैं। फिर भी प्रादेशिक इकाइयाँ स्थापित करके यथासम्भव विकास का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

वायु परिवहन के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण टेक्नोलॉजिकल परिवर्तन हो रहे हैं। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली व मद्रास चार अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों मे सुविधाओं का विस्तार किया जा रहा है। इनके विकास व प्रबन्ध का कार्य फरवरी, 1972 मे एक अन्तर्राष्ट्रीय एयरपोर्ट्स प्राधिकारी सस्था (The International Airports

Authority of India) (IAAI) को सौंपा गया था। एयर इण्डिया व इण्डियन एयर लाइन्स का विकास किया जा रहा है।

छठी योजना मे नागरिक उडडयन पर 931 करोड रु. व्यय किये गये। सातवी योजना मे इसके विकास के लिए साधनो के अभाव के कारण 730·2 करोड रु की धनराशि आवटित की गई।

एयर इण्डिया 9 दो इन्जन वाले एयरक्राफ्ट प्राप्त करेगा, माल-ट्रैफिक की क्षमता बढायेगा, वर्कशाप व प्रशिक्षण की सुविधाये सुदृढ की जायेगी, कम्प्यूटर नेट-वर्क को विकसित किया जायेगा व अन्य सेवाये बढायी जायेगी। इण्डियन एयरलाइन्स भी एयरक्राफ्ट प्राप्त करेगा, दिल्ली मे जेट इजन की मरम्मत की सुविधायें चालू करेगा तथा वर्कशाप सुविधाओ का आधुनिकीकरण किया जायगा। IAAI बम्बई, दिल्ली व मद्रास मे सुविधाओ का विकास करेगा। इस प्रकार सातवी योजना मे हवाई परिवहन के विकास म प्रयत्न जारी रखे जायेंगे।

मई 1986 मे सरकार ने एयर इण्डिया व इण्डियन एयर लाइन्स के एकीकरण को क्रमबद्ध रूप से (phased manner) करने के निर्णय की घोषणा की है। विदेशी एयरलाइनो से सयुक्त सचालन के लिए समझौते किये जायेंगे तथा राष्ट्रीय परिवहन सुरक्षा बोर्ड की स्थापना की गई है। सरकार ने एयर टैक्सी सर्विस की स्वीकृति दे दी है। इसके लिए 10 सीट वाले हवाई जहाजो के लिए लाइसेंस दिये जायेंगे एव उनके आयात की इजाजत भी दी जायेगी। लम्बी दूरी के यात्री ट्रैफिक की दृष्टि से वायु-परिवहन के विकास का विशेष महत्व है। लेकिन परिवहन का यह साधन ऊर्जा-गहन (energy-intensive) है। इसलिए तेल-साधनो के अभाव मे इसके विस्तार मे विशेष बाधाएँ आती है। आजकल 'हाई-जैक' व आतकवाद के बढते हुए खतरे के कारण नई समस्याएँ उत्पन्न हो गई है जिनका सामना करने की की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण

(National Airports Authority) (NAA) 1986 का परिचय[1]

सरकार ने राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण 21 मई, 1986 को स्थापित किया है। इसने 1 जून, 1986 से अपना कार्यारम्भ कर दिया है। इसका उद्देश्य भारत मे नागरिक उडडयन सम्बन्धी कार्यों के लिए आधार-ढाँचे (इन्फ्रास्ट्रक्चर) की सुविधाएँ उपलब्ध करना है। इसके कार्यों मे निम्नलिखित को शामिल किया गया है। हवाई अड्डो की व्यवस्था करना, हवाई ट्रैफिक सेवाएँ व हवाई परिवहन सेवाएँ उपलब्ध करना, कर्मचारियो के प्रशिक्षण की सुविधाएँ बढाना, कर्मचारियों के लिए

1. Transport in India, Lok Sabha Secretariat, New Delhi, 1986, pp. 39-41.

रिहायशी भवनों का निर्माण करना, होटल आदि, (हवाई अड्डों के समीप) बनाना, हवाई अड्डों पर निगरानी की व्यवस्था करना, हेलिपोर्ट्स स्थापित करना तथा हवाई जहाजों के सचालन को सुरक्षित व कार्यकुशल बनाने से सम्बन्धित सभी तरह के अन्य कार्य करना। आशा है राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण की स्थापना से भारत मे हवाई यातायात के विकास मे पर्याप्त मदद मिल सकेगी।

प्रश्न

1 भारत मे रेल परिवहन के महत्व एव वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए। (Raj II year T. D C 1986)

2 सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—

(i) 1961 मे भारत मे जहाजी यातायात की प्रगति। (Raj IIyr. T D C, 1984)

(ii) योजनावधि मे रेलो का विकास। (Raj IIyr T. D C, 1988)

(iii) सन् 1961 से यातायात की मुख्य प्रवृत्तियाँ। (Raj IIyr T D C., 1982 & 1985)

(iv) राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण, (1986)

(v) वायुदूत

14

श्रमिक-संघ आन्दोलन[1]

(Trade Union Movement)

मजदूर-संघ श्रमिकों के ऐसे स्थायी संगठन को कहते हैं जिसका उद्देश्य काम की दशाओं को बनाये रखना तथा उनमें आवश्यक सुधार करना होता है। आजकल इनका कार्य-क्षेत्र केवल श्रमिकों की काम की दशाओं से ही सम्बन्धित नहीं रह गया है, बल्कि उनके जीवन के प्रत्येक पहलू—आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तक फैल गया है।

आधुनिक युग में मजदूर यूनियन औद्योगिक लोकतन्त्र के आधार-स्तम्भ माने जाते हैं। पूँजीवादी व समाजवादी सभी देशों में उनके महत्व को स्वीकार किया गया है। इनके दो प्रकार के कार्य होते हैं—

1 **संघर्षात्मक कार्य**—मजदूर-संघ सामूहिक सौदाकारी (collective bargaining) एवं हड़ताल आदि साधनों का प्रयोग करके श्रमिकों की मजदूरी बढ़ाने, काम के घण्टे कम करने काम की दिशाओं में सुधार करने, श्रमिकों को उद्योग के लाभों एवं प्रबन्ध में हिस्सा दिलाने आदि का प्रयत्न करते हैं। प्रायः कहा जाता है कि यदि मजदूरी श्रम की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से कम होती है और श्रमिकों का आर्थिक शोषण होता है, तो मजदूर-संघ संघर्ष करके मजदूरी को श्रम की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार वे मजदूरों को आर्थिक शोषण से बचाते हैं।

2 **कल्याणकारी कार्य**—आजकल मजदूर संघों द्वारा किये जाने वाले रचनात्मक कार्यों के महत्व पर अधिक जोर दिया जाने लगा है। शिक्षा, चिकित्सा, व मनोरंजन आदि की सुविधा बढ़ाकर मजदूर-संघ श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि

---

1 वर्तमान कानून के अनुसार 'ट्रेड यूनियन' शब्द में मालिकों व मजदूरों दोनों के संगठन शामिल होते हैं।

करते है इस प्रकार वे सीमान्त उत्पत्ति के वर्तमान मूल्य मे वृद्धि करके मजदूरी को वर्तमान स्तर से ऊँचा उठाने मे भी मदद देते हैं। इन कार्यों से मजदूरो मे अनुशासन की भावना भी बढती है। किसी भी देश मे श्रमिक सघ आन्दोलन की स्थायी प्रगति के लिए दोनो किस्म के कार्यों पर समान रूप से बल दिया जाना चाहिए। स्मरण रहे कि मजदूर सघ केवल हडताल कराने वाली समितियाँ ही नही होती है, अपितु वे मजदूरो के जीवन पर गहरा प्रभाव डालने वाली और आधुनिक औद्योगिक सगठन मे महत्वपूर्ण भाग लेने वाली सस्थाएँ होती हैं। उनका औद्योगिक लोकतन्त्र मे प्रमुख स्थान होता है। उनकी आधुनिक औद्योगिक जीवन मे व्यापक भूमिका होती है।

1939 से भारत मे मजदूर सघ आन्दोलन की प्रगति

1939-40 मे युद्ध प्रारम्भ होने के समय भारत म 667 मजदूर सघ थे जिनमे से 450 ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी और इनकी सदस्य सख्या लगभग 5 लाख हो गयी थी।

द्वितीय महायुद्ध के समय मजदूर-आन्दोलन ने जोर पकडा। महगाई के कारण मजदूरी बढाने और महगाई भत्ता देने की माँग की गई। सरकार ने त्रिदलीय वार्ताएँ आरम्भ की जिससे भी श्रम-आन्दोलन को मान्यता मिली। परन्तु सरकार को युद्ध म सहयोग देने के प्रश्न पर श्रमिक सघो में मतभेद उत्पन्न हो गया। जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण करने के पश्चात् श्री एम एन राय ने सरकार को युद्ध सचालन मे सहयोग देने के लिए 'ट्रेड-यूनियन कांग्रेस छोडकर 1939 मे 'इण्डियन फेडरेशन आफ लेबर' की स्थापना की जिसको सरकार की ओर से श्रमिको के लिए काम करने के लिए उदार रूप से वित्तीय सहायता प्रदान की गयी। 1945-46 म युद्ध समाप्त होने के बाद भारत मे रजिस्टर्ड श्रमिक-सघो की सख्या बढकर 1,087 हो गयी जिनमे केवल 585 ने अपनी रिपोर्ट भेजी थी। उनकी सदस्य-संख्या लगभग 8 64 लाख थी।

युद्धोत्तर काल मे महगाई क कारण श्रमिको मे काफी असन्तोष फैल गया था। 1945-47 के बीच अनेक हडतालें हुइ, जिनमे लाखो श्रमिको ने भाग लिया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओ ने 1948 मे 'इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस' (इन्टक) (INTUC) की स्थापना की और जो मजदूर-सघ समाजवादियो के प्रभाव म थे, उन्होने मिलकर दिसम्बर, 1948 मे 'हिन्द मजदूर पचायत' बना ली। दिसम्बर, 1947 म सरकार, श्रमिको और मिल-मालिको के प्रतिनिधियो के बीच औद्योगिक शान्ति कायम करने के लिए एक समझौता हुआ। तत्पश्चात् कुछ वर्षों तक कोई बडी हडताल नही हुई। दिसम्बर 1949 मे 'हिन्द मजदूर-पचायत' और इण्डियन फैडरेशन ऑफ लेबर' के प्रतिनिधियो ने

कलकत्ता में एक सम्मेलन किया और दोनों ने मिलकर 'हिन्द मजदूर सभा' (HMS) बना ली। इसी वर्ष श्रम-आन्दोलन में पुनः एकता स्थापित करने की दृष्टि से प्रोफेसर के टी शाह के प्रयत्नों से 'यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (UTUC) के नाम से एक अलग अखिल भारतीय श्रमिक संगठन स्थापित किया गया। इस प्रकार देश में चार अखिल भारतीय श्रमिक-संघ बन गये। सरकार ने इन्टक, एटक, एच एम एस व यूटक को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में मजदूरों का प्रतिनिधित्व करने व समय-समय पर देश में विचार-विमर्श के लिए मान्यता प्रदान की। बाद में 1955 में भारतीय मजदूर-संघ (BMS) की स्थापना की गई जिस पर प्रारम्भ में राजनीतिक दृष्टि से भारतीय जनसंघ का प्रभाव था। अब यह भारतीय जनता पार्टी (BJP) के प्रभाव-क्षेत्र में है।

भारत में सभी पंजीकृत श्रमिक संघ कार्यों की रिपोर्ट नहीं भेजते हैं जिससे उनकी सदस्यता आदि के बारे में नियमित रूप से विश्वस्त व नवीनतम जानकारी नहीं मिल पाती। 1984 में कुल पंजीकृत ट्रेड यूनियन 42609 थे लेकिन रिपोर्ट भेजने वाले संघों की संख्या केवल 6372 ही थी। 1984 में प्रति संघ औसत सदस्यता 798 थी, जबकि 1983 में यह 792 रही थी।[1]

कुछ वर्ष पूर्व एटक में फूट पड़कर एक नये श्रमिक संगठन 'सीटू' (Centre of Indian Trade Unions) का जन्म हुआ था। इस पर मार्क्सवादियों [CPI (M)] का प्रभुत्व है। सीटू का मार्ग इन्जीनियरिंग, चाय, सार्वजनिक उपक्रमों आदि में काफी प्रसार है। इसका केरल व पश्चिमी बंगाल राज्यों में विशेष प्रभाव पाया जाता है।

कुछ वर्ष पूर्व हिन्द मजदूर सभा व हिन्द मजदूर पंचायत का भी परस्पर विलय हो गया है।

श्रम संघों की वर्तमान स्थिति

31 दिसम्बर 1980 को भारत के 10 केन्द्रीय श्रमिक संगठनों की जांच के बाद सत्यापित सदस्यता (Verified memdership) इस प्रकार थी। जांच के ये परिणाम 30 अगस्त 1984 को घोषित किये गये थे।[2]

---

1 Pocket Book of Labour Statistics, 1988, pp 132–135

2. India 1987, p 579.

सत्यापित सदस्यता (verified membership) के ये आँकड़े श्रम-मन्त्रालय ने प्रकाशित किये हैं। अतः इस सम्बन्ध में अन्य आँकड़े मिथ्या, कल्पित व अप्रामाणिक हैं। इसलिए उनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

संगठन का नाम (Name of the Organisation)	सत्यापित उसके अन्तर्गत यूनियनों की संख्या (Verified No. of Unions)	(Uerified) सदस्य संख्या (Membership)
(1) भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (INTUC)	1604	(लाखों में) 22·36
(2) भारतीय मजदूर संघ (BMS)	1333	12·11
(3) हिन्द मजदूर सभा (HMS)	426	7·63
(4) यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (Lenin Sarani) (लेनिन सारनी) (UTUC) (LS)	134	6·21
(5) आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC)	1080	3·45
(6) सेन्टर ऑफ इण्डियन ट्रेड यूनियन (CITU)	1474	3·31
(7) नेशनल लेबर संगठन (NLO)	172	2·47
(8) नेशनल फ्रन्ट ऑफ इण्डियन ट्रेड यूनियन्स (NFITU)	80	0·84
(9) यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (UTUC)	175	1·66
(10) ट्रेड यूनियन कांग्रेस (TUCC)	65	1·23
कुल	6543	61·27

तालिका से पता लगता है कि दिसम्बर 1980 में भारत में 10 केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संगठनों के अन्तर्गत 6543 यूनियन थे, जिनकी कुल सदस्य-संख्या लगभग 61·27 लाख थी। इनमें सर्वाधिक सदस्यता इन्टक की 22·36 लाख थी। इसके बाद दूसरा स्थान भारतीय मजदूर संघ (BMS) का था जिसकी सदस्य-संख्या 12·11 लाख थी। 31 दिसम्बर 1980 तक की सदस्यता के अन्तिम सत्यापन के ये परिणाम 30 अगस्त 1984 को घोषित किये गये थे।

पिछले वर्षों में देश में दिशाहीन रूप में अनेक राजनीतिक दलों के उत्पन्न होने से मजदूर-संघ आन्दोलन काफी अस्त-व्यस्त व उलझन की स्थिति में पड़ गया है। इस प्रकार की दिशाहीनता को समाप्त करके एक सुदृढ़ श्रमिक संघ आन्दोलन के निर्माण का प्रयास किया जाना चाहिए, जिसकी रूपरेखा आगे के पृष्ठों में दी गई है। इसके लिए सर्वप्रथम कार्यक्रम-आधारित सुदृढ़ व सबल राष्ट्रीय राजनीतिक दलों का निर्माण किया जाना चाहिए तथा व्यक्तिपरक एवं सत्तापरक राजनीति समाप्त की जानी चाहिए। सुनिश्चित नीतियों व कार्यक्रमों के बिना नयी राजनीतिक पार्टियों के

गठन से ग्राम जनता व श्रमिकों में दलीय राजनीतिक (party politics) के प्रति उत्साह कम हो जाता है।

भारत में मजदूर-संघ आन्दोलन की कमजोरियां व समस्याएं

यद्यपि हमारे देश में श्रमिक संघवाद का काफी बोलबाला है, तथापि अन्य प्रगतिशील देशों की तुलना में यह आज भी काफी कमजोर स्थिति में है। इसकी कमजोरी के अधिकांश कारण आन्तरिक हैं, यद्यपि कुछ बाह्य कठिनाइयां भी मजदूर आन्दोलन के मार्ग में बाधक हैं। हम नीचे इन कमियों पर प्रकाश डालते हैं।

(अ) आन्तरिक कमियां

1. सीमित सदस्य—मजदूर-यूनियन अधिकांशतः औद्योगिक नगरों में ही सीमित है और यहां भी इनके सदस्यों की संख्या श्रमिकों की कुल संख्या का काफी नीचा अंश ही पायी जाती है। वास्तव में सक्रिय सदस्यों की संख्या तो प्रकाशित आंकड़ों से भी कम होती है और नाममात्र के सदस्य ज्यादा होते हैं। भारत में राजनीतिक अस्थिरता व नित्य नई पार्टियों के उदय से श्रमिक संघ-आन्दोलन काफी अनिश्चितता व अस्थिरता की स्थिति में फंसकर रह गया है। अधिकांश नयी पार्टियों के पास देश के विकास के लिए कोई सुनिश्चित राष्ट्रीय कार्यक्रम नजर नहीं आते। वे व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा को पूरा करने का साधन मात्र बनती जा रही हैं।

2. छोटे श्रमिक संघ—भूतकाल में भारत में श्रमिक संघों का आकार बहुत छोटा रहा है। छोटे संघों के पास धन और संगठन का अभाव होता है जिससे वे मिल-मालिकों तथा सरकार को ठीक से प्रभावित नहीं कर पाते। 1983 में प्रति संघ औसत सदस्यता 792 थी जो 1984 में 798 हो गई। इस प्रकार प्रतिसंघ औसत सदस्यता अभी भी काफी कम है।

3. कमजोर वित्तीय स्थिति—भारत में अधिकांश श्रमिक संघों के साधन इतने कम होते हैं कि वे वेतन देकर कर्मचारी नहीं रख सकते, रचनात्मक कल्याणकारी कार्य नहीं कर सकते और हड़ताल के दिनों में अपने सदस्यों की सहायता नहीं कर सकते। अधिकांश श्रमिक कम मजदूरी पाने के कारण संघों का चन्दा तक नहीं देते हैं। प्रति संघ आय-व्यय की राशि बहुत कम पायी जाती है।

4 श्रमिकों की प्रवास-प्रवृत्ति—हमारे देश में आज भी स्थायी औद्योगिक श्रमिक-वर्ग का अभाव पाया जाता है। हमारे अधिकांश श्रमिक देहातों के रहने वाले होते हैं जो रोजगार पाने के लिए नगरों में चले आते हैं और पुन अवसर पाकर अपने गांवों में लौट जाते हैं। ये लोग श्रमिक-संघों में विशेष रुचि नहीं रखते।

5. अवकाश का अभाव शिक्षा की कमी—श्रमिकों को कारखाने में इतने अधिक समय तक काम करना पड़ता है कि वे थक जाते हैं। इनको घर पर भी पूरा

आराम नही मिल पाता है। प्राय उनके घर भी कारखानो से काफी दूर होते हैं। अतएव उनके पास श्रमिक-सघ के कार्यों के लिए पर्याप्त समय, शक्ति व रुचि नही होती। अशिक्षा के कारण भारत मे मजदूर वर्ग सघो के महत्व को पूरी तरह नहीं समझ पाता है। इसी कारण बाहरी नेतृत्व का प्रभाव बढ जाता है जो श्रमिक-सघो का अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए उपयोग करते रहते हैं।

6 विविधता—श्रमिको मे जाति धर्म भाषा और क्षेत्र की अनेकता पाई जाती है और वर्ग चेतना का अभाव होता है जिससे उनम परस्पर एकता की भावना पैदा नही हो पाती।

7 विभिन्न सघों के बीच तथा एक ही सघ मे आपसी फूट (Inter union and Intra-union rivalry)[1]—प्राय एक ही उद्योग/या एक ही औद्योगिक इकाई मे कई राजनीतिक दलो से जुडे हुए अलग-अलग श्रमिक सघ पाये जाते हैं जिनम से कुछ तो नाममात्र के होते हैं और उनके नेतागण सदैव अपने राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि म लगे रहते हैं। इस दशा मे सामूहिक सौदाकारी मे बाधा पडती है। श्रमिक-सघो मे आपसी फूट पायी जाती है। प्राय एक ही उद्योग मे विरोधी आदर्शों म विश्वास रखने वाले दो या अधिक सघ होते हैं जो निरन्तर आपस मे लडा करते हैं। इस प्रकार सघो की अधिकता के कारण मजदूरों के हितो को हानि होती है।

8 बाहरी नेतृत्व तथा राजनीतिक दलों का प्रभाव—श्रमिक-सघो के नेता अधिकतर वकील या सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्त्ता होते हैं जिन्हें सम्बद्ध उद्योग का तकनीकी व आर्थिक ज्ञान नही होता और श्रमिको के प्रति पूरी सहानुभूति भी नहीं होती। कुछ तो इतने व्यस्त होते हैं कि सघ के कार्यों पर पूरा ध्यान नही द पाते। कभी-कभी उनके हित भी श्रमिको के हितो से भिन्न होते हैं। राजनीतिक दलो का श्रमिक सघो पर इतना प्रभाव होता है कि वे श्रमिको मे परस्पर सघर्ष की स्थिति बनाय रखते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए श्रमिक सघो का निरन्तर प्रयोग करते रहते हैं।

9 रचनात्मक कार्यों का अभाव—भारत म वित्तीय साधनो के अभाव मे श्रमिक-सघ अपने सदस्यो के कल्याण के लिए शिक्षा, चिकित्सा व मनोरजन आदि के कार्य करके दिलों म सच्ची एकता की भावना उत्पन्न नही कर पाते। इसलिए मजदूर इनको ज्यादातर हडताल-समितियो के रूप म मानते हैं।

---

1 इन्टर-यूनियन स्पर्धा म विभिन्न यूनियनो का आपसी सघर्ष आता है और इन्ट्रा-यूनियन स्पर्धा मे एक ही यूनियन मे कई 'नेताओं' का आपसी सघर्ष आता है। इस प्रकार श्रमिक सघ आपसी मतभेद व फूट के अखाडे बने रहते हैं और इनकी सीमित शक्ति और भी कम हो जाती है।

(ख) बाह्य कारण :

1. भरती का गलत तरीका—हमारे उद्योगों में श्रमिकों की भरती एक प्रकार के मध्यस्थ वर्ग द्वारा होती है, जिन्हें सरदार या जोबर (jobber) कहते हैं। ये लोग प्रायः मजदूर संघों के विरोधी होते हैं क्योंकि मजदूरों पर अपना प्रभाव बनाये रखना चाहते हैं।

2. मालिकों का विरोध—मालिक भी प्रायः शक्तिशाली श्रमिक संघ से डरते रहते हैं। अतएव वे उचित या अनुचित उपायों से श्रमिकों में फूट डालने का निरन्तर प्रयास करते रहते हैं। वे विरोधी संघों को बढ़ावा देते हैं, एवं गुप्तचरों और हड़ताल तोड़ने वालों को नौकर रखकर या श्रमिकों को डरा-धमका कर उनकी हड़तालें खत्म कराते रहते हैं। वे यूनियन के नेताओं को अपनी तरफ करने का प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसी घटनाएँ बहुधा होती रहती हैं।

3. सरकारी दृष्टिकोण—प्रायः सत्तारूढ़ राजनीतिक दल अपने द्वारा नियन्त्रित संघों को ही बढ़ावा देते हैं। राज्यों के जिस दल की सरकार होती है, प्रायः उसके मजदूर संघों को ही विशेष रूप से प्रगति करने का अवसर मिलता है। यह दृष्टिकोण भी प्रगतिशील श्रमिक-संघ आन्दोलन के मार्ग में बाधक माना जाता है। देश में सुनिश्चित विचारधारा व कार्यक्रमों पर आधारित सीमित दलों के होने से लोकतन्त्र का विकास सही दिशा में हो पाता है। इससे श्रमिकों को भी अपनी पसन्द की राष्ट्रीय पार्टी चुनने में सुविधा रहती है।

भारत में मजदूर-संघों की भावी प्रगति के लिए आवश्यक सुझाव

समाजवादी अर्थव्यवस्था व औद्योगिक लोकतन्त्र की स्थापना एवं सामूहिक सौदाकारी के द्वारा श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिए एक स्वतन्त्र, शक्तिशाली व जिम्मेदार किस्म का श्रमिक-संघ आन्दोलन आवश्यक माना गया है। भारत में एक शक्तिशाली मजदूर-संघ आन्दोलन विकास के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं :

1. एक उद्योग-एक संघ (One industry-one union) का आदर्श अपनाना—एक औद्योगिक इकाई अथवा एक उद्योग में कई परस्पर-विरोधी संघ के होने से मजदूर-आन्दोलन कमजोर पड़ता है और सामूहिक सौदाकारी सफल नहीं हो सकती, क्योंकि यह तय नहीं हो पाता कि कौन-सा संघ मालिकों से किसी भी प्रश्न पर मजदूरों की तरफ से बातचीत करेगा व समझौता करेगा। हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि यथासम्भव प्रत्येक औद्योगिक इकाई अथवा उद्योग में एक ही शक्तिशाली श्रमिक-संघ हो। एक औद्योगिक उपक्रम या प्रतिष्ठान में विभिन्न राजनीतिक दलों के संघ होने से श्रमिकों के हितों को लाभ होने की बजाय हानि अधिक होती है। इसलिए एक औद्योगिक इकाई में एक संघ होने से श्रमिकों को अधिक लाभ होगा। लेकिन दलगत राजनीति समाप्त किये बिना व्यवहार में यह स्थिति लाना सम्भव नहीं प्रतीत होता।

सघ बनाना चाहे तो भी उनके प्रतिनिधियो की एक 'एसेम्बली' अवश्य बनायी जानी चाहिए जो मालिको से विभिन्न विषयो पर विचार-विमर्श कर सके। यह सुझाव सही लगता है, लेकिन इसकी व्यावहारिकता मे सदेह प्रकट किया गया है।

4. कार्यकर्त्ताओ व प्रशिक्षण—श्रमिक सघो के कार्य करने वालो के प्रशिक्षण के लिए विशेष कॉलेज या अन्य प्रशिक्षण-सस्थाओ की स्थापना की जानी चाहिए। इस तरफ सरकार को विशेष रूप से प्रयास करना चाहिए।

5. रचनात्मक कार्य—श्रमिक-सघो को अपना कार्यक्षेत्र केवल हडताल कराने तक ही सीमित नही रखना चाहिए बल्कि उन्हे श्रमिको की शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरजन और आवास आदि की व्यवस्था की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

6 सबल व शक्तिशाली श्रमिक सघ (Viable Unions)—छोटे-छोटे श्रमिक-सघो को मिलाकर बडे श्रमिक सघ स्थापित किये जाने चाहिएँ। श्रमिक-सघो की वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए सदस्यो से बराबर यथेष्ट चन्दा वसूल किया जाना चाहिए। उद्योगपतियो को भी श्रमिक-सघो के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलना चाहिए। सरकार और मिल मालिको द्वारा मान्यता मिलने से श्रमिक-सघो की प्रतिष्ठा और शक्ति बढती है। प्रतिनिधि श्रमिक-सघो को निर्धारित शर्ते पूरी करने पर मान्यता देना अनिवार्य होना चाहिए।

7 राष्ट्रीय विकास की नीतियो मे भाग लेना—मजदूर-सघो को विभिन्न आर्थिक व सामाजिक नीतियो एव कार्यक्रमो के निर्धारण मे भाग लेना चाहिए। एसा वे विभिन्न सगठनो मे भाग लेकर कर सकते है, जैसे भारतीय श्रम-सम्मेलन-उद्योगो के विकास परिषदो, औद्योगिक समितियो, उत्पादकता-परिषदो, श्रम-कल्याण बोर्डो, पोर्ट-ट्रस्टो व मजदूरी-बोर्डों आदि सस्थाओ मे भाग लिया जा सकता है।

भारत को इक्कीसवी शताब्दी मे प्रगतिशील रूप मे प्रवेश दिलाने के लिए मजदूर-सघो को नयी भूमिकाएँ अदा करनी होगी। मजदूर-सघ आधुनिकीकरण (modernisation) के सम्बन्ध मे सही दृष्टिकोण अपना कर अपने सदस्यो को शिक्षित कर सकते हैं। आधुनिकीकरण से लागत, माल की किस्म व अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति पर अनुकूल प्रभाव पडते हैं, लेकिन प्रारम्भ मे कुछ बेरोजगारी भी उत्पन्न हो सकती है। इसलिए मजदूरो के पुनर्प्रशिक्षण की व्यवस्था करके उन्हे रोजगार की नई दिशाओ मे भेजा जा सकता है। अत: इन सबके बारे मे पर्याप्त अध्ययन करवाये जाने चाहिएँ। मजदूर-सघो को श्रम की प्रबन्ध मे साझेदारी को साकार रूप देने मे मदद देनी चाहिए। इन्हे औद्योगिक सुरक्षा (safety) पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए ताकि भविष्य मे भोपाल गैस जैसी दुर्घनाएँ रोकी जा सकें।[1]

---

1. B. N Datar, Into the 21st Century : Task for Trade Unions, an article in the Economic Times, May 22, 1986.

8 अन्तर-संघीय व एक संघीय स्पर्धा व फूट को दूर करना चाहिए—संघों में आपसी फूट से श्रमिक आन्दोलन काफी कमजोर हो जाता है। अतः संघों की संख्या कम करके आन्दोलन को सुदृढ किया जाना चाहिए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, एक औद्योगिक इकाई के विभिन्न संघों के प्रतिनिधियों को शामिल करके संघों की एक एसेम्बली बनायी जानी चाहिए। विभिन्न इकाइयों के संघों की एसेम्बली के प्रतिनिधियों को मिलाकर राज्यीय स्तर पर एक उद्योगवार श्रमिक-संघ एसोसियेशन बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न संघों के बीच आपसी संघर्ष व टकराव का क्षेत्र काफी कम किया जा सकता है।

9 विकास-परिषदों को सक्रिय बनाना—लोकतन्त्र में मजदूर-संघों सहकारी संस्थाओं, ग्राम-पंचायतों एवं अन्य ऐच्छिक संगठनों का बड़ा महत्व होता है। मजदूर-संघ आन्दोलन को नयी दिशाओं में विकसित किया जाना चाहिए। उद्योगों की विकास-परिषदों को सक्रिय बनाना चाहिए।

जब उद्योग (विकास व नियमन) अधिनियम 1951 में बनाया गया था तब विकास-परिषदों के द्वारा श्रम व प्रबन्ध की तरफ से सर्वश्रेष्ठ नेतृत्व की आशा की गयी थी। इनके माध्यम से उत्पादकता बढ़ाने और प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलाये जाते थे। लेकिन हमारे देश में विकास परिषदों ने सफलतापूर्वक कार्य नहीं किया है। मजदूर-संघों को सामाजिक हित में उपर्युक्त संगठनों में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए।

10. सार्वजनिक उद्योगों में मजदूर संघों को उद्योग की निर्णय-प्रक्रिया में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए—वे इनके प्रबन्ध, नीति-निर्धारण व श्रम-कल्याण से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों में भाग ले सकते हैं और निजी उद्योगों के लिए अनुकरणीय व उत्तम उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

11 अन्य क्षेत्र जिनमें मजदूर-संघों को अधिकाधिक भाग लेना चाहिए, वह है श्रमिकों की योग्यता व प्रशिक्षण में सुधार करना और श्रम-कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों को पूर्णतया श्रमिकों का ही क्षेत्र बनाना। श्रमिकों की शिक्षा में व्यावसायिक, प्राविधिक व सामान्य तीनों प्रकार की शिक्षा का विकास किया जाना जरूरी है।

12 भारत में साधनों का अभाव दूर करने के लिए मजदूर-संघों को पर्याप्त साधन उपलब्ध करने के उपाय ढूंढे जाने चाहिए। यदि प्रमुख मजदूर-संगठन एक राष्ट्रीय श्रम-प्रतिष्ठान स्थापित करें तो रचनात्मक कार्यों के लिए योजनाओं में धन-राशि की व्यवस्था की जा सकती है। भारत में एक स्वतन्त्र, शक्तिशाली, जागरूक व जिम्मेदार मजदूर-संघ आन्दोलन के विकास की आवश्यकता है। इसमें राष्ट्रीय संगठनों को महत्वपूर्ण भाग लेना चाहिए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, देश में कई प्रकार के राजनीतिक दलों के बन जाने से श्रमिक-संघ आन्दोलन काफी अस्त-व्यस्त, दिशाहीन व अनिश्चित किस्म का हो गया है।

भारत मे आज भी एक सबल मजदूर-संघ-आन्दोलन की आवश्यकता बनी हुई है जो एक तरफ श्रमिको के हितो की रक्षा कर सके और साथ ही देश मे लोकतन्त्र की जडें भी मजबूत कर सके। देश मे एक ऐसा श्रमिक सघ आन्दोलन विकसित किया जाना चाहिए जो लोकतन्त्र के सच्चे प्रहरी का काम करे और इस पर आँच आते ही उसका डटकर मुकाबला कर सके। इस दिशा मे तेज गति से प्रगति करने के लिए सरकार, मिल-मालिको, श्रमिको तथा जनता के दृष्टिकोण मे आवश्यक परिवर्तन लाया जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है वे दिन अब बीत गये जब मजदूर-यूनियन हडताल करने का साधन-मात्र होते थे। अब इनके कधो पर नयी जिम्मेदारिया आ गयी है। इन्हे आधुनिकीकरण, श्रम की प्रबन्ध मे साझेदारी, रोजगार-सवर्धन नीतियो, औद्योगिक सुरक्षा व देश की तीव्र आर्थिक प्रगति के लिए अथक प्रयास करना होगा। तभी ये श्रमिको व देशवासियो को लाभ पहुँचा सकेंगे। इसलिए मजदूर-सघ के कार्यकर्ताओ को विभिन्न विषयो का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए एव इनका दृष्टिकोण रचनात्मक, व्यापक व प्रगतिशील होना चाहिए।

ट्रेड यूनियन व औद्योगिक विवाद (सशोधन) बिल, 1988 मे मजदूर सघो को सुदृढ करने के सम्बन्ध मे प्रमुख धाराएं—

यह एक चिंता का विषय है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के चार दशक बाद भी मजदूर-सघो के सगठन व प्रतिनिधित्व मे पर्याप्त सुधार नही आया है। 1988 के ट्रेड यूनियन व औद्योगिक विवाद (सशोधन) बिल मे इस विषय मे निम्न सुझाव दिये गये है—

(i) आवेदन के 60 दिनो मे श्रमिक सघ का रजिस्ट्रेशन किया जाना चाहिए।

(ii) श्रमिक सघो मे परस्पर विवादो का हल समझौते से अथवा श्रम-अदालतो के पचनिर्णय से होना चाहिए। सदस्यता का सत्यापन श्रम अदालतो को करना चाहिए। चेक-ऑफ व्यवस्था के अन्तर्गत सत्यापन के लिए गुप्त मतदान भी किया जा सकता है। चेक-ऑफ मे प्रत्येक श्रमिक प्रबन्धको को यूनियन की अपनी पसद बता देगा तथा उसका चन्दा मजदूरी मे से काट लिया जायगा। श्रम-अदालते सर्टिफाई करेंगी। इससे श्रमिक-सघ मजबूत होगे।

(iii) सामूहिक सौदाकारी एजेन्ट/परिषद—इनमे यूनियनो का प्रतिनिधित्व उनकी सदस्यता के आधार पर दिया जायगा। इसके लिए तीन वर्ष की अवधि होगी।

(iv) कोई सात सदस्य यूनियन बना सकते है। 100 श्रमिको से ऊपर की स्थिति मे एक यूनियन मे न्यूनतम सदस्यता की शर्त 10% होगी ताकि अनेक मजदूर सघ न बनें।

15

औद्योगिक विवाद

(Industrial Disputes)

प्रत्येक देश में वहाँ की सरकार औद्योगिक शान्ति बनाय रखने का प्रयास करती है जिससे एक तरफ मालिकों व मजदूरों के हितों की रक्षा हो सके और दूसरी तरफ समाज को औद्योगिक अशान्ति के कारण आर्थिक क्षति न पहुंचे। राज्य के हस्तक्षेप की मात्रा देश के आर्थिक विकास की अवस्था पर निर्भर करती है और हस्तक्षेप का ढंग देश की राजनीतिक प्रणाली और लोगों की सामाजिक व सांस्कृतिक परम्पराओं पर निर्भर किया करता है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए औद्योगिक शांति का विशेष रूप से महत्व है क्योंकि हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता उत्पादन बढ़ाने की है और लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अपनाने के कारण औद्योगिक विवाद निपटाने के लिए हमें समझौता व पंच-निर्णय आदि का ही विशेष रूप से सहारा लेना होता है।

भारत में सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से भी औद्योगिक शांति का रहना आवश्यक है। इस प्रकार निरन्तर उत्पादन-वृद्धि व देश की सुरक्षा के लिए औद्योगिक शान्ति का रहना आवश्यक माना गया है।

विवाद' (dispute) की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि इसमे किसी उत्पादन की इकाई में श्रमिकों का एक समूह अथवा सभी श्रमिक अल्पकाल के लिए काम रोक देते हैं अथवा मालिक अल्पकाल के लिए कारखाने के ताला लगा देते है। इस प्रकार हड़ताल' व तालाबंदी' दोनों ही 'विवाद' या 'झगड़ों' की परिभाषा में शामिल होते हैं। लेकिन राजनीतिक हड़ताल, सहानुभूतिपूर्ण प्रदर्शन या कच्चे माल के अभाव मशीन के टूट जाने व बिजली की सप्लाई के विफल हो जाने के फलस्वरूप काम रुक जाने से उत्पन्न स्थिति औद्योगिक विवाद मे शामिल नहीं मानी जाती।

औद्योगिक विवादों की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

द्वितीय महायुद्ध की अवधि मे औद्योगिक विवादों से काम के दिनों की विशेष क्षति नहीं हुई थी। इन वर्षों मे वस्तुओं के मूल्य बढ़े, लेकिन साथ में मजदूरी भी बढ़ी। अत मजदूरों का असन्तोष नहीं बढ़ पाया था। इन्हीं वर्षों मे भारत सुरक्षा कानून (Defence of India Rules) अथवा DIR की धारा 81-A का हड़तालों का दमन करने म प्रयोग किया जा सकता था। इसलिए मजदूर असन्तुष्ट होते पर

भी शात बैठे रहे। महायुद्ध के वर्षों में औद्योगिक सम्बन्ध ठीक बने रहे, लेकिन युद्ध समाप्त होते ही मजदूरो ने अपनी स्थिति सुधारने और मजदूरी बढवाने के लिए हडतालें चालू कर दी जिससे 1946 व 1947 में काफी श्रम-दिनो की हानि हुई। बाद में भी औद्योगिक विवादो से श्रम-दिनो की व उत्पादन की हानि होती रही।

जून 1975 में आपातकालीन स्थिति की घोषणा के बाद औद्योगिक विवादो की सख्या में उल्लेखनीय कमी हुई और सार्वजनिक उद्योगो में हडताल से होने वाली श्रम दिनो की हानि बहुत कम हो गयी थी। लेकिन इसी अवधि में मालिकों की तरफ से तालाबन्दी, जबरन छुट्टी या मजदूरों की छँटनी के कारण निजी क्षेत्र में श्रम दिनो की काफी क्षति हुई। 1977 व 1978 के वर्षों में औद्योगिक सम्बन्धो पर आपातकालीन स्थिति की समाप्ति का प्रभाव पडा और पहले के जबरन अनुशासन के समाप्त होने के बाद हडतालो, प्रदर्शनो, धमकियो व घेरावो का ताता-सा लग गया। शुरू में न्यूनतम बोनस व अनिवार्य जमा-राशि के प्रश्नो को लेकर औद्योगिक विवाद खडे किये गये। 1979 मे हडतालो व तालाबन्दियो से 439 लाख श्रम-दिनो की हानि हुई जो अपने आप मे एक रिकार्ड था।

पिछले वर्षों मे औद्योगिक विवादो तथा उनसे होने वाली क्षति निम्न तालिका मे दर्शायी गयी है।

वर्ष	विवादो की सख्या	शामिल श्रमिक (लाखो मे)	श्रम दिनों की हानि (लाखों में)
1982	2483	14·7	746
1983	2488	14·6	469
1984	2094	19·5	560
1985	1755	10·8	292
1986	1892	16·5	327
1987	1199	12·5	206

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1982 मे श्रम-दिनो की क्षति 746 लाख को पार कर गई। इसमे अधिकाश श्रम-दिनो की क्षति बम्बई कपडा उद्योग मे हडताल के कारण हुई जो काफी लम्बी अवधि तक चली थी। 1983 मे श्रम-दिनो की हानि पिछले वर्ष से तो कम रही लेकिन 1981 से अधिक थी। 1984 मे पुनः श्रम-दिनो की हानि बढी लेकिन बाद मे यह कम हुई। 1987 मे 206 लाख श्रम-दिनो की हानि का अनुमान पेश किया गया है। औद्योगिक विवादो से मजदूरी की हानि व उत्पादन की हानि होती है जिससे मजदूरो के अलावा समाज को भी क्षति पहुँचती है। औद्योगिक विवाद आज के औद्योगिक जगत को काफी हानि पहुँचा रहे हैं।

औद्योगिक विवादो के प्रमुख कारण :

पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे मालिको व मजदूरो के हितो मे परस्पर विरोध होने से वर्ग-सघर्ष का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मालिक अधिक मुनाफा चाहते है और मजदूर अधिक मजदूरी चाहते हैं। मालिको की मनोवृत्ति प्राय कम मजदूरी देकर अधिक मुनाफा कमाने की होती है। श्रम उत्पत्ति का एक साधन-मात्र माना जाता है। मालिको का मजदूरो के प्रति मानवीय दृष्टिकोण न होकर केवल आर्थिक दृष्टिकोण ही रहता है। इस परिस्थिति मे औद्योगिक विवादो व अशान्ति का पाया जाना स्वाभाविक है।

औद्योगिक विवादो के उपर्युक्त आधारभूत कारणो के अलावा अन्य कारण इस प्रकार हो सकते है, जैसे मजदूरी व बोनस के प्रश्न, काम के घण्टे, छुट्टियो की माग, उद्योग का आधुनिकीकरण, मजदूरो की छँटनी व मजदूरो को पुनः काम पर लगाये जाने की माग, आदि। कभी-कभी राजनीतिक कारणो से ही हडतालें हो जाती हैं। लेकिन औद्योगिक विवादो मे प्रमुख कारण मजदूरी से ही सम्बन्धित होते हैं। भूतकाल मे बोनस व कर्मचारियो के प्रश्नो को लेकर भी औद्योगिक विवाद होते रहे है।

औद्योगिक विवादों का कारणों के अनुसार विश्लेषण

भारत मे औद्योगिक विवाद कई कारणो से होते हैं, जैसे मजदूरी व भत्ते, बोनस, कार्मिक व छँटनी, छुट्टी व काम के घटे, अनुशासनहीनता व हिंसा आदि।

लगभग 1/3 विवाद मजदूरी, भत्ते व बोनस के प्रश्नो को लेकर होते है। दूसरा स्थान कर्मचारियो व छँटनी के प्रश्नो को लेकर होने वाले विवादो का आता है। लगभग 1/5 विवाद इसी कारण से उत्पन्न होते है। तीसरा स्थान अनुशासनहीनता व हिंसा के कारण होने वाले विवादो का पाया गया है।

1. Pocket Book of Labour Statistics 1988, pp. 146—47

1987 में मजदूरी व भत्तों के कारण लगभग 26% विवाद हुए, कार्मिक व छंटनी के कारण 16% हुये, अनुशासनहीनता व हिंसा के कारण 16% हुए तथा शेष 42% बोनस, छुट्टी व कार्य के घण्टों तथा अन्य कारणों से हुए। अन्य वर्षों में भी प्रायः इसी प्रकार के कारणों से औद्योगिक विवाद होते रहे हैं।[1]

1987 में औद्योगिक विवादों से सबसे ज्यादा श्रम-दिनों की हानि पश्चिमी बंगाल को हुई (84 लाख श्रम-दिवस) एवं दूसरा स्थान तमिलनाडु का था (23·7 लाख श्रम-दिवस)।

जितने भी औद्योगिक विवाद होते हैं, उनमें कुछ सफल होते हैं, कुछ आंशिक रूप से सफल होते हैं एवं कुछ असफल होते हैं। जो भी हो, औद्योगिक विवादों से उत्पादन को भारी क्षति होती है और इसे यथासम्भव रोका जाना चाहिए। औद्योगिक सम्बन्धों में निरन्तर सुधार की प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए।

औद्योगिक विवादों में मालिकों व मजदूरों की भूमिका

भारत में मिल-मालिक हड़तालों के लिए भड़काने वाले लोगों को उत्तरदायी ठहराते हैं। लेकिन यह पूर्णतया सही नहीं है। यदि मजदूर संघ में कोई मजदूर विशेष दिलचस्पी दिखाता है तो उसे मालिक काम से अलग कर देते हैं। परिणामस्वरूप वह 'बाहरी व्यक्ति' (Outsider) बन जाता है। अतः मालिकों का असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार व उनकी दमन नीति भी मजदूरों में असन्तोष के लिए जिम्मेदार होती है। इस प्रकार औद्योगिक अशान्ति के अनेक कारण हो सकते हैं। समस्त औद्योगिक वातावरण को ही कुछ सीमा तक इसके लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। औद्योगिक विवाद केन्द्रीय व राज्यीय क्षेत्र एवं सार्वजनिक व निजी क्षेत्र सभी में पाये जाते हैं। इस प्रकार यह समस्या विभिन्न स्तरों पर पायी जाती है।

जनता शासनकाल में हिंसा, सम्पत्ति को नष्ट करने, मोटरगाड़ियों को जला डालने, टेलीफोन के तार काटने तथा विरोधियों की हत्या कर डालने की घटनाएँ श्रम अशान्ति का एक अनिवार्य अंग बन गई थी, जो एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मजदूर नेताओं में एक ऐसा नया वर्ग उत्पन्न हो गया है जो अल्पकाल के नोटिस पर एवं मामूली प्रश्नों पर विशाल प्रदर्शन करने/कराने की कला में काफी दक्ष व निपुण हो गया है। यदि औद्योगिक उत्पादन को नियमित रूप से आगे बढ़ाना है तो केन्द्र व राज्य सरकारों को चाहिए कि कानून व व्यवस्था की

---

1. Ibid pp 162-163

स्थिति पर शीघ्र नियन्त्रण स्थापित करें तथा श्रम-सम्बन्धी अनुशासनहीनता को समाप्त करें। इनके लिए औद्योगिक सम्बन्धो के कानून मे उचित सशोधन किया जाना चाहिए जो बदलती हुई परिस्थितियो के अनुकूल हो और जो श्रमिको की उचित मागो को समझ सके तथा अनुचित व अवाछित मागो पर कठोरतापूर्वक नियन्त्रण रख सके।

इस सम्बन्ध मे मालिक, मजदूर, राजनीतिज्ञ, सरकारी अधिकारियो तथा आम जनता—सभी के दृष्टिकोण मे उचित परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। हिंसा के मार्ग का अवश्य परित्याग किया जाना चाहिए अन्यथा देश गम्भीर सकट मे पड जायगा। जनता सरकार ने औद्योगिक सम्बन्धो पर एक विधेयक (Bill) तैयार किया था, लेकिन मजदूर सघो ने उसका तीव्र विरोध किया। बाद मे केन्द्र मे काग्रेस (आई) की सरकार बनने पर यह कहा गया कि सरकार औद्योगिक सम्बन्धो पर कोई व्यापक विधेयक नही लाना चाहती बल्कि औद्योगिक विवाद अधिनियम (IDA) मे ही कुछ सशोधन करना चाहती है ताकि औद्योगिक सम्बन्धो म निकट भविष्य मे सुधार हो सकें।

औद्योगिक विवादो को रोकने व निबटाने की पद्धति :

ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट, 1929 (Trade Disputes Act, 1929) औद्योगिक विवादो का निपटारा करने के लिए 1929 मे निर्मित इस कानून के द्वारा सार्वजनिक सेवा सम्बन्धी कार्यो एव अन्य उद्योगो मे भेद किया गया था। सार्वजनिक लाभ के कार्यों, जैसे रेल, डाक-तार, बिजली व पानी आदि मे हडताल से पूर्व 14 दिन की अग्रिम सूचना देना अनिवार्य किया गया था। अन्य उद्योगो के लिए विवादो को निबटाने हेतु एक निश्चित मशीनरी घोषित की गई। अस्थायी जाँच-अदालतो (Adhoc Courts of Enquiry) व समझौता-बोर्डो (Boards of Conciliation) को स्थापित करने की व्यवस्था की गई। जाँच अदालत मे एक या अधिक स्वतन्त्र व्यक्ति होते थे जो अपनी रिपोर्ट पेश करते थे। समझौता-बोर्ड का काम दोनो पक्षो को एक-दूसरे के समीप लाना और परस्पर समझौता कराना होता था और इसमे असफलता मिलने पर सरकार को सूचना देनी पडती थी।

ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट, 1929 ने अनिवार्य-पच-निर्णय (Compulsory arbitration) की व्यवस्था नही की थी। इसके अन्तर्गत विरोधी दलों मे समझौता करने की ही कोशिश की जाती थी। इस अधिनियम के अनुसार उन हडतालो व तालाबन्दियो को गैर-कानूनी घोषित किया गया जिनका उद्देश्य औद्योगिक विवादो के अलावा कुछ और होता था, अथवा जो समाज के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हो सकती थी।

इस अधिनियम से विशेष लाभ नहीं हो सका, क्योंकि व्यवहार में जाच पर ज्यादा जोर दिया गया और समझौता-बोर्ड कम स्थापित किये गय। इनमें स्थायी औद्योगिक अदालत के लिए भी व्यवस्था नहीं की गई थी।

बम्बई राज्य औद्योगिक विवादो को निबटान के कानूनों की दृष्टि से सभी राज्यो से आग रहा है। इस राज्य में इस सम्बन्ध में कई बार कानून बनाये गये। मालिको द्वारा श्रम-सघो को मान्यता देने की व्यवस्था की गई। शुरू में समझौतो पर जोर दिया गया और बाद मे 1946 के विधान मे अनिवार्य-पच-निर्णय की व्यवस्था की गई। बम्बई के कानून ने एक वृहद अखिल भारतीय कानून के लिए म र्ग साल दिया था।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (Industrial Disputes Act, 1947)—यह फरवरी, 1947 मे पास किया गया था। इसमे निम्न सस्थाओ की व्यवस्था की गई थी :

(अ) कार्य-समितियाँ (Works Committees)—प्रत्यक कारखाने मे जहाँ 100 से अधिक व्यक्ति काम करते हैं, वहा एक कार्य-समिति बनाई जाती है जो मालिकों व मजदूरों के दैनिक मतभेदों को दूर करने मे मदद देती है।

(आ) समझौता अधिकारी (Conciliation Officers) नियुक्त किये जात हैं जो मालिको व मजदूरो के बीच समझौता कराने का प्रयास करते हैं।

(इ) समझौता-बोर्ड व जाँच-अदालतें (Conciliation Boards and Courts of Enquiry) स्थापित की जाती हैं।

(ई) स्थायी औद्योगिक न्यायालय (Permanent Industrial Tribunals) इनम उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होत हैं। यदि समझौता अधिकारियो व बोर्डों के प्रयत्न विफल हो जाते हैं तो मामला औद्योगिक न्यायालय को सौप दिया जाता है। सरकार इस न्यायालय का निर्णय पूर्णतया अथवा कुछ अशों म लागू कर सकन का अधिकार रखती है। इस प्रकार इस अधिनियम मे अनिवार्य पच-निर्णय की व्यवस्था की गयी है।

1947 क अधिनियम मे अनिवार्य पच-निर्णय को अपनाकर सरकार न उचित कदम नहीं उठाया, क्योंकि इससे मजदूरो का हड़ताल करन का अधिकार छीन लिया गया। औद्योगिक शान्ति स्थापित करन के लिए ऐच्छिक समझौतो पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिये तथा मजदूरो की दशा सुधारी जानी चाहिय।

औद्योगिक विवाद (श्रम-अपील-अदालत) अधिनियम, 1950 (Industrial Disputes (Labour Appellate Courts Act, 1950)—इसके अन्तर्गत 'अपील

प्रदालत' की स्थापना की व्यवस्था की गई जो औद्योगिक न्यायालयो व मजदूरी-बोर्डों के फैसलो पर अपीलें सुनती है। अपील-अदालत की स्थापना आवश्यक हो गई क्योंकि औद्योगिक न्यायालय विभिन्न राज्यो में विरोधी निर्णय देने लगे थे। 'अपील-अदालतें' मजदूरी बोनस ग्रेच्यूटी भुगतान व छँटनी आदि के मामलो पर अपीलें सुनने के लिए बनाई गई थी।

1952 व 1953 मे भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व श्री वी वी गिरी ने अपील-अदालत' की स्थापना का विरोध किया था। उन्होने ऐच्छिक समझौता व ऐच्छिक पच-निर्णय' पर काफी बल दिया था। अनिवार्य पच-निर्णय का प्रयोग सार्वजनिक उपयोगिताओ (public utilities) के उद्योगो तक सीमित रखने का सुझाव दिया गया था। श्री गिरी ने सामूहिक सौदाकारी (collective bargaining) की नीति पर जोर दिया ताकि मालिको के सगठन मजदूरो के सगठनो से विचार-विमर्श करके विभिन्न प्रश्नो का हल निकाल सकें।

औद्योगिक विवाद अधिनियम (Industrial Disputes Act 1956)—1950 मे ससद मे एक श्रम-सम्बन्धी विधेयक (Labour Relation Bill) पेश किया गया था लेकिन वह पास नही हो सका। इसलिए इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूटस (एमेण्डमेण्ट व मिसलेनियस प्रोविजन्स) एक्ट 1956 मे पास किया गया। यह अधिनियम भी 'गिरी-दृष्टिकोण' के अनुसार नही था। इसकी मुख्य बाते इस प्रकार है (1) 500 रुपये प्रति माह पाने वाले व्यक्ति 'मजदूर' कहे गये। तकनीकी कर्मचारी व प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी भी इस परिभाषा के अनुसार मजदूर कहलाये। (2) 'श्रम अपील अदालत' समाप्त कर दी गयी। (3) अधिनियम के अन्तर्गत निम्न प्रकार की अदालतें व न्यायालय स्थापित किये गये—

(अ) श्रम अदालतें (Labour Courts)—ये छोटे मामलो जैसे मजदूरो को हटाने से सम्बन्धित विवादो हडताल की वैधानिकता, आदि मामलो पर फैसला देती है।

(आ) औद्योगिक न्यायलय (Industrial Tribunals)—इनके अन्तगत मजदूरी काम के घण्टे बोनस छटनी व अभिनवीकरण आदि के प्रश्न आते है।

(इ) राष्ट्रीय न्यायालय (National Tribunals)–ये राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नो पर विचार करती है। इसके अलावा ये उन औद्योगिक उपक्रमो के मामलो पर विचार करती है जो एक से अधिक राज्यो मे स्थित होते है।

इस प्रकार इन तीन सस्थाओ की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम के अनुसार मिल-मालिक मजदूर को विवाद से असम्बद्ध किसी भी गलत आचरण को करने से रोक सकता है। सरकार को औद्योगिक फैसले मे परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया है।

सरकार ने 5 फरवरी, 1976 को औद्योगिक अधिनियम में संशोधन बिल पास किया था जिसके परिणामस्वरूप 300 या अधिक श्रमिकों को काम पर रखने वाले औद्योगिक प्रतिष्ठानों को जबरन छुट्टी (lay-off), छँटनी अथवा कारखाना बन्द करने से पूर्व सरकार से स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक कर दिया गया। यह कहा गया कि सरकार की तरफ से दो महीनों में उत्तर नहीं आने पर 'जबरन छुट्टी' की इजाजत मानी जायेगी। यह कदम उत्पादकों द्वारा स्वेच्छा से अपनी औद्योगिक इकाइयों से मजदूरों को हटाने पर रोक लगाने के लिए उठाया गया था।

औद्योगिक विवाद अधिनियम में 1982 व 1984 में संशोधन किये गये हैं। अब यह 1600 रु. मासिक तक मजदूरी पाने वाले श्रमिकों पर लागू कर दिया गया है तथा 100 या अधिक श्रमिकों वाले प्रतिष्ठानों पर लागू हो गया है, (पहले 300 या अधिक श्रमिकों वाली इकाइयों पर लागू था)। 1984 में इसमें 34 वाँ संशोधन किया गया था।

अनुशासन संहिता
(Code of Discipline)

औद्योगिक विवादों के उत्पन्न होने पर उनको सुलझाना व निपटाना जितना आवश्यक है, उनसे ज्यादा आवश्यक ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है जिसमें औद्योगिक शांति बनी रहे और औद्योगिक सम्बन्धों में स्थायी रूप से सुधार हो सके। इस सम्बन्ध में निम्न प्रयत्न सराहनीय माने जा सकते हैं—

तीस वर्ष पूर्व भारतीय श्रम-सम्मेलन के मई, 1985 के सोलहवें सम्मेलन में औद्योगिक अनुशासन-संहिता की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था। इसके स्वीकार करने से औद्योगिक सम्बन्धों में थोड़ा सुधार हुआ। इसकी मुख्य बातें निम्नांकित थीं—

(1) मालिक व मजदूर एक-दूसरे के अधिकार व कर्त्तव्यों को पहचानेंगे; (2) किसी भी औद्योगिक मामले में एकपक्षीय या ऐच्छिक कार्यवाही नहीं की जायेगी; (3) नोटिस के बिना हड़ताल या तालाबन्दी नहीं हो सकेगी; (4) मजदूर-संघ के कार्य में मालिकों की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा। किसी भी प्रकार की हिंसा, प्रदर्शन, धमकी दबाव, भेदभाव व भड़काने का कार्य नहीं किया जायेगा। मजदूर सम्पत्ति को क्षति नहीं पहुँचायेंगे। वे काम में 'धीमी-गति की नीति' (go-slow policy) नहीं अपनायेंगे, (5) विवादों को निपटाने के लिए प्रचलित पद्धति व व्यवस्था का ही उपयोग किया जायगा तथा ऐच्छिक समझौते से मामले तय किए जायेंगे, (6) पंच फैसले पर तुरन्त अमल किया जायगा।

स्मरण रहे कि उपर्युक्त अनुशासन-संहिता कोई कानूनी पत्र नहीं था, वह एक ऐच्छिक व नैतिक आचरण का ही कोड था।

1958 मे एक आचार-संहिता (a code of conduct) भी तैयार की गयी जिसके अन्तर्गत विभिन्न मजदूर संघों के परस्पर सम्बन्धो मे सुधार करने का प्रयास किया गया। उस समय भारत मे चार केन्द्रीय श्रम-संगठन थे। उनके लिये आचार-संहिता के निम्न सिद्धान्त अपनाये गये—किसी भी उद्योग मे काम करने वाला मजदूर अपनी पसन्द के किसी भी संघ मे शामिल हो सकेगा, मजदूर-संघो में नियमित रूप से पदाधिकारियो के चुनाव होगे मजदूर संघ जातिवाद सम्प्रदायवाद, आदि संकीर्ण दृष्टिकोणो से दूर रहेगे। वे आपस मे हिंसा व धमकी आदि का उपयोग नही करेंगे एवं कम्पनी द्वारा स्थापित किये जाने वाले मजदूर-संघो का विरोध करेंगे।

औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution)

अक्टूबर 1962 मे चीन के हमले के बाद भारत मे सर्वत्र देश के हितो के लिए प्रत्येक स्तर पर त्याग करने की एक लहर-सी दौड़ गई थी। नवम्बर 1962 मे श्री गुलजारीलाल नन्दा की अध्यक्षता म केन्द्रीय श्रम-संगठनों व मालिकों के संगठनो की एक सभा बुलायी गयी जिसने देश की सुरक्षा के लिए अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को स्वीकार किया और उसमे एक औद्योगिक शांति-प्रस्ताव भी पास किया गया। उक्त प्रस्ताव के पांच भाग थे—प्रथम भाग मे अधिकतम उत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण बनाये रखने पर जोर दिया गया। द्वितीय भाग मे औद्योगिक शांति स्थापित करने की बात कही गई। तृतीय भाग मे उत्पादन बढाने के लिए अतिरिक्त पाली (shift) मे काम करने एवं अनुपस्थिति आदि कम करने का महत्व स्वीकार किया गया। चतुर्थ भाग मे मूल्य-स्थिरता की आवश्यकता पर बल दिया गया और पाँचवें भाग मे बचत बढाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। इस प्रस्ताव के स्वीकार करने से 1963 मे श्रम-दिनो की हानि बहुत कम हुई थी।

जनता सरकार की औद्योगिक सम्बन्धो के लिए नीति

जनता सरकार (1977–79) ने भी औद्योगिक शांति को देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक माना था। वह लोकतांत्रिक पद्धति के अन्तर्गत स्वतन्त्र व सुदृढ श्रमिक संघ आन्दोलन को विकसित करना चाहती थी। मई, 1977 मे केन्द्रीय श्रम-मन्त्री ने एक त्रिदलीय श्रम-सम्मेलन बुलवाया जो पिछले छ वर्षों मे स्थगित पडा था। इसमे विभिन्न श्रम-समस्याओ पर विचार किया गया। इस प्रकार त्रिदलीय श्रम-सम्मेलन को पुन चालू किया गया।

सरकार ने औद्योगिक सम्बन्धो पर एक व्यापक कानून बनाने का भी निर्णय किया था और इस पर सुझाव देने के लिए एक समिति की नियुक्ति की थी। सामूहिक सौदाकारी के लिए मजदूर-संघो को मान्यता देने तथा उनके पंजीकरण के प्रश्न पर विचार किया गया। सरकार ने 18 अगस्त, 1977 को 8 33 प्रतिशत न्यूनतम बोनस के निर्णय की घोषणा की और इसकी अधिकतम सीमा 20 प्रतिशत रखी गई।

ट्रेड यूनियन व औद्योगिक विवाद (संशोधन, बिल) 1988:—

इसके अन्तर्गत औद्योगिक विवादों के सम्बन्ध में निम्न प्रावधान रखे गये हैं:-

(i) केन्द्र व राज्यों में औद्योगिक सम्बन्ध आयोग (Industrial Relations Commissions) (IRCs) स्थापित किये जायेंगे जो श्रम-अदालतों के अन्तिम आदेशों पर अपीलें सुनेंगे।

(ii) औद्योगिक विवाद अधिनियम की अवहेलना करने पर बड़ी सजा दी जायगी। ले-आफ, छँटनी, लॉक-आउट, (तालाबन्दी) व बंद (closure) के गैर-कानूनी होने पर बड़ी सजा का प्रावधान किया गया है। लॉक-आउट का नोटिस 14 दिन का पब्लिक यूटिलिटी' (जल-सप्लाई विद्युत, आदि) की इकाइयों में देना होगा। लेकिन हिंसा व क्षति का भय होने पर नोटिस की आवश्यकता नहीं होगी। भविष्य में तालाबन्दी घोषित करना सुगम नहीं होगा।

(iii) सामूहिक सौदाकारी एजेण्ट श्रम-अदालत में हड़ताल/तालाबन्दी की की वैधता के बारे में पता कर सकता है जिसका उत्तर 15 दिन में देना होगा। श्रमिक अपनी छँटनी वगैरह के मामले सीधे श्रम-अदालत में ले जा सकेगा, या वह मामला समझौता-मशीनरी से उठा सकता है। समझौता 6 महीने तक लागू माना जाता है। (वर्तमान विधान में), अब इसे 3 वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा। एवार्ड भी 3 वर्ष तक लागू की जा सकती है (एक-एक वर्ष तक बढ़ाकर) (एक से तीन वर्ष तक)

आशा है इस संशोधन बिल के पास होने से औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने में मदद मिलेगी।

भारत में औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने के लिए आवश्यक सुझाव

1. श्रमिकों की प्रबन्ध व पूँजी में साझेदारी—भारत में मजदूरों की ओर से प्रबन्ध में भाग लेने के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। कुछ प्रतिष्ठानों में संयुक्त प्रबन्ध परिषदें (joint management councils) काम कर रही हैं। अभी तक इनके कार्यों में समानता नहीं आ पाई है। इन परिषदों को अधिक सक्रिय व सफल बनाया जाना चाहिए। यदि मालिक व मजदूर दोनों संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के महत्व को समझें तो प्रबन्ध में श्रमिकों की साझेदारी के विचार को अधिक क्रियात्मक व व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है।

स्थायी औद्योगिक शांति के लिए श्रमिकों को उद्योग की शेयर-पूँजी में भी हिस्सा दिया जा सकता है, जैसा कि फ्रांस, जर्मनी, स्विट्ज़रलैण्ड आदि योरोपीय देशों में किया गया है। इनसे निजी क्षेत्र में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने में भी मदद मिलेगी। 10 जुलाई, 1985 को भारत सरकार ने यह घोषणा की है कि निजी निगमित क्षेत्र को चाहिए कि वह नए पूँजी-निर्गम में शेयरों का कम से कम 5% अंश अपने श्रमिकों व स्टाफ को प्रदान करें। साथ में वेतन-बचत से जुड़ी

परिवर्तनीय ऋणपत्र-योजना भी लागू की जायगी जिससे कम्पनी के कर्मचारियों को लाभ होगा। अक्टूबर, 1987 में कोल इण्डिया लि (CIL) तथा इसकी सहायक इकाइयों में श्रमिक सचालक नियुक्त करके प्रबन्ध में कर्मचारी-सहभागिता की स्कीम लागू की गयी है।

सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन—सामूहिक विचार-विमर्श व समझौते की नीति को अपनाने से औद्योगिक सम्बन्धों मे सुधार होगा। इसके लिए श्रमिकों की एक प्रतिनिधि सौदाकारी एजेन्सी निश्चित करनी होगी। जहाँ मजदूरों के कई सघ पाये जाते हैं वहाँ भी इस प्रकार की एजेन्सी अवश्य होनी चाहिए। यथा-सम्भव "एक औद्योगिक इकाई या प्रतिष्ठान मे एक सघ" की नीति अपनायी जानी चाहिए। लेकिन इसके मार्ग मे आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयो को दूर करना होगा। यदि एक औद्योगिक प्रतिष्ठान/उपक्रम मे एक से अधिक श्रमिक सघ हो तो मालिको से सामूहिक सौदाकारी करने के लिए विभिन्न सघो के प्रतिनिधियों की एक एसेम्बली/सभा बनाई जा सकती है जो श्रमिको के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य करती है। आज भारत मे एक सबल व स्वस्थ मजदूर-सघ आन्दोलन की आवश्यकता है। न्यूनतम मजदूरी कानून, सामाजिक सुरक्षा एव श्रम-कल्याण कार्यों के विस्तार से मजदूर-वर्ग को अधिक सन्तोष प्राप्त होगा और वह उत्पादन बढाने मे अधिक सहयोग दे सकेगा।

3 मालिको व मजदूरो के दृष्टिकोणो मे परिवर्तन—उद्योगपतियो व श्रमिको के सम्बन्धो का प्रश्न अत्यन्त जटिल व गहरा रहा है। साम्यवादी दृष्टिकोण से देखने पर यह एक राजनीतिक व्यवस्था के चुनाव का प्रश्न बन जाता है। इसलिए वे वर्ग-सघर्ष को बढाकर इसे समाजवाद की स्थापना तक ले जाना चाहते हैं। हमने भारत मे मिश्रित-अर्थव्यवस्था' स्वीकार की है जिसमे निजी उद्यम को औद्योगिक क्षेत्र मे उचित स्थान दिया गया है। अत उद्योगपतियो को काम करने का समुचित अवसर व वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए। साथ मे उन्हे भी बदली हुई परिस्थितियो के अनुसार अपने दृष्टिकोण मे सुधार करना चाहिए और उत्पादन-प्रणाली मे 'श्रम' को उचित स्थान व आदर देना चाहिए। श्रम को प्रबन्ध व लाभ मे भाग देने से औद्योगिक जगत का वातावरण बदल सकता है। सार्वजनिक उद्योगो को इस सम्बन्ध मे 'आदर्श' उपस्थित करने चाहिए जो निजी क्षेत्र मे आगे चलकर अपनाये जा सके। श्रमिको तथा उसके नेताओ को अपने 'हडताली दृष्टिकोण' व 'राजनीतिक व्यवहार' का बदलना होगा और उत्पादन व उत्पादकता बढाने का प्रयास करना होगा।

4 ऐच्छिक समझौते व पच निर्णय की आवश्यकता—लोकतान्त्रिक पद्धति को अपनाने के कारण भारत को समझौते व ऐच्छिक पच-निर्णय एव आपसी विचार-विमर्श की नीति का पालन करके ही औद्योगिक शांति की दिशा मे प्रयास करने होगे,

लेकिन समय-समय पर अनिवार्य पंच-निर्णय भी आवश्यक हो सकता है। अतः हमें परिस्थिति के अनुसार औद्योगिक विवाद को निपटाने की पद्धति का चुनाव करना चाहिए।

5 मजदूरी, बोनस उत्पादकता व औद्योगिक शान्ति के प्रश्न परस्पर एक-दूसरे से काफी जुड़े हुए हैं। अतः इन पर व्यापक व समन्वीकृत नीति की शीघ्र आवश्यकता है।

भारत में औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार करने के लिए उत्पादकता से जुड़ी बोनस (productivity-linked bonus) रेलवे कर्मचारियों, डाक, व तार विभाग के कर्मचारियों सुरक्षा, प्रतिष्ठानों आदि में लागू की गई है। सरकार हिंसा, धीमी गति से काम गैर कानूनी हड़ताल, गैर-कानूनी तालाबन्दी, आदि को रोकने का प्रयास करती है, क्योंकि इनसे उत्पादन की हानि होती है।

औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने के लिए अन्य सुझाव

1 मालिकों व मजदूरों के सम्बन्धों का मामला द्विपक्षीय (bipartite) मामला होता है। इनमें आपस के हितों का विरोध होता है तथा परस्पर वर्ग संघर्ष तथा शक्ति-संघर्ष पाया जाता है। सामूहिक सौदाकारी ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विरोधी हितों में आवश्यक समायोजन करके किसी आम सहमति के बिन्दु तक पहुंचा जाता है। अतः सच्ची सामूहिक सौदाकारी को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। इसके लिए सुदृढ़ व जिम्मेदार किस्म के श्रमिक-संघों का होना बहुत जरूरी है।

2 श्रमिकों के लिये सुरक्षात्मक विधान होना चाहिए जैसे—न्यूनतम मजदूरी, कार्य के निश्चित घण्टे, वेतन सहित छुट्टियाँ, काम की न्यूनतम आयु, आदि के सम्बन्ध में कानून होना चाहिए।

3 श्रमिक-संघ श्रमिकों की समस्याओं व आशाओं के प्रति पूर्णतया सजग होने चाहिएँ। सरकार का योगदान विवादों को सुलझाने में न्यूनतम रखा जाना चाहिए एक औद्योगिक सम्बन्ध आयोग (Industrial Relations Commission) स्थापित किया जाना चाहिये जो एक स्वायत्त संस्था हो तथा औद्योगिक सम्बन्धों के विभिन्न विषयों की जाँच पड़ताल करे, ताकि नौकरशाही का प्रभाव कम किया जा सके।

4 श्रमिक-संघों के पंजीकरण में बाधा नहीं डाली जानी चाहिये। साथ में अनावश्यक श्रमिक संघों को बढ़ावा नहीं मिलना चाहिए। वार्ता एजेण्ट या सौदाकारी एजेण्ट बनने के लिये संघ का चुनाव गुप्त मतदान विधि से किया जाना चाहिए।

5 हड़ताल पर प्रतिबन्ध लगा देने से सामूहिक सौदाकारी का असर पड़ता है। लेकिन विदेशी आक्रमण व अन्य असाधारण दशाओं में इन पर अवश्य रोक

लगानी चाहिये। हिंसा व धमकी के स्थान पर सच्ची व संवैधानिक ढंग की सामूहिक सौदाकारी ही औद्योगिक सम्बन्धों को स्थायी रूप से सुधार सकती है।

श्रमिक-संघों के नेताओं की एक शीर्ष संस्था (apex body) बनायी जानी चाहिये जो श्रमिक-संघों के लिये एक आचार-संहिता (Code of Conduct) तैयार करे। इससे औद्योगिक क्षेत्र में हिंसा व अनुशासनहीनता को रोकने में मदद मिलेगी। केन्द्रीय सरकार को चाहिये कि वह आवश्यक उद्योगों व सेवाओं की एक सूची तैयार करे जिनमें हड़तालें न होने दी जायें। इन उद्योगों में वास्तविक शिकायत के मामले में ऐच्छिक समझौते अथवा पंच-निर्णय की व्यवस्था का उपयोग किया जाना चाहिये।

भारत सरकार द्वारा औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने की दिशा में किये गये कुछ प्रयास —

1 बोनस भुगतान अधिनियम 1965 में संशोधन करके इसके लिए वेतन की सीमा 1600 रु प्रति माह से बढ़ाकर 2500 रु प्रति माह कर दी गई है ताकि इस व्यवस्था का अधिक कर्मचारी लाभ उठा सकें।

2 अखबारों के कर्मचारियों को मजदूरी में अन्तरिम राहत बेसिक मजदूरी का 15% तथा न्यूनतम राशि 90 रु प्रति माह के हिसाब से मंजूर की गई है। चीनी उद्योग के श्रमिकों को भी अन्तरिम राहत दी गयी है।

3 सरकार का विचार एक औद्योगिक-सम्बन्ध-आयोग स्थापित करने का भी हो गया है।

4 विभिन्न उद्योगों के लिए त्रिदलीय औद्योगिक समितियाँ स्थापित की गई हैं जिनमें निम्न उद्योग मुख्य हैं रसायन इंजीनियरी सूती वस्त्र जूट बागान, सड़क-परिवहन सीमेंट भवन-निर्माण कोयला उद्योग आदि। इससे त्रिदलीय सलाहकार मशीनरी को सुदृढ़ करने में मदद मिली है।

इन समितियों की बैठकों में औद्योगिक सम्बन्धों श्रमिकों की सुरक्षा व्यावसायिक स्वास्थ्य श्रमिकों की प्रबन्ध में साझेदारी व सामाजिक सुरक्षा-स्कीमों आदि के बारे में चर्चा की जाती है जिससे निर्णय लेने में आसानी होती है। आशा है भविष्य में औद्योगिक सम्बन्धों में और सुधार आयेगा।

1982 में सरकार ने एक शिकायत-निवारण-प्राधिकरण' (Grievance Settlement Authority) (GSA) की स्थापना की है जिसका उपयोग विवादों को अदालत में ले जाने से पूर्व किया जा सकता है।

अब अनुचित श्रम-व्यवहार क्रियाओं (Unfair Labour Practices) के लिए छः महीने तक की कैद या 100 रु जुर्माना या दोनों की सजा का प्रावधान है तथा रजिस्ट्रार गैर-कानूनी हड़ताल में भाग लेने वाले मजदूर-संघ का रजिस्ट्रेशन निरस्त (cancel) कर सकता है।

हाल में भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि. तथा मारुति लि. का अनुभव है कि मालिकों, व मजदूरों के सम्बन्धों को सुधारने में वर्क्स- समितियों' व 'संयुक्त प्रबन्ध परिषदें' महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। मारुति उद्योग में 'मारुति परिवार' किस्म की संस्कृति विकसित करने का प्रयास किया है, जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों के बीच अन्तर कम किया गया है। कॉमन वस्त्र, कॉमन कैन्टीन, आदि के द्वारा कर्मचारियों में भेदभाव कम किया गया है। उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किये गये हैं। श्रमिकों के लिए दवा, छुट्टियों, आवास आदि की सुविधा बढ़ायी गयी है। इससे काम का नया वातावरण, नए विचार, नया जोश, आदि उत्पन्न हो सके हैं। भविष्य में नई औद्योगिक संस्कृति के विकास की दिशा में प्रयत्न जारी रखने हैं।

प्रश्न

1. भारत में औद्योगिक विवादों के प्रमुख कारण क्या हैं? इन विवादों को सुलझाने के लिये देश में उपलब्ध तन्त्र का परीक्षण कीजिये।

(Raj. Hyr. T. D. C. 1982)

16

श्रम-कल्याण-कार्य तथा सामाजिक सुरक्षा

(Labour Welfare and Social Security)

श्रम-कल्याण-कार्य

आजकल औद्योगिक क्षेत्रों मे मजदूरों के कल्याण सम्बन्धी कार्यों पर काफी बल दिया जाने लगा है ताकि श्रमिक-वर्ग सन्तुष्ट रहे तथा मन लगाकर काम कर सकें।

विभिन्न देशो मे 'श्रम-कल्याण' के अलग-अलग अर्थ लगाये गये हैं। सबसे विस्तृत अर्थ मे श्रम-कल्याण मे श्रम की समस्त परिस्थितियाँ आ जाती हैं और इसमे श्रम-विधान व सामाजिक बीमा भी शामिल माने जाते हैं। परिभाषा के अनुसार "श्रम-कल्याण-कार्य मे, मालिको के वे ऐच्छिक प्रयत्न शामिल होते हैं जो वे प्रचलित औद्योगिक प्रणाली मे कानूनो, उद्योगो के रिवाजो व बाजार की परिस्थितियो के अतिरिक्त अपने मजदूरो या कर्मचारियो के काम करने, रहने व सास्कृतिक दशाओ को प्रभावित करने के लिये करते हैं।" इस परिभाषा मे श्रम-कल्याण मे मालिको के 'ऐच्छिक प्रयत्न' ही शामिल किये गये हैं। अत. भारत जैसे देश मे श्रम-कल्याण की यह परिभाषा सही नही मानी जा सकती. क्योकि यहाँ इस सम्बन्ध मे वैधानिक व्यवस्था भी की गयी है। रॉयल श्रम आयोग के अनुसार, 'कल्याण' शब्द की परिभाषा लोचदार होनी चाहिए जिससे विभिन्न देशो मे वहाँ के सामाजिक रिवाजो, औद्योगीकरण की दशाओ व मजदूरो के शैक्षणिक विकास के अनुसार इसके विभिन्न अर्थ लगाये जा सकें।

इस प्रकार, श्रम-कल्याण कार्यों मे मालिको, सरकारो व ऐच्छिक सगठनो द्वारा किये गये वे सब कार्य शामिल होते हैं जिनसे मजदूरो की दशा सुधरती है। ये कार्य कारखानों के अन्दर हो सकते हैं अथवा बाहर हो सकते हैं। ये स्वेच्छा से किये जा सकते हैं अथवा कानून के अन्तर्गत किये जा सकते हैं।

भारत में श्रम कल्याण कार्यों की आवश्यकता

श्रम-कल्याण कार्यों से औद्योगिक शान्ति स्थापित करने मे मदद मिलती है और श्रम की कार्यकुशलता बढने से उत्पादन भी बढता है। भारत मे निम्न कारणो से श्रम-कल्याण कार्यों का विशेष महत्व माना गया है :

1 **श्रमिक की प्रवासी प्रवृत्ति**—भारत मे अभी तक अन्य देशो की तरह एक स्थायी ढग का मजदूर-वर्ग उत्पन्न नही हो पाया है। यहाँ के अधिकाश मजदूर ग्रामीण क्षेत्रो से आने के कारण दिल से किसान होते हैं और अवसर मिलने पर गाँवो मे वापस जाना चाहते हैं। उनका गाँवो से सम्बन्ध-विच्छेद नही होना है इसलिए औद्योगिक केन्द्रो मे उनके लिये भोजन, मकान व मनोरंजन की सुविधाएँ बढाकर पर्याप्त आकर्षण उत्पन्न किया जाना आवश्यक होता है। ऐसा करने से मजदूर अपने आपको औद्योगिक वातावरण के अधिक अनुकूल बना सकते हैं।

2 **सुदूर स्थानों में कल्याण कार्य आवश्यक**—उन बागानो, खानो व अन्य छोटे उद्योगो मे, जो एकान्त स्थानो मे स्थित हैं विशेष कल्याण-कार्यों की आवश्यकता होती है। वहाँ दैनिक उपयोग की वस्तुओं की भी व्यवस्था करनी होती है।

3 **श्रमिक संघों का धीमा विकास**—भारत मे श्रमिक संघो ने मजदूरो के कल्याण के लिए अधिक कार्य नही किये है, इसलिए सरकार व मालिको द्वारा कल्याण-कार्य करना आवश्यक हो गया है।

4 **निम्न जीवन-स्तर**—भारतीय मजदूर का जीवन-स्तर बहुत नीचा होता है इसलिये कल्याण कार्यों के द्वारा उनके लिए अच्छा भोजन, अच्छा मकान, अच्छी शिक्षा व चिकित्सा आदि की व्यवस्था की जाती है। कल्याण-कार्यों के अभाव मे उसे ये सुविधाएं नही मिल पाती।

श्रम-कल्याण में भाग लेने वाली संस्थाएँ व कानूनी व्यवस्था

भारत मे श्रम-कल्याण कार्य देश की वैधानिक व्यवस्था, केन्द्रीय व राज्य सरकारो के कार्यों, मालिको की ऐच्छिक क्रियाओ, मजदूर संघो व अन्य ऐच्छिक संस्थाओ द्वारा किये गये कल्याण-कार्यों पर निर्भर करता है।

श्रम-कल्याण से सम्बन्धित कानून

सर्वप्रथम, फैक्ट्री अधिनियम (Factory Act), 1934 मे श्रम-कल्याण की व्यवस्था की गयी थी, बाद मे 1948 के फैक्ट्री अधिनियम मे ये सुविधाएँ बढ़ायी गयीं। इनमे भोजन-गृह, शिशु-गृह, आराम-गृह, नहाने-धोने की सुविधाएँ, प्रारम्भिक सहायता का सामान आदि की व्यवस्था की गयी। इस कानून मे मजदूरो के बैठने का इन्तजाम करने के लिये भी जोर दिया गया। श्रमिको के कपड़े रखने के लिए उपयुक्त स्थानो की व्यवस्था की गई। 500 या अधिक मजदूरो के कारखानों मे कल्याण-अधिकारी नियुक्त करना आवश्यक कर दिया गया।

खान-अधिनियम, 1951 मे भी खानो मे काम करने वाले मजदूरो के लिए विविध प्रकार की सुविधाएं प्रदान करने की व्यवस्था की गयी। जहा स्त्रियां काम करती है वहां शिशु-गृह स्थापित करना आवश्यक बना दिया।

कोयला, अभ्रक, कच्चा लोहा, मैंगनीज, लाइमस्टोन व डोलोमाइट की खानो व बीडी उद्योग मे श्रमिको के आवास, दवा, मनोरंजन व अन्य कल्याणकारी कार्यों के लिए वैधानिक कल्याण कोष बनाये गये हैं। जिन अधिनियमो के अन्तर्गत ये कोष बने हैं वे कच्चे लोहे व मैंगनीज की खानो के श्रमिको के लिए 1976 मे, लाइमस्टोन व डोलोमाइट खानो के श्रमिको के लिए 1972 मे, कोयले के श्रमिको के लिए 1947 मे अभ्रक के श्रमिको के लिए 1946 मे तथा बीडी श्रमिको के लिए (सशोधन) 1981 मे पारित हुए थे।

बागान श्रम अधिनियम 1951 के अन्तर्गत बागान मालिको को अपने श्रमिको के लिए मकान व अस्पताल की व्यवस्था करनी होती है। कई स्थानो पर शिक्षा व मनोरजन व दस्तकारी की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई है।

श्रम-कल्याण मे भाग लेने वाली सस्थाएँ

सरकारो द्वारा किये गये कल्याण-कार्य—द्वितीय महायुद्ध के बाद केन्द्रीय व राज्य सरकारो ने मजदूरो के कल्याण-कार्य मे विशेष रूप से रुचि लेना प्रारम्भ किया था। केन्द्रीय सरकार ने खानो व तेल-क्षेत्रो के मजदूर एव केन्द्रीय कारखानो के मजदूरो के लिए कुछ सुविधाएं प्रदान की है। सिन्दरी खाद के कारखाने चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स एव मद्रास की इन्टीग्रल कोच फैक्ट्री मे मजदूरो के लिए मकान भोजनागार व मनोरजन की सुविधाएँ प्रदान की गयी है। केन्द्रीय सरकार ने रेल-मजदूरो के बच्चो के लिए शिक्षा की व्यवस्था की है।

राज्य सरकारे, विशेषतया महाराष्ट्र व उत्तर प्रदेश की सरकारे, श्रम-कल्याण कार्य मे आगे रही है। बम्बई मे चार श्रेणी के कल्याण केन्द्र चल रहे हैं। इन केन्द्रो मे मनोरजन, शिक्षा व स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्य चलाये जाते हैं।

मालिको द्वारा किये गये कल्याण कार्य—श्रम-कल्याण कार्य को सुचारू रूप से चलाने मे मालिको का स्थान भी महत्वपूर्ण होता है। भारत मे मिल मालिको को कानून के अन्तर्गत मजदूरो के कल्याण के लिए कई प्रकार के कार्य करने पडते है। *ज्यादातर उद्योगपति कल्याण कार्यों पर किया गया व्यय भार स्वरूप समझते है* और इनमे विशेष रुचि नही दिखाते। लेकिन कुछ मिल-मालिको के कार्य इस दिशा मे काफी सराहनीय रहे है। बकिंघम कर्नाटक मिल्स, मद्रास, दिल्ली क्लॉथ व जनरल मिल्स, दिल्ली, एक्सप्रेस मिल, नागपुर तथा टाटा आयरन व स्टील कम्पनी, जमशेदपुर ने अपने मजदूरो के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, मकान, मनोरजन आदि की सुविधाएँ प्रदान की है। इण्डियन जूट मिल्स एसोसियेशन (IJMA) कलकत्ता ने श्रम-कल्याण केन्द्र खोले है।

कई मिल-मालिकों द्वारा प्रदान की गयी सुविधाओं के स्तर कानूनी आवश्यकताओं से भी काफी अच्छे पाये जाते है। आजकल कैन्टीन व शिशु-गृह की उचित व्यवस्था पायी जाती है।

मजदूर-संघो द्वारा किये गये कल्याण-कार्य—भारत में मजदूर संघो ने श्रम-कल्याण-कार्यों में विशेष प्रगति नहीं दिखलायी है। अहमदाबाद टैक्सटाइल लेबर एसोसियशन ने मजदूरो के लाभ के कई सामाजिक व कल्याण-कार्य किये हैं। मजदूरो के सांस्कृतिक उत्थान के प्रयत्न किये गये हैं। उनके बच्चो की शिक्षा की भी व्यवस्था की गयी है।

श्रम-कल्याण कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए सुझाव— भारत में श्रम-कल्याण कार्यों मे विविधता पायी जाती है। एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में, एक उद्योग से दूसरे उद्योग मे एवं एक उद्योग की विभिन्न इकाइयो मे श्रम-कल्याण-कार्यों में काफी अन्तर पाया जाता है। कल्याण-कार्यों की सफलता पर्याप्त वित्तीय कोषो व विभिन्न पक्षो के सहयोग पर निर्भर करती है। भारत मे श्रम-कल्याण-कार्य को आगे बढाने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :

(1) फैक्ट्री एक्ट, 1948 की श्रम-कल्याण सम्बन्धी धाराओं का पूरा-पूरा पालन किया जाना चाहिए।

(2) विभिन्न उद्योगो मे विभिन्न प्रकार के कल्याण-कार्यों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जैसे बागान-मजदूरो को विशेषतया मकानों की सुविधा, खान-मजदूरो को मकान, शिक्षा व दवा की सुविधा एवं जहां स्त्रियां काम करती हैं वहाँ शिशु-गृहो की स्थापना पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

(3) मजदूरो को कल्याण-समितियो मे अधिक से अधिक भाग लेने का अवसर दिया जाना चाहिए ताकि कल्याण-कार्यों में अधिक प्रगति हो सके।

(4) कल्याण-अधिकारियो का चुनाव सावधानी से किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए वे व्यक्ति ही लिये जाने चाहिए जो मजदूरों का विश्वास प्राप्त कर सके और अच्छे प्रशासक हो सकें। उन्हे मजदूरो के कल्याण मे वास्तविक रुचि व उत्साह भी होना चाहिए।

(5) कोयले व अभ्रक की खानो के कोषो की तरह अन्य कोष भी स्थापित किये जाने चाहिए।

(6) सरकार द्वारा कल्याण-केन्द्रो की संख्या बढ़ायी जानी चाहिए।

(7) मजदूरों की सहकारी समितियां बनाई जानी चाहिए और सहकारी आधार पर मकान बनाने तथा खाद्य व उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(8) मालिकों द्वारा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाने वाली सुविधाओं व कल्याण कार्यों को पूर्णतया स्पष्ट किया जाना चाहिए और उनको अपनी जिम्मदारी निभाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

(9) श्रमिक-संघों का भी कल्याण-कार्यों में अधिक रुचि दिखानी चाहिए।

(10) सार्वजनिक उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों के लिए कल्याण कार्यों की उचित व्यवस्था करके निजी क्षेत्र के उद्योगपतियों के समक्ष आदर्श उपस्थित किया जाना चाहिए।

भारत में सामाजिक सुरक्षा[1]

सामाजिक सुरक्षा (Social Security) के अन्तर्गत वह सुरक्षा आती है जो एक समाज अपने सदस्यों को जोखिम से बचाने के लिए एक उपयुक्त संगठन द्वारा प्रदान करता है। बीमारी, काम के अयोग्य हो जाना, प्रसूती (Maternity) बुढ़ापा व मृत्यु आदि जोखिम ऐसी होती हैं जिनमें अकेला व्यक्ति अपने सीमित व अल्प साधनों से मुकाबला नहीं कर सकता। अतः समाज का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने सदस्यों को इन जोखिमों से बचाये और उनकी आवश्यक मदद करें।

सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक धारणा है। इसमें सामाजिक बीमा (Social Insurance) और सामाजिक सहायता (Social Assistance) दोनों शामिल होते हैं। सामाजिक बीमा का लाभ उन व्यक्तियों को मिलता है जो इसके लिए प्रीमियम या शुल्क चुकाते है लेकिन सामाजिक सहायता नि:शुल्क मिलती है। अतः सामाजिक सुरक्षा सामाजिक बीमा से ज्यादा व्यापक होती है। इसमें दुर्घटना को रोकने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा एक विस्तृत व व्यापक विचारधारा होती है जो चोट या बीमारी को रोकने, आय का समान बटवारा करने एवं समस्त प्रकार की आवश्यकताओं से मुक्ति दिलाने में सहायक होती है।

सामाजिक सुरक्षा की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार इसका क्षेत्र काफी व्यापक बन जाता है। इसके अन्तर्गत एक ओर बेरोजगारी, बीमारी एवं वृद्धावस्था का सामाजिक बीमा आ जाता है तो दूसरी ओर अस्पताल, बच्चा के कल्याण एवं दवा की सुविधाएं भी आ जाती हैं जो नि:शुल्क उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार आधुनिक जीवन के तनावों व सकटों के बीच सामाजिक सुरक्षा ने स्थिरता व संरक्षण का समावेश किया है। इसके अभाव में जीवन में अस्थिरता बढ़ जाती है और व्यक्ति स्वयं को अकेला व असहाय-सा समझने लगता है। आज यह सार्वजनिक नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गयी है और इसके प्रचलन की सीमा को देखकर यह अनुमान

---

1. Report of the National Commission on Labour, 1969, Chapter 13, p. 162-82.

लगाया जा सकता है कि एक देश में कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की दिशा में कितनी प्रगति हो पाई है।

भारत में सामाजिक सुरक्षा की 1923 से प्रगति

भारत में अभी तक सामाजिक सुरक्षा का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। ब्रिटिशकाल में तो मजदूर-क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923 व कुछ प्रसूति लाभ अधिनियम ही सामाजिक सुरक्षा में आते थे। अब प्रसूति लाभ अधिनियम 1961 (Maternity Benefit Act, 1961) बन गया है जिनका वर्णन आगे किया गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 और कर्मचारी प्राविडेण्ड फण्ड व विविध प्रोविजन्स अधिनियम, 1952 तथा कर्मचारी पारिवारिक पेंशन स्कीम 1971 एवं कोयला खान पारिवारिक पेंशन स्कीम, 1971 आदि और जुड़े है। इन अधिनियमों का विवरण व इसके अन्तर्गत हुई प्रगति का उल्लेख नीचे किया जाता है।

1 मजदूर क्षतिपूर्ति-अधिनियम, 1923 (The Workmen's Compensation Act 1923)—स्वतन्त्रता के पूर्व सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में मजदूर-क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923 ही मुख्य अधिनियम माना गया है। इसके अन्तर्गत मालिक को मजदूर के काम करते हुए चोट आ जाने सदैव के लिए अयोग्य हो जाने तथा काम करते हुए मर जाने पर मुआवजा देना पड़ता है। मुआवजा औसत मासिक मजदूरी के अनुसार निकाला जाता है और चोट की प्रकृति के अनुसार निर्धारित होता है। यह उन क्षेत्रो मे लागू नही होता जिनमे कर्मचारी राज्य बीमा कार्यक्रम लागू होता है। 1984 तक यह 1000 रुपये तक मासिक मजदूरी पाने वाले श्रमिकों पर लागू होता था जो कारखानों खानों, बागानों परिवहन व निर्माण रेल व अन्य विशिष्ट प्रकार के जोखिमी कार्यों में लगे होते थे। लेकिन 1984 के सशोधन के बाद अब वेतन की सीमा नहीं रह गई है। अब यह सभी पर लागू हो गया है। मृत्यु हो जाने पर श्रमिक के आश्रितो को मुआवजा दिया जाता है जिसकी राशि विभिन्न आयु के मजदूरों के लिए अलग-अलग होती है। पहले मुआवजा वेतन से जुड़ा होता था (salary-linked) लेकिन अब यह आयु से जुड़ा (age-linked) हो गया है। (1984 के सशोधन के बाद)। मृत्यु हो जाने पर न्यूनतम मुआवजा 20 हजार रुपये तथा स्थायी रूप से अयोग्य हो जाने की स्थिति मे 24 हजार रुपये होता है।

इतने वर्षों के बाद भी इसका पूरी तरह पालन नहीं हो पा रहा है। छोटे उद्यमकर्त्ता व फैक्ट्री के मालिक भारी मात्रा में मुआवजा देने में असमर्थ होते है। अधिनियम मे चोट लगने पर श्रमिक के लिए दवा के इन्तजाम की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सुझाव दिया था कि श्रमिको को मुआवजा देने के लिए एक केन्द्रीय कोष बनाया जाय जिसमे सभी मिल-मालिक कुल मजदूरी का कुछ प्रतिशत जमा करायें। इस पर कर्मचारी राज्य बीमा निगम का नियन्त्रण होना चाहिए। यह एक विरोधाभास है कि अयोग्य हो जाने वाला व दुर्घटनाग्रस्त हो जाने वाला

व्यक्ति कठिनाई से अपना मुआवजा ले पाता है, जबकि सरसरी या फालतू घोषित हो जाने वाला व्यक्ति अपना मुआवजा जल्दी प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार की स्थिति बदली जानी चाहिए।

2. प्रसूति लाभ अधिनियम (The Maternity Benefit Act, 1961)— यह अधिनियम उन फैक्ट्रियों को छोड़कर, जहा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 लागू होता है, प्रत्येक प्रतिष्ठान (फैक्ट्री, खान या बागान) पर लागू होता है। राज्य इस केन्द्रीय अधिनियम को धीरे धीरे अपनाते जा रहे हैं। प्रसूति से पूर्व व पश्चात् कुछ अवधि के लिए स्त्री-श्रमिकों को नकद प्रसूति सहायता व छुट्टी दी जाती है। प्रसूति लाभ 8-12 सप्ताह के लिए दिया जाता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत मेडिकल बोनस भी दिया जाता है। सभी राज्यों में इसे लागू किया जाना चाहिए।

1943 में प्रोफेसर बी पी. अदारकर ने स्वास्थ्य बीमा-योजना तैयार की थी। 1945 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन के विशेषज्ञों ने अदारकर योजना की जाच की। इन्ही के सुझावों के आधार पर बाद में कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 में पारित किया गया।

3. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (The Employee s State Insurance Act, 1948)—यह मौसमी उद्योगों को छोड़कर शक्ति का उपयोग करने वाले तथा 20 व अधिक मजदूरों को काम देने वाले अन्य उद्योगों (खान व रेलवे रनिंग शेड को छोड़कर) पर लागू होता है। अब यह 1,600 रु तक मासिक वेतन पाने वाले व्यक्तियों पर लागू कर दिया गया है। यह बीमारी, प्रसूति व रोजगार चोट के लिए नकद सहायता प्रदान करता है और रोजगार चोट से मर जाने वाले आश्रितों के लिए पेंशन के रूप में भुगतान देता है तथा श्रमिक को चिकित्सा का लाभ प्रदान करता है।

शुरू में यह योजना 1952 से कानपुर व दिल्ली में लागू की गई थी। विभिन्न लाभों का सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है :

(अ) बीमारी लाभ—बीमारी के दिनों में अधिकतम 56 दिनों के लिए बीमा कराये हुए व्यक्ति की मजदूरी का लगभग आधा अंश दिया जाता है। क्षय, कोढ, मानसिक व अन्य बीमारियों की स्थिति में 309 दिनों के लिए बीमारी की वजह से विस्तृत सहायता मिलती है।

(आ) प्रसूति लाभ—यह 12 सप्ताह के लिए 75 पैसे की फ्लैट रेट प्रतिदिन के अनुसार अथवा बीमारी के लाभ के दुगुने के रूप में, जो भी अधिक हो, के अनुसार दिया जाता है।

(इ) अयोग्यता लाभ—यह अस्थाई व स्थायी, आंशिक या कुल अयोग्यता के लिए अलग-अलग होता है।

(ई) आश्रितो को प्राप्त होने वाला लाभ—यह मर जाने वाले व्यक्ति के आश्रितो को दिया जाता है।

(उ) चिकित्सा लाभ—इसमे श्रमिक व उनके आश्रितो को (जहा आश्रित शामिल किए गए है) चिकित्सा के लाभ दिये जाते हैं।

31 दिसम्बर, 1986 का 90 ESI अस्पताल व 42 ESI सहायक अस्पताल (Annexes) थ जिनमे 23 251 बिस्तर, 1214 दवाखाने थे। इनके अन्तर्गत 63 49 लाख कर्मचारी आ चुके थे।[1]

इसमें मालिको का अशदान मजदूरी-बिल का $4\frac{3}{4}$ प्रतिशत तथा मजदूरी का $2\frac{1}{4}$ प्रतिशत रखा गया है। दवा पर किया गया व्यय ESIC व राज्य सरकार में परस्पर बाटा जाता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सुझाव दिया था कि 4 रुपये प्रतिदिन मजदूरी पाने वाले कर्मचारी राज्य बीमा स्कीम के अन्तर्गत अशदान से छूट दी जानी चाहिए। कर्मचारी राज्य बीमा योजना सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन अभी तक यह सभी व्यक्तियो व सभी जोखिमो को अपने में शामिल नही कर सकी है। भविष्य में इसके अन्तर्गत बेरोजगारी का बीमा या अन्य जोखिमें भी लायी जानी चाहिए।

4 कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड्स तथा विविध प्रोविजन्स अधिनियम, 1952 The Employees' Provident Fund and Miscellaneous Provisions Act 1952)—यह वस्तुत, एक बचत का कार्यक्रम है। यह अधिनियम प्रारम्भ में 1 नवम्बर 1952 से छ बडे उद्योगो पर लागू किया गया था। 31 दिसम्बर, 1986 तक यह 173 उद्योगो में लागू हो चुका था। अधिनियम का उद्देश्य अनिवार्य प्रॉविडेण्ट फण्ड की व्यवस्था करना है ताकि औद्योगिक श्रमिको के भविष्य के लिए कुछ व्यवस्था की जा सके। श्रमिक की असामयिक मृत्यु के समय उसके आश्रितो को यह राशि मिल जाती है। 1 सितम्बर, 1985 से यह अधिनियम उन कारखानो पर लागू हो गया है जिनमे 20 या अधिक श्रमिक काम करते हैं। जो श्रमिक एक साल तक लगातार काम कर चुक्ते हैं और मासिक वेतन 2,500 रुपये तक पाते है उन्हे अपनी बेसिक मजदूरी का $6\frac{1}{4}$ प्रतिशत अनिवार्य रूप से प्रॉविडेण्ट फण्ड मे देना पडता है। ऐसे श्रमिको के लिए मालिक भी उतनी ही रकम कोष में जमा कराते हैं। सरकार ने 50 या अधिक सख्या मे नियुक्त श्रमिको के 132 उद्योगों मे अशदान की दर बढाकर 8% कर दी है।

कोयला खानो, असम चाय-बागानों व समुद्री कर्मचारियो के लिए भी प्राविडेण्ट कोष अधिनियम अलग से बन चुके हैं।

---

1 India 1987, p 580

31 दिसम्बर, 1986 के अन्त तक इस स्कीम के अन्तर्गत 1·36 करोड श्रमिक आ चुके थे।

पिछले वर्षों मे प्रॉविडेण्ट फण्ड योजना का काफी विस्तार हुआ है। फिर भी अनेक सस्थान अभी तक इसके अन्तर्गत नही आ पाये हैं। कही-कहीं प्रॉविडण्ट फण्ड की बकाया राशि की वसूली का प्रश्न भी पाया जाता है।

5. पारिवारिक पेन्शन स्कीम, 1971—असामयिक मृत्यु के कारण औद्योगिक कर्मचारियो के परिवारो को दीर्घकालीन वित्तीय सुरक्षा प्रदान करने के लिए कोयला-खान पारिवारिक पेंशन स्कीम, 1971 तथा कर्मचारी पारिवारिक पेंशन स्कीम, 1971 चालू की गई है। इनकी वित्तीय व्यवस्था मे मालिको व मजदूरों के अलावा केन्द्रीय सरकार का भी योगदान होता है। इनका सचालन-व्यय भी केन्द्रीय सरकार देती हैं। कोष की सदस्यता की अवधि के आधार पर पारिवारिक पेंशन की राशि 60 रु से 500 रु. प्रतिमाह तक हो सकती है।

इस प्रकार पारिवारिक पेंशन स्कीम, 1971 सुरक्षा के क्षेत्र मे एक नया व महत्वपूर्ण प्रयास है।

6 *कर्मचारी जमा-सम्बद्ध बीमा योजना*, 1976 (Employees' Deposit-linked Insurance Scheme, 1976)—यह योजना कर्मचारी प्रॉविडण्ट कोष के सदस्यो के लिए 1 अगस्त, 1976 से लागू की गई थी। इसमे एक सदस्य की मृत्यु पर जिस व्यक्ति को प्रोविडण्ट कोष की जमा राशि मिलनी होती है, उसे अतिरिक्त राशि भी दी जाती है। यह अतिरिक्त धनराशि मृत व्यक्ति की पिछले तीन वर्षों की प्रोविडेण्ट कोष खाते की औसत बकाया के बराबर होती है, बशर्ते की यह 1000 रुपयो से कम न हो। इस योजना मे अधिकतम देय राशि 10 हजार रुपये तक होती है और कर्मचारी को इसमे कोई अशदान नही करना होता है।

7 ग्रेच्युटी योजना, 1972—इसके अन्तर्गत ग्रेच्युटी दी जाती है। यह सेवा के प्रत्येक पूरे वर्ष के लिए 15 दिन की मजदूरी के बराबर दी जाती है और ज्यादा से ज्यादा 20 माह की मजदूरी के बराबर दी जाती है।

8 कोयला खान जमा-सम्बद्ध बीमा योजना—यह भी 1 अगस्त, 1976 से आरम्भ की गई थी। इसमे भी एक कर्मचारी की मृत्यु पर इसके घरवालो को अतिरिक्त धनराशि मिलती है। इस स्कीम के लिए मालिक व केन्द्रीय सरकार 2:1 के अनुपात मे अशदान देते हैं।

कोयले की खानो मे श्रमिको के लिए बोनस-योजना भी लागू की गई है जो नियमित उपस्थिति के आधार पर श्रमिको को दी जाती है। इससे श्रमिको को खान पर नियमित रूप से उपस्थित होने की प्रेरणा मिलती है। बोनस की राशि खान पर उपस्थिति के आधार पर निर्धारित होती है।

समन्वित सामाजिक सुरक्षा (Integrated Social Security) की आवश्यकता

राष्ट्रीय श्रम आयोग का विचार था कि आगामी कुछ वर्षों में अशदान मे मामूली वृद्धि करके कर्मचारियों की बीमा योजना में कुछ और जोखिमें शामिल की जा सकती हैं। जो लोग काम पर लगे हुए थे और अब बेकार हो गये हैं, उनके लिए बेकारी का बीमा होना चाहिए। लेकिन इसके लिए भारी मात्रा में कोषों की आवश्यकता होती है जिनका भारत में अभाव है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना की जाँच-समिति की निम्न दो सिफारिशों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

(1) एक व्यापक व एकीकृत सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार की जानी चाहिए।

(2) कर्मचारी राज्य बीमा निगम व कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड सगठन का एकीकरण कर दिया जाना चाहिए। इससे प्रशासनिक व्यय में काफी कमी आयेगी।

राष्ट्रीय श्रम आयोग का मत था कि एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना की तरफ अग्रसर होने के लिए एक ही कोष मे सारी राशियों को एकत्र किया जाना चाहिये जिससे विभिन्न एजेन्सियाँ आवश्यकतानुसार विभिन्न लाभों के लिए उसमे से रकम निकाल सकें। इस आधार पर प्रति वर्ष एक बजट बनाया जाना चाहिए। इस स्कीम का विस्तृत विवरण तैयार किया जाना चाहिए। आम तौर पर बेरोजगार लोगों को सहायता के बतौर नक्द राशि देना सम्भव नही है, क्योंकि इसके लिए विशाल धनराशि की आवश्यकता होती है जो हमारे सीमित साधनों के कारण व्यावहारिक नहीं लगती।

प्रश्न

1 'सामाजिक सुरक्षा' से आप क्या तात्पर्य समझते हैं? भारत में कुछ प्रमुख सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की व्याख्या कीजिये।

(Raj IIyr. T. D C., 1989)

2 सामाजिक सुरक्षा को परिभाषित कीजिए और भारत में अपनाये गये सामाजिक सुरक्षा के उपायों को बताइये।

(Raj IIyr. T. D C., 1986)

इस प्रकार रुपये का मूल्य विदेशी मुद्राओं में काफी घट गया है। 1950 में भारत का विश्व के निर्यातों में 2% अंश था जो 1987 में घट कर 0·5% पर आ गया है। भारत के निर्यात देश की सकल राष्ट्रीय उत्पत्ति (GNP) के 5% से 6% पाये जाते हैं।

नीचे की तालिका से पता चलता है कि 1985–86 में व्यापार का घाटा 8763 करोड़ रु. रहा जो पिछले वर्षों में सर्वाधिक माना गया है। छठी योजना के सभी वर्षों में व्यापार का घाटा काफी ऊँचा रहा था। 1988–89 मेंव्यापार के घाटे का ताजा अनुमान 412 करोड़ रु. रखा जिससे भारत के विदेशी भुगतान की जटिल स्थिति का पता चलता है।

पिछले वर्षों में भारत के विदेशी व्यापार की स्थिति निम्न तालिका में दर्शाई जाती है—

भारत का विदेशी व्यापार : 1979-80 से 1988–89 तक (करोड़ रुपयों में)

वर्ष (अप्रैल-मार्च)	आयात	निर्यात	व्यापार की बाकी (—) घाटा (+) बचत	आयातों में प्रतिशत वृद्धि (पिछले वर्ष की तुलना में)	निर्यातों में प्रतिशत वृद्धि (पिछले वर्ष की तुलना में)
1979–80	9143	6418	(–) 2725	34·2	12·1
1980–81	12549	6711	(–) 5838	37·3	4 6
1981–82	13608	7806	(–) 5802	8·4	16·3
1982–83	14293	8803	(–) 5490	5·0	12·8
1983–84	15832	9771	(–) 6061	10 8	11·0
1984–85	17134	11744	(–) 5390	8·2	12·0
1985–86	19658	10895	(–) 8763	14·7	(–) 7·2
1986–87	20201	12452	(–) 7749	2·8	14·3
1987–88	22399	15741	(–) 6658	10·9	26·4
1988–89*	27693	20281	(–) 7412	23·6	28·8

भारत में आयातों व निर्यातों के वार्षिक परिवर्तनों में काफी अस्थिरता रही है। 1973–74 में आयात पिछले वर्ष की तुलना में 58% बढ़े एवं 1974–75 में 53% बढ़े थे। 1976–77 में ये लगभग 4% घटे थे। 1973–77 की अवधि में निर्यातों में वार्षिक वृद्धि दर 27% रही, जितनी बाद में केवल 1988-89 में प्राप्त की जा सकी है।

---

* Facts for You, Annual Number 1989–90, June 1989, p. 84.

छठी पंचवर्षीय योजना की अवधि (1980–85) में व्यापार का घाटा प्रति वर्ष लगभग 55 अरब रुपये या इससे अधिक रहा। **पांच वर्षों में यह कुल 28581 करोड़** रु. रहा जो अभूतपूर्व था। इससे देश के समक्ष भुगतान की समस्या जटिल हो गई है। व्यापार का घाटा 1986–87 व 1987–88 में कम हुआ। 1988–89 में निर्यातों की वृद्धि-दर 29% तथा आयातों की वृद्धि दर 24% रही है (पिछले वर्ष की तुलना में) जिससे व्यापार का घाटा 7412 करोड़ रुपये रहा है।

भारत के प्रमुख आयात

अब हम भारत के प्रमुख आयातों व निर्यातों का वर्णन करेंगे और साथ में यह भी बतलायेंगे कि आयात की वस्तुएँ किन-किन देशों से आती है और निर्यात की वस्तुएँ किन-किन देशों को भेजी जाती है।

1987–88 में आयातों की राशि लगभग 22399 करोड़ रु. रही जो पूर्व तालिका के अनुसार पिछले वर्ष से 10 9% अधिक थी। 1988–89 में आयातों की राशि के 24% बढ़ने का अनुमान है। इस प्रकार 1988–89 में आयातों की वृद्धि-दर ऊँची रही है।

1987–88 के आंकड़ों के अनुसार हमारे आयातों में प्रथम पांच वस्तुएँ इस क्रम में थीं : पूंजीगत माल, पैट्रोल, पैट्रोल पदार्थ व सम्बद्ध माल, मोती, कीमती व अर्द्ध-कीमती स्टोन्स, लोहा व इस्पात एवं रसायन (ओरगेनिक व इनओरगेनिक)। भारत के प्रमुख आयातों का परिचय नीचे दिया जाता है—

1. पैट्रोल, तेल तथा चिकनाई के पदार्थ (POL)—इस मद के अन्तर्गत बिना साफ किया हुआ व आंशिक रूप से साफ किया हुआ पैट्रोल, मिट्टी का तेल, पैट्रोल की अन्य वस्तुएँ आदि आती है। क्रूड तेल से डीजल तेल, फर्नेस तेल, पेट्रोल, किरासनी तेल, व अन्य वस्तुएँ प्राप्त होती है, जिनकी मांग को कम करना कठिन है। कच्चा तेल विशेषतया ईरान, इराक व अन्य अरब देशों से आयात किया जाता है। पिछले वर्षों में इस मद के अन्तर्गत हमारा आयात-बिल काफी ऊँचा रहा है जो निम्न तालिका में दर्शाया गया है :

वर्ष	(करोड़ रुपयों में)
1982–83	5622
1983–84	4832
1984–85	5409
1985–86	4989
1986–87	2797
1987–88	4083

1987–88 मे हमारे आयातो मे इस मद का द्वितीय स्थान रहा। देश म क्रूड तेल का उत्पादन 1980–81 मे 1·05 करोड टन मे बढकर 1987–78 मे 3 04 करोड टन हो गया है जिससे क्रूड तेल के आयातों मे कुछ कमी की जा सकी है। छठी योजना की अवधि मे देश मे तेल साफ करन की क्षमता के सीमित होन के कारण बम्बई हाई-क्रूड तेल का निर्यात करना पडा जिससे निर्यातो मे वृद्धि हुई थी। 1987–88 मे देश म क्रूड तेल का उत्पादन 3 0 करोड टन होने के बावजूद (POL) का आयात 4083 करोड रु का किया गया क्योंकि ऊँची कीमत वाली POL की मदें आयात करनी पडी तथा डालर का भाव भी रुपयो मे ऊँचा रहा। POL के आयातो का हमारे कुल आयातो मे 1980–81 मे 42% स्थान था जो 1985–86 मे घटकर लगभग 25% तथा 1987–88 म 18% पर आ गया है।

2 पूँजीगत माल (धातु-निर्मित माल, विद्युत व गैर-विद्युत मशीनों व परिवहन का सामान)—हमारे आयातो मे पूँजीगत माल का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अन्तर्गत धातु निर्मित माल, विद्युत व गैर-विद्युत मशीनें व परिवहन का आवश्यक साज-सामान शामिल होता है। भारत मे औद्योगिक विकास के लिए मशीनों का आयात करना आवश्यक है। वैसे सीमेन्ट, चीनी आदि की मिल-मशीनरी का भारत मे निर्माण होने लगा है, लेकिन आज भी हम कई प्रकार की मशीनो के लिए विदेशो पर निर्भर रहते हैं। मशीनें ग्रेट-ब्रिटेन अमेरिका, कनाडा पश्चिमी जर्मनी व जापान आदि से मँगाई जाती है। 1987–88 मे पूँजीगत माल का आयात लगभग 6285 करोड रुपये का हुआ जो पिछले वर्ष से 15% ज्यादा था। 1987–88 म हमारे आयातो मे इस मद का प्रथम स्थान रहा।

3 मोती, कीमती व अर्द्ध-कीमती स्टोन्स—1987–88 मे हमारे आयातो मे इनका तीसरा स्थान रहा। इसी वर्ष इनके आयात की राशि 1994 करोड रु रही जो पिछले वर्ष से 33% अधिक थी। भारत से दस्तकारी के माल के अन्तर्गत इनका निर्यात भी किया जाता है।

4 लोहा व इस्पात—भारत मे लोहे व इस्पात की माग इनकी पूर्ति से अधिक रहती है इसलिए इसका भी आयात किया जाता है। भिलाई, दुर्गापुर व रूरकेला मे इस्पात के कारखाने स्थापित होने से इसका उत्पादन बढ गया है फिर भी देश की विविध किस्म की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्टील की कुछ मदो का आयात करना पडता है। भारत मे लोहा व इस्पात इगलैंड, अमेरिका व पश्चिमी जर्मनी से मँगाया जाता है। 1987–88 मे 1273 करोड रुपयो का लोहा व इस्पात आयात हुआ जो पिछले वर्ष से 12% कम था जिससे आयातो मे इसका स्थान चतुर्थ हो गया।

5 अनाज व अनाज से बनी वस्तुएँ—भारत में अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया व अन्य देशों से खाद्यान्नों का आयात किया जाता रहा है। भूतकाल में अधिकांश खाद्यान्नों का आयात अमेरिका से पी. एल 480 समझौते के अन्तर्गत किया गया था जिसका भुगतान रुपयों में किया गया। लेकिन आजकल हमें विश्व के *बाजारों में खाद्यान्नों की व्यावसायिक खरीद करनी पड़ती है।*

छठी योजना के प्रथम तीन वर्षों में अनाज व अनाज से बनी वस्तुओं का आयात नीचा रहा। लेकिन 1983-84 में इस मद के अन्तर्गत आयात 612 करोड़ रु. के हुए जो पिछले वर्ष से लगभग दुगने थे। 1986-87 व 1987-88 में इनके आयात क्रमशः 47 करोड़ रु. व 33 करोड़ रु. के ही रहे। 1988-89 में इनका आयात बढ़ाना पड़ा।

सरकार ने अनाज का बफर स्टॉक बनाये रखने की दृष्टि से गेहूँ का आयात करना तय किया है ताकि अभाव की स्थिति का मुकाबला किया जा सके और देश में अनाज के भाव स्थिर रखे जा सकें।

6 उर्वरक तथा रासायनिक पदार्थ—इनके अन्तर्गत उर्वरक व उर्वरकों का सामान, रासायनिक तत्व व यौगिक, रंगने का सामान व दवाइयाँ आदि पदार्थ शामिल होते हैं। 1987-88 में उर्वरक (तैयार व क्रूड) के आयात की कुल राशि लगभग 310 करोड़ रु. रही जिसमें क्रूड उर्वरकों की राशि 138 करोड़ रु. थी तथा 172 करोड़ रु. की राशि तैयार उर्वरकों की थी। 1987–88 में ओरगैनिक और इन-ओरगैनिक रसायनों का आयात 1051 करोड़ रु. का हुआ था जो पिछले वर्ष से 14% अधिक था तथा आयातों में इसका स्थान पाँचवाँ हो गया।

7 वनस्पति तेल—1987–88 में खाद्य-तेलों के आयात की राशि 120 करोड़ रु. थी जो पिछले वर्ष से 50% अधिक था। घरेलू उत्पादन के घरेलू माँग से काफी नीचा रहने के कारण खाद्य-तेलों का आयात बढ़ाना पड़ा है। सरकार देश में तिलहन व तेलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील है।

8 आयात की अन्य वस्तुएँ—भारत विदेशों से जिन अन्य वस्तुओं का आयात करता है उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं: दवाइयाँ, अलौह धातु, जैसे तांबा, सीसा, रांगा, वगैरह, पेपर व पेपर बोर्ड तथा उनसे निर्मित माल, वैज्ञानिक उपकरण, सिन्थेटिक रेशे, आदि। इस प्रकार भारत अनेक प्रकार की वस्तुओं का आयात करता है।

भारत के प्रमुख निर्यात

भारतीय निर्यातों को आजकल दो श्रेणियों में बाँटा जाता है: (1) परम्परागत निर्यात (traditional exports) जिनमें जूट का निर्मित माल, चाय, सूती वस्त्र व सूत, कच्चा तम्बाकू, मसाले व कॉफी आते हैं तथा (ii) गैर-परम्परागत

निर्यात (non-traditional exports) जिसमें इन्जीनियरी का माल, कच्चा लोहा, मिले-सिल ए वस्त्र व पोशाकें, चमड़ा व चमड़े की वस्तुएं, मछली व मछली से बना माल, तथा दस्तकारी का सामान जिनमें मोती, कीमती व अर्द्ध कीमती स्टोन्स आते हैं। मूल्य की दृष्टि से 1987-88 में हमारे निर्यातों में प्रथम पाच मदों का क्रमवार स्थान (क्रूड तेल के निर्यातों को छोड़कर) इस प्रकार था : दस्तकारी का सामान (जिसमे मोती, कीमती व अर्द्ध-कीमती स्टोन्स शामिल है) ; रेडीमेड पोशाकें, इन्जीनियरी का माल, चमड़ा व चमड़े से निर्मित माल (जूतों सहित) तथा सूती वस्त्र (Cotton fabrics)। 1987-88 में निर्यातों की राशि 15741 करोड़ रु रही जो पिछले वर्ष से 26·4% अधिक थी। 1988-89 में निर्यातों में 29% वृद्धि हुई जो उत्साहवर्द्धक है।

विभिन्न मदों का विवरण नीचे दिया जाता है :[1]

1. जूट का माल—जूट का कपड़ा (hessian) व जूट के थैले (sacking) भारत से विदेशों को भेजे जाते हैं। जूट का माल निर्यात करके भारत डालर प्राप्त करता है क्योंकि अमेरिका व कनाडा उसके प्रमुख ग्राहकों में है। जूट के माल के अन्य ग्राहक इस प्रकार है : रूस, ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, मिस्र, जापान आदि। जूट के माल के प्रतिस्थापन-पदार्थ निकलने से निर्यात में कठिनाई होने लगी है। बंगला देश सस्ते जूट के माल की सप्लाई करता है। अतः भारतीय जूट की मिलों में नयी मशीनें लगाकर लागत घटायी जानी चाहिए, जिससे विदेशी बाजार बने रह सकें। 1987-88 में लगभग 243 करोड़ रुपये का जूट का निर्मित माल निर्यात किया गया, जो पिछले वर्ष के लगभग समान ही था। यह भारत के परम्परागत निर्यातों में गिना जाता है।

2. चाय व मेट (tea and mate)—यह विदेशी मुद्रा अर्जित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। विश्व में चाय की माँग की अस्थिरता के कारण इसके निर्यात की राशि प्रतिवर्ष घटती-बढ़ती रही है। 1987-88 में चाय का निर्यात 592 करोड़ रुपये का हुआ जो पिछले वर्ष से मामूली ज्यादा था।

भारतीय चाय का निर्यात यू. के., रूस, नीदरलैंड, अफगानिस्तान मिस्र, जर्मनी, सूडान आदि को होता है। भारत को चाय के निर्यात में श्रीलंका, कीनिया व चीन की प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। अतः चाय के लिए नये बाजार ढूँढे जाने चाहिएं। यह भी भारत का एक परम्परागत निर्यात माना जाता है।

3. सूती वस्त्र व रेडीमेड पोशाकें (Cotton Fabrics and Readymade garments)—भारत से सूत व सूती कपड़ा विदेशों को निर्यात होता है। इसके ग्राहक इस प्रकार हैं : रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, हांगकांग, सूडान,

1. Economic Survey 1988-89 p. 111.

आदि । 1987-88 में सूती वस्त्रों (Cotton Fabrics) का निर्यात 1064 करोड़ रुपयों का और रेडीमेड पोशाकों का निर्यात 1792 करोड़ रुपयों का हुआ । 1987-88 में रेडीमेड पोशाकों का मूल्य की दृष्टि से निर्यातों में द्वितीय स्थान रहा तथा वस्त्रों का पाचवा स्थान रहा ।

सूती वस्त्रों के निर्यात में विदेशों में भारत को अन्य देशों की प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है । अतः सूती वस्त्र के बाजारों को कायम रखने व उनको बढ़ाने के लिए इस उद्योग में नयी मशीनों को लगाने की आवश्यकता है । सोवियत संघ भारत के सूती वस्त्र का ग्राहक रहा है । इनके अलावा अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों में भी माग बढ़ सकती है ।

4 कच्चा लोहा—भारत में उच्चकोटि के कच्चे लोहे का काफी भण्डार भरा पड़ा है । भारत से कच्चा लोहा जापान, रिपब्लिक ऑफ कोरिया, चीन व मध्यपूर्व के देशों को भेजा जाता है । 1987-88 में कच्चे लोहे का निर्यात 543 करोड़ रुपयों का हुआ जो पिछले वर्ष से कुछ कम था ।

5. चमड़ा व चमड़े का सामान (जूतों सहित)—इसका निर्यात अमेरिका, इंग्लैण्ड, पश्चिमी जर्मनी व फ्रांस को किया जाता है । 1987-88 में चमड़े व चमड़े के सामान के निर्यात का मूल्य 1149 करोड़ रु. था जो पिछले वर्ष से 25% अधिक था । इसी वर्ष चमड़े व इससे निर्मित वस्तुओं के निर्यात का भी भारतीय निर्यातों में चतुर्थ स्थान रहा ।

6 खली (Oil cakes)—1987-88 में खली का निर्यात 173 करोड़ रु. का हुआ था जो पिछले वर्ष से कुछ नीचा था ।

7. तम्बाकू—1987-88 में हमने लगभग 135 करोड़ रुपये की तम्बाकू का निर्यात किया जो पिछले वर्ष से 27% कम था । भारतीय तम्बाकू का निर्यात संयुक्त राज्य, रूस, बंगला देश, व जापान को किया जाता है । भारतीय वर्जीनिया तम्बाकू रोडेशिया व अमेरिका की वर्जीनिया तम्बाकू से सस्ती होती है, लेकिन इसकी किस्म घटिया होती है । इसलिए निर्यात बढ़ाने के लिए इसकी किस्म में सुधार किया जाना चाहिए ।

8. कपास—भारत से छोटे रेशे की कपास ब्रिटेन व जापान को निर्यात की जाती है । यह अन्य रेशों के साथ मिलाकर प्रयुक्त की जाती है । इसका घरेलू उत्पादन बढ़ने से इसके निर्यात को काफी प्रोत्साहन देना आवश्यक हो गया है । 1987-88 में कपास का निर्यात 96 करोड़ रु. का हुआ जो पिछले वर्ष से 53% नीचा था ।

9. काजू (Cashew Kernels)—पश्चिमी देशों में काजू की माग बहुत अधिक है । भारत पूर्वी अफ्रीका के देशों जैसे मोजाम्बीक व टंगेनीका से कच्चे काजू (raw nuts) मगाता है और इनको प्रोसेस व तैयार करके अमेरिका, रूस, ब्रिटेन,

कनाडा आस्ट्रेलिया नीदरलैण्ड पश्चिमी जर्मनी जापान आदि देशों को निर्यात करता है। महाराष्ट्र कर्नाटक तमिलनाडु व आंध्र प्रदेश में काजू का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। हमें काजू के निर्यात में ब्राजील व पूर्वी अफ्रीका की प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। 1987–88 मे काजू का निर्यात 307 करोड रुपये का हुआ जो पिछले वर्ष से कुछ कम रहा।

10 **चीनी**—1975–76 मे भारत से 472 करोड रुपये की चीनी का निर्यात किया गया था जो 1973–74 के स्तर का लगभग ग्यारह गुना था। बाद के वर्षों मे चीनी के निर्यात घटत बढते रहे है। पिछले दो वर्षों मे चीनी के निर्यात नगण्य रहे हैं। 1989 मे नपाल को चीनी भेजी गई है। हाल मे चीनी के पड़ोसी देशो मे चोरी छिपे चल जाने से भी देश मे अभाव उत्पन्न हुआ है।

11 **इन्जीनियरी का माल**—भारत से गैर परम्परागत निर्यातो मे इन्जीनियरी के माल का निर्यात काफी बढा है। 1987 88 मे इनका निर्यात 1433 करोड रुपयो का हुआ जो निर्यातो मे तीसरे स्थान पर था। 1987-88 म इनके निर्यात 26 5% बढ़। विश्व के बाजारो मे मन्दी की दशाओ सरक्षण की बाधाओ अफ्रीका के देशो के लिए भुगतान करने की कठिनाइयो व अन्य तकनीकी कारणो से भारत से इन्जीनियरी माल के निर्यातो को बढाने मे कठिनाई का सामना करना पड़ता है। हमे इनकी कीमतों व क्वालिटी पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

12 **दस्तकारी का माल तथा अन्य निर्यात**—1987–88 मे निर्यातो मे सर्वोच्च स्थान दस्तकारी के माल (handicrafts) का रहा। इनके निर्यात म पिछले वर्षो म तीव्र गति से वृद्धि हुई है। 1975 76 में इनका निर्यात 252 करोड रुपये का हुआ था जो 1987–88 म लगभग 3253 करोड रुपये तक पहुँच गया। इनमे रत्नो व जवाहरात (gems and jewellery) का मूल्य 2614 करोड रुपये रहा है।

भारत के अन्य निर्यातो म मछली व मछली-निर्मित वस्तुएँ चमड़ा व चमडे की वस्तुएँ काफी चावल मसाले रसायन व सहायक पदार्थ लोहा व इस्पात आदि आते हैं। 1987–88 मे सामुद्रिक पदार्थों अथवा मछली व मछली के बने पदार्थों का निर्यात 525 करोड रुपयो का हुआ जो पिछले वर्ष से थोडा कम था। भारत से सामुद्रिक पदार्थों (marine products) का निर्यात बढ सकता है। इनके लिए जापान हमारा प्रमुख ग्राहक है। 1987 88 म चावल का निर्यात 325 करोड रु का हुआ जो पिछले वर्ष से काफी अधिक था। मसालो के निर्यात का मूल्य 309 करोड रु रसायन व सहायक पदार्थों के निर्यात का मूल्य 823 करोड रुपये का रहा।

पिछले वर्षों मे तेल साफ करने की सुविधाओ के अभाव मे भारत ने क्रूड तेल का भी निर्यात किया था जिसकी राशि 1984–85 मे 1563 करोड रु रही थी। लेकिन बाद में देश म रिफाइनरीज की स्थापना हो जाने से इसका निर्यात काफी घट गया।

निर्यातों के सम्बन्ध में एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि भारत अपने माल के अलावा अपने प्राविधिक ज्ञान एवं डिजाइन व सलाहकारी सेवाओं का भी निर्यात करने लगा है। भारतीय उद्यमकर्त्ताओं ने सऊदी अरब, घाना, नाइजीरिया, ईरान, श्रीलंका, नेपाल, मलेशिया, कनाडा, कोलम्बिया एवं ग्रेट ब्रिटेन तक में संयुक्त उपक्रम (Joint ventures) चालू किये हैं। भारत तेल उत्पादक देशों को बासमती चावल व मशीनरी आदि का निर्यात करके आवश्यक विदेशी मुद्रा जुटाने लगा है। पिछले वर्षों में देश में सीमेंट का अभाव रहने से इसका निर्यात करने की बजाय कुछ सीमा तक दक्षिणी कोरिया, रोमानिया व पोलैण्ड से आयात भी किया गया है। भारत का चीन व पाकिस्तान से भी व्यापार होता है। हम चीन को खोपरे का तेल व लाख निर्यात करते हैं तथा बदले में पारा जस्ता, एण्टीमनी तथा दाल–चीनी आदि का आयात करते हैं।

भारत के विदेशी व्यापार की वर्तमान प्रवृत्तियाँ

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के विदेशी व्यापार की बनावट (composition), दिशा (direction) व व्यापार की बाकी (balance of trade) में काफी परिवर्तन हुए हैं। इस अवधि में हमारे विदेशी व्यापार पर रुपये के अवमूल्यन (सितम्बर, 1949 और जून 1966), पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत किये गये आर्थिक विकास तथा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का काफी प्रभाव पड़ा है।

यहां हम विशेषतया पिछले वर्षों में हुए निर्यात-व्यापार, आयात-व्यापार एवं व्यापार-सन्तुलन के महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर प्रकाश डालेंगे।

1. भारत के निर्यात व्यापार में परिवर्तन

(1) वस्तु के अनुसार परिवर्तन—योजनाकाल में भारत के निर्यात-व्यापार में काफी परिवर्तन हुए हैं। 1950-51 में कुल निर्यातों में चाय का अंश 13·4% था जो 1987–88 में 3·8% हो गया। इसी अवधि में जूट के माल का अंश 19% से 1 5 % तथा सूती वस्त्रों का 23% से 6 7% (रेडीमेड पोशाकों का 1987–88 में 11·4% अलग से) हो गया। इस प्रकार इन तीनों वस्तुओं (चाय, जूट का माल व सूती वस्त्र पोशाकों) का अंश 1950-51 में 55% से घटकर 1987-88 में 23% हो गया। 1987-88 में दस्तकारी का अंश 20 7% रहा, जो पहले नगण्य था।[1]

---

1. Facts for You, Annual Number 1989-90, June 1989, pp. 84-88 and Economic Survey 1988-89, graph facing p. 110.

ऊपर बताया जा चुका है कि भारत अब अनेक प्रकार की नयी वस्तुओं का निर्यात करने लगा है जिनमें दस्तकारी का सामान (विशेषतया रत्न व जवाहरात) रेडीमेड पोशाकें, काजू, इन्जीनियरी का सामान, कच्चा लोहा, आदि शामिल है।

पिछले वर्षों में 1970-71 से 1987-88 की अवधि में हमारे निर्यातों की बनावट में निम्नलिखित परिवर्तन हुए है।[1] (कुल निर्यातों का प्रतिशत)

वस्तु का नाम	1970-71	1987-88
(1) चाय	9 0	3·8
(2) कच्चा लोहा	7·6	3·4
(3) वस्त्र व रेडीमेड पोशाक	9·0	18·1
(4) जूट-यार्न व निर्मित माल	12·4	1·5
(5) इन्जीनियरी का माल	8·5	9·1

इस प्रकार 1970-71 से 1987 88 की अवधि में जूट के माल, चाय व कच्चे लोहे का निर्यातों में सापेक्ष स्थान काफी नीचा हो गया. सूती वस्त्र (पोशाकों सहित) का बढ़ा तथा इन्जीनियरी के माल का लगभग समान रहा है। (9% पर)

1987-88 में कुल निर्यात 15741 करोड़ रु के हुए जिनमें रत्न व जवाहरात का 16·6%, रेडीमेड पोशाकों का 11·4%, इन्जीनियरी माल का 9 1%, चाय का 3·8%, कच्चे लोहे का 3 4%, चमड़ा व चमड़े से निर्मित माल का 7 3%, सामुद्रिक वस्तुओं का 3·3% व शेष अन्य वस्तुओं का था।

(ii) **दिशा के अनुसार परिवर्तन**—दिशा के अनुसार व्यापार के परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए पिछले वर्षों में देशों के निम्न समूहों के अनुसार आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं—

(1) आर्थिक सहयोग व विकास सगठन के देश (OECD) : इसमें योरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) के देश जैसे, फ्रांस, बेल्जियम, फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी, नीदरलैण्ड व यू. के. आते हैं तथा उत्तरी अमेरिका के कनाडा व संयुक्त राज्य अमेरिका आते हैं, एवं एशिया व ओसनिया के आस्ट्रेलिया व जापान आते हैं।

(2) ओपेक देश (OPEC) इसमें ईरान, इराक, कुवैत, सऊदी अरब, वगैरह तेल-निर्यात देश आते हैं।

(3) पूर्वी योरोप के देश : इसमें जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक, रोमानिया, सोवियत संघ, वगैरा आते हैं।

(4) अन्य विकासशील देशों में अफ्रीका, एशिया, लेटिन अमेरिका व कैरेबियन देश आते हैं।

(5) शेष में अन्य देश आते है।

---

1. Economic Survey 1988-89, p. 110 के दायीं ओर का चित्र।

नीचे 1970-71 से 1987-88 की अवधि में निर्यातों में विभिन्न देशों के उपर्युक्त समूहों व प्रमुख देशों का अंश दर्शाया गया है।[1] (प्रतिशत)

देश-समूह/देश	1970-71	1987-88
(1) OECD के देश (अमरिका, जापान सहित)	50 0	58 8
(i) अमरिका (ii) जापान	13 5* 13 2*	18·5* 10 3*
(2) ओपेक (OPEC) के देश	6 4	6 2
(3) पूर्वी योरोप के देश	21 0	16 5
(4) विकासशील देश (गैर-ओपेक)	20 0	14·2
(5) अन्य देश	2 6	4 3
कुल	100 0	100 0

1 Economic Survey 1988-89 p 111 के बायीं तरफ का ग्राफ (1987-88 के लिए)

* ये व्यक्तिगत देशों के प्रतिशत अंश हैं। अमेरिका व जापान दोनों OECD ग्रुप में शामिल हैं, व सोवियत संघ पूर्वी योरोप के देशों में आता है। कॉलम को जोड़ते समय इनको अलग रखना चाहिए।

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1987-88 में भारत के निर्यातों में प्रथम स्थान अमेरिका का रहा (18·5%). 1970-71 से 1987-88 की अवधि में सोवियत संघ का स्थान 13·6% से घटकर 12·5% पर आ गया। जापान का स्थान 13·2% से घट कर 10·3% पर आ गया। OECD देशों का अनुपात जो लगभग 1/2 था, अब 59% पर आ गया है। इस प्रकार 1970-71 से 1987-88 की अवधि में हमारे निर्यातों में OECD देशों का स्थान बढ़ा है। पूर्वी योरोप व गैर-ओपेक देशों का घटा है। ओपेक देशों का अंश लगभग स्थिर रहा है।

2. भारत के आयात-व्यापार में परिवर्तन

(i) वस्तु के अनुसार परिवर्तन (Commodity-wise Changes)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय विभाजन के कारण देश के समक्ष कच्चे माल व खाद्यान्नों की समस्या उत्पन्न हो गयी थी। इसलिए विदेशों से कपास, कच्चा जूट व खाद्यान्नों का आयात करना आवश्यक हो गया था। इसके अलावा भारत विदेशों से मशीनें, पेट्रोल व लोहा और इस्पात आदि का भी आयात करता था। धीरे-धीरे पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप आयातों की मात्रा व बनावट में भारी परिवर्तन आया है।

1950-51 में आयातों में मशीनरी का अंश 20·2%, कपास का 15·5% व अनाज व अनाज से बनी वस्तुओं का 8·2% था। 1987-88 में पेट्रोल व इसकी वस्तुओं का अंश 18·2% तथा पूँजीगत माल (मशीनरी व परिवहन-उपकरण) का 28·1% हो गया।[1]

1970-91 से 1987-88 के बीच आयात की वस्तुओं की सापेक्ष स्थिति में जो परिवर्तन हुआ वह अगली तालिका में दर्शाया गया है—

1. Economic Survey 1988-89, p 106 के दायीं ओर का ग्राफ (1987-88 के लिए)

(कुल आयातो का प्रतिशत)

वस्तु	1970-71	1987-88
1 अन्न व अन्न-निर्मित वस्तुएँ	13·0	0 !
2 उर्वरक व उर्वरक माल	6 0	2 0
3. पेट्रोल, तेल व चिकनाई	8 3	18·2
4 पूँजीगत माल (मेटल-पदार्थ, मशीनरी व परिवहन-उपकरण सहित)	24·7	28 I
योग	52·0	48·4

तालिका मे स्पष्ट होता है कि अनाज, उर्वरक, पेट्रोल व पेट्रोल-पदार्थ तथा पूँजीगत माल का कुल आयातो मे अंश 1970-71 व 1987-88 दोनो वर्षों मे लगभग आधा रहा। (लेकिन इसी अवधि मे इनके सापेक्ष स्थान मे काफी परिवर्तन हुआ है। अनाज का आयातो मे अंश 13% से घटकर नगण्य तथा पूँजीगत माल का 25% से बढकर 28% पर आ गया। लेकिन POL का स्थान 8·3% से बढ-कर 18·2% पर पहुँच गया। इस प्रकार 1987-88 मे पेट्रोल, तेल व चिकनाई का आयातो मे लगभग 1/5 अंश पाया गया। पूँजीगत माल का 28% अंश सर्वाधिक था।

(ii) **दिशा के अनुसार परिवर्तन**—अग्र तालिका मे 1970-71 व 1987-88 की अवधि मे विभिन्न देश-समूहो/देशो के अनुसार आयातो के प्रतिशत दिये गये है।[1]

---

1. Economic Survey 1988-89 p. 107 के बायी ओर का ग्राफ (1987-88 के लिए)

(प्रतिशत)

देश-समूह/देश	1970–71	1987–88
(1) आर्थिक सहयोग व विकास सगठन (OECD) के देश	63 7	59 8
(i) अमेरिका (ii) जापान	27 7* 5 1*	9 0* 9 5*
(2) ओपेक (OPEC) के देश	7 7	14 8
(3) पूर्वी योरोप के देश (i) रूस	13 4 6 5*	8 0 5 7*
(4) विकासशील देश (गैर-ओपेक)	14 6	17 3
(5) अन्य देश	0 6	0 1
	100 0	100 0

1987-88 मे आयातो मे सर्वोच्च स्थान फडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी का रहा (9 7%) तथा द्वितीय स्थान अमेरिका का (9%) रहा।

1970–71 से 1987–88 की अवधि मे आयातो मे OECD—समूह के देशो का अश ६ से घटकर लगभग 60% हो गया। अमेरिका का भी 27 7% से घटकर 9% हो गया। जापान तथा ओपेक के देशो का अश बढा। रूस का अश 6 5% से घट कर 5 7 % हो गया। पूर्वी योरोप के देशो का अश घटा तथा गैर-ओपेक विकासशील देशो का अश थोडा बढा।

* ये व्यक्तिगत देशो के प्रतिशत हैं। इसलिए कॉलम के जोड मे शामिल नही होंगे।

3. भारत का प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दो वर्षों (1972–73 व 1976-77) को छोड़कर शेष अन्य वर्षों में भारत के आयातों का मूल्य निर्यातों के मूल्य से अधिक रहा है जिससे व्यापार-संतुलन हमारे विपक्ष में रहा। व्यापार के इस घाटे की मात्रा कभी अधिक व कभी कम रही है।

1960–61 व 1965-66 में भी व्यापार के घाटे की मात्रा काफी ऊँची रही थी। बाद के वर्षों में व्यापार का घाटा कम हुआ। 1972-73 में पहली बार व्यापार-सन्तुलन हमारे पक्ष में रहा। 1976-77 में दूसरी बार व्यापार के खाते में 69 करोड़ रुपयों की मामूली बचत रही। बाद के वर्षों में पुन. व्यापार का घाटा बढ़ता गया और छठी पंचवर्षीय योजना की अवधि (1980-85) में यह 28581 करोड़ रु का हुआ जिससे विदेशी भुगतान की समस्या काफी जटिल हो गई।

1985-86 के लिए व्यापार का घाटा 8763 करोड़ रु रहा जो अभूतपूर्व था। 1986-87 में यह 7749 करोड़ रुपये व 1987–88 में 6658 करोड़ रुपये रहा। ताजा सूचना के अनुसार व्यापार का घाटा 1988–89 में 7412 करोड़ रु रहा है। इस प्रकार 1988-89 में यह पुनः बढ़ा है।

विदेशी व्यापार में घाटा (trade deficit) रहने के कारण

भारत में निरन्तर रहने वाले व्यापार के घाटे के लिए कई कारण उत्तरदायी है जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

1. देश का विभाजन—पहले बताया जा चुका है कि 1947 में देश के विभाजन से खाद्यान्न व कच्चा माल उत्पन्न करने वाले अधिकांश क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये थे जिससे भारत में इनकी अत्यधिक कमी हो गयी थी। इस कमी की पूर्ति के लिए भारत को गेहूँ, चावल, कपास व कच्चे जूट का काफी मात्रा में आयात करना पड़ा था जिससे व्यापार-सन्तुलन भारत के विपक्ष में हो गया था।

2 खाद्यान्नों का निरन्तर अभाव—काफी वर्षों तक भारत में खाद्यान्नों की मांग देश में होने वाली आन्तरिक पूर्ति से अधिक रही थी। देश में प्राय. कम या अधिक मात्रा में अकाल व सूखे की स्थिति पायी गयी है। जिससे खाद्यान्नों का संकट उत्पन्न हो जाता है। सरकार को खाद्यान्नों के अभाव की पूर्ति के लिए भूतकाल में प्रतिवर्ष विदेशों से गेहूँ, माइलो (milo), चावल, आटा आदि का आयात करना पड़ा था। भूतकाल में खाद्यान्नों का अधिकांश आयात अमेरिका से पी.एल. 480 के अन्तर्गत किया गया था। पिछले वर्षों में देश में खाद्यान्नों की स्थिति पहले की अपेक्षा सुधरी है जिससे खाद्यान्नों का आयात घटाना सम्भव हो सका है। लेकिन सूखे की स्थिति का मुकाबला करने के लिए तथा खाद्यान्नों का बफर स्टॉक बनाये रखने के लिए 1984 में इनका शुद्ध आयात लगभग 24 लाख टन किया गया था। लेकिन 1985-87 में खाद्य-स्थिति के ठीक रहने के कारण शुद्ध आयात थोड़ी मात्रा में ऋणात्मक (negative) रहे। अतः भूतकाल में खाद्यान्नों के आयातों ने भी व्यापार के घाटे को बढ़ाया है। 1988 में पुनः सूखे के कारण 18·7 लाख टन खाद्यान्न का आयात किया गया।

आयात-उदारता की नीति

व्यापार के घाटे के बढने का एक कारण आयातो के क्षेत्र मे उदार-नीति का अपनाया जाना है। 1985-88 व 1988-91 की अवधि के लिए स्वीकृत निर्यात-आयात नीति मे आयात-उदारता की नीति अपनायी गयी है जिसके फलस्वरूप आयातो मे काफी वृद्धि हुई है। आयात अर्थव्यवस्था के रख-रखाव के लिए तथा विकास-मूलक दो प्रकार के होते हैं। इनका स्पष्टीकरण नीचे दिया जाता है—

3 अर्थव्यवस्था के रख-रखाव के लिए आयात (Maintenance Imports)—भारत मे द्वितीय योजनाकाल से औद्योगीकरण पर काफी बल दिया गया। देश मे ऐसे कई उद्योग स्थापित किये गये हैं जिनके लिए आवश्यक कच्चा माल व कल-पुर्जे विदेशो से आते है। उद्योगो को चालू रखने के लिए आवश्यक माल व साज-सामान का आयात करना आवश्यक होता है, अन्यथा, उत्पादन को काफी धक्का पहुँचता है। ऐसे आयातो को आसानी से कम भी नहीं किया जा सकता, बल्कि सरकार को इनके सम्बन्ध मे आयात-उदारता की नीति अपनानी पडती है। इन आयातो के अभाव मे औद्योगिक मन्दी की समस्या और भी जटिल हो जाती है।

4 विकासमूलक आयातो की आवश्यकता (Need for Developmental Imports)—भारत को विभिन्न क्षेत्रो मे आर्थिक विकास के लिए नाना प्रकार की विकास-सामग्री की आवश्यकता पडती है। इससे हमारे आयातो पर दबाव पडा है। हम विभिन्न किस्म की मशीनरी (विद्युत व गैर-विद्युत) एव परिवहन के साज-सामान का आयात करना पडता है, हालांकि धीरे-धीरे इनके आयात का स्तर कम होता जा रहा है। कृषि-उत्पादन बढाने के लिये रासायनिक उर्वरको का आयात करना भी आवश्यक हो गया है, क्योकि देश मे होने वाले उर्वरको का उत्पादन मांग की तुलना मे अपर्याप्त रहता है। देश मे विभिन्न अलौह धातुओ (तावा, सीसा, जस्ता व रागा आदि की मांग विभिन्न उद्योगो मे बढ रही है और भारत मे इनका उत्पादन मांग की तुलना मे कम हो पाता है। अतः इनका आयात भी बढाना पडा है।

5. सुरक्षा सामग्री का आयात—1962 म चीन से एव 1965 व 1971 म पाकिस्तान से युद्ध होने के कारण भारत को सुरक्षा-सामग्री के आयात की भी व्यवस्था करनी पडी है जिससे व्यापार-सन्तुलन अधिक प्रतिकूल हुआ है। हाल के वर्षों मे भी सुरक्षा-व्यय बढाया गया है तथा सुरक्षा-सामग्री का आयात करना पडा है। इस प्रकार विकास व सुरक्षा दोनो के लिए ही आयातो पर हमारी निर्भरता बढी है।

6. निर्यातो की वृद्धि दर मे गिरावट—1977-78 से भारत के निर्यातो मे वार्षिक वृद्धि-दर काफी नीची रही है, जबकि आयातो मे उदार आयात-नीति के कारण वृद्धि की दर ऊँची रही है। 1980-81 में आयात लगभग 37% बढे, जबकि निर्यात

2 भारत के निर्यात व आयात की प्रमुख मदो का उल्लेख कीजिए। हाल ही मे निर्यात सवर्द्धन हेतु अपनाई गई नीति की समीक्षा कीजिए।

(Raj II year T.D C., 1985)

(नोट निर्यात सवर्द्धन नीति के लिए अगला अध्याय देखिए।)

3 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय विदेशी व्यापार की सरचना एव दिशाओं मे हुए परिवर्तनो का विवेचन कीजिए।

(Raj IIyr T.D C, 1983)

4 भारत की चार प्रमुख निर्यात तथा आयात की मदे बताइये। हाल के वर्षों में भारत के विदेशी व्यापार की स्थिति की समीक्षा कीजिए।

(Raj IIyr. T.D C. 1980)

5 भारत के विदेशी व्यापार की प्रकृति, मात्रा और दिशा मे वर्तमान प्रवृत्तियो की विवेचना कीजिये।

(Raj IIyr. T.D.C., 1982)

6 पिछले तीन दशको में भारत के विदेशी व्यापार में क्या प्रमुख परिवर्तन हुए हैं? व्याख्या कीजिये।

(Raj. IIyr. T.D.C., 1989)

18

विदेशी व्यापार नीति

(Foreign Trade Policy)

इस अध्याय में हम सरकार की निर्यात-नीति व आयात-नीति पर प्रकाश डालेंगे। साथ ही निर्यात-संवर्द्धन व आयात-प्रतिस्थापन आदि के सम्बन्ध में सरकार द्वारा उठाये गये विभिन्न उपायों का भी विवेचन किया जायगा।

भारत के लिए निर्यात-संवर्द्धन (Export Promotion) की आवश्यकता

भारत के लिए निर्यात बढ़ाने की आवश्यकता निम्न कारणों से है :

1 कुछ वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए—जूट के माल एवं चाय जैसी वस्तुओं का बड़े पैमाने पर विकास निर्यात-बाजार के आधार पर ही किया जा सकता है। इनका उत्पादन केवल घरेलू बाजार को ध्यान में रखकर नहीं बढ़ाया जा सकता।

2 आयातों का भुगतान करने के लिए—एक देश के निर्यात उसके आयातों के लिए भुगतान की व्यवस्था करते हैं। हमें विदेशों से पेट्रोल, तेल व चिकनाई के पदार्थ, मशीनें, उर्वरक, विभिन्न प्रकार का कच्चा माल, खाद्य तेल, आदि का आयात करना पड़ता है। इनका भुगतान करने के लिए निर्यात बढ़ाना आवश्यक है। अल्पकाल में भुगतान की कठिनाई को विदेशी सहायता के माध्यम से कम किया जा सकता है, लेकिन दीर्घकाल की दृष्टि से निर्यात संवर्द्धन करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि अन्त में निर्यातों के द्वारा ही आयातों का भुगतान करना सम्भव होता है।

योजना आयोग ने अनुमान लगाया है कि राष्ट्रीय आय में 1% वृद्धि होने से आयातों में 1 2% की वृद्धि होती है। इसलिए सातवीं योजना में विकास की वार्षिक दर 5% प्राप्त करने के लिए आयातों की मात्रा में 6% वार्षिक दर से वृद्धि करने का अनुमान लगाया गया था। इन आयातों की वित्तीय व्यवस्था करने के लिए निर्यातों में वृद्धि करनी नितान्त आवश्यक है।

3. विदेशी ऋणों का भुगतान करने के लिए—विदेशी ऋणों के ब्याज व मूलधन के भुगतान का भी तरीका निर्यात बढ़ाना ही है। 1988-89 में भारत पर ऋणों की वार्षिक किस्त व ब्याज को चुकाने का भार लगभग 2770 करोड़ रुपये आंका गया है। पिछले वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिये गये कर्ज के भुगतान, घरेलू तेल के उत्पादन की वृद्धि-दर में गिरावट, विश्व व्यापार में संरक्षणात्मक प्रवृत्तियों के बढ़ने व रियायती सहायता के सम्बन्ध में वातावरण के विपरीत होने से भारत के समक्ष विदेशी भुगतान की कठिनाई बढ़ने लगी है। इसका मुकाबला करने के लिए निर्यात बढ़ाकर विदेशी मुद्रा अर्जित करना बहुत आवश्यक हो गया है।

4. आत्म-निर्भरता की ओर अग्रसर होने के लिए—देश में आर्थिक विकास व आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निर्यात-संवर्द्धन आवश्यक माना जाता है। इसमें निर्यात-माल का उत्पादन बढ़ाना होता है तथा साथ में निर्यात-उद्योगों में उत्पादकता भी बढ़ायी जाती है। आत्म-निर्भरता का एक अंग निर्यात-संवर्द्धन होता है तथा दूसरा आयात-प्रतिस्थापन। आयात-प्रतिस्थापन के द्वारा आयातित वस्तुओं का देश में उत्पादन करने का प्रयास किया जाता है ताकि आयातों पर निर्भरता कम की जा सके तथा विदेशी विनिमय की रक्षा की जा सके।

जापान व दक्षिणी कोरिया ने निर्यात बढ़ा कर आर्थिक विकास की गति काफी तेज की है। उन्होंने आयात-प्रतिस्थापन का भी औद्योगिक विकास के लिए सहारा लिया है। प्रायः यह कहा जाता है कि भारत के लिए निर्यात-चालित (export-led) या निर्यात-आधारित (export-based) औद्योगीकरण ठीक नहीं रहता क्योंकि इसकी सम्भावनाएँ सीमित हैं। भारत को घरेलू मांग पर आधारित आर्थिक विकास व औद्योगिक विकास करना चाहिए, तभी रोजगार व आय में अधिक वृद्धि होगी। ये सब बातें बहुत कुछ सही हैं, फिर भी हमें विकास करके निर्यात (growth led export) तो बढ़ाने ही पड़ेंगे। अतः 'निर्यात-आधारित विकास' की जगह 'विकास-आधारित निर्यात' करना भारत के ज्यादा हित में रहेगा। 'विकास-आधारित निर्यात' की नीति को अपना कर भारत में औद्योगिक विकास व निर्यातों में परस्पर समन्वय स्थापित किया जा सकता है, जो इस समय देश के लिए नितान्त आवश्यक है।

निर्यात-संवर्द्धन के लिये किये गये सरकारी प्रयत्न

द्वितीय महायुद्ध की अवधि में निर्यातों पर सरकारी नियन्त्रण की नीति अपनायी गयी थी, लेकिन युद्ध समाप्त होने के बाद, और विशेषतया देश के विभाजन के बाद निर्यात बढ़ाने की नीति पर जोर दिया गया। तृतीय योजना के प्रारम्भ में तो निर्यात बढ़ाने की आवश्यकता और भी तीव्र रूप में प्रकट हो गयी थी, क्योंकि भारत के विदेशी विनिमय-कोष काफी घट गये थे।

सरकार ने निर्यात बढाने के लिए जो उपाय काम मे लिए हैं, उन्हें तीन श्रेणियो मे रखा जा सकता है : (i) सस्थाओ व सगठनो की स्थापना, (ii) राजकोषीय प्रेरणाएँ (fiscal incentives) तथा (iii) अन्य सुविधाएँ। इनका नीचे वर्णन किया जाता है।

संस्थाओ व सगठनो की स्थापना

पिछले वर्षों मे कई सस्थाओ की स्थापना की गई है ताकि निर्यातो मे वृद्धि की जा सके। इस दिशा मे सबसे महत्वपूर्ण कदम वाणिज्य मन्त्रालय द्वारा व्यापार के लिए केन्द्रीय सलाहकार परिषद् (Central Advisory Council on Trade) की स्थापना का है जो एक सलाहकारी सस्था है जिसमे व्यापार व उद्योग के प्रतिनिधि अर्थशास्त्री व सरकारी अधिकारी सदस्य होते हैं। बोर्ड ने हमारे निर्यात-व्यापार को नयी दिशाएँ प्रदान की हैं, निर्यात के मार्ग में आने वाली बाधाओ को दूर करने पर ध्यान दिया है और उत्पादन की समस्याओ का गहन अध्ययन किया है तथा उनको हल करने के व्यावहारिक उपाय सुझाये हैं। जुलाई 1983 मे इसका पुनर्गठन किया गया था। इनमे कई अर्थशास्त्री व विशेषज्ञ शामिल किये गये है। यह परिषद् आयात-निर्यात नीति व कार्यक्रम, आयात व निर्यात व्यापार नियन्त्रणो क सचालन, व्यापारिक सेवाओ के सगठन व विकास तथा निर्यात-उत्पादन के सगठन व विस्तार-सम्बन्धी मामलो पर भारत सरकार को सलाह देती है।

निर्यात प्रोत्साहन मे कृषको उत्पादकों व निर्यातको का सक्रिय सहयोग लेने के लिए 18 निर्यात-सवर्द्धन-परिषदो (Export Promotion Councils) की स्थापना की गयी है। सूती वस्त्र, रेशम व रेयन वस्त्र, प्लास्टिक व लिनोलियम, काजू व काली मिर्च, तम्बाकू, खेल का सामान, रासायनिक पदार्थ, चमडा या लाख, चमडा, इन्जीनियरी का सामान अभ्रक, मसाले, सामुद्रिक वस्तुएँ, बहुमूल्य पत्थर व जवाहरात, हथकरघा, ऊन व ऊनीवस्त्र, तैयार खाद्य-सामग्री व गलीचो के लिए निर्यात सवर्द्धन परिषदें स्थापित की गई हैं। ये इन विशिष्ट वस्तुओ के निर्यात की समस्याओ पर ध्यान देती हैं और सरकार, स्थानीय अधिकारियो व सार्वजनिक सस्थाओं को निर्यात बढाने के लिए आवश्यक सुझाव देती है। ये बाजार-सर्वेक्षण के माध्यम से *विदेशी बाजारो का अध्ययन करती हैं। व्यापार शिष्टमण्डल विदेशो म भेजती है,* विदेशो मे मेलो व नुमाइशो में भाग लेती हैं, प्रचार व सूचना देने एव किस्म नियन्त्रण आदि कार्यों म रुचि लेती है। इनके अतिरिक्त वस्तु-बोर्ड व विकास-परिषदें भी हैं जो विशिष्ट वस्तुओ व उद्योगो के विकास का कार्य देखती हैं। वस्तु-बोर्ड निर्यात बढाने पर भी ध्यान देत है।

निर्यात प्रोत्साहन मे मदद देने वाले अन्य सगठन इस प्रकार है: (1) निर्यात साख व गारन्टी निगम : जनवरी, 1964 के आरम्भ मे निर्यात जोखिम बीमा निगम

को निर्यात साख व गारण्टी निगम (Export Credit and Guarantee Corporation) मे बदल दिया गया था। यह अन्य बीमा कार्यों के साथ-साथ बैंको को निर्यात-बिलो पर पुर्नवित्त के रूप मे मध्यमकालीन निर्यात साख प्रदान करता है। इससे निर्यातको को साख की सुविधा प्राप्त हो जाती है। (ii) भारत की निर्यात जाच परिषद् (iii) राज्य व्यापार निगम (STC) (iv) खनिज व धातु व्यापार निगम (Minerals and Metals Trading Corporation); (MMTC), (v) विदेशी व्यापार का भारतीय सस्थान (Indian Institute of Foreign Trade), (vi) भारतीय निर्यात-आयात बैंक (Exim Bank)—यह जनवरी 1982 मे स्थापित किया गया था। इसने IDBI से वे सभी कार्य ले लिये है जो वह निर्यात-साख, निर्यात-पुनर्वित्त, आदि के सम्बन्ध मे किया करता था। (vii) व्यापारिक मेले, (viii) पंच फैसले के लिए विभिन्न निदेशालय। ये व्यापारिक प्रचार, समाचार, नुमाइशो, प्रेरणाओ व किस्म-नियन्त्रण और परिवहन की देखभाल करते हैं। राज्यो ने भी निर्यात-प्रोत्साहन-सलाहकार-बोर्ड स्थापित किये हैं। विदेशो मे हमारे व्यापारिक प्रतिनिधि भी व्यापार बढाने के लिए आवश्यक सहायता देते हैं।

निर्यात माल की किस्म के नियन्त्रण के लिए भारतीय मानक सस्था (Indian Standards Institution) (ISI) ने नयी वस्तुओ के लिए मानक तय किये है। विदेशी व्यापार के विकास के लिए कई देशो से व्यापारिक समझौते भी किय गये हैं।

6 जून, 1966 के अवमूल्यन से पूर्व सरकार ने निर्यात बढाने के लिए निर्यातको को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ दे रखी थी। उनको कच्चे माल व मशीनो आदि के आयात के लिए अधिकार प्राप्त थे। उत्पादन-शुल्क मे छूट व आयात-शुल्क की वापसी के सम्बन्ध मे सुविधाएँ थी। निर्यात-साख की सहूलियतें भी थी। रेल-भाडे मे भी यथासम्भव छूटें दी जाती थी।

रुपये का अवमूल्यन
(Devaluation of Rupee)

इन उपायो से तृतीय योजना के प्रारम्भिक वर्षों मे हमारे निर्यातो मे काफी वृद्धि हुई है। लेकिन सरकार ने यह देखा कि आन्तरिक मूल्य-स्तर ऊँचा होने से विदेशो मे हमारा माल प्रतिस्पर्धा मे नही टिक पा रहा है। चतुर्थ योजना मे निर्यात बढाना आवश्यक था। इसलिए विश्व बैंक की सलाह व देश की अन्य परिस्थितियो से प्रभावित होकर सरकार ने 6 जून, 1966 को भारतीय रुपये का 36·5 प्रतिशत अवमूल्यन किया था। इससे एक डालर का मूल्य 4·76 रुपये से बढकर 7 50 रुपये और 1 पौण्ड का मूल्य 13·33 रुपयो से बढकर 21 रुपये हो गया था। अवमूल्यन

का उद्देश्य निर्यात बढाना और आयात-प्रतिस्थापन को प्रोत्साहन देना था। निर्यात प्रोत्साहन के पहले के उपाय पूर्णतया कारगर सिद्ध नही हुए थे, इसलिए सरकार को वाघ्य होकर अवमूल्यन करना पड़ा था। अवमूल्यन की घोषणा के साथ ही सरकार ने निर्यात-प्रोत्साहन की कुछ अन्य स्कीमें समाप्त कर दी थी। निर्यात की बारह वस्तुओं पर निर्यात-शुल्क लगा दिये गये थे और आयात-शुल्को मे भी कुछ सशोधन किये गये थे। सरकार ने सोचा कि जिन वस्तुओ की माग विदेशो मे बेलोच है, उन पर निर्यात-शुल्क लगाना उचित होगा।

सरकार ने अनुभव किया कि निर्यात-समस्या का एकमात्र इलाज अवमूल्यन करना नही है। इसलिए अवमूल्यन के बाद की अवधि मे निर्यात बढाने तथा आयात-प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक कदम उठाये गये जो नीचे दिये जाते है—

अवमूल्यन के बाद निर्यात-संवर्द्धन के उपाय

(i) निर्यात उद्योगो को पूँजीगत माल, साज-सामान व कच्चे माल के वितरण मे सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। (ii) 'प्राथमिकता-प्राप्त' उद्योगो को, जिनमे जूट का सामान, चाय, कहवा, सूती वस्त्र आदि शामिल हैं, अपनी पूरी आवश्यकताओ के लिए आयात-लाइसेंस दिये गये। (iii) कच्चा जूट, काजू, चपडा व खालो को खुले सामान्य लाईसेंस (Open General Licence) (OGL) के अन्तर्गत रखा गया ताकि इनका आयात आसानी से किया जा सके। (iv) देशी कच्चा माल, जैसे पिग लोहा, प्राइम इस्पात, टिन प्लेटें, कपास व सूत, प्लास्टिक का कच्चा माल व पोलिथिलीन आदि की उपलब्धि हेतु निर्यात इकाइयों को विशेष सुविधा दी गई। चाय के बागानों को उर्वरक व वित्त की सुविधा दी गई।

सरकार द्वारा निर्यात-संवर्द्धन के उपाय[1]

1966 मे अवमूल्यन के बाद से निर्यात बढाने के लिए नकद सहायता, निर्यात-शुल्को मे कमी एव निर्यात-साख की व्यवस्था बढाने के सम्बन्ध मे आवश्यक कदम उठाये गये जिनका विवरण नीचे दिया जाता है :

1. आयात-पुनर्पूर्ति या पुनर्भरती के लिए लाइसेंस (Import Replenishment Licence (REP) **की व्यवस्था के अन्तर्गत निर्यातकों को विशेष वस्तुओ का निर्यात करने के बदले में आवश्यक कच्चे माल व अन्य वस्तुओं के आयात के लिए लाइसेंस दिये जाते हैं। आयातित माल के वास्तविक प्रयोगकर्त्ताओं** (actual users) **को भी अपने स्वाचालित व पूरक लाइसेंसों के अन्तर्गत निर्यात की एवज में आयात करने के अधिकार दिये गये हैं।** अतः सरकार ने निर्यात बढाने के लिए आयात करने

1. Economic Survey, 1988–89, pp. 114–119.

के विशेष अधिकार दिये जिससे निर्यातो को प्रोत्साहन मिला है। 1984-85 की आयात-नीति मे पुनर्पूर्ति के इन लाइसेंसो के अन्तर्गत निर्यातको को अधिक सुविधाएँ दी गई। आयात की जा सकने वाली मदो का विस्तार किया गया तथा इन लाइसेंसो के तहत आयातित पूँजीगत माल की अधिकतम राशि 50 लाख रुपयो से बढाकर 75 लाख रुपये कर दी गई। इस प्रकार पुनर्पूर्ति के लाइसेंसो (REP Licence) की व्यवस्था का अधिक लचीला व व्यापक बनाया गया है ताकि निर्यातको को अधिक प्रेरणा व अधिक प्रोत्साहन मिल सके।

2. नकद क्षतिपूरक सहायता (Cash Compensatory Support) (CCS)—विभिन्न वस्तुओ का निर्यात बढाने के लिए निर्यातको को नकद सहायता भी दी गई है। यह जून 1966 मे रुपये के अवमूल्यन के बाद प्रारम्भ की गई थी। आजकल इसकी अधिकतम मात्रा जोडे गये मूल्य (Value-added) का 25% होती है जो निर्यात से प्राप्त राशि मे से आयात का अंश घटाने से बची राशि पर आँकी जाती है।

1 जुलाई 1986 से नकद क्षतिपूरक सहायता (CCS) की एक नई स्कीम चालू की गई है। इसके अन्तर्गत आठ वस्तु-समूहो मे 260 मदो को CCS की सुविधा दी गई है। ये आठ वस्तु-समूह इस प्रकार हैं: इन्जीनियरी का माल, रसायन व सहायक पदार्थ, प्लास्टिक की वस्तुएँ, कृषिगत पदार्थ व प्रोसेस की हुई फूड की मदे, चमडे की वस्तुए, खेल का सामान, वस्त्र व दस्तकारी की वस्तुएँ। समय-समय पर CCS के अन्तर्गत आवश्यकतानुसार नई मदे शामिल की गयी है।

3 शुल्क वापसी स्कीम (Duty Drawback Scheme) (DDS)—नकद क्षतिपूरक सहायता के अलावा निर्यात वस्तुओ के इन्पुटो पर लगे आयात-शुल्को व उत्पादन शुल्को की राशिया वापस करने की स्कीम भी लागू रही है। इससे भी निर्यात प्रोत्साहन मे मदद मिली है। लेकिन बिक्री-कर, चुगी-शुल्क आदि वापस नही किये जाते जिससे दिक्कत बनी रहती है।

सरकार ने फरवरी, 1986 से समस्त सीमा-घरो (customs houses) पर वापसी की राशि के वितरण के लिए एक नई व सरल पद्धति लागू की है। वापसी के दावे प्रस्तुत करने के चौबीस घण्टो मे स्वीकृत कर दिये जाते है, तथा रकम निर्यातक के बैंक खाते मे पन्द्रह दिन मे हस्तान्तरित कर दी जाती है। 1 जून, 1986 से एक नई युक्तिसगत DDS लागू की गई है जिससे पोशाक-उद्योग, चमडा उद्योग, ऊनी हस्त-निर्मित गलीचो, आदि को लाभ प्राप्त होता है।

4. निर्यात शुल्कों मे कमी—निर्यात बढाने के लिए जूट कार्पेट-बैकिंग व हैसियन पर से निर्यात-शुल्क हटाया गया है। भूतकाल मे जूट कैन्वस, तिरपाल तथा

निवाड, नारियल के सूत (coir yarn), पशु आहार तथा कॉफी पर से निर्यात शुल्क हटाया गया है।

5 **निर्यात-साख की व्यवस्था**—निर्यातकों को ब्याज-मुक्त बैंक कर्ज भी दिये जाते है, जो उनके वापसी भुगतानो की एवज मे होते हैं। इससे निर्यातकों को यह शिकायत नही रहती कि उनके वापसी भुगतानो (Drawback payments) मे विलम्ब हुआ है। अप्रैल 1986 मे निर्यात-आयात बैंक के तत्वावधान मे 10 करोड र की पूँजी से एक निर्यात-विकास-कोष की स्थापना की गई है। इससे भी निर्यात सवर्धन मे मदद मिलेगी।

6. **निर्यात के लिए उत्पादन बढाने को प्रोत्साहन**—पहले 15 निर्यातोन्मुख इन्जीनियरी उद्योगो को, बिना पूर्व इजाजत के, पाच वर्षो म उत्पादन-क्षमता मे 25 प्रतिशत वृद्धि करने की छूट दी गयी थी। सामुद्रिक वस्तुओ की सप्लाई बढाने के लिए पृथक 'ट्रालर विकास कोष' बनाया गया जो गहरे समुद्र मे काम करने के लिए ट्रालर (जहाज) खरीदने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

7 **सरकार ने कोचीन, मद्रास, कलकत्ता के समीप फाल्टा, तथा नोइडा** (NOIDA) मे चार नये निर्यात प्रोसेसिंग क्षेत्र (Export Processing Zones) (EPZ) स्थापित किये है। एक और क्षेत्र विशाखापटनम म स्थापित करने का प्रस्ताव है। इससे निर्यातो को बढाने मे मदद मिलेगी। निर्यात-प्रोसेसिंग क्षेत्रो मे नई औद्योगिक इकाइयों को पाच वर्ष तक कर-अवकाश दिया जाता है।

इससे पूर्व कादला निर्यात-प्रोसेसिग क्षेत्र 1965 म स्थापित किया गया था जिसमे 100% निर्यात प्रोसेसिंग इकाइया लगायी गई एव सान्ताक्रूज इलेक्ट्रोनिक्स निर्यात प्रोसेसिंग क्षेत्र भी स्थापित किया गया था। लेकिन इनका कार्य विशेष उत्साहवर्धक नही रहा है।

8 **कुछ वस्तुओं के निर्यातो पर प्रतिबन्ध**—सरकार निर्यात करते समय घरेलू आवश्यकताओ पर ध्यान देने का समर्थन करती है। घरेलू उपभोक्ताओ को हानि पहुँचा कर निर्यात नही किया जाता। इसलिए सरकार ने समय-समय पर मूगफली, इसके तेल, अन्य खाद्य-तेल, दालें, सब्जी व आलू तथा प्याज के निर्यात को नियमित व नियन्त्रित किया है। सरकार उपभोग्य वस्तुओ के निर्यात का सीमित करना चाहती है ताकि देश मे इनकी कीमतें व उपलब्धि उचित स्तर पर बनी रहे। लेकिन कुछ लोगो का मत है कि पिछले वर्षो मे भारत से फल, साग-सब्जी, मास आदि का निर्यात काफी बढा है जिससे देश म इनका अभाव उत्पन्न हो गया है तथा आम उपभोक्ता को इनकी ऊँची कीमतें देनी पडी है। सरकार को इस सम्बन्ध मे उपभोक्ताओ के हितो की रक्षा करनी चाहिए।

राज्य-व्यापार निगम के पांच सहायक निगम (subsidiaries) है जो इस प्रकार हैं—(I) भारत का राज्य रसायन व दवाई निगम (State Chemicals and Pharmaceutical Corporation of India Ltd. (CPC) (1) भारत का दस्तकारी व हथकरघा निर्यात निगम लि. (Handicrafts and Handloom Exports Corporation of India) (HHEC) (1) भारत का प्रोजेक्ट व उपकरण निगम लि. (Projects and Equipment Corporation of India Ltd.) (PEC) (4) भारत का काजू निगम लि. (Cashew Corporation of India Ltd. (CCI) तथा (3) भारत का केन्द्रीय कुटीर उद्योग लि. (Central Cottage Industries Corporation of India Ltd.) (CCIC)। यह HHEC का सहायक निगम है।

व्यापार विकास प्राधिकरण (Trade Development Authority)–निर्यात बढाने की दिशा मे व्यापार-विकास प्राधिकरण सस्था (TDA) की स्थापना एक नवीन तथा प्रगतिशील कदम कहा जा सकता है। इसका विधिवत् उद्‌घाटन 18 फरवरी, 1971 को किया गया था।

इस सस्था के माध्यम से निर्यात-सवर्धन के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया गया है। निर्यात के क्षेत्र मे स्थायी वृद्धि व प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि इस विषय मे व्यष्टि-दृष्टिकोण (micoro-approach) अपनाया जाय। निर्यात की वस्तु, निर्यातक व विदेशी बाजार के सम्बन्ध मे गहन अध्ययन व अन्य कार्य करके निर्यात बाजार विकसित करना ही इस सस्था का प्रमुख लक्ष्य है।

व्यापार-विकास प्राधिकारी सस्था (TDA) के कार्यकलापो मे चार सिद्धान्तो का ध्यान रखा गया है, (1) यह उन सेवाओ को प्रदान करता है जो अन्य सस्थाओ से प्राप्त नही होती; (2) यह सेवाओ के स्तर मे सुधार करता है, (3) यह विभिन्न सेवाओ मे ताल-मेल स्थापित करता है और (4) यह निर्यातको के लिए अनुसधान व सूचना-केन्द्र का भी काम करता है।

निर्यात-संवर्द्धन के लिए सुझाव

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है 1987-88 मे व्यापार का घाटा 6658 करोड रु. व 1988-89 मे 7412 करोड रु. रहा है। अत: यह 1988-89 मे पुन बढ गया है। छठी पचवर्षीय योजना की कुल अवधि (1980-85) मे व्यापार का घाटा लगभग 286 अरब रुपये रहा था। ऐसी स्थिति मे भारत के लिए निर्यात बढाना अत्यावश्यक हो गया है।

निर्यात बढाने का प्रश्न अत्यन्त जटिल है। यह भारत के समक्ष एक महान् चुनौती के समान है। इसका हल निकालने के लिए हमे अग्र दिशाओ मे लगातार प्रयत्न करने होंगे :

1 देश मे कृषिगत पदार्थों एवं औद्योगिक उत्पादन मे तेजी से वृद्धि की जानी चाहिए। कृषिगत पदार्थों मे चाय, कॉफी, फल, सब्जी तम्बाकू, काजू की गिरी, कपास चावल व गेहूँ, मसालो आदि का उत्पादन बढाया जाना चाहिए। उत्पादन बढ़ाकर निर्यात के लायक बचतो से वृद्धि की जा सकती है। गैर-परम्परागत निर्यातो जैसे इंजीनियरी माल दस्तकारी का माल रेडीमेड वस्त्र, आदि म उत्पादन बढाना बहुत आवश्यक हो गया है।

2 **निर्यात के लायक वस्तुओ के घरेलू उपभोग को उचित सीमा मे नियन्त्रित रखना होगा।** जिन वस्तुओ के निर्यात को बढाना है उनके घरेलू उपभोग की वृद्धि की दर को अवश्य नियन्त्रित करना होगा। विदेशी मुद्रा अर्जित करन के लिए यह त्याग करना आवश्यक हो गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है सरकार उपभोग्य वस्तुओ के निर्यात को सीमित करने के पक्ष मे है। देश मे उपभोक्ता के हितो की बलि देकर आवश्यक उपभोग की वस्तुओ के निर्यात नही बढाया जाना चाहिए। भारत मे मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए उपभोग्य वस्तुओ के निर्यात पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

3 **निर्यात-उद्योगो को कच्चा माल उपलब्ध किया जाना चाहिए।** माल की किस्म सुधारी जानी चाहिए व उत्पादन लागत कम करनी चाहिए जिससे विश्व के बाजारो मे हम प्रतिस्पर्धा मे टिक सके। सरकार ने अभी तक उन वस्तुओ के उत्पादन पर अधिक ध्यान दिया है जो विदेशो से आयात नही की जा सकती है अथवा जो आयात की वस्तुओ के प्रतिस्थापक के रूप मे काम आ सकती है। भविष्य म निर्यात उद्योगो पर अधिक ध्यान देने से देश को विशेष लाभ हो सकता है।

4 **निर्यातो मे वस्तुओ व बाजारों के अनुसार विविधता लायी जानी चाहिए।** भारत के लिए निर्यात की वस्तुओ मे विविधता लाना तथा नये बाजारो की तलाश करना बहुत जरूरी हो गया है। भविष्य मे दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी एशिया, पश्चिमी एशिया और अफ्रीका की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इन देशो को अपने आर्थिक विकास के लिए मशीनो कल-पुर्जो व कच्चे माल की आवश्यकता होती है। यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशो जैसे फ्रास ब्रिटेन फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी वगैरा को भी निर्यात बढाना चाहिए। रूस व पूर्वी यूरोप के देशो को भी निर्यात बढाया जा सकता है। साथ मे गैर-परम्परागत वस्तुओ का निर्यात भी बढाया जाना चाहिए।

भारत को आगामी वर्षो मे निर्यात की दिशा और बनावट दोनो म काफी परिवर्तन लाना होगा। निर्यात की प्रचलित वस्तुओ का नयी दिशाओ म भेजने की व्यवस्था करनी होगी और नयी वस्तुओ को औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशो का निर्यात करने की कोशिशें करनी होगी।

भारत प्रयत्न करके जापान व केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था वाले देशों से निर्यात-व्यापार काफी बढा सकता है। केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था वाले देशो में व्यापार बढाने से हमारे निर्यात-व्यापार मे अधिक स्थिरता भी आयेगी। राज्य-व्यापार निगम को इस दिशा मे विशेष प्रयास करना चाहिए।

भारत को कच्चे लोहे का निर्यात बढाने का सुअवसर प्राप्त है। इसके अलावा उसे लोह व इस्पात, पिग लोहा व इस्पात की निर्मित वस्तुओ का निर्यात भी बढाना चाहिए। भारत से नली व डिब्बे की मछलियो का निर्यात भी बढाया जा सकता है। नयी वस्तुओ मे साइकिलो, कपडा सीने की मशीनो, बिजली की मोटर, मशीन टूल्स, आदि का निर्यात बढाया जाना चाहिए। भारत को बासमती चावल, फल-फूल व सब्जी, कच्चा लोहा, सामुद्रिक वस्तुओ तथा स्वर्ण-आभूषणो के निर्यात पर अधिक ध्यान देना चाहिए। हमे विदेशी पर्यटको को भी आकर्षित करना चाहिए। भारत से प्रोजेक्ट व सलाहकारी सेवाओ के निर्यात भी बढाये जा सकते हैं। खाडी के देशो व अफ्रीकी देशो को प्रोजेक्ट-निर्यात बढाये जाने चाहिए। इनमे निर्माण (Construction) प्रोजेक्ट मुख्य होते है।

5 विकसित देश उदार नीति अपनाएं—निर्यात बढाने के समस्त प्रयत्न तभी सफल हो सकते हैं जब विकसित देश उदार आयात नीति अपनायें और विकासोन्मुख देशो की बनी हुई वस्तुओ का अधिक मात्रा मे आयात करे। विकसित देशो द्वारा विकासशील देशो को केवल ऋण देकर ही अपनी जिम्मेदारी की इतिश्री नहीं माननी चाहिए, बल्कि अल्प-विकसित देशो का बना हुआ माल खरीद कर भी उनको आर्थिक विकास मे पर्याप्त सहयोग देना चाहिए। उन्हे आर्थिक सहायता (aid) के साथ-साथ व्यापार (trade) की सुविधा भी प्रदान करनी चाहिए। इस बात को अधिक उपयुक्त व सरल शब्दो म इस प्रकार कहा जा सकता है कि विकासशील देशो का निर्यात-संवर्द्धन कार्यक्रम तभी सफल हो सकता है जबकि विकसित देश अपने यहाँ आयात-संवर्द्धन-कार्यक्रम अपनाएँ। इसके लिए विकसित देशो को सरक्षणवाद (protectionism) का परित्याग करना होगा एव आयातो पर प्रतिबन्ध कम करने होंगे।

6 निर्यात बढाने के लिए दीर्घकालीन निर्यात-नीति की आवश्यकता है[1]—उद्योगपतियों का कहना है कि अब तक भारत मे संयन्त्रो की लागत कम नहीं होती

---

1 1970 85 की अवधि म निर्यातो के विश्लेषण के लिए नवीनतम व सर्वश्रेष्ठ लेख Deepak Nayyar, India's Export Performance, 1970-85 EPW, Annual Number 1987, pp. AN-73 से AN 90 (December, 1987).

इसके अलावा टण्डन समिति ने चमडा व चमडे की वस्तुओ, आभूषण व हीरे, वस्त्र व इंजिनियरिंग पदार्थों आदि का निर्यात बढाने के लिए पृथक सुझाव भी दिये थे। सरकार ने टण्डन समिति के सुझावो के आधार पर निर्यात-संवर्द्धन कार्यक्रम अपनाने का प्रयास किया है।

आयात-निर्यात नीति पर आबिद हुसैन समिति ने दिसम्बर 1984 मे अपनी रिपोर्ट सरकार को पेश की थी। इसकी सिफारिशो के आधार पर 1985-88 तथा 1988-91 की अवधि के लिए सरकार द्वारा आयात-निर्यात नीतियाँ घोषित की गई हैं। आबिद हुसैन समिति ने त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति की घोषणा करने की सलाह दी थी, ताकि इस क्षेत्र मे अनिश्चितता कम की जा सके। इसने स्वचालित लाइसेन्सो की श्रेणी को समाप्त करने विनिर्माता-निर्यातको के लिए एक आयात-निर्यात पास बुक की स्कीम प्रारम्भ करने तथा उन उपक्रमो द्वारा आयात मे भाग लेने का समर्थन किया जो उस मद के विनिर्माण से सम्बद्ध नही थे। समिति ने आयातो को नियमित करने के लिए प्रशुल्को के उपयोग का समर्थन किया जिसे सरकार ने अपनी दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में शामिल किया है।

व्यापारिक समझौते
(Trade Agreements)

पहले बताया जा चुका है कि भारत ने निर्यात बढाने के लिए जो उपाय काम मे लिए हैं उनमे एक उपाय अन्य देशो से व्यापारिक समझौते करना भी है।

भारत ने समय-समय पर विभिन्न देशो से द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते (Bilateral Trade Agreements) किये हैं। ऐसे अधिकांश समझौते 1953 और 1954 म सम्पन्न किये गये थे। उन वर्षों मे ये समझौते केवल इस अर्थ म द्विपक्षीय होते थे कि दोनो देश आयात व निर्यात के माल की सूची निर्धारित किया करते थे।

1958 के बाद के द्विपक्षीय व्यापारिक समझौतो ने रुपयो मे भुगतान किये जाने वाले समझौतों (Rupee Payment Agreements) का रूप ग्रहण किया है। इन द्विपक्षीय भुगतान समझौतो के अन्तर्गत समझौता करने वाले दो देश एक चालू खाते की बकाया के आधार पर व्यापारिक और गैर-व्यापारिक सौदो का समायोजन करते हैं। मान लीजिये, भारत व रूस म इस प्रकार का व्यापारिक समझौता होता है तो इसका आशय यह होगा कि भारत रूस से माल का आयात कर लेता है और रूस उस रकम को रुपयो म भारतीय रिजर्व बैंक के पास अपने नाम के खाते मे जमा कर देता है। फिर रूस भारत से वस्तुएँ खरीदता है और उनका भुगतान इस खाते की रकम मे से कर दिया जाता है। इस प्रकार एक विशेष समय मे चाहे यह

खाता सन्तुलन में न हो, लेकिन एक अवधि विशेष मे यह खाता अवश्य सन्तुलित होगा।

इन समझौतो की कार्य-विधि से इनके निम्न उद्देश्य सामने आये हैं

(1) पूर्वी यूरोपीय देशो से प्रत्यक्ष या सीधे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना (2) विदेशी विनिमय साधनो पर अतिरिक्त दबाव डाले बिना पूंजीगत माल व औद्योगिक कच्चा माल प्राप्त करना (3) परम्परागत निर्यातो के मूल्यो को स्थिर करना (4) आयातो का उपयोग निर्यातो के स्वचालित विस्तार के लिए करना (5) विदेशी विनिमय का अधिकाश अंश प्राप्त करने के लिए कुछ परम्परागत निर्यात बाजारो व निर्यात वस्तुओ पर से निर्भरता कम करना (6) गैर परम्परागत निर्यातो के लिए बाजार विकसित करना।

रुपयों में भुगतान करने वाले देशो से भारत के विदेशी व्यापार में प्रगति

योजनाकाल म भारत का पूर्वी यूरोप के देशो जैसे रूस चेकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी यूगोस्लाविया पोलैंड हगरी रोमानिया व बुल्गारिया से व्यापार काफी बढा है। कुछेक वर्षों को छोडकर रूस के साथ व्यापार सन्तुलन भारत के पक्ष म रहा है। रूस को हमारे निर्यातो की राशि वहा से किये गये आयातो की राशि से अधिक रही है। पूर्वी यूरोप से भारत के बढते हुए व्यापार का प्रमाण इस बात से मिलता है कि 1955-56 मे इस क्षेत्र म हमारे आयातो का 1 4% और निर्यातो का 0 9% ही प्राप्त हुआ था जो बढ़कर 1987-88 म आयातो का 8%, और निर्यातो का 16 5% हो गया। इस प्रकार 1987 88 म हमारे आयातो का 1/12 भाग पूर्वी यूरोप के देशो से आया और हमारे निर्यातो का 1/5 भाग से कुछ कम इन देशो को भेजा गया। हमने इन देशो को परम्परागत वस्तुओ म चमडा व खालें काजू चाय कच्चा लोहा जूट का माल व मसालो का निर्यात किया है और गैर-परम्परागत वस्तुओ मे पोशाको जूतो बिजली की मशीनरी व अन्य मशीनरी, धातु-निर्मित माल दवाइयो आदि का निर्यात किया है। इनसे किय जाने वाले आयातो म खाद रसायन मशीनरी व साज सामान पेट्रोल के पदार्थ तथा कागज आदि प्रमुख रहे हैं।

भारत को अपनी बदलती हुई अर्थव्यवस्था के लिए विभिन्न प्रकार के कच्चे माल व अलौह धातुओ जैसे ताबा रागा सीसा व जस्ता आदि की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति रूस व अन्य देश कर सकते है। भारत को पूर्वी यूरोपीय देशो से व्यापार करने से काफी लाभ पहुँचा है। हम आवश्यक वस्तुओ के आयात म सुविधा मिली है और नये बाजार प्राप्त करने का सुअवसर मिला है। भविष्य म इन

देशों से भारत का व्यापार और बढ़ सकता है। हम रूस से मुख्यतया क्रूडतेल, उर्वरक व अलौह धातु का आयात करते हैं।

आयात-प्रतिस्थापन (Import Substitution)

पिछले कुछ वर्षों में आर्थिक विकास, आर्थिक सुरक्षा व आर्थिक आत्म-निर्भरता सभी दृष्टियों से आयात-प्रतिस्थापन व निर्यात-संवर्द्धन पर काफी जोर दिया गया है। द्वितीय योजना के प्रारम्भ में महलानोबिस विकास-नीति में भारी उद्योगों पर अधिक बल देने के कारण आयात-प्रतिस्थापन पर आधारित औद्योगिक विकास की नीति पर अधिक जोर दिया गया था। बाद में कुछ सीमा तक निर्यात-चालित औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने जोर पकड़ा। यहाँ पर हम आयात-प्रतिस्थापन के विविध पहलुओं पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि इस दिशा में अब तक कितनी प्रगति हुई है और इस सम्बन्ध में भावी सम्भावनाएँ क्या हैं ?

भारत में विदेशी विनिमय के अभाव और अनिश्चित विदेशी सहायता के कारण आयात-प्रतिस्थापन की आवश्यकता बढ़ी है। 1962 में चीनी आक्रमण और 1965 व 1971 में पाकिस्तान से युद्ध होने से आयात-प्रतिस्थापन देश की सुरक्षा के लिए भी बहुत जरूरी हो गया था।

प्रगति—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में कई नये उद्योग स्थापित किये गये हैं जिससे कुछ वस्तुओं का आयात समाप्त कर दिया गया है और कुछ का आयात काफी मात्रा में कम कर दिया गया है।

आगे की नवीनतम तालिका में कुछ वस्तुओं के आयातों का देश की कुल उपलब्धि से अनुपात (import-availability ratio) बतलाया गया है।[1] जिस सीमा तक यह अंश घटा है उस सीमा तक आयात-प्रतिस्थापन हुआ माना जा सकता है।

---

1 Isher Judge Ahluwalia, Industrial Growth In India : Stagnation Since the Mid-Sixties, 1985, p. 119.

वस्तु/वस्तु-समूह	1959-60	1979-80
1. वस्त्र (Textiles)	2·9	1·9
2 लकड़ी व कोर्क	22·1	2 9
3. कागज व कागज की वस्तुएँ	23·4	18·2
4. चमड़ा व फर की वस्तुएँ	5 4	0 1
5. रबड़ का माल	11·5	8·1
6. रसायन व रसायन वस्तुएँ	30·0	19 5
7. पेट्रोल-पदार्थ	43·9	42·3
8. बेसिक धातु	32·3	22·7
9. गैर-विद्युत मशीनरी	65·8	30·6
10 विद्युत मशीनरी	38·1	9·9
11 परिवहन-उपकरण	25 7	11·1

इस प्रकार 1959-60 से 1979-80 के दो दशकों में मशीनरी, रसायन, कागज, वस्त्र, परिवहन-उपकरण वगैरा में आयात-प्रतिस्थापन हुआ है।

हमारी अर्थव्यवस्था के अन्दर आयात-प्रतिस्थापन की प्रवृत्ति लागू हो गई है। भविष्य में औद्योगिक उत्पादन में विविधता लाकर इसे और भी सुदृढ़ किया जा सकता है। सुरक्षा के सामान में भी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति घरेलू स्रोत से होने लगी है। आयात-प्रतिस्थापन की दिशा में हमारी प्रगति सन्तोषजनक मानी जा सकती है।

भारत में 1965-66 के बाद आयात-प्रतिस्थापन की गति धीमी हुई है। इसका औद्योगिक विकास में योगदान कम हो गया है। लेकिन यह कोई नई बात नहीं है। कोरिया, सिंगापुर व तैवान में भी शुरू में आयात-प्रतिस्थापन पर जोर दिया गया था। बाद में वहाँ भी निर्यात-संवर्द्धन पर बल दिया गया। लेकिन हमारे देश में आयात प्रतिस्थापन बहुत कुछ अकार्यकुशल व महँगा किस्म का रहा है।

आयात-प्रतिस्थापन की अपनी समस्याएँ हैं जैसे शुरू में ऊँची उत्पादन-लागत, उत्पादन की घटिया किस्म और अकार्यकुशलता। अतः आयात प्रतिस्थापन के लिए उद्योगों के चुनाव में आवश्यक सावधानी बरती जानी चाहिए। हमें अनावश्यक आयातों को बन्द करना चाहिए। विलासिता की वस्तुएँ बनाने वाले उद्योगों को अपना विदेशी विनिमय स्वयं अर्जित करना चाहिए।

हमें उन क्षेत्रों का पता लगाना चाहिए जिनमें आयात-प्रतिस्थापन अधिक सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। हमें मशीनरी व परिवहन के साज सामान का आयात घरेलू पूर्ति को बढ़ाकर कम करना चाहिए। लेकिन हमें अलौह धातुओं के लिए विदेशों पर काफी सीमा तक निर्भर रहना पड़ेगा। रासायनिक उद्योग की प्रगति होने से रसायनों के आयात में कमी की जा सकती है। कृषिगत उत्पादन बढ़ाकर खाद्यान्नों का आयात कम किया जाना चाहिए।

भविष्य में इस्पात, अलौह धातु खनिज तेल, उर्वरक, रासायनिक पदार्थ व खाद्यान्नों का आयात घरेलू उत्पादन बढ़ाकर कम किया जाना चाहिए। आयात-प्रतिस्थापन की ये दशाएँ राष्ट्र के लिए सर्वाधिक लाभकारी होंगी। सरकार को परिवहन व शक्ति का समुचित विकास करके और निजी क्षेत्र को आवश्यक प्रोत्साहन देकर घरेलू उत्पादन बढ़ाने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

अब आयात-प्रतिस्थापन के लिए दिशाएँ अधिक स्पष्ट हो गई हैं जिनकी तरफ तेजी से बढ़ना चाहिए।

आयात प्रतिस्थापन देश के लिए आवश्यक है, लेकिन इसकी लागत पर भी ध्यान देना होगा। इसके लिए विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में योजना-काल में बहुत कुछ बिना सोचे-समझे आयात-प्रतिस्थापन किया गया जिससे अर्थव्यवस्था पर अधिक भार पड़ा है। भारत में आयात-प्रतिस्थापन काफी महँगा रहा है। एक डालर विदेशी मुद्रा बचाने के लिए एक डालर से ज्यादा मूल्य के घरेलू साधन खर्च किए हैं। लेकिन आयात-

प्रतिस्थापन से रोजगार, उत्पादन व आमदनी पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है। यदि चुने हुए क्षेत्रों में लागत-लाभ के आधार पर अधिक कार्यकुशल किस्म का आयात-प्रतिस्थापन किया जाता तो देश को अधिक लाभ हो सकता था। कुछ विद्वानों का मत है कि यदि भूतकाल में निर्यात-संवर्द्धन पर अधिक बल दिया जाता तो देश को अधिक लाभ पहुंच सकता था।

आज की स्थिति में निर्यात-संवर्द्धन व चुने हुए क्षेत्रों में कार्यकुशल आयात-प्रतिस्थापन दोनों की समान रूप से आवश्यकता है। इससे विदेशी विनिमय साधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सकेगा।

आयात-प्रतिस्थापन पर अग्रवाल-पेनल के सुझाव[1]

सरकार ने जून 1979 में श्री एस. एम. अग्रवाल की अध्यक्षता में आयात-प्रतिस्थापन को बढ़ावा देने के लिए तकनीकी, आर्थिक व राजकोषीय नीतियों की समीक्षा करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी। समिति ने अक्टूबर 1980 में आयात-प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में अपनी निम्न सिफारिशें पेश की थीं

1 भविष्य में पूंजी-गहन व उच्च टैक्नोलोजी के क्षेत्रों में लाइसेंस देते समय यह देखा जाना चाहिए कि उत्पादन की इकाइयों का आकार अनुकूलतम, सक्षम व आर्थिक किस्म का हो, ताकि इकाई लागत कम की जा सके। प्रचलित इकाइयों को भी विस्तार की सुविधा दी जानी चाहिए ताकि वे उत्पादन-क्षमता के पुनर्स्थापन व आधुनिकीकरण के द्वारा उत्पादन का आर्थिक स्तर प्राप्त कर सकें। इस प्रकार 'पैमाने की किफायतों' को प्राप्त करने पर ध्यान आकर्षित किया गया है जो उचित माना जा सकता है क्योंकि इससे उत्पादन-लागत कम होगी और भारत की औद्योगिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति सुधरेगी।

2 समिति का सुझाव है कि लाइसेंस से मुक्ति/छूट की 3 करोड़ रुपये की सीमा पर संयन्त्रों व उपकरणों तथा अन्य सामान की बढ़ती हुई लागतों के सन्दर्भ में समय समय पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

3 प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में विनियोग बढ़ाने के लिए समिति का सुझाव था कि औद्योगिक लाइसेंसिंग से मुक्त 24 उद्योगों तथा अन्य 29 उद्योगों की सूची का भी विस्तार किया जाय जिन्हें 1975 में अपनी क्षमता का बिना किसी सीमा के उपयोग करने की इजाजत दी गई थी। इसमें आयात-प्रतिस्थापन वाले उद्योगों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

4 पेट्रोल व खाद्य-तेलों का उत्पादन बढ़ाया जाना चाहिए।

---

1 The Economic Times October, 17, 1980.

5 समिति ने विदेशी उत्पादकों द्वारा भारत में अपना पूँजीगत माल कम दामों पर बेचकर देश को क्षति पहुँचाने के सम्बन्ध में भी सावधान किया है।

आर्थिक सलाहकार परिषद (EAC) के अध्यक्ष डा सुखमोय चक्रवर्ती का मत है कि भारत को वर्तमान विदेशी भुगतान की समस्या को हल करने के लिए उन क्षेत्रों में आयात-प्रतिस्थापन पर अधिक जोर देना चाहिए जिनमें घरेलू उत्पादन की क्षमता अधिक मात्रा में पायी जाती है । ऐसे क्षेत्र निम्नांकित हैं ' इस्पात उर्वरक खाद्य-तेल आदि । डा चक्रवर्ती का कहना है कि निर्यात-संवर्द्धन से भी ज्यादा आयात-प्रतिस्थापन पर भरोसा करना देश के हित में होगा ।

सरकार की आयात-नीति

(Import Policy of the Government)

भारत सरकार की आयात-नीति में समय-समय पर परिवर्तन किये गये है । कभी यह उदार रही है तो कभी कठोर । परिस्थितियों के बदलने पर यह पुन उदार बना दी गयी है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आयात-नीति उदार रखी गयी थी जिससे आयातों में काफी वृद्धि हुई । मई 1949 में आयातों पर प्रतिबन्ध लगाया गया । 1950-51 में आयातों में पुन उदारता बरती गयी । आयातों की सूची में कई वस्तुएँ जोडी गई । 1953 में भी आयात के क्षेत्र में उदार नीति अपनायी गयी थी, लेकिन कई वस्तुओं पर आयात-शुल्क बढाये गए जिससे उनके उत्पादन को प्रोत्साहन मिला । 1955-56 में भी आयात-नीति का उद्देश्य देश के आर्थिक विकास में योगदान देना रखा गया था और कच्चे माल व मशीनों के आयात के सम्बन्ध में उदार नीति अपनायी गयी थी । इस उदार नीति के परिणामस्वरूप 1956-57 व 1957-58 में आयात अपनी चरम सीमा तक पहुँच गये थे और इन दो वर्षों में लगभग 481 करोड रुपयों के विदेशी विनिमय-कोष खाली हो गये थे ।

देश के समक्ष विदेशी विनिमय संकट के आने से 1957 के मध्य से उदार आयात-नीति छोड दी गई और आयातों पर कडे प्रतिबन्ध लगाये गये । आयात-नियन्त्रण को केवल नकारात्मक रूप से ही नहीं देखा गया बल्कि इसे देश के औद्योगिक विकास के लिए काफी लाभदायक माना गया । इसके लिए कच्चे माल व मशीनों के आयात पर बल दिया गया । साथ में, विदेशी विनिमय की रक्षा करने के लिए उपभोग्य वस्तुओं के आयात में कमी करना भी आवश्यक समझा गया । निर्यात उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल व अन्य साज-सामान के आयात को महत्व देना स्वीकार किया गया । फरवरी, 1962 में आयात-निर्यात समिति (मुदालियर समिति) ने आयात-नीति व पद्धति के सम्बन्ध में कई उपयोगी सुझाव दिये थे ।

अवमूल्यन के बाद आयात-उदारता की नीति (Import Liberalisation After Devaluation)—6 जून, 1966 को रुपये के अवमूल्यन के बाद सरकार ने 59 प्राथमिकता-प्राप्त उद्योगों को छः महीने के आधार पर कच्चा माल व अन्य आवश्यक साज-सामान मँगाने के लिए उदारतापूर्वक आयात-लाइसेन्स देने की नीति अपनायी ताकि औद्योगिक उत्पादन बढ़ सके और उद्योगों की अप्रयुक्त उत्पादन-क्षमता का अधिक उपयोग किया जा सके।

1967-68 व 1968-69 में जो आयात-नीति अपनायी गयी वह भी निर्यात बढ़ाने वाली थी। इससे निर्यात उद्योगों की इकाइयों को आयात-लाइसेन्स की सुविधा दी गई। आयात नीति के माध्यम से अनावश्यक आयातों पर पूर्ण प्रतिबन्ध एवं अन्य कई मदों के आयातों पर आंशिक प्रतिबन्ध लगाने की नीति अपनायी गयी। इस प्रकार आयात नीति में 'प्रेरणाओं एवं सजाओं' के उचित सम्मिश्रण के कारण इसे 'Carrot and Stick' की नीति कहा गया है।

पिछले वर्षों में आयात नीति की विशेषताएं

हम 1985-88 व 1988-91 के लिए त्रिवर्षीय निर्यात-आयात नीतियों की चर्चा करने से पूर्व 1969-85 की अवधि में अपनायी गयी आयात नीति अथवा निर्यात आयात नीति की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे। ये नीचे दी जाती हैं

1 सरकार ने उत्तरोत्तर अधिक वस्तुओं के आयातों को अपने हाथ में लेने की नीति अपनायी है। इसके लिए वस्तुओं की सूची को सरकारी सूची (canalised list) कहते हैं। इस सूची में शामिल वस्तुओं के आयात किसी सार्वजनिक एजेन्सी को सौंप दिये जाते हैं। प्रति वर्ष जब आयात-निर्यात नीति घोषित की जाती है तब इस सूची में भी परिवर्तन किये जाते हैं। प्रायः कुछ नई मदें सरकारी सूची में जोड़ी जाती हैं और कुछ पुरानी मदों को इसमें से हटाया भी जाता है (decanalised)।

प्रश्न उठता है कि सरकार ने आयातों की बढ़ती हुई मात्रा को सार्वजनिक प्रबन्ध में लेने का प्रयास क्यों किया? दाग्ली समिति ने नियन्त्रणों व सब्सिडी पर अपनी रिपोर्ट में इनके कई कारण दिये हैं जैसे आयातों के बिलों में ऊँचे भाव लगाने की प्रचलित गलत पद्धति को रोकना, समाजवादी देशों से व्यापार बढ़ाना, अभाव को दूर करने के लिए देश में शीघ्रता से आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई को बढ़ाना, आवश्यक कच्चे माल के आयात की व्यवस्था करके लघु उद्योगों के हितों की रक्षा करना एवं नियोजन की आवश्यकताओं के मुताबिक विदेशी व्यापार को संचालित करना, आदि।

इस प्रकार सरकार ने कई वस्तुओं के आयातों को सार्वजनिक प्रबन्ध में लेकर आयात व्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया है। राज्य व्यापार निगम (STC) सार्वजनिक व्यापार की मुख्य एजेन्सी रहा है।

2 कई प्रकार की वस्तुओं के आयातों को बन्द करने तथा कम करने की नीति अपनायी गयी है। आयातों पर नियन्त्रण के लिए तीन सूचियां होती हैं— निषेधात्मक (banned), प्रतिबन्धित (restricted) तथा स्वतन्त्र (free)। जो मदें निषेधात्मक सूची में होती हैं उनका आयात नहीं हो सकता। प्रतिबन्धित आयात सूची में आयात एक सीमा से अधिक नहीं किये जा सकते। स्वतन्त्र सूची को खुले जनरल लाइसेन्स (Open General Licence) (OGL) की सूची कहा जाता है जिसमें आयात की खुली इजाजत दी जाती है। इस प्रकार इन तीन सूचियों के जरिए सरकार सीमित विदेशी विनिमय का सर्वोत्तम उपयोग करने का प्रयास करती है। मदें आवश्यकतानुसार एक सूची से दूसरी सूची में ट्रान्सफर की जाती हैं।

1984-85 की आयात नीति में निषेधात्मक सूची (banned list) समाप्त कर दी गई क्योंकि अब इस सूची का कोई अर्थ नहीं रह गया था। इसमें शामिल वस्तुएँ पुनर्पूर्ति लाइसेन्सों (REP licences) आदि के अन्तर्गत आयात करने दी जाती हैं। इसमें केवल एक मद टेलो या चर्बी रह गई थी।

3 लघु उद्योगों के विकास के लिए आयात-निर्यात में विशेष सुविधाएँ दी गयी हैं ताकि ये पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित किये जा सकें। इनके लिए आवश्यक कच्चे माल कल-पुर्जे तथा मशीनरी आदि के आयात की व्यवस्था की जाती है। सरकार की उदार आयात नीति में इन विशेष सुविधाओं का विस्तार किया गया है। पिछले वर्षों में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों को लघु उद्योग स्थापित करने के लिए विशेष रियायतें दी गयी हैं। लघु पैमाने की औद्योगिक इकाइयों के लिए पुन लाइसेंस (repeat licence) देने की सीमा बढ़ायी गयी है। इस प्रकार आयात नीति में लघु उद्योगों के हितों का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है। इनके लिए मशीनों व मशीनी औजारों के आयात की व्यवस्था भी की गयी है।

4 अनिवार्य निर्यात कार्यक्रम का उत्तरोत्तर विस्तार किया गया है ताकि भारत के निर्यात बढ़ सकें। निर्यात उद्योगों के लिए कच्चे माल आदि की सुविधाएं बढ़ायी गयी हैं। 1983–84 की आयात-निर्यात नीति में 100% माल निर्यात करने वाली इकाइयों को अधिक सुविधाएं दी गयी थीं। उन्हें सेकिण्ड हैण्ड पूंजीगत वस्तुओं, जेनरेटिंग सेट्स, पैकिंग का सामान, आदि का भी आयात करने की इजाजत दी गई थी।

इस प्रकार आयात-नीति रोजगार बढ़ाने वाली, निर्यातकों को प्रोत्साहन देने वाली तथा विदेशी विनिमय की रक्षा करने वाली रही है। इसका मुख्य उद्देश्य देश

में उत्पादन बढ़ाना तथा निर्यात-संवर्द्धन करना रहा है। कुल मिलाकर हाल के वर्षों में आयात-नीति का झुकाव उदारता की ओर ही रहा है।

पी. सी. एलेक्जेण्डर समिति (P. C. Alexander Committee) के आयात-निर्यात-सम्बन्धी नीति पर सुझाव

सरकार ने आयात-निर्यात नीति पर सुझाव देने के लिए पूर्व वाणिज्य सचिव डॉ. पी. सी. एलेक्जेण्डर की अध्यक्षता में विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की थी जिसने अपनी रिपोर्ट 31 जनवरी, 1978 को पेश की। समिति ने सुझाव दिया कि निर्यात के क्षेत्र में उत्तम नियोजन के लिए आयात-निर्यात नीति की प्रति वर्ष घोषणा के बजाय त्रिवर्षीय घोषणा की जानी चाहिए। तीन वर्ष में एक बार आयात-नीति की घोषणा करने से विदेशी व्यापार नीति में अधिक स्थिरता आयेगी, अनिश्चितता कम होगी, उत्पादक व निर्यातक अपने क्षेत्र में कार्यक्रमों का ज्यादा अच्छा नियोजन कर सकेंगे।

समिति की मुख्य सिफारिशें निम्नांकित हैं जिनके आधार पर पिछले वर्षों की आयात-नीति बनायी गयी है—

1. समिति का कहना है कि आयात-निर्यात की केवल वे ही मदें सरकार अपने हाथ में ले जिनमें अधिक मात्रा में व्यापार के लाभ मिलें, उपभोक्ता को अधिक अच्छी सेवा प्रदान करती हों, अनुचित व्यापार-नीति रोकती हों तथा दीर्घकालीन पूर्ति निश्चित रूप से की जाती हो। अन्य मदों को सरकार अपने अधिकार क्षेत्र से हटा दे।

2. कच्चे माल, कल-पुर्जों व अन्य माल-सामान के आयातों को दो श्रेणियों में रखा गया—(i) सीमित मात्रा तक आयात किया जाने वाला माल; तथा (ii) वह माल जिसका आयात रोक दिया गया है। शेष को खुले रूप से आयात किया जाय।

3. समिति ने 'नियन्त्रणों' के स्थान पर 'विकास' का दृष्टिकोण अपनाया है। समिति का सुझाव था कि प्रचलित औद्योगिक इकाइयों को प्रतिबन्धित मदों (restricted items) के पूर्ववत् के उत्पादन में 10% छोड़कर बाकी मदों के आधार पर लाइसेंस दिया जाना चाहिए। उत्पादन बढ़ाने के लिए पृथक् लाइसेंसों की व्यवस्था नहीं की जानी चाहिए।

4. वास्तविक उपभोक्ताओं के सम्बन्ध में वर्तमान कोटा-आधारित लाइसेंस-व्यवस्था (system of quota licences) सन्तोषजनक नहीं है, क्योंकि इससे एकाधिकार को बढ़ावा मिलता है। इसलिए इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

5. निर्यातों के लिए दी जाने वाली नकद सहायता का आधार अधिक युक्ति-संगत बनाया जाना चाहिए।

6 निर्यात-गृहों को अपने निर्यातों पर मिला हुआ आयात करने का अधिकार जारी रखा जाना चाहिए। इन्हें अतिरिक्त आयात-लाइसेंस भी दिये जाने चाहिए।

7 समिति ने लघु उद्योगों को आवश्यक आयातित माल उपलब्ध कराने के लिए उपयोगी सुझाव दिये ताकि इन्हें उचित भावों पर कच्चा माल मिल सके। इसके लिए लघु उद्योग-निगमों को आवश्यक सुविधाएं देने पर जोर दिया गया।

8 आयात निर्यात के प्रमुख कन्ट्रोलर (CCI & E) के पद के स्थान पर विदेशी व्यापार के डाइरेक्टर-जनरल (DGFT) का पद रखा जाना चाहिए। यह कहा गया कि (DGFT) निर्यातों की समस्याओं को हल करेगा। इस कार्यालय में अनुभवी व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना चाहिए।

इस प्रकार अलेक्जेण्डर समिति ने प्रचलित आयातकों के लिए कोटा लाइसेंस पद्धति की समाप्ति, नक्द सहायता को युक्तिसंगत करने, टैक्नोलॉजी के उदारतापूर्वक आयात करने तथा लघु उद्योगों के लिए विशेष सुविधाएँ देने से सम्बन्धित कई उपयोगी सुझाव दिये थे।

जनता शासन-काल में 1977-78 से 1979-80 के तीन वर्षों के लिए आयात नीतियां घोषित की गयी थीं जिनमें आयात-उदारता का दृष्टिकोण ही अपनाया गया था। आयात नीति का उद्देश्य कृषि, उद्योग व व्यापार का विकास करना था। साथ में इसका उद्देश्य रोजगार बढ़ाना निर्यात बढ़ाना तथा लघु उद्योगों का विकास करना भी था। इसके लिये विभिन्न प्रकार की रियायतें घोषित की गयी थीं जिन्हें आगे के वर्षों में जारी रखा गया।

भारत में विदेशी भुगतान की जटिल स्थिति के बावजूद पिछले वर्षों में उदार आयात नीति अपनायी गई है ताकि औद्योगिक उत्पादन व निर्यात बढ़ सकें। सामान्यतया व्यापार के भारी घाटे की स्थिति में कठोर आयात-नीति अपनायी जाती है ताकि आयातों में कमी करके व्यापार के घाटे को कम किया जा सके। लेकिन भारत अपनी विशेष परिस्थितियों व विकास की आवश्यकताओं के कारण उदार आयात नीति का ही पालन करता रहा है।

अब हम क्रमश: 1985-88 व 1988-91 के लिए घोषित निर्यात-आयात नीतियों का वर्णन करेंगे—

(अ) 1985–88 की अवधि के लिए निर्यात-आयात नीति[1]
(Exim Policy For 1985–1988)

सरकार ने 12 अप्रैल, 1985 को पहली बार 1985-88 तक के तीन वर्षों के आयात-निर्यात नीति-घोषित की थी। इससे पूर्व यह वार्षिक आधार पर घोषित

1. *The Economic Times*, April, 13 1985, p. 8.

की जाती थी । एक साथ त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति घोषित होने से विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे अधिक निरन्तरता व निश्चितता आ सकेगी।

भारत सरकार के तात्कालीन वित्त एव वाणिज्य मन्त्री के अनुसार यह नीति न तो उदार है और न प्रतिबन्धात्मक बल्कि सन्तुलित है।"

इस त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति का प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक उत्पादन व निर्यात बढाना तथा कार्यकुशल आयात-प्रतिस्थापन को प्रोत्साहन देना था। वास्तव मे इसमे निर्यात-सवर्द्धन व आयात प्रतिस्थापन दोनो के बीच एक उचित सतुलन व सामजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया था। हालाकि आयात निर्यात नीति तीन वर्षों के लिए घोषित की गयी थी, लेकिन लाइसेंसिंग की प्रक्रिया वार्षिक आधार पर जारी रखी गयी।

अब हम इस निर्यात आयात नीति (एक्जिम नीति) (Exim Policy) की प्रमुख बातों का उल्लेख करते हैं

1985-88 की निर्यात-आयात नीति की प्रमुख बातें

1 पूंजीगत वस्तुएं (Capital goods)—आधुनिकीकरण व निर्यात-उत्पादन के लिए मशीनो की आवश्यकता की पूर्ति के लिए औद्योगिक मशीनरी की 201 मदों को खुले जनरल या सामान्य लाइसस (OGL) के अन्तर्गत आयात की जा सकने वाली पूंजीगत वस्तुओं की सूची मे शामिल कर दिया गया। इस उदार नीति के फलस्वरूप निम्न उद्योग लाभान्वित हुए—गाडिया, तेल-क्षेत्र की सेवाएँ, चमडा इलेक्ट्रोनिक्स जूट-विनिर्माण, गारमेंट, होजियरी का माल, पेन, कैनिंग आदि। पूजीगत वस्तुओ की 4 मदो को OGL से हटा दिया गया।

यह कहा गया कि 10 लाख रुपये तक की लागत के कम्प्यूटर/कम्प्यूटर आधारित सिस्टम्स उन सभी व्यक्तियो द्वारा आयात किये जा सकेंगे जो उनका उपयोग स्वय करेंगे।

2 स्वचालित लाइसेंसिग (Automatic Licensing) की श्रेणी समाप्त कर दी गयी और स्वचालित या अपने आप इजाजत वाली सूची (Antomatic Permissible List) को खुले जनरल लाइसस (OGL) के अन्तर्गत लाया गया। उस सूची मे से 467 मदो को OGL मे हस्तातरित कर दिया गया और 60 मदे सीमित इजाजत वाली सूची (Limited Permissible List) मे डाल दी गयी। इससे लघु क्षेत्र की इकाइयो को आयात-लाइसेंस लेने मे आसानी हो गयी।

3 आयातों को सरकारी दायरे मे लेने के सम्बन्ध मे नीति (Canalisation of Imports)—53 मदो को सरकारी दायरे से मुक्त कर दिया गया (De-Canalised)। इनमे से 17 मदें OGL की सूची मे हस्तांतरित कर दी गयीं, 20 मदें सीमित इजाजत वाली सूची (Limited, Permissible List) मे तथा 16 प्रतिबन्धित सूची (Restricted List) मे डाल दी गयीं। OGL मे हस्तातरित की जाने वाली मदो मे लोहे व इस्पात की मदें, रगीन टी. वी. पिक्चर ट्यूब्स आदि हैं।

देश मे उपलब्धि बढ जाने के कारण कच्चे माल व कल-पुर्जों की 7 मदो को सीमित इजाजत वाली सूची से प्रतिबन्धित सूची मे डाल दिया गया तथा 67 मदों को OGL/स्वचालित इजाजत वाली सूची में सीमित इजाजत वाली सूची मे डाल दिया गया। इनमे कुछ मदें इस प्रकार हैं : मारबल, कुछ लेम्प्स, कुछ वीडियो कैसेट बिना टप के, कुछ छपाई की स्याही आदि।

पशु चर्बी व रेनेट को निषिद्ध मद (Banned Item) माना गया।

भारत आकर बसने वाले तथा यहां उद्योग स्थापित करने वाले नोन-रेजीडेन्ट भारतीयों (NRI) के लिए कई प्रकार की सुविधाए बढायी गयी, जैसे वे प्रतिबन्धित सूची वाली मशीनरी का भी भारत मे आयात कर सकेंगे, बशर्ते वह कम से कम दो वर्षों के लिए उनके द्वारा वहा निरन्तर उपयोग मे लायी गयी हो।

4 अनिवार्य मदों के आयात की व्यवस्था—OGL के अन्तर्गत कुछ अनिवार्य उपभोक्ता मदो के आयात जारी रख गये जैसे जीवन-रक्षक दवाइया, दालो की मदे, जीवन-रक्षक उपकरण, मेडिकल एक्स-रे फिल्म्स, पुस्तकें व अध्यापन कार्य मे सहायता पहुचाने वाली मदें, कुछ मसाले आदि।

5 आयात-निर्यात पास बुक स्कीम—रजिस्टर्ड विनिर्माता/निर्यातक जो कम से कम तीन साल से नियमित रूप से निर्यात कर रहे हैं, अब 'आयात—निर्यात पास बुक स्कीम' का लाभ उठा सकेंगे। इससे उन्हें निर्यात-उत्पादन के लिए आवश्यक शुल्कमुक्त इन्पुटों का आयात करने में सहूलियत होगी। इसके लिए वास्तविक उपयोग कर्ता शर्त लागू मानी जायगी। इस स्कीम के कारण अग्रिम/इम्प्रेस्ट व पुनर्पूर्ति लाइसेंस (REP Licences or Replenishment Licences) के लिए बार-बार आवेदन पत्र देने की जरूरत नहीं रहेगी। पास-बुक स्कीम वालों के लिए शुल्कमुक्त आयात लाइसेंस का काम करेगी। प्रत्येक ऐसे लाइसेंस के लिए एक उपयुक्त निर्यात-दायित्व निभाना पड़ेगा।

निर्यात—व्यापार-घरानों को लाइसेंस लेने की सहूलियतें बढाई गयी है।

6 निर्यात लाइसेंस नीति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये—पाकिस्तान को किये जाने वाले निर्यात अन्य देशों के समकक्ष लाये गये। अब सिल्क वेस्ट, एसीटोन फिनोल आदि के निर्यात पर विचार किया जा सकेगा। इसी प्रकार रेयोन फिलामेंट यार्न सोडियम क्लोराइड तथा ऊंटो के निर्यात पर (प्रजनन कार्यों के लिए) विचार किया जा सकेगा।

कई प्रकार की खालो (विशेष किस्म की लोमड़ी, बिल्ली, आदि की) तथा धान, सभी किस्म के तिलहनों व दालो के बीजो, चारकोल (कुछ किस्मों को छोड़कर) का निर्यात भी सामान्यतया नहीं किया जा सकेगा।

ऊपर निर्यात आयात-निर्यात नीति की प्रमुख बातो का विवेचन किया गया है। व्यापार व उद्योगो के प्रतिनिधियों ने इसका हार्दिक स्वागत किया था तथा इसे

काफी प्रगतिशील व लाभकारी बतलाया था। नीचे इसके गुण-दोषों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जाता है।

नयी आयात-निर्यात नीति के गुण

1. व्यावसायिक व औद्योगिक क्षेत्रों में नयी आयात-निर्यात नीति को टेक्नोलोजिकल उत्थान व आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन देने वाली नीति के रूप में सराहा गया। इसके द्वारा एक प्रगतिशील औद्योगिक व राजकोषीय नीति का क्रम जारी रखा गया।

2. इसे भारत के विदेशी व्यापार को बढ़ाने वाली माना गया। तीन वर्षों के घोषित किये जाने की वजह से यह उद्योगों में उत्पादन की दीर्घकालीन योजना बनाने में सहायक सिद्ध होगी। यह कहा गया कि औद्योगिक मशीनरी की 201 मदों को OGL में शामिल करने से आधुनिकीकरण व निर्यात-संवर्द्धन को अवश्य बल मिलेगा।

3. उत्पादकों व निर्यातकों के लिए आयात-निर्यात पास-बुक स्कीम को चालू करने से कच्चे माल का आयात अधिक सुगम व अधिक शीघ्र होने लग जायगा जिससे विलम्ब को दूर करने में सहायता मिलेगी। इस स्कीम को सर्वोत्तम माना गया। पास बुक स्कीम का विचार एक नया विचार है जिसके द्वारा उत्पादकों-निर्यातकों द्वारा शुल्कमुक्त आयात करने में आसानी रहेगी।

पहले बतलाया जा चुका है कि त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति (1985–88) एक सन्तुलित नीति थी। यह न तो उदार थी और न कठोर या प्रतिबन्ध लगाने वाली। इससे समय व लागत में किफायत हुई।

नयी आयात-निर्यात नीति की कमियां

1. यह त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति सातवीं योजना (1985-90) के प्रथम तीन वर्षों से सम्बन्ध रखती है, लेकिन इसमें योजना का जरा भी जिक्र नहीं है। इससे व्यापार-नीति व नियोजन-नीति में पूर्ण ताल-मेल नहीं प्रतीत होता।

2. इस नीति में निर्यातों से जुड़े आयातों को बढ़ाने की व्यवस्था की गयी है। लेकिन यहाँ इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि पिछले वर्षों में निर्यातकों को निर्यातों की एवज में जो पुनर्पूर्ति के लाइसेंस (replenishment licences) दिये गये हैं उनसे देश में निजी क्षेत्र के उद्योगों को आयातित कच्चे माल, कल-पुर्जे आदि की सुविधा मिली है जिसका उपयोग आन्तरिक बिक्री के लिए उत्पादन बढ़ाने में अधिक मात्रा में किया गया है। निर्यातों से जुड़े इन आयातों का उपयोग निजी क्षेत्र के एक वर्ग ने अपने लाभों को बढ़ाने में ही अधिक किया है, जिससे 'वास्तविक उपयोगकर्त्ताओं' को आयात लाइसेंस पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाये हैं। इस प्रकार आयातों को निर्यातों से जोड़ने की नीति के बावजूद निर्यातों में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि नहीं हो सकी, क्योंकि आयातित कच्चे माल का उपयोग घरेलू बिक्री के लिए उत्पादन में ज्यादा मात्रा में किया गया।

3. संयन्त्र व मशीनरी का उदारतापूर्वक आयात करने से देश में औद्योगिक मशीनरी के निर्माताओं जैसे भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड तथा हैवी इंजीनियरिंग निगम (BHEL and HEC) आदि के माल की बिक्री पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

इसी प्रकार, सरकार की तरफ से 10 लाख रुपये मूल्य तक वास्तविक उपयोगकर्ताओं द्वारा कम्प्यूटर सिस्टम के आयात की इजाजत से देश में कम्प्यूटरों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। यह बात अन्य इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं पर भी लागू होती है।

4 सच पूछा जाय तो सरकार अपनी औद्योगिक व व्यापार-नीति के माध्यम से एक ऐसे औद्योगिक ढांचे को विकसित कर रही है जिसका लाभ समाज के चोटी के 10 प्रतिशत या 5 प्रतिशत परिवारों को ही मिलेगा।

इस प्रकार आधुनिकीकरण, टेक्नोलोजिकल उत्थान आदि क्रियाओं में आयातित पूंजीगत माल, कल-पुर्जों, मध्यवर्ती वस्तुओं का उपयोग बढ़ने से समस्त देशवासियों को इसका लाभ नहीं मिलेगा बल्कि समाज के सीमित सम्पन्न व सम्भ्रांत वर्ग को मिलेगा।

(आ) नई त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति, 1988-91

अप्रैल 1988 से मार्च 1991 तक की अवधि के लिए नई त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति 30 मार्च 1988 को घोषित की गई। इसके मुख्य उद्देश्य व अन्य प्रमुख बातें नीचे दी जाती हैं—

मुख्य उद्देश्य

(i) औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देना और इसके लिए आवश्यक आयातित पूंजीगत माल, कच्चे माल व कल-पुर्जों की व्यवस्था करना ताकि आधुनिकीकरण, टेक्नालाजिकल विकास व उत्तरोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति की ओर बढ़ सकें,

(ii) कार्यकुशल आयात प्रतिस्थापन व आत्म-निर्भरता को बढ़ावा देना;

(iii) निर्यात-प्रोत्साहन को नई प्रेरणा देना और इसके लिए प्रेरणाओं की कुशलता व उनके प्रशासन में सुधार करना, एवं

(iv) नीति व विधियों को सरल व युक्तिसंगत बनाना।

नीति की प्रमुख बातें

(1) इस नीति के अन्तर्गत खुले सामान्य लाइसेंस (OGL) का क्षेत्र बढ़ा दिया गया है और इसमें 745 अतिरिक्त मदें शामिल की गई हैं। इनमें से 329 मदें कच्चे माल, कल-पुर्जों व उपभोग्य माल की हैं, 209 मदें जीवन-रक्षक उपकरणों की हैं, 108 जीवन-रक्षक दवाएं हैं तथा 99 पूंजीगत वस्तुएं हैं। ये पूंजीगत वस्तुएं निर्यातोन्मुख क्षेत्र की मशीनरी से सम्बन्ध रखती हैं। इनके माध्यम से

इलेक्ट्रोनिक्स, रेशम, चाय व चमड़ा उद्योग के लिए मशीनरी व उपकरण की सप्लाई बढ़ायी गयी है।

इससे उद्योगों के विविधीकरण को प्रोत्साहन मिलेगा तथा भारतीय माल विदेशों में अधिक प्रतिस्पर्धात्मक बन सकेगा।

(2) आयात पुन: पूर्ति/पुन: भर्ती की स्कीम (REP scheme) में काफी संशोधन किये गये हैं। गैर-परम्परागत व परम्परागत दोनों प्रकार के निर्यातों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के लिए पुन: पूर्ति की स्कीम को अधिक व्यापक व उदार बनाया गया है। 10 लाख रुपयों तक की पूंजीगत वस्तुएं स्वदेशी क्लियरेन्स लिये बिना निर्यातकों द्वारा आयात की जा सकेंगी।

(3) सरकार ने निर्यातों पर से नियन्त्रण कम किये हैं। वर्तमान सूची में से 26 मदों को सरकारी क्षेत्र से मुक्त कर दिया गया है (decanalised)।

इस प्रकार, यह दूसरी त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति पहली त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति की उपलब्धियों को और आगे बढ़ाने का प्रयास करेगी।

उदार आयात-नीति के परिणामस्वरूप 1985–86 में व्यापार का घाटा 8,763 करोड़ रुपये हो गया था। पिछले वर्षों में पूंजीगत वस्तुओं के आयात काफी बढ़े हैं। ये 1987–88 में 6285 करोड़ रु. के रहे। इससे पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों के समक्ष मन्दी की समस्या उत्पन्न हो गई है। इसका समुचित समाधान निकालने की आवश्यकता है।

इसलिए नई आयात-निर्यात नीति, 1988–91 का काम औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाना, निर्मित माल की किस्म में सुधार करना, उसकी लागत कम करना व भारतीय निर्यातों को विश्व के बाजारों में अधिक प्रतिस्पर्धात्मक बनाना है। साथ में इसका एक कार्य कार्यकुशल व चुने हुए ढंग के आयात-प्रतिस्थापन को प्रोत्साहन देना भी है। ये सब विदेशी व्यापार के क्षेत्र में प्रमुख चुनौतियां हैं।

क्या नई आयात-निर्यात नीति निर्यात-प्रोत्साहन दे पायेगी ?

भारत में निर्यात-प्रोत्साहन की नितान्त आवश्यकता है ताकि व्यापार के घाटे को कम किया जा सके। पहले बतलाया जा चुका है कि देश में निर्यात-चालित विकास (export-led growth) की नीति के बजाय विकास-चालित निर्यातों (growth-led export) की नीति ज्यादा व्यावहारिक व कारगर सिद्ध होगी। अत: हमें औद्योगिक उत्पादन बढ़ाना है और निर्यात बढ़ाने के उपाय करने हैं। भारत में अभी तक निर्यात की संस्कृति (export culture) पर्याप्त रूप में विकसित नहीं हो पायी है। निर्यात-वस्तुओं की सप्लाई बढ़ाने की समस्या है। भारतीय उत्पादकों के लिए घरेलू बाजार का आकर्षण बना हुआ है। निर्यातक अधिक निर्यात-प्रेरणाएं चाहते हैं ताकि वे निर्यात बढ़ाने में अधिक दिलचस्पी ले सकें। 1988–91 की अवधि के लिए घोषित आयात-निर्यात नीति सम्भवतया निर्यात बढ़ाने में पर्याप्त योगदान नहीं दे पायेगी क्योंकि जब तक निर्यात-संवर्द्धन-नीति आत्म-निर्भर, आर्थिक

विकास से नही जुड पाती तब तक वास्तविक आर्थिक प्रगति की आशा नहीं की जा सकती। इसके लिए भारी प्रयास करना जरूरी है।

फिर भी, यह कहा जा सकता है कि वर्तमान परिस्थितियो मे नई त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति, 1988–91 की दिशा सही प्रतीत होती है, और सरकार को इसे परिणाम दिखाने का समुचित अवसर देना होगा। इसलिए आगामी तीन वर्षों मे इसमे भारी परिवर्तन करने की आवश्यकता नही जान पड़ती।

प्रश्न

1 वर्तमान परिस्थितियो के सदर्भ मे भारत मे निर्यात सवर्द्धन क्यो आवश्यक है? निर्यात-सवर्द्धन के लिए अपनाये गये उपायो का उल्लेख कीजिए।
(Raj IIyr. T.D C, 1987)

2 वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ मे भारत मे निर्यात-सवर्द्धन क्यो आवश्यक है? इस सम्बन्ध मे जो उपाय किये गये हैं, उनका उल्लेख कीजिये।
(Raj IIyr. T.D C., 1981)

3 सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये : (1) विदेशी व्यापार नीति।
(Raj. IIyr. T.D.C., 1981 & 1986)

4. नयी त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति; 1988–91 की प्रमुख बातें स्पष्ट कीजिए।

5. भारत की विदेशी व्यापार नीति पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।
(Raj IIyr. T.D.C, 1988)

———

19

विदेशी सहायता : आकार, उपयोग व भुगतान की समस्याएँ

(Foreign Aid : Size, Utilisation & Problems of Repayment)

विदेशी साधनो के तीन प्रकार के स्रोत—निर्धन व विकासशील देश केवल अपने सीमित साधनो से तीव्र गति से आर्थिक विकास नही कर सकते । विदेशी साधनो का उपयोग करने से उन्हे काफी लाभ होता है । इन साधनो के स्रोत तीन प्रकार के होते हैं—

(i) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओ जैसे विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) आदि, एव प्रादेशिक वित्तीय सस्थाओ जैसे एशियन विकास बैंक से प्राप्त ऋण, (ii) विदेशी सरकारो से जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, जापान, कनाडा आदि से प्राप्त ऋण व सहायता तथा (iii) विदेशी निजी कम्पनियो से अथवा बहुराष्ट्रीय निगमों (multinationals) से एव विदेशी बैंको से व्यापारिक कर्ज की राशिया (commercial borrowings) । विदेशी सरकारें ऋण व अनुदान देती हैं । ऋणो को ब्याज सहित लौटाना होता है तथा अनुदान भेटस्वरूप होते है ।

विदेशी सहायता मे विदेशी ऋण व अनुदान दोनो शामिल किये जाते हैं । कम ब्याज पर लम्बी अवधि के ऋण रियायती सहायता के अन्तर्गत आते है । विदेशी सहायता मे निजी विदेशी कम्पनियों के विनियोग शामिल नहीं किये जाते । विदेशी पूंजी में विदेशी सस्थाओ व सरकारो के ऋण तथा विदेशी कम्पनियो के विनियोग शामिल होते हैं, लेकिन इसमे अनुदान (grants) शामिल नहीं होते ।

विकासशील देशो के लिए ऊपरवर्णित तीनो स्रोतो से प्राप्त विदेशी साधनो का काफी महत्व होता है । भारत ने भी तीनो स्रोतो से प्राप्त विदेशी साधनो का काफी उपयोग किया है और इससे हमारे आर्थिक विकास मे सहायता मिली है ।

भारत एक विकासशील देश है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय यह आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था । यह कृषि, सिंचाई, उद्योग, शक्ति, परिवहन, तकनीकी

ज्ञान आदि सभी क्षेत्रों मे पिछड़ी दशा में था। हमने नियोजित आर्थिक विकास का मार्ग चुना और विभिन्न दिशाओं मे विकास के लिए विदेशी सहायता का उपयोग करना आवश्यक समझा। प्रारम्भ में तो विदेशी सहायता की आवश्यकता आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए थी, लेकिन अब विकास की गति को बनाये रखने के लिए, पुराने ऋणों का भुगतान करने के लिए तथा विदेशी व्यापार के अत्यधिक घाटे से उत्पन्न स्थिति का मुकाबला करने के लिए रियायती शर्तों पर विदेशी सहायता का मिलना आवश्यक हो गया है। नीचे भारत के लिए विदेशी सहायता की आवश्यकता पर प्रकाश डाला जाता है।

भारत के लिए विदेशी सहायता की आवश्यकता के कारण

1 विदेशी विनिमय-संकट को टालने के लिए विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे विदेशी भुगतान की समस्या उत्पन्न हो जाती है। आयात तेजी से बढ जाते हैं और निर्यातों को बढाने मे काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अत देश की समक्ष विदेशी विनिमय-संकट उत्पन्न हो जाता है। विदेशी विनिमय-कोष लगभग समाप्त हो जाते है। ऐसी दशा मे 'विदेशी सहायता' से ही विदेशी विनिमय संकट को टाला जा सकता है।

2 प्राकृतिक साधनों का विदोहन—भारत मे पर्याप्त मात्रा मे प्राकृतिक साधन विद्यमान है। अभी तक उनका पूर्ण रूप से उपयोग नहीं हो पाया है। विदेशी पूँजी के सहयोग से हम उनका उचित रूप से विदोहन कर सकते हैं और देशवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा कर सकते है। विदेशी सहायता के अभाव मे प्राकृतिक साधनों का पूरा उपयोग करने मे कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

3. तकनीकी ज्ञान की प्राप्ति—विदेशी पूँजी के साथ-साथ हमे विदेशी तकनीकी ज्ञान व प्रबन्धकीय दक्षता भी प्राप्त होती है जिससे विशेषतया औद्योगिक क्षेत्र मे विकास को प्रोत्साहन मिलता है। इससे देश मे तकनीकी जानकारी व प्रबन्धकीय कुशलता का भी विकास होता है, जो अन्यथा तेजी से सम्भव नहीं हो पाता।

4 भारतीय पूँजी को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए—विदेशी पूँजी के अभाव म भारतीय पूँजी का भी पूरा उपयोग नहीं हो पाता। जब कोई उद्योगपति भारत में अपना बड़े पैमाने का आधुनिक उद्योग स्थापित करना चाहता है तो उसे प्राय मशीनें कच्चा माल व अन्य विकास-सामग्री विदेशो से खरीदनी पड़ती है। यदि आवश्यक मात्रा मे विदेशी माल न मिले तो सारा कार्यक्रम ठप्प हो सकता है। यदि आवश्यकता के अनुसार विदेशी पूँजी उपलब्ध हो जाती है तो स्वदेशी पूँजी का का भी सर्वोत्तम उपयोग किया जा सकता है।

5 परिवहन खनन व भारी उद्योगों का विकास—रेल, बन्दरगाह, बाँध, सिंचाई की परियोजनाओं खनिज-व्यवसाय एव आधारभूत पूँजीगत उद्योगों के विकास

मे अन्य देशों के अनुभवो का लाभ उठाने के लिए भी विदेशी पूँजी आवश्यक होती है। औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशो की उत्पादन प्रणालियो को अपनाकर हम तेजी से औद्योगीकरण कर सकते है। इस तरह सभी पहलुओ पर विचार करने पर, जैसे घरेलू बचत के पूरक के रूप मे, घरेलू बचत के स्तर को ऊँचा करने मे और विदेशी विनिमय की कमी को दूर करने के लिए विदेशी सहायता का भारत के आर्थिक विकास मे बहुत ऊँचा स्थान माना गया है।

6. पुराने ऋणो को चुकाने के लिए भी नये ऋण लेने आवश्यक हो जाते है। हमने योजना काल के प्रारम्भ मे तथा बाद के वर्षों मे विदेशो से जो ऋण लिए है, उनके लिए समय-समय पर ऋणो के भुगतान की भी व्यवस्था करनी पडी है और वह निरन्तर करनी पड रही है। यदि योजनाकाल मे हमारी अर्थव्यवस्था काफी सबल व सुदृढ हो जाती तो हम अपने अतिरिक्त उत्पादन का निर्यात करके पुराने ऋणो का ब्याज सहित भुगतान करने मे पूरी तरह समर्थ हो जाते। लेकिन कुछ कारणो से हम अपने निर्यात इतने नही बढा सके कि चालू आयातो का भुगतान कर सके तथा पुराने ऋणो को भी चुका सकें। ऐसी स्थिति मे हमे बाध्य होकर विदेशी ऋणो के भुगतानो को आगे के लिए खिसकाना पडा है और इसका एक तरीका यही रहा है कि हम पुराने ऋणों का भुगतान करने के लिए नये ऋण लेते जाएँ। इस प्रकार हम अभी तक विदेशी सहायता पर आश्रित है और इससे मुक्त नही हो पाये है।

7. कुछ वर्ष पूर्व पेट्रोल निर्यातक देशों के सगठन, अर्थात् ओपेक (OPEC)* के द्वारा पेट्रोल के भावो मे अत्यधिक वृद्धि कर देने से हमारा आयात-बिल बहुत ऊँचा हो गया था। हालाकि बाद मे पेट्रोल व पेट्रोल पदार्थों के मूल्यो मे कमी से हमे थोडी राहत मिली है। 1987-88 से पेट्रोल व सम्बद्ध पदार्थों के आयात की राशि पुन बढने लगी है। विदेशो मे खाद्यान्नो व उर्वरको के भावो मे वृद्धि होने से भी आयातो की राशि बढी है। इस स्थिति का मुकाबला करने के लिए वर्तमान मे भारत को रियायती शर्तों पर विदेशी सहायता की आवश्यकता है। स्वय तेल-निर्यातक देशो से कर्ज लेने की भी व्यवस्था की गई है। मार्च, 1988 के अ त तक भारत न ओपेक देशो से प्राप्त 1663 करोड रु की राशि का पयोग किया गया था जो कुल प्रयुक्त राशि का 3 9% था।

इस प्रकार पचवर्षीय योजनाओ मे विदेशी सहायता का काफी उपयोग किया गया है। विभिन्न कारणो से आगामी वर्षों म भी विदेशी सहायता का उपयोग जारी रखना होगा।

---

* Organisation of Petroleum Exporting Countries इसमे ईरान, इराक, कुवैत आबुधाबी, सऊदी अरब तथा ओपेक स्पेशल फण्ड शामिल है।

विदेशी सहायता से कई प्रकार के लाभ मिलने के बावजूद भी इसके प्रति कई प्रकार की शंकाएं व आशंकाएं प्रकट की गई हैं। वास्तव में विदेशी पूंजी से कुछ कठिनाइयाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में काफी सन्देह प्रकट किये गये थे, क्योंकि भूतकाल में विदेशी पूंजी के साथ-साथ देश पर विदेशी राजनीतिक प्रभाव भी पड़ने लगा था। लेकिन पिछले वर्षों में आर्थिक सहायता देने वाले देशों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। साथ में विदेशी सहायता के विश्व बैंक आदि से संस्थागत आधार पर मिलने से कई प्रकार के पुराने सन्देह अपने आप कम हो गये हैं। पूंजी का आयात करने वाले देशों में भी परिस्थितियां बदल रही हैं। परिणामस्वरूप, विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में पहले के संदेह काफी कम हो गये हैं।

लेकिन बड़े पैमाने पर विदेशी सहायता लेने से कुछ खतरे उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए प्रायः इस बात पर जोर दिया जाता है कि हमें विदेशी सहायता से जल्दी से जल्दी मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए और आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था (self-reliant economy) का लक्ष्य प्राप्त करना चाहिए। नवम्बर, 1981 में भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) से जो 5 बिलियन स्पेशल ड्राइंग राइट्स (SDR)* अथवा लगभग 5,234 करोड़ रुपयों का ऋण स्वीकृत करवाया था, उसको लेकर राजनीतिक क्षेत्रों में सरकार की काफी आलोचना की गई थी। आलोचकों का कहना था कि भारत सरकार ने इतना बड़ा कर्ज लेकर देश का आर्थिक भविष्य IMF को गिरवी रख दिया है। कर्ज की शर्तों पर काफी आपत्तियाँ उठायी गई थीं। इस सम्बन्ध में वस्तु-स्थिति यह है कि उस समय भारत को अपने भुगतान-संकट को टालने के लिए विदेशी विनिमय कोषों व विदेशी सहायता की नितान्त आवश्यकता थी। इसलिए विदेशी विनिमय साधनों की कमी को पूरा करने के लिए IMF से कर्ज लेना पड़ा था। IMF ने भारत को यह कर्ज विस्तृत-कोष-सुविधा (Extended Fund Facility) (EFF) के अन्तर्गत देना स्वीकार किया था। 1983-84 तक 3·9 बिलियन SDR तक की राशि निकालने के बाद भारत

---

* SDR अथवा स्पेशल ड्राइंग राइट्स अन्तर्राष्ट्रीय रिजर्व परिसम्पत्ति (international reserve assets) होते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं तथा सदस्यों को अन्य रिजर्व राशियों के पूरक के रूप में दिये जाते हैं। सदस्य देश SDR का उपयोग आपसी समझौतों से कई प्रकार के सौदों में कर सकते हैं। भुगतान की जरूरत पड़ने पर सदस्य देश अपने SDR देकर आवश्यक विदेशी विनिमय प्राप्त कर लेते हैं। इसके लिए उनको IMF को ब्याज देना होता है।

सरकार ने यह निर्णय लिया कि वह कर्ज की शेष किस्त (1·1 बिलियन SDR) नहीं लेगी। सरकारी मत के अनुसार भारत के भुगतान-सन्तुलन की स्थिति में पर्याप्त सुधार होने के कारण IMF कर्ज की शेष राशि नहीं ली गई। इस कर्ज से भारत को कुछ सीमा तक अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने का अवसर मिला था। वर्तमान में देश की भुगतान-सन्तुलन की स्थिति काफी जटिल व तनावपूर्ण बनी हुई है और इसके ठीक करने के लिए भारी प्रयासों की आवश्यकता है।

विदेशी सहायता की कमियाँ व कठिनाइयाँ

1. बाह्य-सहायता से आर्थिक प्रगति नहीं हो पाती—कुछ विद्वानों का मत है कि विदेशी सहायता अल्पविकसित देशों के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। यह पिछड़े हुए देशों के अन्दर विकास की गति को तेज नहीं कर सकती। बनर (Baner) का विचार है कि निरन्तर बड़े पैमाने पर सहायता लेने से सहायता लेने वाला राष्ट्र निर्बल हो जाता है। आर्थिक प्रगति के लिए जिस 'आत्म-निर्भरता, प्रतिष्ठा व आत्म-सम्मान' की आवश्यकता होती है वह नष्ट हो जाती है। प्रोफेसर पी. टी. बॉवर (P T. Bauer) का भी यही मत है कि द्वितीय महायुद्ध के समय से विदेशी सहायता ने प्राप्तकर्ता राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति को आगे बढ़ाने की बजाय पीछे ही धकेला है। विदेशी सहायता विकास के निर्धारक तत्त्वों, जैसे लोगों की आर्थिक क्षमताओं व प्रवृत्तियों, उनके मूल्यों, उद्देश्यों व प्रेरणाओं, उनकी सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं, प्राकृतिक साधनों व विदेशी बाजारों के अवसरों को अनुकूल रूप से प्रभावित नहीं करती है। बॉवर का मत है कि सुदूर-पूर्व, दक्षिण-पूर्व एशिया, पूर्वी व पश्चिमी अफ्रीका एवं लेटिन अमेरिका में कई देशों ने बिना विदेशी सहायता के काफी तेज रफ्तार से आर्थिक प्रगति की है।

विदेशी सहायता के सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण काफी कठोर व एक तरफा (extreme and one sided) प्रतीत होता है। व्यवहार में विकासशील देश अपने आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता का उपयोग करते हैं तथा उससे लाभ उठाते हैं।

2. देश की स्वतन्त्र आर्थिक नीति को खतरा हो सकता है। भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढाँचे में नियोजित आर्थिक विकास की पद्धति अपनायी है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। हमारी विदेश नीति भी स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर आधारित है। ऐसी स्थिति में अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, जापान व रूस आदि देशों से लगातार आर्थिक सहायता लेने से हमारी आर्थिक नीति पर परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ सकता है। आर्थिक सहायता देने वाले देश प्रायः सहायता लेने वाले देशों की आर्थिक नीतियों को अपने हित में मोड़ने की कोशिश करते हैं। अमेरिका बहुधा सहायता देते समय निजी क्षेत्र को

बढावा दने पर जोर देता है तथा आर्थिक नीति को उदार रखने का समर्थन करता है।

3 ब्याज का निरन्तर बढता हुआ भार—विदेशी पूँजी का उपयोग करने मे वार्षिक ब्याज व कर्ज की किस्त चुकाने का बोझ निरन्तर बढता जाता है। मूलधन व ब्याज की समय पर अदायगी न होने से भी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती है। बहुधा पुराने ऋण चुकाने के लिए नये ऋण लेने पडते हैं। ऋण सेवा भार के बढने से देश कर्ज के जाल म फँस सकता है।

4 विदेशों पर आर्थिक निर्भरता मे वृद्धि—अत्यधिक मात्रा म विदेशी मशीने, कल-पुर्जे कच्चा माल व तकनीकी जानकारी व अन्य साधन काम मे लेन से हमारी विदेशो पर आर्थिक निर्भरता बढ जाती है। भारत आत्म-निर्भरता की तरफ अग्रसर होने की बजाय विदेशो पर आज भी आश्रित बना हुआ है।

कुछ अर्थशास्त्रियो का कहना है कि भारत को आन्तरिक साधनो पर ही ज्यादा मात्रा मे निर्भर रहना चाहिए। ऐसा करन से चाहे हमारे देश म विकास की गति कुछ धीमी भले ही पड जाय, किन्तु दीर्घकालीन दृष्टिकोण से यही मार्ग श्रेष्ठ रहगा। विदेशी पूँजी के सम्बन्ध म एक बात अवश्य ध्यान म रखनी चाहिए कि इसका उपयोग अधिक उत्पादन के लिए किया जाय जिससे देश की राष्ट्रीय आय बढे और *साथ मे हमारी मूलधन व ब्याज चुकाने की सामर्थ्य भी बढे। विदेशी सहायता* मे यथाशीघ्र मुक्त होने का प्रयास किया जाना चाहिए।

विदेशी सहायता व पूँजी के प्रति भारत सरकार की नीति

1948 की औद्योगिक नीति मे सर्वप्रथम विदेशी पूँजी के महत्व पर प्रकाश डाला गया था और इसके सम्बन्ध मे कई प्रकार के आश्वासन दिये गये थ। लेकिन इस नीति म राष्ट्रीयकरण व अन्य सरकारी नियन्त्रणो के भय स विदेशी पूँजी का आयात आशा से बहुत कम हुआ। 5 अप्रेल, 1949 को स्व० प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय ससद मे विदेशी पूँजी के सम्बन्ध म सरकारी नीति की घोषणा की थी जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार थी—(1) देशी व विदेशी पूँजी के बीच कोई भेदभावपूर्ण व्यवहार नही किया जायेगा। विदेशी हितों पर कोई विशेष *प्रतिबन्ध नही लगाय जायेंगे* (2) विदेशी विनियोगकर्त्ताओ को लाभ व पूँजी देश से बाहर ले जाने की अनुमति दी जायेगी। लेकिन इस सम्बन्ध म देश की तत्कालीन विदेशी विनियोग स्थिति का अवश्य ध्यान रखा जायगा, (3) यदि कभी विदेशी उद्योगों व अन्य उपक्रमों का राष्ट्रीयकरण किया गया तो उन्हे उचित मुआवजा दिया जायेगा। सरकार किसी भी रूप मे विदेशी उद्यम को क्षति नही पहुँचाना चाहती और भारत के आर्थिक विकास मे रचनात्मक सहयोग देने के लिए विदेशी पूँजी का स्वागत करती है।

योजना आयोग न प्रथम पचवर्षीय योजना की रिपोर्ट मे विदेशी पूँजी के महत्व को स्वीकार किया था। हमारे देश मे विदेशी पूँजी लेते समय भारतीय

स्वीकृत हुई थी जिसमें से 42,347 करोड़ रुपये की राशि प्रयुक्त की गई थी।[1] इस अवधि में प्रयुक्त की गई विदेशी सहायता में अनुदानों (grants) का भाग लगभग 12 प्रतिशत (5107 करोड़ रु.) था, जो काफी नीचा माना जा सकता है।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में विदेशी सहायता (external assistance) की राशि (लक्ष्य व वास्तविक राशि) नीचे दी जाती है—

विदेशी सहायता की राशि[2]

(करोड़ रुपयों में)

योजनाएँ	लक्ष्य (target)	वास्तविक प्राप्ति (actual)
प्रथम योजना	521	189
द्वितीय योजना	800	1,049
तृतीय योजना	2,200	2,423
तीन वार्षिक योजनाएँ	2,435	2,426
चतुर्थ योजना	2,614	2,087
पंचम योजना	5,407	5,834
छठी योजना	9 929	8529
सातवीं योजना, 1985-90	*18,000*	योजना जारी

तालिका से स्पष्ट होता है कि द्वितीय योजनाकाल से विदेशी सहायता का प्रयोग बढ़ा है। योजना में वास्तविक सार्वजनिक व्यय के प्रतिशत के रूप में विदेशी सहायता का योगदान प्रथम योजना में 9·6%, द्वितीय योजना में 22 5%, तृतीय योजना में 28·2%, तीन वार्षिक योजनाओं में 35·9% तथा चतुर्थ योजना में 12 9% रहा। पाँचवीं योजना में यह लगभग 14·8% रहा। छठी योजना, 1980-85 में यह 7·9% रहा। सातवीं योजना में विदेशों से प्राप्त होने वाली पूँजी का शुद्ध आगम (net inflow) 18000 करोड़ रु. आंका गया है जो योजना में प्रस्तावित सार्वजनिक परिव्यय का 10% होगा।

---

1. Report on Currency & Finance, 1987-88 Vol. I, Economic Review,,p. 392
2. Report on Currency & Finance के विभिन्न अंक।

विदेशी सहायता का आगम
(Inflow of External Assistance)[1]

(सकल व शुद्ध)		(करोड रुपयों मे
	1987-88	1988-89
I सकल वितरित सहायता की राशि	5032	5369
II कुल ऋण-सेवा-भार की राशि	2623	2770
III सहायता का शुद्ध आगम (I—II)	2409	2599

विदेशी सहायता का शुद्ध आगम (net inflow of assistance) 1979-80 मे 552 करोड रु रहा जो 1987-88 मे 2409 करोड रु के स्तर पर रहा। 1988-89 मे इसके लगभग 2600 करोड रुपये रहने का अनुमान है।

मार्च, 1988 के अन्त तक प्रयुक्त की गई विदेशी सहायता मे विभिन्न संस्थाओ व देशों का अंश इस प्रकार था[2]—

स्रोतों के अनुसार प्रयुक्त सहायता (utilisation) का वितरण (मार्च 1988 तक)

	(करोड रुपये मे)	(कुल का %)
(1) विश्व-बैंक	5710	13·5
(2) अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (IDA)	10978	25 9
(3) अमेरिका	6299	14·9
(4) रूस	1826	4 3
(5) पश्चिमी जर्मनी	2949	7 0
(6) संयुक्त राज्य (U.K.)	3420	8 1
(7) जापान	2768	6·5
(8) पेट्रोल निर्यातक देशो का संगठन (OPEC)	1663	3 9
(9) अन्य (EEC, IFAD, ADB, व अन्य)	6734	15·9
कुल	42347	100 0

1. Economic Survey, 1988-89, p. 120.
2. Report on Currency & Finance, 1987-88, Vol. I, p. 392.

इस प्रकार मार्च, 1988 तक प्रयुक्त की गई कुल सहायता की राशि में अमरीका का योगदान लगभग 15 प्रतिशत था, जबकि रूस का केवल 4 3 प्रतिशत था। विश्व-बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास एसोसियेशन का योगदान 39 4% था। इस प्रकार भारत का दशा के अनुसार सर्वाधिक सहायता अमरिका से मिली है।

भारत पर ऋण-सेवा-भार तेजी से बढ़ता जा रहा है। ब्याज व मूलधन की किस्त चुकाने में निर्यात-प्राप्ति का काफी अंश चला जाता है। 1987-88 में भारत का विदेशी कर्ज पर ऋण सेवा भुगतान चालू प्राप्तियां (current receipts) (निर्यातों व अदृश्य मदों से प्राप्त राशियों) का 24% हो गया है जिसके आगामी वर्षों में और बढ़ने की सम्भावना है।[1] यह 1984–85 में 13 6% था। इस प्रकार पिछले तीन वर्षों में यह काफी बढ़ा है।

पाकिस्तान में ऋण-सेवा-अनुपात भारत से ऊंचा है। अतः ऋण-सेवा-भार की दृष्टि से भारत की स्थिति पाकिस्तान से तो थोड़ी बेहतर है।

भारत पर विदेशी कर्ज की बकाया राशि के सम्बन्ध में विभिन्न अनुमान देखने को मिलते हैं। सरकारी अनुमानों के अनुसार मार्च 1988 के अन्त में विदेशी कर्ज की बकाया राशि 55000 करोड़ रुपय थी जबकि अमरीका में वाशिंगटन स्थित अन्तर्राष्ट्रीय-वित्त-संस्थान के अनुमान यह 90 000 करोड़ रु था। जो भी हो यह तो निश्चित है कि भारत विदेशी कर्ज के जाल में प्रविष्ट होता जा रहा है और इस सम्बन्ध में नीति-सम्बन्धी प्रभावशाली परिवर्तन आवश्यक प्रतीत होते हैं। अब कर्ज की राशि एक लाख करोड़ रुपय से अधिक बतायी जाने लगी है।[2]

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भारत ने बंगला देश, भूटान, बर्मा, इण्डोनेशिया, मारीशस, नेपाल, श्रीलंका व तन्जानिया आदि को आर्थिक सहायता प्रदान की है, जिसकी प्रयुक्त राशि मार्च, 1988 के अन्त तक 1672 करोड़ रु तक पहुँच गई थी। इसमें अनुदानों का अंश 1049 करोड़ रु था। इस प्रकार भारत विदेशी सहायता लेने के साथ-साथ थोड़ी मात्रा में देता भी रहा है।

भारतीय उद्योगों के विकास में विदेशी निजी विनियोगों (Foreign Private Investments) का स्थान

पहले हमने विदेशी सरकारों व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा भारत के आर्थिक विकास के लिए प्रदान की जाने वाली आर्थिक सहायता का वर्णन किया है। लेकिन **हमारे उद्योगों के विकास में विदेशी निजी पूँजी के विनियोग का भी स्थान रहा है।** 1948 में विदेशी निजी विनियोगों की राशि 265 करोड़ रुपये थी जो मार्च 1977

---

1. Economic Survey, 1988-89, p 122.
   अशोक मित्रा के अनुसार यह अधिक है (लगभग 30%)
2. Mainstream, August 19, 1989, p. 11.

के अन्त मे 2326 करोड रु. हो गई। इसमे प्रत्यक्ष विनियोग की पूँजी 920 करोड रु व अन्य पूँजी 1406 करोड रु थी। विभिन्न आर्थिक क्रियाओं मे 2326 करोड रु का वितरण इस प्रकार था: बागान 90 करोड रु., खनन 15 करोड रु. पेट्रोलियम 73 करोड रु. विनिर्माण 1081 करोड रु. तथा सेवाएँ 1067 करोड रु।[1]

देशो के अनुसार इसका वितरण देखने से पता चलता है कि पश्चिमी जर्मनी का अंश 257 करोड रु., सयुक्त राज्य (UK) का 650 करोड रु. व अमरिका का अंश 669 करोड रु. था। इस प्रकार इन तीनो देशो का अंश 1576 करोड रु. था जो कुल राशि का 68% (2/3 से कुछ अधिक) था।

विदेशी कम्पनियाँ तीन प्रकार की होती हैं : (1) सहायक कम्पनियाँ (Subsidiaries) जिनमे विदेशी कम्पनी का शेयर-पूँजी मे 50% से अधिक अंश होता है, (2) अल्पमत वाला साझेदारी समूह (Minority Participation Group) जिसमे यह अंश 50% या इससे कम होता है, तथा (3) शुद्ध तकनीकी सहयोग वाला समूह (Pure Technical Collaboration Group) जिनमे केवल तकनीकी सहयोग का समझौता ही पाया जाता है।

विदेशी सहयोग मे प्राय विदेशी निजी विनियोग व प्राविधिक सहयोग आता है जो विदेशी औद्योगिक फर्मों व पूँजी प्राप्त करने वाले देशो के उद्यमकर्त्ताओ के बीच स्थापित होता है। भारत ने विदेशी सहयोग के काफी समझौते किये हैं। हमारे औद्योगिक विकास के लिए विदेशी तकनीकी ज्ञान का उपयोग काफी लाभकारी रहा है, क्योंकि इससे हमे विदेशो मे प्रयुक्त होने वाली नवीनतम टेक्नोलोजी की जानकारी मिलती है। भारत मे ऐसे समझौतो के अन्तर्गत विदेशी सहयोग व प्राविधिक सहायता से पिछले चार दशको की अवधि मे उद्योगो का एक जाल-सा बिछ गया है जिसमे भारी मात्रा मे पूँजी लगाई गई है। विदेशी सहयोग से जहाँ भारत म उद्योगो की स्थापना व विकास हुआ है, वहाँ इनसे कुछ समस्यायें भी उत्पन्न हुई हैं जो इस प्रकार हैं

विदेशी निजी विनियोगों से उत्पन्न समस्याएँ

1 एक उद्योग के लिए कई बार विदेशी सहयोग के समझौते किये गये हैं जैसे वस्त्रों की कताई-बुनाई, कई प्रकार की मशीनो एव कागज व कागज की वस्तुओ के लिए कई बार समझौते हुए हैं। यहाँ तक कि मामूली उपभोग की वस्तुओ के लिए

---

1. India's International Investment Position : 1974-75 to 1976-77, RBI Bulletin, December, 1984, pp. 877-878.

भी हमे कई बार समझौते करने पडे हैं । भारत की विदेशी तकनीकी ज्ञान पर निर्भरता बनी हुई है । कई बार उत्पादन की अप्रयुक्त क्षमता के पडे रहने पर भी नये समझौते किये गये हैं जिन्हे उचित नही ठहराया जा सकता ।

2 विदेशी ब्राण्डो व ट्रेड-मार्कों के उपयोग से भारतीय माल को क्षति पहुँची है । जैसे ओवलटीन वूडवर्ड ग्राइपवाटर फोर्हेंस टूथपेस्ट व्ही जी फोरा हालिक्स आदि इसके उदाहरण है । भारतीय ब्राण्डो व ट्रेड मार्कों को घटिया मानकर नीचा समझा जाता है जबकि वस्तुत गुण की दृष्टि से देशी व विदेशी ब्राण्डो म प्राय विशेष अ तर नही होता ।

3 विदेशी कम्पनियो ने अ तरण कीमत (transfer pricing) के माध्यम से काफी लाभ कमाये हैं । बहुराष्ट्रीय निगमो की कई देशो मे कम्पनियाँ या शाखाएँ होती है । वे अन्तरण-कीमत के माध्यम से लाभ कमाते है । इस व्यवस्था के अ तगत एक कम्पनी दूसरे देश मे स्थित अपनी सहायक कम्पनी से ऊँचे मूल्यो पर कच्चा माल खरीद लेती है तथा कम मूल्यो पर बाहर निर्मित माल बेचने की व्यवस्था कर लेती है । *इससे उसका कुल मुनाफा कम हो जाता है जिससे उसे आय-कर कम मात्रा म* देना पडता है । विदेशी कम्पनियाँ प्राय आयातित कच्चे माल के ऊँचे भाव लगाती है । दिल्ली म लोक प्रशासन के भारतीय सस्थान के प्रोफेसर एस के गोयल के अनुसार बहुर्राष्ट्रीय निगम प्रतिवर्ष 220 करोड रुपये की विदेशी विनिमय का उपयोग करते हैं जिसका 86% कच्चे माल को ऊँचे भावो पर आयात करने म लगाया जाता है ।

4 भारतीय स्वदेशी ज्ञान को कम प्रोत्साहन तथा भारी मात्रा मे विदेशी मुद्रा का बहिर्गमन (outflow)—विदेशी तकनीकी ज्ञान को प्रत्येक स्थिति म प्राथमिकता देने से भारतीय स्वदेशी ज्ञान को आवश्यक प्रोत्साहन नही मिल पाता । रॉयल्टी व तकनीकी कर्मचारियो की फीस के बतौर करोडो रुपयो की राशि विदेशी कम्पनियाँ बाहर भेजती रही है । सलाह के लिए फीस व डिजाइन के व्यय अलग होते हैं । *दुर्भाग्य का विषय है कि कही कही तो के टीन व साइकिल स्टैण्ड तक की डिजाइन* बनाने के लिए विदेशियो से सलाह लेने की फीस दी गई है ।

कालगेट पामओलिव ने प्रति शेयर लाभाश की राशि काफी ऊँची घोषित की है । कई विदेशी कम्पनियो ने भारत म लगाई गई पूँजी की तुलना म बाहर लाभाश आदि की राशि ज्यादा भेजी है जिससे भारत म विशुद्ध विनियोग बहुत कम व कभी कभी ऋणात्मक रहा है । उदाहरण के लिए 1968 80 की अवधि मे दवा उद्योग मे कुल नया विदेशी विनियोग 60 करोड रु का हुआ जो बाहर भेजे गये लाभाश व मुनाफो की राशि से कम था । अत इस क्षेत्र म विशुद्ध विनियोग ऋणात्मक (negative) रहा ।

5 भारत में अनुसंधान व विकास (R & D) पर कम व्यय किया जाता है—भारत में अनुसंधान पर राष्ट्रीय आय का 0 32 प्रतिशत व्यय किया जाता है, जबकि अमेरिका व जापान आदि में राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत व्यय किया जाता है। हमें इन्जीनियरिंग के क्षेत्र में अनुसंधान पर अधिक व्यय करना चाहिये।

इसके अलावा विदेशी कम्पनियों के चेयरमैन व उच्चाधिकारियों के वेतन व उनको मिलने वाली सुविधायें इतनी ऊँची होती हैं कि वे भारत में अन्य वर्गों को प्राप्त सुख-सुविधाओं से मेल नहीं खाती। इससे अनुचित किस्म की असमानता व असन्तोष को बढ़ावा मिलता है।

हाल के वर्षों में भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों (multinationals) की क्रियाओं व गतिविधियों के सम्बन्ध में काफी चर्चा रही है। भारत सरकार ने (जनता शासन काल में) कोका-कोला व अन्तर्राष्ट्रीय बिजनेस मशीन्स (IBM) जैसी अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत में अपना कारोबार बन्द करने के लिए कहा था क्योंकि उन्होंने स्वयं के हितों का ज्यादा ध्यान रखा था। अमरीकी कम्प्यूटरों के चार्जेज काफी ऊँचे रहे हैं। वर्तमान सरकार ने भी स्पष्ट कर दिया है कि विदेशी कम्पनियों का सहयोग उत्पादन के जटिल क्षेत्रों में अवश्य लिया जायेगा और निर्यात सवर्द्धन क्रियाओं में इसे प्रोत्साहित किया जायेगा। लेकिन सामान्य मामलों में, विदेशी कम्पनियों का अंश कुल शेयर पूँजी में 40% ही रखा जायगा, जो विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम (FERA), 1973 के अन्तर्गत निर्धारित किया गया था। सरकार ने विदेशी दवाई-कम्पनियों के सम्बन्ध में 40 प्रतिशत की शर्त पर जोर दिया है। इस प्रकार भारतीय हितों को ध्यान में रखकर बहुराष्ट्रीय निगमों की गतिविधियों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया है।

विदेशी कम्पनियों को विशेष परिस्थितियों में जैसे जटिल टेक्नोलोजी के क्षेत्रों, निर्यात-सवर्द्धन के लिए व बड़े पैमाने की किफायतों का लाभ उठाने के लिए 40% से अधिक शेयरहोल्डिंग की इजाजत भी दी जा सकती है। वैसे भी उनको अपनी शेयर राशि घटाकर 40% तक लाने में कोई हानि नहीं उठानी पड़ी है। सुदीप चौधरी ने अपने अध्ययन में बतलाया है कि हिन्दुस्तान लीवर ने नवम्बर 1977 में अपनी शेयर-राशि 85% से घटाकर 65% कर ली, लेकिन यह डॉमलेट के माध्यम रसायन वनस्पति, मिल्क पाउडर, आदि का निर्माण करती है और सरकार ने इसे जटिल टेक्नोलोजी के नाम पर 50% से अधिक शेयर-राशि रखने की इजाजत भी दी है। विदेशी कम्पनियों को नई दिशाओं में अपना काम बढ़ाने व विविधता लाने की इजाजत देने से भारत में लघु पैमाने की इकाइयों को काफी धक्का पहुँचा है।

भारत सरकार ने विदेशी सहयोग के प्रत्येक मामले पर पृथक से विचार करने की नीति अपनायी है। यह एक विशिष्ट (selective) व लोचदार (flexible)

किस्म की नीति रही है। प्रोफेसर के० के० सुब्रह्मण्यम का सुझाव है कि सरकार एक ऐसी एजेन्सी स्थापित करे जो विदेशी सहयोग के प्रत्येक प्रस्ताव की छानबीन करे, उसका मूल्यांकन करे उसके सम्बन्ध म आवश्यक लिखा-पढी करे तथा उस पर अपनी रिपोर्ट दे। भारत को भी जापान की भांति विदेशी तकनीक को अपनी परिस्थिति के अनुसार ढालने की नीति अपनानी चाहिये। इससे नई स्वदेशी तकनीक का विकास हो सकेगा।

पिछले कुछ वर्षों मे सरकार विदेशी निजी विनियोगो को प्रोत्साहन देने के लिए अपनी नीति को काफी उदार बनाया है। पहले वस्तुओ व कल पुर्जों के लिए 90% के स्वदेशीकरण (indigenisation) की शर्त होती थी जिसे निर्धारित अवधि मे प्राप्त करना जरूरी माना जाता था। अब बहुराष्ट्रीय नियमो के लिये यह 90% की जगह 70% तक कर दी गई और उसे काफी लम्बी (अनिश्चित) अवधि तक लागू किया जा सकता है। रोयल्टी के भुगतान 5 वर्ष से बढा कर 7 वर्ष के लिए कर दिये गये है।

इस प्रकार सरकार विदेशी निजी विनियोगो को बढाने के लिए इनके प्रति उदार नीति बरतने लगी है। हाल के वर्षो मे चीन ने विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग लगभग 2000 करोड रुपये वार्षिक आकर्षित किया है जबकि भारत के लिए इसकी मात्रा केवल 100 करोड रुपये वार्षिक ही रही है। अत अब सरकार इसको बढाने के लिए उदार शर्तों का पालन करने लगी है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी सहायता का योगदान

हम देख चुके है कि योजनाकाल मे विश्व की विभिन्न सस्थाओ, विभिन्न देशो की सरकारो तथा विभिन्न देशो की निजी कम्पनियो ने भारत को पूँजीगत सहायता प्रदान की है जिससे निम्न लाभ प्राप्त हुए हैं

1 भारत को कृषि, सिंचाई, विद्युत व परिवहन के विकास मे काफी सहायता मिली है। सिंचाई से सम्बन्धित कमाण्ड-क्षेत्र-विकास परियोजनाओ मे विश्व बैंक की मदद का प्रयोग किया जा रहा है।

9 औद्योगिक विकास मे मदद मिली है। तेल, पेण्ट, दवा, औद्योगिक मशीनरी एल्यूमिनियम, रबर-पदार्थों, विद्युत मशीनरी परिवहन-उपकरण, रसायन व टिकाऊ तथा विलासिता की उपभोग्य वस्तुओ के उत्पादन को बढाने मे विदेशी कम्पनियो का सहयोग मिला है।

3 देश मे तकनीकी व प्रबन्धकीय ज्ञान का उपयोग व विस्तार हुआ है।

4. तकनीकी ज्ञान के विस्तार से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बल मिला है। टेक्नोलोजी का समुन्नत करने का अवसर मिला है।

इस प्रकार चाहे तकनीकी दृष्टि से हम आत्म-निर्भर न हो पाये हो, लेकिन योजना काल मे हमारी तकनीकी क्षमता व शक्ति काफी बढी है। अब भारत का विश्व के चोटी के औद्योगिक देशों मे स्थान माना जाने लगा है।

5 पूंजी-निर्माण व विदेशी सहायता—विदेशी सहायता ने देश मे विनियोग की दर को बढाने म मदद दी है, हालाकि 1976–79 के तीन वर्षों मे घरेलू बचत की दर के समग्र विनियोग की दर से ऊँचा रहने से विदेशी पूंजी का पूंजी-निर्माण व विनियोग की बढान की दृष्टि से स्थान घटकर ऋणात्मक हो गया था। जिस सीमा तक देश मे विनियोग की दर घरेलू बचत की दर से अधिक होती है, उस सीमा तक विदेशी सहायता का पूंजी-निर्माण मे योगदान माना जाता है। 1980-81 के नय सिरीज के अनुसार 1987-88 मे सकल विनियोग की दर 22 1%, सकल घरेलू बचत की दर 20 2% से 1·9% अधिक रही है, जो आर्थिक विकास म विदेशी साधनो के योगदान की सूचक है। आठवी योजना के दृष्टिकोण प्रपत्र मे 1990–95 के लिए शुद्ध पूंजी का आगमन GDP का 1·6% आँका गया है।

भारत के लिए विदेशी सहायता से सम्बन्धित विभिन्न समस्याएं या कठिनाइयाँ

पिछले वर्षो मे विदेशी सहायता के सम्बन्ध मे हमारे समक्ष कई प्रकार की समस्याए आयी है। इनका विवरण आगे दिया जाता है—

1 ऋण-सेवा-भुगतान, अर्थात् ऋणो के मूलधन व ब्याज की राशि को चुकाने का भार दिनोदिन बढता जा रहा है। परिणामस्वरूप सकल विदेशी सहायता की राशि मे से ऋण-सेवा-भुगतान की राशि को निकाल देने से शुद्ध विदेशी सहायता (net foreign aid) का अश काफी कम हो गया है। ऋण-सेवा-भुगतान का भार काफी बढ गया है। प्रथम योजना म कुल ऋण-सेवा भुगतान की राशि लगभग 24 करोड रुपये थी जो बढकर तृतीय योजनाकाल मे 543 करोड रुपये हो गई। बाद म इसमे उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। 1987-88 मे ऋण-सेवा-भुगतान की राशि 2623 करोड रुपये हो गई तथा 1988-89 के लिए यह 2770 करोड रुपये आकी गई है। ऋण-सेवा भार चालू प्राप्तियो का 1987-88 मे 24% हो गया है जो सुरक्षा की सीमा 20% से अधिक है। अत भारत विदेशी कर्ज के फदे के कगार पर है। हम प्रभावपूर्ण नीतिया अपनाकर स्थिति को नियन्त्रित करना चाहिए।

अत. सातवी योजना म भुगतान की स्थिति काफी जटिल हो गई है। हमे भविष्य म विदेशी पूजी का अधिक प्रयोग निर्यात-उद्योगो मे करना चाहिए ताकि निर्यात बढाकर विदेशी पूजी का ब्याज सहित भुगतान करने मे सहूलियत हो सके। हमे विदेशी सहायता का उपयोग आयात-प्रतिस्थापन की वस्तुए बनाने म भी करना चाहिए। अर्थव्यवस्था को ज्यादा से ज्यादा उत्पादक बनाया जाना चाहिए ताकि औद्योगिक विकास की वार्षिक दर आठ प्रतिशत से अधिक जारी रखी जा सके।

2. ऋण-राहत सहायता की आवश्यकता—विभिन्न देशों व संस्थाओं ने भारत को पिछले वर्षों में ऋण-राहत (debt relief) के रूप में काफी सहायता प्रदान की है। लेकिन यह एक तरह से नया ऋण देने के समान ही है। ऋण-राहत सहायता के निम्न रूप अपनाए गए हैं: (अ) पुनर्वित्त के लिए साख प्रदान करके (by way of refinancing credits) ' इसके अनुसार पुराने ऋण चुकाने के लिए नये ऋण दिये गये है। ऑस्ट्रिया, बेल्जियम, पश्चिमी जर्मनी, इटली व ब्रिटेन ने इस दिशा में मदद की है। (आ) भुगतान स्थगन (postponement of payment) के जरिये भी विश्व बैंक, अमेरिका व कनाडा ने ऋण-राहत-सहायता प्रदान की है। (इ) जापान ने कर्ज के भुगतान की शर्तें पुन: निर्धारित की हैं (re-scheduling of payment) तथा नये कर्ज बहुत उदार शर्तों पर दिये हैं। (ई) ब्याज में राहत देकर कनाडा व पश्चिमी जर्मनी ने अनुदान (grants) प्रदान किये हैं और आस्ट्रिया व नीदरलैण्ड ने ब्याज में कमी की विधि अपनायी है। भारत के लिए ऋण-राहत की आवश्यकता इस बात को सूचित करती है कि हम अपने ऋणों का पूरी तरह सदुपयोग नहीं कर पाये है जिससे हमारी भुगतान-क्षमता पर्याप्त मात्रा में विकसित नहीं हो सकी और यह अपेक्षाकृत कमजोर रह गयी है।

3. अभी तक जो सहायता मिली है उसमें बंधी-बंधायी सहायता (tied aid) का अनुपात अधिक रहा है। हम पहले मुक्त सहायता (untied aid) के महत्व पर प्रकाश डाल चुके हैं। इससे मूलधन व ब्याज की किस्त चुकाने में सहायता मिलती है। बंधी-बंधाई सहायता प्रोजेक्ट से बंधी रह सकती है, अथवा किसी देश के अनुसार बंधी हो सकती है। उसे निर्धारित प्रोजेक्ट के लिए ही इस्तेमाल किया जा सकता है। भारत को अब तक जो विदेशी सहायता मिली है उसमें लगभग $\frac{2}{3}$ अंश बंधी सहायता (tied-aid) का रहा है और शेष $\frac{1}{3}$ अंश बिना बन्धी या खुली सहायता (untied aid) का रहा है। इस प्रकार स्वतन्त्र सहायता का अंश काफी कम रहा है। इस स्थिति की वजह से विदेशी सहायता का पूरा लाभ नहीं उठाया जा सका है।

4. ऋणों के उपयोग पर विभिन्न प्रतिबन्धों से भारत को क्षति—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गैर-प्रोजेक्ट सहायता में भी यह प्रतिबन्ध रहा है कि सहायता देने वाले देश से ही प्रमुख वस्तुएं खरीदी जानी चाहिए। 1964 तक हमें विदेशों से रासायनिक उर्वरक खरीदने की इजाजत नहीं दी जाती थी। लेकिन बाद में जब इजाजत मिलने लगी तो अमरिका ने यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि उर्वरक उसी से खरीदे जाएं, जिससे हमें यूरोपीय बाजारों की तुलना में अमरीका को उर्वरकों के 20 प्रतिशत ऊंचे मूल्य देने पड़े। भूतकाल में जापान ने हमें इस्पात बेचने में आनाकानी की थी, क्योंकि इसे यह अन्य देशों को अपेक्षाकृत ऊंचे प्रतिस्पर्धात्मक मूल्यों पर बेच सकता था।

विदेशी सहायता के सम्बन्ध में कनाडा व ब्रिटेन का दृष्टिकोण अधिक उदार रहा है। ब्रिटेन वस्तुओं से सम्बन्धित प्रतिबन्ध नहीं लगाता है। कनाडा ने ऋण-राहत-सहायता प्रदान की है। पिछले कुछ वर्षों में पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैण्ड व बेल्जियम ने ब्याज की दरों में कमी की है और भुगतान की अवधि भी बढ़ायी है।

5. भूतकाल में सहायता की स्वीकृति और सहायता के प्रयोग के बीच काफी अन्तर रहा है। इस अन्तर का एक कारण तो यह है कि प्रोजेक्ट-सहायता अधिक मात्रा में मिली है जिससे सहायता का पूरा उपयोग करने में कई प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ा है। पहले बताया जा चुका है कि प्रोजेक्ट में कमी रह जाने से प्रोजेक्ट सहायता के उपयोग में बाधा पड़ जाती है। गैर-प्रोजेक्ट सहायता के उपयोग में इतनी कठिनाइयाँ नहीं आती हैं।

6. भारत में विदेशी निजी पूँजी के आगमन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इसके लिए कर-नीति में आवश्यक संशोधन करने होंगे। विदेशी निजी विनियोगों के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के लिए हर सम्भव उपाय काम में लेने चाहिए। विदेशों में हमारी आर्थिक नीति के सम्बन्ध में अनावश्यक भ्रम पाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रचार करके हमारे दृष्टिकोण के प्रति अधिक सहयोग व सहानुभूति का वातावरण तैयार किया जाना चाहिए। विदेशी पूँजीपति अपनी पूँजी पर पर्याप्त आय और पूँजी की सुरक्षा दोनों चाहते हैं। भारत दोनों ही दृष्टिकोण से काफी आकर्षक माना जा सकता है। लेकिन विदेशी कम्पनियों को विदेशी विनिमय-नियमन अधिनियम (FERA), 1973 की शर्तों के अन्तर्गत कार्य करना होता है।

7. विकसित देशों की ओर से आर्थिक सहायता के साथ-साथ व्यापार की सुविधा प्रदान करना भी आवश्यक है। जब तक वे विकासशील देशों को व्यापार की पर्याप्त व उदार सुविधाएँ नहीं देंगे, तब तक कोरी आर्थिक सहायता ही उनका आर्थिक कल्याण नहीं कर सकेगी। इस सम्बन्ध में विकसित राष्ट्रों को चाहिए कि वे प्रशुल्क (आयात-कर आदि) व गैर-प्रशुल्क बाधाएँ (जैसे कोटा-निर्धारण आदि) दूर करें और विकासशील देशों का माल भी अधिक मात्रा में खरीदें। ऐसा करने पर विकासशील देश अपना माल का निर्यात करके बदले में विकास सामग्री प्राप्त कर सकेंगे जिससे आर्थिक सहायता की आवश्यकता भी उत्तरोत्तर घटती जायेगी। अतः विकसित देशों को संरक्षणवाद की नीति में आवश्यक ढील देनी चाहिए। धनी व निर्धन देशों के बीच आर्थिक मसलों में संरक्षणवाद का मसला काफी महत्वपूर्ण माना गया है। जब तक धनी राष्ट्र संरक्षणवाद को नहीं छोड़ते तब तक विकासशील देश के निर्यात तेजी से नहीं बढ़ सकते।

रूस से प्राप्त होने वाले ऋणों की सहायता को व्यापार से जोड़ा गया है और इसके परिणाम भी अच्छे निकले हैं, हालांकि रूस के ऋणों पर सेवा-व्यय का वार्षिक भार लगभग 12 प्रतिशत आता है। पिछले कुछ वर्षों में रूस को हमारे

निर्यात काफी बढ़े हैं जिससे उपर्युक्त दायित्वों को चुकाने में विशेष कठिनाई नहीं हुई है।

सोवियत संघ की सहायता से भारत को इस्पात, पावर, कोयला व गैस जैसे आधारभूत क्षेत्रों का विकास करने में मदद मिली है। 1988 में स्वीकृत 725 करोड़ रुपये के कर्ज से विन्ध्याचल थर्मल स्टेशन, चरण II, को स्थापित करने में मदद मिलेगी।

8 **प्राप्त सहायता का अनुचित ढंग से उपयोग**—स्वर्गीय प्रोफेसर बी आर. शेनॉय ने विदेशी सहायता के सम्बन्ध में कहा था कि योजना के प्रथम पन्द्रह वर्षों की अवधि में भारत को जो विदेशी सहायता मिली उसकी मात्रा बाद के वर्षों में काफी बढ़ गई। इसने काफी विशाल रूप धारण कर लिया। हमारे घरेलू साधन विनियोग की दृष्टि से इसके समक्ष काफी फीके पड़ गये। प्रोफेसर शेनॉय ने इस बात पर गहरी चिन्ता प्रकट की थी कि इतनी विशाल विदेशी सहायता के बावजूद भी देश में जनसाधारण का भला नहीं हुआ एवं धनी अधिक धनी हो गये और गरीब या तो गरीब रह गये अथवा अधिक गरीब हो गये। प्रति व्यक्ति भोजन व कपड़े के उपभोग में वृद्धि नहीं हुई।

प्रश्न उठता है कि इतनी विशाल मात्रा में प्राप्त विदेशी सहायता और विदेशी विनियोग कहाँ चले गए ? प्रोफेसर शेनॉय का उत्तर था कि विकास की गति को तेज करने के बजाय ये विदेशी साधन अनुत्पादक औद्योगिक परियोजनाओं, नदी-घाटी और विशाल परियोजनाओं में लगा दिये गये। इन्होंने देश में उत्पादन-क्षमता का आधिक्य उत्पन्न कर दिया और परोक्ष रूप में इन्होंने भ्रष्टाचार, विलासी जीवन ऊँची अट्टालिकाओं, सिनेमा घरों व गैर-आवश्यक शहरी सम्पत्ति की वित्तीय व्यवस्था की। कुछ राशि का उपयोग स्वर्ण के आयात व चोरी से अन्य माल के आयात आदि में भी किया गया। इस प्रकार इस सहायता का लाभ सर्वसाधारण को नहीं मिल पाया। विदेशी सहायता व साधनों का इस प्रकार का दुरुपयोग एक भारी चिन्ता का विषय है।

9. **अमरीका द्वारा राजनीतिक दबाव का प्रयास**—दिसम्बर 1971 में भारत-पाक युद्ध छिड़ जाने पर अपनी पाकिस्तान-समर्थक नीतियों के कारण अमेरिका ने भारत को दी जाने वाली आर्थिक सहायता बन्द कर दी थी, जिससे हमारे औद्योगिक विकास को भारी क्षति पहुँची थी, जापान ने भी भारत को आर्थिक सहायता स्थगित कर दी थी। लेकिन वह युद्ध के बाद पुनः चालू कर दी गई। बाद में भारत अमरीकी सम्बन्धों में सुधार होने पर अमरीकी आर्थिक सहायता भी पुनः चालू कर दी गई। अमरीकी सहायता के बन्द हो जाने से हमारी अर्थव्यवस्था पर काफी

मे लेने होंगे। म्रत: उन्नत व विकसित टेक्नोलोजी का उपयोग देश के लिए म्रावश्यक हो गया है।

प्रश्न

1. भारत के म्रार्थिक विकास हेतु विदेशी सहायता क्यों म्रावश्यक है ? इसके क्या सम्भावित खतरे है ? (Raj. IIyr. TDC. 1987)

2. निम्नलिखित को समझाइये—
   (i) पुनर्भुगतान की समस्या। (Raj IIyr T.D.C.. 1985)

3. भारत के म्रार्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता क्यो म्रावश्यक है ? पचवर्षीय योजनाम्रो की म्रवधि मे विदेशी सहायता का मूल्याकन कीजिये म्रौर उनकी कठिनाइयो व समस्याम्रो को बतलाइये।
   (Raj. IIyr. T.D.C.. 1978)

20

पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य

(*Objectives of Five Year Plans*)

भारत ने लगभग चार दशक पूर्व आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया था, जिसके मूलभूत उद्देश्य थे : विकास, आधुनिकीकरण, आत्म-निर्भरता व सामाजिक न्याय। नियोजन के इसी विस्तृत ढांचे या फ्रेमवर्क के अन्तर्गत प्रत्येक योजना में नई परिस्थितियों व नई सम्भावनाओं के अनुसार आवश्यक परिवर्तन भी किये गये हैं।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति पर ही भारत में सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना निर्भर करती है। हम यहाँ पर विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों का वर्णन करेंगे और यह बतायेंगे कि योजनाओं में निर्धारित उद्देश्य व्यवहार में कहाँ तक प्राप्त किये जा सके हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य

(Objectives)

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तिम प्रारूप में यह स्पष्ट किया गया था कि अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक समानता व सामाजिक न्याय की प्राप्ति, जो वर्तमान दशाओं में नियोजन के स्वीकृत उद्देश्य हैं, एक-दूसरे से पृथक विचार नहीं हैं, बल्कि परस्पर सम्बद्ध उद्देश्य है जिनके लिए देश को प्रयास करना चाहिए। सामान्य रूप से ये ही प्रथम योजना के उद्देश्य थे, लेकिन बाद में प्रत्येक योजना में तत्कालीन आर्थिक समस्याओं को ध्यान में रखकर अलग-अलग उद्देश्य निर्धारित किये गये। इन पर क्रमशः आगे प्रकाश डाला जाता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य

प्रथम पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य योजना के मसौदे में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत नहीं किये गये, जैसा कि आगामी योजनाओं में किया गया। लेकिन योजना के अन्य विवरण देखकर हम इसके उद्देश्यों का भी अनुमान लगा सकते हैं : प्रथम पंचवर्षीय योजना के मसौदे में यह कहा गया कि सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की राशि 2,069 करोड़ रुपये निर्धारित करते समय निम्न प्रमुख बातों को ध्यान में रखा गया है : (1) विकास की एक ऐसी प्रक्रिया को चालू करने की आवश्यकता है जो भविष्य में

अपेक्षाकृत बड़े प्रयास अर्थात् अपेक्षाकृत बड़ी आर्थिक योजना का आधार बन सके, (2) विकास के लिए देश को उपलब्ध हो सकने वाले कुल साधन, (3) विकास की गति व सार्वजनिक एव निजी क्षेत्रों मे साधनों की आवश्यकताओं मे गहरा सम्बन्ध, (4) योजना से पूर्व केन्द्रीय व राज्य सरकारो के द्वारा प्रारम्भ की गई विकास-योजनाओं को पूरा करने की आवश्यकता; और (5) द्वितीय महायुद्ध व देश के विभाजन द्वारा उत्पन्न आर्थिक असन्तुलनो को ठीक करने की आवश्यकता।

इस प्रकार प्रथम पचवर्षीय योजना के निम्न उद्देश्य माने जा सकते हैं सर्व-प्रथम, इसका उद्देश्य यह था कि अर्थव्यवस्था के उस असन्तुलन को दूर करना जो देश के विभाजन व द्वितीय महायुद्ध की परिस्थितियो से उत्पन्न हुआ था। दूसरा इससे चौमुखी सन्तुलित विकास की प्रक्रिया को एक साथ चालू करने का प्रस्ताव रखा गया। जो आगे चलकर राष्ट्रीय आय म वृद्धि कर सके और जीवन-स्तर म निश्चित रूप से सुधार ला सके। इस प्रकार पहला उद्देश्य अल्पकालीन था और दूसरा दीर्घकालीन।

प्रथम योजना के प्रस्तावित विनियोग के प्रारूप मे कृषि व सिचाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। कुल प्रस्तावित व्यय का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग इनके लिए निर्धारित किया गया। विद्युत-शक्ति के सृजन को भी, जो सिंचाई की वृहद् योजनाओं से सम्बद्ध है उच्च प्राथमिकता दी गयी। लगभग व्यय का $\frac{1}{4}$ अंश परिवहन व सचार के लिए रखा गया।

कृषि सिंचाई, शक्ति व परिवहन के विकास पर अधिक बल देने से सार्व-जनिक क्षेत्र मे उद्योगो पर व्यय के लिए धन-राशि बहुत थोडी रह गई थी। सामाजिक सेवाओ के क्षेत्र मे विस्थापित व्यक्तियो को पुन बसाने के कार्यक्रमो पर अधिक ध्यान देना आवश्यक हो गया था।

इस प्रकार प्रथम पचवर्षीय योजना का प्रमुख उद्देश्य सिंचाई के साधनो का विस्तार करके एव अन्य उपाय अपनाकर कृषिगत विकास की ओर अधिक ध्यान देना था। साथ ही, शक्ति व परिवहन का विकास करके योजना के आगामी चरण मे औद्योगिक विकास की भूमिका तैयार करना भी था। कृषि की प्रगति के लिए सामुदायिक विकास-कार्यक्रम को अपनाया जाना भी योजना की मुख्य विशेषता थी।

प्रथम योजना अपने अल्पकालीन उद्देश्यो की प्राप्ति मे काफी सफल रही। योजना के अन्त म अर्थव्यवस्था पहले से काफी सुदृढ व सुस्थिर थी। द्वितीय महायुद्ध व देश के विभाजन द्वारा उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन काफी सीमा तक दूर हो गये थे, देश की खाद्य-स्थिति सुधरी हुई थी और मूल्य स्तर भी योजना के प्रारम्भ की तुलना मे नीचा हो गया था। इन सफलताओ से प्रभावित होकर द्वितीय योजना का आकार बड़ा रखा गया और उसमे औद्योगिक विकास को उच्च प्राथ-मिकता दी गई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य

द्वितीय योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व दिसम्बर 1954 में ही आर्थिक नीति का उद्देश्य 'समाजवादी ढंग के समाज' की स्थापना करना रखा गया था। द्वितीय योजना के उद्देश्य निर्धारित करते समय इस व्यापक लक्ष्य को ध्यान में रखा गया। द्वितीय योजना के उद्देश्य निम्नलिखित थे।

(1) राष्ट्रीय आय में काफी वृद्धि करना जिससे देश में जीवन-स्तर ऊँचा किया जा सके, (2) तीव्र गति से औद्योगीकरण करना एवं इसके लिए आधारभूत व भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता देना; (3) रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि करना; (4) आमदनी व धन की असमानताओं में कमी करना और आर्थिक शक्ति का अधिक समान वितरण करना।

यह कहा गया कि ये उद्देश्य परस्पर जुड़े हुए हैं। इनको प्राप्त करने के लिए सन्तुलित ढंग से प्रयास किया जाना चाहिए। किसी भी एक उद्देश्य पर आवश्यकता से अधिक बल देने से अर्थव्यवस्था को क्षति हो सकती है। तीव्र औद्योगीकरण के लिए देश में आधारभूत उद्योगों एवं ऐसे उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए, जो मशीनें बनाने की मशीनें (मातृ-मशीनें) (mother-machines) उत्पन्न कर सकें। इसके लिए लोहा व इस्पात, अलौह धातु, कोयला, सीमेंट, भारी रसायन व अन्य उद्योगों का विकास करना आवश्यक माना गया। रोजगार बढ़ाने के लिए श्रम-गहन पद्धतियों का उपयोग करने की नीति का समर्थन किया गया। इसके लिए घरेलू व पारिवारिक उद्योगों के विकास पर बल दिया गया।

द्वितीय योजना का अन्तिम उद्देश्य सामाजिक माना जा सकता है जो 'समाजवादी ढंग के समाज' की स्थापना के लिए आवश्यक माना गया। इसके लिए समाज के कमजोर वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। योजना में 'समाजवादी ढंग के समाज' के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए राजकोषीय नीति (Fiscal policy) में आवश्यक परिवर्तन करने की आवश्यकता स्वीकार की गयी थी। सामाजिक सेवाओं के विस्तार, भूमि-व्यवस्था में परिवर्तन, संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों की कार्यप्रणाली व मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली में परिवर्तन, सहकारी क्षेत्रों व सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, आदि उपायों का प्रभाव एक ऐसे समाज का निर्माण करना था जो अधिक समानता पर आधारित हो।

द्वितीय योजना के लक्ष्यों को पाँच वर्षों की अवधि में प्राप्त करना आसान नहीं था। लेकिन इनको प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ना आवश्यक माना गया। योजना के प्रारम्भिक वर्षों में देश को गम्भीर खाद्य-संकट व विदेशी विनिमय-संकट का सामना करना पड़ा। अतः तृतीय योजना में पुनः कृषि-क्षेत्र को प्राथमिकता देना आवश्यक हो गया था :

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74) में अपनाया गया सामान्य दृष्टिकोण

चतुर्थ पचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1969 से प्रारम्भ की गयी थी। इसके सशोधित मसौदे मे योजना के उद्देश्य उस रूप मे प्रस्तुत नही किये गये जिसमे वे द्वितीय व तृतीय पचवर्षीय योजनाओ की रिपोर्टों मे पेश किये गये थे। चतुर्थ योजना के मसौदे मे स्वीकार किये गये सामान्य दृष्टिकोण के आधार पर इसके उद्देश्यो का अनुमान लगाया जा सकता है। सामान्य दृष्टिकोण मे स्थिरता के साथ विकास, राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता, सामाजिक न्याय व समानता, क्षेत्रीय असन्तुलनो मे कमी, आदि बातो पर बल दिया गया था।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के उद्देश्य

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे स्वीकृत सामान्य दृष्टिकोण के अध्ययन से पता लगता है कि इसमे लगभग उन्ही उद्देश्यो पर बल दिया गया जो द्वितीय व तृतीय योजनाओ मे घोषित किये गये थे; जैसे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि, रोजगार मे वृद्धि, कृषिगत उत्पादन मे वृद्धि, आर्थिक व सामाजिक समानता के लिए प्रयास करना, आदि। लेकिन पिछली योजनाओ के अनुभवो को ध्यान में रखते हुए चतुर्थ योजना मे इन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कार्यक्रम व नीतियाँ सुझायी गयी थी। सक्षेप मे हम कह सकते है कि चतुर्थ योजना मे निम्न बातों पर बल दिया गया. (1) आर्थिक विकास मूल्य-स्थिरता के वातावरण मे किया जाय, (2) विदेशी सहायता पर निर्भरता कम करके राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता की ओर बढा जाय और विकास के लिए आन्तरिक साधनो का अधिक उपयोग किया जाय; (3) औद्योगिक इकाइयो को देश के विभिन्न क्षेत्रो मे फैलाया जाय; (4) समाज के अपेक्षाकृत निर्धन, दुर्बल व पिछड़े हुए व्यक्तियो के लिए रोजगार के साधन उत्पन्न किये जाएँ; (5) एकाधिकार कानून व अन्य उपायो के द्वारा आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण कम किया जाय; (6) स्थानीय नियोजन मे पचायती राज सस्थाओ व सहकारिताओ का अधिक उपयोग किया जाय; (7) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो के प्रबन्ध को सुधारा जाय; (8) निर्णय की प्रक्रिया को यथासम्भव विकेन्द्रित बनाया जाय।

विवेचन की दृष्टि से इनमे से कोई भी बात पूर्णतया नयी नही हैं लेकिन जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाये तब तक उन्हे दोहराते जाना आवश्यक होता है, अथवा यो कहिये कि इसके अलावा कोई विकल्प भी नही होता।

पाचवीं पचवर्षीय योजना के उद्देश्य

निर्धनता का उन्मूलन व आत्म-निर्भरता को प्राप्ति—पाँचवी पंचवर्षीय योजना मे ये दो उद्देश्य निर्धारित किये गये थे। इनके लिए ऊँची विकास दर, आय का उचित वितरण व बचत की घरेलू दर मे अत्यधिक वृद्धि आवश्यक माने गये थे। ये दोनो उद्देश्य दीर्घकालीन किस्म के हैं, लेकिन पाँचवी योजना मे इनको प्राप्त

सातवीं योजना के दृष्टिकोण प्रपत्र (approach paper) में प्रस्तावित उद्देश्य व नीतियां

सातवीं पंचवर्षीय योजना, 1985-90 का दृष्टिकोण-प्रपत्र जुलाई 1984 में जारी किया गया था। इसमें योजना के निम्न उद्देश्य रखे गये थे।[1]

योजना में रोटी, रोजी व उत्पादकता (Food Work and Productivity) पर प्रमुख रूप से बल दिया गया। (1) इसके प्रमुख उद्देश्य में कृषिगत उत्पादन, विशेषतया खाद्यान्नों के उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि करने की बात कही गई। इसके लिए सिंचाई की वर्तमान क्षमता का भरपूर उपयोग करने तथा सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार करने पर बल दिया गया। कृषिगत उत्पादन बढ़ाने के लिए जरूरी औद्योगिक आधार-ढांचा (इन्फ्रास्ट्रक्चर) तैयार करने में पूंजी लगाने की आवश्यकता स्वीकार की गयी।

2 नीची कृषिगत उत्पादकता के प्रदेशों व क्षेत्रों पर विशेष रूप से ध्यान देने तथा ग्रामीण रोजगार व गरीबी दूर करने के विभिन्न कार्यक्रम जारी रखने की नीति स्वीकार की गयी। अतः योजना का दूसरा उद्देश्य रोजगार का सृजन करना रखा गया। इसके लिए औद्योगीकरण की प्रक्रिया को तेज करना आवश्यक माना गया।

3 तीसरा उद्देश्य उत्पादकता में वृद्धि करना रखा गया। उत्पादन की वर्तमान क्षमता का गहरा उपयोग करना तथा आधुनिकीकरण व पूरक सुविधाएं बढ़ाकर उत्पादन व उत्पादकता में सुधार करना आवश्यक माना गया। यह कहा गया कि विकास का ढांचा ऐसा बनाना होगा जो रोजगार को अधिकतम कर सके। यह सातवीं योजना का सर्वोच्च उद्देश्य माना गया। चावल, तिलहन व दलहनों के उत्पादन को बढ़ाने पर अधिक जोर दिया गया। सरकार ने कार्यकुशलता, प्रतिस्पर्धा व आधुनिकीकरण के आधार पर नई आर्थिक नीति निर्धारित करने का महत्व स्वीकार किया।

सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय की प्रस्तावित राशि, 1984-85 के मूल्यों पर लगभग 1 80 000 करोड़ रु. सुझायी गई जो छठी योजना के संशोधित वास्तविक परिव्यय से 80% अधिक थी। विकास के सभी क्षेत्रों में व्यय हेतु पहले से अधिक धनराशि निर्धारित की गई। योजना में सन्तुलित विकास पर अधिक बल दिया गया।

इस प्रकार सातवीं योजना में कृषिगत उत्पादन बढ़ाने, रोजगार बढ़ाने तथा उत्पादकता बढ़ाने पर मुख्य रूप से जोर दिया गया।

---

1 The Approach to the Seventh Five Year Plan 1985-90, pp 1–2, बाद में अक्टूबर 1985 में जारी सातवीं योजना के खण्ड I के पृष्ठ 23 पर उद्देश्यों पर केवल एक पैरा ही दिया गया था।

सातवी योजना के बारह मुख्य लक्षण (important features) इस प्रकार रखे गये (1) नियोजन के विकेन्द्रीकरण व विकास मे ग्राम जनता की पूरी साझेदारी (2) उत्पादक रोजगार म अधिकतम वृद्धि (3) निर्धनता-निवारण व अन्तर्वर्गीय अन्तर्प्रादेशिक व ग्रामीण व शहरी असमानताओ मे कमी (4) भोजन म आत्म-निर्भरता व उपभोग के ऊँचे स्तरो की प्राप्ति (5) शिक्षा, स्वास्थ्य पापण सफाई व आवास म सामाजिक उपभोग के ऊँचे स्तर प्राप्त करना (6) निर्यात-प्रोत्साहन व आयात प्रतिस्थापन के माध्यम से आत्म-निर्भरता के अश मे वृद्धि (7) स्वेच्छिक रूप से लघु परिवार का नार्म अपनाने पर बल तथा आर्थिक व सामाजिक क्रियाओ मे स्त्रियो का रचनात्मक योगदान बढाना (8) इन्फ्रास्ट्रक्चर की बाधाओ व कमियो को कम करना व इनकी क्षमता का पूरा उपयोग करना ताकि उत्पादकता बढ सके (9) उद्योग मे कार्यकुशलता आधुनिकीकरण व प्रतिस्पर्धा को बढाना (10) ऊर्जा के सरक्षण व गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोतो के विकास पर जोर देना (11) विकास-नियोजन मे विज्ञान व टेक्नोलोजी का एकीकरण करना, तथा (12) परिवेश व पर्यावरण-सरक्षण व सुधार पर जोर देना।[1]

स्मरण रहे कि ये बारह बिन्दु सातवी योजना के प्रमुख लक्षण बतलाये गये हैं लेकिन योजना के उद्देश्यो से भी इनका गहरा सम्बन्ध है।

आठवी पचवर्षीय योजना (1990-95) के मुख्य उद्देश्य[2]

(i) सकल घरेलू उत्पत्ति (GDP) मे कम से कम 6% वार्षिक वृद्धि,

(ii) असमानताओ को कम करने व विकेन्द्रित विकास की ओर अग्रसर होने के लिए प्रादेशिक विकास पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना,

(iii) विनिर्माण क्षेत्र मे व्यापक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न करना तथा चुने हुए क्षेत्रो मे गुणवत्ता व उत्तमता लाना;

(iv) टेक्नोलोजी, खाद्य-सुरक्षा व विनियोग के लिए साधनो मे आत्म-निर्भरता की स्थिति लाना,

(v) सातवी योजना के अन्त मे निर्धनता के प्रत्याशित स्तरो को 28-30% से घटाकर आठवी योजना मे 18-20% तक लाना;

(vi) निर्धनो को रोजगार की गारण्टी देने के लिए रोजगार मे सालाना 3% की वृद्धि करना,

---

1 The Approach to the Seventh Five Year Plan 1985-90, July 1984, pp 8-9

2 The Economic Times, September 2, 1989, page 7, **Approach to Eighth Five-Year Plan.**

(vii) स्त्रियों, बच्चों व अन्य कमजोर वर्गों के विकास पर विशेष बल देना;

(viii) प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों की उपलब्धि औसतन 195 किलोग्राम करना,

(ix) प्रारम्भिक शिक्षा की सुविधा सबको उपलब्ध करना एवं 15-35 वर्ष के आयु-समूह में निरक्षरता को मिटाना;

(x) सबके लिए साफ पेयजल उपलब्ध करना, 1995 तक बड़ी एक से दूसरे को लगने वाली बीमारियों पर काबू पाना ताकि 2000 ईस्वी तक उनको मिटाया जा सके तथा समन्वित व व्यापक स्वास्थ्य सेवा का विस्तार करना ताकि 2000 ईस्वी तक सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके तथा

(xi) विकेन्द्रीकरण, जन-साझेदारी व कार्यकुशलता पर विशेष रूप से बल देना।

इस प्रकार आठवीं योजना में अन्य बातों के अलावा कम से कम 6% विकास की दर प्राप्त करने पर बल दिया गया है। प्रादेशिक विकास, आत्म-निर्भरता, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता, निर्धनता-निवारण, खाद्यान्नों के प्रति व्यक्ति उपभोग में वृद्धि, प्रारम्भिक शिक्षा का विस्तार, पेयजल व स्वास्थ्य की सुविधाओं का विस्तार व विकेन्द्रीकरण आदि पर अधिक ध्यान देने की बात कही गयी है।

योजनाओं में निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में हुई प्रगति का मूल्यांकन

भारत में योजनाकाल के 38 वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति हुई है। कुल राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। बिन्दु से बिन्दु (point to point) आधार पर 1950-51 से 1985-86 की अवधि में वास्तविक राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि की दर 3·6% तथा प्रति व्यक्ति आय में 1·4% रही है। 1975 से विकास की वार्षिक दर 5% हुई है जिससे विकास-पथ बदला है। कृषिगत व औद्योगिक उत्पादन बढ़ा है। परिवहन व संचार की सुविधाओं का विस्तार किया गया है। देश में पूँजीगत उद्योगों के विस्तार का तो इसी बात से पता लगता है कि वर्तमान समय में इनमें कुछ सीमा तक उत्पादन-क्षमता अप्रयुक्त बनी हुई है और पूरी क्षमता का उपयोग करने में कठिनाई हो रही है। देश में अनेक प्रकार के नये नये उद्योग स्थापित किये गये हैं। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र काफी सबल व सक्षम हो गया है। पिछले बाईस-तेईस वर्षों में कृषि में अधिक उपज देने वाली किस्मों का इस्तेमाल होने से कृषिगत क्षेत्र में क्रांति का प्रभाव चावल, दालों व अन्य फसलों में भी धीरे-धीरे प्रकट होने लगा है। अभी तक इसका फैलाव सीमित क्षेत्र पर ही हो पाया है, हालांकि भविष्य में इसका विस्तार तेजी से किये जाने के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। भारतीय नियोजन की सबसे बड़ी कमी यह रही है कि लक्ष्यों व वास्तविक प्राप्तियों के बीच अन्तर पाया गया है। अन्य कमियाँ इस प्रकार रही हैं :

1 बेरोजगारी व अल्परोजगार की विकट समस्या—देश में रोजगार के अवसर बढ़े हैं, लेकिन साथ में बेरोजगारों की संख्या भी बढ़ी है। मार्च, 1985 में 5 वर्ष से अधिक आयु के बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या, सामान्य स्थिति (usual status) के आधार पर, लगभग 92 लाख थी। इस प्रकार आर्थिक नियोजन देश को पूर्ण रोजगार की तरफ ले जाने में असमर्थ रहा है। देहातों में बेरोजगारी व अल्परोजगार की स्थिति दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है। लघु व कुटीर उद्योगों में आधुनिक पद्धतियों का उपयोग होना बाकी है। इसका विस्तृत विवेचन आगे चल कर बेरोजगारी के अध्याय में किया जायगा।

2 विदेशी साधनों पर निर्भरता—आज भी विदेशों से खाद्य-तेल, उर्वरक, कूड तेल व पेट्रोल आदि का बड़ी मात्रा में आयात किया जाता है। विदेशी सहायता पर हमारी निर्भरता कम होने के बजाय लगातार बढ़ती गयी है। देश पर विदेशी ऋणों व ब्याज के भुगतान का वार्षिक भार उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

3. आर्थिक असमानता में वृद्धि—भारतीय नियोजन के उद्देश्यों में सबसे अधिक विफलता सामाजिक न्याय व आर्थिक समानता के उद्देश्यों को प्राप्त करने के सम्बन्ध में रही है। योजनाकाल में आय व धन की असमानताएँ बढ़ गयी हैं। अर्थव्यवस्था तो आज भी 'मिश्रित' है, लेकिन इस मिश्रण में जो तत्व है, उसमें यह 'समाजवादी ढंग' की न होकर 'पूँजीवादी ढंग' की अधिक हो गयी है। देश की अर्थव्यवस्था में 'बड़े व्यवसाय' (Big Business) का प्रभाव बढ़ गया है। सरकार इस पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने में असमर्थ रही है। देश में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, उद्योगों का प्रादेशिक फैलाव, सरकार की राजकोषीय नीति व बैंकिंग के राष्ट्रीयकरण आदि से भी अर्थव्यवस्था को 'समाजवादी ढंग के समाज' की ओर अग्रसर होने में विशेष मदद नहीं मिली है। आज भी हमारी अर्थव्यवस्था मुख्यतया निजी उद्यम पर ही आश्रित है, यद्यपि इस पर कई प्रकार के प्रशासनिक नियन्त्रण व सरकारी प्रतिबन्ध अवश्य लगे हुए हैं।

4 मूल्य-स्तर में वृद्धि—प्रथम योजनाकाल के अन्त में मूल्य-स्तर योजना के प्रारम्भ की तुलना में कम हो गया था, लेकिन द्वितीय योजनाकाल से मूल्य-स्तर में निरन्तर वृद्धि होती गयी है। यह वृद्धि तृतीय योजना व बाद के तीन वर्षों में भी जारी रही है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में मूल्य-स्तर बढ़ता गया। 1973-74 व 1974-75 के वर्षों में देश को भीषण मुद्रास्फीति का सामना करना पड़ा। 1975-76 की अवधि में मूल्य-वृद्धि की दर मामूली रही, लेकिन 1979-80 में पुनः मुद्रास्फीति ने जोर पकड़ा और समय के एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु के आधार पर (on point-to-point basis) थोक मूल्यों में 21·4% वृद्धि हुई। इस प्रकार देश आर्थिक स्थिरता के वातावरण में अपना विकास नहीं कर पाया। छठी योजना की अवधि (1980–85) में थोक मूल्य सूचनांकों के आधार पर मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 8% व उपभोक्ता मूल्य-सूचनांकों के आधार पर 9 5% रही। अखिल भारतीय

उपभोक्ता मूल्य-सूचनाक जून 1989 में 838 हो गया (आधार वर्ष 1960 = 100) इस प्रकार अब रुपये का मूल्य लगभग 12 पैसे रह गया है। देश में महगाई की समस्या बराबर जारी है।

5 काली मुद्रा मे अत्यधिक वृद्धि—सार्वजनिक वित्त व नीति पर राष्ट्रीय संस्थान ने 'भारत मे काली अर्थव्यवस्था के पहलुओं' पर अपनी रिपोर्ट मार्च 1985 मे पेश की थी। इसमे बतलाया गया था कि 1980–81 मे जितनी आय पर कर नहीं दिया गया था वह उस आय का जिस पर कर लगाया जाना चाहिए था, 74 2 से 77% रही थी। 1983-84 मे काली आमदनी की सीमा 31,584 से 36,786 करोड़ रु आंकी गई थी जो सकल घरेलू उत्पत्ति (GDP) का 18% से 21% थी। इस प्रकार 1983-84 के लिए काली आमदनी की ऊपरी सीमा लगभग 37,000 करोड़ रु थी जो कुल घरेलू उत्पत्ति या आमदनी का 21% थी। भारत मे काले धन व काली आमदनी का फैलाव दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कैंसर रोग की भांति है जिससे छुटकारा पाना कठिन है। योजनाकाल मे विभिन्न कारणों ने मिलकर देश मे काली मुद्रा को बढ़ावा दिया है जिससे मुद्रास्फीति बढ़ी है। इससे आम जनता को हानि हुई है। अतः नियोजनकाल की विफलताओं मे काली अर्थव्यवस्था का अनियन्त्रित प्रसार या फैलाव भी लिया जा सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अर्थव्यवस्था मे कृषिगत उत्पादन, रोजगार, कीमत, निजी हाथों मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण, आय के वितरण व सामाजिक न्याय के प्रश्नों को लेकर लक्ष्यों व प्राप्तियों के बीच काफी अन्तर पाये गये है जिन्हे भविष्य मे दूर करने की आवश्यकता है।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर अमरत्या सेन* ने अपने लेख How is India Doing ?[1] मे बतलाया है कि भारत मे 1981 मे 2/3 नागरिको का निरक्षर पाया जाना, आज भी जीने की औसत आयु का 52 वर्ष ही पाया जाना तथा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का पिछड़ा रहना, देश मे निर्धनता, जातिवाद, अस्पृश्यता व छुआछूत, बीमारी, गन्दगी आदि का पाया जाना गम्भीर चिन्ता के विषय है। देश मे सामाजिक सेवाओं के प्रति सरकार का दृष्टिकोण प्रगतिशील नहीं रहा है। इसलिए साक्षरता व जीने की औसत आयु के क्षेत्रों मे चीन व श्रीलंका भारत से आगे निकल गये है। अतः भविष्य मे भारत को आर्थिक-सामाजिक विकास की दिशा में काफी काम करना होगा।

---

* प्रो अमरत्या सेन पहले भारतीय है जिन्हे 1987 के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन (IEA) का प्रेजिडेण्ट बनाया गया था।

1. Mainstream, Republic Day Number, 1983.

21

भारतीय योजनाओं में सार्वजनिक परिव्यय का रूप, 1951-85

(Pattern of Public Outlay Under Indian Plans, 1951-85)

भारत में योजनाओं का निर्माण : योजना आयोग (Planning Commission) व राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) की भूमिका

स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व भारत मे आर्थिक नियोजन पर काफी चिंतन किया गया था और देश मे इसके लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो गया था। 1950 मे लोकसभा द्वारा संविधान स्वीकृत हो जाने के बाद भारत सरकार ने मार्च, 1950 मे योजना आयोग नियुक्त किया जिसका कार्य देश के भौतिक, पूँजीगत व मानवीय साधनो की जाच करना और इनमे सर्वाधिक प्रभावपूर्ण व सन्तुलित उपयोग के लिए योजनाएँ तैयार करना रखा गया था। योजना के प्रथम 14 वर्षों मे भारतीय नियोजन का मार्गदर्शन प्रधानमन्त्री स्व. जवाहरलाल नेहरू ने किया था। स्व. लालबहादुर शास्त्री ने अपने अल्प कार्यकाल मे भारतीय नियोजन को अधिक प्रभावशाली और व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया। लेकिन पाकिस्तान से युद्ध छिड जाने के कारण देश को विकास के साथ-साथ सुरक्षा पर भी काफी धनराशि व्यय करनी पडी। इससे विकास कार्यों मे कुछ सीमा तक बाधा पडी। स्व. श्रीमती गाधी के पूर्व कार्यकाल (1966-77) मे नियोजन की प्रक्रिया जारी रही। मार्च, 1977 से दिसम्बर, 1979 तक की अवधि मे जनता सरकार ने आर्थिक नियोजन मे ग्रामीण विकास पर अधिक धनराशि आवटित की तथा सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ डी. टी लकडवाला योजना आयोग के उपाध्यक्ष रहे। दिसम्बर, 1979 मे छठी योजना, 1978-83 का सशोधित प्रारूप जारी किया गया था, लेकिन जनवरी, 1980 मे केन्द्र मे काग्रेस (आई) की नई सरकार ने छठी योजना के पहले वाले प्रारूप को समाप्त करके 1980-85 की अवधि के लिए नई छठी योजना का अन्तिम प्रारूप मई, 1981 मे ... के समक्ष पेश किया था।

यह जानना रुचिप्रद होगा कि 1951–80 की अवधि मे विभिन्न योजनाओ मे सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल परिव्यय की राशि लगभग 90,300 करोड रुपये (प्रचलित कीमतो पर) रही। इस प्रकार योजना आयोग ने इतनी धनराशि राष्ट्रीय प्राथमिकताओ के आधार पर विकास के विभिन्न क्षेत्रो मे आवंटित की। इस राशि का योजनावार आवटन आगे के पृष्ठो मे दिया गया है। छठी पचवर्षीय योजना (1980-85) मे सार्वजनिक क्षेत्र मे परिव्यय के लिए 97 500 करोड रुपये की धन-राशि प्रस्तावित की गई थी जबकि वास्तविक परिव्यय के 1,09,292 करोड रु. रहने का अनुमान है। इस प्रकार जितनी धनराशि सार्वजनिक क्षेत्र मे 1951-80 के 29 वर्षो मे व्यय की गई, उससे अधिक राशि 1980–85 के 5 वर्षो मे व्यय की गई है, हालाकि इस प्रकार की तुलना मे मूल्य-परिवर्तन के कारण कठिनाई उत्पन्न होती है। फिर भी इससे पचवर्षीय योजनाओ मे सार्वजनिक क्षेत्र मे परिव्यय के आकार व आयाम का अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है।

वर्तमान मे (सितम्बर 1989) मे योजना आयोग के अध्यक्ष प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाधी व उपाध्यक्ष व नियोजन मन्त्री श्री माधवसिंह सोलंकी है। अन्य सदस्यो मे मानव-ससाधन विकास मन्त्री, कृषि-मन्त्री, ऊर्जा-मन्त्री, उद्योग-मन्त्री, पर्यावरण व वन मन्त्री, वित्त मन्त्री, कानून, न्याय व जल-साधन मन्त्री तथा नियोजन राज्य-मन्त्री हैं एव पूर्णकालिक सदस्य इस प्रकार हैं :—प्रोफेसर एम जी. के. मेनन, डॉ. राजा जे. चेल्लैया, हितेन माया, आबिद हुसैन, डॉ. वाई के अलक, प्रो. पी. एन. श्रीवास्तव, तथा जे एस बैजल। (सदस्य-सचिव, योजना-आयोग) है।

स्मरण रहे कि हमारी पचवर्षीय योजनाओ के पीछे कोई वैधानिक स्वीकृति नही होती। योजना आयोग केवल एक सलाहकारी सस्था (advisory body) है और हमारी योजनाएँ आर्थिक विकास की केवल मार्गदर्शक मात्र होती है। योजना आयोग योजना का प्रारूप तैयार करके राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council या NDC) के सम्मुख प्रस्तुत करता है। राष्ट्रीय विकास परिषद मे प्रधानमन्त्री, वित्त मन्त्री, राज्यो के मुख्यमन्त्री, सघीय क्षेत्रो के मुख्य पार्षद (chief councillors) व योजना आयोग के उपाध्यक्ष एव पूर्णकालिक सदस्य होते है जो योजना के प्रारूप व इसमे सुझाई गई विभिन्न नीतियो पर विचार-विमर्श करते है। राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति के बाद पचवर्षीय योजना भारतीय ससद मे विचारार्थ पेश की जाती है। यहा से स्वीकृत होने पर वह देश मे लागू हो जाती है और उस पर कार्यारम्भ हो जाता है। विभिन्न राज्य सरकारे भी अपने-अपने प्रदेशो के लिए पचवर्षीय तथा वार्षिक योजनाएँ बनाती हैं जिनके आकार व वित्तीय व्यवस्था आदि के बारे मे उन्हे आयोग के अधिकारियो से आवश्यक विचार-विमर्श करना होता है। कुछ राज्यो मे नियोजन कार्य को अधिक सबल व

योजनाओं मे सार्वजनिक क्षेत्र में वास्तविक परिव्यय का विभिन्न आर्थिक क्षेत्रो के अनुसार आवंटन (Sectoral allocation)[1]

(कुल सार्वजनिक परिव्यय के प्रतिशत के रूप मे)

मदें	प्रथम योजना (51-56)	द्वितीय योजना (56-61)	तृतीय योजना (61-66)	तीन वार्षिक योजनाएं (66-69)	चतुर्थ योजना (69-74)	पचम योजना (75-79)	वार्षिक योजना (74-80)	छठी योजना (80-85) (वास्तविक)
1 कृषि व सम्बद्ध कार्यक्रम	14 8	11·7	12·7	16 7	14 7	12 3	16 4	13·9
2. सिचाई व बाढ-नियन्त्रण	22·2	9 2	7·8	7·1	8·6	9 8	10 6	10 0
3. शक्ति	7·6	9·7	14·6	18·3	18 6	18 8	18 4	28·1*
4· उद्योग व खनन	4·9	24·1	22·9	24·7	19·7	24 3	21 7	15 5
5· परिवहन व सचार	26·4	27·0	24·6	18·5	19·5	17 4	16 8	16·2
6. सामाजिक सेवाएँ व विविध	24·1	18·3	17·4	14·7	18 9	17 4	16·1	16·3
कुल	100·0	100 0	100·0	100·0	100 0	100 0	100 0	100·0
सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय (करोड रुपयो मे)	1,960	4,672	8,577	6,625	15,779	39,426	12 177	1,09,292

2. Economic Survey 1988-89, pp. S-40 व S-42 (तृतीय योजना व बाद के लिए)

* यह ऊर्जा पर व्यय-राशि का अनुपात है जिसमे शक्ति (power), पेट्रोल, कोयला व ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोत शामिल किये गये हैं।

* छठी योजना मे कृषि व सम्बद्ध कार्यक्रम मे कृषि, ग्रामीण विकास व स्पेशल क्षेत्रीय कार्यक्रम शामिल किये गये है।

प्रकार इसमे योजना आयोग का कोई सदस्य शामिल नही किया गया है। परिषद ने पहले अक्टूबर 1983 व जनवरी 1984 मे प्रधान मन्त्री को दो रिपोर्ट पेश की थी। मई 1987 मे EAC ने "भारत मे सार्वजनिक उपक्रम—कुछ सामयिक प्रश्न" पर प्रधानमत्री को एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट पेश की। यह तृतीय रिपोर्ट थी।

अक्टूबर 1983 की रिपोर्ट मे आर्थिक सलाहकार परिषद् ने नियोजन के विकेन्द्रीकरण पर काफी बल दिया था तथा राज्य-स्तर व जिला-स्तर के बीच नियोजन के लिए एक नई संस्था—डिविजनल विकास प्राधिकरण (Divisional Development Authority) (DDA) के निर्माण का समर्थन किया था। देश में 94 DDAs स्थापित करने का सुझाव दिया गया था ताकि योजना का क्रियान्वयन सुधारा जा सके। यह प्रस्ताव किया गया कि एक DDA मे लगभग 4 जिले होंगे। कृषि व जलवायु के आधार पर देश को 55 प्रदेशों (regions) मे विभक्त किया गया था। यह कहा गया था कि विकास के लिए कम से कम एक तिहाई कोष DDAs के मार्फत खर्च किये जायें। DDAs के तहत नीति-नियोजन-परिषद तथा प्रोग्राम-सचालन-परिषद् के गठन का भी सुझाव दिया गया था। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ वी. के आर. वी. राव ने डिविजनल विकास प्राधिकरण के विचार का समर्थन नही किया था। उन्होने इसको एक अनावश्यक कड़ी बतलाया था।

जनवरी, 1984 की रिपोर्ट मे परिषद् ने विदेशी भुगतानों की कठिनाई को दूर करने के लिए तेल, ऊर्जा, खाद्य, खाद्य-तेल, उर्वरक, इस्पात व औद्योगिक मशीनरी मे कार्यकुशल आयात-प्रतिस्थापन पर बल दिया था। पेट्रोल के स्थान पर कोयला या गैस के प्रतिस्थापन को महत्व दिया गया था। इसके अलावा खाद्यान्नो का उत्पादन बढ़ाने, अनुत्पादक व गैर-योजना व्यय कम करने व विकसित तथा नई टेक्नोलोजी का उपयोग करने के सुझाव दिये गये थे। परिषद् ने नये सुझाव तो नही दिये, लेकिन सरकार का ध्यान प्रमुख समस्याओं की ओर अवश्य आकर्षित किया था। मई 1987 मे तृतीय रिपोर्ट में भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याओ के हल के लिए उचित सुझाव दिये गये थे। इस सम्बन्ध मे परिषद् ने होल्डिंग कम्पनी, स्वायत्तता, लेखा-देयता, प्रबन्ध-व्यवस्था मे सुधार, मूल्य-नीति आदि पर उपयोगी सुझाव पेश किये थे।

आशा है पुनर्गठित आर्थिक सलाहकार, परिषद् आर्थिक समस्याओ के उचित समाधान सुझायेगी जिससे विदेशी भुगतान, मुद्रास्फीति, साधन-सग्रह, काली मुद्रा, विकास की गति, आदि से सम्बन्धित प्रश्नों के हल करने मे विशेष मदद मिलेगी।

सार्वजनिक परिव्यय व सार्वजनिक विनियोग का अन्तर
(Difference between Public Outlay and Public Investment)

सर्वप्रथम हमे सार्वजनिक परिव्यय और सार्वजनिक विनियोग मे अन्तर समझना चाहिए। सार्वजनिक परिव्यय मे सार्वजनिक विनियोग के अलावा चालू

2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना (अप्रैल, 1956 से मार्च, 1961 तक)—इसमे उद्योगो पर अधिक बल दिया गया था। वास्तव मे इस योजना से भारत मे औद्योगीकरण की शुरुआत मानी जाती है। इसमे सार्वजनिक क्षेत्र मे व्यय के लिए 4,800 करोड रुपये की राशि निर्धारित की गयी थी। द्वितीय योजना के समक्ष प्रारम्भ से ही विदेशी विनिमय सकट उपस्थित हो गया था। इसलिए मई, 1958 मे इसका सशोधन करना पडा, जिसमे योजना को दो भागो मे बाँट दिया गया, एक भाग 4,500 करोड रुपयो का रखा गया और दूसरा 300 करोड रुपयो का। प्रथम भाग मे आधारभूत प्रोजेक्ट (Core projects) रखे गये जिन्हे पूरा करना आवश्यक माना गया। हम पहले बता चुके है कि द्वितीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र मे वास्तविक व्यय 4,672 करोड रुपये हुआ था।

द्वितीय योजना मे राष्ट्रीय आय 20% बढी, जबकि लक्ष्य 25% वृद्धि का रखा गया था। विकास की वार्षिक दर 4% रही। योजना के अन्त मे मूल्य-स्तर 30% ऊँचा रहा। द्वितीय योजना मे भुगतान-असन्तुलन तथा मुद्रास्फीति की समस्याएँ उत्पन्न हो गयी थी। इस प्रकार देश मे योजना के दबाव व तनाव प्रतीत होने लगे थे।

द्वितीय योचना मे प्रति वर्ष कृषिगत उत्पादन 4% तथा औद्योगिक उत्पादन 6·6% बढा। 1960-61 मे सिंचित क्षेत्र 2·5 करोड हैक्टेयर हो गया। खाद्यान्नो का उत्पादन 1960-61 मे 8 2 करोड टन हुआ था।

3 तृतीय पचवर्षीय योजना (अप्रैल, 1961 से मार्च, 1966 तक)—इसमे सार्वजनिक क्षेत्र मे 7,500 करोड रुपयो के व्यय का प्रावधान रखा गया था। लेकिन वास्तविक व्यय 8,577 करोड रुपये का हुआ जिसका आवटन पहले दिया जा चुका है। **तृतीय योजनाकाल की दर 2** 2% रही जो लक्ष्य के आधी से भी कम थी। औद्योगिक उत्पादन प्रति वर्ष 9% बढा, जबकि कृषिगत उत्पादन 1·4% वार्षिक दर से घटा (1965-69 का वर्ष अभूतपूर्व अकाल व सूखे का होने के कारण)। खाद्यान्नो का उत्पादन योजना के अन्त मे 7·2 करोड टन रहा, जबकि लक्ष्य 10 करोड टन था। 1965-66 मे सिंचित क्षेत्र 2 7 करोड हैक्टेयर हो गया था। विद्युत की प्रस्तावित क्षमता 102 लाख किलोवाट हो गयी जो लक्ष्य (127 लाख किलोवाट) से कम थी। तृतीय योजनाकाल मे मूल्य-स्तर 36·4% बढा। तृतीय योजना की प्रगति काफी असन्तोषजनक रही। इस योजना मे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय लगभग स्थिर रही थी।

तृतीय योजना अपने किसी भी निर्धारित लक्ष्य व उद्देश्य को प्राप्त करने मे सफल नहीं हो सकी। योजना के अन्त मे खाद्य-समस्या, महँगाई, बेकारी, विदेशी भुगतान की समस्या, निजी हाथो मे आर्थिक सत्ता का बढता हुआ केन्द्रीयकरण और

आय व धन की बढ़ती हुई असमानताएँ आदि देश के समक्ष विकराल रूप में उपस्थित थीं। इन समस्याओं के लिए कुछ सीमा तक दो युद्धों और 1965-66 के अभूतपूर्व अकाल व सूखे की स्थिति को भी उत्तरदायी माना जा सकता है।

4 तीन वार्षिक योजनाएँ (1966-69)—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना अपने निर्धारित समय 1 अप्रैल 1966 से प्रारम्भ नहीं की जा सकी, क्योंकि दो युद्धों व दो लगातार सूखों के कारण नियोजन के कार्य में बाधा उत्पन्न हो गयी थी। कुछ विद्वानों ने 1966-69 की अवधि को योजनावकाश (plan holiday) की अवधि माना है। लेकिन यह स्मरण रखना होगा कि इस अवधि में योजना-कार्य को वार्षिक योजनाओं के माध्यम से चालू रखा गया था, हालांकि विकास व विनियोग की गति काफी मन्द पड़ गयी थी।

1966 69 की अवधि में सार्वजनिक परिव्यय की कुल राशि 6,625 करोड़ रुपये रही। 1966-69 की अवधि में योजनाओं में सक्रिय नीतियों का अभाव रहा। साधनों के अभाव में विकास के मामूली लक्ष्य ही रखे गये थे। फिर भी जैसे-तैसे करके योजना-कार्य को जारी रखा गया। खाद्यान्नों का उत्पादन 1965-66 में 7 2 करोड़ टन से बढ़कर 1968-69 में 9 4 करोड़ टन हो गया था। 1966-69 की अवधि में विकास की वार्षिक दर 4% रही थी।

5 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74)—संशोधित चतुर्थ योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय के लिए कुल 15 902 करोड़ रुपये निर्धारित किये गये एवं वास्तविक व्यय (15779 करोड़ रुपये) लक्ष्य के समीप रहा था।

चतुर्थ योजना की आर्थिक प्रगति

चतुर्थ योजना में आर्थिक प्रगति पर बंगला देश से शरणार्थियों के भारत में आने तथा बाद में भारत-पाक युद्ध का विपरीत प्रभाव पड़ा था। योजना में विकास की वार्षिक दर लगभग 3 3% रही जो लक्ष्य से कम थी। कृषिगत उत्पादन में वार्षिक वृद्धि-दर 2 9% तथा औद्योगिक उत्पादन में 4 7% रही है।

चौथी योजना में प्रमुख क्षेत्रों में वास्तविक उपलब्धियाँ लक्ष्यों की तुलना में काफी नीची रही थीं। खाद्यान्नों का उत्पादन 12 9 करोड़ टन किया जाना था जो 1973-74 में 10 5 करोड़ टन तक पहुँच सका था।

इसी प्रकार कोयले, कच्चे लोहे, कच्चे पेट्रोल, रासायनिक खाद अखबारी कागज, पिग लोहे, नरम इस्पात, अलौह धातुओं आदि के क्षेत्रों में वास्तविक प्राप्तियाँ लक्ष्य से नीची रहीं। सीमेंट व अन्य उद्योगों की मशीनों, हाइड्रो टरबाइन्स, वाणिज्यिक गाड़ियों, रेलों के साज-सामान जैसे डीजल व बिजली के इन्जन एवं मालगाड़ी के डिब्बों आदि के उत्पादन में भी लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सके। लेकिन दवाइयों, औजार, एलोय व विशेष इस्पात और सूखी बैटरियों के लक्ष्य प्राप्त हो, गये थे।

चतुर्थ योजना में घाटे की वित्त-व्यवस्था का लक्ष्य 850 करोड़ रुपये का रखा गया था जबकि वास्तविक राशि 2,060 करोड़ रुपये की रही जो लक्ष्य की $2\frac{1}{2}$ गुनी थी। 1972-73 व 1973-74 में अत्यधिक मूल्य-वृद्धि ने देश के समक्ष आर्थिक संकट उपस्थित कर दिया था । देश में व्यापक पैमाने पर अभाव का वातावरण फैल गया था और बड़े किसान, बड़े व्यापारी व बड़े उद्योगपति अभाव की दशाओं में मुनाफाखोरी व जमाखोरी से लाभ उठाने में लग गये थे । देश में पावर-सप्लाई, परिवहन, इस्पात, सीमेंट, खाद्यान्न, रासायनिक उर्वरक, कागज आदि का अभाव उत्पन्न हो गया था।

6. पंचम पंचवर्षीय योजना (1974-79)

पाँचवी योजना का प्रारूप लोकसभा में दिसम्बर, 1973 में रखा गया था। उसके बाद भीषण मुद्रास्फीति व अन्य संकटों के कारण इसका संशोधित स्वरूप सितम्बर, 1976 में प्रस्तुत किया गया। तब तक पाँचवी योजना का लगभग आधी अवधि समाप्त हो चुकी थी। पाँचवी योजना में निर्धनता-उन्मूलन तथा आत्म-निर्भरता सम्बन्धी उद्देश्य रखे गये थे । इसमें सार्वजनिक क्षेत्र की व्यय की राशि 39,322 करोड़ रुपये प्रस्तावित की गयी थी, जबकि वास्तविक व्यय लगभग 39,426 करोड़ रु. हुआ ।

पंचम योजना में कोयला, कच्चा लोहा, खाद्यान्न, रासायनिक उर्वरक व अलौह धातुओं आदि के उत्पादन को बढ़ाने पर काफी बल दिया गया था ।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेसर वी. एस. मिहान्स ने योजना आयोग की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया था। उनका विचार था कि पाँचवी योजना में विदेशी सहायता, साधन-संग्रह आदि के सम्बन्ध में लक्ष्य सही रूप में निर्धारित नहीं किये गये थे।

जैसा कि बाद की घटनाओं ने सिद्ध किया 1974-75 में देश आर्थिक व राजनीतिक कठिनाइयों के गम्भीर दौर में प्रवेश कर गया था। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि देश का आर्थिक प्रशासन व आर्थिक अनुशासन टूट गया है। देश में मुद्रा-स्फीति की समस्या बहुत जटिल हो गयी थी। आम जनता में असन्तोष बढ़ गया था। 25 जून, 1975 को देश में आपातकालीन स्थिति लागू की गयी और बाद में विभिन्न आर्थिक व सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम घोषित किया गया। मार्च 1977 में केन्द्र में जनता सरकार सत्ता में आयी। उसने पाँचवी योजना के कार्यकाल को एक वर्ष पूर्व 31 मार्च, 1978 को समाप्त करके 1978-83 की अवधि के लिए छठी योजना का प्रारूप देश के समक्ष रखा । लेकिन जनवरी 1980 में पुनः कांग्रेस (आई) की सरकार के सत्तारूढ़ होने पर 1978-83 की योजना को निरस्त करके 1980-85 की अवधि के लिए एक नयी छठी योजना प्रस्तुत की गई थी।

पचम योजना, 1974–79 की अवधि में आर्थिक प्रगति

पचम योजना में विकास की वार्षिक दर 5·2% रही जो लक्ष्य (4·4%) से अधिक थी। कृषिगत उत्पादन मे वार्षिक वृद्धि-दर 4·2% तथा औद्योगिक उत्पादन मे 5·9% रही।

1978-79 मे खाद्यान्नों का वास्तविक उत्पादन 13·2 करोड टन हुआ जो लक्ष्य (12·5 करोड टन) से अधिक था। कपास व जूट मे उत्पादन के लक्ष्य प्राप्त कर लिये गये। लेकिन तिलहन व गन्ने के उत्पादन के लक्ष्य प्राप्त नही किये जा सके।

कोयले का उत्पादन $10\frac{1}{2}$ करोड टन हुआ जो लक्ष्य से 2 करोड टन कम था। चीनी का उत्पादन लक्ष्य से थोडा अधिक हुआ। परिशुद्ध पेट्रोल पदार्थों मे उत्पादन का लक्ष्य तो प्राप्त नही हो सका, लेकिन 1973-74 की तुलना मे उत्पादन बढा। कच्चे लोहे, सीमेंट, तैयार इस्पात व विद्युत-सृजन मे 1973-74 की तुलना म उत्पादन बढा, लेकिन 1978-79 के लिए निर्धारित उत्पादन के लक्ष्य प्राप्त नही किये जा सके।

थोक मूल्यों मे (एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु के आधार पर) 1974-75 व 1976-77 म क्रमश. 10% व 12% की वृद्धि हुई। इस प्रकार मुद्रास्फीति के दबाव पाच मे से दो वर्षों म अधिक रहे। आयातो मे वार्षिक वृद्धि-दर (1975-76 व 1976-77 को छोडकर) निर्यातो की वृद्धि दर से अधिक रही।

पचम योजना की अवधि मे देश मे राजनीतिक अस्थिरता व तनाव की स्थिति बनी रही। मार्च 1977 मे जनता सरकार सत्तारूढ हुई, लकिन जनवरी 1980 म पुन कांग्रेस (आई) को केन्द्र मे सत्ता प्राप्त हुई।

1979-80 की वार्षिक योजना

बदली हुई परिस्थितियो म 1979-80 की वार्षिक योजना किसी भी पच-वर्षीय योजना का अग नहीं रही। जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है, 1979-80 की वार्षिक योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे परिव्यय की राशि 12 177 करोड रु रही। 1979-80 की वार्षिक योजना जनता सरकार ने तैयार की थी। इसमे कृषि, सिचाई, बाढ-नियन्त्रण व कृषि के सहायक क्षेत्रो पर कुल परिव्यय का 27% अश रखा गया था।

1978-80 की वार्षिक योजना की उपलब्धियाँ—

1979-80 मे विकास की दर (—) 5·2% रही तथा पिछले वर्ष की तुलना मे प्रति व्यक्ति आय (1970-71 के मूल्यों पर) 7·3% घटी थी।

1979-80 की अवधि मे कृषिगत उत्पादन 15·2% घटा, खाद्यान्नो का

उत्पादन 16 8% घटा तथा औद्योगिक उत्पादन 1 7% घटा। थोक मूल्यो म (एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु के आधार पर) 21 4% की वृद्धि हुई। इसी वर्ष आयात 34 2% तथा निर्यात 12 1% बढे।

इस प्रकार 1979 80 का वर्ष आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी प्रतिकूल रहा। इसी अवधि मे लोकसभा के आम चुनाव हुए जिनम काग्रेस (आई) विजयी घोषित हुई। उसने जनवरी 1980 म केन्द्र मे सत्ता सम्हाली। उस समय देश का इन्फ्रास्ट्रक्चर काफी कमजोर स्थिति म था। कोयले विद्युत इस्पात व रेल-परिवहन आदि क्षेत्रो मे स्थिति काफी असन्तोषजनक थी। सरकार ने छठी योजना (1980-85) म अर्थव्यवस्था मे सुधार लाने के लिए कई प्रकार के विकास कार्यक्रम रखे जिन पर नीचे प्रकाश डाला गया है।

छठी पचवर्षीय योजना (1980–85)

छठी पचवर्षीय योजना, 1980 85 का सशोधित प्रारूप मई 1981 मे जारी किया गया था जिसमे सार्वजनिक क्षेत्र मे परिव्यय की राशि 97,500 करोड रु तथा विकास की वार्षिक दर 5 2 प्रतिशत निर्धारित की गई थी।

यह योजना भारतीय नियोजन के तीन दशको के अनुभव के परिप्रेक्ष्य मे बनाई गई थी एव साथ मे इसमे आगामी 10-15 वर्षो की दीर्घकालीन आवश्यकताओ को भी ध्यान मे रखा गया था। योजना की पृष्ठभूमि व प्रारम्भिक दशाएँ अनुकूल नही थी। 1979-80 का वर्ष सूखे का वर्ष था जिसमे कृषिगत उत्पादन घटा एव मूल्यो मे तीव्र गति से वृद्धि हुई जो 1980-81 मे भी जारी रही। देश के आधारभूत ढाचे मे, विशेषतया कोयले परिवहन तथा शक्ति के क्षेत्रो मे कई प्रकार क अभाव थे जिससे औद्योगिक उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडा था। पेट्रोलियम व अन्य आयातो के मूल्यो मे तीव्र वृद्धि होने से देश के समक्ष गम्भीर भुगतान असन्तुलन की समस्या उत्पन्न हो गयी थी तथा विदशो मे मन्दी की दशाएँ पाय जाने के कारण हमारे निर्यातो के बढने म कठिनाइया उत्पन्न हो गई थी।

इस प्रकार छठी योजना के प्रतिवेदन मे यह स्वीकार किया गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था म विकास की सम्भावनाओ पर निम्न तीन तत्वो का विपरीत प्रभाव पडा है *सुद्रास्फीति आधारभूत ढाँचे की कमिया तथा बिगडती हुई* भुगतान-प्रसन्तुलन की स्थिति। योजना म इन समस्याओ को हल करने के लिए सुझाव दिये गये थे।

विभिन्न क्षेत्रो में विकास के लक्ष्य

योजना म विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य 5 2% रखा गया था। इसको प्राप्त करने के लिए कृषि म विकास की दर 4% तथा खनन व विनिर्माण मे 7%

प्रस्तावित की गई। रोजगार मे स्टेण्डर्ड व्यक्ति-वर्षों (SPY) के आधार पर, वृद्धि-दर 4 17% आंकी गई जो योजनाकाल मे श्रम-शक्ति की वृद्धि-दर (15 वर्ष व अधिक के आयु-समूह के लिए 2·55%) से अधिक थी। निर्यातों मे (1978-80 के मूल्यो पर) 1980-85 की अवधि मे वार्षिक वृद्धि-दर 9% रखी गई जो पिछली दशाब्दी की 6% दर से अधिक थी।

छठी योजना में निर्धनता व बेरोजगारी को दूर करने के कार्यक्रम

निर्धनता व छठी योजना—योजना मे निर्धनता-रेखा को परिभाषित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रति व्यक्ति प्रतिदिन कैलोरी की मात्रा 2400 इकाई तथा शहरी क्षेत्रो में 2100 इकाई निर्धारित की गई जिसके आधार पर 1979-80 के मूल्यो पर ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रति व्यक्ति प्रति माह 76 रु तथा शहरी क्षेत्रो मे 88 रु. से कम व्यय करने वाले व्यक्ति निर्धन माने गये।

1979-80 मे निर्धनता-रेखा से नीचे ग्रामीण क्षेत्रो मे जनसख्या का अनुपात 50·7% तथा शहरी क्षेत्रो मे 43·3% एव समस्त देश मे 48·4% आंका गया था। 1984-85 म पुनर्वितरण के बिना (without redistribution) निर्धनता-रेखा से नीचे के लिए ग्रामीण क्षेत्रो मे 40·5% शहरी क्षेत्रो मे 33 7% व समस्त देश मे 39% व्यक्तियो के लक्ष्य रखे गये। पुनर्वितरण सहित (with redistribution) 1984-85 मे समस्त देश मे तथा ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों मे 30% लोगो के निर्धनता की रेखा से नीचे रह जाने के अनुमान प्रस्तुत किये गये। 'पुनर्वितरण सहित' का आशय है भूमि, परिसम्पत्ति आदि के पुनर्वितरण के कार्यक्रम लागू करने के बाद की स्थिति।

निर्धनता उन्मूलन सम्बन्धी विभिन्न कार्यक्रम

निर्धनता-उन्मूलन के सम्बन्ध मे एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme) (IRDP) तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme) (NREP) की चर्चा करना बहुत आवश्यक है। ये ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने तथा ग्रामीण क्षेत्रो का विकास करने से सम्बन्धित कार्यक्रम है। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (Minimum Needs Programme) (MNP) का एक उद्देश्य निर्धनता को कम करना माना गया है। इनका सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है

1 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (एग्राविका) (IRDP)[1]

यह निर्धनता-उन्मूलन की दिशा मे सबसे बडा कार्यक्रम माना गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आमदनी बढाने वाली विशेष परियोजनाएँ सचालित करने पर

---

1. Sixth Five Year Plan 1980-85, pp 170—172.

बल दिया गया ताकि इनका लाभ छाँटे गये परिवारो को मिल सके। इस कार्यक्रम को देश के सभी खण्डो मे लागू करने का लक्ष्य रखा गया। योजना मे यह कहा गया कि प्रत्येक ब्लाक मे लगभग 20 हजार परिवारो मे से 10-12 हजार परिवार निर्धनता की रेखा से नीचे माने जा सकते है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक ब्लॉक मे 3000 परिवारो को विशेष रूप से सहायता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया जिनमे से 2000 परिवारो को कृषि व सहायक क्रियाओ मे, 500 परिवारो को ग्रामीण व कुटीर उद्योगो मे तथा शेष 500 परिवारो को सेवा-क्षेत्र मे आमदनी-उत्पन्न करने वाली स्कीमो मे लगाना निश्चित किया गया। योजना मे निर्धनता-उन्मूलन के लिए 'परिवार-दृष्टिकोण' (household approach) अपनाया गया। IRDP के सम्बन्ध मे निम्नाकित नीति अपनायी गयी

(1) प्रत्येक जिले के लिए एक पचवर्षीय विकास कार्यक्रम तैयार करना जिसे खण्डवार विकास-योजनाओ मे विभक्त करना। इन योजनाओ मे सिंचाई, पशु-पालन मछली-उद्योग, वन-उद्योग, बायो-गैस विकास आदि कार्यों को शामिल करना। (2) कृषि-विस्तार सेवाएँ प्रदान करना। (3) ग्राम सभा की मार्फत छाँटे गए विशेष परिवारो को निर्धनता-रेखा से ऊपर उठाना। (4) द्वितीयक व तृतीयक/सेवा-क्षेत्रो के लिए भी विकास की रूपरेखा तैयार करना। (5) जिला, खण्ड व ग्राम स्तरो पर क्रियान्वयन एजेन्सियो मे निर्धनो को प्रतिनिधित्व देना। (6) जिला/खण्ड स्तरो पर साख योजनाएँ बनाना, विशेषतया उन लोगो के लिए जिन्हे सहायता पहुँचाई जाती है। (7) IRDP को एक ही एजेन्सी के मार्फत लागू करना। (8) खण्ड स्तरीय सगठन को सुदृढ करना। (9) यह कार्यक्रम निर्धनता-उन्मूलन का 'परिवार-दृष्टिकोण' वाला कार्यक्रम माना गया है।

IRDP कार्यक्रम के लिए केन्द्र द्वारा 750 करोड रु. तथा राज्यो के द्वारा भी लगभग इतनी ही राशि व्यय के लिए रखी गई।

2 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP)

इसमे केन्द्र व राज्यो का 50 : 50 आधार पर हिस्सा रखा गया। यह ग्रामीण क्षेत्रो मे सुस्त मौसम (slack season) मे निर्धन लोगो को रोजगार प्रदान करने का कार्यक्रम है तथा पहले के 'काम के बदले अनाज' का ही एक सशोधित रूप है। यह निश्चय किया गया कि इसके अन्तर्गत केन्द्र राज्यो को खाद्यान्न देगा जिसकी मात्रा ग्रामीण निर्धनो की सख्या को आधार मानकर तय की जायगी।

छठी योजना मे केन्द्रीय क्षेत्र मे NREP के लिए 980 करोड रु. की व्यवस्था की गई तथा राज्यो के लिए भी इतनी ही राशि निश्चित की गई।

3 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (MNP)

छठी योजना मे इस कार्यक्रम पर 5807 करोड रु. की धनराशि निर्धारित की गई तथा इसके अन्तर्गत पहले की भाति प्रारम्भिक शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य,

ग्रामीण जल पूर्ति, ग्रामीण सड़कें, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों के लिए आवास की सहायता, शहरी गन्दी बस्तियों में पर्यावरण का सुधार तथा पोषण-सम्बन्धी कार्यक्रम शामिल किये गये।

योजना काल में 3·43 करोड़ व्यक्ति-वर्षों के लिए अतिरिक्त रोजगार उत्पन्न करने का लक्ष्य रखा गया ताकि सभी नये आगन्तुकों को काम दिया जा सके एवं कुछ पुराने बेरोजगार व्यक्तियों को भी काम उपलब्ध कराया जा सके।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि छठी पंचवर्षीय योजना एक 'साहसपूर्ण योजना' (bold plan) मानी जा सकती है। इसमें विकास की वार्षिक दर 5·2 प्रतिशत रखी गई जबकि 1950-51 से 1978-79 की अवधि में यह लगभग 3·5 प्रतिशत रही थी। इसमें उत्पादन के कुछ लक्ष्य भी काफी ऊँचे रखे गये थे। जैसे 1984-85 में खाद्यान्नों का उत्पादन 15 करोड़ टन करना, कोयले का उत्पादन 1979-80 में 10·4 करोड़ टन से बढ़ाकर 1984-85 में 16·5 करोड़ टन करना, क्रूड पेट्रोलियम का 1·2 करोड़ टन से बढ़ाकर 2·2 करोड़ टन करना, सिंचित क्षेत्र में पांच वर्षों में लगभग 1·3 करोड़ हैक्टेयर की वृद्धि करना, आदि। योजना में इस्पात, कोयला, पेट्रोलियम, उर्वरक, सीमेन्ट आदि के उत्पादन को बढ़ाने के लिए आवश्यक विनियोगों की व्यवस्था की गई थी।

छठी योजना में आर्थिक प्रगति[1]
(Economic Progress under Sixth Plan)

1. विकास की दर—छठी पंचवर्षीय योजना विकास, आधुनिकीकरण व सामाजिक न्याय की दिशा में अग्रसर होने की दृष्टि से काफी सफल मानी जा सकती है। इसमें विकास की वार्षिक दर 5·3% रही जो लक्ष्य के अनुसार ही थी। योजनाकाल में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय लगभग 3·1% वार्षिक दर से बढ़ी। कृषि में विकास की दर लक्ष्य से अधिक रही, लेकिन खनन व विनिर्माण में यह लक्ष्य से काफी नीची रही। अन्य सेवाओं में भी विकास की दर लक्ष्य से ऊँची रही।

छठी योजना में विकास की दर का मूल्यांकन करते समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि इसका आधार वर्ष 1979-80 काफी कमजोर वर्ष था। उस वर्ष राष्ट्रीय आय पिछले वर्ष 1978-79 की तुलना में 5·2% घटी थी। इसलिए ऐसे प्रतिकूल वर्ष को आधार वर्ष मानने से आर्थिक प्रगति अपेक्षाकृत अधिक बढ़े-चढ़े रूप में प्रकट हो सकती है।

---

1. Economic Survey 1988-89, Various tables, and Seventh Five Year Plan 1985-90, Vol 1, Chapter 1, pp. 1–7.

2. कृषिगत उत्पादन—छठी योजना मे कृषिगत उत्पादन मे वार्षिक उतार-चढाव आते रहे। 1980-81 मे यहा 15·6% बढा, जबकि 1982-83 मे 3·3% घटा। पुन: 1983-84 मे यह 13·7% बढा। 1984-85 मे यह 1·2% ही बढा। खाद्यान्नो का उत्पादन 1979-80 मे 11 करोड टन से बढकर 1984-85 मे लगभग 14·6 करोड टन पर पहुँच गया। इस प्रकार योजना मे खाद्यान्नो के उत्पादन का निर्धारित लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया। तिलहन का उत्पादन 1979-80 मे 87·4 लाख टन से बढकर 1984-85 मे 1·3 करोड टन हो गया जो लक्ष्य से अधिक था। जूट व मेस्टा तथा गन्ने मे उत्पादन के लक्ष्य प्राप्त नही किये जा सके।

अधिक उपज देने वाली किस्मो के अन्तर्गत क्षेत्रफल 1979-80 मे 3·8 करोड हैक्टेयर से बढकर 1984-85 मे 5·41 करोड हैक्टेयर, सिंचित क्षेत्रफल 5·3 करोड हैक्टेयर से बढकर 6 करोड हैक्टेयर एव उर्वरको का उपभोग 53 लाख टन से बढकर 82 लाख टन हो गया। इस प्रकार उर्वरको का उपभोग लक्ष्य से अधिक रहा, HYP मे यह लक्ष्य के समीप रहा तथा सिंचाई मे लक्ष्य से कुछ कम रहा।

3 औद्योगिक उत्पादन—छठी योजना मे औद्योगिक उत्पादन मे वार्षिक वृद्धि-दर का लक्ष्य 7% था, जबकि वास्तविक वृद्धि दर लगभग 5·5% सालाना रही (1970 के सूचनाक के आधार पर) जो लक्ष्य से नीची थी। कोयले का उत्पादन (लिग्नाइट सहित) 1979-80 मे 10·7 करोड टन से बढकर 1984-85 मे 15·5 करोड टन, क्रूड तेल का 1·2 करोड टन से 2·9 करोड टन एवं तैयार इस्पात का 69 लाख टन से बढकर 1982-83 मे 80·5 लाख टन व 1984-85 में घटकर 77·8 लाख टन हो गया। इसी अवधि मे मशीनी औजारो, उर्वरकों, सीमेन्ट आदि का उत्पादन बढा।

इस प्रकार क्रूड तेल के उत्पादन मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है तथा 1984-85 मे उत्पादन लक्ष्य से अधिक रहा है जिससे इसका आयात कम करना सम्भव हो सका है। सृजित विद्युत की मात्रा 50% बढी (105 अरब किलोवाट घण्टे से 157 अरब किलोवाट घण्टे तक), लेकिन यह 191 अरब KWh के लक्ष्य से कम रही।

4. विदेशी व्यापार की स्थिति—छठी योजना मे प्रति वर्ष व्यापार का घाटा 55 अरब रुपये व इससे अधिक हुआ। पाँच वर्षों मे कुल व्यापार का घाटा 28,581 करोड रु. हुआ, जिससे विदेशी विनिमय की स्थिति पर विपरीत प्रभाव पडा। आयातो की राशि निर्यातो से काफी अधिक रही। इससे हमारी विदेशी सहायता पर निर्भरता बढी तथा IMF से कर्ज लेने से जटिल स्थिति का मुकाबला करना सम्भव हो सका।

1985-86 से IMF के कर्ज का भुगतान चालू हो जाने से ऋण-सेवा-भार बढ़ने लगा है। सातवी योजना मे विदेशी साधनों की दृष्टि से स्थिति काफी जटिल हो गई है।

5 मुद्रास्फीति की दर—छठी योजनावधि मे थोक मूल्य सूचनाको के आधार पर मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 8% रही तथा उपभोक्ता-मूल्य सूचनाकों के आधार पर 9·5% रही। छठी योजना मे भी भारतीय रुपये की क्रय-शक्ति मे गिरावट जारी रही, हालांकि अन्य देशो की तुलना मे भारत का कीमतो के सम्बन्ध मे रिकार्ड ज्यादा चिन्ताजनक नही है।

6 साधन-संग्रह—छठी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल परिव्यय का लक्ष्य (1979–80 के भावों पर) 97,500 करोड़ रु. रखा गया था, जबकि प्रचलित भावों पर 109292 करोड़ रु. रहा है* जो कीमत वृद्धि के लिए सशोधित किये जाने पर डॉ. डी. टी. लकड़ावाला के अनुसार 20% कम बैठता है।[1] घाटे की वित्त-व्यवस्था से साधन प्राप्त करने का लक्ष्य 5,000 करोड़ रु. था जबकि वास्तविक घाटे की वित्त-व्यवस्था इसके $2\frac{1}{2}$ गुने से भी अधिक (13,132 करोड रु) हुई। गैर-योजना व्यय के बढ जाने के कारण चालू राजस्व से बकाया राशि लक्ष्य से काफी कम रही है। इस प्रकार योजना की वित्तीय व्यवस्था से मुद्रास्फीति के दबाव बढे हैं।

7 निर्धनता व बेरोजगारी—छठी योजना मे IRDP मे कुल विनियोग का लक्ष्य (बैंक-कर्ज-सहित) 4500 करोड रु. का था, जबकि वास्तविक प्राप्ति 4730 करोड रु की रही है। 1·5 करोड परिवारो को लाभान्वित किया जाना था, जबकि वास्तव मे 1·65 करोड परिवारो को लाभान्वित किया जा सका है जो लक्ष्य से अधिक रहा है।

छठी योजना मे NREP के अन्तर्गत 2485 करोड रु उपलब्ध किये गये जिनका 3/4 अंश काम मे लिया गया। प्रति वर्ष 30 से 40 करोड मानव-दिवस रोजगार उत्पन्न किया गया जो लक्ष्य के अनुरूप था। ग्रामीण क्षेत्रो मे वृक्षारोपण, तालाब, सिंचाई सड़क व स्कूल आदि से सम्बन्धित निर्माण-कार्य किये गये।

सरकार ने सातवी योजना के प्रारूप, खण्ड मे बतलाया है कि भारत मे निर्धनता का अनुपात 1977-78 में लगभग 48% से घटकर 1984–85 मे 37% पर आ गया है। इस प्रकार निर्धन व्यक्तियो की संख्या 1977-78 में 30·7 करोड से घटकर 1984-85 में 27 3 करोड पर आ गई है। विकास की ऊँची दर व

---

* प्राकृतिक दुर्घटनाओ पर राहत-व्यय सहित यह 110467 करोड रु. रहा है।

1. D. T. Lakdawala, Seventh Plan : Solutions and Problems, The Economic Times, February 24, 1986.

कृषिगत उत्पादन की वृद्धि तथा IRDP, NREP, MNP व RLEGP (ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारण्टी कार्यक्रम) आदि के क्रियान्वयन से भारत में निर्धनता व बेरोजगारी घटी है।

छठी योजना में निर्धनता-उन्मूलन की दिशा में सरकार ने जो दावे किये हैं उनके सम्बन्ध में स्वर्गीय प्रोफेसर राजकृष्ण व अन्य प्रमुख अर्थशास्त्रियों जैसे के सुन्दरम्, सुरेश तेन्दूलकर, नीलकण्ठ रथ, डी टी लकडावाला तथा वी एम. दाडेकर आदि का विचार रहा है कि इतने लोगों के द्वारा निर्धनता की रेखा को पार करने की बात सही नहीं जान पड़ती।

डॉ डी टी लकडावाला के अनुसार सरकार के निर्धनता-उन्मूलन के दावे निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं[1] —

(i) वास्तविक आय में जो वृद्धि हुई है वह सभी व्यय-समूहों में समान रूप से हुई है.

(ii) निर्धनता की रेखा से जितने परिवार ऊपर आये हैं उनकी संख्या का सीधा सम्बन्ध उन पर किये गये खर्च से कर दिया गया है। लेकिन आर्थिक विकास के वितरणात्मक प्रभाव सभी वर्गों के लिए एक-से नहीं होते। IRDP के क्रियान्वयन के सभी अध्ययनों से पता चलता है कि निर्धनों को छाटने में त्रुटियाँ हुई है, कर्ज व अनुदान-सहायता की राशियाँ जरूरी नहीं कि उनको ही मिले, तथा सम्भव है उनके द्वारा किया गया व्यय भी नियोजित तरीकों से नियोजित परिणाम प्राप्त करने में न हो पाया हो।

डा नीलकण्ठ रथ का कहना है कि यदि कर्ज की किस्तों को टाला जाय तो IRDP से लाभान्वित होने वाले 10% लोग ही निर्धनता की रेखा को पार करने वाले माने जा सकते हैं। 1983 के राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे ने ज्यादा आशाजनक स्थिति प्रस्तुत की है और इसी के परिणामों के आधार पर सरकार ने यह दावा किया है कि 'निर्धनता का अनुपात 1977-78 मे 48% से घट कर 1984-85 में 37% पर आ गया है। वास्तव में 1983 के सर्वेक्षण के आकडों की अधिक छानबीन करने की आवश्यकता है। छठी योजना मे 1984-85 का लक्ष्य 18% व्यक्तियों को निर्धनता की रेखा से ऊपर लाना था। (48% से पुर्नवितरण सहित 30% पर) जबकि वस्तुत लगभग 11 0% ही इस रेखा से ऊपर आ पाये हैं (48% से 37% तक)। अत निर्धनता-उन्मूलन के सम्बन्ध में सरकारी दावों की अधिक गहराई से समीक्षा करने की आवश्यकता है।

---

1 D T Lakdawala, Seventh Plan II–Impact on Distribution, The Economic Times, February 25, 1986.

प्रोफसर वी एम दांडेकर के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों मे निर्धनता का अनुपात 1971-72 मे 46% से घट कर 1983 मे 44·4% पर ही आ पाया है । इस प्रकार 11½ वर्षों मे इसमे केवल 1 6 प्रतिशत बिन्दु की ही गिरावट आयी है ।[1]

IRDP मे स्वरोजगार पर जोर दिया गया है । अब अधिकांश विद्वानो का मत हो चला है कि मजदूरी-रोजगार पर सरकार को अधिक ध्यान देना चाहिए ताकि सामुदायिक परिसम्पत्तियो का निर्माण हो सके और सब्सिडी के रूप में सरकारी कोषो को नष्ट होने से बचाया जा सके । अत. विकेन्द्रित आधार पर जिला-नियोजन के अन्तगत रोजगार की सुदृढ परियोजनाओ को सचालित करने की आवश्यकता है ।

8 **अन्य क्षेत्रों मे उपलब्धियाँ**—छठी योजना में कुछ अन्य उपलब्धियाँ इस प्रकार रहीं—(1) प्रारम्भिक शिक्षा के लिए व प्राथमिक व सहायक स्वास्थ्य केन्द्रो की स्थापना के लक्ष्य प्राप्त कर लिये गये, (11) 1979-80 मे लगभग 22% दम्पत्ति परिवार नियोजन के सुरक्षित दायरे में आ चुके थे, 1984-85 में इनकी संख्या बढकर 32% हो गई, (111) 2·31 लाख गावो में से 1 92 लाख गाँवों में नियमित जल पूर्ति की जा सकी और लोगो को पेयजल उपलब्ध कराया गया, (1v) 54 लाख निर्धन ग्रामीण परिवारो को रिहायशी भूखण्ड वितरित किये गये तथा 19 लाख परिवारो को भवन-निर्माण के लिए सहायता दी गई ।

निष्कर्ष—इस प्रकार छठी योजना में विभिन्न क्षेत्रो में आर्थिक प्रगति हुई । पहली बार ऐसा प्रतीत होने लगा कि निर्धनता व बेरोजगारी की समस्याओ को उचित नीतियों व सही कार्यक्रम अपनाकर समाप्त किया जा सकता है । देश म नियोजन के प्रति एक नया विश्वास व उत्साह उत्पन्न हुआ । विकास की वार्षिक दर 3 5% के मार्ग को छोडकर 1974 75 से 1984-85 की अवधि में लगभग 5% के मार्ग पर आ गई जिसे आगामी वर्षों में इसी मार्ग पर बनाये रखने का प्रयास करना है ।

प्रश्न

1 भारतीय नियोजन मे सार्वजनिक क्षेत्र की क्या भूमिका है ? क्या यह आवश्यक है कि सार्वजनिक क्षेत्र को बल देने के लिए धीरे-धीरे निजी क्षेत्र की भूमिका घटाई जावे । (Raj IIyr T D C, 1981)

उत्तर-सकेत—प्रश्न सामान्य किस्म का है । सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका का उद्योगो के सम्बन्ध मे विवेचन करने के लिए **औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956** की उद्योगो की श्रेणी A व श्रेणी B का विस्तृत उल्लेख किया जाना चाहिए ।

---

1 V M Dandekar Agriculture, Employment and Poverty, EPW, September 20-27, 1986 इस विषय पर यह अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख माना गया है ।

सरकार ने योजना के प्रारम्भिक वर्षों मे सार्वजनिक क्षेत्र को प्रभुतासम्पन्न स्थिति (Commanding position) मे लाने पर जोर दिया था। हाल के वर्षों मे आर्थिक क्षेत्र में उदारता की नीति अपनाई गई है जिससे निजी क्षेत्र का महत्व बढता जा रहा है। सरकार उन्नत टेक्नोलोजी, बड़े पैमाने के उत्पादन, प्रतिस्पर्धा, व खुली अर्थव्यवस्था पर अधिक बल देने लगी है एव आर्थिक नियन्त्रणो मे ढील दी जाने लगी है। काफी उद्योगो को लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया है।

सातवी योजना मे कुल विनियोग का 48% सार्वजनिक क्षेत्र के लिए तथा 52% निजी क्षेत्र के लिए रखा गया है। पाचवी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का अश 42½% तथा छठी योजना मे 53% रखा गया था। सार्वजनिक क्षेत्र पर बल देने के लिए धीरे-धीरे निजी क्षेत्र की भूमिका का घटाना आवश्यक नही है, क्योकि भारत मे दोनो क्षेत्रो के विकास के लिए काफी अवसर विद्यमान है। सार्वजनिक क्षेत्र आधारभूत ढाचे जैसे विद्युत, परिवहन, खनन, पूंजी व आधारभूत उद्योगो के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है, जबकि निजी क्षेत्र उपभोक्ता उद्योगो, लघु उद्योगो, सडक-माल-परिवहन, व्यापार, कृषि वगैरा मे भाग ले सकता है।

2. भारत की विभिन्न योजनाओ मे सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग के आकार तथा तरीको का उल्लेख कीजिए। (Raj IIyr T. D. C., 1984)
3. भारत मे छठी पचवर्षीय योजना की विस्तृत रूपरेखा बताइये।
(Raj IIyear T. D. C., 1982)

———

22

बीस-सूत्री कार्यक्रम, अनवरत योजना व भारतीय नियोजन

(Twenty Point-Programme, Rolling Plan & Indian Planning)

दिसम्बर 1971 में भारत-पाक युद्ध के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास की गति काफी धीमी पड़ गई थी। 1974-75 में राष्ट्रीय आय 1970-71 के भावों पर पिछले वर्ष की तुलना में केवल 1·5 प्रतिशत ही बढ़ी एवं प्रति व्यक्ति आय 0 6 प्रतिशत घटी थी। 1973-74 व 1974-75 में प्रतिवर्ष मुद्रास्फीति की दर क्रमशः 20% व 25% रही थी। इससे देश में गम्भीर आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था। जीवन की आवश्यक वस्तुओं के अभाव, बढ़ती हुई कीमतों, वस्तुओं के संग्रह व मुनाफाखोरी, बेरोजगारी तथा उत्पादन के क्षेत्रों में गतिहीनता व रुकावट की दशाओं ने आर्थिक संकट के साथ-साथ राजनीतिक संकट भी उत्पन्न कर दिया था। समस्त राष्ट्र राजनीतिक आन्दोलनों की लपेट में आ गया था और स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। राष्ट्र के समक्ष एक महान् चुनौती की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। हड़तालों व बन्द के दौर तीव्र हो गए थे। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि राष्ट्रीय अनुशासन, कर्त्तव्यपरायणता व कठोर परिश्रम जैसे गुण अपने निम्नतम स्तर पर पहुँच गये और देश में आर्थिक प्रशासन छिन्न-भिन्न हो गया था। देश को एक सर्जिकल ऑपरेशन की आवश्यकता महसूस होने लगी थी।

25 जून 1975 को राष्ट्रपति ने संविधान की धारा 352 के अनुच्छेद (1) के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों का उपयोग करके आपातकाल (state of emergency) की घोषणा की, जिसका उद्देश्य राष्ट्र को आन्तरिक अशान्ति व अव्यवस्था के खतरे से बचाना था। जैसा कि पहले संकेत दिया जा चुका है समस्त वातावरण के पीछे आर्थिक संकट ही प्रमुख था। इसलिए जनहित में आर्थिक सुधारों की नितान्त आवश्यकता थी। स्व. प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 1 जुलाई, 1975 को 20-

सूत्री आर्थिक कार्यक्रम पेश किया जिस पर आपातकाल मे काफी चर्चा हुई थी। मार्च 1977 मे केन्द्र मे जनता सरकार के सत्तारूढ होने पर इस कार्यक्रम को निरस्त कर दिया गया। लेकिन जनवरी, 1980 मे केन्द्र मे कांग्रेस (आई) के पुन: सत्तारूढ होने पर 14 जनवरी, 1982 को स्व. श्रीमती गांधी ने एक सशोधित 20-सूत्री कार्यक्रम राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत किया। इस प्रकार उनके कार्यकाल मे इस कार्यक्रम के दो रूप देश के समक्ष प्रस्तुत किये गये। 20 अगस्त 1986 को राजीव सरकार की ओर से सशोधित बीस-सूत्री कार्यक्रम पेश किया गया जो इसका तृतीय सस्करण कहला सकता है। हम नीचे इनके विभिन्न बिन्दुओ का विवरण देते हैं और भारतीय नियोजन मे इनकी भूमिका स्पष्ट करते है।

प्रथम बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम जुलाई, 1975*

प्रथम 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम 1 जुलाई, 1975 को घोषित किया गया था। इसके विभिन्न सूत्रो को तीन श्रेणियो मे रखा जा सकता है :

(क) कल्याणकारी कार्य,

(ख) आर्थिक बुराइयो को दूर करने से सम्बन्धित कार्यक्रम; तथा

(ग) उत्पादन-वृद्धि तथा अर्थ-व्यवस्था के आधारभूत ढाचे को सुदृढ करने से सम्बन्धित विविध कार्य।

(क) कल्याणकारी कार्य

इस श्रेणी मे वे कार्य रखे गये जिनका उद्देश्य लोगो को शीघ्र लाभ पहुँचाना था। गावो व शहरो मे निर्धन व मध्यमवर्ग को कई प्रकार की आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पड रहा था। इसलिए उनके कल्याण के लिए निम्न कार्यक्रम घोषित किये गये :

1. ग्रामीण ऋणग्रस्तता से मुक्ति—इसके अन्तर्गत भूमिहीन श्रमिको, लघु कृषको तथा कारीगरो से कर्ज की वसूली पर रोक लगाने व उनकी ऋणग्रस्तता की समाप्ति का कार्यक्रम घोषित किया गया। साथ मे यह भी कहा गया कि इनको कर्ज देने के लिए वैकल्पिक सस्थाओ का विकास किया जायगा ताकि गावो के निर्धन लोगो को आवश्यक मात्रा मे ऋण की सुविधा मिल सके।

---

* 20-सूत्री कार्यक्रम पर पूछे जाने पर 20 अगस्त, 1986 के तीसरी बार घोषित किये गये आर्थिक कार्यक्रम पर विस्तृत चर्चा की जानी चाहिए क्योंकि वही प्रचलन मे है। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से पहले के दो कार्यक्रमो का भी अपना महत्व है। अतः उन पर भी दृष्टि डालना जरूरी है।

2 भू-जोतों पर सीमा निर्धारण, अतिरिक्त भूमि का वितरण व भूमि के रिकार्ड तैयार करना—20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम में भूमि-सुधारों के सीमा-निर्धारण कार्यक्रम पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया, क्योंकि इसके सफल होने पर ही भूमि के वितरण का कार्यक्रम आगे बढाया जा सकता था। यह कहा गया कि भूमि के रिकार्ड तैयार करने से भू-स्वामित्व व काश्तकारी अधिकारों के सम्बन्ध मे *स्थिति स्पष्ट हो जायेगी जिससे भूमि-सुधार कार्यक्रम लागू करने का आधार* सुनिश्चित हो जायेगा। इससे वित्तीय संस्थाओं को कर्ज देने मे भी सहूलियत होगी क्योंकि भूमि मे, कृषकों के अधिकार स्पष्ट हो जायेंगे। सीमा-निर्धारण व अतिरिक्त भूमि का वितरण सामाजिक न्याय के साथ-साथ उत्पादन बढाने की दृष्टि से भी आवश्यक माने गये थे।

3. भूमिहीनों व ग्रामीण निर्धनों के लिए आवासीय भूखण्डों की व्यवस्था—भारत मे आवास की समस्या काफी गम्भीर रही है, विशेषतया भूमिहीनों व कमजोर वर्ग के लिए तो यह असहनीय रही है। 1971 से भूमिहीन श्रमिकों के लिए नि शुल्क आवासीय भूखण्डो को प्रदान करने की योजना कार्यान्वित की जा रही थी। इसके लिए केन्द्रीय कार्यक्रम मे इसे तीव्र गति प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया। भूमिहीन लोगों को आवासीय भूखण्ड देने के साथ-साथ मकान बनाने के लिए कर्ज देना भी आवश्यक माना गया।

4 बन्धुआ श्रम (bonded labour) को गैर-कानूनी घोषित करना—देश के विभिन्न भागों मे बन्धुआ श्रम की समस्या पायी गयी है। इसके अन्तर्गत बन्धुआ श्रम गुलामी की अवस्था मे जीवनयापन करते हुए पाये गये हैं। 20-सूत्री *आर्थिक कार्यक्रम मे इसे गैर-कानूनी घोषित करने तथा बन्धुआ मजदूरों को मुक्त करा*-कर उन्हे फिर से बसाने की बात कही गयी थी। यह समस्या आदिम जाति के लोगों मे अधिक पायी गयी है। साथ मे यह कहा गया कि इस पर समुचित रूप से प्रहार करने के लिए रोजगार के वैकल्पिक अवसरों का विकास करना होगा, अन्यथा अनौपचारिक रूप से यह प्रथा जारी रह सकती है।

5 न्यूनतम कृषिगत मजदूरी के कानूनों की पुन समीक्षा—हमारे देश मे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत खेतिहर श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की गयी है। लेकिन श्रमिकों के असगठित रहने के कारण इसे लागू नही किया जा सका है। महगाई बढने के कारण इसमे उचित सशोधन की भी आवश्यकता रही है। 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे न्यूनतम कृषिगत मजदूरी के *पुनर्निर्धारण पर जोर दिया गया ताकि भूमिहीन श्रमिकों के हितों की रक्षा की जा* सके।

स्मरण रहे कि उपर्युक्त पाँचों कार्यक्रम प्रत्यक्ष रूप से कृषिगत मजदूरों के हितों को आगे बढाने वाले थे और इनका लक्ष्य 'ग्रामीण निर्धन' वर्ग की आर्थिक व सामाजिक दशा मे सुधार करना था।

6. मध्यम-वर्ग को आय-कर मे राहत—मध्यम-वर्ग के लिए आय-कर मे छूट की सीमा 8,000 रुपये कर दी गयी। पहले यह सीमा 6,000 रुपये थी। मुद्रा-स्फीति से मध्यम-वर्ग की कठिनाइयाँ भी बढी थी। इसलिए इस वर्ग को राहत पहुँचाना भी आवश्यक था।

7 होस्टलो मे विद्यार्थियो को राहत—निर्धन परिवारो के छात्रो को अपने घर के बाहर अध्ययन कार्य करने मे कई प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पडता है। इसलिए होस्टल व अन्य आवास-गृहो मे नियन्त्रित भावो पर आवश्यक वस्तुएँ सुलभ कराना भी 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे शामिल किया गया। इस कार्य के लिए उपभोक्ता सहकारिताओ का उपयोग करने पर बल दिया गया। इनके माध्यम से विश्वविद्यालयो के होस्टलो में खाद्यान्नो दालें मसाले वनस्पति तेल, चाय साबुन, चीनी, आदि उपभोक्ता वस्तुएँ उपलब्ध कराने के कार्यक्रम रखे गये।

8 नियन्त्रित भावो पर पाठ्य-पुस्तकें व स्टेशनरी उपलब्ध कराना—विभिन्न स्तरो पर विद्यार्थियो को पाठ्य-पुस्तकें व स्टेशनरी नियन्त्रित भावो पर उपलब्ध कराना तथा 'बुक-बैंक' के माध्यम से निर्धन छात्र-छात्राओ को इन्हे सुलभ कराना भी 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे शामिल किया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्रो के विद्यार्थियो की शिक्षा का व्यय कम किया जा सके।

9. शहरी भूमि का समाजीकरण—इसके अन्तर्गत शहरी व शहरीकरण के योग्य भूमि का समाजीकरण, खाली पडे भूखण्डो के स्वामित्व व अधिकारो पर सीमा तथा नये मकानो के प्लिन्थ क्षेत्र पर सीमा लगाने के कार्यक्रम आते है। शहरी भूमि के मूल्यो मे अत्यधिक वृद्धि से कुछ व्यक्तियो ने बहुत अधिक लाभ उठाया है। इसलिए सरकार ने यह निश्चय किया कि इस सम्बन्ध मे ऐसे कदम उठाये जायें कि शहरी भूमि मे सट्टेबाजी रुक सके। शहरी भूमि के सौदो का काली मुद्रा से भी सम्बन्ध रहा है। इसलिए उस पर नियन्त्रण करने के लिए यह कार्यक्रम भी आवश्यक माना गया।

सरकार ने जनवरी 1976 मे शहरी सीलिंग बिल ससद मे पेश किया जिसके अन्तर्गत शहरी व शहरीकरण के योग्य भूमि को चार श्रेणियो मे बाँटा गया और 500 से 2,000 वर्ग मीटर तक खाली भूखण्डो पर सीमा-निर्धारण घोषित किया गया। यह कहा गया कि सीमा के ऊपर के खाली भूखण्डो को सरकार मुआवजा देकर स्वय ग्रहण कर लेगी। इस प्रकार शहरी भूमि का समाजीकरण शहरी सम्पत्ति पर सीमा-निर्धारण के अश के रूप मे अपनाया गया।

(ख) आर्थिक बुराइयो को दूर करने से सम्बन्धित कार्यक्रम

10 तस्करी-विरोधी कदम—भारतीय अर्थव्यवस्था तस्करी का अत्यधिक शिकार रही है। इसलिए तस्करी-विरोधी अभियान 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम का

एक अनिवार्य अंग बनाया गया। इसके अन्तर्गत तस्करों की सम्पत्ति जब्त करने के कानून शामिल किये गये। तस्करों की गिरफ्तारी और तस्करी का माल जब्त करने की पुरजोर व्यवस्था करना भी आवश्यक माना गया। तस्करी का माल लाने वाले जहाजों को पकड़ने के लिए किए जाने वाले विशेष प्रयत्न भी इसी में शामिल किये गये। देश में करोड़ों रुपयों का सोना व विलासिता का सामान चोरी-छिपे आता रहा है जिसकी वित्तीय व्यवस्था के लिए विदेशी पर्यटकों से प्राप्त विदेशी मुद्रा व विदेशों में रहने वाले भारतीय नागरिकों से प्राप्त विदेशी मुद्रा का उपयोग करने के साथ-साथ निर्यातों का नीचा मूल्यांकन व आयातों का ऊँचा मूल्यांकन होता रहा है। भारतीय माल भी विदेशों में चोरी-छिपे ले जाया जाता है। 'मीसा' (आन्तरिक सुरक्षा कानून) के अन्तर्गत तस्करों के विरुद्ध कार्यवाही करके विदेशी विनिमय बचाने के लक्ष्य रखे गये।

11. आयात-लाइसेन्सों के दुरुपयोग पर कार्यवाही—भारत में आयात लाइसेन्सों का दुरुपयोग होता रहा है। 20—सूत्री आर्थिक कार्यक्रम में कानून का उल्लघन करने वाले को कड़ी सजा देने व आयात की गयी वस्तुओं को जब्त करने की भी व्यवस्था की गयी। आयात-निर्यात कानूनों में आवश्यक संशोधन किया गया।

12 करों की चोरी रोकने से सम्बन्धित उपाय—भारतीय अर्थव्यवस्था में कई वर्षों से एक अंश 'काली अर्थव्यवस्था' (black economy) के रूप में चलता रहा है। 20—सूत्री आर्थिक कार्यक्रम में इसको रोकने के लिए विलासी भवनों के मूल्यांकन, करों की चोरी के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों व व्यक्तियों पर छापे व तलाशी आदि के रूप में कदम उठाने की नीति अपनायी गयी। यह सोचा गया कि इससे काला-बाजारी, माल के अनुचित संग्रह व मुनाफाखोरी आदि समाज-विरोधी क्रियाओं पर अंकुश लगेगा और परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति पर रोक लगेगी और सरकार की करों से प्राप्त आय बढ़ेगी। काली मुद्रा की वृद्धि व संचालन को रोकने के लिए कर-मशीनरी व कर-प्रशासन को सुदृढ़ करना भी आवश्यक समझा गया।

(ग) उत्पादन-वृद्धि तथा अर्थव्यवस्था के आधारभूत-ढाँचे (infrastructure) को सुदृढ़ करने से सम्बन्धित विविध कार्य

20—सूत्री आर्थिक कार्यक्रम में कृषिगत व औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए भी आवश्यक उपाय सुझाये गये जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है:

13 मूल्य नियन्त्रण के उपाय—जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, अत्यधिक मूल्य-वृद्धि ने देश में आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक संकट उत्पन्न कर दिया था। अतएव 20—सूत्री आर्थिक कार्यक्रम में विभिन्न कदम उठाकर मूल्यों को कम करना आवश्यक माना गया। इसके लिए उत्पादन बढ़ाना, वसूली व वितरण

को ठीक करना, सरकारी व्यय में कमी करना तथा अन्य कदम उठाना अत्यावश्यक समझा गया। वस्तुत. इस कार्यक्रम का आर्थिक अपराधो को रोकने के कार्यक्रमों से निकट का सम्बन्ध था। सरकार ने व्यापारियों को स्टॉक घोषित करने व कीमतें टाँगने के लिए भी प्रेरित किया। 2 अक्टूबर 1975 से पैकेट की वस्तुओं पर उत्पादन की तिथि, शुद्ध मात्रा, वजन व मूल्य अंकित करना भी आवश्यक कर दिया गया। सरकारी व्यय अधिक होने से घाटे की वित्त-व्यवस्था बढती है। अत सरकारी व्यय को नियन्त्रित करने का भी निर्णय किया गया। मूल्यों को स्थिर करने मे खाद्यान्नों की वसूली का केन्द्रीय स्थान होता है। अत सरकार ने गेहूँ, चावल व अन्य अनाजो की खरीद मे वृद्धि करके बफर स्टाक बनाने पर भी ध्यान दिया।

14 सिंचाई का विस्तार—कृषिगत उत्पादन की कुंजी सिंचाई के साधनो के पर्याप्त विकास करने मे निहित होती है। अत 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे 50 लाख हैक्टेयर भूमि मे अतिरिक्त सिंचाई की व्यवस्था करने का लक्ष्य रखा गया; विशेषतया भूमि के नीचे पाये जाने वाले जल-साधनो का विकास करने पर बल दिया गया।

15 पावर कार्यक्रम मे तीव्रता—कृषिगत व औद्योगिक विकास का आधार 'पावर' को मानना अनुचित नही होगा। इसलिए केन्द्र के नियन्त्रण मे सुपर थर्मल स्टेशनों की स्थापना करके देश को शक्ति के संकट से उबारना अत्यावश्यक माना गया। पिछले वर्षों में शक्ति के अभाव ने औद्योगिक उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला था। 1975–76 मे विद्युत सृजन-क्षमता मे 20% वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया ताकि इस अवधि के अन्त मे विद्युत की प्रस्थापित क्षमता 22·77 मिलियन किलोवाट हो जाय। सरकार ने सिंगरौली, कोरबा, फरक्का व नैवेली कोयला केन्द्रों को सुपर थर्मल स्टेशन स्थापित करने के लिए चुना था।

16 हथकरघा क्षेत्र का विकास—कृषि के बाद रोजगार की दृष्टि से हथकरघा उद्योग का स्थान आता है। लगभग 70–80 लाख व्यक्ति इस पर आश्रित होकर अपना जीविकोपार्जन करते हैं। इसलिए यह आवश्यक था कि इस उद्योग को उचित कीमतों पर कच्चा माल नियमित रूप से उपलब्ध कराया जाय। हथकरघा उद्योग का विकास करने के लिए सहकारी संस्थाओं को सुदृढ करने पर बल दिया गया।

17 जनता वस्त्र अथवा नियन्त्रित वस्त्र की किस्म तथा सप्लाई मे सुधार—पिछले वर्षों मे जनसाधारण के काम के वस्त्र की किस्म व सप्लाई मे गिरावट रही है। इसलिए नयी स्कीम मे धोती-साडी व अन्य वस्त्रो की किस्म मे सुधार करने तथा इन्हें उचित मूल्यो पर ग्रामीण व शहरी क्षेत्रो मे सुलभ कराने पर जोर दिया गया। ऐसा श्रमिक वर्ग व निम्न मध्यम वर्ग को राहत पहुँचाने के लिए किया गया।

ध्यान आकर्षित किया तथा इस कार्यक्रम को राजनीतिक कार्यक्रम की संज्ञा दी और मार्च 1977 में केन्द्र में कांग्रेस के सत्ता से हट जाने के बाद यह कार्यक्रम भी निरस्त कर दिया गया। ध्यान देने की बात यह है कि इनमें से किसी भी कार्यक्रम की मद अपने आप में किसी भी प्रकार से आपत्तिजनक नहीं थी, लेकिन इसे राजनीतिक कारणों से जनता सरकार की तरफ से मान्यता नहीं मिली। जनवरी, 1980 में कांग्रेस (आई) के सत्ता में वापस आने के बाद इसे पुनर्जीवन मिला और 14 जनवरी, 1982, को स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने संशोधित अथवा दूसरा 20-सूत्री कार्यक्रम घोषित किया जिसका वर्णन आगे किया गया है। राजस्थान में तो इनके साथ 20-संकल्प और जोड़ दिये गये और 'पिछड़े को पहले' आदि कार्यक्रमों पर जोर दिया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनतम व्यक्तियों को आमदनी व रोजगार के साधन मिल सकें। दूसरे 20-सूत्री कार्यक्रम का वर्णन करने से पूर्व जनता शासनकाल में बहुचर्चित अनवरत योजना के विचार का संक्षिप्त परिचय देना उचित होगा।

अनवरत योजना का विचार (The Concept of Rolling Plan)

मार्च, 1977 में केन्द्र में सत्तारूढ़ होने पर जनता सरकार ने योजना की पद्धति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया जिसे अनवरत योजना कहा गया है। इसके अन्तर्गत पहले की स्थिर (static) पंचवर्षीय योजना के स्थान पर निम्न किस्म की अनवरत योजना-प्रणाली सुझायी गयी थी—

1. पंचवर्षीय योजनाओं के मुख्य क्षेत्रों के लिए परिव्यय व उत्पादन के सम्बन्ध में वार्षिक क्षेत्रवार लक्ष्य (annual sectoral targets) निर्धारित करना।

2. प्रत्येक वर्ष के अन्त में इन चुने हुए क्षेत्रों के लिए एक और वर्ष के लिए क्षेत्रवार लक्ष्य निर्धारित करना और इस प्रकार पंचवर्षीय योजना को अधिक व्यापक, अधिक व्यावहारिक व अधिक लचीली बनाना।

जनता सरकार ने 1978-83 की अवधि के लिए छठी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप पेश किया था। यह कहा गया था कि 1978 79 की वार्षिक योजना के समाप्त होने पर योजना आयोग इस अवधि की प्रगति की समीक्षा करेगा और कुछ क्षेत्रों में कमियां पाये जाने पर अथवा अन्य नयी सूचनाओं के आधार पर पहले के लक्ष्यों में आवश्यक संशोधन करेगा और एक आगामी वर्ष 1983-84 के लिए भी लक्ष्य निश्चित करेगा। इस प्रकार हर साल देश में एक नयी पंचवर्षीय योजना तैयार रहेगी।

अनवरत योजना-पद्धति पर देश में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और उस समय के विरोधी दलों ने इसकी काफी आलोचना भी की। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है

कि इसके गुण-दोषों की चर्चा की जाय ताकि पाठकों को इसके सम्बन्ध में सही स्थिति की जानकारी हो सके।

अनवरत योजना-पद्धति के सम्भावित लाभ

1 योजना अधिक वास्तविक व लचीली होगी (Planning would be more realistic and flexible)—अनवरत योजना के पक्ष में एक दावा यह किया गया कि इससे नियोजन की प्रक्रिया में अधिक वास्तविकता व लचीलापन आ जायेगा। पिछले वर्षों में लक्ष्यों व उपलब्धियों के बीच जो अन्तर रहे हैं एवं जो काफी समय तक जारी रहे हैं, उन्हे कम किया जा सकेगा। इस प्रकार यह प्रणाली उतार-चढ़ाव तथा अनिश्चितताओं का सामना करने के लिए ज्यादा अच्छी साबित होगी।

स्वर्गीय प्रोफेसर राजकृष्ण ने अपना मत इस प्रकार रखा था कि भूतकाल में पाँच वर्षों के अनुमान काफी बेलोच व कठोर हो जाते थे तथा प्रायः वास्तविकता से काफी दूर हो जाया करते थे। माँग के अनुमान या तो अधिक ऊँचे हो जाते या अधिक नीचे हो जाते तथा हमारी अर्थव्यवस्था पर मौसमी परिवर्तनों, विदेशी विनिमय के प्रभाव तथा पूँजी-उत्पाद की ऊँची दरों का काफी विपरीत प्रभाव पड़ता था। इसलिए हमारी अर्थव्यवस्था के लिए भावी अनुमान लगाने में अधिक लचीलेपन की आवश्यकता रही है। अनवरत योजना को अपनाकर हम हर वर्ष भावी अनुमानों में आवश्यक न्यूनतम संशोधन कर सकेंगे जिससे योजना देश के लिए अधिक व्यावहारिक, वास्तविक व उपयोगी बन जायेगी।

अनवरत योजना के लचीलेपन का यह अर्थ नहीं है कि माँग के प्रत्येक भावी अनुमान (every single demand projection), प्रत्येक वित्तीय वायदे (every single financial commitment) व प्रत्येक स्वीकृत परियोजना (every single project in the shelf) में अनिवार्य संशोधन किया जायेगा। यह तो अनवरत योजना की धारणा का गलत अर्थ लगाना होगा। इस धारणा के पीछे यह आशय अवश्य है कि आवश्यकतानुसार किसी भी विशेष भावी अनुमान या भावी लक्ष्य को संशोधित किया जा सकेगा ताकि योजना अधिक वास्तविक रूप धारण कर सके। इस प्रकार व्यवहार में कुछ थोड़े से भावी अनुमानों, थोड़ी-सी स्वीकृत परियोजनाओं व थोड़े-से वित्तीय वायदों का ही संशोधन करने की जरूरत पड़ेगी।

2 गैर-योजना व्यय व योजना-व्यय आज की भाँति इकट्ठे ही प्रस्तुत किये जायेंगे—योजना आयोग अनवरत योजना बनायेगा और प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए योजना व्यय निर्धारित करेगा। वित्त-मन्त्रालय गैर-योजना व्यय निर्धारित करेगा और आज की भाँति आगे भी ये दोनों इकट्ठे रूप में ही पेश किये जाते रहेंगे। इस व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं आयेगा। लेकिन योजना आयोग को नयी व्यवस्था के अन्तर्गत आगामी वर्ष की अनवरत योजना का मसौदा जल्दी तैयार करना होगा ताकि योजना आयोग व वित्त-मन्त्रालय के अनुमान इकट्ठे पेश किये जा सकें।

अनवरत योजना के विचार की समीक्षा

अर्थशास्त्रियों व अन्य विचारकों ने अनवरत योजना की उपयोगिता में सन्देह व्यक्त किये थे। कुछ का मत यह था कि अनवरत योजना भारतीय नियोजन की मूलभूत कमियों को दूर नहीं कर पायेगी और अन्य का विचार था कि अनवरत योजना की धारणा स्वयं में तो उपयुक्त व उपयोगी है लेकिन भारत की वर्तमान परस्थितियों में इसे पूरी तैयारी के बिना लागू करने से लाभ की बजाय हानि होने का अधिक भय है।

वैद्यनाथन व गुलाटी[1] का यह मत रहा कि भारत में योजनाओं को सफल बनाने के लिए कुछ कठोर निर्णय लिये जाने आवश्यक हैं, जिनके अभाव में योजनाओं के लाभ आम जनता को नहीं मिल पाये हैं। राजनीतिज्ञ सदैव जनता को तरह-तरह के सब्ज बाग दिखाते रहे हैं तथा नौकरशाही योजना के लक्ष्यों के बारे में सदैव आशंकित व उदासीन रही है। दोनों का ध्यान अधिक व्यय करने के पक्ष में तो रहा है, लेकिन किसी ने भी उचित नीतियाँ अपनाकर योजनाओं के क्रियान्वयन पर जोर नहीं दिया। अतः अनवरत योजना हमारे नियोजन के इन दोषों तथा अन्तर्विरोधों को दूर नहीं कर पायेगी और हम सार की बात पर ध्यान न देकर योजना के ऊपरी रूप को सुधारने में ही लगे रहेंगे, जिससे समाज को अधिक लाभ नहीं होगा। अतएव हम कठोर नीतियाँ अपनाकर निहित स्वार्थी वर्ग के हितों को पीछे हटाकर आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

सुरेश तेन्दुलकर[2] के मतानुसार भारत में 1960 की दशाब्दी के मध्य भाग से लेकर अब तक मुख्य समस्या यह रही है कि नियोजन की प्रक्रिया में कई कारणों से जनता का विश्वास उठने लगा है, जिसे पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है और ऐसा पहले राजनीतिक स्तर पर ही किया जाना चाहिए। लेकिन सरकार ने इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाने की बजाय केवल अनवरत योजना की पद्धति को लागू करना ही पसन्द किया, जिसके लिए आवश्यक तैयारी नहीं की गयी। अतः अनवरत योजना की पद्धति तो युक्तिसगत व लाभदायक है तथा इसको स्वीकार करना योजना का परित्याग करना नहीं है। लेकिन इस पद्धति को लागू करने के लिए जिस प्रकार की तकनीकी व प्रशासनिक तैयारी होनी चाहिए तथा जिस प्रकार का संस्थागत ढाँचा

---

1. A Vaidyanathan and I S Gulati, On Rolling Plans, EPW October 8, 1977, pp 1739–1740.
2. Suresh D Tendulkar, Planning Process, Planning Commission and Rollover Planning, EPW, October 15, 1977, pp 1777–1782.

होना चाहिए उसका भारत में नितान्त अभाव पाया गया है। अतः यहां पर इसकी सफलता के आसार कम हैं। अनवरत योजना की व्यवस्था के अन्तर्गत राजनीतिज्ञों को लक्ष्यों व उनकी उपलब्धियों के बीच में खाई रहने पर लक्ष्यों को नीचा करने का बहाना मिल जायेगा, बनिस्बत इसके कि वे उपलब्धियों को ऊँचा करने का प्रयास करें।

इस प्रकार 'अनवरत योजना के आलोचकों का यह मत रहा है कि भारत में योजना के क्रियान्वयन (plan implementation) पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए तथा योजना की नीतियों को व्यवहार में आवश्यक दृढ़ता व कठोरता से लागू करना चाहिए। तभी नियोजन की प्रक्रिया में जनता का विश्वास पुनः जम सकेगा जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है।

जनवरी 1980 में केन्द्र में कांग्रेस (आई) की सरकार बनने से अनवरत योजना के विचार को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया गया। जिस प्रकार जनता सरकार ने प्रथम 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को निरस्त कर दिया था, उसी प्रकार कांग्रेस (आई) सरकार ने अनवरत योजना के विचार को अस्वीकृत कर दिया (the idea of rolling plan was rolled up)। सरकार ने पहले की भांति एक स्थिर पचवर्षीय योजना (a fixed five year plan) का मार्ग ही अपनाया और देश में नई छठी पचवर्षीय योजना (1980-85) लागू की गई।

सरकार ने संशोधित अथवा द्वितीय बीस-सूत्री कार्यक्रम जनवरी 1982 में घोषित किया। उस समय नई सरकार के कार्यकाल के दो वर्ष पूरे हो गये थे और स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी ने यह आवश्यक समझा कि प्रथम 20-सूत्री कार्यक्रम को संशोधित किया जाय ताकि यह देश की समस्याओं के हल में नये सिरे से अपना सक्रिय योगदान दे सके।

दूसरा बीस-सूत्री कार्यक्रम, जनवरी 1982

प्रथम बीस-सूत्री कार्यक्रम के कई उद्देश्य प्राप्त कर लिये गये थे तथा छठी पचवर्षीय योजना में कुछ नये विकास-कार्यक्रम रखे गये थे। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 14 जनवरी, 1982 को दूसरा बीस-सूत्री कार्यक्रम घोषित किया गया जिसके विभिन्न बिन्दु इस प्रकार हैं :

1. सिंचाई की सम्भाव्यता (Irrigation potentral) बढ़ाना तथा सूखी खेती के लिए आवश्यक इन्पुटों व टेक्नोलोजी का विस्तार करना। सूखी खेती में वर्षा पर आश्रित क्षेत्रों में नमी के संरक्षण के लिए आवश्यक उपाय किये जाते हैं।

2. दालों व तिलहनों का उत्पादन बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास करना।

3. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) व राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) को सुदृढ करना तथा इनका विस्तार करना। एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम निर्धनता दूर करने का कार्यक्रम है तथा दूसरा कार्यक्रम काम के बदले अनाज का संशोधित रूप है एवं इसका उद्देश्य देहातों में रोजगार के अवसर बढ़ाना है।

4. कृषिगत भूमि पर सीमा निर्धारण को लागू करना, अतिरिक्त भूमि का वितरण करना भूमि के रिकार्डों को विभिन्न प्रशासनिक व कानूनी अड़चनों व बाधाओं को दूर करके पूरी तरह तैयार करना।

5. खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी की समीक्षा करना तथा उसे प्रभावशाली तरीके से लागू करना।

6. बंधुआ श्रमिकों को फिर से बसाना।

7. अनुसूचित जातियों व जन जातियों के विकास के लिए कार्यक्रम को तेज करना।

8. समस्याग्रस्त गाँवों में पीने के पानी की सप्लाई करना।

9. ग्रामीण परिवारों को रिहायशी प्लाट देना तथा निर्माण-सहायता-कार्यक्रमों का विस्तार करना।

10. गंदी बस्तियों की दशा सुधारना, आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगों के लिए मकान बनाने के कार्यक्रम लागू करना तथा भूमि के मूल्यों में अवांछित वृद्धि को रोकने के उपाय करना।

11. शक्ति-सृजन को अधिकतम करना, विद्युत-प्राधिकरणों व संस्थाओं के कार्य में सुधार करना तथा समस्त गाँवों को बिजली पहुँचाना।

12. वन लगाने के कार्यक्रम में तेजी लाना, सामाजिक व फार्म वानिकी का विस्तार करना और बायो-गैस तथा ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का विकास करना।

13. परिवार नियोजन का जन-आन्दोलन के रूप में ऐच्छिक आधार पर विकास करना।

14. प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं को व्यापक बनाने का प्रयास करना एवं कोढ़, टी. बी. व अंधेपन पर नियन्त्रण स्थापित करना।

15. स्त्रियों व बच्चों के लिए कल्याण-कार्यक्रमों में तेजी लाना, गर्भवती महिलाओं, माताओं व बच्चों के लिए पोषण-कार्यक्रम को आगे बढ़ाना, विशेषतया आदिवासी, पहाड़ी व पिछड़े क्षेत्रों के लिए।

16. आयु-समूह 6-14 में यूनिवर्सल प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करना, विशेषतया लड़कियों के लिए, और साथ में छात्रों व ऐच्छिक एजेन्सियों को प्रौढ़-निरक्षरता दूर करने के कार्यक्रमों में शामिल करना।

17 सार्वजनिक वितरण-प्रणाली का विस्तार करना, इसके लिए उचित मूल्य की दूकानो व दूर-दराज के क्षेत्रो मे मोबाइल दूकानो की व्यवस्था करना और ऐसी दूकानें स्थापित करना जो औद्योगिक श्रमिको, छात्रो के होस्टलो और विद्यार्थियो को पाठय-पुस्तको व कॉपियो को प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कर सकें और देश म सुदृढ उपभोक्ता आन्दोलन का विकास किया जा सके ।

18 *विनियोग की विधियो को उदार करना तथा परियोजनाओ को समय* पर पूरा करने के लिए औद्योगिक नीतियो का सुदृढ करना । हथकरघा, दस्तकारी, लघु व ग्रामीण उद्योगो को विकास की सभी सुविधाएँ देना तथा उनकी टेक्नोलोजी को नवीनतम बनाना ।

19 तस्करों, सग्रहकर्ताओ, जमाखोरो व कर की चोरी करने वालो के खिलाफ कडी कार्यवाही जारी रखना तथा काली मुद्रा पर रोक लगाना ।

20 सार्वजनिक उपक्रमो की कार्य-प्रणाली मे सुधार करके उनकी कार्य-कुशलता व उत्पादन-क्षमता के प्रयोग मे वृद्धि करना तथा आन्तरिक साधनो का सृजन करना ।

इस प्रकार द्वितीय 20-सूत्री कार्यक्रम मे छठी योजना के मुख्य सामाजिक व आर्थिक कार्यक्रम शामिल किये गये थे। इस कार्यक्रम से समाज के कमजोर व पिछडे लोगो की दशा सुधारने व उत्पादकता बढाने मे मदद मिलने की आशा प्रकट की गई थी।

द्वितीय 20 सूत्री कार्यक्रम की आर्थिक नियोजन में भूमिका

जैसा कि पहले कहा जा चुका है द्वितीय 20 सूत्री कार्यक्रम मे कई ऐसे बिन्दु हैं जो छठी पचवर्षीय योजना मे भी शामिल किये गये थे। इसलिए यह कार्यक्रम आर्थिक नियोजन का स्थानापन्न (substitute) नही है, बल्कि उसका सहायक व समर्थक है । फिर प्रश्न उठता है कि इस कार्यक्रम की पृथक से आवश्यकता क्यो पडी? विद्वानो ने इस सम्बन्ध मे कई अन्य प्रश्न भी उठाये हैं, जैसे इस कार्यक्रम से नियोजन की प्रक्रिया पर अनुकूल असर होगा या प्रतिकूल; क्या इस कार्यक्रम का केवल राज-नीतिक उद्देश्य है इत्यादि ।

इन प्रश्नो के उत्तरो के सम्बन्ध म विद्वानों मे काफी मतभेद पाया जाता है। कुछ का विचार है कि देश मे 20 सूत्री कार्यक्रम का अपनाया जाना आर्थिक नियोजन की विफलता का सूचक है। यदि भारत मे आर्थिक नियोजन सफल होता तो अलग से किसी ऐसे *कार्यक्रम की आवश्यकता ही नही पडती । इस कार्यक्रम के आने से* नियोजन पर पर्याप्त ध्यान न दिया जाकर इस कार्यक्रम पर ही अधिक ध्यान दिया जाने लगा है, जिससे वस्तुत नियोजन की प्रक्रिया अपने मूल रूप मे कमजोर होन लगी है ।

इसके विपरीत प्रो. पी. आर. ब्रह्मानन्द का विचार है कि इन बीस सूत्रों या बीस बिन्दुओं से नियोजन को कोई हानि नहीं होगी, बल्कि इस नये कार्यक्रम में उत्पादन बढाने के अधिक बिन्दु है जो पहले वाले बीस सूत्री कार्यक्रम में नहीं थे। अतः इनका विचार है कि प्रधानमन्त्री को प्रति वर्ष, परिस्थितियों के अनुसार, एक संशोधित आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहिए ताकि राज्यों की सरकारों का भी, ध्यान उन नये कार्यक्रमों पर केन्द्रित हो सके। असल में भारत को एक 'रोलिंग प्लान' की जगह एक 'रोलिंग 20-सूत्री कार्यक्रम' की अधिक आवश्यकता है।

अत. यह कहना अनुचित न होगा कि 20 सूत्री कार्यक्रम को लागू करना निर्धन लोगों व समस्त देशवासियों के हित में होगा। लेकिन ठीक से लागू न होने पर ये 20 नारे (twenty slogans) मात्र रह सकते है।

प्रगति—केन्द्र व राज्यों की वार्षिक योजनाओं मे 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम पर काफी धनराशि आवंटित की गई है। 1984-85 के लिए इस कार्यक्रम पर 11,858 करोड रु. के व्यय का प्रावधान किया गया था। (4141 करोड रु. केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत तथा शेष राज्यों की योजनाओं के अन्तर्गत) जो वार्षिक योजना के कुल परिव्यय का लगभग 40% था। 1985-86 की केन्द्रीय योजना मे 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के लिए 4,900 करोड रु. की राशि निर्धारित की गई जो पिछले वर्ष से 18·3% अधिक थी। यह कुल केन्द्रीय योजना की निर्धारित राशि (18,500 करोड रु.) का 26·5% थी। 1986-87 की केन्द्रीय योजना मे 20सूत्री कार्यक्रम पर लगभग 6000 करोड रु की राशि आवंटित की गई जो पिछले वर्ष की तुलना मे एक हजार करोड रु अधिक थी। इससे स्पष्ट होता है कि इस कार्यक्रम को वार्षिक योजना मे काफी ऊँची प्राथमिकता दी गयी है।

इस कार्यक्रम को लागू करने से कई दिशाओं मे प्रगति हुई जैसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, बायो-गैस सयत्रों की स्थापना, आवास-स्थलों (house-sites) की व्यवस्था, अनुसूचित जन जाति के परिवारों का उत्थान, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत गरीबों को लाभ पहुँचाना, पेयजल की व्यवस्था, गन्दी बस्तियों के लोगों की दशा मे सुधार, वृक्षारोपण, अनुसूचित जाति के परिवारों का उत्थान, एकीकृत बाल विकास सेवाएँ, ग्रामीण विद्युतीकरण व पम्प सेटों को शक्ति प्रदान करना।

इनके अलावा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार-कार्यक्रम की प्रगति हुयी है। शेष कार्यक्रमों, जैसे वन्ध्यकरण (sterilisations), उप-केन्द्र स्थापित करने, अतिरिक्त भूमि वितरण करने, निर्माण-कार्य में सहायता प्रदान करने, बन्धुआ श्रम की मुक्ति व पुनर्वास व इ. डब्ल्यू. एस. मकानों की व्यवस्था करने की प्रगति धीमी रही है।

विभिन्न राज्यों मे विभिन्न कार्यक्रमो की प्रगति काफी असमान भी रही है। 1983-84 मे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) की प्रगति आंध्र प्रदेश, गुजरात, केरल, उडीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, मेघालय व पश्चिमी बगाल मे 1982-83 की तुलना मे नीची रही थी। परिवार-नियोजन व भूमि-वितरण के कार्यक्रमो की प्रगति सन्तोषजनक नही रही जो एक चिंता का विषय है।

नवीन अथवा तृतीय 20-सूत्री कार्यक्रम, अगस्त 1986[1]

प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने स्वतन्त्रता दिवस (15 अगस्त, 1986) पर राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए कहा था कि देश के समक्ष शीघ्र सशोधित 20-सूत्री कार्यक्रम पेश किया जायगा। उसी वायदे के अनुरूप 20 अगस्त, 1986 को प्रोग्राम-कार्यान्वयन मन्त्री ने ससद के दोनों सदनो मे यह कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमे निर्धनता-उन्मूलन पर सर्वोच्च ध्यान दिया गया। इसे बीस-सूत्री कार्यक्रम का तृतीय सस्करण कहा जा सकता है। यह सर्वप्रथम 1975 मे तथा दूसरी बार 1980 मे पेश किया गया था। इसे सातवी योजना के उद्देश्यो को ध्यान में रखते हुए पुनर्गठित (restructure) किया गया है।

नये कार्यक्रम के 20 बिन्दु इस प्रकार हैं :

1. ग्रमीण निर्धनता पर प्रहार,
2. वर्षा पर आश्रित खेती के लिए विकास सम्बन्धी नीति,
3. सिचाई के पानी का बेहतर उपयोग,
4. अधिक मात्रा में फसलें
5. भूमि-सुधारों को लागू करना,
6. ग्रामीण श्रमिकों के लिए विशेष कार्यक्रम,
7. स्वच्छ पेय-जल,
8. सबके लिए स्वास्थ्य,
9. दो बच्चों के परिवार का नॉर्म,
10. शिक्षा का विस्तार,
11. अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के साथ न्याय,
12. स्त्रियों के लिए समानता,
13. युवावर्ग के लिए नये अवसर,
14. लोगो के लिए मकानो की व्यवस्था,
15. गन्दी बस्तियों की दशा मे सुधार,
16. वानिकी के सम्बन्ध में नयी नीति,
17. पर्यावरण की रक्षा,

---

1. State Bank of India *Monthly Review*, September, 1986, pp 462–466

18 उपभोक्ता के हितो की रक्षा,

19 गांवो के लिए ऊर्जा, तथा

20. संवेदनशील प्रशासन (जनता की आकाक्षाओ व आशाओ के प्रति)।

विभिन्न बिन्दुओ पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि इनका सीधा सम्बन्ध देश के सामाजिक-आर्थिक विकास से है। इनको क्रियान्वित करने से खेती की पैदावार बढेगी, गांवो मे गरीबी व बेरोजगारी घटेगी तथा लोगो का सामाजिक जीवन सुधरेगा।

नये बीस सूत्री कार्यक्रम मे प्रत्येक सूत्र के अन्तर्गत आवश्यक स्पष्ट दिशा निर्देश भी दिये गये हैं जिनका उल्लेख सविस्तार नीचे किया जाता है। इससे प्रत्येक सूत्र पहले के कार्यक्रमो की तुलना में अधिक स्पष्ट व सुनिश्चित कर दिया गया है ताकि उसको प्राप्त करने में कठिनाई न हो तथा उसके मूल्याकन में भी सुविधा रहे।

प्रत्येक मुख्य बिन्दु के तहत आवश्यक उप-बिन्दु (sub-points) नीचे दिये जाते है :

1 ग्रामीण निर्धनता पर प्रहार—(i) इस बात का प्रयास करना कि निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रम प्रत्येक गाँव मे सभी गरीबो तक पहुँचे, (ii मजदूरी रोजगार-कार्यक्रमो को क्षेत्रीय विकास व मानवीय ससाधन विकास कार्यक्रमो से समन्वित करना तथा राष्ट्रीय व सामुदायिक परिसम्पत्तियो का निर्माण करना जैसे स्कूल के भवन सड़के, तालाब तथा ईधन व चारे के भण्डार, (iii) उत्पादन व उत्पादकता बढाना व ग्रामीण रोजगार में वृद्धि करना, (iv) हथकरघा, दस्तकारी, ग्रामीण व लघु उद्योगो को पनपाना तथा स्वरोजगार के लिए दक्षताओ (skills) में सुधार करना, एव (v) पचायत, सहकारिताओ व स्थानीय सस्थाओ को पुनर्जीवित करना।

2. वर्षा पर आश्रित खेती के लिए विकास सम्बन्धी नीति—(i) नमी की रक्षा के लिए टेक्नोलॉजी मे सुधार करना तथा भूमि व जल-साधनो का बेहतर प्रबन्ध करना (ii) उचित व सुधरे हुए बीजो का विकास व वितरण, (iii) सूखा प्रभावित क्षेत्रो व सूखा सहायता कार्यक्रमो मे आवश्यक परिवर्तन करके सूखे के कुप्रभावो को कम करना।

3. सिंचाई के जल का बेहतर उपयोग—(i) जल-संग्रह क्षेत्रो (catchment areas) का विकास व बेसीन व डेल्टा क्षेत्रो में जल-निकासी (drainage) की व्यवस्था को सुधारना, (ii) कमाण्ड क्षेत्रो में सिंचाई-प्रबन्ध मे सुधार करना, (iii) पानी के जमाव, खारेपन व पानी के व्यर्थ उपयोग को रोकना, (iv) सतह् व भूतल जल के उपयोग में तालमेल बैठाना।

4 अधिक मात्रा मे फसलें—(i) देश के पूर्वी भागो व अन्य कम उपज वाले क्षेत्रो मे चावल के उत्पादन में क्रान्ति लाना, (ii) खाद्य-तेलो में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना, (iii) दालो का उत्पादन बढाना, (iv) फल व सब्जी की खेती को बढाना, (v) कृषि-उपज के आधुनिक सग्रह, प्रोसेसिंग व बिक्री की सुविधाओ को बढाना,

(vi) पशु-पालकों को उत्पादकता बढ़ाने में सहायता देना, तथा (vii) मछली पालन व सामुद्रिक मछली उद्योग का विकास करना।

5. **भूमि-सुधारों को लागू करना**—(i) भूमि-रिकार्ड पूरी तरह तैयार करना, (ii) भूमि पर सीलिंग सम्बन्धी कानूनों को लागू करना, तथा (iii) अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरित करना।

6 **ग्रामीण श्रमिकों के लिए विशेष कार्यक्रम**—(i) कृषि व उद्योग में असंगठित श्रम के लिए न्यूनतम मजदूरी कानून को लागू करना, (ii) बंधुआ श्रम की प्रथा को समाप्त करने के कानूनों को पूरी तरह लागू करना, (iii) बंधुआ श्रम को फिर से बसाने के कार्यक्रमों में ऐच्छिक एजेन्सियों व संगठनों की मदद लेना।

7. **स्वच्छ पेय जल**—(i) सभी गांवों में स्वच्छ व सुरक्षित जल की सुविधा पहुँचाना, (ii) स्थानीय समुदायों को जल-पूर्ति के स्रोतों को अच्छी हालत में बनाये रखने में मदद पहुँचाना तथा (iii) अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए जल-पूर्ति पर विशेष रूप से ध्यान देना।

8. **सबके लिए स्वास्थ्य**—(i) प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा की गुणवत्ता (quality) में सुधार करना, (ii) कोढ़, टी. बी., मलेरिया, गले के रोग, अन्धेपन व अन्य बड़े रोगों से संघर्ष करना, (iii) समस्त शिशुओं व बच्चों को रोगों से मुक्ति दिलाने के उपाय करना, (iv) ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य व सफाई की सुविधाएँ बढ़ाना, विशेषतया स्त्रियों के लिए, तथा (v) अपाहिजों के पुनर्स्थापन के लिए कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान देना।

9. **दो बच्चों के परिवार का नॉर्म**—(i) स्वेच्छा से दो बच्चों का नॉर्म स्वीकार करने के लिए लोगों को प्रेरित करना, (ii) माता-पिताओं में जिम्मेदारी व उत्तरदायित्व की भावना बढ़ाना, (iii) शिशु मृत्यु-दर घटाना, तथा (iv) मातृत्व व शिशु-देखभाल की सुविधाओं का विस्तार करना।

10. **शिक्षा का विस्तार**—(i) प्रारम्भिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाना तथा लड़कियों की शिक्षा पर विशेष बल देना, (ii) सभी स्तरों पर शिक्षा में सुधार लाना (iii) गैर-औपचारिक शिक्षा व कार्यात्मक (functional) साक्षरता कार्यक्रम को प्रोत्साहन देना तथा साथ में दक्षता में वृद्धि करना, (iv) प्रौढ़-साक्षरता-कार्यक्रम का बढ़ावा देना जिसमें छात्र व ऐच्छिक संस्थाएँ भाग लें, तथा (v) राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक व नैतिक मूल्यों पर बल देना ताकि हमारी राष्ट्रीय धरोहर में लोग गर्व महसूस करना सीखें।

11. **अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के साथ न्याय**—(i) इनके लिए बने संवैधानिक प्रावधानों व कानूनों को लागू करना, (ii) इनके लिए आवंटित भूमि पर इनको कब्जा दिलाना, (iii) भूमि-आवंटन कार्यक्रम में नया जीवन डालना,

(iv) शैक्षणिक स्तरो मे सुधार के लिए विशेष कोचिंग प्रोग्राम करना, (v) मेहतरो के गन्दे काम की समाप्ति करना तथा सफाई कर्मचारियो की पुनर्स्थापना के लिए विशेष कार्यक्रम सचालित करना, (vi) विशेष कम्पोनेण्ट कार्यक्रम के लिए पर्याप्त कोषो व उचित निर्देशन की व्यवस्था करना, (vii) इस वर्ग को शेष समाज के साथ जोडने के कार्यक्रम चलाना, तथा (viii) उन जन-जातियो को फिर से बसाना जो अपने निवास-स्थलो से उखड गये हैं।

12, स्त्रियो के लिए असमानता—(i) समाज मे स्त्रियो के स्थान को ऊँचा करना, (ii) स्त्रियो की समस्याओ के प्रति जागरूकता बढाना (iii) स्त्रियो के अधिकारो के बारे मे ग्राम चेतना जागृत करना, (iv) स्त्रियो के प्रशिक्षण व रोजगार के सम्बन्ध मे राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू करना (v) स्त्रियो को सामाजिक-आर्थिक विकास व राष्ट्रीय निर्माण कार्यों मे समानतापूर्वक भाग लेने मे सक्षम करना तथा (vi) दहेज-प्रथा के विरुद्ध जनमत तैयार करना तथा दहेज-विरोधी कानून को प्रभावपूर्ण ढग से लागू करने की व्यवस्था करना।

13 युवावर्ग के लिए नये अवसर—(i) खेल व सास्कृतिक क्रियाओ आदि मे युवावर्ग के लिए अवसर बढाना (ii) शारीरिक क्षमता का विकास करना (iii) युवावर्ग को राष्ट्रीय विकास की परियोजनाओ मे शामिल करना जैसे गगा की सफाई, पर्यावरण-सुरक्षा व विकास तथा ग्राम जनता की शिक्षा के कार्य आदि (iv) प्रतिभाशाली युवा-व्यक्तियो को छाटना व उनकी योग्यता के विकास को प्रोत्साहन देना, (v) राष्ट्रीय एकता, सास्कृतिक मूल्यो धर्म-निरपेक्षता व वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास मे युवावर्ग को शामिल करना, (vi) नेहरू युवा केन्द्रो के जाल का विस्तार करना, (vi) राष्ट्रीय सेवा स्कीम व एन सी सी को सुदृढ करना, तथा (viii) ग्रामीण युवावर्ग के कल्याण के लिए काम करने वाली ऐच्छिक एजेन्सियो को बढावा देना।

14 लोगो के लिए मकान की व्यवस्था—(i) ग्रामीण निर्धनों के लिए रिहायशी मकानो की व्यवस्था करना, (ii) भवन-निर्माण के कार्यक्रमो का विस्तार करना, तथा (iii) अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए भवन-निर्माण पर विशेष बल देना।

15 गन्दी बस्तियो की दशा मे सुधार—(i) गन्दी बस्तियो की वृद्धि को रोकना, (ii) वर्तमान गन्दी बस्तियो मे मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करना, तथा (iii) शहरी क्षेत्रो म नियोजित आवास-निर्माण को प्रोत्साहन देना।

16 वानिकी (forestry) या वन लगाने के सम्बन्ध मे नयी नीति (i) लोगो को शामिल करके अधिक पेड लगाना तथा वनो का विकास करना, (ii) जनजाति के लोगो व स्थानीय समुदायो के लकडी व वन-उपजो पर परम्परागत अधिकारो की रक्षा करना, (iii) व्यर्थ भूमि (wastelands) का उत्पादक उपयोग

करना, तथा (iv) पहाड़ी रेगिस्तानी व तटीय क्षेत्रों में उचित किस्म की वनस्पति उगाना।

17 पर्यावरण की रक्षा—(i) लोगों को पर्यावरण में गिरावट के खतरों के प्रति जागरूक करना, (ii) पर्यावरण-रक्षा के लिए ग्राम समर्थन विकसित करना, (iii) इस बात को पहचानना कि स्थायी विकास के लिए परिवेश (ecology) की रक्षा करना बहुत जरूरी होता है, तथा (iv) परियोजनाओं के लिए स्थान का बुद्धिमत्तापूर्वक चुनाव करना तथा टेक्नोलाजी का भी सही ढग से चुनाव करना।

18. उपभोग के हितों की रक्षा—(i) ग्राम उपभोग की वस्तुओं को गरीबों की पहुँच तक लाना (ii) उपभोक्ता-हित-रक्षा आन्दोलन का निर्माण करना, (iii) वितरण-व्यवस्था को पुनर्गठित करना ताकि सब्सिडी की राशि सर्वाधिक जरूरतमन्द व्यक्तियों तक पहुँच सके एव (iv) सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ करना।

19 गांव के लिए ऊर्जा—(i) गांवों में उत्पादक कार्यों व उपयोगों में विद्युत सप्लाई का विस्तार करना, (ii) ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों जैसे बायो गैस का विकास करना, तथा (iii) ग्रामीण ऊर्जा के लिए एकीकृत क्षेत्र-विशिष्ट प्रोग्रामों को प्रोत्साहन देना।

20 संवेदनशील व प्रभावी प्रशासन—(जनता की आकांक्षाओं व आशाओं के प्रति)—(i) विधियों को सरल बनाना, (ii) अधिकार सौंपना, (iii) लेनादेयता लागू करना (iv) खण्ड से राष्ट्रीय स्तर तक मोनिटरिंग प्रणालियों का विकास करना, (v) सार्वजनिक शिकायतों को शीघ्रतापूर्वक व सहानुभूतिपूर्वक दूर करना।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि नए 20-सूत्री कार्यक्रम में कृषिगत उत्पादन को बढ़ाने ग्रामीण निर्धनता को कम करने, लोगों के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा व पेयजल की सुविधाएँ बढ़ाने, पर्यावरण की रक्षा करने एव प्रशासन को अधिक सक्रिय, संवेदनशील व चुस्त बनाने पर अधिक जोर दिया गया है। प्रत्येक मुख्य बिन्दु के तहत कुछ उप-बिन्दु निश्चित किये गये हैं जो कुल मिलाकर लगभग 90 हो जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न बिन्दुओं को क्रियान्वित करके लोगों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को सुधारने का प्रयास किया जायगा। राज्य सरकारों को 20-सूत्री कार्यक्रम को लागू करने में पूरा सहयोग देने के लिए कहा गया है ताकि इसको सफल बनाया जा सके।

नवीन अथवा तृतीय बीस-सूत्री कार्यक्रम की आलोचना

भारत में बीस-सूत्री कार्यक्रम का सिलसिला 1975 से प्रारम्भ हुआ था जो अगस्त 1986 के नये 20 सूत्रों की घोषणा से तीसरे दौर में प्रवेश कर गया है। कुछ विद्वान तो शुरू से ही इस कार्यक्रम के आलोचक रहे हैं, क्योंकि उनके अनुसार पंचवर्षीय व वार्षिक योजनाओं के होते इसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

इसकी सत्तारूढ पार्टी के लिए 'राजनीतिक आवश्यकता' भले ही हो, अन्यथा योजनाओं के उद्देश्यों व कार्यक्रमों के रहते अलग से बीस या इससे अधिक अथवा कम बिन्दुओं को राष्ट्र के समक्ष रखने का क्या मतलब ? इस प्रकार की विचारधारा वाले व्यक्तियों का मानना है कि बीस-सूत्रों की वजह से मूल पचवर्षीय योजना पर से ध्यान कम हो जाता है, और ये बिन्दु ही विशेषतया राज्य सरकारों के लिए, प्रमुख बन जाते हैं।

इस आलोचना के उत्तर मे सरकारी क्षेत्रों म यह कहा गया है कि बीस-सूत्रों व आर्थिक नियोजन मे कोई परस्पर विरोध नहीं है, बल्कि बीस-सूत्रों को 'योजना का हृदय' कहा जा सकता है। इनमे एक समय विशेष मे देश की प्रमुख बीस समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, तथा उनको हल करने की दिशाएं व कार्यक्रमों की रूपरेखा दी जाती है। आगे चलकर प्राप्त अनुभवों व नयी समस्याओं के आधार पर इनमे आवश्यक फेर-बदल किये जाते हैं और राष्ट्र का ध्यान पुन नये 20 बिन्दुओं पर केन्द्रित किया जाता है। इस प्रकार सरकार ने 'रोलिंग प्लान' का विचार तो नहीं स्वीकार किया, लेकिन रोलिंग 20-बिन्दु' का विचार जाने-अनजाने म अवश्य मान लिया है।

अत, बीस-सूत्री कार्यक्रम मे वस्तुत कोई गम्भीर आपत्तिजनक बात नहीं प्रतीत होती। एक नजर इन बिन्दुओं पर डालें तो पता लगेगा कि सरकार वाकई वर्तमान सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के प्रति सजग व जागरूक है और वह कृषिगत उत्पादन मे वृद्धि करने, विशेषतया चावल, तिलहन व दालो के उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए चिंतित है व इसके लिए प्रयत्नशील भी है। साथ मे वह स्त्रियों व युवावर्ग की समस्याओं के प्रति भी सचेष्ट है। लोगो के स्वास्थ्य, शिक्षा व पेयजल की समस्याओं को हल करना चाहती है। ग्रामीण बेरोजगारी, निर्धनता, भूमि-सुधार, परिवार-नियोजन, रिहायशी मकान गन्दी बस्तियों, महगाई, पर्यावरण-रक्षा व ऊर्जा तथा प्रशासनिक समस्याओं के हल की दिशा मे भी कारगर सफलता प्राप्त करने को आतुर है। ऐसा वह चाहे अपनी 'राजनीतिक छवि को सुधारने के लिए, करे अथवा देश की 'सामाजिक-आर्थिक दशा को सुधारने के लिए' करे—इससे आम जनता के लिए विशेष अन्तर पडने वाला नहीं। क्योंकि मूल प्रश्न तो यह है कि इन समस्याओं के समाधान की दिशा मे कारगार प्रगति होनी चाहिए और गरीबों व जरूरतमन्द लोगों को किसी न किसी तरह राहत व मदद मिलनी चाहिए। अत: प्रमुख प्रश्न विभिन्न समस्याओं को हल करने की दिशा में किये जाने वाले प्रयत्नों व प्राप्त परिणामों का माना जाना चाहिए। इस दृष्टि से कार्यक्रम की समीक्षा आगे दी जाती है :

क्या इस नवीन बीस सूत्री कार्यक्रम में बीस बिन्दुओं का चयन बिल्कुल सही है ?

फिलहाल यह भी मान लें कि 20-सूत्र ही तत्कालिक दृष्टि से 'आदर्श-सूत्र' होते हैं, तो पहला प्रश्न यह उठता है कि नये कार्यक्रम में शामिल बीस सूत्र ही सर्वश्रेष्ठ हैं, अथवा इनसे भी कोई बेहतर चयन हो सकता था। इस सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद होने की गुंजाइश अवश्य है, क्योंकि किसी की नजर में कोई बिन्दु ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो सकता है और किसी की नजर में कोई अन्य बिन्दु विशेष महत्त्वपूर्ण हो सकता है। उदाहरण के लिए, श्री बलराज मेहता का मत है कि नये कार्यक्रम में श्रमिकों के हितों के बारे में कोई आश्वासन नहीं है, और उद्योगों में श्रम की भागीदारी के बारे में कोई जोर नहीं दिया गया है। इस प्रकार नया कार्यक्रम श्रमोन्मुखी (labour-oriented) नहीं है।[1] इस आलोचना का उत्तर यह है कि चाहे इस मद को नये कार्यक्रम में स्थान न दिया गया हो, लेकिन योजना में सरकार की श्रम-नीति में इसको अवश्य स्थान दिया गया है। अतः हम यह नहीं कह सकते कि सरकार श्रम को प्रबन्ध में भागीदार नहीं बनाना चाहती है। पिछले वर्षों में कुछ सार्वजनिक उपक्रमों ने इस सम्बन्ध में प्रयोग भी किए गए हैं तथा भविष्य में उनको आगे बढ़ाया जायगा, चाहे इस मद को बीस सूत्रों में शामिल न किया गया हो।

हमारी मूल कठिनाई है क्रियान्वयन की विफलता

असल बात यह है कि पंचवर्षीय योजना व बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के बावजूद व्यवहार में विभिन्न क्षेत्रों में हमारी उपलब्धियाँ सन्तोषजनक नहीं हैं। जैसे आज भी भूमि सम्बन्धी रिकार्ड पूरी तरह तैयार करने की बात कही जा रही है तथा सीलिंग के कानून क्रियान्वित नहीं हो पाए हैं। अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में आवंटन ठीक से नहीं हो पाया है। बंधुआ मजदूरों को फिर से बसाने की समस्या आज भी विद्यमान है। इनके हितों की रक्षा के लिए मालिकों को सजा देने का प्रश्न है, आदि। उपभोक्ता के हितों की रक्षा की बात की जाती है, फिर भी अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य-सूचकांक जून 1989 में 838 पर पहुँच गया है। यह एक अभूतपूर्व वृद्धि है जिससे उपभोक्ता के लिए मुद्रा की क्रय शक्ति का भारी ह्रास हो रहा है और सरकार पर महँगाई की अतिरिक्त किश्तें देने की झड़ी लगी हुई है। इसका आधार वर्ष 1960 होने से हम कह सकते हैं कि 29 वर्षों में रुपये का मूल्य घट कर 12 पैसे मात्र रह गया है। अतः मुद्रास्फीति की समस्या मुँह बाये खड़ी है। केवल सार्वजनिक वितरण प्रणाली इसका पूर्ण समाधान नहीं दे सकती, हालांकि इसका अपना सीमित योगदान अवश्य होता है।

---

1. बलराज मेहता, नया बीस सूत्री कार्यक्रम बेकार कसरत, राजस्थान पत्रिका, अर्थ-चक्र, 5 सितम्बर, 1986।

इस प्रकार गाँवो मे गरीबी दूर करने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम को लागू करने के सम्बन्ध मे कई खामियाँ पायी गयी हैं जिससे गरीबो तक पूरी सरकारी मदद नही पहुँच पायी है। गरीबो की बजाय गैर-गरीब लोगो (non-poor people) ने भी सरकारी सहायता का लाभ उठा लिया है।

अत: आवश्यकता इस बात की है कि इस नये बीस-सूत्री कार्यक्रम को अधिक जोश-खरोश के साथ लागू किया जाय और इसको अधिक कामयाब बनाया जाय। मिश्रित अर्थव्यवस्था व लोकतान्त्रिक नियोजन मे हमारे सामने कई प्रकार की दिक्कते आती हैं जो अधिनायकशाही तन्त्र मे सम्भवतया नही आती। अत: आगामी वर्षों मे 20 बिन्दुओ को प्राप्त करने की दिशा मे अधिक प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रशासन उद्योगपति, व्यापारी, श्रमिक, ग्राम जनता, युवावर्ग स्त्रियो आदि सभी को एकजुट होकर काम करना होगा। बीस सूत्री कार्यक्रम पचवर्षीय योजना का स्थानापन्न नही है, और न यह हमारी समस्याओ का कोई रामबाण इलाज है। इसमे देश की वर्तमान आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर प्रमुख समस्याओ का चयन करके उनके समाधान पर विशेष बल देने की बात कही गयी है, जो अपने आप मे कोई अनुचित नही है। राज्य सरकारो का ध्यान विशेष रूप से नये कार्यक्रम पर केन्द्रित किया जा रहा है ताकि वे योजनाओ के जाल-जजाल व भूल-भुलैया मे न खोकर कुछ प्रमुख मुद्दो को अपनी दृष्टि से ओझल न होने दे। इसी दृष्टि से इन नये बीस बिन्दुओ की उपादेयता व सार्थकता देखी जानी चाहिए। **इन्हे योजनाओ का हृदय व साराश माना जाना चाहिए, उसका स्थानापन्न नहीं।** इसके अलावा नये कार्यक्रम के बिन्दुओ को केन्द्र-बिन्दु ही माना जाना चाहिए। देश की विशालता व अनेक समस्याओ को देखते हुए 20 क्या 120 बिन्दु भी दिये जा सकते हैं। वैसे भी बीस बिन्दुओ के नीचे लगभग 90 उप-बिन्दु तो दिये ही गये हैं, जिनमे से प्रत्येक को क्रियान्वित करने से ही मुख्य बीस बिन्दुओ को प्राप्त करने की दिशा मे आवश्यक प्रगति हो सकेगी। अत बीस बिन्दुओ की व्यूह-रचना या रणनीति (strategy of 20 points) भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इससे 'एलरजिक' होने की आवश्यकता नही। इसका विरोध करने की हठधर्मी नही की जानी चाहिए।

प्रश्न

1 सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

(i) अगस्त 1986 का 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम।

2. 'बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम आर्थिक नियोजन मे साधक नही बाधक है।' समीक्षा कीजिए।

3. आठवी पचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य मे आप भारत मे सर्वाधिक जनहित मे किन 20 बिन्दुओ पर जोर देना चाहेगे। सुझाव दीजिए।

सकेत—(i) साफ पेयजल की सप्लाई, (ii) चिकित्सा की पर्याप्त सुविधा, (iii) खाद्यान्नो के उत्पादन मे वृद्धि, (iv) उत्पादक रोजगार देना (v) परिवार नियोजन म एक बच्चे के नॉर्म' पर बल, (vi) सहकारी सस्थाओ को सबल बनाना (vii) स्थानीय साधनो का उपयोग करके उद्योगो का शीघ्र व पर्याप्त विस्तार करना, (viii) ईधन की सप्लाई बढाना, (ix) निर्माण-कार्य (Construction activity) के मार्ग मे आने वाली सभी बाधाओ को शीघ्र दूर करना, (x) स्थानीय सस्थाओ को जनता की कठिनाइयो के प्रति पूरी सवदनशीलता दिखाना, (xi) सार्वजनिक वितरण प्रणाली को कार्यकुशल बनाना, (xii) प्रत्येक स्तर पर प्रशासन को चुस्त करना व कठोर बनाना ताकि वह परिणामोन्मुख बन सके, (xiii) समाज कटको को शीघ्र व कडी सजा देने का प्रावधान (xiv) कार्यकुशलता के लिए पुरस्कार व अकार्यकुशलता के लिए सजा, (xv) आम जनता के काम की वस्तुओ के उत्पादन पर जोर, (xvi) श्रमिको की दक्षता-वृद्धि के कार्यक्रमो पर जोर ताकि उनकी आमदनी बढे (xvii) अनुत्पादक व्यय मे कटौती (प्रत्येक स्तर पर) (xviii) मुद्रा की पूर्ति मे नियोजित वृद्धि (विशेषतया वास्तविक आय मे वृद्धि के अनुरूप), (xix) गाव व शहर मे सफाई की नई व्यवस्था ताकि गदगी दूर करने मे प्रत्येक नागरिक का सहयोग (xx) प्रत्येक स्तर पर समस्याओ के समाधान के लिए खुली बहस व लोकतान्त्रिक चिन्तन व चेष्टा का विस्तार। इन सुझावों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

23

सातवीं पंचवर्षीय योजना, 1985-90 तथा सरकार की नयी आर्थिक नीति

(Seventh Five Year Plan 1985 90 and New Economic Policy of the Government)

योजना आयोग ने सातवी पचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण प्रपत्र (Approach Paper) जुलाई 1985 मे प्रकाशित किया था। बाद मे अक्टूबर 1985 मे योजना का प्रारूप दो खण्डो मे प्रकाशित किया गया। खण्ड I मे योजना के परिप्रेक्ष्य उद्देश्यो, व्यूहरचना, राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न चलराशियो की मात्राओ अथवा राष्ट्रीय व समष्टिगत-आयामो (macro-dimensions) व साधनो की चर्चा की गई एव खण्ड II मे विकास के विभिन्न क्षेत्रो के कार्यक्रमो का उल्लेख किया गया। खण्ड I के प्राक्कथन मे प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी तथा उसकी भूमिका मे योजना प्रयोग के उपाध्यक्ष ने सातवी पचवर्षीय योजना के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रस्तुत किये थे।

यहाँ पर सातवी योजना के विभिन्न पहलुओ व प्रगति का उल्लेख किया जायगा। अध्याय के अन्तिम भाग मे सरकार की नयी आर्थिक नीति (New Economic Policy) का भी विश्लेषण किया जायगा।

उद्देश्य
(Objectives)

सातवी योजना के दृष्टिकोण-प्रपत्र मे इसके उद्देश्य स्पष्ट किये गये थे। भोजन, काम व उत्पादकता (food, work and productivity) इसके तीन मुख्य बिन्दु निर्धारित किये गये थ। योजना मे खाद्यान्नो का उत्पादन बढाने, रोजगार के सवसर बढाने व उत्पादकता मे वृद्धि करने पर जोर दिया गया, क्योकि विकास की वर्तमान स्थिति मे इन अल्पकालीन उद्देश्यो को प्राप्त करके ही दीर्घकालीन लक्ष्यो की तरफ बढाना सम्भव हो सकता था।

योजना में कहा गया कि लोगों को उत्पादक रोजगार देने से वे अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे तथा आत्म-विश्वास व आत्म-सम्मान से काम कर पायेंगे। योजना में गैर-स्फीतिकारी वृद्धि तभी हो सकती है जब कृषिगत उत्पादन, विशेषतया खाद्यान्नों का उत्पादन, तेजी से बढ़ाया जाय। इसके लिए कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों में तथा चावल, मोटे अनाज, तिलहन व दालों जैसी फसलों में उत्पादकता बढ़ानी होगी। औद्योगिक विकास की दर ऊँची रखने के लिए आधुनिक व टेक्नोलोजी को उन्नत करने पर जोर दिया गया। विकास के विभिन्न क्षेत्रों जैसे पावर, कोयला, परिवहन तथा संचार आदि में विनियोगों से पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त करने पर जोर दिया गया।

सातवीं योजना में विकास की व्यूहरचना या रणनीति
(Strategy of Development in the Seventh Plan)

सातवीं योजना की व्यूहरचना में निम्न बातों पर ध्यान आकर्षित किया गया—

1 उत्पादक रोजगार—सातवीं योजना की विकास-नीति में प्रमुख तत्व उत्पादक रोजगार का सृजन करना रखा गया। इसके लिए फसल गहनता (Cropping intensity) में वृद्धि करने का महत्व स्वीकार किया गया जो सिंचाई की सुविधाओं के विकास, कृषि में नई टेक्नोलोजी का उपयोग, (विशेषतया कम उपज वाले क्षेत्रों व लघु कृषकों के लिए) करने से सम्भव होगी तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करने एवं सड़क, मकान आदि का निर्माण करने में श्रम-गहन विधियों का उपयोग करने से रोजगार के अवसर बढ़ाने पर जोर दिया गया। नियोजकों का विचार था कि इससे निर्धनता का दबाव कम होगा और स्वरोजगार के अवसर बढ़ेंगे।

2 आम उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि—निर्धन-वर्ग के पास क्रय-शक्ति बढ़ने से उपभोग-पदार्थों की माँग बढ़ेगी। इसलिए मुद्रास्फीति से बचने के लिए खाद्यान्नों खाद्य-तेलों चीनी, वस्त्र ईंधन व मकान आदि की सुविधाओं का विस्तार करने पर बल दिया गया। खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ इनकी खरीद बफर स्टॉक बनाने व सार्वजनिक वितरण की उचित व्यवस्था करने की आवश्यकता भी स्वीकार की गयी।

3 पूँजी का अधिक कार्यकुशल उपयोग करना—भारत में भूतकाल में किये गये विनियोगों से उचित प्रतिफल प्राप्त किये जाने चाहिएँ। पूँजी का अधिक कार्यकुशल उपयोग करने से ही विकास की दर ऊँची की जा सकती है। इसके लिए सिंचाई, विद्युत, परिवहन व उद्योग में क्षमता का अधिक उपयोग करने पर जोर दिया गया। नई क्षमता का विकास करने के स्थान पर वर्तमान क्षमता के बेहतर उपयोग पर अधिक ध्यान देने का महत्व सर्वोपरि माना गया।

4 निर्यात-संवर्द्धन पर बल—विदेशी भुगतानों की कठिनाई पर काबू पाने के लिए निर्यातों को बढ़ाने के सुझाव दिये गये। इसके लिए लागत कम करने, किस्म सुधारने तथा उत्पादन का कार्यकुशल पैमाना अपनाने पर जोर दिया गया।

5 मानवीय साधनों के विकास पर जोर—सातवीं योजना में शिक्षा को विकास की जरूरतों से जोड़ने, लोगों के स्वास्थ्य में सुधार करने एवं अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति स्त्रियों व अन्य पिछड़े लोगों को विकास की प्रक्रिया में साझेदार बनाने की नीति अपनायी गयी।

6 औद्योगिक विकास की दर को ऊंचा करने के लिए लघु उद्योगों की टेक्नोलोजी को सुधारने पर बल दिया गया। विज्ञान व टेक्नोलोजी का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ाने के कार्यक्रम चालू किये गये।

7 विविध—सातवीं योजना में हरित क्रांति का विस्तार देश के पूर्वी भागों में चावल की उत्पादकता बढ़ाने व तिलहन व दालों की पैदावार बढ़ाने व सूखी खेती तथा वर्षा पर आश्रित क्षेत्रों में बढ़ाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम रखे गये। पर्यावरण की सुरक्षा पर अधिक ध्यान देने योजना के विकेन्द्रीकरण व नियोजन के प्रशासन में ऐच्छिक एजेंसियों का सहयोग लेने तथा पेयजल की सुविधा बढ़ाने, बन्धुआ श्रम की मुक्ति व पुनर्वास ग्रामीण विकास व निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रमों को अधिक कारगर बनाने पर बल दिया गया। इस प्रकार सातवीं योजना में निर्धनता बेरोजगारी व प्रादेशिक असन्तुलनों को दूर करने पर अधिक जोर दिया गया।

विकास की दर तथा सार्वजनिक क्षेत्र में प्रस्तावित परिव्यय का आवंटन
(Growth Rate and Allocation of Proposed Public Sector Outlay)

सातवीं योजना में विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य 5% रखा गया। यह पिछले दशक (1973-74 से 1984-85 तक) में प्राप्त विकास की औसत दर के अनुरूप है। लेकिन हमें यह स्मरण रखना होगा कि सातवीं योजना का आधार-वर्ष (1984-85) एक सामान्य वर्ष रहा था, जबकि छठी योजना का आधार-वर्ष (1979-80) सामान्य से नीचा था। इसलिए सातवीं योजना में विकास की दर के लक्ष्य को प्राप्त करना अपेक्षाकृत अधिक कठिन माना गया।

योजना में विभिन्न क्षेत्रों में विकास की दर के लक्ष्य इस प्रकार रखे गये—

	सकल उत्पत्ति के मूल्य के आधार पर (on the basis of value of gross output) (प्रतिशत में)
कृषि	4
विनिर्माण (manufacturing)	8
विद्युत, गैस व जल-पूर्ति	12
परिवहन सेवाएं	8

इस प्रकार सातवीं योजना मे उद्योग व इन्फ्रास्ट्रक्चर के विकास की गति को तेज करने पर जोर दिया गया। यह आशा की गई कि योजना के अन्त तक कृषि, उद्योग व सेवा-क्षेत्रों मे प्रत्येक का अंश राष्ट्रीय आय मे 1/3 हो जायगा।

सातवी योजना मे कुल विनियोग का लक्ष्य 3,22,366 करोड रु रखा गया जिसके 94% की व्यवस्था घरेलू साधनो से की जायेगी। कुल विनियोग मे सार्वजनिक विनियोग का अंश 48% तथा निजी विनियोग का 52% अंश रखा गया। योजना-काल मे बचत की दर के 23·3% से बढकर 24 5% तथा विनियोग की दर के 24 5% से बढकर 25·9% होने का अनुमान प्रस्तुत किया गया।

सातवी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे परिव्यय की राशि (जिसमे चालू विकास व्यय भी शामिल है) 1,80,000 करोड रु निर्धारित की गई। इसमे विनियोग का अंश 1,54,218 करोड रु. तथा चालू व्यय 25,782 करोड रुपये रखा गया।

प्रस्तावित योजना परिव्यय मे केन्द्र का हिस्सा 95,534 करोड रु, राज्यो का 80,698 करोड रु. तथा सघीय क्षेत्रो का 3,768 करोड रु रखा गया। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र के प्रस्तावित परिव्यय मे केन्द्र का अंश राज्यो व सघीय प्रदेशों के मिले जुले अंश से अधिक रखा गया।

सार्वजनिक क्षेत्र के परिव्यय का विकास की विभिन्न मदों पर आवटन

विकास के शीर्षक		(निकटतम) (करोड रु.)	प्रतिशत
(I)	कृषि	10,574	5 9
(II)	ग्रामीण विकास	9,074	5·0
(III)	विशिष्ट क्षेत्रीय कार्यक्रम	3,145	1 8
(IV)	सिचाई व बाढ नियन्त्रण	16,979	9·4
(V)	ऊर्जा	54,821	30·4
(VI)	उद्योग व खनन	22,461	12·5
(VII)	परिवहन	22,971	12 8
(VIII)	सचार, सूचना व प्रसारण	6,472	3·6
(IX)	विज्ञान व टैक्नोलोजी	2,466	1·4
(X)	सामाजिक सेवाएँ	29,350	16·3
(XI)	अन्य	1,687	0 9
	कुल योग (लगभग)	1,80,000	100·0

तालिका से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक आवंटन ऊर्जा के पक्ष में (30·4%) किया गया है। कृषि, ग्रामीण विकास विशिष्ट क्षेत्रीय कार्यक्रम व सिंचाई को मिलाकर (I से IV तक) लगभग 22% तथा सामाजिक सेवाओं पर 16·3% आवंटन किया गया है। उद्योग तथा परिवहन में से प्रत्येक के लिए प्रस्तावित व्यय का 1/8 अंश रखा गया है। इस प्रकार सातवीं योजना की प्राथमिकताओं में ऊर्जा, कृषि व ग्रामीण विकास तथा सामाजिक सेवाओं के माध्यम से मानवीय समाधनों के विकास की समुचित व्यवस्था करने पर अधिक बल दिया गया।

सार्वजनिक विनियोग के निर्धारण में नई क्षमता के विकास से ज्यादा ध्यान चालू क्षमता के रख-रखाव व आधुनिकीकरण पर दिया गया ताकि उत्पत्ति में शीघ्र वृद्धि की जा सके। लेकिन यह जैसे-जैसे योजना आगे बढ़ेगी वैसे-वैसे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार विनियोगों में आवश्यक हेर-फेर किया जायगा। सम्भव है पावर, कोयले व रेल्वे में विनियोग नई परियोजनाओं में आगे चलकर और बढ़ाने पड़े।

सातवीं योजना में कुल प्रस्तावित विनियोग की राशि (3,22,366 करोड़ रु.) का आवंटन इस प्रकार किया गया कृषि, सिंचाई व सहायक क्रियाओं का अंश 19·1%, खनन व विनिर्माण का 32·5%, विद्युत, परिवहन व संचार का 24·2% तथा सेवाओं का 24·2% रखा गया।

1984-85 के भावों पर आयातों में वार्षिक वृद्धि दर 5·8% तथा निर्यातों में 6·8% निर्धारित की गई। अदृश्य मदों की प्राप्तियों सहित सातवीं योजना में चालू खाते में 20 हजार करोड़ रु. का घाटा रहने का अनुमान लगाया गया जिसकी पूर्ति के लिए विदेशों से सहायता व कर्ज लेने की आवश्यकता स्वीकार की गयी।

सातवीं योजना में निर्धनता व बेरोजगारी का प्रभाव—

1. **निर्धनता पर प्रभाव (Impact on Poverty)**—योजना आयोग ने सातवीं योजना की अवधि में निर्धनता-उन्मूलन के सम्बन्ध में निम्न लक्ष्य रखे—

वर्ष	निर्धनता-अनुपात (प्रतिशत में)			निर्धनों की संख्या (करोड़ों में)		
	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल
1984–85	39·9	27·7	36·9	22·2	5·1	27·3
1989–90	28·2	19·3	25·8	16·9	4·2	21·1

सूखे क्षेत्रों से प्राप्त किया जायगा। देश के पूर्वी व दक्षिणी भागों के चावल पैदा करने वाले क्षेत्रों मे उत्पादकता बढाने पर जोर दिया गया।

प्रमुख फसलों मे उत्पादन के लक्ष्य इस प्रकार रखे गये—

1984–85 (वास्तविक स्तर)		1989–90 (लक्ष्य)
(1) समस्त खाद्यान्न (मि. टन)	150	178–183
(2) तिलहन (,,)	13	18
(3) गन्ना (,)	180	217
(4) कपास (मि गाठे) (प्रत्येक 170 किलो)	7 5	9·5
(5) जूट व मेस्टा (मि गाठें) (प्रत्येक 180 (किलो)	, 5	9·5

इस प्रकार खाद्यान्नो के उत्पादन मे वार्षिक वृद्धि-दर $3\frac{1}{2}$ से 4% रखी गयी। योजना मे सकल कृषित क्षेत्रफल 18 करोड हैक्टेयर से बढाकर 19 करोड हैक्टेयर करने तथा 1·3 करोड हैक्टयर भूमि मे अतिरिक्त सिंचाई का विस्तार करने पर जोर दिया गया। उर्वरकों का उपभोग 84 लाख टन से बढकर 1·35 करोड टन से 1·4 करोड टन के बीच हो जायगा। देश के पूर्वी भाग मे चावल का उत्पादन बढाने व सूखी खेती के क्षेत्र मे उत्पादन बढाने पर जोर दिया गया। तिलहन व दालों का उत्पादन बढाने पर अधिक बल दिया गया ताकि योजना के अन्त में चावल के आधे भाग मे सिंचाई होने लग जाय जिससे चावल का उत्पादन 6 करोड टन से बढकर $7\frac{1}{2}$ करोड टन हो सके तथा गेहूँ के 80% से अधिक भाग पर सिंचाई होने लग जाए।

(ii) उद्योग—सातवी योजना मे औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 8% रखी गयी। खनन व विनिर्माण के लिए यह 8·3% निर्धारित की गयी। योजना मे इन्फ्रास्ट्रक्चर के विकास, आधुनिकीकरण, टेक्नोलोजी के उत्थान, उत्पादकता मे सुधार, लागत मे कमी, नई वस्तुओं के समावेश व *चुने हुये उद्योगों मे तीव्र विकास* पर जोर दिया गया।

औद्योगिक विकास की वार्षिक दर को बढाने के लिए औद्योगिक, विदेशी व्यापार व राजकोषीय नीतियों मे आवश्यक परिवर्तन किये गये। इनको अधिक उदार बनाया गया तथा अनावश्यक नियन्त्रण कम किये गये। पावर के विकास की वार्षिक दर 12 6% करने का लक्ष्य रखा गया। जबकि छठी योजना की उपलब्धि 7 8% वार्षिक रही थी।

चुने हुए उद्योगों मे उत्पादन के लक्ष्य

उद्योग का नाम	1984–85	1989–90
(1) कोयला (मिलियन टन)	147·4	226
(2) क्रूड तेल (,, ,,)	29	34·5
(3) चीनी (,, ,,)	6·2	10·2
(4) वस्त्र (मिल व विकेन्द्रित) (अरब मीटर)	12	14·5
(5) नाइट्रोजन-उर्वरक (मि. टन)	3·9	6·6
(6) सीमेंट (,, ,,)	30	49
(7) इस्पात (मुख्य + मिनी) (,, ,,)	8·8	12·65
(8) विद्युत-सृजन (अरब किलोवाट घण्टे)	167	295·4
(9) इलेक्ट्रोनिक्स (करोड रु.)	2,090	10,860

इस प्रकार विभिन्न औद्योगिक वस्तुओ मे उत्पादन के ऊँचे लक्ष्य निर्धारित किये गये। सातवी योजना मे इलेक्ट्रोनिक्स के उत्पादन-मूल्य को 5 गुना करने का लक्ष्य काफी आकर्षक माना जा सकता है। क्रूड तेल का उत्पादन 2·9 करोड टन से बढाकर 3·4 करोड टन करने का लक्ष्य रखा गया। सातवी योजना मे हर सम्भव उपाय से औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक दर को ऊँचा करने पर जोर दिया गया।

(iii) इन्फ्रास्ट्रक्चर—योजना मे पावर सप्लाई व परिवहन के विकास पर विशेष रूप से ध्यान देने पर जोर दिया गया ताकि कृषि व उद्योगो का विकास अधिक तेजी से हो सके। विद्युत के विकास की वार्षिक दर 12·2% रखी गई ताकि 1989–90 तक 22,245 मेगावाट अतिरिक्त क्षमता उत्पन्न की जा सके। रेल्वे द्वारा माल ढोने की क्षमता को 26·3 करोड टन से बढाकर 34 करोड टन करने का लक्ष्य रखा गया। बडे बन्दरगाह योजना के अन्त मे 14·7 करोड टन माल ढोने लगेंगे जो 1984–85 मे 10·7 करोड टन माल ढोने की स्थिति मे थे। एयर इण्डिया के यात्री ट्रैफिक मे 4% वार्षिक की वृद्धि तथा इण्डिया एयरलाइन्स के लिए 8% आकी गयी।

(iv) शिक्षा, स्वास्थ्य, जल-पूर्ति आदि—यह कहा गया कि 1989–90 तक 6–14 वर्ष की आयु के 92% लोग प्रारम्भिक शिक्षा पाने लगेंगे। शिक्षा मे व्यवसायीकरण पर बल दिया गया। मोडल स्कूलो की स्थापना करने तथा उच्च शिक्षा व टेक्नीकल शिक्षा की गुणवत्ता मे सुधार करने, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की सुविधा बढाने तथा योजना के अन्त तक 42% दम्पत्तियो द्वारा परिवार नियोजन के सुरक्षात्मक उपाय काम मे लेने के लक्ष्य निर्धारित किये गये। 1981–91 के दशक

देश की सम्पूर्ण जनता को पर्याप्त पेयजल की सुविधाएं उपलब्ध करने का लक्ष्य रखा गया।

(v) विविध—सातवी योजना मे 1 18 लाख गावो का विद्युतीकरण व 23 9 लाख पम्प सेटो को बिजली से चलाने के लक्ष्य रखे गये। गावो मे बिना धुए के नये चूल्हे लगान पर जोर दिया गया। प्रादेशिक ग्रसमानताग्रो का दूर करने पर ग्रधिक ध्यान देने तथा प्रारम्भिक शिक्षा कृषि उद्योग साख ग्रादि के विकास मे पिछडे क्षेत्रो का प्राथमिकता देने की नीति घोषित की गयी।

इस प्रकार सातवी योजना विकास, ग्राधुनिकीकरण ग्रात्म-निर्भरता व सामाजिक न्याय की दिशा मे एक महत्वपूर्ण प्रयास मानी गयी।

सातवीं योजना की वित्तीय व्यवस्था

सातवी योजना की वित्तीय व्यवस्था के लिए विभिन्न स्रोतो से प्राप्त प्रस्तावित राशि के ग्रनुमान निम्न तालिका मे दिये गये हैं—

	(करोड रु मे)	कुल का प्रतिशत
1 1984-85 की कर की दरो पर चालू राजस्व से बकाया राशि	(–) 5249	(–) 2 9
2 सार्वजनिक उपक्रमो से योगदान	35485	19·7
3 बाजार ऋण (शुद्ध)	30562	17·0
4 ग्रल्प बचतें	17916	10 0
5 राज्य प्रोविडेन्ट फण्ड	7327	4 1
6 वित्तीय सस्थाग्रो से ग्रवधि ऋण	4639	2·6
7 विविध पूंजीगत प्राप्तिया (शुद्ध)	12618	7 0
8 ग्रतिरिक्त साधन-सग्रह	44702	24·8
9. विदेशो से पूंजी का शुद्ध ग्रागम	18000	10 0
10 घाटे की वित्त व्यवस्था	14000	7 8
11. समग्र साधन (लगभग)	1,80,000	100 0

तालिका से स्पष्ट होता है कि सातवी योजना मे 10% साधन विदेशो से उधार लेकर प्राप्त करने के लक्ष्य रखे गये। इस प्रकार 90% साधन घरेलू रखे गये। यह कहा गया कि 14 करोड हजार रुपये घाटे की वित्त व्यवस्था के रूप मे प्रयुक्त

किये जायेंगे जो सार्वजनिक क्षेत्र के कुल व्यय का 7 8% होगा। अतिरिक्त स धन-संग्रह से 44702 करोड रु जुटाने के लक्ष्य रखे गये जिनमे केन्द्र का अंश 22490 करोड रु व शेष राज्यो का होगा। अतिरिक्त साधन-संग्रह से लगभग 1/4 वित्तीय साधन जुटाने का लक्ष्य रखा गया। इस प्रकार केन्द्र व राज्यो दोनो को अतिरिक्त साधन-संग्रह के लिए कर व करेतर साधनों का प्रयोग करना होगा। राज्यो को राजकीय उपक्रमों के घाटे कम करने होगे। सार्वजनिक उपक्रमो का योगदान 1/5 रखा गया।

बाजार ऋणो से 17% राशि प्राप्त करने का प्रावधान रखा गया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, योजनाकाल म बचत की दर 23 3% से 24 5% व विनियोग की दर 24 5% से 25 9% (GDP का) करने क लक्ष्य निर्धारित किये गये। बचत व विनियोग की दरो की ये वृद्धिया साधारण है। इनको प्राप्त किया जा सकता है। योजना की वित्तीय व्यवस्था जोखिमपूर्ण नही है। आशा की गई कि योजनावधि मे करों का सकल घरेलू उत्पत्ति (GDP) से अनुपात 2 प्रतिशत बिन्दु बढ जायगा।

सब्सिडी व गैर-योजना व्यय को नियन्त्रित रखने पर जोर दिया गया।

योजना आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष डॉ मनमोहन सिंह ने यह मत प्रकट किया था कि सातवी योजना दीर्घकालीन व्यूहरचना के एक ऐसे दायरे मे बनायी गयी है जिसके अनुसार 2 000 ईस्वी तक भारत से निर्धनता व निरक्षरता मिटाना देश म लगभग पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना तथा लोगो की रोटी कपडा व मकान तथा स्वास्थ्य की मूलभूत जरूरतो को पूरा करना सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार सातवी योजना मे भविष्य के प्रति काफी आशावादी दृष्टिकोण अपनाया गया।

सातवीं योजना की आलोचनात्मक समीक्षा

विद्वानो ने सातवी योजना की व्यूहरचना, विकास व उत्पादन के लक्ष्यो तथा वित्तीय व्यवस्था पर अपने विचार प्रकट किये है।

इस सम्बन्ध मे निम्नांकित विचार प्रस्तुत किये जा सकते है—

आशाजनक दृष्टिकोण—सातवी योजना मे छठी योजना के विभिन्न निर्धनता-उन्मूलन व रोजगार संवर्द्धन कार्यक्रमो को आगे बढाया जायगा ताकि निर्धनता व बेरोजगारी की समस्याओ को हल करने मे मदद मिल सके। इन समस्याओ के समाधान के सम्बन्ध मे सातवीं योजना मे काफी आशावादी दृष्टिकोण अपनाया गया *जिससे ऐसा लगता है कि यदि उचित नीतियो व कार्यक्रमो को सफल बनाया जाय* तो 2000 ईस्वी तक देश से निर्धनता व बेरोजगारी को मिटाया जा सकता है। यह राष्ट्र के नैतिक बल व आत्म-विश्वास को जगाने व बढाने की दृष्टि से काफी उत्साहवर्द्धक बात है और इस दृष्टि से सातवीं योजना का स्वागत किया गया है।

अर्थशास्त्रियों ने सातवीं पचवर्षीय योजना के विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति म सदेह व्यक्त किये थे। उन्होंने योजना के प्रारम्भ मे कहा था कि विकास की वार्षिक दर 5% प्राप्त करना सुगम नही होगा। निर्धनता व बेरोजगारी दूर करने के सम्ब ध म निर्धारित लक्ष्यो के बारे मे भी सदेह प्रगट किये गये थे। कुछ विद्वानों का मत था कि योजना के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन जुटाना कठिन होगा जिससे घाट की वित्त व्यवस्था लक्ष्य से अधिक करनी होगी और वह मुद्रास्फीति को उत्पन्न करेगी।

विदेशी भुगतान की स्थिति के भी बिगडने की आशकाएँ प्रगट की गयी थी क्योकि छठी योजना मे अत्यधिक मात्रा मे व्यापार के घाटे के कारण इस दिशा म तनाव उत्पन्न हो गये थे।

इस प्रकार सातवी पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ मे इसम निर्धारित विकास व उत्पादन के लक्ष्यो को लेकर काफी समालोचना की गई थी। लेकिन सरकार ने योजना का क्रियान्वयन चालू कर दिया और अपने लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए देश की आर्थिक नीति मे भी कुछ परिवर्तन किये जिनका विवरण नीचे दिया जाता है।

सरकार की नई आर्थिक नीति
(New Economic Policy of the Government)

नियोजन के प्रारम्भ से भारत की आर्थिक नीति का आधार मिश्रित अर्थ-व्यवस्था' रहा है जिसमे सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र दोनो को विकास का समान अवसर दिया गया है। पिछले कई वर्षों से औद्योगिक नीति को उदार बनाया गया है ताकि औद्योगिक विकास की दर तेज की जा सके। लेकिन राजीव सरकार ने जनवरी 1985 मे सत्ता मे आने के बाद आर्थिक नीति में परिवर्तन की रफ्तार तेज कर दी जिससे आर्थिक नीति एक व्यापक चर्चा का विषय बन गई। प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी भारत को 21 वी सदी मे प्रवेश दिलाने के लिए औद्योगिक दृष्टि से एक विकसित व मजबूत राष्ट्र देखना चाहते हैं।

सरकार की नई आर्थिक नीति में आधुनिकीकरण टेक्नोलोजी के उत्थान बडे पैमाने की किफायतो नये उद्योगो के विकास सार्वजनिक उपक्रमो की कार्य-कुशलता में सुधार आदि पर जोर दिया गया है ताकि लागत कम की जा सके व माल की किस्म में सुधार करके देश-विदेश मे बिक्री बढायी जा सके। इसम आन्तरिक प्रतिस्पर्धा व बाह्य प्रतिस्पर्धा दोनो को बढा कर अर्थव्यवस्था को प्रगति-शील बनाने पर बल दिया गया है। इन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए यह आव-श्यक समझा गया है कि आर्थिक नीति को उदार बनाया जाय, बाजार की शक्तियो व निजी क्षेत्र को काम करने का अधिक अवसर दिया जाय एव विभिन्न क्षेत्रो मे चल आ रहे आर्थिक नियन्त्रणो की समीक्षा की जाय और उनको आवश्यक व उत्पादन-विरोधी पाये जाने पर हटाने की व्यवस्था की जाय अथवा आवश्यकतानुसार

परिवर्तित किया जाय। इस प्रकार उपर्युक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर सरकार ने औद्योगिक लाइसेन्स नीति, विदेशी व्यापार नीति व राजकोषीय-नीति में संशोधन किये ह तार्कि उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि की जा सके। इन पर नीचे क्रमशः प्रकाश डाला जाता है, हालांकि इनका यथास्थान विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। यहाँ दीर्घकालीन राजकोषीय नीति (Long-term Fiscal policy) का भी परिचय दिया जाता है।

1 औद्योगिक नीति व लाइसेंस व्यवस्था मे परिवर्तन—सरकार ने मार्च 1985 मे 1985-86 के सघीय बजट में 25 उद्योगो को लाइसेंस लेने से मुक्त कर दिया MRTP के अन्तर्गत बडे औद्योगिक घरानो की परिसम्पत्तियो की सीमा 20 करोड रु से बढाकर 100 करोड रु कर दी (जिससे कई कम्पनियाँ MRTP अधिनियम से मुक्त हो गई), लघु उद्योगो व सहायक औद्योगिक इकाइयो के लिए प्लान्ट व मशीनरी में विनियोग की सीमा बढाकर क्रमश 35 लाख रुपये व 45 लाख रुपय कर दी गई ताकि अधिक इकाइयाँ उपलब्ध सुविधाओ का लाभ उठा सकें व टेक्नोलोजी को उन्नत कर सकें।

मई 1985 में 27 उद्योगो को MRTP अधिनियम की धारा 21 व 22 से मुक्त कर दिया गया तथा दिसम्बर 1985 मे इनमें से 22 उद्योगों में MRTP व FERA कम्पनियो के लिए लाइसेन्स-मुक्ति की सुविधा बढा दी गई। अब तक कुल 40 उद्योग समूहो मे ब्रोड बेंडिग की सुविधा दी गई है ताकि एक उद्योग अपने लाइसेंस के दायरे मे उत्पादन करते समय माँग के अनुसार वस्तु की किस्म को बदल सकें जैसे लोहिया मशीन्स को 150 cc का स्कूटर बनाने की इजाजत दे दी गई जो पहले 100 cc के लिए थी। दिसम्बर 1985 मे ही सरकार ने परिशिष्ट I के 30 उद्योगो की नई सूची प्रकाशित की है जिसके अनुसार MRTP व FERA कम्पनियो को इनम उत्पादन-क्षमता स्थापित करने की इजाजत दी गई है, बशर्ते कि ये मदें सार्वजनिक क्षेत्र या लघु उद्योगो के लिए आरक्षित न हो।

सरकार ने लघु उद्योगो के लिए आरक्षित मदो के सम्बन्ध मे भी लचीला दृष्टिकोण अपनाया है। कुछ को आरक्षित सूची से हटाया गया है और कुछ को शामिल किया गया है। कहने का आशय यह है कि सरकार ने लाइसेंस व्यवस्था मे इस प्रकार के परिवर्तन किये हैं कि यह उत्पादनोन्मुख बन सके ताकि औद्योगिक क्षेत्र मे विकास की दर 8% से अधिक प्राप्त की जा सके।

2 त्रिवर्षीय निर्यात-आयात नीति (1985-88 व 1988-91)—सरकार ने अप्रेल 1985 मे तीन वर्षों के लिए निर्यात-आयात नीति घोषित की जिसमे आयात-उदारता का दृष्टिकोण अपनाया गया ताकि निर्यात बढाये जा सकें। इसके लिए औद्योगिक मशीनरी की 201 मदो को खुले-सामान्य-लाइसेंस (OGL) की सूची मे डाल दिया गया। 53 मदो को सरकारी आयात-सूची से हटा दिया गया तथा "आयात-निर्यात पास बुक स्कीम" चालू की गई। उदार विदेशी व्यापार नीति के

फलस्वरूप औद्योगिक इकाइयों के लिए पूंजीगत माल व मध्यवर्ती माल मगाना आसान हो गया है जिससे उत्पादन-क्षमता को बढ़ाने में मदद मिली है। अपेक्षाकृत दीर्घकालीन निर्यात-आयात नीति के कारण इस क्षेत्र में अनिश्चितता कम हुई है। अन्य कई प्रकार की रियायतें दी गई हैं ताकि विदेशों में बसे भारतीय अपने देश में पूंजी-निवेश कर सकें। पुन 1988-91 की निर्यात-आयात नीति में उदारता का दृष्टिकोण जारी रखा गया है ताकि निर्यात बढ़ाये जा सकें और औद्योगिक माल को प्रतिस्पर्धात्मक मूल्यों पर तैयार किया जा सके।

3 दीर्घकालीन राजकोषीय या वित्तीय नीति (Long-term Fiscal Policy) (LTFP)—सरकार ने दिसम्बर 1985 में सातवीं योजना की अवधि (1985-90) से मेल खाते हुए एक दीर्घकालीन राजकोषीय नीति भी संसद में घोषित की थी जिससे इस क्षेत्र में अनिश्चितताएं कम की जा सकें। इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

(i) इसके अनुसार पांच वर्षों के लिए धन-कर, वैयक्तिक आयकर व निगम-कर की वर्तमान दरों को स्थिर कर दिया गया।

(ii) इसमें 25% विनियोग की छूट (Investment Allowance) की समाप्ति का सुझाव दिया गया लेकिन इसकी एवज में विकल्प सुझाए गए जैसे करदेय मुनाफों का 20% भारतीय औद्योगिक विकास बैंक में जमा करा देने पर 10% ब्याज मिलेगा तथा उधार की सुविधा दी जायगी।

(iii) काली मुद्रा को एकत्र करने के लिए राष्ट्रीय जमा स्कीम (नया सिरीज) लागू करने का सुझाव दिया गया।

(iv) निर्धनता-उन्मूलन व रोजगार-संवर्द्धन की वित्तीय व्यवस्था के लिए साधन-संग्रह की आवश्यकता पर बल दिया गया।

(v) छठी योजना में चालू राजस्व में बकाया राशि धनात्मक रही, लेकिन सातवीं योजना में यह ऋणात्मक (Negative) रहेगी। इसलिए (LTFP) में गैर-योजना व्यय में विशेषतया खाद्यान्नों व उर्वरकों पर सब्सिडी की राशि व सुरक्षा-व्यय में कमी करने की आवश्यकता स्वीकार की गई। सब्सिडी को सकल घरेलू उत्पत्ति (GDP) के 1% तक सीमित करने पर बल दिया गया।

(vi) संशोधित मूल्यवर्धित कर (Modified value-added tax) (MODVAT) लागू करने पर जोर दिया गया ताकि उपभोक्ताओं के लिए कीमतें कम की जा सकें व उत्पादकों को भी लाभ पहुंचाया जा सके।

(vii) योजना की वित्तीय व्यवस्था के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का अंशदान 1984-85 में GDP के 2 7% से बढ़ाकर 1989–90 में 4% किया जाना चाहिए।

इस प्रकार दीर्घकालीन फिस्कल नीति में केन्द्रीय सरकार ने 5 वर्षों के लिए कर-नीति के आवश्यक दिशा-निर्देश स्पष्ट किये थे। अर्थशास्त्रियों ने LTFP की

व्यापक रूप से समीक्षा की है और इसकी कमियो के बावजूद इसे देश के लिए उपयोगी माना है। यह आशा प्रगट की गई कि भारत में मध्यमकालीन कर-ढाँचे के निर्माण में इस नीति से काफी सहायता मिलेगी।

सरकार 'शून्य-आधार बजट-व्यवस्था" (Zero-base budgeting) को लागू करने पर भी विचार कर रही है। इसके अनुसार प्रत्येक सरकारी विभाग में परियोजना में नये सत्र के लिए व्यय की स्वीकृति देने से पूर्व इस बात की जाच की जायगी कि आधार या प्रारम्भिक वर्ष में किन उद्देश्यो के लिए कितनी राशि के व्यय की मजूरी दी गई थी और अब उन उद्देश्यों की पूर्ति को ध्यान मे रखते हुए कितने व्यय की स्वीकृति उचित मानी जा सकती है। यदि व्यय का औचित्य सिद्ध न किया जा सका तो आधार-वर्ष का व्यय भी नामजूर किया जा सकता है, उसमें बढोतरी की बात तो दूर रही। ऐसा करने से व्यय पर नियन्त्रण करना सम्भव हो सकेगा।

हमने ऊपर सरकार की नई औद्योगिक नीति, नयी विदेशी व्यापार नीति व नयी राजकोषीय नीति की दिशाएँ स्पष्ट की हैं। इन सबका उद्देश्य एक कार्यकुशल अर्थव्यवस्था का निर्माण करना है जिससे उत्पादन व उत्पादकता बढ सकें तथा लागत व कीमतो म कमी लाकर भारत अपने निर्यात बढा सकें।

जवाहर रोजगार योजना

सरकार ने मई 1989 में ग्रामीण क्षेत्रो में रोजगार बढाने के लिए जवाहर रोजगार योजना घोषित की है। इसके अन्तर्गत 1989-90 मे ग्रामीण क्षेत्रों मे रोजगार बढाने के लिए लगभग 2625 करोड रु व्यय किये जायेंगे जिनमे केन्द्र का अंश 80% व राज्यों का 20% होगा। इसके लिए NREP व RLEGP को मिला दिया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक ग्रामीण निर्धन-परिवार में कम से कम एक व्यक्ति को वर्ष मे लगभग 100 दिन तक का कार्य उपलब्ध कराया जायेगा ताकि उनकी आमदनी बढ सके। इसमें 30% आरक्षण महिलाओ के लिए किया जाएगा। इस योजना से अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगो को अधिक रोजगार मिलेगा। यह कार्यक्रम पचायती राज संस्थाओ के माध्यम से लागू किया जायगा जिसके लिए केन्द्र वित्तीय साधनो की सीधी व्यवस्था करेगा।

पचायतों को साधनो का आवंटन निर्धनों के अनुपात मे किया जायगा। इस कार्यक्रम से काफी आशाएँ लगायी जा रही हैं। लेकिन इसकी सफलता उत्पादक रोजगार की परियोजनाओं के निर्माण व उनके सफल क्रियान्वयन पर निर्भर करेगी। इसके लिए काफी प्रयत्न करना पडेगा वरना साधनो के दुरुपयोग का भय भी कम नहीं है।

नयी आर्थिक नीति की समीक्षा

विभिन्न अर्थशास्त्रियो जैसे वी. के. आर वी. राव, के. एन राज, डी. टी. लकडावाला, प्रभात पटनायक, आदि ने अपने भाषणो व लेखों के द्वारा उभरती हुई

नयी आर्थिक नीतियो पर अपने विचार प्रकट किये है। जहाँ वामपंथी विचारधारा वाले व्यक्तियो को भय है कि नयी आर्थिक नीति से निजी क्षेत्र को अनियन्त्रित विकास का अवसर मिलेगा, अर्थव्यवस्था पर एकाधिकारी घरानो व विदेशी कम्पनियो का शिकंजा मजबूत हो जायेगा तथा पूंजीवाद के विकास के कारण आर्थिक असमानताएँ बढेगी, उसके दूसरी तरफ उद्योग व व्यापार के प्रतिनिधियो व अन्य व्यक्तियो का यह मानना है कि अधिकांश पुराने नियन्त्रण व नियमन नई परिस्थितियो मे निरर्थक व प्रगति-अवरोधक सिद्ध हो गये थे एव उनको हटाने या घटाने से अर्थव्यवस्था आधुनिक, कार्यकुशल व लचीली बनेगी एव लागते व कीमतें कम होगी तथा भारत की निर्यात-क्षमता विकसित होगी और देश विश्व प्रतियोगिता मे टिकने की स्थिति मे आ जायगा।

नीति के प्रभाव[1]—प्रत्यक्ष करो मे कमी करने व उदार लाइसेस-नीति अपनाने से पूंजी बाजार की दशा सुधरी है। 1985 मे पूंजी-निर्गम से 1889 करोड रुपये जुटाये गय जबकि 1984 मे 1304 करोड रु जुटाये गए थे। लाइसेंसो की आवश्यकता कम होने पर भी लाइसेंसो की सख्या बढी है विदेशी सहयोग के समझौते अधिक हुए है, वित्तीय सस्थाओ ने अधिक कर्ज दिये है तथा औद्योगिक उत्पादन की दर बढी है। निजी क्षेत्र वाले उत्पादन बढाने की योजनाएँ प्रस्तुत करने लगे है तथा पूंजी-गहन इकाइयाँ लगायी जाने लगी है एव कार्यकुशलता व आधुनिकीकरण के प्रति जागरूकता बढी है।

डॉ आई जी. पटेल के विचार

लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स के डाइरेक्टर डॉ. आई जी पटेल ने कैम्ब्रिज मे 5 नवम्बर 1986 को किंग्सले मार्टिन मेमोरियल लेक्चर[2] मे भारत सरकार की नई आर्थिक नीति पर अपने विचार प्रकट किये थे जो काफी महत्व रखते हैं। डा पटेल का कहना है कि औद्योगिक नियन्त्रणो को कम करना, लाइसेंस-व्यवस्था को सरल बनाना प्रतिस्पर्धा बढाना, आधुनिकीकरण करना आदि सही दिशा म कदम है। लेकिन ये आर्थिक विकास व समस्याओ के समाधान के लिए पर्याप्त नही मान जा सकते।

हमारी मुख्य समस्या यह है कि भारत मे राजनेताओ, सरकारी अफसरो, बड़े व्यावसायिक घरानो, बड़े किसानो तथा अन्य निहित स्वार्थ वाले वर्गों मे परस्पर

---

1 D. T Lakdawala, **Seventh Plan II-Impact on Personal Distribution** The Economic Times, February 25, 1986 (एक अत्यधिक उपयोगी व सारगर्भित लेख जिसे अवश्य पढा जाना चाहिए)।

2 I. G Patel, **New Economic Policy, I, II & III,** The Economic Times, November 6, 7 & 8, 1986

गहरी साठ-गाठ पायी जाती है जिससे 'शक्ति का उपयोग' भ्रष्ट तरीको से व स्वैच्छिक ढग से कुछ लोगो को लाभ पहुँचाने के लिए किया जाता है। वह पहले भी किया जाता था और नई आर्थिक नीति के बाद भी किया जाता है जिससे राजनीतिक शक्ति व आर्थिक शक्ति के परस्पर तालमेल का लाभ एक वर्ग-विशेष तक सीमित रह गया है। अत आवश्यकता एक नई कार्यशैली को अपनाने की है जिसमे नीति के क्रियान्वयन मे राजनीतिक हस्तक्षेप कम किया जाय और सत्ता के स्वैच्छिक किस्म के उपयोग को समाप्त किया जाय।

केन्द्र को राज्यो के साथ विभिन्न प्रकार की सत्ता को बाटना चाहिए। राष्ट्र की श्रम-नीति व साख-नीति तथा सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओ की वित्तीय नीति आदि मे भी स्वैच्छिक मनमानी व भेदभावपूर्ण नीति को समाप्त करना चाहिए ताकि नये दृष्टिकोण का लाभ समस्त देशवासियो को मिल सके।

डॉ पटेल का मत है कि यदि प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी इस दिशा मे सफल प्रयास कर सके तो भारत उन्हे 21 वी शताब्दी मे गतिमान रूप मे प्रवेश अवश्य दिला देगा।

अत हमारी दिशा व गन्तव्य स्पष्ट होने जरूरी हैं। इसमे कोई सदेह नहीं कि सरकार ने आर्थिक नीति को उदार बनाया है और सरकारी हस्तक्षेप कम किया है। लेकिन भारत मे पूंजी का अभाव है, विदेशी मुद्रा का अभाव है व मांग की तुलना मे विशेषतया, उपभोक्ता माल की सप्लाई कम है। एसी स्थिति मे सरकारी हस्तक्षेप तो रहेगा ही। लाइसेंस व्यवस्था, आयात-नियन्त्रण, विनिमय-नियन्त्रण, पूंजी-निर्गम नियन्त्रण, व मूल्य-नियन्त्रण आदि समाप्त नहीं किये जा सकते। अत नियन्त्रणों को समाप्त करने की बजाय उनके उद्देश्यपूर्ण व कार्यकुशल सचालन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि नियोजित विकास के माध्यम से अधिकतम उत्पादन व न्यायपूर्ण वितरण किया जा सके। इन नियन्त्रणो का उपयोग निहित स्वार्थी वर्ग को लाभ पहुँचाने मे न किया जाकर सर्वजनहिताय किया जाना चाहिए। सरकार को अनावश्यक प्रशासनिक नियन्त्रणो मे कमी करनी चाहिए, लेकिन नियोजन के लिए नितान्त जरूरी नियन्त्रणो को अधिक कार्यकुशल ढग से लागू करना चाहिए। इसी मे देश का कल्याण निहित है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में आर्थिक प्रगति

इस समय सातवी पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष 1989-90 की वार्षिक योजना कार्यान्वित की जा रही है। आठवी पचवर्षीय योजना (1990–95) का दृष्टिकोण प्रपत्र प्रस्तुत किया जा चुका है। योजना आयोग ने सातवी पचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्याकन जून 1988 मे प्रकाशित किया गया था जिसमे विशेषतया 1985–86 व 1986–87 की आर्थिक प्रगति की समीक्षा की गई थी। (1980-81 के नय सिरीज क अनुसार)।

नवीनतम सूचना के आधार पर सातवी पचवर्षीय *योजना मे निम्नांकित* आर्थिक प्रगति हुयी है।[1]

1. विकास की दर व राष्ट्रीय आय मे वृद्धि—1988–89 की आर्थिक प्रगति को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि सातवी पचवर्षीय योजना मे विकास की वार्षिक दर 5% प्राप्त की जा सकेगी। 1980–81 के मूल्यो पर 1985-86 मे राष्ट्रीय आय 5%, 1986–87 मे 3·6% तथा 1987–88 मे 3·4% बढी। लेकिन 1988–89 मे इसके 10% तक बढने की आशा है। इस प्रकार सातवी पचवर्षीय योजना मे भी विकास की वार्षिक दर के पांचवी व छठी योजनाओ के अनुरूप ही रहने की आशा है।

2. कृषिगत उत्पादन—1985-86 मे कृषिगत उत्पादन मे 2·4% वृद्धि हुई, लेकिन 1986–87 व 1987-88 मे क्रमश. 3·7% व 2·1% की गिरावट आयी। 1988-89 मे 23% वृद्धि की सम्भावनाएं व्यक्त की गई हैं। 1987-88 का वर्ष अभूतपूर्व सूखे का वर्ष माना गया है। उस वर्ष खाद्यान्नो का उत्पादन 13·8 करोड टन ही हो पाया था। लेकिन 1988-89 मे इसके 17 करोड टन से अधिक के स्तर तक पहुँचने का अनुमान है। 1987-88 मे तिलहनों का उत्पादन 1·24 करोड टन, गन्ने, का 19·7 करोड टन, कपास का 64·3 लाख गाठे व जूट व मेस्टा का 67·8 लाख गाठे हुआ है। कुल सिंचित क्षेत्र 1987-88 मे 6·6 करोड हैक्टेयर हो गया था तथा उर्वरको का उपभोग 90 लाख टन तक पहुँच गया था।

3. औद्योगिक उत्पादन—सातवी पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास की वार्षिक दर लगभग 8·5% रही है। 1985-86 मे यह 8·7%, 1986-87 मे 9 1% 1987–88 मे 7·3% तथा 1988–89 मे 8·8% रही है।

इस प्रकार सूखे के वर्ष मे भी औद्योगिक विकास की दर 7·3% रही है, जो इस बात का प्रतीक है कि औद्योगिक अर्थव्यवस्था कृषिगत परिवर्तनो के प्रभाव से *बहुत कुछ मुक्त होती जा रही है। औद्योगिक क्षेत्र काफी गतिमान हो गया* है, और भविष्य मे भी विकास की दर के ऊँचा रहने की आशा है।

4. मूल्य-स्तर, बचत व विनियोग की दरें—सातवी योजना मे मुद्रास्फीति *की स्थिति जारी रही है।* थोक मूल्यों का सूचनाक *1987-88 मे* 10·6% बढा (बिन्दु से बिन्दु आधार पर) और जून 1989 मे उपभोक्ता मूल्य सूचनाक 838 पर पहुँच गया जिससे 1960 = 100 की तुलना मे रुपये का मूल्य घट कर 12 पैसे मात्र रह गया है।

---

1. Economic Survey 1988-89, Various tables

* The Economic Times, September 22, 1989, editorial.

बचत की दर 1987-88 म 20 2% व विनियोग की दर 22 1% रही है (1980 81 के नये सिरीज के आकडो पर, प्रचलित भावो पर) जो पहले से कुछ कम है। अत इनका घटना एक चिंता का कारण है।

5 **भुगतान सतुलन पर दबाव**—सातवी योजना म भुगतान सतुलन की स्थिति गम्भीर बन गयी है। रुपये का मूल्य विदेशी मुद्राओ म काफी घट गया है। देश पर विदेशी कज का भार बढा है और भारत विदेशी कज के जाल म प्रविष्ट होता जा रहा है। अगस्त 1989 के अन्त मे स्वरण व स्पेशल ड्राइग राइट्स को छोडकर विदेशी विनिमय कोष 4600 करोड रुपय रह गये थ जो मार्च 1989 की तुलना म लगभग 2000 करोड रु कम थे। ये केवल 1½ महीने क आयात-बिल की पूर्ति कर सकते हैं। इस समय देश भुगतान असतुलन की जटिल स्थिति का सामना कर रहा है। भारत को व्यापारिक कर्जे की आवश्यकता है।

इस प्रकार सातवीं योजना के अत मे देश के समक्ष मुद्रास्फीति भुगतान-असतुलन व असमानता जसी समस्याएँ विद्यमान हैं। लेकिन यह विशाल देश भारी जनसख्या का बोझ उठाये विकास के पथ पर अग्रसर है और अपनी समस्याओ का समाधान निकालने का भरसक प्रयास कर रहा है।

———

24

योजनाकाल में आर्थिक प्रगति 1951-89

(Economic Progress During Plan Period, 1951-89)

भारत में योजनाकाल के लगभग चार दशक समाप्त होने मे आ गये है । इस अवधि मे हमने छ पचवर्षीय योजनाएँ तथा चार वार्षिक योजनाएँ (1966-69 तक तीन वार्षिक योजनाएँ तथा एक वार्षिक योजना 1979-80 के लिए) पूरी कर ली है । इस समय सातवी योजना की अन्तिम वार्षिक योजना (1989-90) पर कार्य चल रहा है । इस प्रकार भारत को लगभग चार दशको के आर्थिक नियोजन का अनुभव प्राप्त हो चुका है । नियोजन की यह अवधि काफी लम्बी मानी जा सकती है । नीचे योजनावधि की अब तक की सफलताओ व विफलताओ का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है ।

भारत मे 1951-89 की अवधि मे सार्वजनिक क्षेत्र मे योजना-परिव्यय की कुल राशि (प्रचलित मूल्यो पर) लगभग 3,64,213 करोड रुपये (3 लाख 64 हजार करोड रु) विकास की विभिन्न मदो पर व्यय की गई है । 1988-89 की वार्षिक योजना का आकार 49,818 करोड रु रखा गया था । इस व्यय के फलस्वरूप योजनाकाल मे विकास की वार्षिक दर लगभग 3 6 प्रतिशत प्राप्त की जा सकी है तथा सभी आधारभूत क्षेत्रो (basic sectors) मे ऊँचे दर्जे की तकनीकी-आर्थिक आत्म-निर्भरता (techno-economic self-reliance) की दशाएँ उत्पन्न की जा सकी है । *ये उपलब्धियाँ नियोजन के अभाव मे सम्भव नही थी ।*

इस प्रकार योजनाकाल के 38 वर्षों मे उत्पादन व विकास के विभिन्न क्षेत्रो मे नये स्तर प्राप्त किए गए है । लेकिन योजनाओ के विभिन्न उद्देश्यो जैसे मूल्य-स्थिरता, आय व रोजगार मे तीव्र वृद्धि, धन व आय के वितरण मे समानता एव निजी क्षेत्र मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण में कमी आदि को प्राप्त करने की दिशा मे प्रगति बहुत मन्द व असन्तोषजनक रही है । देश मे निरन्तर बढ़ती हुई कीमतो ने मुद्रास्फीति की जटिल समस्या उत्पन्न कर दी है और हम आर्थिक स्थिरता के साथ विकास (growth with stability) के लक्ष्य को प्राप्त नही कर पाये है । कही-कही

तो हम अपने निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर न होकर इनके ठीक विपरीत दिशा में चले गये हैं। ऐसा विशेषकर समाजवादी समाज की स्थापना के सम्बन्ध में हुआ है क्योंकि योजनाकाल में आर्थिक प्रगति व प्रवृत्तियों ने देश में पूँजीवादी ढंग के समाज को ही अधिक सुदृढ़ बनाया है। यह वास्तव में एक चिन्ता का विषय है, क्योंकि भारतीय नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य देश में एक ऐसे समाज की स्थापना करना रहा है जिसमें सभी नागरिकों को आर्थिक व सामाजिक विकास के समान अवसर मिल सकें और आय व धन के वितरण की विषमताएँ समाप्त की जा सकें। यदि देश में आर्थिक सत्ता मुट्ठी भर व्यक्तियों व परिवारों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है तो हम अपने सामाजिक लक्ष्यों से दूर हो जाते हैं, चाहे उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में हमने कितने ही नये व बड़े कीर्तिमान क्यों न स्थापित कर लिए हों।

पहले बताया जा चुका है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्रगति काफी सन्तोषजनक रही, द्वितीय योजना की प्रगति भी बहुत कुछ सन्तोषजनक मानी जा सकती है, लेकिन तृतीय योजना की प्रगति से देश में निराशा व असन्तोष का वातावरण छा गया था। 1965–66 का वर्ष, जो तृतीय योजना का अन्तिम वर्ष था, अभूतपूर्व अकाल व सूखे का वर्ष रहा, जिससे कृषिगत उत्पादन व औद्योगिक उत्पादन दोनों को भारी क्षति पहुँची थी। 1962 में चीन से संघर्ष हुआ जिसमें देश पर सुरक्षा के बढ़ते हुए व्यय का भार आ पड़ा था। 1965 में पाकिस्तान से युद्ध हुआ। इस प्रकार तृतीय योजना की अवधि में देश को दो बार युद्धों की स्थिति का सामना करना पड़ा। विदेशी सहायता की अनिश्चित स्थिति व अन्य कारणों से चतुर्थ पंचवर्षीय योजना अपने निर्धारित समय 1 अप्रैल, 1966 से प्रारम्भ नहीं की जा सकी और 1966–69 के तीन वर्षों में वार्षिक योजनाएँ ही लागू की गयीं। इसे योजनावकाश (plan holiday) की अवधि भी कहा गया है, हालांकि वार्षिक योजनाओं के माध्यम से इस अवधि में भी नियोजन की प्रक्रिया को पहले की तरह जारी रखा गया था।

इस समय सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) के पाँचवें वर्ष 1989-90 की वार्षिक योजना पर कार्य चल रहा है। आगे के पृष्ठों में नवीनतम आँकड़ों व सूचनाओं के आधार पर योजनाकाल में विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है।

राष्ट्रीय आय के परिवर्तन[1]

भारत की राष्ट्रीय आय (1970-71 के मूल्यों पर) 1950-51 में 16,731 करोड़ रुपये से बढ़कर 1985-86 में 60143 करोड़ रुपये हो गयी थी। इस प्रकार योजनाकाल के 35 वर्षों में यह लगभग 3·6 गुनी हो गई। इसमें प्रति वर्ष 3·6

1. Economic Survey, 1988-89, p. S-3, व पिछले वर्षों के आर्थिक सर्वेक्षण।

प्रतिशत चक्रवृद्धि से वृद्धि हुई । 1950–51 मे प्रति व्यक्ति ग्राय (1970–71 के भावो पर) 466 रुपये थी जो बढकर 1985–86 मे 797·7 रुपये हो गयी । इस प्रकार योजनाकाल मे प्रति व्यक्ति वास्तविक ग्राय 1 7 गुनी हो गई । इस ग्रवधि मे प्रति व्यक्ति ग्राय मे 1 5 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि हुई । हमे यह स्मरण रखना होगा कि जिस भारतीय ग्रर्थव्यवस्था मे स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व कई दशाब्दियो तक वार्षिक वृद्धि की दर मुश्किल से 1% रही थी, वही ग्रर्थव्यवस्था 1950-51 से पहले की तुलना मे तिगुनी से भी ग्रधिक रफ्तार से विकसित होती गयी । (कुल राष्ट्रीय ग्राय को लेने पर) । ग्रत योजना-पूर्व ग्रवधि की तुलना मे योजनाकाल मे भारतीय ग्रर्थव्यवस्था की प्रगति की दर काफी उत्साहवर्द्धक मानी जा सकती है ।

विभिन्न योजनाग्रो मे विकास की दर के लक्ष्य व उपलब्धियाँ निम्न तालिका मे दी गई हैं :

(विकास की दरें) (प्रतिशत)

	लक्ष्य	वास्तविक[1]
1. प्रथम योजना	2 1	3·6
2. द्वितीय योजना	4·5	4·0
3. तृतीय योजना	5·6	2·2
4. चतुर्थ योजना	5·7	3·4
5. पचम योजना	4·4	5·2
6. छठी योजना	5·2	5·3
7. सातवी योजना	5·0	5·4*

1. *Economic Survey 1988-89*, p. S-5 (वास्तविक वृद्धि-दर राष्ट्रीय ग्राय के ग्राधार पर ग्राकी गई है ।) लक्ष्यो के लिए Sixth plan, p. 1 का उपयोग किया गया है ।

* ग्राठवी योजना के दृष्टिकोण-प्रथम के ग्रनुसार ग्रनुमानित ।

इस प्रकार विकास की दर के लक्ष्यो व वास्तविक उपलब्धियो मे अन्तर पाये गये हैं। प्रथम व पचम पंचवर्षीय योजनाओ मे वास्तविक विकास की दरें लक्ष्यो से ऊँची रही। तृतीय योजना मे विकास की दर सबसे कम रही। छठी योजना मे विकास की दर 5 3% रही है, जो लक्ष्य के अनुरूप है। सातवी योजना मे भी इसके लक्ष्य से अधिक रहने का अनुमान है।

छठी योजना मे विकास की वार्षिक दर 5·3% रही है एव पाँचवी योजना मे भी यह 5·2% रही थी। इसलिए अब इस बात के लिए सुनिश्चित प्रमाण मिल गया है कि 1974-75 से भारतीय अर्थव्यवस्था पहले की तुलना मे ऊँचे विकास-पथ पर चल पडी है। सातवी योजना मे विकास की वार्षिक दर 5% प्राप्त हो जायगी जिससे भारत 3½% वार्षिक विकास-दर वाला देश न कहला कर 5% विकास दर वाला देश कहलाने का अधिकारी बन गया है।

भारत मे जनसख्या 1951 मे 36·1 करोड से बढ़कर 1981 मे 68·5 सकनी करोड व्यक्ति हो गयी। 1989 के मध्य मे यह लगभग 83 करोड व्यक्ति मानी जा है। इस प्रकार जनसख्या की दृष्टि से योजना काल मे 1951 की तुलना मे 'एक नए भारत' का निर्माण और हो गया है। 1981-85 की अवधि मे सशोधित आकडो के अनुसार जनसख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2·1% के स्थान पर 2·2% पायी गयी है।[1] योजनाकाल में आर्थिक विकास की दर जनसख्या की वृद्धि-दर से अधिक रही है। जनसख्या की वृद्धि का कारण जनता के उपभोग तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्तरो मे सुधार की वजह से मृत्यु-दर मे कमी का आना रहा है। जनसंख्या की इतनी वृद्धि के बावजूद भी इस अवधि मे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का 1·5 प्रतिशत वार्षिक दर से बढना एक महत्वपूर्ण बात है। अतः भारतीय अर्थ-व्यवस्था योजनाकाल मे गतिमान हुई है, चाहे प्रगति की वार्षिक रफ्तार 1·5% (प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के आधार पर) कम ही क्यो न रही हो। यह पहले की आर्थिक गतिहीनता व जड़ता की तुलना मे काफी आशाजनक व उत्साहवर्द्धक मानी जा सकती है, हालाकि यह देश की आवश्यकताओ, आकाक्षाओ व लक्ष्यो के अनुरूप नही रही है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि 1951-89 की अवधि मे राष्ट्रीय आय लगभग 4 गुनी जनसख्या 2¼ गुनी तथा प्रति व्यक्ति आय लगभग दुगुनी हो गई है।

योजनाकाल में कृषि की प्रगति

नियोजन के प्रथम तीन दशको मे कृषिगत उत्पादन म उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस अवधि मे कृषिगत उत्पादन 2·7% वार्षिक दर से बढा तथा यह लगभग दुगुना

1. Seventh Five Year Plan' 1985-90, Mid-Term Appraisal. p. 195.

* विश्व बैंक की विकास रिपोर्ट 1989 के अनुसार।

हो गया। डॉ. एम. एस स्वामिनाथन के अनुसार भारत में खाद्यान्नों का उत्पादन 1950 से 1980 की अवधि में लगभग 2·8% वार्षिक दर बढ़ा, जबकि 1900-1950 के बीच इसकी वृद्धि-दर केवल 0·1% रही थी। इस प्रकार योजनाकाल में खाद्यान्नों का उत्पादन योजना पूर्व अवधि की तुलना में काफी तेज गति से बढ़ा है। इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक तथ्य निम्न तालिका में प्रस्तुत किये गये हैं :

चुनी हुई कृषिगत वस्तुओं का उत्पादन[1]

वस्तुएँ	1950-51	1986-87	1987-88
खाद्यान्न (मिलियन टन)	55·0	143·4	138·4
तिलहन (मिलियन टन)	5 0	11·3	12 4
गन्ना (करोड़ टन)	7 0	18 6	19 7
कपास (मिलियन गाठें)	2 9	6 9	6 4
जूट (मिलियन गाठें)	3 5	8·6	6·8

भारत में कृषिगत उत्पादन में काफी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। 1985-86 में खाद्यान्नों का उत्पादन 15 करोड़ टन हुआ जो पिछले वर्ष से 5 मिलियन टन अधिक था। 1987-88 में भी यह लगभग 13·8 करोड़ टन ही रहा। 1988-89 के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन का अनुमान 17 करोड़ टन से अधिक प्रस्तुत किया गया है। योजनाकाल में कपास का उत्पादन 1985-86 में 8·7 मिलियन गाठों तक तथा जूट व मेस्टा का 12·7 मिलियन गाठो तक पहुँच चुका था जो बाद के दो वर्षों में घटा है। इस प्रकार विभिन्न कृषिगत पदार्थों के उत्पादन में भारी उतार-चढ़ाव आते रहे हैं।

नियोजन के प्रारम्भिक वर्षों में कृषिगत उत्पादन को क्षेत्रफल में वृद्धि करके बढ़ाया गया था, लेकिन बाद की अवधि में कृषिगत उत्पादकता में वृद्धि हुई है। सिंचाई, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयाँ, शक्ति, आदि की पूर्ति बढ़ायी गयी है और ऐसा विशेषतया चुने क्षेत्रों में किया गया है। योजनाओं में बड़ी, मध्यम एवं लघु सिंचाई के अन्तर्गत क्षेत्रफल बढ़ा है। यह 1950-51 में 2 26 करोड़ हैक्टेयर से बढ़कर 1987-88 में 6 63 करोड़ हैक्टेयर हो गया है।

1. Economic Survey, 1988-89, p S -15 (1986-87 व 1987-88 के लिए)।

1950-51 मे अधिक उपज देने वाली किस्मों का उपयोग चालू ही नहीं हुआ था जबकि 1987-88 म ये किस्मे 51 2 मिलियन हैक्टयर में बोयी गयी थी। 1988-89 के लिए 65 मिलियन हैक्टेयर का लक्ष्य रखा गया है। नाइट्रोजन, फास्फट व पोटाश की खादो का कुल उपभोग 1970-71 म 21 8 लाख टन हुआ था जो बढकर 1987-88 मे 90 लाख टन हो गया। वर्ष 1988-89 के लिए इसके उपभोग का लक्ष्य एक करोड टन रखा गया है। 1964-65 से गहूँ का वार्षिक उत्पादन तेजी से बढा है और इसकी प्रति हैक्टयर उपज भी बढी है। गेहूँ की प्रति हैक्टयर उपज 1955-56 म 708 किलोग्राम से बढकर 1985-86 म 2046 किलोग्राम हो गई है जो पहले से अढाई गुनी से अधिक है। 1987-88 म यह 1995 किलोग्राम रही है।

विद्वानो का मत है कि 1964-65 से भारतीय कृषि मे विकास के साथ-साथ कई प्रकार के असतुलन उत्पन्न हो गये हैं जैसे चावल व गेहूँ के उत्पादन म असतुलन, अनाजो व दालो के उत्पादन म असतुलन एवं खाद्यान्नों व व्यापारिक फसलो के बीच असतुलन। इनके अलावा हरित क्रान्ति के फलस्वरूप प्रादेशिक असतुलन भी उत्पन्न हो गये हैं। हरित क्रान्ति के बाद की अवधि मे खाद्यान्नों के अन्तर्गत 15% से कम क्षेत्रफल ने 50% से अधिक खाद्यान्नो का उत्पादन किया है। देश के पूर्वी भागो म चावल का उत्पादन बढाने व सूखी कृषि तथा वर्षा पर आश्रित क्षेत्रो मे उत्पादकता बढाने के लिए भारी मेहनत करनी होगी।

योजनाकाल मे खाद्यान्नो का ढाचा काफी बदल गया है। यह निम्न तालिका मे दर्शाया गया है।

कुल खाद्यान्नो के उत्पादन का प्रतिशत

खाद्यान्न	1950-51	1986-87
गेहूँ	13	32
चावल	40	42
मोटे अनाज	30	18
दालें	17	8

इस प्रकार खाद्यान्नो के कुल उत्पादन मे गेहूँ का अंश काफी बढा है, चावल की यथा स्थिर रहा है तथा मोटे अनाजो व दालों का काफी घटा है। प्रो सी. टी कुरियन ने इसे निर्धन विरोधी विकास कहा है क्योंकि उनके लिए मोटे अनाज का उत्पादन 30% से घट कर 18% ही रह गया है। साथ में दालों का उपभोग करने वाली जनता की दशा भी काफी शोचनीय होगई है।

योजनाकाल मे उद्योग, शक्ति व परिवहन की प्रगति

शक्ति की प्रस्थापित क्षमता 1950-51 मे 2० लाख किलोवाट से बढकर 1986-87 मे 554 लाख किलोवाट (लगभग 24 गुनी) हो गयी है। जिन गाँवो मे बिजली पहुँचायी गयी, उनकी सख्या 3061 से बढकर 1986-87 मे 4 12 लाख हो गयी है। शक्तिचालित पम्प सेटो की सख्या 21 हजार से बढकर 1987-88 मे 66 4 लाख कर दी गयी है। रेलो की माल ढोने की क्षमता 9 3 करोड टन से बढाकर 1988-89 में 33 2 करोड टन (लगभग 3 5 गुनी) हो गयी। जहाजरानी मे कुल टन भार क्षमता 3 9 लाख जी आर टी. से बढकर 1986-87 मे 57 74 लाख जी आर टी हो गई है। यह 1984-85 की तुलना मे कुछ कम हो गई है।

जैसा कि औद्योगिक प्रगति के अध्याय मे बतलाया गया है, योजनाकाल मे भारत के औद्योगिक उत्पादन मे विविधता आई है जिससे अनेक नई किस्म की वस्तुओ का उत्पादन होने लगा है। देश का औद्योगिक ढाचा बदला है। 1960-61 मे विनिर्माण द्वारा जोडे गये मूल्य मे आधारभूत व पूँजीगत उद्योगो का अश 38% था जो 1979-80 मे 49% हो गया, मध्यवर्ती वस्तुओ मे यह 21% से घटकर 16% एव उपभोक्ता-वस्तुओं के उद्योगो मे 41% से घटकर 35% हो गया।

1951-86 की अवधि मे औद्योगिक उत्पादन मे वार्षिक वृद्धि-दर 5 5% रही है। योजनावधि में औद्योगिक उत्पादन लगभग छ गुना हो गया है।[1]

छठी योजना के विभिन्न वर्षों मे औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर मे काफी उतार-चढाव आते रहे। योजना में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि-दर लगभग 5 5% रही जो 7% के लक्ष्य से नीची थी। औद्योगिक उत्पादन के सूचनाक का आधार-वर्ष 1970 की जगह 1980-81 लेने पर औद्योगिक विकास की वार्षिक दर ऊँची हो गई है। यह सातवी पचवर्षीय योजना में 8 5% वार्षिक रही है जो उत्साह वर्द्धक मानी जा सकती है।

---

1 K L Krishna, Industrial Growth and Productivity in India, lesson 13 in Brahmananda & Panchamukhi's book 1987

37 वर्षों में महत्वपूर्ण उद्योगों का विकास[1]

	1950-51	1986-87	1987-88
1 तैयार इस्पात (मिलियन टन)	1 04	9·7	10 6
2 सीमेंट (मिलियन टन)	2 7	34 8	37 3
3 नाइट्रोजन उर्वरक (हजार टन N में)	9 0	5410	5466
4· कोयला (मिलियन टन)(लिग्नाइट सहित)	32·8	175·2	190 9
5. कच्चा लोहा (मिलियन टन) (गोआ को छोड़कर)	3·0	52·7	48 6
6 परिशुद्ध पेट्रोल-पदार्थ (मिलियन टन)	0·2	42 8	44 4
7. क्रूड तेल (मिलियन टन)	0 26	30·5	30 4

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि योजनाकाल के 37 वर्षों में तैयार इस्पात का उत्पादन दस गुना हो गया। सीमेंट का उत्पादन 14 गुना, कोयले का 6 गुना तथा कच्चे लोहे का लगभग 16 गुना हो गया है। मशीनी औजारों का वार्षिक उत्पादन जो 1950-51 में 30 लाख रु. का हुआ था, वह 1987-88 में 390 करोड़ रु का हो गया। क्रूड तेल का उत्पादन 1987-88 में 3 04 करोड़ टन हुआ जो काफी सराहनीय माना जा सकता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों का विस्तार

केन्द्रीय सरकार के औद्योगिक व व्यापारिक गैर-विभागीय सार्वजनिक उपक्रमों में 1950-51 में कुल विनियोग 29 करोड़ रुपयों का था जो 31 मार्च 1988 के अन्त में 71,299 करोड़ रुपयों का हो गया। इसी अवधि में इनकी इकाइयां 5 से बढ़कर 221 हो गयीं। दीर्घकाल में परिणाम देने वाले कई प्रोजेक्ट सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किये गये हैं। काफी विलम्ब व निराशाओं के बावजूद भी सार्वजनिक क्षेत्र में विभिन्न औद्योगिक कॉम्पलेक्स (समूह) स्थापित किये गये हैं। इनसे निजी

1. *Economic Survey*, 1988-89, pp. S-34 & S-35.

* इसमें सेकेण्डरी उत्पादकों का उत्पादन भी शामिल है।

क्षेत्र के लिए भी विकास के नये अवसर खुले हैं। भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र एक-दूसरे के पूरक हैं, न कि प्रतिस्थापक।

भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र की कई इकाइयाँ लाभप्रद ढग से चल रही हैं और उनका कार्य निजी क्षेत्र की इकाइयो से किसी भी अर्थ मे घटिया नही माना जा सकता। फिर भी, जिन सार्वजनिक इकाइयो मे घाटा हो रहा है, उनमे उत्पादकता व लाभप्रदता को बढाने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि कई कठिनाइयो के बावजूद हमारा औद्योगिक ढांचा 1989-90 मे 1950-51 की अपेक्षा अधिक सन्तुलित व अधिक विविधतापूर्ण हो गया है। औद्योगिक ढांचे मे वस्त्रों व खाद्य-उद्योगो का औद्योगिक उत्पादन के सूचनांक मे भार घटा है, तथा इन्जीनियरी व रसायन उद्योगों का बढा है। भारत का स्थान चोटी के औद्योगिक देशो मे गिना जाने लगा है।

31 जनवरी 1989 को हमारे विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण व SDR सहित) 5967 करोड रुपये के थे। 1987-88 मे इसकी राशि 7687 करोड रुपये तक पहुँच गई थी। पिछले वर्षों मे विदेशी विनिमय कोषो का उपयोग आवश्यक आयातो के लिए किया गया है।* इससे आर्थिक विकास करने तथा मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण स्थापित करने मे मदद मिली है। योजनावधि मे नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक, लोहा व इस्पात, मशीनी औजार चीनी व वस्त्र मिल मशीनरी, गाडियो, मिश्रित रेशे के सूत, पेट्रोल-पदार्थ आदि मे काफी सीमा तक आयात-प्रतिस्थापन किया गया है जो इन क्षेत्रो मे हुई प्रगति का सूचक है।

योजनाकाल में सामाजिक सेवाओं में प्रगति

कृषि, उद्योग, शक्ति व परिवहन के क्षेत्रो मे प्रगति के अलावा योजनाकाल मे शिक्षा, चिकित्सा, परिवार-नियोजन, पिछडी जातियो के कल्याण, औद्योगिक श्रमिको के लिए मकानो की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध मे भी प्रगति की गई है। 1950-51 मे 6 से 11 वर्ष की उम्र के स्कूल जाने वाले बच्चो का प्रतिशत 43 था जो 1984-85 मे 91·8 हो गया। 11-14 वर्ष की उम्र के लिए यह 13 प्रतिशत से बढकर 53 प्रतिशत हो गया। प्राथमिक स्वास्थ्य-केन्द्रो व परिवार-नियोजन केन्द्रो को 1950-51 मे कोई जानता तक नही था, जिनका अब काफी विस्तार हो गया है। शिक्षण सस्थाओ मे छात्रवृत्तियो का काफी विस्तार किया गया है। **जीने की औसत आयु 32 वर्ष से बढ़कर 1987 मे 58 वर्ष तक** पहुच गई है जो अपने आप मे आर्थिक विकास की सूचक है, हालाकि श्रीलका मे इसी वर्ष यह 70 वर्ष व चीन मे 69 वर्ष तक पहुँच गई थी।

---

* अगस्त 1989 के अन्त मे विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण व SDR के बिना) 4600 करोड रुपये पर आ गये हैं जो एक भारी चिंता का विषय है।

बचत व विनियोगो मे प्रगति[1]

योजना काल मे बचत व विनियोग के क्षेत्र म भी प्रगति हुई है। 1950 51 म सकल घरेलू बचत राष्ट्रीय आय का 10 2% (पुराने सिरीज पर) थी जो 1987 88 म 20 2% (नये सिरीज 1980 81 पर) हो गई है। सकल विनियोग अथवा सकल घरेलू पूंजी निर्माण की दर 1950 51 मे 10% से बढकर 1987-88 म 22 1% हो गई है। बचत व विनियोग की इतनी ऊंची दर प्राय मध्यम आय वाले देशो मे देखन को मिलती है। अत इन दिशाओं मे भारत की प्रगति काफी सराहनीय रही है। लेकिन भारत मे आज भी सावजनिक बचतो की मात्रा बहुत नीचा है और देश मे विकास की आवश्यकताओ के अनुरूप सावजनिक बचतो मे वृद्धि नही हो पाई है। देश मे विलासिता के उपभोग पर अकुश लगाने की आवश्यकता है और कृषिगत क्षेत्र से अधिक साधन एकत्र करने की आवश्यकता है। 1950 51 म करों मे प्राप्त राशि राष्ट्रीय आय का 6 6% थी जो अब 17 4% हो गई है। देश मे सार्वजनिक उपभोग मे व्यय की वृद्धि को नियन्त्रित करने की आवश्यकता है ताकि करो से प्राप्त अधिक राशि का उपयोग विनियोगो को बढाने मे किया जा सके। लेकिन सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओ के कारण सावजनिक व्यय मे कमी कर सकना अथवा भावी वृद्धि को नियन्त्रित कर सकना काफी कठिन हो गया है।

हम ऊपर नियोजन के लगभग 38 वर्षों मे कृषि उद्योग विद्युत परिवहन विभिन्न सामाजिक सेवाओ आदि के क्षेत्र म हुई प्रगति का उल्लेख कर चुके हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हमारी उपलब्धिया कुछ क्षेत्रों मे काफी उत्साहवधक व सतोषजनक रही हैं।

लेकिन विभिन्न क्षेत्रो में भौतिक उपलब्धियो के बावजूद योजनाओ की आर्थिक प्रगति क सम्बन्ध में काफी तीक्ष्ण आलोचनाए की गयी हैं। यदि हम योजनाओ की वास्तविक उपलब्धियो की तुलना योजनाओ में निर्धारित लक्ष्यो स करें तो प्रतीत होगा कि इनके बीच काफी अन्तर पाया गया है। भारतीय योजनाओ में वित्तीय व्यय के लक्ष्य तो प्राप्त कर लिए जाते हैं लेकिन इनम निर्धारित भौतिक लक्ष्यो (physical targets) को प्राप्त करने में काफी कठिनाइयो का सामना करना पडता है।

स्मरण रहे कि भारतीय योजनाओ का लक्ष्य केवल उत्पादन में वृद्धि करना ही नही रहा है बल्कि साथ में वितरण की व्यवस्था में सुधार करना भी रहा है ताकि देश में न्याय के साथ आर्थिक विकास (economic growth with justice)

---

1 Economic Survey 1988 89 p S 10 & S 11 (नवीनतम सूचना के लिए)।

का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। अतः हमें योजनाओं की उपलब्धियों की जांच समानता व न्याय के सन्दर्भ में भी करनी चाहिए।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों व विचारकों ने भारतीय नियोजन की असफलताओं व कमियों पर देश का ध्यान आकर्षित किया है। हम यहां पर उनका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय नियोजन की असफलताएँ अथवा कमियाँ

हम देख चुके हैं कि योजनाकाल की सम्पूर्ण अवधि में राष्ट्रीय आय में लगभग 3.6% सालाना की दर से वृद्धि हुई है, जो जनसंख्या की 2.1% वृद्धि-दर से अधिक रही है। प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में 1.5% वार्षिक दर से वृद्धि हुई है। लेकिन हमारी प्रमुख विफलताएँ मुद्रास्फीति, बेरोजगारी, निर्धनता एवं धन व आय की असमानताओं के क्षेत्रों में मानी जाती हैं। इनका विवरण नीचे दिया जाता है :

1. कृषि में असन्तुलनों (Imbalances) का उत्पन्न होना—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है योजनाकाल में कृषिगत उत्पादन में खाद्यान्न व गैर-खाद्यान्न के बीच काफी असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। व्यावसायिक फसलों में से क्षेत्रफल निकाल कर खाद्यान्नों में लगाया गया है। देश में गेहूँ का उत्पादन तो काफी बढ़ गया है लेकिन दालों का उत्पादन धीमी गति से बढ़ा है। देश में दालों का निरन्तर अभाव रहने लगा है और इनका उपभोग करने वाले व्यक्तियों की कठिनाइयां बढ़ गयी हैं।

इसी प्रकार कपास से क्षेत्रफल हटाकर गेहूँ में लगाया गया है जिससे कपास की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इन परिवर्तनों से आगे के वर्षों के लिए कृषिगत पैदावार के लिए नई चुनौतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। व्यावसायिक फसलों से खाद्यान्नों की ओर क्षेत्रफल का खिसक जाना एक चिन्ता का विषय है। भारत को खाद्यान्नों के साथ-साथ व्यावसायिक फसलों के उत्पादन को बढ़ाने की भी आवश्यकता है। अतः सिंचाई के साधनों का अधिकाधिक उपयोग करके व्यावसायिक फसलों का उत्पादन भी बढ़ाया जाना चाहिए। साथ में तिलहनों व दलहनों का उत्पादन भी बढ़ाने की आवश्यकता है।

2. मूल्य-स्तर में वृद्धि—योजना काल में देश में महंगाई के बढ़ जाने से सर्वसाधारण को काफी कष्ट उठाने पड़े हैं। द्वितीय योजनाकाल में मूल्य-वृद्धि चालू हुई थी, जो बाद में निरन्तर जारी रही है। 1979-80 व 1980-81 के वर्षों में थोक मूल्यों में (बिन्दु से बिन्दु के आधार पर) क्रमशः 21.4% व 16.7% की वृद्धि हुई थी जो अभूतपूर्व थी। छठी योजनावधि (1980-85) में थोक सूचनांकों के आधार पर मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 8% तथा उपभोक्ता-मूल्य-सूचनांकों के आधार पर 9.5% रही है।

1970-71 का आधार-वर्ष लेने पर थोक भावों का सूचनांक दिसम्बर, 1988 में 434·4 रहा। इस प्रकार दिसम्बर 1988 में मूल्य-स्तर 1970-71 की तुलना में 4 3 गुना हो गया था। अब इसका आधार-वर्ष 1981-82 हो गया है। 5 अगस्त, 1989 को यह 164·2 रहा। इस प्रकार थोक मूल्यों में वृद्धि जारी है।

जून, 1989 में अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचनांक 838 पर पहुँच गया (आधार-वर्ष 1960=100)। इस प्रकार लगभग 29 वर्षों में रुपये का मूल्य घटकर 12 पैसे पर आ गया है। इसका भी नया आधार-वर्ष 1982 कर दिया गया है जिस पर जून 1989 में यह 170 था। 1960 व 1982 के सिरीज में परिवर्तन-गुणांक 4·93 है। अर्थात् 1982 के आधार वाले अंकों को 4 93 से गुणा करके 1960 के आधार पर लाया जा सकता है। इसके बढ़ने से विशेष शर्तों व समझौते के अनुसार सरकारी कर्मचारियों व श्रमिकों का महगाई भत्ता बढ़ाना होता है। प्रथम योजना की अवधि को छोड़कर शेष योजनाकाल में मूल्य-स्तर निरन्तर बढ़ते रहे हैं। खाद्यान्नों के भाव बढ़ने से उपभोक्ता-वर्ग को कष्ट उठाने पड़े हैं और कच्चे माल के भाव बढ़ने से औद्योगिक लागतों में काफी वृद्धि हुई है। मूल्य-स्तर में वृद्धि होने से व्यापारियों को आकस्मिक लाभ प्राप्त हुए हैं और समाज में धन व आय की असमानताएं बढ़ी हैं। सरकार का गैर-विकास व्यय भी बढ़ा है जिससे विकास-व्यय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

मूल्य-स्तर में वृद्धि का प्रमुख कारण योजनाओं में अनियन्त्रित रूप से घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग करना रहा है। साथ में, खाद्यान्नों के अभाव ने मुद्रा-स्फीति को प्रोत्साहन दिया है। इस प्रकार भारत में जो कुछ आर्थिक प्रगति हुई है वह अस्थिरता (instability) के वातावरण में हुई है। महगाई बढ़ जाने से सरकार को अपने कर्मचारियों के लिए कई बार महगाई-भत्ता बढ़ाना पड़ा है। उद्योगों में उत्पादन लागत बढ़ने से विदेशों में हमारी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति घटी है जिससे निर्यातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अतः निरन्तर बढ़ती हुई मुद्रास्फीति ने योजनाओं के समस्त अनुमानों पर काफी विपरीत प्रभाव डाला है।

3 बेरोजगारी में वृद्धि—भारतीय नियोजन के पीछे एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रोजगार की मात्रा में वृद्धि करना रहा है। योजनाओं में रोजगार में वृद्धि की गयी है, लेकिन साथ में बेरोजगारी भी बढ़ी है और प्रत्येक योजना के अन्त में बेरोजगार व्यक्तियों की सख्या योजना के प्रारम्भ की तुलना में प्रायः अधिक पाई गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक योजना में श्रम बाजार में आने वाले सभी नये श्रमिकों को काम नहीं दिया जा सका है। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय नियोजन देश को 'पूर्ण रोजगार' की तरफ ले जाने में नितान्त असमर्थ रहा है। मार्च 1985 में सामान्य

लेकर शेष 1.1 अरब SDR की किस्त न लेने का निर्णय घोषित कर दिया गया था।

1985-86 से इस कर्ज का भुगतान प्रारम्भ हो जाने से भारत पर ऋण-सेवा भार काफी बढ़ गया है। 1987-88 में ऋण-सेवा-भार चालू प्राप्तियों* का 24% रहा था जिसके 1989-90 तक काफी बढ़ जाने की सम्भावना है।

कुछ विद्वानों का मत है कि विशाल मात्रा में विदेशी सहायता का उपयोग करने के बावजूद देश में सर्वसाधारण को पूरा लाभ नहीं मिल पाया है। विदेशी साधनों का दुरुपयोग होने से देश में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता की समस्या उत्पन्न हो गई है क्योंकि काफी विदेशी सहायता विशाल नदी-घाटी परियोजनाओं व अनुत्पादक किस्म की औद्योगिक परियोजनाओं में व्यय कर दी गई है जिससे परोक्ष रूप में भ्रष्टाचार विलासी जीवन ऊँची अट्टालिकाओं, सिनेमाघरों एवं गैर आवश्यक शहरी सम्पत्ति को बढ़ावा मिला है। कुछ राशि का उपयोग विदेशों से स्वर्ण का आयात व चोरी से अन्य माल जैसे सूती कपड़ा, आदि के आयात आदि में भी किया गया है। अतः विदेशी सहायता का पर्याप्त लाभ सर्वसाधारण को नहीं मिल पाया है।

विदेशी सहायता से सार्वजनिक व निजी क्षेत्र में विकास कार्य में मदद मिली है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि सहायता का अपव्ययपूर्ण ढंग से उपयोग (wasteful use) होने से देश को पूरा लाभ नहीं मिल पाया है। यही कारण है कि विदेशी सहायता का भुगतान करने में कठिनाई हो रही है। देश अभी तक विदेशी सहायता से मुक्त नहीं हो पाया है।

विदेशी सहायता का अंश प्रथम योजनावधि में कुल सार्वजनिक व्यय के 9.6% से बढ़कर वार्षिक योजनाओं (1966-69) की अवधि में 36% तथा पांचवीं योजना में घटकर 14.8% पर आ गया था। छठी योजना (1980-85) में सार्वजनिक परिव्यय में विदेशी सहायता का अंश लगभग 8% ही रहा है। इस प्रकार पिछली अवधि में योजनाओं में कुल सार्वजनिक परिव्यय का लगभग 1/10 अंश ही विदेशी साधनों से प्राप्त होता रहा है। इस अर्थ में तो हमारी योजनायें स्वदेशी साधनों पर ज्यादा आश्रित रही हैं, लेकिन भारत को आजकल रियायती शर्तों पर भारी मात्रा में विदेशी सहायता की आवश्यकता पड़ने लगी है। इस अर्थ में विदेशी सहायता पर हमारी निर्भरता बढ़ी है।

---

* वस्तु-निर्यात व अदृश्य-मदों की आय का जोड़ चालू प्राप्तियाँ (current receipts) कहलाता है। ऋण-सेवा-भार आगामी कुछ वर्षों में और बढ़ेगा जिससे भारत विदेशी कर्ज के फंद (foreign debt trap) में फँस सकता है। सामान्यतया 20% से अधिक ऋण-सेवा-भार देश को 'कर्ज के जाल' में डाल देता है।

जून 1988 मे भारत सहायता क्लब की पेरिस में हुई बैठक मे भारत को 1988-89 के लिए 6 3 अरब डालर का कर्ज देने का वादा किया गया है जो पिछले वर्ष से अधिक है। भारत आज भी विदेशो से रियायती शर्तों पर कर्ज लेने की पेशकश करता रहता है क्योंकि व्यापारिक उधार से आगे चलकर कर्ज चुकाने का भार अधिक पडता है। 1987-88 मे ऋण सेवा भार चालू प्राप्तियो (current receipts) के अनुपात मे 24% रहा है। 1989-90 व 1990-91 मे भी IMF का कर्ज चुकाने की वजह से भुगतान-सतुलन पर भारी दबाव बना रहेगा। कहने का आशय यह है कि भारत की विदेशी सहायता पर निर्भरता आज भी कायम है ।

5 धन व आय की असमानता मे वृद्धि तथा निर्धनता की समस्या—पच-वर्षीय योजनाओ की अवधि मे भारत मे आर्थिक व सामाजिक असमानताएँ बढी हैं। यह योजनाओ के निर्धारित सामाजिक व आर्थिक उददेश्यों के विपरीत है। सच पूछा जाय तो देश मे योजनाओ की उपलब्धियो के प्रति निराशा, असन्तोष व अन्य आलोचनाओ का प्रमुख कारण यही है कि योजना-काल मे धनी अधिक धनी हो गये हैं एव निर्धन या तो निर्धन रह गये हैं अथवा अधिक निर्धन हो गये हैं। योजना की नीतियो के कारण आमदनी का हस्तातरण जनसाधारण व वेतनभोगी मध्यम-वर्ग की ओर से ऊँचे व्यवसायी वर्ग की तरफ हुआ है जिससे समाज मे आय व धन की असमानताएँ बढ गई है ।

1977-78 मे ग्रामीण क्षेत्रो म निम्नतम (bottom) 30% परिवारो का उपभोग व्यय मे अश 15% मध्यम 40% परिवारो का 33% तथा चोटी (Top) के 30% परिवारो का 52% था। शहरी क्षेत्रो मे ये अश क्रमश 14% 32% तथा 54 % थे। इस प्रकार उपभोग-व्यय की असमानताएँ आज भी विद्यमान हैं। ग्रामीण परिसम्पत्तियो (rural assets) के वितरण का गिनी-अनुपात लगभग 0 65 पर कायम है। इसमे साठ के दशक मे कोई परिवर्तन नही हुआ है। ग्रामीण व शहरी क्षेत्रो म उपभोग के वितरण के गुणांक क्रमश 0 30 तथा 0 33 पर कायम हैं। अत परिसम्पत्ति की असमानताएँ व उपभोग की असमानताएँ पहले जैसी ही बनी हुई हैं। इस सम्बन्ध मे अधिक विस्तृत विवेचन 'आय के असमान वितरण' के अध्याय म किया गया है।

देश के आर्थिक जीवन पर मुट्ठीभर उद्योगपतियो व बडे व्यावसायिक घरानो का प्रभाव पाया जाता है। घाटे की वित्त व्यवस्था ने मुद्रास्फीति की दशाएँ उत्पन्न की है। आर्थिक नियन्त्रणो को ठीक से लागू नही किया गया है। इस प्रकार भारत मे नियोजन काल म हम पूँजीवादी ढग के समाज की तरफ बढे है चाहे इस बीच म समाजवाद का कितना ही ढिंढोरा क्यो न पीटा गया हो। आज आय व धन की असमानताएँ नियोजित विकास की अवधि के प्रारम्भ की तुलना मे अधिक हो

गयी है। यद्यपि अर्थव्यवस्था आज भी मिश्रित ही बनी हुई है, लेकिन इसके मिश्रण के तत्व इसे समाजवादी प्रारूप की अपेक्षा पूँजीवादी प्रारूप के ही अधिक समीप ले जाते हैं।

विद्वानों का मत है कि भारतीय अर्थव्यवस्था चोटी के कुछ लोगों के लिए तो सक्रिय या क्रियाशील प्रतीत होती है क्योंकि उनको अनाप-सनाप लाभ प्राप्त हुए हैं। लेकिन विशाल जनसमुदाय के लिए यह निष्क्रिय व निकम्मी बनी हुई है, जिन्हें लाभ होने के बजाय घाटा हो गया है और जिन्हें आज अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। अतः योजना के लाभों का बँटवारा भी असमान रहा है।

• भारत में सम्पन्न वर्ग की उपभोग की प्रवृत्ति काफी ऊँची है जिससे वह विलासिता की वस्तुओं के उपभोग (conspicuous consumption) में बहुत अपव्यय करता है। परिणामस्वरूप, आय का असमान वितरण बचत में वृद्धि करने की दृष्टि से अनुकूल नहीं है। आय व धन की असमानता के अन्तर विभिन्न वर्गों के जीवन-स्तर में पाये जाने वाले अन्तरों के रूप में प्रकट होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि आर्थिक नियोजन की अवधि में देश समाजवाद की दिशा में विशेष प्रगति नहीं कर पाया है जिससे सामाजिक न्याय के वातावरण में विकास नहीं हो पाया है।

भारत में 1984-85 में 27 3 करोड़ व्यक्ति "निर्धनता की रेखा" से नीचे जीवन बिता रहे थे जो देश की जनसंख्या का 37% था। "निर्धनता की रेखा" के माप के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति माह 76 रु. का उपभोग तथा शहरी क्षेत्रों में 88 रु का उपभोग, (1979-80 के भावों पर) आधार-स्वरूप माने गए हैं। इन सीमाओं से नीचा उपभोग करने वाले व्यक्ति निर्धन माने गए हैं। IRDP व NREP से लाभान्वित परिवारों के आधार पर सरकार का यह दावा है कि निर्धनता का अनुपात 1977-78 में 48·4% से घट कर 1984-85 में 36 9% पर आ गया है। लेकिन जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, दिल्ली से सुरेश तेंदुलकर व पूना से नीलकण्ठ रथ एवं सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री वी. एम. दाण्डेकर आदि का मत है कि यह दावा काफी बढ़ा-चढ़ा रूप में किया जा रहा है। IRDP के अन्तर्गत वास्तविक सफलता कम मिली है। निर्धन परिवारों को दुधारू पशु या अन्य पशु परिसम्पत्ति के रूप में दिये गये थे, वे कइयों के पास कायम नहीं रह पाये हैं। अतः भविष्य में निर्धनता-उन्मूलन की दिशा में अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

6 निजी हाथों में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण में वृद्धि—सरकार की लाइसेंस-व्यवस्था के दोषपूर्ण ढंग से कार्यान्वित किये जाने के कारण औद्योगिक जगत में एकाधिकार की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। आर्थिक सत्ता कुछ बड़े

श्रौद्योगिक समूहो के हाथो मे सिमट गई है; जैसे बिडला, टाटा व मफतलाल ग्रुप ग्रादि। इन समूहो की परिसम्पत्तियो (assets) का मूल्य योजनाकाल मे काफी बढा है। ग्रार्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण से भी हम समाजवाद के ग्रपने लक्ष्य से विमुख हो गये हैं। जैसे उत्पादन की बडी इकाइयों की स्थापना से बडे पैमाने की किफायतें प्राप्त होती है जिससे कभी-कभी बडे पैमाने की इकाइयो को प्राथमिकता दी जाती है। लेकिन सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए छोटे उद्यमकर्त्ताग्रो को प्रोत्साहित करना भी ग्रावश्यक होता है, ताकि उद्यमशीलता का ग्रावश्यक मात्रा मे फैलाव व विस्तार हो सके।

7. साधन-सग्रह के क्षेत्र मे विफलताएँ—योजनाग्रो मे साधन सग्रह के निर्धारित लक्ष्यो व वास्तविक प्राप्तियो मे काफी ग्रन्तर पाया गया है जिससे प्रकट होता है कि इस दिशा मे नियोजन मे काफी सुधार करने की ग्रावश्यकता है। कहीं तो वास्तविक प्राप्तियाँ निर्धारित लक्ष्यो से काफी कम रही है, ग्रौर कही बहुत ग्रधिक। उदाहरणार्थ तृतीय योजना म 1960-61 के करारोपण की दरो पर चालू राजस्व मे 550 करोड रुपयो की बकाया राशि का लक्ष्य रखा गया था जबकि वास्तव मे इस मद मे 419 करोड रुपयो का घाटा रहा। घाटे की वित्त-व्यवस्था लक्ष्य से ग्रधिक रही है। तृतीय योजना मे यह 1,133 करोड रुपये हुई जो लक्ष्य से दुगुनी थी। चतुर्थ योजना मे भी घाटे की वित्त-व्यवस्था 2,060 करोड रुपये की हुई जो 850 करोड रुपये के लक्ष्य से $2\frac{1}{2}$ गुनी थी। छठी योजना 1980-85 मे घाटे की वित्त-व्यवस्था का लक्ष्य 5 000 करोड रुपये रखा गया था, जबकि वास्तविक राशि लगभग 15,684 करोड रुपये रही है, जो लक्ष्य के तिगुने से भी ग्रधिक है।[1]

ग्रत: नियोजन की वित्तीय व्यवस्था स्फीतिकारी रही है। विकास व उत्पादन के लक्ष्यो व उपलब्धियो के बीच मे भी ग्रन्तर पाया गया है। इसके दो कारण हो सकते हैं: एक तो लक्ष्यो का ठीक से निर्धारित नहीं किया जाना ग्रौर दूसरा योजना के क्रियान्वयन मे कमियो का पाया जाना। इस प्रकार नियोजन-काल मे योजनाग्रो के निर्माण व क्रियान्वयन दोनो मे कमियाँ रही हैं।

8 पूंजी-उत्पत्ति ग्रनुपात (Capital-output Ratio) मे वृद्धि तथा ग्रर्थ-व्यवस्था मे उत्पादकता के स्तर मे गिरावट की प्रवृत्तियाँ—भारत मे योजनाकाल मे पूंजी-उत्पत्ति ग्रनुपात 1950-51 मे 3 5:1 से बढकर, ग्रागे चल कर 6·2:1 तक हो गया है। जिसका ग्रर्थ यह है कि पहले एक रुपये की उत्पत्ति कर सकने के लिए $3\frac{1}{2}$ रुपये की पूंजी की ग्रावश्यकता होती थी, जबकि बाद म इसके लिए 6·2 रुपये

1. *Seventh Five Year Plan, 1985–90, Vol. I. p. 50.*

की पूँजी की आवश्यकता होने लगी, (स्थिर भावों पर) (at constant prices)। इससे अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादकता के स्थिर गिरे हैं तथा अकार्यकुशलता बढ़ी है। भारतीय अर्थव्यवस्था उत्तरोत्तर ऊँची लागत वाली व अकार्यकुशल अर्थव्यवस्था बनती गई है। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की ऊँची दर प्राप्त करना कठिन हो गया है, क्योकि बचत की दर 22% होने तथा पूँजी-उत्पत्ति अनुपात के

6 2 1 होने पर विकास की दर $\frac{22}{6\ 2}$ = लगभग 3·5% ही प्राप्त हो सकती है।

विद्वानों का मत है कि भारत मे पूँजी-उत्पत्ति-अनुपात को 6:1 से 5:1 पर लाने के लिए कृषिगत विनियोगों में वृद्धि करनी होगी। इनके लिए योजना मे विनियोगों का प्रारूप कृषि के पक्ष मे करना होगा।

9. सामाजिक सेवाओं के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण का अभाव—प्रोफेसर अमरत्या सेन का विचार है कि भारत में सामाजिक सेवाओं के प्रति पुराना (कंजरवेटिव) दृष्टिकोण रहा है।[1] देश में 2/3 लोग निरक्षर हैं, जीने की औसत आयु 52 (वर्ष अब 58 वर्ष) पर ठहरी हुई है, तथा भारत आज भी निर्धनता, अकाल, बीमारी, गन्दगी, जातिवाद, छुआछूत, पृथक्ता व अराजकता की दशाओं का शिकार बना हुआ है। स्त्रियों का समाज में नीचा स्थान पाया जाता है। चीन ने सामाजिक सेवाओं पर अधिक ध्यान दिया है।

10. योजनाकाल में काली मुद्रा का प्रसार—जैसा कि पहले बताया जा चुका है भारत में आर्थिक नियन्त्रणों, करों की ऊँची दरों व करों की चोरी के कारण देश मे काली मुद्रा का तेजी से फैलाव हुआ है। 1980-81 मे जितनी आमदनी पर कर लगाया जाना चाहिये था उसके लगभग 3/4 भाग पर कर की चोरी की गई है अथवा कर नहीं चुकाया गया है। 1983-84 मे सकल घरेलू उत्पत्ति (GDP) का 1/5 अश काली आमदनी का शिकार हो चुका था। भारत में काली मुद्रा पर मार्च 1985 मे सार्वजनिक वित्त व नीति पर राष्ट्रीय सस्थान (NIPFP), दिल्ली की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। उससे पता लगता है कि समस्या काफी गहन व जटिल हो गई है।

सरकार ने पिछले महीनों मे धनी वर्ग के लोगो पर छापे मारने व तलाशी लेने की गति तेज की है ताकि काला धन व काली मुद्रा ज्यादा से ज्यादा मात्रा मे बाहर निकाले जा सकें।

11. विविध क्षेत्रो मे अन्य कमियाँ—नियोजन काल मे कई अन्य क्षेत्रो मे

---

1 Amartya Sen, How is India Doing ? Mainstream, Republic Day 1983

भी असफलताएँ व कमियाँ रही हैं। देश में भूमि-सुधारों के सम्बन्ध में कानून तो काफी बना दिये गये लेकिन उनको ठीक ढंग से लागू नहीं किया जा सका जिससे कई प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं। सहकारी आन्दोलन व संगठनों का संख्यात्मक विकास तो काफी हुआ, लेकिन इनका गुणात्मक विकास नहीं हो पाया। भूतकाल में सामुदायिक विकास खण्डों में उत्पादन बढ़ाने की दिशा में प्रगति मन्द रही थी। सार्वजनिक उद्योगों के प्रबन्ध मे कई प्रकार की कमियाँ रही हैं। पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन पर अधिक बल देने से उपभोग वस्तुओं का उत्पादन अधिक नहीं बढ़ाया जा सका, जिससे देश मे इनका अभाव बना रहा। अल्पकाल मे परिणाम देने वाली परियोजनाओं पर दीर्घकाल में परिणाम देने वाली परियोजनाओं की तुलना में कम बल दिया गया जिससे अर्थव्यवस्था में काफी तनाव व असन्तुलन उत्पन्न हो गये हैं। परिवार नियोजन के क्षेत्र में भी 1975 तक विशेष सफलताएँ नहीं मिली, क्योंकि इस कार्यक्रम का महत्व काफी देर से समझा गया। इस क्षेत्र में विशेष प्रयास तृतीय योजना की अवधि में चालू किए गये थे। 1951-61 की शताब्दी में परिवार-नियोजन पर आवश्यकता से कम ध्यान देने के कारण देश में 'जनसंख्या के विस्फोट' की स्थिति उपस्थित हो गयी। भारतीय नियोजन में वित्तीय व्यय के लक्ष्यों की प्राप्ति करने पर अधिक बल दिया गया है और भौतिक लक्ष्यों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा सका है।

सरकार ने एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के लिए MRTP अधिनियम, 1969 के अन्तर्गत एकाधिकार-आयोग गठित किया था। नये उद्योगकर्त्ताओं को प्रोत्साहन दिया गया तथा देश के पिछड़े हुए प्रदेशों के आर्थिक विकास पर बल देकर क्षेत्रीय व प्रादेशिक असन्तुलनों को कम करने का प्रयास किया गया तथा लघु व सीमान्त कृषकों एवं खेतिहर मजदूरों के लाभ के लिए विभिन्न कार्यक्रम निर्धारित किये गये एवं देहातों मे रोजगार बढ़ाने के लिए शीघ्रगामी कार्यक्रम (crash programmes) चालू किये गये जो योजनाओं के अन्य कार्यक्रमों के अलावा थे। शहरी सम्पत्ति पर सीमा लगाने पर जोर दिया गया। अब तक 20 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके समाज के कमजोर वर्गों को साख की अधिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है।

सारांश—उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि योजना-काल मे विभिन्न दिशाओं में कई नई शुरुआतें की गई हैं और उत्पादन के नये कीर्तिमान स्थापित किये गये है। वर्षों से गतिहीन व स्थिर रहने वाली भारतीय अर्थव्यवस्था गतिमान हुई है व साथ मे आधुनिकीकरण की ओर भी प्रवृत्ति हुई है और देश मे आर्थिक विकास की निरन्तर प्रक्रिया चालू हुई है। इसी अवधि मे देश को युद्धों के कारण सुरक्षा का भी काफी भार उठाना पड़ा है। योजना-काल मे सूखे व अकाल के कारण कृषिगत अर्थव्यवस्था को समय-समय पर काफी धक्का पहुँचा है। इसे आर्थिक नियोजन के बावजूद महँगाई, बेकारी, निर्धनता, धन व आय की असमानता,

काली मुद्रा, निजी क्षेत्र मे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण तथा अपर्याप्त साधन-संग्रह आदि समस्याओ का सामना करना पड़ा है । इस प्रकार नियोजन की यह अवधि सफलताओं व विफलताओ का एक अजीबोगरीब मिश्रण रही है । लक्ष्यो की तुलना मे उपलब्धि के स्तर नीचे रहे हैं तथा विकास मे अस्थिरता व अनिश्चितता भी पाई गई है जिसके लिए ज्यादातर मौसम को जिम्मेदार ठहराया गया है । सार्वजनिक विनियोगों को लक्ष्यो के अनुसार न बढ़ा सकने तथा आर्थिक प्रशासन की कमियों के कारण भी विकास में काफी बाधा पहुँची है ।

विश्व बैंक के अनुसार 1987 के भावो पर भारत की प्रति व्यक्ति आय 300 डालर आँकी गयी है, जो 1·4% की वार्षिक दर से बढने पर 2000 ईस्वी मे 313 डालर ही हो पायेगी । स्मरण रहे कि तब भी भारत काफी निर्धन देश ही बना रहेगा । अत हमारे समक्ष विकास की गति को तेज करने की एक महान चुनौती विद्यमान है ।

विश्व बैंक के विशेषज्ञो ने समय-समय पर भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति की सराहना की है । *उनका मत है कि पिछले वर्षों मे अन्तर्राष्ट्रीय मदी के वातावरण* मे भी भारत अपने विदेशी भुगतान को काफी सन्तुलित रख पाया है । लेकिन विश्व बैंक ने सातवी योजना (1985-90) व 1985-86 तथा 1986-87 के दो *सघीय बजटो मे अपनाई गई नीतियो के सन्दर्भ मे भारतीय अर्थव्यवस्था का* जो ताजा कार्यकारी सर्वेक्षण मई 1986 मे प्रस्तुत किया था उसमे अर्थव्यवस्था को सुदृढ करने के लिए निम्न सुझाव दिये गये थे जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

(i) *बजट मे घाटे की राशियो के बढते जाने से भारत आन्तरिक कर्ज के फदे* म पड जायगा । इससे देश पर ब्याज का भार काफी बढ जायगा । इसलिए घाटे के बजटो पर नियन्त्रण किया जाना चाहिये ।

(ii) *मारत के भुगतान सन्तुलन की स्थिति पर काबू पाने के लिए निर्यात-*सवर्द्धन करना बहुत जरूरी है । यदि सातवी योजना में निर्यात मे लगभग 6 8% वार्षिक वृद्धि नही की जा सकी, तो भारत को बड़े पैमाने पर व्यापारिक कर्ज लेने होगे *ताकि आयातो की आवश्यकता की पूर्ति की जा सके । इससे आगे चलकर* दिक्कतें बढ सकती हैं ।

(iii) भारत की अधिकांश समस्याओं का कारण यह है कि यहां बहुत से औद्योगिक *सयन्त्र ऐसे हैं जिनका आकार अपर्याप्त और छोटा है जिससे लागत* ऊँची आती है । सरकार ने अपनी नीतियो से कार्यकुशल फर्मों का विकास रोकती है तथा अकार्यकुशल फर्मों को सहायता देती है । फर्मों के आकार विकास *व आने-जाने पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगे हुऐ हैं । अत: लागत,* किस्म व नय परिवर्तनो पर ध्यान देने से भारत की विश्व मे प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति बढ सकती है ।

सरकार को उपर्युक्त सुझावों के अनुसार भावी नियोजन को नई दिशा देनी चाहिए।

मई 1987 में विश्व बैंक ने अपनी रिपोर्ट "India An Industrialising Economy in Transition" में आयातों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाने व रुपये का उचित मात्रा में अवमूल्यन करने पर जोर दिया ताकि औद्योगिक वस्तुओं के निर्यात बढ़ाये जा सकें। हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि भारतीय रुपये का अवमूल्यन करने से देश को विशेष लाभ नहीं होगा, क्योंकि हमारे यहाँ निर्यात-माल की सप्लाई बढ़ाना कठिन है। इसलिए अवमूल्यन से लाभ की बजाय हानि होने का अंदेशा ज्यादा है।

अतः हमारी प्रमुख विफलताएं आर्थिक असमानता, बेरोजगारी व निर्धनता, बजटों के घाटे, (योजना-व्यय व गैर-योजना व्यय में अत्यधिक वृद्धि के कारण) अकार्यकुशल संयन्त्रों की भरमार, उत्पादन की ऊँची लागत, काली मुद्रा तथा मुद्रा-स्फीति की है। भावी योजनाओं में स्पष्ट नीतियाँ व प्रभावशाली कार्यक्रम लागू करके लोगों की रोटी-रोजी व आर्थिक विकास की समस्याएं हल की जानी चाहिएं। भारतीय अर्थव्यवस्था पहले से बहुत जटिल (Complex) हो गयी है। हमें रोजगार, अनाज, उत्पादकता व निर्यात बढ़ाने पर विशेष रूप से बल देना है। इनमें प्रगति हुए बिना भारतीय अर्थव्यवस्था संकट में पड़ सकती है।

प्रश्न

1. भारत में योजनाकाल के दौरान हुई आर्थिक प्रगति का विश्लेषण कीजिये। (Raj IIyr. T. D C., 1988)
2. भारत में नियोजन की प्रमुख उपलब्धियाँ क्या हैं? नियोजन की विफलताओं पर भी प्रकाश डालिये। (Raj IIyr. T. D. C., 1989)
3. "आर्थिक नियोजन की छः योजनाओं के बावजूद हमारी अर्थव्यवस्था अब भी दूसरों पर निर्भर तथा विभिन्न असफलताओं एवं कमियों से पीड़ित है।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (Raj IIyr. T. D C, 1986)
4. भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए। (Raj IIyr. T. D C., 1983 and 1985)
5. पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों एवं उपलब्धियों पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए। (Raj IIyr. T. D. C., 1981)

संदर्भ

1. Link (A Newsweekly), August 13, 1989, articles by Dr. Malcolm S. Adiseshiah, Biplab Das Gupta and Asmi Raza

———

25

योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था

(Financing the Plans)

प्रत्येक योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे परिव्यय के लिए सरकार को आवश्यक वित्तीय साधन जुटाने पड़ते हैं। इसके लिए साधन सग्रह (Resource Mobilisation) करारोपण व अन्य तरीकों का उपयोग किया जाता है ताकि मुद्रास्फीति न हो एव कार्यकुशलता व सामाजिक न्याय का भी पूरा ध्यान रखा जा सके। वित्तीय साधनों का विवेचन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(1) चालू राजस्व से बकाया राशि (Balance from Current Revenues) (BCR),

(2) अतिरिक्त साधन-सग्रह (Additional Resource Mobilisat on) (ARM),

(3) सावजनिक उपक्रमो का योगदान (Contribution of Public Enterprises) (प्रचलित दरो पर)

(4) आन्तरिक ऋण (Internal Loans),

(5) घाटे की वित्त-व्यवस्था (Deficit Financing , तथा

(6) विदेशी सहायता (Foreign Aid)।

इनमे से प्रथम पाँच साधनो से प्राप्त राशि घरेलू साधन' (Domestic Resources) के *अन्तर्गत आती है। हम पहले प्रत्येक साधन का अर्थ व महत्व स्पष्ट* करेंगे। तत्पश्चात् विभिन्न योजनाओ म प्रत्यक साधन का वित्तीय व्यवस्था म योगदान स्पष्ट किया जायगा।

1 चालू राजस्व से बकाया राशि—इसम बजट के राजस्व खाते (revenue account) की बचते आती हैं। केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारो को विभिन्न प्रकार के करो व गैर-कर साधनो से आय प्राप्त होती है लेकिन राजस्व खाते म कई प्रकार की मदो पर गैर-योजना व्यय (Non-plan expenditure) भी किया जाता है जैसे

5. घाटे की वित्त व्यवस्था—जब कुल सरकारी व्यय (रेवेन्यू व पूँजीगत) कुल आय (रेवेन्यू व पूँजीगत) से अधिक होता है तो घाटे की वित्त व्यवस्था की जाती है। इसके लिए सरकार रिजर्व बैंक के पास पड़ी अपनी नकद बकाया राशियों का प्रयोग कर सकती है, अथवा रिजर्व बैंक से उधार ले सकती है जिसके लिए प्रायः ट्रेजरी बिल जारी किए जाते हैं। भारत में इस साधन का उपयोग अत्यधिक मात्रा में किया गया है जिससे मुद्रास्फीति को बढ़ावा मिला है। वित्त-मन्त्रालय के अनुसार घाटे की वित्त व्यवस्था में 'सरकारी क्षेत्र को रिजर्व बैंक द्वारा दी जाने वाली शुद्ध उधार की राशि" (Net RBI Credit to the Government Sector) आती है। घाटे की वित्त व्यवस्था के आँकड़े सरकार की भारतीय रिजर्व बैंक के प्रति ऋण-ग्रस्तता (दीर्घकालीन व अल्पकालीन दोनों) के परिवर्तनों को सूचित करते हैं।

केवल द्वितीय योजना की अवधि को छोड़कर अन्य योजनाओं में वास्तविक घाटे की वित्त व्यवस्था का लक्ष्य से अधिक रही है। चतुर्थ योजना की अवधि में घाटे की वित्त-व्यवस्था का लक्ष्य 850 करोड़ रु. का था जबकि वास्तविक घाटे की वित्त व्यवस्था 2060 करोड़ रुपये रही। अप्रत्याशित व्यय का भार आ जाने के कारण घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लेना पड़ता है, जैसे बाढ़, अकाल, सूखा, अन्य प्राकृतिक विपदाओं, युद्ध आदि की विशेष परिस्थितियों के कारण अत्यधिक व्यय करना पड़ता है।

छठी योजना (1980-85) में घाटे की वित्त-व्यवस्था का लक्ष्य 5 000 करोड़ रुपये का रखा गया था। नवीनतम अनुमानों के अनुसार योजना में घाटे की वित्त व्यवस्था इसके तिगुने से अधिक, अर्थात् 15 684 करोड़ रु. रही है।

यह साधन काफी स्फीतिकारी (inflationary) माना गया है लेकिन अभी तक इसे नियन्त्रित नहीं किया जा सका है। एक सीमा से परे घाटे की वित्त-व्यवस्था आर्थिक संकट उत्पन्न करती है। लेकिन उस सीमा को निर्धारित करना तथा उसको बनाये रखना काफी कठिन होता है। इस पर देश के आर्थिक विकास की अवस्था, उत्पादन की सम्भावना, मुद्रा की वर्तमान सप्लाई आदि का प्रभाव पड़ता है।

6 विदेशी सहायता—भारत में आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता का उपयोग किया गया है। इसके कारण मूलधन व ब्याज के भुगतान की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। योजनाओं में उत्तरोत्तर अधिक मात्रा में विदेशी सहायता का उपयोग किया गया है, फिर भी घरेलू साधनों का योगदान प्रतिशत के रूप में अधिक रहा है। छठी योजना में विदेशी साधनों की राशि 9,929 करोड़ रुपये (विदेशी विनिमय कोषों से निकाली जाने वाली 1,000 करोड़ रुपये की राशि के अलावा) आँकी गई थी, जो सार्वजनिक क्षेत्र में प्रस्तावित कुल परिव्यय का 10·2% थी। वास्तविक राशि के 8529 करोड़ रुपये (7·7%) रहने का अनुमान है

विभिन्न योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था

(वास्तविक राशि (करोड़ रुपयों में)

मदें	प्रथम योजना ('51-56)	द्वितीय योजना ('56-61)	तृतीय योजना ('61-66)	वार्षिक योजनाएं ('66-69)	चतुर्थ योजना ('69-74)	पंचम योजना ('74-79)	वार्षिक योजना ('79-80)	छठी योजना ('80-85) (नवीनतम अनुमान
1. चालू राजस्व से बचाया राशि	382	11	(–)419	346	(–)236	6636	2,217	1,893
2. अतिरिक्त साधन संग्रह	255	1,052	2,892	,908	4,280	10,300	2,115	32,970
3. सार्वजनिक उपक्रमों का अंशदान	115	167	415	398	1,431	2,583	1,696	5,810
4. आन्तरिक ऋण	686	1,439	2,113	1,890	6,538	12,424	4,132	45,635
5. घाटे की वित्त व्यवस्था	333	954	1,133	676	2,060	3,560	1,355	15,684
6. कुल घरेलू साधन	1,771 (90·4%)	3,623 (77·5%)	6,154 (71·8%)	4,218 (63·6%)	14,073 (87%)	35,503 87·2%)	11,515 (91·4%)	1,02,202 (92·3%)
7. विदेशी सहायता	189 (9·6%)	1,049 (22·5%)	2,423 (28 2%)	2,410 (36·4%)	2,087 (13%)	5,209 (12 8)	1,086 (8·6%)	8,529 (7·7%)
8. समग्र साधन	1,960	4,672	8,577	6,628	16,160	40,712*	12,601	1,10,821

1. Report on Currency and Finance, Vol. II, 1987-88, pp. 106–107. (पांचवी योजना व बाद के लिए)

* इसमें 1974–77 की वास्तविक स्थिति तथा 1977–79 की अनुमानित स्थिति को जोड़ दिया गया है। (Indian Economic Statistics : Public Finance, December 1988, pp.75-78) इसके लिए RBI रिपोर्ट में 39,303 करोड़ रुपयों का आवंटन भी दिया गया है जिसमे 1974–75 के अनुमान चालू कीमतों पर हैं तथा आगे के वर्षों के 1975-76 की कीमतों पर हैं। इस राशि में 85·2% साधन घरेलू व 14·8% बाहरी पूंजी आते हैं।

काफी सराहनीय थी। घाटे की वित्त-व्यवस्था का भी उपयोग प्रथम योजना की तुलना में काफी अधिक हुआ, लेकिन यह योजना में निर्धारित 1,200 करोड़ रुपये के लक्ष्य से कम रहा। द्वितीय योजना में मूल्यों पर काफी दबाव बढ़ गये थे और घाटे की वित्त-व्यवस्था ने इसमें अपना योगदान दिया था।

तृतीय पचवर्षीय योजना की वित्तीय व्यवस्था

तृतीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय के लिए 7,500 करोड़ रुपयों की राशि निर्धारित की गई थी, लेकिन वास्तविक व्यय 8 577 करोड़ रुपयों का हुआ। इस प्रकार वास्तविक व्यय प्रस्तावित व्यय से 1,077 करोड़ रुपये अधिक हुआ। तृतीय योजना की वित्तीय व्यवस्था में विदेशी सहायता का योगदान 28·2% रहा। घाटे की वित्त-व्यवस्था का लक्ष्य 550 करोड़ रुपये था, लेकिन वास्तविक घाटे की व्यवस्था 1,133 करोड़ रुपयों की हुई, जो लक्ष्य से दुगुनी थी। अतिरिक्त साधन-मद्द 2,892 करोड़ रुपये के हुए, जबकि लक्ष्य 1,710 करोड़ रुपयों का था। चालू राजस्व से बकाया राशि 419 करोड़ रुपये ऋणात्मक (negative) रही, जबकि इस मद के अन्तर्गत लक्ष्य 550 करोड़ रुपये जुटाने का था। इस प्रकार वस्तुतः इस मद के अन्तर्गत 969 करोड़ रुपयों की कमी रही।

तीन वार्षिक योजनाओं (1966–69) की वित्तीय व्यवस्था

इस अवधि में मन्दी के कारण करों से प्राप्त राशियाँ अनुमानों से नीची रहीं। गैर-योजना व्यय अधिक रहा, क्योंकि सरकारी कर्मचारियों के महगाई भत्ते में वृद्धि की गयी, खाद्यान्नों के लिए सब्सिडी दी गयी एवं अवमूल्यन के बाद 1966-67 में विदेशी ऋणों पर रुपयों में देय ब्याज की राशि बढ़ गयी थी।

1966-69 की तीन वार्षिक योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की राशि 6 628 करोड़ रुपये रही। कुल साधनों का लगभग 36% विदेशी सहायता से प्राप्त किया गया, जो पहले से अधिक था। घाटे की वित्त-व्यवस्था से 676 करोड़ रुपये जुटाये गये जबकि लक्ष्य 335 करोड़ रुपयों का था।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना में वित्तीय व्यवस्था

चतुर्थ योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय के लिए 15,902 करोड़ रुपयों की राशि निर्धारित की गयी थी। लेकिन व्यय की संशोधित राशि 16,160 करोड़ रुपये रही जिसकी वित्तीय व्यवस्था नीचे दी जाती है।

1 चालू राजस्व से बकाया राशि—प्रारम्भिक अनुमानों के अनुसार इस मद ने 1 673 करोड़ रुपये प्राप्त करने का अनुमान था जो बाद में (−) 236 करोड़ रुपये रहा अर्थात् लक्ष्य की तुलना में 1,909 करोड़ रुपयों की गिरावट आई। यह स्थिति गैर-योजना व्यय में वृद्धि के कारण उत्पन्न हो गयी थी। सरकारी कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि, सुरक्षा व्यय में वृद्धि, प्राकृतिक विपदाओं के कारण राहत-सहायता, खाद्य-सब्सिडी, वगैरा इसके लिए उत्तरदायी रहे हैं।

2 सार्वजनिक उपक्रमों का अंशदान—केन्द्रीय सरकार के अन्य गैर-विभागीय औद्योगिक व व्यावसायिक उपक्रमों के अंशदान में इस्पात व उर्वरक उद्योगों के उत्पादन को धक्का पहुँचने से कमी आयी थी। राज्यों में भी राज्य-बिजली-बोर्डों व राज्य सड़क-परिवहन-निगमों की पर्याप्त आय नहीं हुई थी। इस मद से 1,431 करोड़ रुपये मिले जो लक्ष्य से 100 करोड़ रुपये कम थे।

3 अतिरिक्त साधन-संग्रह—इस मद से 4,280 करोड़ रुपये प्राप्त हुए, जो लक्ष्य से 1 082 करोड़ रुपये अधिक थे।

4 घाटे की वित्त व्यवस्था—घाटे की वित्त-व्यवस्था का लक्ष्य तो 850 करोड़ रुपये का था, लेकिन वास्तविक घाटे की वित्त-व्यवस्था 2,060 करोड़ रुपये की रही जो लक्ष्य से ढाई गुनी अधिक थी।

5 *विदेशी सहायता*—इसके अन्तर्गत वास्तविक प्राप्ति 2 087 करोड़ रुपये की हुई जबकि लक्ष्य 2 614 करोड़ रुपयों का था। इस प्रकार चतुर्थ योजना में सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय व्यवस्था में बाह्य सहायता का योगदान लगभग 13% रहा था।

पंचम पंचवर्षीय योजना में वित्तीय व्यवस्था

पंचम योजना 1974–79 में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की प्रस्तावित राशि 39,303 करोड़ रुपये रखी गई थी जबकि वास्तविक व्यय 40,712 करोड़ रुपये आंका गया है। इस योजना में चालू राजस्व से बकाया राशि 6,636 करोड़ रु., अतिरिक्त साधन-संग्रह से 10,300 करोड़ रु., सार्वजनिक उपक्रमों से अंशदान के रूप में 2,583 करोड़ रु., आंतरिक ऋणों से 12,424 करोड़ रु., घाटे की वित्त-व्यवस्था से 3,560 करोड़ रु. एवं विदेशी सहायता से 5,209 करोड़ रु. प्राप्त होने का अनुमान प्रस्तुत किया गया है।[1]

पंचम योजना की वास्तविक वित्त-व्यवस्था प्रस्तावित वित्त-व्यवस्था से काफी भिन्न रही है। चालू राजस्व से बकाया राशि लक्ष्य से अधिक रही। लेकिन अतिरिक्त साधन-संग्रह लक्ष्य से कम रहा। सार्वजनिक उपक्रमों से योगदान की राशि लक्ष्य से तिगुनी रही। आंतरिक ऋण से प्राप्त राशि लगभग लक्ष्य के मुताबिक ही रही। घाटे की वित्त-व्यवस्था लक्ष्य की $2\frac{1}{2}$ गुनी रही। विदेशी सहायता का उपयोग लक्ष्य से नीचा रहा। कुल मिलाकर पंचम पंचवर्षीय योजना की वित्त-व्यवस्था मुद्रास्फीति को बढ़ावा देने वाली रही है।

---

1. Indian Economic Statistics: Public Finance, December 1988, Government of India, *Ministry of Finance*, pp 75–78

छठी-पंचवर्षीय योजना 1980–85 की वित्त-व्यवस्था[1] (करोड़ रु. में)

विभिन्न साधन	लक्ष्य (1979–80 के भावों पर) (1)	वास्तविक स्थिति (नवीनतम अनुमान) (2)	वास्तविक प्राप्तियां (कुल के प्रतिशत के रूप में) (3)
(1) चालू राजस्व से बकाया राशि (1979–80 की दरों पर)	14478	1893	1·7
(2) अतिरिक्त साधन-संग्रह (अर्थात् अतिरिक्त करारोपण व सार्वजनिक उपक्रमों की बचत को बढ़ाने के उपायों सहित)	21302	32970	29·8
(3) सार्वजनिक उपक्रमों का अंशदान	9395	5810	5·2
(4) बाजार-ऋण, अल्प बचतें आदि	36396	45935	41·4
(5) घाटे की वित्त व्यवस्था	5000	15684	14·2
(6) विदेशी विनिमय कोषों को निकालना	1000	—	—
(7) बाह्य सहायता	9929	8529	7·7
कुल राशि	97500	110821	100·0

1. Report on Currency and Finance, 1987-88, Vol. II.p. 107

तालिका से स्पष्ट होता है कि छठी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र की प्रस्तावित वित्तीय व्यवस्था मे घरेलू साधनो का योगदान लगभग 89% रखा गया था। घाटे की वित्त-व्यवस्था का अंश 5% रखा गया था। वर्ष 1979-80 की करो की दरो पर चालू राजस्व से बकाया राशि 14 478 करोड़ रु रखी गई थी। अतिरिक्त-साधन-संग्रह से 21,302 करोड़ रु जुटाये जाने थे। योजना-परिव्यय म इस मद का योगदान 22% रखा गया था। इसके लिए सुझाव दिया गया कि सरकार को करो की चोरी को रोकना होगा, कर-प्रशासन मे सुधार करना होगा, ग्रामीण क्षेत्रो मे धनिक-वर्ग से कर वसूल करना होगा खाद्य (food) उर्वरक निर्यात आदि के अन्तर्गत सब्सिडी की राशि घटानी होगी तथा राज्य-विद्युत-बोर्डो, राज्य-सड़क-परिवहन-निगमो व अन्य सार्वजनिक उपक्रमो के घाटो को कम करना होगा।

छठी योजना की प्रस्तावित वित्त-व्यवस्था व वास्तविक वित्त-व्यवस्था में अन्तर

पूर्व तालिका से कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। ये इस प्रकार हैं:—

1- छठी योजना मे चालू राजस्व से वास्तविक बकाया राशि लक्ष्य से काफी नीची रही है। इसका कारण यह है कि गैर-योजना व्यय पर नियन्त्रण नहीं रखा जा सका है। सुरक्षा-व्यय ब्याज की अदायगी व सब्सिडी, जैसी मदो पर केन्द्र के कुल गैर-योजना राजस्व व्यय का लगभग ¾ अंश व्यय हो जाता है। इस प्रकार गैर-योजना राजस्व-व्यय के बढ़ने से चालू राजस्व से बकाया राशि कम रही है।

2 सार्वजनिक उपक्रमो का अंशदान भी लक्ष्य से कम रहा है। इनकी प्रबन्ध-व्यवस्था व मूल्य-नीति मे उचित सुधार करके इनसे लाभ बढ़ाये जा सकते हैं।

3 छठी योजना मे "अतिरिक्त साधन-संग्रह" से वित्तीय साधन लक्ष्य से 50% अधिक जुटाये जा सकते हैं। इनमे प्राप्त होने वाली राशि का लक्ष्य 21302 करोड़ रु रखा गया था जब कि वास्तविक प्राप्ति लगभग 32970 करोड़ रु रही है जो कुल साधन-संग्रह का लगभग 30% रही है।

4 छठी योजना मे बाजार ऋण के लक्ष्य प्राप्त कर लिये गये हैं। इस स्रोत का भविष्य मे भी अधिक उपयोग किया जायेगा। इसके माध्यम से साधन जुटाने की काफी सम्भावनाए पायी जाती हैं।

5 छठी योजना मे घाटे की वित्त-व्यवस्था 15684 करोड़ रु की हुई है। यह योजना के लक्ष्य के तिगुने से भी अधिक है। इससे अर्थव्यवस्था म तरलता (liquidity) बढ़ती है तथा स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न हो जाते हैं। छठी योजना मे घाटे की वित्त-व्यवस्था कुल साधन-संग्रह का 14·2% रही।

6. बाह्य सहायता का योगदान 7 7% रहा। भारत के लिए विदेशी सहायता की स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं लगती। 1985-86 से IMF के कर्ज की वापस

प्रदायगी चालू होने से भविष्य में ऋण-सेवा-भार में वृद्धि होगी। अतः हमें निर्यात-प्रोत्साहन व चुनी हुई वस्तुओं के कार्यकुशल आयात-प्रतिस्थापन पर अधिक बल देना चाहिए।

7. अन्त में इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि छठी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में वास्तविक व्यय (स्थिर भावों पर) लक्ष्य से लगभग 20% नीचा रहा है, हालांकि प्रचलित भावों पर सार्वजनिक परिव्यय की कुल राशि 1,11000 करोड़ रु. के समीप रही है। छठी योजना की वित्तीय व्यवस्था भी मूलतः स्फीतिकारी रही है। इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति के दबाव बढ़े हैं। सरकार को घाटे की अर्थव्यवस्था से उत्पन्न मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण करने का सतत प्रयास करना पड़ा है।

सातवीं योजना (1985-90) की प्रस्तावित वित्तीय व्यवस्था[1]

सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय के लिए 1,80,000 करोड़ रु. की राशि निर्धारित की गयी है जिसकी प्रस्तावित वित्तीय व्यवस्था निम्न तालिका में दर्शायी गयी है :—

साधन	(करोड़ रु. में)	कुल का प्रतिशत
(1) 1984–85 के कर की दरों पर चालू राजस्व से बकाया राशि	(–) 5,249	(–) 2·9
(2) सार्वजनिक उपक्रमों का अंशदान	35,485	19·7
(3) बाजार से ऋण (शुद्ध)	30,562	17·0
(4) अल्प बचत	17,916	10 0
(5) राज्य प्रोविडेण्ट फण्ड	7,327	4·1
(6) वित्तीय संस्थाओं से अवधि-कर्ज	4 639	2·6
(7) विविध पूंजीगत प्राप्तियाँ (शुद्ध)	12,618	7·0
(8) अतिरिक्त साधन संग्रह	44 702	24 8
(9) विदेशों से पूंजी-आगम (शुद्ध)	18,000	10·0
(10) घाटे की वित्त व्यवस्था	14,000	7·8
(11) कुल साधन	1,80,000	100·0(लगभग)

1 Seventh Five Year Plan, 1985–90, Vol. I, pp. 52–57. प्रतिशत निकाले गये हैं।

इनमें से प्रत्येक मद की विशेष बातें नीचे दी जाती हैं :—

1 चालू राजस्व से बकाया राशि—अनुमान है कि 1985–90 की अवधि में केन्द्र को (1984–85 के कर की दरों पर) चालू राजस्व की बकाया राशि में 12011 करोड़ रु. का घाटा रहेगा, लेकिन राज्यों को 6762 करोड़ रु. की बचत रहेगी जिससे इस मद में 5249 करोड़ रु. की ऋणात्मक राशि दिखायी गयी है जो कुल साधन-संग्रह का 3% ऋणात्मक रहेगी। यह एक चिन्ता की स्थिति है।

2. सार्वजनिक उपक्रमों का अंशदान—1984–85 की दरों पर इस मद से 35,485 करोड़ रु. की राशि मिलने का अनुमान है जो कुल साधनों का $\frac{1}{5}$ होगी। छठी योजना में 1979–80 की दरों पर इस मद से 5810 करोड़ रु. की राशि मिली थी। इसमें अतिरिक्त साधन-संग्रह की आय शामिल नहीं है। भारत में राज्य सरकारों की विद्युत-बोर्डों व राज्य परिवहन निगमों में काफी घाटा होता है। अतः इस मद से इतनी बड़ी राशि जुटा पाना कठिन लगता है।

3. विविध पूंजीगत प्राप्तियों में कृषकों, सरकारी कर्मचारियों व स्थानीय संस्थाओं आदि से कर्जे व अग्रिम राशियों की वसूलियाँ व गैर सरकारी प्रोविडेन्ट कोषों की जमाएँ व अन्य जमाएँ शामिल होती हैं। सातवीं योजना में आन्तरिक कर्जे का योगदान लगभग $\frac{1}{5}$ आंका गया है।

4. अतिरिक्त साधन संग्रह—प्रत्यक्ष व परोक्ष करों, रेलों व अन्य सार्वजनिक उपक्रमों से अधिक साधन जुटाये जाते हैं। केन्द्र द्वारा 22,490 करोड़ रु. के एवं राज्यों द्वारा 22,212 करोड़ रु. के अतिरिक्त साधन जुटाये जायेंगे। राज्य सरकारों को इस दिशा में भारी चुनौती का सामना करना है। **राज्य विद्युत मण्डलों के आगामी 5 वर्षों के सम्भावित 11,757 करोड़ रु. के घाटों को 7000 करोड़ रु. की बचतों में बदलना है। राज्य सड़क-परिवहन-निगमों के सम्भावित 1,434 करोड़ रु. के घाटों को 2200 करोड़ रु. के लाभों में बदलना है।** इसी प्रकार सिंचाई परियोजनाओं से भी प्रतिफल प्राप्त करने हैं। ये कार्य काफी कठिन जान पड़ते हैं। सातवीं योजना में अतिरिक्त साधन-संग्रह का योगदान $\frac{1}{4}$ आंका गया है।

5. विदेशों से पूंजी का शुद्ध आगम—यह प्रस्तावित परिव्यय का 10% रखा गया है। भारत को रियायती शर्तों पर विदेशी सहायता की अधिक आवश्यकता है।

6. घाटे की वित्त-व्यवस्था—यह प्रस्तावित परिव्यय का 7.8% रखी गयी है। लेकिन भूतकाल में यह लक्ष्य की $2\frac{1}{2}$–3 गुनी रही है जिससे केवल इस लक्ष्य के आधार पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता। 1985–88 के तीन वर्षों में घाटे की वित्त व्यवस्था इस सीमा को पार कर गयी है। यह 18,463 करोड़ रु. तक पहुँच गयी है।

सातवीं योजना के लिए दीर्घकालीन फिस्कल नीति की घोषणा दिसम्बर, 1985 में की गयी थी। इसमें अनुमान लगाया गया था कि कर-अनुपात (राष्ट्रीय आय का) 1984-85 में 16·3% से बढ़कर 1989–90 में 18·3% हो जायगा। सातवीं योजना के समक्ष साधनों का गहरा संकट उपस्थित हो गया है। एक तरफ सार्वजनिक उपक्रमों का अंश नहीं बढ़ पा रहा है जबकि आन्तरिक कर्ज की राशि बहुत ऊँची हो गई है तथा घाटे की वित्त-व्यवस्था भी ऊँची हो गई है।

सार्वजनिक क्षेत्र में योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के प्रारूप की समीक्षा

विभिन्न योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के प्रारूप का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस सम्बन्ध में अतिरिक्त साधन संग्रह, आन्तरिक ऋणों, घाटे की वित्त व्यवस्था तथा विदेशी सहायता का योगदान उल्लेखनीय रहा है। दुर्भाग्यवश सार्वजनिक उपक्रम विकास के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध करने की दृष्टि से विफल रहे हैं। नीचे विभिन्न साधनों का योजनाओं में वित्तीय व्यवस्था की दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(1) अतिरिक्त साधन संग्रह
(Additional Resource Mobilisation)

अतिरिक्त साधन-संग्रह का नियोजन की वित्तीय व्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। बढ़ी हुई आय का उत्तरोत्तर अधिक अंश नियोजन के लिए उपलब्ध होने से ही विकास की प्रक्रिया जारी रह सकती है। इस कार्य को अतिरिक्त करारोपण (additional taxation) के द्वारा किया जा सकता है तथा साथ में सब्सिडी की राशि में कमी की जा सकती है एवं उचित नीतियाँ अपनाकर सार्वजनिक उपक्रमों की बचतों को बढ़ाया जा सकता है।

1950–51 में कर राजस्व राष्ट्रीय आय का लगभग 7% था जो बढ़कर 1984–85 में 16 3% पर आ गया है।

अतिरिक्त साधन संग्रह की प्रगति

(करोड़ रुपये)

प्रथम योजना	255
द्वितीय योजना	1 052
तृतीय योजना	2 892
तीन वार्षिक योजनाएँ	908
चतुर्थ योजना	4 280
पंचम योजना	10 300
छठी योजना	32 970
सातवीं योजना (प्रस्तावित राशि)	44,702

तालिका से स्पष्ट होता है कि अतिरिक्त साधन संग्रह (ARM) से छठी योजना मे जुटाई गई राशि पाचवी योजना की तुलना मे तिगुनी से भी अधिक थी।

अतिरिक्त साधन-संग्रह का उत्तरोत्तर अधिक मात्रा मे उपयोग किया गया है। सघीय कर-राजस्व मे राज्यीय कर-राजस्व की तुलना मे ज्यादा वृद्धि हुई है। प्रत्यक्ष करो की अपेक्षा परोक्ष करो का योगदान ज्यादा ऊँचा रहा है। परोक्ष करो मे भी सघीय उत्पादन शुल्को की प्रगति काफी अधिक रही है। प्रथम योजना की अवधि मे इनसे प्राप्त राजस्व राष्ट्रीय आय का 1% था जो तृतीय योजना म 4% हो गया। प्रत्यक्ष करो मे आय-कर से राजस्व की स्थिति म विशेष सुधार नहीं हो पाया है, लेकिन निगम-कर की प्रगति सराहनीय रही ह। कृषिगत क्षेत्र म प्रत्यक्ष करो से प्राप्त राजस्व की स्थिति सबसे ज्यादा निराशाजनक रही है। प्रथम याजना म कृषिगत प्रत्यक्ष करो से प्राप्त राजस्व (कृषि-आयकर व भू-राजस्व) राष्ट्रीय आय का 0 71% था, जो बाद म काफी घट गया है। भविष्य म कृषिगत प्रत्यक्ष करो का उपयोग योजनाओ के लिए वित्तीय साधन जुटाने की दृष्टि से अधिक मात्रा म किया जाना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रो मे बढती हुई आय तथा योजनाओ के लिए साधन सग्रह—योजना-काल मे कृषिगत क्षेत्र पर कर-भार नही बढाया जा सका है। योजनाओ से इस क्षेत्र को काफी लाभ पहुँचा है। इसलिए इसे भावी विकास के लिए अधिक मात्रा मे साधन प्रदान करने चाहिए। पिछले वर्षों मे अधिक उपज देने वाली किस्मो के बीजो एव खाद सिंचाई व कीटनाशक दवाइयो का प्रयोग करने से कुछ क्षेत्रो म कृषको की आमदनी बढी है। बढी हुई आय का कुछ अश आर्थिक विकास म अवश्य लगाया जाना चाहिए।

इस सम्बन्ध म दो तरह के मत प्रकट किय गय है। एक तो यह कि सामान्य आय-कर का विस्तार कृषि-आय पर भी किया जाना चाहिए जिससे एक सीमा के बाद कृषि-आय पर भी वर्द्धमान दरो से आय-कर वसूल किया जा सके। इस मत क समर्थको का कहना है कि आमदनी तो आमदनी है चाहे वह गैर-कृषि क्षेत्र स हो अथवा कृषि क्षेत्र से हो। इनम कोई भेद-भाव नही होना चाहिए। कृषि के व्यवसायीकरण की प्रवृत्ति के जोर पकडने से आगे चलकर कृषि-आय व गैर-कृषि आय का भेद और भी अनुचित प्रतीत होने लगेगा। अत ऐसे व्यक्ति कृषि-आय पर भी आय-कर लगाने का समर्थन करते हैं।

लेकिन कुछ व्यक्तियो का विचार है कि इस समय कृषि-आय पर आय-कर लगाना उचित नही होगा, क्योकि पिछले वर्षों मे ही कृषि के क्षेत्र मे विनियोग बढा है और आय कर के लग जाने से यह भविष्य मे हतोत्साहित होगा और कृषि मे व्यवसायीकरण की प्रक्रिया पर इसका विपरीत प्रभाव पडेगा। इसके अलावा कृषि-आय-कर के सम्बन्ध मे कई व्यावहारिक कठिनाइया भी है। गैर-कृषि-आय-कर मे

ही कर की काफी चोरी होती है, इसलिए ऐसे कर का विस्तार कृषि-आय पर करने से कर की चोरी का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जायगा।

दूसरा मत यह है कि देहातों में ऐच्छिक बचत को प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे ग्रामीण ऋण-पत्र (डिबेन्चर) बेचकर, जीवन बीमा का प्रचार बढ़ाकर, बैंकिंग व डाकघरों की सुविधा पहुँचाकर लोगों को अधिक बचत के लिए प्रेरित किया जा सके। सरकार आवश्यकतानुसार कृषिगत साधनों जैसे उर्वरक व औजार आदि के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता (subsidy) भी कम कर सकती है। इस प्रकार बढ़ती हुई ग्रामीण आय में से विकास के लिए साधन जुटाने के कई उपाय हैं जिनका यथासम्भव उपयोग किया जाना चाहिए। सरकार व्यावसायिक फसलों पर विशेष कर (cess) लगा सकती है, जोतों के आकार के अनुसार भूराजस्व की दरों में परिवर्तन किया जा सकता है, इत्यादि। लेकिन इन सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए राजनीतिक इच्छा-शक्ति की नितांत आवश्यकता है।

(2) सार्वजनिक उपक्रमों से लाभ प्राप्त करना

करारोपण से अतिरिक्त साधन जुटाने में कठिनाइयाँ होने के कारण सरकार को सार्वजनिक उपक्रमों से अधिक बचत प्राप्त करने का प्रयास करना होगा। 31 मार्च, 1988 को केन्द्रीय सरकार के गैर-विभागीय व्यावसायिक व औद्योगिक उपक्रमों में लगभग 58125 करोड़ रुपयों की पूँजी लगी हुई थी। 1987–88 में सार्वजनिक क्षेत्रों की इकाइयों में लगी पूँजी पर प्रतिशत दर (rate of return on capital employed) 12·2% प्रतिशत थी तथा इसी वर्ष कर के पश्चात् शुद्ध लाभ की राशि 2183 करोड़ रु रही जो पिछले वर्ष से अधिक थी। भविष्य में लाभ की मात्रा में और वृद्धि की जानी चाहिए। सार्वजनिक उपक्रमों की मूल्य-नीति में परिवर्तन करके, उनकी लागत में कमी करके एवं प्रबन्धकीय कार्यकुशलता में सुधार लाकर प्रतिफल बढ़ाये जा सकते हैं। रेल, डाक-तार विभाग, राज्य विद्युत बोर्ड तथा सड़क-परिवहन निगमों की कार्य-प्रणाली में सुधार करके इनकी वित्तीय व्यवस्था में सुधार लाया जाना चाहिए।

(3) घाटे की वित्त-व्यवस्था

अध्याय के प्रारम्भ में बताया जा चुका है कि जब कुल सरकारी व्यय (पूँजी + राजस्व) सरकारी आय (पूँजी + राजस्व) से अधिक हो जाता है तो सरकार उसकी पूर्ति रिजर्व बैंक से धनराशि उधार लेकर करती है। इसके लिए सरकार की रिजर्व बैंक के पास पड़ी हुई नकद बकाया राशियों का उपयोग किया जा सकता है एवं ट्रेजरी बिल बेचकर रिजर्व बैंक से उधार लिया जा सकता है। घाटे की वित्त-व्यवस्था के आंकड़े सरकार की भारतीय रिजर्व बैंक के प्रति ऋणग्रस्तता (दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन दोनों) के परिवर्तनों को सूचित करते हैं। राज्य सरकारें भी बैंकों से उधार लेकर ओवरड्राफ्ट की प्रक्रिया के द्वारा घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग करती रही हैं।

हम पहले बता चुके है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था साधन-सग्रह का एक जोखिम से भरा हुआ साधन है। इसमे मुद्रास्फीति का भय निहित है। कृषिगत पैदावार तथा औद्योगिक उत्पादन बढने की स्थिति मे तो इस अस्त्र का उपयोग सीमित मात्रा मे किया जा सकता है, लेकिन उत्पादन न बढने पर अथवा कम बढने पर यह पद्धति गम्भीर मुद्रास्फीति को जन्म दे सकती है। भारतीय योजनाओ मे द्वितीय योजनावधि को छोडकर, घाटे की वित्त व्यवस्था सदैव योजना मे निर्धारित लक्ष्यो से अधिक रही है और यह मुद्रास्फीति का एक प्रमुख कारण मानी गई है।

निम्न तालिका मे एक साथ विभिन्न योजनाओ में घाटे की वित्त-व्यवस्था के लक्ष्यो व वास्तविक स्थिति का परिचय दिया गया है—

(करोड रु मे)

योजना	लक्ष्य	वास्तविक स्थिति
प्रथम योजना	290	333
द्वितीय योजना	1,200	954
तृतीय योजना	550	1,133
तीन वार्षिक योजनाएं (1966–69)	335	676
चतुर्थ योजना	850	2,060
पचम योजना	1,354	3,560
छठी योजना	5,000	15,684
सातवी योजना (1985–90)	14,000	1985–88 के तीन वर्षो मे लगभग 18463

इस प्रकार योजनाओ की वित्तीय व्यवस्था में घाटे की वित्त-व्यवस्था का काफी मात्रा मे उपयोग किया गया है। छठी योजना के लिए 5,000 करोड रुपयो को घाटे की वित्तव्यवस्था का उपयोग करने का लक्ष्य रखा गया था, जबकि वास्तविक घाटे की वित्त-व्यवस्था लक्ष्य के तिगुने से भी अधिक रही है। इससे अर्थव्यवस्था म मुद्रास्फीति के दबाव बढे है, लेकिन सरकार ने उनको नियन्त्रित करने का प्रयास किया है। सातवी योजना के प्रथम तीन वर्षों मे घाटे की वित्त-व्यवस्था योजना के लक्ष्यो को पार कर चुकी है।

(4) विदेशी सहायता

भारत मे नियोजित विकास के लिए विदेशी साधनो का उपयोग किया गया है। प्रति वष विनियोग की दर व बचत की दर के अन्तर के बराबर विदेशी साधनो का इस्तेमाल किया जाता है। हम पहले बता चुके है कि प्रत्येक पचवर्षीय योजना मे विदेशी सहायता का उपयोग पहले की पचवर्षीय योजना से अधिक मात्रा मे किया गया है। परिणामस्वरूप, देश पर ऋण-सेवा का भार बढता गया है। भारत आज भी विदेशी सहायता पर आश्रित है।

विदेशी सहायता के भार का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि अब हमें पुराने ऋणों का भुगतान करने के लिए नये ऋण लेने पड रहे हैं। चतुर्थ योजना में विदेशी सहायता की मात्रा को ऋण की अदायगी व ब्याज को निकालकर योजना के अन्त में योजना के प्रारम्भ के स्तर की तुलना में आधा करने का लक्ष्य रखा गया था। लेकिन यह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका। भारत रियायती शर्तों पर विदेशी सहायता से मुक्त होना चाहता है। लेकिन क्रूड तेल व पेट्रोल-पदार्थों के भावों में वृद्धि होने से छठी योजना की अवधि (1980–85) में हमें पुन. अधिक मात्रा में विदेशी सहायता लेने के लिए बाध्य होना पडा। नवम्बर, 1981 में भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से 5 बिलियन SDR, अथवा 5,234 करोड रुपये, का ऋण मंजूर करवाया था ताकि भुगतान-असन्तुलन की समस्या का सामना किया जा सके। बाद में इसमें से 3 9 बिलियन SDR का उपयोग करके शेष 1·1 बिलियन SDR की किस्त न लेने का निर्णय घोषित किया गया था।

भावी योजनाओं के लिए वित्तीय साधन जुटाने के लिए सुझाव

भारत में सार्वजनिक बचतों (Public savings में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि सार्वजनिक विनियोगों के लिए अधिक साधन जुटाए जा सकें। वित्त के कुछ नये स्रोत इस प्रकार हैं जिनका उपयोग किया जाना चाहिए—

(i) चुने हुए ढंग पर सब्सिडी की राशि कम की जानी चाहिए। उर्वरकों खाद्य (food), निर्यातों, नियन्त्रित वस्त्र, आदि पर अनुमान दरों पर सब्सिडी की राशियां काफी ऊँची हैं और ये काफी बढ गई हैं। 1989–90 के बजट अनुमानों में खाद्यान्नों पर सब्सिडी की राशि 2,200 करोड रु. तथा उर्वरकों पर 3651 करोड रु. एवं निर्यातों पर 1621 करोड रु. रखी गयी है। सब्सिडी का वित्तीय भार आज भी काफी ऊँचा बना हुआ है। प्रयत्न करके विभिन्न सब्सिडी की राशियों में कमी की जानी चाहिए ताकि योजना के लिए अधिक वित्तीय साधन उपलब्ध हो सकें। इसके लिए खाद्यान्नों व उर्वरकों के भावों में वृद्धि करनी होगी।

(ii) केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक व व्यावसायिक उपक्रमों का वर्तमान समय में (करों के बाद) कम प्रतिफल मिलता है जिसमें वृद्धि की जानी चाहिए और इनके लिए इनकी कार्यकुशलता में सुधार किया जाना चाहिए तथा मूल्य-नीति में आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए।

(iii) केन्द्रीय व राज्य परिवहन उपक्रमों, राज्यों की सिंचाई व विद्युत-परियोजनाओं व इनके अन्य उपक्रमों के प्रतिफल भी बढाये जाने चाहिए। राज्यों को सिंचाई के साधनों तथा राज्य विद्युत-मण्डलों से प्रति वर्ष करोड़ों रुपया का घाटा होता है। अत सिंचाई व विद्युत-परियोजनाओं के घाटे कम किये जाने चाहिए। 198 -89 में राज्य सडक परिवहन उपक्रमों को 272 करोड रु व राज्य विद्युत बोर्डों को 2702 करोड रु का घाटा होने का अनुमान है जो 1989-90 में बढ़ेगा। इससे स्थिति की गम्भीरता का अनुमान लगाया जा सकता है।

(iv) भू-राजस्व मे वर्द्धमान दर से सरचार्जेज जोडे जाने चाहिए ।

(v) बाजार मे आने वाले कृषिगत माल पर उपकर (cess) लगाया जाना चाहिए और

(vi) भूमि व सम्पत्ति के स्वामियो के पूजीगत लाभो का एक अश सरकार को प्राप्त होना चाहिए । करो की वसूली मे सुधार किया जाना चाहिए ।

गैर-योजना व्यय की वृद्धि मे कमी की जानी चाहिए । निजी क्षेत्र के अन्तर्गत हान वाले विलासी उपभोग मे कमी की जानी चाहिए । मौद्रिक नीति व राजकोषीय नीति का समन्वित उपयोग करके साधन-सग्रह को गैर-स्फीतिकारी (non-inflationary) बनाया जाना चाहिए । विभिन्न क्षेत्रो मे वर्तमान उत्पादन-क्षमता का अधिक उपयोग करके उत्पादन बढाया जाना चाहिए ताकि योजनाओ के लिए साधन जुटाने की दिशा मे अधिक प्रगति हो सके ।

इस प्रकार भावी योजनाओ मे सार्वजनिक बचतो को बढ़ाने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए । इसके लिए सरकार को राजस्व खाते मे बचते तथा सरकारी उपक्रमो से मुनाफे बढ़ाने होगे । योजनाओ के वित्तीय साधन जुटाने की समस्या बहुत पेचीदा मानी गयी है । यह गैर-स्फीतिकारी होनी चाहिए । इसमे कोई सन्देह नही कि भावी नियोजन की बहुत कुछ सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि सरकार योजना के लिए गैर-स्फीतिकारी ढग से साधन जुटा पाती है अथवा नही ।

प्रश्न

1 भारत की सातवी पचवर्षीय योजना मे वित्तीय स्रोतो पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये । (Raj Hyr T D C, 1987)

उत्तर-सकेत—सातवी योजना मे एक लाख अस्सी हजार करोड रु के प्रस्तावित सार्वजनिक परिव्यय की व्यवस्था के लिए सार्वजनिक उपक्रमो का अशदान 1/5 आन्तरिक कर्ज (विविध साधन) का 2/5, अतिरिक्त साधन-सग्रह का 1/4 विदेशी पूजी का 1/10 व घाटे की वित्त व्यवस्था का 7·8% या लगभग 1/13 रखा गया है । चालू राजस्व से बकाया राशि के 3% ऋणात्मक रहने का अनुमान है ।

20 मई, 1987 को योजना आयोग की एक बैठक मे सातवी योजना की वित्तीय व्यवस्था के लिए गैर-स्फीतिकारी साधन बढ़ाने के लिए योजना आयोग के सदस्य डा राजा जे चेलैया के पेपर पर विचार किया गया और निम्न निर्णय लिये गये

(1) खाद्यान्नो व उर्वरको पर से सब्सिडी घटायी जायेगी ।

(2) कर-अनुपात (tax-ratio) (राष्ट्रीय आय से अनुपात के रूप मे) सातवी योजना के अन्त तक 2 प्रतिशत बिन्दु बढ़ाया जाना चाहिए । वैसे, ये बाते पहले भी की जा चुकी हैं और कोई नई नही हैं ।

The Economic Time के 14 दिसम्बर 1987 के अक में प्रकाशित सूचना के अनुसार सातवी योजना के समक्ष वित्तीय साधनो का अभाव उत्पन्न हो गया है । 1985–88 तक के तीन वर्षों मे घाटे की वित्त व्यवस्था 14000 करोड रु के लक्ष्य से 4463 करोड रु अधिक हो चुकी है तथा सावजनिक उपक्रमो (केन्द्र व राज्य दोनो) का अशदान इसी अवधि म लक्ष्य का 40% ही हो पाया है तथा सम्भवत पाँच वर्षों म 50% तक हो पहुँच पायेगा । केन्द्रीय बजट म असन्तुलन पैदा हो गया है । पू जीगत प्राप्तियो से राजस्व-घाटों की पूर्ति की जाने लगी है जो एक भारी राजकोषीय सकट व असन्तुलन का परिचायक है ।

2 योजनाओ क लिए वित्तीय साधन जुटाने की दृष्टि से निम्नलिखित का विवेचन कीजिए—
(i) घाटे की वित्त व्यवस्था (deficit financing) (ii) विदेशी सहायता।

3 भारतीय योजनाओ म साधन सग्रह की दृष्टि से किन मदो का विशेष योगदान रहा है ? इस सम्बन्ध मे आवश्यक स्पष्टीकरण दीजिए ।

4 छठी योजना व सातवी योजना की वित्तीय व्यवस्था की तुलना कीजिए एव इनके अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

5 सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।
(i) घाटे की वित्त व्यवस्था (Raj IIyr T D C 1988)

———

26

भारत में आय का असमान वितरण

(Unequal Distribution of Income in India)

भारत मे राष्ट्रीय आय के वितरण के आंकड़े लम्बी अवधि के लिए नही मिलते, इसलिए हमे राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के द्वारा उपभोग-व्यय (Consumption expenditure) के आंकडो का उपयोग करना होता है जो *1973–74 तक नियमित रूप से प्रति वर्ष इकट्ठे किये जाते रहे तथा बाद मे प्रति* पांच वर्षों के अन्तर से इकट्ठे किये जाते रहे है। आगे चलकर 1977-78 व 1983 की अवधि के उपभोग-व्यय के वितरण के आंकडों का उपयोग किया गया है ताकि भारत मे उपभोग की असमानता की जानकारी हो सके।

लेकिन इससे पूर्व हम विश्व बैंक द्वारा भारत के लिए *1975–76* की अवधि से सम्बन्धित आय के वितरण के आंकड़े प्रस्तुत करते हैं जो निम्न तालिका मे दिये गये हैं—

भारत के लिए आय की असमानता की सारणी,[1] 1975–76

पारिवारिक आय के खण्ड (नीचे से) (1)	1975-76 आय का प्रतिशत (2)	परिवारो का संचयी (cumulative) प्रतिशत (3)	1975-76 म आय का वास्तविक वितरण (सचयी) (4)
निम्नतम 20%	7·0	20	7·0
दूसरा 20%	9·2	40	16·2
तीसरा 20%	13·9	60	30·1
चौथा 20%	20·5	80	50·6
चोटी के या सर्वोच्च 20%	49·4	100	100·0

1. World Development Report 1989, p. 222, table 30 on Income Distribution.

विश्व बैंक द्वारा प्रस्तुत सारणी मे यह भी बताया गया है कि भारत मे चोटी के 10% परिवार कुल आय का 33·6% अथवा लगभग 1/3 अंश प्राप्त करते हैं।

उपर्युक्त तालिका से पता चलता है कि भारत मे 1975-76 मे निम्नतम आय वाले 20 प्रतिशत परिवारो के पास कुल आय का केवल 7 प्रतिशत अंश था, जबकि चोटी के 20 प्रतिशत परिवारो के पास 49 4 प्रतिशत आय अथवा आधी आय थी। इसी प्रकार तालिका से हम अन्य खण्डो के लिए भी कुल आय का अंश देख सकते है।

अत उपर्युक्त सारणी से भारत म आय की असमानता की जानकारी हो सकती है। सबसे गरीब 20 प्रतिशत परिवार 7 प्रतिशत आय पर गुजारा करते ह, जबकि सबसे धनी 20 प्रतिशत परिवार लगभग आधी आय का लाभ उठाते हैं।

सारणी के कॉलम (3) व (4) का उपयोग करके आय के वितरण का वक्र बनाया जा सकता है जो लोरेन्ज-वक्र (Lorenz curve) कहलाता है। लोरेन्ज
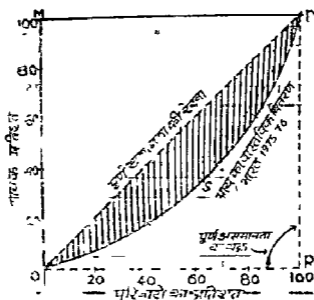
वक्र कॉन्ट्राड लोरेन्ज (Contrad Lorenz) के नाम पर है जो एक अमरीकी सांख्यिक था जिसने 1905 में एक चित्र पर जनसंख्या-समूहों व सापेक्ष आय के अंशों के बीच परस्पर सम्बन्ध बतलाया था।

अब यह वक्र प्राय आय की असमानता के अध्ययन में प्रयुक्त होता है—

स्पष्टीकरण

चित्र में OR—अक्ष पर परिवारों के प्रतिशत मापे गये हैं तथा OM—अक्ष पर आय के प्रतिशत लिये गये है। दोनों तरफ संचयी प्रतिशतों को लेकर बिन्दु अंकित करने पर OSP लॉरेन्ज-वक्र बनता है जो आय की असमानता का सूचक है। OP पूर्ण समानता की रेखा है जिसका अर्थ है 10% परिवारों के पास 10% आय है तथा 20% परिवारों के पास 20% आय है आदि) तथा ORP पूर्ण असमानता की रेखा है, अर्थात् एक परिवार के पास समस्त राष्ट्र की आमदनी है और शेष के पास कुछ भी नहीं है।

OP व OSP के बीच के क्षेत्रफल का माप जिनी-अनुपात (Gini-ratio) या सकेंद्रण-अनुपात (Concentration-ratio) कहलाता है, जो आय की असमानता का माप कहलाता है। जब OSP वक्र दायीं ओर खिसकता है तो असमानता बढ़ती है और जब यह बायीं ओर OP की तरफ खिसकता है तो असमानता घटती है। हम आगे चलकर उपभोग-व्यय के वितरण का उल्लेख करते समय जिनी-अनुपात या सूचकांक का उपयोग करेंगे। इसका माप लगभग 0 34 आता है। इसकी गणना की विधि इस अध्याय के अंत में एक परिशिष्ट में दी गई है जिसका आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सकता है। जिनी-अनुपात इटली के सांख्यिक सी. जिनी ने 1912 में विकसित किया था।

भारत में उपभोग-व्यय में असमानता

(Inequality in Consumption-expenditure in India)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भारत में आय की असमानता के अध्ययन में उपभोग-व्यय की असमानता का अध्ययन राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण के आंकड़ो के आधार पर किया जाता है।

1977-78 में उपभोग-व्यय की असमानता को सूचित करने वाला जिनी-अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 0 336 रहा तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 0·345 रहा। विभिन्न वर्षों के लिए इन अनुपातों में मामूली उतार-चढाव आते रहे हैं जिनसे दीर्घकालीन प्रवृत्ति के सम्बन्ध में निश्चित स्थिति का पता नहीं लग पाता है। फिर भी 1951 में जिनी-अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 0·334 व शहरी क्षेत्रों के लिए 0 384 रहा था जिससे पता चलता है कि 1951 से 1977-78 की अवधि में

ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोग-व्यय की असमानता मामूली बढ़ी तथा शहरी क्षेत्रो म मामूली घटी । कुल मिलाकर असमानता यथावत् जारी रही है ।

यह ध्यान देने की बात है कि खाद्यान्नो के उपभोग-व्यय मे असमानता का अनुपात ग्रामीण व शहरी दोनो क्षेत्रो मे कुल उपभोग-व्यय की असमानता के अनुपात से नीचा रहा एव वस्त्रो के उपभोग मे यह अपेक्षाकृत ऊँचा रहा । ये निम्न त लिका मे दर्शाये गये हैं

क्षेत्रो	जिनी अनुपात 1977-78[1]		समस्त उपभोग-व्यय
	खाद्यान्न	वस्त्र	
ग्रामीण	0 131	0 582	0 336
शहरी	0 077	0 607	0 345

चूँकि नीची आमदनी पर कुल व्यय का भोजन पर व्यय होने वाला अनुपात ऊ चा होता है, इसलिए आमदनी के बढने पर यह अनुपात घटता जाता है । अत खाद्य-व्यय की असमानता कुल व्यय की असमानता से नीची होती है । वस्त्रो पर व्यय की असमानता अधिक होती है क्योंकि खाद्यान्नों के भाव बढने से वस्त्रो पर व्यय के लिए धनराशि घट जाती है जिससे निर्धन व निम्न-मध्यम व मध्यम श्रेणी के लोगो को वस्त्र पर उपभोग-व्यय घटाना पडता है ।

प्रति व्यक्ति उपभोग-व्यय की असमानता का अनुपात कुछ राज्यो के लिये 1977-78 की अवधि के लिए नीचे दिया जाता है :

		1977-78 (जिनी-अनुपात)	
		ग्रामीण	शहरी
(क) सर्वाधिक	राजस्थान	0 465	
	भारत	0 336	
	केरल		0 395
	भारत		0 345
(ख) न्यूनतम	बिहार	0 258	
	जम्मू-कश्मीर		0 294

इस प्रकार 1977-78 मे ग्रामीण क्षेत्रो मे उपभोग व्यय की असमानता का अनुपात राजस्थान मे अधिकतम तथा शहरी क्षेत्रो मे केरल मे अधिकतम रहा ।

---

1 R M Sundrum, Growth and Income Distribution in India ; Policy and Performance Since Independence, 1987, p 139· आगे का अधिकाश विवेचन इसके अध्याय 6 व अध्याय 10 पर आधारित है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम अनुपात बिहार में तथा शहरी क्षेत्रों में न्यूनतम जम्मू-कश्मीर में रहा।

एस. पी. गुप्ता व के. एल. (योजना आयोग) दत्तार के अनुसार उपभोग-व्यय के लिए जिनी-गुणांक या अनुपात 1977-78 व 1983 के लिए इस प्रकार रहे :

वर्ष	ग्रामीण	शहरी
1977-78	0 337	0 353
1983	0 297	0 332

इस प्रकार 1977-78 से 1983 की अवधि में उपभोग-व्यय में जिनी-अनुपात शहरी व ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में कुछ कम हुआ है लेकिन यह शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक पाया गया है।

भारत में आय व उपभोग व्यय के असमान वितरण के कारण

भारत में पूँजीवादी मिश्रित व नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक विकास किया जा रहा है। आर्थिक विकास के प्रारम्भिक वर्षों में बहुधा आय की असमानता बढ़ती है। विकास के अधिकांश लाभ सम्पन्न वर्ग को मिलते हैं और निर्धन लोग विकास के लाभों से वंचित हो जाते हैं। भारत में आय की वर्तमान असमानता के लिए निम्न कारणों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है :

1. ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि का असमान वितरण .—आय व व्यय के लिए वितरण की असमानता का प्रधान कारण परिसम्पत्तियों के वितरण की असमानता माना गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि ही परिसम्पत्ति का मुख्य रूप होती है। इसके अलावा पशु, ट्रैक्टर, औजार आदि भी परिसम्पत्ति के अन्तर्गत आते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि के वितरण की असमानता में योजनाकाल में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। 1960-61 में 1 हैक्टेयर तक की जोतें 41% थी जिनके अन्तर्गत जोते गये क्षेत्र का 7% अंश पाया गया था। इसी वर्ष 10 हैक्टेयर की जोतें 5% थी, लेकिन इनके अन्तर्गत 31% क्षेत्रफल पाया गया था। इस प्रकार भूमि के वितरण में कार्यशील जोतों के अनुसार भारी असमानता थी। 1980-81 में 1 हैक्टेयर तक की जोतों का अंश बढ़कर 56·5% हो गया और इनके अन्तर्गत कृषित क्षेत्र 12% हो गया, जबकि 10 हैक्टेयर से अधिक की जोतों का अंश 2·4% लेकिन क्षेत्रफल 23% पाया गया। इस प्रकार योजनाकाल के बीस वर्षों में भूमि का वितरण असमान बना रहा। बड़े भूस्वामी सिंचाई, बीज, उर्वरक, साख, आदि की सुविधाओं का लघु व सीमान्त कृषकों तथा खेतिहर मजदूरों की तुलना में अधिक लाभ उठा पाते हैं। इससे

उनकी आमदनी का स्तर भी अपेक्षाकृत ऊँचा होता है। हरित क्रान्ति का लाभ भी इन्होंने उठाया है।

भूमि सुधार कानूनों ने भूमि के वितरण को बदलने की दृष्टि से विशेष सफलता हासिल नहीं की है। जापान, तैवान व दक्षिणी कोरिया में परिसम्पत्तियों का प्रारम्भिक वितरण काफी समान कर दिया गया था जिससे विकास के दौरान उन देशों में आय की असमानता में गिरावट आयी है।

भारत में कार्यशील जोतों के वितरण का जिनी-अनुपात 1970-71 में 0 6207 तथा 1980-81 में 0 6063 रहा है। अतः भूमि के वितरण में असमानता कुछ कम हुयी है, लेकिन फिर भी यह काफी ऊँची है और आज भी बनी हुयी है। राजनीतिक सत्ता पर भूस्वामियों का विशेष प्रभाव होने के कारण भूमि के सम्बन्ध (Land-relations) अधिक प्रगतिशील नहीं बन पाये हैं। विस्तृत क्षेत्रों में मौखिक काश्तकारी, फसल-बटाई प्रणाली, भूमिहीन काश्तकारों की पिछड़ी हुयी आर्थिक दशा, बन्धुआ श्रमिकों की शोषणमूलक काम की दशाएं आज भी व्याप्त हैं। भारत में, विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों में, परिसम्पत्ति के वितरण की भारी असमानता वहाँ आय की असमानता का मुख्य कारण रही है।

2. औद्योगिक जगत में बड़े व्यावसायिक घरानों का परिसम्पत्ति पर अधिकार- पहले बताया जा चुका है कि देश के चोटी के 10 औद्योगिक घरानों की परिसम्पत्ति 1986-87 में 18638 करोड़ रु. थी। इसमें पिछले वर्षों में काफी वृद्धि हुयी है। इन 10 औद्योगिक घरानों का निजी क्षेत्र की परिसम्पत्ति के बड़े अंश पर अधिकार पाया जाता है। टाटा-बिड़ला औद्योगिक घरानों के पास इन 10 घरानों की परिसम्पत्ति का लगभग आधा अंश पाया जाता है।* औद्योगिक घरानों में पारिवारिक प्रबन्ध की शैली चलती है जिसमें कुछ व्यक्तियों को निर्णय लेने के सम्बन्ध में व्यापक किस्म के अधिकार होते हैं जिनका उपयोग करने से समाज में असमानता को बढ़ावा मिलता है। बड़ी कम्पनियों के चोटी के प्रबन्धकों के वेतन भत्ते व अन्य देय राशियां इतनी ऊँची होती हैं कि वे देश की औसत आय से कहीं मेल नहीं खाती। यही बात बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रबन्धकों, संचालकों

---

* 1986-87 में टाटा की परिसम्पत्ति का मूल्य 4940 करोड़ रु व बिड़ला की परिसम्पत्ति का 4771 करोड़ रु. पाया गया। इन दोनों घरानों की परिसम्पत्ति का मूल्य 10 व्यावसायिक घरानों (रिलायन्स, जे. के. सिंघानिया, थापर, मफतलाल, मोदी, लार्सन एण्ड टूब्रो, एम. ए चिदाम्बरम व बजाज सहित) की परिसम्पत्ति का 52% था।

The Economic Times, May 4, 1989.

मैनेजिंग डाइरेक्टरो, चेयरमैनो, आदि पर लागू होती हैं । इस प्रकार भारत म दो अलग-अलग किस्म के ससार पाये जाते हैं—एक बडे लोगो का और दूसरा छोटे लोगो का । इनमे विशाल अन्तर—सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक, शैक्षणिक आदि, देखने को मिलते हैं ।

3 शिक्षा के अवसरो में असमानता .—भारत मे शिक्षा का काफी फैलाव हुआ है । शिक्षा का विस्तार एक समताकारी तत्व माना गया है । इससे लोगो की शैक्षणिक असमानता कम होती है । लेकिन आज भी उच्च शिक्षा पर ज्यादातर कुलीन व सम्भ्रान्त परिवारो की सतान का अधिक प्रभाव देखा जाता है और वे ही इनका अधिक लाभ उठा पाते हैं । अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोग उच्च शिक्षा का पूरा लाभ नही उठा पाते हैं, चाहे उनको रिजर्वेशन के कुछ लाभ भले ही मिल जाए । रिजर्वेशन मे भी इन वर्गों के चोटी के लोग ही अधिक लाभ उठा पाते हैं । इस प्रकार शिक्षा विज्ञान व टेक्नोलोजी के लाभो का असमान वितरण होने से आय की असमानता मे वाछित कमी नही हो पायी है ।

4 काली मुद्रा का प्रसार —भारत मे एक समानान्तर अर्थव्यवस्था (a parallel economy) चल रही है जो कर-चोरी, रिश्वत भ्रष्टाचार, व अनेक प्रकार गैर-कानूनी काम धन्धे से बनी है । 1983-84 में काली मुद्रा की राशि 32 हजार करोड रु से 37 हजार करोड रु के बीच मे थी जो राष्ट्रीय आय का 18% से 21% थी । सर माल्कम आदिशेषैया ने 1984-85 के लिए इसका अनुमान 80000 करोड रु दिया है जो सकल घरेलू उत्पत्ति (GDP) का 40% है ।[1] योजनाकाल में काली मुद्रा का अत्यधिक विस्तार हुआ है । ऐसी स्थिति मे आय की असमानता का बढना स्वाभाविक है ।

5 आय की अधिकतम व न्यूनतम सीमाओ का निर्धारण न होने से असमानता का कोई भी अन्तर पाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में यहाँ कोई राष्ट्रीय आय-नीति नही है । ऐसी स्थिति मे असमानता को कम करना कठिन है ।

6 मजदूरी व्याज, किराये व मुनाफो पर किसी प्रकार का नियमन व प्रतिबन्ध नही है । इसलिए आय की असमानताए बढती जाती है । सरकार ने आय-कर म कई प्रकार की छूटें दे रखी हैं जिनका लाभ ऊँची आमदनी वाले लोगो को अधिक मिलता है । उदाहरण के लिए, सरकार नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट (NSC) खरीदने पर आय कर मे छूट देती है । इस प्रकार NSC खरीदने वाले को सर्वप्रथम आयकर म छूट मिल जाती है । उसके बाद उसको व्याज मिलता है जिससे उसकी आमदनी प्राप्त होती है । विद्वानो का मत है कि इस तरह भारत म एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया है जो पहले किसी तरह आमदनी जुटा लेता है, फिर उस आमदनी से नई आमदनी पैदा करता जाता है जिससे उसके पास आमदनी का

---

1 Link, August 13, 1989, p. 31.

विस्तार होता जाता है। ऐसे समाज में आय की विषमता न बढ़ेगी तो और क्या होगा ?

7. विविध कारण :—भारत में अनेक प्रकार के नियन्त्रण लगे हुये हैं। राजनीतिक नेता, सरकारी अफसर, बड़े व्यवसायी, बड़े किसान व बड़े व्यापारी मिल कर विभिन्न प्रकार के कानूनों का उपयोग अपने हितों को आगे बढ़ाने में करते हैं। इनमें सर्वसाधारण के हितों की अपेक्षा की जाती है। बड़े किसान उर्वरक सब्सिडी का लाभ उठाते हैं और अनाज के वसूली मूल्य ऊँचे करवा लेते हैं। इससे उनके हितों की तो पुष्टि हो जाती है, लेकिन देश पर गैर-योजना व्यय का भार बढ़ जाता है।

इस प्रकार भारत में ऊँची लागत वाली एवं अकुशल अर्थव्यवस्था के संचालन में मुद्रास्फीति की दशाएं सदैव विद्यमान रहती हैं। घाटे की अर्थव्यवस्था के कारण मुद्रा का प्रसार करना होता है जिससे अर्थव्यवस्था में तरलता बढ़ जाती है और माग व पूर्ति का सतुलन बिगड़ जाता है। कहने का आशय यह है भारत की तथाकथित नियोजित अर्थव्यवस्था में उत्पादन, वितरण, आयात-निर्यात, बचत-विनियोग कृषिगत व औद्योगिक क्षेत्रों, लघु व वृहद् क्षेत्रों में कहीं भी विवेकशील व उत्पादक नीतियों का क्रियान्वयन दिखलाई नहीं देता। इसलिए जो वर्ग राजनीतिक सघर्ष करके अपने हितों की रक्षा करने में समर्थ हो जाता है, वह तो अपनी आमदनी को बढ़ा लेता है, चाहे इस प्रक्रिया म व अन्य वर्गों को क्षति पहुँचा बैठे।

आय के असमान वितरण को ठीक करने के सम्बन्ध में सरकारी उपाय

1. प्रगतिशील आयकर.—कुछ वर्ष पूर्व भारत में आयकर की अधिकतम सीमान्त दर काफी ऊँची थी। लेकिन सरकार ने इसमें कमी करके कर-राजस्व को बढ़ाने की नीति अपनायी है। 1989-90 के केन्द्रीय बजट के अनुसार अब एक लाख रुपय से अधिक की आय पर आयकर की दर 50% है तथा 50 हजार रु करदय आय से ऊपर की श्रेणी म आयकर पर 8% रोजगार-सरचार्ज होने से आयकर की अधिकतम सीमान्त दर इस समय 54% है। भारत में प्रत्यक्ष करों की काफी चोरी होती है जिसको रोकने के लिए कर-प्रशासन को सुदृढ़ बनाया गया है।

2 व्यावसायिक व व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर छापे, तलाशियाँ, जब्तियाँ, चालान व कानूनी कार्यवाइयाँ—सरकार काले धन व काली मुद्रा को बाहर निकालने के लिए व्यापारिक व औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर छापे डलवाती है तथा उनसे छुपायी गयी आय पर कर वसूल करने का प्रयास करती है। यह एक लम्बी व जटिल प्रक्रिया है और इसमें ढिलाई आने से कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

3 सरकार ने भूमि-सुधार सम्बन्धी कानून बनाये हैं जिनकी वजह से काश्तकारों के हितों की रक्षा की गयी है। काश्तकारी प्रथा में सुधार करने से कुछ

सीमा तक कास्तकारों को भूमि का स्वामी बनने का अवसर मिला है। लेकिन 'सीलिंग कानून' व्यावहार में ठीक से लागू नहीं हो पाया है।

4. सरकार ने एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम(IRDP) के अन्तर्गत गरीबी दूर करने के लिए परिसम्पत्ति वितरण का कार्यक्रम अपनाया है जिससे स्वरोजगार के अवसर बढाने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NRLP), ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम (RLEGP) आदि के माध्यम से मजदूरी रोजगार (Wage-employment) बढाने का प्रयास किया जा रहा है। अब इन्हे जवाहर रोजगार योजना (JRY) मे मिला दिया गया है। इस प्रकार गरीबी दूर करने व रोजगार बढाने के कार्यक्रमो के माध्यम से आय की असमानता को कम करने के प्रयास जारी हैं।

5 सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमो (Social Security Measures) के माध्यम से आय के वितरण को ठीक करने का प्रयास किए जा रहे हैं। पेंशन, प्रोविडेन्ट फण्ड, प्रसूति-सहायता, बुढापा, आदि के लिए सहायता पहुँचाकर लोगो को लाभ पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है.

6. कीमत-नियन्त्रण व वस्तु-वितरण की सार्वजनिक प्रणाली अपनाकर निर्धन-वर्ग के हितों की रक्षा करने का प्रयास किया जा रहा है। अनाज, चीनी, खाद्य-तेल, व अन्य मजदूरी-वस्तुओ (Wage-goods) का उत्पादन बढाकर व राष्ट्रीय सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ करके निर्धन-वर्ग को कम कीमतो पर आवश्यक वस्तुएँ की सप्लाई करने से उसकी क्रयशक्ति की रक्षा की जा सकती है।

7 सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार व एकाधिकार पर नियन्त्रण भारत मे समाजवादी समाज की ओर अग्रसर होने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया गया है तथा एकाधिकार पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए MRTP अधिनियम, 1969 बनाया गया है। इनसे निजी क्षेत्र की क्रियाएं सीमित हुयी है। लेकिन देश मे आय की असमानता को कम करने की दृष्टि से विशेष अनुकूल प्रभाव सामने नही आया है।

भारत में आय की असमानता को कम करने के लिए आगामी दशक के लिए उपयोगी सुझाव

1 आय की असमानता मूलतः परिसम्पत्ति के असमान वितरण से उत्पन्न होती है। अतः जब तक समाज मे ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों मे भूमि, पूँजी, आदि का वितरण अधिक समान नहीं बनाया जाता तब तक आय की असमानता कम नहीं हो सकती। इसके लिए आवश्यकतानुसार सहकारी संगठन का विस्तार किया जा सकता है एवं सार्वजनिक उपक्रमों में व निजी उपक्रमों में श्रम की प्रबन्ध, पूँजी व लाभ में साझेदारी

की व्यवस्था की जा सकती है। अतः पूंजी के स्वामित्व के फैलाव या विकिरण की कोशिश की जानी चाहिए, जैसा कि कई योरोपीय देशो जैसे फ्रास, इटली, आदि म किया गया है।

2 आधुनिक टेक्नालोजी पैमाने की किफायतो व प्रतिस्पर्धा (आन्तरिक व बाह्य) को बढाकर अर्थव्यवस्था को अत्यधिक उत्पादक कार्यकुशल व विकासामुख बनाया जाना चाहिए जिससे 'रोटी को बांटने से पूर्व इसका आकार बढ सके। कुछ विद्वानो का मत है कि 'वितरण की विलासिता' अमीर मुल्क ही भोग सकते हैं। इसका अर्थ है कि गरीब मुल्क पहले अपने उत्पादन को ठीक करें, तभी आगे चलकर उनका वितरण ठीक हो पायेगा।

3 भारत को आगामी वर्षों मे अपनी सम्पूर्ण शक्ति स्थायी किस्म के रोजगार के अवसर बढाने मे लगानी चाहिए। इसके लिए सीमित वित्तीय साधनो को ग्रामीण व शहरी क्षेत्रो मे मजदूरी-रोजगार (wage-employment) को बढान म लगाना चाहिए ताकि सामुदायिक परिसम्पत्तियो—सडको नहरो तालाबो स्कूलो भवनो चिकित्सा-भवनो, आदि का निर्माण किया जा सके और देश मे उत्पादन क्षमता बढे। यह सब करने के लिए जिला व खण्ड-स्तरीय नियोजन के अन्तर्गत सुदृढ परियोजनाओ के चयन की आवश्यकता है जिसे विशाल ग्रामीण समुदाय के सहयोग से कारगर ढग से लागू किया जाना चाहिए ताकि लोगो की क्रय शक्ति बढे तथा साथ मे उपभोग्य वस्तुओ की सप्लाई भी। इस विकास रणनीति से सम्भवत अधिक सहायता मिल पायेगी।

प्रश्न

1 सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
(1) भारत मे आय का असमान वितरण।

2 न्याय व समानता के साथ विकास करने की दृष्टि से भारत की स्थिति कैसी रही है? असमानता को कम करने के लिए कौन से उपायो का सहारा लिया गया है?

परिशिष्ट

1975–76 के लिए भारत मे आय के वितरण के लिए जिनी-अनुपात (Gini-Ratio) की गणना की विधि :—

$100p_i$ (1)	आय का प्रतिशत (2)	$100Z_i$ (3)	$100(Z_i+Z_{i-1})$ (4)	$10^4p_i\ (Z_i+Z_{i-1})$ (5) = (1) × (4)
20	7	7	7	140
20	9 2	16·2	23 2	464
20	13 9	30·1	46 3	926
20	20·5	50 6	80 7	1614
20	49 4	100 0	150 6	3012
				जोड 6156

जिनी-अनुपात (Gini-Ratio) या $G = 1 - \Sigma p_i\,(Z_i+Z_{i-1})$
$= 1 - 0·6156 = 0·3844$ है।

[यहाँ तालिका मे कॉलम (5) का जोड

$\Sigma\ 10^4p_i\ (Z_i+Z_{i-1}) = 6156$

$\therefore\ \Sigma p_i\ (Z_i+Z_{i-1}) = \frac{6156}{10000} = 0·6156$]

स्मरण रहे कि G = 0 पूर्ण समानता, तथा G = 1 पूर्ण असमानता को सूचित करते हैं।

तालिका के निर्माण का स्पष्टीकरण :

प्रथम कॉलम 100 p_i है, अर्थात प्रतिशत के रूप मे परिवारो के पाँच खण्ड दिये गये हैं। निर्धनतम 20% परिवारो के पास 7% आय है तथा सबसे अमीर 20% के पास 49 4% आमदनी है।

कॉलम (3) मे आय के सचयी (Cumulative) प्रतिशत दर्शाये गये हैं। प्रत्येक प्रतिशत निकालने के लिए उससे पूर्व का सचयी प्रतिशत जोड दिया जाता है जैसे 30 1 प्राप्त करने के लिए 16 2 मे 13 9 जोडा गया है, आदि।

कॉलम (4) मे 100 (Z_1+Z_{1-1}) दर्शाया गया है, अर्थात् कॉलम (3) की पास-पास की दो मदें जोडत जाते हैं, जैसे 23 2 = 7 + 16 2, तथा 46 3 = 16 2 + 30 1 इत्यादि। कॉलम (5) = कॉलम (1) × कॉलम (4) है = 100 $p_1 \times 100\ (Z_1+Z_{1-1}) = (10^2\ p_1 \times 10^2\ (Z_1+Z_{1-1}) = 10^4\ p_1\ (Z_1+Z_{1-1})$ जो कॉलम (5) का जोड है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

भारत मे 1980–81 के लिए कार्यशील जोतो के वितरण सम्बन्धी आकडो का उपयोग करके जिनी अनुपात या सकेद्रण-अनुपात ज्ञात कीजिए—

जोतों की किस्म	कुल जोतों का (प्रतिशत)	उनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का (प्रतिशत)
सीमान्त जोतें	$56\frac{3}{5}$	12
लघु जोतें	18	14
अर्द्ध-मध्यम जोतें	14	21
मध्यम जोतें	9 1	30
बडी जोतें	2 4	23
कुल	100 0	100 0

[जिनी गुणाक या अनुपात = 0 6063] उत्तर

आदि में जरूरत से ज्यादा व्यक्तियों के लगे रहने से प्रति व्यक्ति नीची आमदनी के कारण अल्परोजगार या अर्द्ध-रोजगार की दशा पायी जाती है।

अल्परोजगार के दो रूप—(i) दृश्य तथा (ii) अदृश्य

(i) दृश्य (Visible)—दृश्य अल्परोजगार मापा जा सकता है। यह सुस्त मौसम में कृषिगत क्षेत्र में या देहातों में स्वरोजगार में लगे व्यक्तियों व खेतिहर मजदूरों में पाया जाता है।

(ii) अदृश्य (Invisible)—अदृश्य अल्परोजगार का प्रत्यक्ष रूप से माप नहीं हो सकता। जैसा कि ऊपर बतलाया गया था यह स्वरोजगार में लगे व्यक्तियों में वर्षभर पाया जा सकता है और अपर्याप्त काम (insufficient work) के कारण यह नीची उत्पादकता व नीची आमदनी के रूप में प्रगट होता है। इसका परोक्ष माप करने के लिए हम लोगों से यह प्रश्न पूछ सकते है कि क्या वे अतिरिक्त काम करना चाहेंगे ? इस प्रश्न के उत्तर पर अल्परोजगार का माप निर्भर करेगा। यह प्रश्न कृषि व गैर-कृषि में लगे स्वरोजगार प्राप्त व्यक्तियों व मजदूरी पर काम में लगे श्रमिकों (नियमित मजदूरी तथा आकस्मिक (Casual) मजदूरी दोनों प्रकार के श्रमिकों) से तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यों में लगे आकस्मिक मजदूरी वाले श्रमिकों से पूछा जा सकता है।

भारत में कृषि-कार्यों में लगे आकस्मिक श्रमिकों में अल्परोजगार की मात्रा 1983 में 33%- 9% तक पायी गयी थी। यह काफी ऊँची थी। वे अतिरिक्त काम करने को काफी सीमा तक तैयार थे।

विकसित देशों में बेरोजगारी का स्वरूप

जैसा कि प्रारम्भ में संकेत किया गया है विकसित व उद्योग-प्रधान पूँजीवादी देशों में बेरोजगारी का स्वरूप उपर्युक्त स्थिति से बिल्कुल भिन्न होता है। वहाँ प्राय. प्रभावपूर्ण माँग की कमी (lack of effective demand) के कारण कल-कारखाने बन्द हो जाते है और माँग में वृद्धि करने के उपाय अपनाने पर वे पुन. चालू हो जाते है। वहाँ पूँजी की कमी से बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न नहीं होती, बल्कि यह पूँजी के उपयोग की कमी से उत्पन्न होती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है भारत जैसे देशों में पूँजी की कमी के कारण श्रम-शक्ति का पूरा उपयोग नहीं हो पाता। अतः हमें विकासशील व विकसित देशों की बेरोजगारी की स्थिति के इस मूलभूत अन्तर पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत जैसे देशों में प्रभावपूर्ण माँग की कमी से बेरोजगारी की दशा उत्पन्न नहीं होती। यहाँ भी 'माँग की कमी' कारण इन्जीनियरी तथा अन्य उद्योगों में बेरोजगारी की दशा पायी जा सकती है। लेकिन देश में व्यापक रूप से फैली हुई बेरोजगारी का मूल कारण पूँजी का अभाव माना जाता है, न कि पूँजी के उपयोग का अभाव।

अल्प विकसित देशों में बेरोजगारी की समस्या मूलतः अल्प-विकास (under-development) की समस्या ही मानी जा सकती है। अतः देश के तीव्र आर्थिक विकास से ही अधिक लोगों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है और जन-शक्ति के आधिक्य की समस्या हल की जा सकती है। भारत में भी विशेषतया देहातों में विभिन्न क्षेत्रों में विकास की अनेक सम्भावनाएं विद्यमान हैं जिनका उपयोग करने से विशाल जन-समूह को लाभप्रद रोजगार मिल सकता है। यह एक विचित्र किस्म का विरोधाभास है कि एक तरफ देश में अनेक प्रकार के काम करने बाकी पड़े हैं और दूसरी तरफ काम करने वाले काफी लोग बेकार बैठे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि देश में इस प्रकार का आर्थिक नियोजन अपनाया जाय जिससे नाना प्रकार के कामों में विशाल जन समुदाय को लगाया जा सके। इस सम्बन्ध में सरकार को विशेष रूप से सक्रिय कदम उठाने पड़ेंगे, क्योंकि लोकतान्त्रिक देश में लोगों के लिए रोजगार प्रदान करने की प्रमुख जिम्मेदारी सरकार की ही मानी जाती है।

भारत में बेरोजगारी का माप

भारत में बेरोजगारी व अल्परोजगार की समस्या व्यापक रूप से फैली हुई है। देहातों में अल्प-रोजगार (under-employment) की समस्या का विशेष प्रभाव है और शहरों में खुली बेरोजगारी की समस्या पायी जाती है। इन दोनों को हम एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि जब देहातों में अल्प-रोजगार की स्थिति बहुत पेचीदा हो जाती है तो लोग वहाँ से परेशान होकर रोजगार की तलाश में नगरों व महानगरों की तरफ चल पड़ते हैं, जहाँ पहुँचने पर खुली बेरोजगारी की स्थिति अधिक जटिल हो जाती है। देहातों में अशिक्षित व अदक्ष (unskilled) श्रम की बेरोजगारी की समस्या अधिक तीव्र होती है तो शहरों में शिक्षित व दक्ष (skilled) श्रम की बेरोजगारी की समस्या विशेषरूप से तीव्र होती है। दुर्भाग्यवश हमारे देश में इंजीनियर व डाक्टर भी बेरोजगारी के शिकार पाये जाते हैं, जो वास्तव में एक चिन्ता का विषय है। बेरोजगारी कहीं भी और किसी भी वर्ग में क्यों न हो, यह समाज पर एक असहनीय भार के रूप में होती है। वह मानव को निराश कर देती है और उसके नैतिक बल में गिरावट लाती है। बेरोजगार व्यक्ति समाज के लिए खतरा भी बन सकता है। अतः इस समस्या का हर सम्भव तरीके से मुकाबला किया जाना चाहिए। समस्या का उचित समाधान ढूँढने से पूर्व हमें इसके आकार-प्रकार व इसकी प्रकृति आदि से पूर्णतया परिचित होना चाहिए।

पहले योजना आयोग प्रत्येक योजना के प्रारम्भ में रोजगारों की संख्या (backlog of unemyloyed), योजनाकाल में श्रमिक-शक्ति की वृद्धि, अर्थात् नए श्रमिकों की संख्या एवं योजना में किए गए सार्वजनिक विनियोगों से उत्पन्न अतिरिक्त

रोजगार के आँकड़े प्रकाशित करता था, लेकिन ग्रामीण व शहरी क्षेत्रो मे बेरोजगारी व अल्प-रोजगार के माप के सम्बन्ध मे सुनिश्चित व सही परिभाषा व मापदण्डो का लेकर काफी मतभेद रहा और जनगणना, राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण व रोजगार विनिमयालयों के रोजगार सम्बन्धी आँकडो में काफी अन्तर होने से यह महसूस किया गया कि इस सम्बन्ध मे विस्तृत अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसलिए योजना आयोग ने अगस्त 1969 मे प्रो. एम एल दाँतवाला की अध्यक्षता मे एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की जिसे यह कार्य सौंपा गया कि वह बेरोजगारी के अनुमानो पर आवश्यक सलाह दे ताकि इस क्षेत्र मे आकडे अधिक सुनिश्चित व नीति-निर्धारण की दृष्टि से अधिक सार्थक व उपयोगी बनाये जा सके।

समिति ने मई 1970 मे योजना आयोग को अपनी मुख्य रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति की राय मे योजना आयोग को भूतकाल मे बेरोजगारी व अल्प-रोजगार का अनुमान लगाने के लिए जो आँकडे उपलब्ध थे, वे अपर्याप्त थे और उन पर आश्रित निष्कर्षों मे त्रुटि की मात्रा का अनुमान नही लगाया जा सकता था। समिति ने राय दी कि भारत मे श्रम-शक्ति के विभिन्न अगो जैसे प्रदेश, लिंग, आयु, ग्रामीण-शहरी क्षेत्र, श्रमिक का वर्ग व शिक्षा-दीक्षा आदि का अध्ययन करके विभिन्न किस्म के श्रमिको की माँग का अनुमान लगाने का प्रयास किया जाना चाहिए। समिति ने यह भी सुझाया कि एक वर्ष के विभिन्न मौसमो मे एक से श्रमिको मे व्याप्त बेरोजगारी की समस्या का भी अध्ययन किया जाना चाहिए।

बेरोजगारी से सम्बन्धित आँकड़े[1]

बेरोजगारी से सम्बद्ध तीन धारणाए—राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण सगठन ने अपने 27वें दौर (1972–73) से रोजगार व बेरोजगारी के पचवर्षीय सर्वेक्षणो मे निम्न परिभाषाओ व अवधारणाओ का उपयोग किया था—

(i) सामान्य स्थिति से सम्बद्ध विचार या धारणा (Usual Status concept)

इस विचार के अनुसार सामान्य कार्य की स्थिति (usual activity status) देखी जाती है, जैसे एक व्यक्ति रोजगार प्राप्त है अथवा बेरोजगार है, अथवा श्रम-शक्ति के बाहर है। इससे कार्य की स्थिति एक दिन या एक सप्ताह से अधिक लम्बी अवधि के लिए निर्धारित की जाती है। एन. एस. एस. के 38वे दौर, 1983 के

---

1 Seventh Five Year Plan 1985-90, Vol. II, October 1985, Chapter 5, & NSS 38th Round, (January—December 1983). Report No. 341, published in November, 1987 (Revised)

लिए यह अवधि सर्वेक्षण के पिछले 365 दिनों तक के लिए सीमित की गई थी। सामान्य स्थिति की बेरोजगारी स्थायी या दीर्घकालीन बेरोजगारी को सूचित करती है और यह व्यक्तियों की संख्या में मापी जाती है।

(ii) साप्ताहिक स्थिति से सम्बद्ध विचार (Weekly Status concept)

इस विचार के अनुसार कार्य की स्थिति (activity status) पिछले सात दिनों की अवधि के सन्दर्भ में निर्धारित की जाती है। इसके अनुसार वह व्यक्ति रोजगार प्राप्त माना जाता है जो किसी लाभप्रद धन्धे में लगा होता है तथा एक सप्ताह की सन्दर्भ अवधि में किसी भी दिन कम से कम एक घण्टे काम करने की रिपोर्ट देता है। जो व्यक्ति सन्दर्भ-अवधि में एक घण्टे भी काम नहीं कर पाता, लेकिन वह काम की तलाश में रहता है या काम के लिए उपलब्ध रहता है वह बेरोजगार माना जाता है।

(iii) दैनिक स्थिति से सम्बद्ध विचार (Daily Status concept)

दैनिक स्थिति से सम्बद्ध विचार में एक व्यक्ति के काम की स्थिति पिछले 7 दिनों में प्रत्येक दिन के लिए रिकार्ड की जाती है। जो व्यक्ति किसी भी दिन कम से कम एक घण्टे लेकिन चार घण्टे से कम तक का काम कर पाता है उसे आधे दिन के लिए काम करने वाला गिना जाता है। यदि वह एक दिन में चार या अधिक घण्टे काम कर पाता तो वह पूरे दिन के लिए काम में लगा गिना जाता है। इसे चालू दिन के अनुसार स्थिति (Current Day Status) वाली बेरोजगारी भी कहा जाता है।

छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 में बेरोजगारी के अनुमान उपर्युक्त तीनों धारणाओं या विचारों के अनुसार उपलब्ध किये गये थे। सामान्य स्थिति वाली बेरोजगारी (usual status unemployment) दीर्घकालीन बेरोजगारी अर्थात् *स्थायी बेरोजगारी (chronic unemployment) को सूचित करती है और यह* व्यक्तियों की संख्या में मापी जाती है। यह माप उनके लिए ज्यादा उपयुक्त होता है जो नियमित किस्म के रोजगार की तलाश में रहते हैं जैसे शिक्षित व दक्ष व्यक्ति जो अस्थायी व अनियमित ढंग का काम ((casual work) स्वीकार नहीं करते। साप्ताहिक स्थिति व दैनिक स्थिति वाले बेरोजगारी के अनुमान मौसमी व आंशिक बेरोजगारी तथा अल्परोजगार की स्थिति को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रकट करते हैं। वे सर्वेक्षण की अवधि में क्रमशः प्रति सप्ताह व प्रति दिन पाये जाने वाले बेरोजगार लोगों की औसत संख्या को प्रकट करते हैं। दैनिक स्थिति वाली बेरोजगारी का माप बेरोजगारी का एक महत्वपूर्ण व व्यापक माप माना गया है।

छठी पंचवर्षीय योजना के प्रतिवेदन में दैनिक स्थिति वाली बेरोजगारी के आंकड़ों पर अधिक बल दिया गया था। मार्च 1980 में 5 व अधिक वर्ष की आयु

के 2·1 करोड व्यक्ति बेरोजगार माने गये थे। 1977-78 मे श्रम-शक्ति का 8·27% बेरोजगार माना गया था। इसी वर्ष केरल मे बेरोजगारी की दर 25·7% व राजस्थान मे 3% आकी गई थी। देश के आधे बेरोजगार व्यक्ति केवल चार राज्यो मे केन्द्रित पाये गये थे, जिनके नाम इस प्रकार थे : तमिलनाडु आन्ध्र प्रदेश केरल व महाराष्ट्र।

सातवीं पचवर्षीय योजना 1985-90 के प्रतिवेदन मे बेरोजगारी के आकड़े

सातवी योजना के प्रतिवेदन मे सामान्य स्थिति वाली बेरोजगारी (usual status unemployment) के आँकडो पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया। इसमे सामान्य बेरोजगार पाये जाने वाले व्यक्तियो की सख्या दी गयी। सामान्य स्थिति वाली बेरोजगारी की सन्दर्भ-अवधि 365 दिनो की होती है। सातवीं योजना के प्रतिवेदन मे दैनिक स्थिति व साप्ताहिक स्थिति वाली बेरोजगारी के आँकडे नही दिये गये क्योकि उस समय तक ये आँकडे उपलब्ध नही हो पाये थे।

सामान्य स्थिति (usual status) वाली बेरोजगारी के आँकडो के लिए राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे के 32वें दौर (अवधि 1977-78) तथा 38वें दौर (अवधि जनवरी-जून 1983) को आधार बनाया गया।

32वें दौर की सूचना के आधार पर मार्च 1985 मे 5 वर्ष व अधिक के आयु-समूह मे सामान्य स्थिति के अनुसार बेरोजगारो की सख्या 13·9 मिलियन व्यक्ति आकी गई। लेकिन 38वें दौर की सूचना के आधार पर मार्च 1985 के लिए यह केवल 9·2 मिलियन ही आँकी गई।

विभिन्न श्रेणियो के अनुसार बेरोजगारी के अनुमान इस प्रकार दिये गये हैं[1]

मार्च 1985 को सामान्य स्थिति के अनुसार बेरोजगारी के अनुमान
आधार :—38वां दौर (जनवरी-जून 1983)*

	आयु-समूह (5 व अधिक वर्ष) (लाखों मे)
(i) ग्रामीण पुरुष	37·6
(ii) „ स्त्रियां	12·1
(iii) शहरी पुरुष	32·5
(iv) „ स्त्रियां	9·8
कुल	92·0

1. Seventh Five Yr. Plan 1985-90, Vol. II, p. 113 and p. 122.

* बाद मे प्राप्त सूचना के आधार पर इन्हें जनवरी-दिसम्बर 1983 के लिए व्यवस्थित कर दिया गया।

इस प्रकार पुरुषो मे बेरोजगारी स्त्रियो की तुलना मे ग्रामीण व शहरी दोनो क्षेत्रो मे अधिक पायी गई है। 1983 मे सामान्य स्थिति वाली बेरोजगारी समस्त भारत के लिए श्रम-शक्ति का 3% आकी गई।

सातवी योजना की अवधि के लिए 5 वर्ष व अधिक आयु-समूह के लिए लगभग 48 6 मिलियन व्यक्तियो के लिए रोजगार उत्पन्न करने की आवश्यकता बतलाई गई।

स्मरण रहे कि सामान्य स्थिति के अनुसार बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या का सम्बन्ध वर्ष भर या दीर्घकालीन बेरोजगारी से होता है। अत. इनकी सख्या नीची होती है, जबकि दैनिक स्थिति के अनुसार बेरोजगारी की सख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है।

अब राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण के 38वें दौर (1983) के दैनिक स्थिति की बेरोजगारी के आंकडे भी उपलब्ध हो गये है। इनके अनुसार ग्रामीण पुरुष-वर्ग मे (Rural males) 5 व अधिक वर्ष की आयु मे दैनिक स्थिति के अनुसार बेरोजगारी की दर (बेरोजगार व्यक्ति कुल व्यक्तियो के अनुपात के रूप मे) 1983 मे 4·5% रही, जबकि 1972-73 व 1977-78 मे यह 4 3% रही थी।

शहरी पुरुष-वर्ग मे दैनिक स्थिति के अनुसार बेरोजगारी की दर 1983 मे 5·5% रही, जबकि 1972-73 मे यह 4·7% व 1977-78 मे 5·6% रही थी।

1983 मे सामान्य स्थिति (usual status) के अनुसार बेरोजगारी की दर (5 व अधिक वर्ष के आयु-समूह मे) समस्त भारत मे ग्रामीण पुरुषो मे 1·33%, ग्रामीण महिलाओ के लिए 0·41%, शहरी पुरुषो के लिए 3 5% तथा शहरी महिलाओ के लिए 1% रही। केरल के लिए ये प्रतिशत काफी ऊँचे पाये गये है (4% से 7% के बीच)।[1]

सातवी पचवर्षीय योजना मे प्रस्तुत बेरोजगारी के आंकडो का स्वरूप छठी पचवर्षीय योजना मे भिन्न रहा है। छठी योजना के आंकडो मे अल्प-रोजगार के माप पर भी ध्यान दिया गया था, जब कि सातवीं योजना मे सालभर बेकार रहने वाले व्यक्तियों पर ही सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित किया गया।

---

1. NSS, 38th Round, Report No. 341, November, 1987.

अब हम भारत मे बेरोजगारी की विभिन्न किस्मो का वर्णन करते है—

भारत म बेरोजगारी की किस्में

भारत मे बेरोजगारी के निम्न रूप देखने को मिलते हैं :—

1. ग्रामीण अल्प-रोजगार (Rural Under-employment)—अल्प-रोजगार का स्वरूप इतना जटिल है कि विभिन्न देशो एव विभिन्न समयो मे इसके अलग-अलग अर्थ लगाये गये हैं। जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया हैं इसे दृश्य व अदृश्य दो भागो मे बाँटा गया है। प्राय दृश्य अल्प-रोजगार (visible under-employment) मे थोडे समय के लिए काम मिल पाता है, जबकि अदृश्य-रोजगार (invisible under-employment) मे कम आमदनी हो पाती है, क्योकि श्रमिको की दक्षता का पूरा उपयोग नही होता। इसे छिपी हुई बेकारी भी कहते हैं। इस प्रकार दृश्य अल्प-रोजगार मे काम की अवधि कम होती है एव अदृश्य अल्प-रोजगार मे आमदनी कम होती हे।

भारत जैसे कृषि-प्रधान तथा जनाधिक्य वाले देश मे ग्रामीण अल्प-रोजगार की समस्या सबसे ज्यादा गम्भीर होती है और भूमिहीन श्रमिक, छोटे कृषक, ग्रामीण कारीगर, मामूली रूप से शिक्षित ग्रामीण युवक आदि इसके शिकार पाये जाते है। लेकिन देश मे बेरोजगारी के अन्य रूप भी पाये जाते हैं जिनका परिचय नीचे दिया जाता है।

2. सरचनात्मक या ढाचेगत बेरोजगारी (Structural Unemployment)--जैसा कि प्रारम्भ मे बतलाया गया है, इसका अर्थ यह है कि अर्थव्यवस्था की सरचना ही ऐसी होती है जिससे प्रतिवर्ष रोजगार के अवसर इतने नही खुलते कि सभी रोजगार चाहने वालो को काम पर लगाया जा सके। इस प्रकार कुछ काम के इच्छुक व्यक्तियो को बेकार रहना पडता है। यह स्थिति दक्ष व अदक्ष, शिक्षित व अशिक्षित, ग्रामीण व शहरी सभी प्रकार के श्रमिको मे देखने को मिल सकती है। भारत मे अदक्ष श्रमिक बेरोजगार पाये जाते है। लेकिन शिक्षित एव तकनीकी श्रेणी के व्यक्ति भी इसके शिकार पाये जाते हैं। वह समस्या अर्थव्यवस्था के ढाचे से सम्बन्ध रखती है। यह भूमि, पूँजी, उद्यम व प्रबन्ध जैसे साधनो की कमी के कारण उत्पन्न होती है। अतः इसे सरचनात्मक बेकारी कहा गया है। इसका देश के आर्थिक विकास से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। विकास की गति को तीव्र करके ही रोजगार के अवसर तेजी से बढाये जा सकते है।

3 *चक्रीय बेरोजगारी* (Cyclical Unemployment)—*यह स्थिति प्राय:* उद्योग-प्रधान तथा विकसित पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में विशेष रूप से देखने को मिलती है जहां माग में कमी के कारण कुछ उद्योग अल्पकाल के लिए बन्द हो जाते हैं और देश में आर्थिक मन्दी छा जाती है। दुर्भाग्यवश भारत में भी समय-समय पर औद्योगिक क्षेत्र में मन्दी का वातावरण उत्पन्न हो जाने से कुछ उद्योगों में चक्रीय बेरोजगारी का प्रभाव देखा गया है। विशेष रूप से सूती-वस्त्र उद्योग व इन्जीनियरिंग उद्योग इससे प्रभावित हुए हैं। इनमें कई कारणों से उत्पादन-क्षमता का पूरा उपयोग नहीं हो पाता है, जैसे कृषिगत कच्चे माल का अभाव, विदेशों से आयात किये जाने वाले कल-पुर्जों व आवश्यक कच्चे माल का अभाव, देश में मांग की कमी, आदि। 1975 में देश में मोटरकारों, रेफ्रिजरेटरों, एयर-कण्डीशनरों, बिजली के पंखों आदि की माग घट जाने से इनसे सम्बन्धित कारखानों में उत्पादन-क्षमता का कम प्रयोग होना प्रारम्भ हो गया था जिससे श्रमिकों में बेरोजगारी की दशा उत्पन्न हो गई थी। *1976-77 के केन्द्रीय बजट में उत्पादन-शुल्कों में कमी* करके इन उद्योगों में मांग को बढ़ाने का प्रयास किया गया। मोटरकारों के अलग से भी मूल्य घटाये गये थे। इस प्रकार भारत में समय-समय पर चक्रीय बेरोजगारी की समस्या भी देखने को मिलती है और यह बेरोजगारी की समस्या को और बढ़ा देती है। *1982 में सरकार ने ट्रक व ट्रैक्टरों की माग बढ़ाने के लिए अधिक कर्ज* की सुविधा प्रदान की ताकि इन उद्योगों में मन्दी न आए।

4. **टेक्नोलोजिकल बेरोजगारी** (Technological Unemployment)—इस प्रकार की बेरोजगारी उत्पादन में श्रम बचाने वाली विधियों (Labour-saving techniques) का उपयोग करने से आर्थिक क्रिया के किसी भी क्षेत्र कृषि उद्योग, परिवहन, बिक्री व कार्यालयों आदि में उत्पन्न हो सकती है, जैसे कृषि में यन्त्रीकरण से यह कृषि में फैल जाती है, एवं उद्योगों में आधुनिकीकरण करने तथा स्वचालित यन्त्रों का उपयोग बढ़ाने से यह उद्योगों में उत्पन्न हो जाती है। उद्योगों में माल की किस्म सुधारने एवं लागत कम करने के लिए आधुनिकीकरण आवश्यक होता है। *लेकिन इससे कुछ श्रमिक बेकार भी होते हैं। भारत ने धीमी गति से आधुनिकीकरण* करने की नीति अपनाई है। अतः आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कुछ सीमा तक इस प्रकार की बेरोजगारी का भी सामना करना पड़ सकता है।

जब एक अल्पविकसित व पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था टेक्नोलॉजी के निम्न स्तर को छोड़कर उच्च स्तर की ओर बढ़ना चाहती है तो जनाधिक्य की स्थिति उसके मार्ग में रोड़ा बन जाती है। वास्तव में, भारत काफी समय से इसी दुविधा में पड़ा हुआ है। हमें इस समस्या का समाधान ढूंढना होगा तथा अपने साधनों के अनुकूल ही उत्पादन की विधियों को अपनाना होगा। *भारत के लिए श्रम-गहन पद्धतियों को*

अपनाने की अधिक आवश्यकता है। प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने आधुनिकीकरण, नई टेक्नोलोजी, उत्पादन के बडे पैमाने को अपनाकर पैमाने की किफायतें प्राप्त करने, आन्तरिक व विदेशी प्रतियोगिता को बढाने, आदि पर जोर दिया है ताकि हमारी अर्थव्यवस्था भी आधुनिक बन सके। इसके लिए कुछ वर्ष पूर्व नई इलेक्ट्रोनिक्स नीति (मार्च 1985) व नई टेक्सटाइल नीति (जून 1985) घोषित की गई थी। इनसे माल की किस्म तथा लागत व कीमत कम करने मे मदद मिलेगी जो स्वागत के योग्य है। लेकिन रोजगार बढाने की दृष्टि से इनके प्रभावो के सम्बन्ध म कुछ सन्देह भी प्रकट किये गये है।

भारत में बेरोजगारी की समस्या के प्रमुख कारण

यदि कोई यह पूछे कि लगभग चार दशको तक योजनाओ को कार्यान्वित करने के बाद भी देश मे बेरोजगारी क्यों विद्यमान है तो उत्तर दिया जायगा कि इस अवधि में जनसख्या तेजी से बढी जिससे विशाल मात्रा मे नये लोग श्रम-बाजार मे प्रविष्ट हो गये देश का आर्थिक विकास पर्याप्त मात्रा मे नहीं हो पाया, कृषि मे नवीन विधियो का उपयोग पिछले लगभग 25 वर्षों से ही विशेष रूप से प्रारम्भ हुआ है, ग्रामीण औद्योगीकरण की दिशा मे विशेष प्रगति नहीं हुई है, सरकार के पास विकास के लिए साधनों का अभाव रहा है एवं देश की शिक्षा-प्रणाली का नियोजित आर्थिक विकास से आवश्यक तालमेल स्थापित नहीं हो पाया है। देश के विभिन्न भागो मे समय समय पर प्राकृतिक विपत्तियो के आने से भी बेरोजगारी बढ जाती है। देश के सामाजिक पिछडेपन ने श्रम की गतिशीलता मे बाधा डाली है। भारत मे बेरोजगारी के प्रमुख कारणो का परिचय नीचे दिया जाता है —

1 जनसख्या की तीव्र वृद्धि—भारत मे जनसख्या के तेजी से बढने के कारण श्रम-शक्ति के आधिक्य की समस्या उत्पन्न हो गई है। सातवी पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ मे 1985-90 की अवधि के लिए 15–59 वर्ष के आयु-समूह मे श्रम-शक्ति के सम्बन्ध म 2 55% सालाना वृद्धि का अनुमान लगाया गया था एव इस समूह म पांच वर्षों मे श्रम-शक्ति के 3 6 करोड व्यक्तियो के बढने का अनुमान प्रस्तुत किया गया था। 5 वर्ष व अधिक के आयु-समूह म श्रम-शक्ति मे 3·9 करोड व्यक्तियों की वृद्धि का अनुमान प्रस्तुत किया गया। यदि देश का आर्थिक विकास जनसख्या की वृद्धि की तुलना मे कम होता है तो बेरोजगारी की समस्या का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व कई दशाब्दियो तक भारतीय अर्थव्यवस्था मे गतिहीनता की दशा रही थी। प्राचीन कुटीर उद्योग धन्धो का पतन होने से उनमें सलग्न लोगो को भारी क्षति पहुंची थी। लेकिन उनके स्थान पर देश मे आधुनिक ढग के बडे पैमाने के उद्योग तेजी से नहीं पनप पाये थे। बडे पैमाने के उद्योगो मे कम लोगो को ही रोजगार दिया जा सका था।

प्रोफेसर के. सुन्दरम ने अनुमान लगाया है कि भारत मे श्रम-शक्ति 1981 मे 30 3 करोड से बढकर 1991 मे 38 करोड व 2001 मे 47·6 करोड हो जायेगी क्योंकि इन वर्षों मे जनसख्या तेजी से बढेगी। उनका मत है कि 1990 से प्रारम्भ होने वाले दशक मे प्रतिवर्ष श्रम-शक्ति में एक करोड़ व्यक्तियो की वृद्धि हो सकती है। अतः जनसख्या व श्रम-शक्ति मे विस्फोटक स्थिति होने से बेरोजगारी मे भी विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो जायगी।

2. सार्वजनिक क्षेत्र मे विनियोगो का प्रभाव—सार्वजनिक क्षेत्र मे पूंजी-निवेश के बढने से रोजगार मे वृद्धि होती है। देश मे 1965 के बाद सार्वजनिक विनियोग व सार्वजनिक व्यय मे वार्षिक वृद्धि-दर पहले से कम हुई है जिससे इन्फ्रा-स्ट्रक्चर व उद्योगो के विकास पर प्रतिकूल असर पडा है तथा साथ मे रोजगार भी कम बढ पाया है। आन्तरिक मुद्रास्फीति व विदेशी सहायता की अनिश्चितता तथा युद्धो के परिणामस्वरूप पूंजी-निवेश पर्याप्त तेजी से नही बढा और उसमे गतिहीनता की दशा उत्पन्न हो गयी। ऐसी स्थिति मे विनियोग के अभाव के कारण रोजगार के अवसरो मे पर्याप्त मात्रा मे वृद्धि नही की जा सकती है। हमारे देश मे सार्वजनिक विनियोग व निजी विनियोग एक दूसरे के पूरक हैं, न कि प्रतियोगी। इसलिए सार्वजनिक विनियोगो की धीमी वृद्धि से निजी विनियोगो की वृद्धि पर भी विपरीत असर पडता है। परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था मे सम्पूर्ण विनियोग की वृद्धि-दर ही धीमी रही है। इससे रोजगार के अवसर तेजी से व पर्याप्त मात्रा मे नही बढ पाये हैं।

3. पूंजी गहन परियोजनाओं पर अधिक जोर—द्वितीय योजना के प्रारम्भ से हमने आधारभूत उद्योगो (basic industries) के विकास पर अधिक जोर दिया जिससे भारी इन्जीनियरी, भारी रसायन, आदि उद्योगो मे पूंजी तो अधिक लगायी गयी, लेकिन उनमे रोजगार के अवसर ज्यादा नही बढ पाये। दीर्घकालीन दृष्टिकोण से आर्थिक नियोजन की महलानोबिस-नीति मे, 'भारी उद्योगो को प्राथमिकता' देना अनुचित नही था, लेकिन अल्पकाल मे उसके प्रभाव रोजगार पर प्रतिकूल रहे। वैसे उस नीति से रोजगार बढाने के लिए कुटीर व ग्रामीण उद्योगो को पनपाने की बात कही गई थी, लेकिन उस दिशा में सफल प्रयास नही किये जा सके जिससे बेरोजगारी बढी। भूतकाल मे ग्रामीण क्षेत्रो मे उद्योगो पर सक्रिय रूप से ध्यान नही दिया गया जिससे इनके द्वारा बेरोजगारी दूर करने मे पर्याप्त रूप से मदद नही मिल सकी। भविष्य मे ग्रामीण व लघु उद्योगो को रोजगार बढाने का मुख्य साधन बनाना होगा।

4. कृषिगत विकास का अभाव—कृषिगत विकास मे पर्याप्त मात्रा मे तेजी, नियमितता व स्थिरता आने से ही अन्य क्षेत्रो मे विकास का आधार सुदृढ हो सकता

है। भारत मे कृषिगत विकास की गति धीमी रही है। 1949-50 से 1983-84 के बीच कृषि मे विकास की वार्षिक दर 2·6% रही है। इसके अलावा विभिन्न राज्यो मे कृषिगत उत्पादन मे काफी उतार-चढाव आते रहे हैं। जब तक खाद्यान्न, कपास, जूट, तिलहन व गन्ने आदि की पैदावार द्रुत गति से नही बढती, तब तक कृषि व गैर-कृषि दोनो क्षेत्रो मे रोजगार के अवसर तेजी से नही बढ सकते। इसलिए कृषिगत विकास की धीमी गति न बेरोजगारी की स्थिति म सुधार नही होने दिया।

5. **शिक्षा प्रणाली व आर्थिक विकास मे परस्पर तालमेल का अभाव**—वर्षो तक चर्चा करने के बाद भी देश की शिक्षा-प्रणाली को आर्थिक विकास की आवश्यकताओ के अनुरूप नही ढाला जा सका है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली 'स्व-रोजगार' (self-employment) को बढावा न देकर 'रोजगार तलाश करने वालो' (employment-seekers or Job-seekers) को अधिक बढावा देती है जिससे समस्या जटिल हो जाती है। यह बात दक्ष व अदक्ष दोनो प्रकार के श्रमिको पर लागू होती है।

6. **निजी क्षेत्र के समक्ष अनिश्चितता व सरकारी नियन्त्रणो की भरमार**—निजी क्षेत्र के समर्थको का कहना है कि सरकारी नीतियाँ निजी क्षेत्र को हतोत्साहित करती हैं जिससे वह रोजगार के अवसर बढाने मे अपना पूरा योगदान नही दे पाता। भूतकाल मे सरकार की कर-नीति विनियोग को प्रोत्साहन देने वाली नही रही है। निजी क्षेत्र के समर्थको का कहना है कि देश मे अनेक प्रकार के औद्योगिक नियन्त्रण लगे हुए हैं जिससे उनको अपने कार्यो को बढाने मे कई तरह की बाधाओ का सामना करना पडता है। यदि देश मे निजी क्षेत्र के विकास के लिए अधिक अनुकूल वातावरण होता तो वह रोजगार बढाने मे ज्यादा योगदान दे सकता था।

श्रीमती ईशर जज अहलूवालिया ने बतलाया है कि भारत मे प्रचलित औद्योगिक नीति सम्बन्धी फ्रेमवर्क (औद्योगिक लाइसेंस नीति, आयात नीति, कीमत-नियन्त्रण, विदेशी कम्पनियो से सहयोग के समझौते व टक्नोलोजी-अन्तरण सम्बन्धी समझौतो) की वजह से औद्योगिक जगत मे अनावश्यक विलम्ब व अकार्यकुशलता को बढावा मिला तथा 1965 के बाद औद्योगिक विकास की गति धीमी पड गई।[1] राजीव सरकार ने इन कमियो को दूर करने की दिशा म कई कदम उठाये है तथा अनावश्यक नियन्त्रणो व नियमनो पर पुनर्विचार करके उनको कम किया जा रहा है

---

1. Isher Judge Ahluwalia, Industrial Growth in India, 1985, Chapter 8.

ताकि औद्योगिक विकास व रोजगार के लिए अधिक अनुकूल वातावरण बन सके। औद्योगिक क्षेत्रों में यह महसूस किया जा रहा है कि व्यापार में नौकरशाही व सरकारी अफसरों की तरफ से पर्याप्त सहयोग न मिलने के कारण निजी क्षेत्र को उदार नीतियों का पूरा लाभ नहीं मिल सका है। अतः इस दिशा में सुधार करने की आवश्यकता है।

7 रोजगार नीति व श्रम-शक्ति नियोजन (Man-power Planning) का अभाव—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश का आर्थिक विकास करने का प्रयास किया गया, लेकिन योजनाओं में रोजगार प्रदान करने के सम्बन्ध में कोई व्यापक व प्रगतिशील नीति नहीं अपनाई जा सकी। श्रम-शक्ति नियोजन की दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई। परिणामस्वरूप देश में रोजगार बढ़न के बावजूद भी बेरोजगारी बढ़ी है।

भारत में नियोजन तथा रोजगार
(Planning & Employment in India)

1. प्रथम योजना—भारतीय नियोजन के उद्देश्यों में सदैव रोजगार बढ़ाने पर बल दिया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में बेरोजगारी की समस्या पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया, लेकिन 1953 से बेकारी की समस्या के अधिक उग्र हो जाने से प्रथम योजना में 309 करोड़ रुपये के अतिरिक्त व्यय की व्यवस्था की गई जिससे लोगों को विभिन्न दिशाओं में अधिक रोजगार प्रदान किया जा सके। इसके लिए ग्यारह सूत्री कार्यक्रम घोषित किया गया जिसमें लघु उद्योगों का विकास, सड़कों का निर्माण, अध्यापकों की नियुक्ति, आदि कार्यक्रम शामिल किये गये थे।

प्रथम योजना में लगभग 70 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने के बावजूद भी योजना के अन्त में बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हुई थी।

2 द्वितीय योजना—द्वितीय योजना में आधारभूत उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गई लेकिन साथ में रोजगार बढ़ाने के लिए कुटीर व घरेलू उद्योगों के विकास का भी महत्व स्वीकार किया गया। योजना में कहा गया कि सरकार इस बात का प्रयास करेगी कि योजना के अन्त में बेरोजगारी न बढ़े, योजनाकाल में सभी नये काम चाहने वाले व्यक्तियों को काम पर लगाया जा सके। लेकिन बाद में साधनों के अभाव के कारण द्वितीय योजना का आकार घटाना पड़ा जिससे योजना के अन्त में बेरोजगारी बढ़ी।

3. तृतीय योजना—तृतीय योजना में 1 करोड़ 40 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया था, जबकि श्रम-शक्ति में जुड़ने वाले

खेतिहर श्रमिक विकास एजेन्सी, सूखाग्रस्त क्षेत्रों के कार्यक्रम, आदि । इसके अलावा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के कार्यक्रम में निम्न कार्य सुझाये गये : प्राथमिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, ग्रामीण जल सप्लाई, भूमिहीनों के लिए रिहायशी भू-खण्डों की व्यवस्था, ग्रामीण सड़कें, ग्रामीण विद्युतीकरण व शहरों में गन्दी बस्तियों का सुधार, आदि ।

निर्माण सम्बन्धी कार्य काफी श्रम गहन होते हैं । देश में मजदूरी पर रोजगार व स्व-रोजगार दोनों को बढ़ाने की आवश्यकता स्वीकार की गई । यह भी कहा गया कि कृषि में बिना सोचे-समझे यन्त्रीकरण नहीं किया जाना चाहिए ।

छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 में रोजगार नीति व कार्यक्रम—छठी योजना की अवधि में कुल 4 6 करोड़ व्यक्तियों के लिए रोजगार की व्यवस्था करने की समस्या मानी गयी थी । 1979-80 में देश में 15·1 करोड़ स्टैण्डर्ड व्यक्ति-वर्ष (Standard Person-years) (SPY) का रोजगार मिला हुआ था जिसे 1984-85 तक 18 5 करोड़ स्टैण्डर्ड व्यक्ति-वर्ष करने का लक्ष्य रखा गया था । एक स्टैण्डर्ड व्यक्ति-वर्ष 273 कार्यकारी दिनों (working days) का होता है एवं एक दिन में आठ घण्टे काम करना होता है । इस प्रकार छठी योजना की अवधि में 3 4 करोड़ व्यक्ति-वर्ष का रोजगार बढ़ाने के कार्यक्रम रखे गये थे जिसमें अकेले कृषि व सहायक क्षेत्रों में 1 5 करोड़ व्यक्ति-वर्ष का अतिरिक्त रोजगार उत्पन्न करने का लक्ष्य रखा गया था । शेष अतिरिक्त रोजगार के अवसर खनन, विनिर्माण व अन्य क्रियाओं में उत्पन्न करने के लक्ष्य रखे गये थे । छठी योजना में रोजगार में वार्षिक वृद्धि की दर 4 2% निर्धारित की गई थी, जबकि श्रम-शक्ति में वार्षिक वृद्धि दर 2 54% आंकी गई थी । इस प्रकार रोजगार में वृद्धि-दर श्रम-शक्ति की वृद्धि-दर से अधिक रखी गई थी ।

योजना के अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने के बड़े कार्यक्रम निम्न किस्म के रखे गये थे ।

(i) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development programme) (IRDP) —यह मूलत. ग्रामीण निर्धनता को दूर करने या कम करने का कार्यक्रम है है । छठी योजना में इसे देश के सभी खण्डों में फैलाने का लक्ष्य रखा गया था । यह कहा गया कि प्रत्येक खण्ड में 3000 निर्धन परिवारों को कृषि व गैर-कृषि व्यवसायों में काम दिया जायगा । प्रतिवर्ष 600 परिवारों को काम देने की व्यवस्था रखी गयी एवं प्रत्येक खण्ड पर 5 वर्ष की अवधि में 35 लाख रु राशि व्यय-हेतु निर्धारित की गई ।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गावों में गरीबों को पशु, कृषिगत उपकरण व अन्य साधन देने की नीति घोषित की गई । यह कहा गया कि खेतिहर मजदूरों को सीमा-निधारण से प्राप्त अतिरिक्त भूमि आवंटित की जायगी ।

सातवीं पचवर्षीय योजना, 1985-90 में रोजगार बढाने के लक्ष्य व प्रस्तावित नीति

सातवी योजना के प्रारम्भ मे 92 लाख व्यक्ति वर्ष भर के लिए बेरोजगार माने गये तथा योजनाकाल मे श्रम-शक्ति मे 3 9 करोड व्यक्तियो की वृद्धि का अनुमान लगाया गया। इस प्रकार योजना मे 4 86 करोड व्यक्तियो को काम देने की समस्या स्वीकार की गयी।

अनुमान लगाया गया कि योजनाकाल मे 4 04 करोड स्टैण्डर्ड व्यक्ति-वर्ष का अतिरिक्त रोजगार उत्पन्न किया जा सकेगा। इस प्रकार रोजगार मे वार्षिक वृद्धि-दर 3 99% आकी गयी। अकेले कृषि मे अतिरिक्त रोजगार 1·8 करोड व्यक्ति-वर्ष तथा विनिर्माण मे 67 लाख व्यक्ति-वर्ष दन का अनुमान लगाया गया। कृषि मे रोजगार के अवसर बढाने के लिए कम्बाइण्ड हार्वेस्टर का प्रयोग सीमित रखने पर बल दिया गया।

सातवीं योजना में अतिरिक्त रोजगार के अवसरो की मुख्य दिशाएँ

(i) सिचाई का विकास व उसका पूरा उपयोग, सूखी खेती मे उपलब्ध टेक्नोलोजी का प्रयोग, चावल, मोटे अनाजो, दाल व तिलहनो की पैदावार म वृद्धि भूमि पर क्षार को दूर करके उसमे सुधार करना, पशु-पालन, मछली-पालन व वृक्षारोपण का विस्तार।

(ii) उर्वरक, कीटनाशक दवाई व कृषिगत मशीनरी का विस्तार, आवश्यक उपभोक्ता माल के उत्पादन मे वृद्धि, इलेक्ट्रोनिक्स व मोटरगाडी उद्योग का विकास व सहायक उद्योगो का विकास करके रोजगार के अवसर बढाना।

(iii) लघु उद्योगों का विस्तार करना। हाथ करघा उद्योग मे 1984-85 म 75 लाख व्यक्ति कार्यरत थे। सातवी योजना म 24 लाख व्यक्तियों का इसम अतिरिक्त रोजगार देन का लक्ष्य रखा गया था।

(iv) सिचाई, बाढ नियन्त्रण व कमाण्ड एरिया विकास (CDA) के मार्फत रोजगार के अवसर बढाने पर बल दिया गया।

(v) भवन-निर्माण (Housing) रोजगार-गहन क्रिया मानी गई है। इसे शहरी व अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों म तेजी से चलाने पर जोर दिया गया।

(vi) परिवहन मे—विशेषतया ग्रामीण सडका, आन्तरिक जल-परिवहन (देशी नावो), सडक-परिवहन व समुद्री जहाज निर्माण, इनकी मरम्मत व पुराने जहाजो को तोडने आदि मे रोजगार बढाने की आवश्यकता स्वीकार की गई।

इस प्रकार सातवी योजना मे रोजगार बढाने पर काफी जोर दिया गया। 'भोजन, काम व उत्पादकता' ये सातवी योजना के तीन केन्द्र-बिन्दु माने गये।

जिला-उद्योग केन्द्रों के माध्यम से लागू किया गया है। इसके अन्तर्गत निर्धारित व्यय की राशि का उपयोग उद्यमकर्त्ताओं द्वारा बैंकों से लिए गये कर्ज पर 25% पूँजीगत अनुदान देने में किया गया है।

6 राज्य सरकारों द्वारा विशेष रोजगार कार्यक्रम

महाराष्ट्र में 1972 से रोजगार गारंटी कार्यक्रम चल रहा है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में अदक्ष व शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्तियों को रोजगार दिया जाता है। इसके लिए वहां 1977 में रोजगार गारंटी अधिनियम बनाया गया था प्रति वर्ष कई करोड़ श्रम-दिवस का रोजगार प्रदान किया जाता है। अन्य राज्य सरकारों ने भी ऐसे प्रयास किये हैं जिनसे बेरोजगार लोगों को लाभ पहुँचा है।

इस प्रकार देश में पिछले वर्षों में रोजगार बढ़ाने के विशिष्ट कार्यक्रमों ने बेरोजगार व्यक्तियों को लाभ पहुँचा है तथा योजना में विकास-कार्यक्रमों से भी रोजगार में वृद्धि हुई है।

जवाहर रोजगार योजना (JRY)

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाने की दृष्टि से जवाहर रोजगार योजना पहले के सभी रोजगार कार्यक्रमों की तुलना में सबसे बड़ा प्रयास है। इसके अन्तर्गत 1989-90 में लगभग 2625 करोड़ रु. व्यय किये जायेंगे जिनमें केन्द्र का अंश 80% व राज्यों का 20% रखा गया है। इसकी मुख्य बातें निम्नांकित हैं :—

(1) इसके द्वारा ग्रामीण निर्धन-परिवारों में प्रत्येक परिवार में कम से कम एक व्यक्ति को कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा।

(2) इसमें पहले के NREP व RLEGP कार्यक्रम मिला दिये गये हैं।

(3) यह योजना ग्राम-पंचायतों के मार्फत कार्यान्वित की जायेगी। इसके लिए केन्द्र सीधे पंचायतों को आवश्यक धनराशि उपलब्ध करायेगा। पंचायत-स्तर पर रोजगार के कार्यक्रम निर्धारित किये जायेंगे तथा उन्हीं की देख-रेख में चलाये जायेंगे। राज्यों का उनमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होगा, बल्कि वे भी अपने हिस्से का कोष प्रदान करेंगे।

(4) इस योजना में 30% आरक्षण ग्रामीण महिलाओं के लिए रखा गया है।

(5) केन्द्रीय सहायता का राज्यों में आवंटन ग्रामीण निर्धनों की संख्या के अनुपात में किया जायेगा, राज्यों से जिला-स्तर पर कोषों का आवंटन पिछड़ेपन के सूचनांक के आधार पर किया जायेगा तथा जिलों के प्रत्येक ग्राम पंचायत को कोषों का आवंटन गाँव की जनसंख्या के आधार पर किया जायेगा।

(6) जिला-स्तर के कुल आवंटन का 6% SC/ST के लिए इन्दिरा आवास योजना में इस्तेमाल किया जायेगा। धनराशि का व्यय उत्पादक परिसम्पत्तियों के निर्माण, सामाजिक वानिकी, सड़क व भवन-निर्माण, आदि में स्थानीय जरूरतों के मुताबिक किया जायेगा।

क्या JRY बेकारी हटाने में सफल होगी ?

JRY ग्रामीण निर्धनों के लिए रोजगार की व्यवस्था करने की सबसे बडी योजना है। इसके अन्तर्गत सभी गावो को शामिल करने का कार्यक्रम है। NREP/RLEGP मे 59% गाँव ही शामिल किये जा सके हैं। सभी गावो को शामिल करने की बात आकर्षक लगती है, लेकिन इससे कई प्रकार की कठिनाइया भी उत्पन्न हो सकती हैं—

(i) इससे साधन सारे देश मे थोडे-थोडे ही उपलब्ध किये जा सकेंगे, जैसे गुजरात मे 44% पचायतो मे से प्रत्येक को वर्ष मे 25 हजार रुपये ही मिल पायेंगे। इनमे बहुत थोडा रोजगार हीउत्पन्न हो सकेगा क्योंकि 12 500 रुपये ही मजदूरी के लिए मिल पायेंगे, शेष सामान मे लग जायेंगे। इतने से ध्ययसेएक गाव मे 100 केवल 11 व्यक्तियो को काम दिया जा सकेगा।

(ii) जरूरतमद गावो को जहा बेकारी ज्यादा है, वहा पर्याप्त साधन नही मिल पायेंगे।

(iii) पचायतो मे धनी लोगो का प्रभाव अधिक पाया जाता है जिससे शोषण की प्रक्रिया समाप्त नहीं होगी।

(iv) राज्यो का सीधा योगदान न होने से केन्द्र का इस योजना मे प्रभाव बढ जायगा जिससे विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया कमजोर पड जायगी।

(v) JRY मे भी नियोजन का पक्ष कमजोर बना हुआ है जैसा कि NREP व RLEGP मे था। इसे किसी जिला या खण्ड स्तरीय योजना से नही जोडा गया है। इससे सामुदायिक परिसम्पति के निर्माण मे कठिनाई आयेगी क्योकि उसके लिए भूमि-सेना जैसी बडी योजना जरूरी होती है। इसलिए प्रोजेक्टो के चयन की व्यवस्था के अभाव व अन्य प्रकार के नियोजन के अभाव मे JRY से ज्यादा सफलता की आशा करना कठिन है।

NREP व RLEGP के चालू कार्यक्रमो के लिए धन की उचित व्यवस्था जारी रहनी चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि JRY को लागू करने के दौरान उनको नजर-अदाज कर दिया जाय।

इसलिए JRY का भविष्य आठवीं पचवर्षीय योजना में इसके स्वरूप व स्वीकृति पर निर्भर करेगा।

भारत में शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी
(Educated Unemployment in India)

कुछ लेखक[1] इसे मध्यमवर्गीय बेरोजगारी (middle class unemployment) भी कहते हैं। भारत मे शिक्षित वर्ग मे बेकारी की समस्या काफी गम्भीर है। वैसे

---

1. Indira Hirway, Bekari Hatao, The Economic Times Sept. 9, 1989.

इन्जीनियरों में डिग्री व डिप्लोमा-होल्डरो की बेकारी का सम्बन्ध प्राय: औद्योगिक मन्दी से माना जाता है, लेकिन शिक्षित वर्ग मे बेकारी के बढ़ने का मुख्य कारण यह है कि पिछले वर्षों में अर्थव्यवस्था के विकास की तुलना में शिक्षा का विस्तार अधिक तेजी से हुआ है। रोजगार विनिमयालयों के रजिस्टरों में लाखो मैट्रिक व उच्च योग्यता वाले आवेदकों के नाम दर्ज पाये जाते हैं। इनमे उन शिक्षित व्यक्तियों की सख्या भी जोडी जानी चाहिए जो किसी कारण से अपना नाम रोजगार विनिमयालयों मे दर्ज नहीं करा पाते हैं। आधे से ज्यादा शिक्षित बेरोजगार व्यक्ति पश्चिमी बगाल, उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल व बिहार में पाये जाते हैं।

सातवी पचवर्षीय योजना 1985-90 के प्रतिवेदन के अनुसार 1985 के प्रारम्भ में NSS के आकडों के अनुसार शिक्षित बेरोजगारो की सख्या 47 लाख थी (23वें दौर के अनुसार)। इसमे मैट्रिक/हायर सैकण्डरी पास व्यक्तियो की सख्या 35 लाख तथा स्नातक व प्राविधिक डिप्लोमा-होल्डरो की सख्या 12 लाख थी।

1985 के प्रारम्भ में शिक्षित श्रम-शक्ति लगभग 3 करोड व्यक्ति थी जिसके 1990 के प्रारम्भ तक बढ़कर 4·1 करोड व्यक्ति हो जाने का अनुमान लगाया गया था। इस प्रकार सातवी योजना में शिक्षित श्रम-शक्ति (आर्थिक दृष्टि से सक्रिय जन-सख्या) 1·1 करोड बढ जायगी। अत: शिक्षित वर्ग को रोजगार प्रदान करने की समस्या काफी जटिल मानी गई है।

देश मे रोजगार विनिमयालयो के ताजा आकडो के अनुसार जून 1988 के अन्त में शिक्षित बेरोजगारो की सख्या 167 लाख थी जिसमे 97 लाख मैट्रिक पास थे जो कुल शिक्षित बेरोजगारो का 58% था। 1982 में कुल शिक्षित बेरोजगार 98 लाख थे जिनमे मैट्रिक पास 56 लाख (57%) थे।[1]

भारत में शिक्षित बेकारी के सम्बन्ध में एक विरोधाभास पाया जाता है। एक तरफ तकनीकी योग्यता प्राप्त व्यक्ति बेकार पाये जाते हैं तो दूसरी तरफ आर्थिक विकास के लिए आवश्यक दक्षता वाले व्यक्तियो की कमी बनी रहती है, जैसे अनुभवी इलेक्ट्रिकल व मैकेनिकल इन्जीनियरों, इलक्ट्रिशियनो, फिटरों, टर्नरो, डॉक्टर-सर्जन, पैरा-मैडिकल कर्मचारियो, विश्वविद्यालय स्तर के अध्यापको व प्रोफेसरो और गणित व विज्ञान विषयो मे उच्चतर माध्यमिक स्कूलो के लिए प्रशिक्षित अध्यापको, स्टेनो-ग्राफरो तथा लेखाकारो का प्राय: अभाव पाया जाता है। इस अभाव की पूर्ति पर शीघ्र ध्यान दिया जाना चाहिए।

प्राय: यह भी देखने मे आया है कि कुछ तथाकथित शिक्षित व्यक्ति न केवल बेरोजगार होते हैं, बल्कि वे रोजगार पाने के लायक भी नही होते, क्योंकि उनमे काम

---

1. The Economic Times, August 27, 1989.

करने की योग्यता व दक्षता बहुत नीचे स्तर की होती है। ऐसा सम्भवतः इसलिए होता है कि उन्होंने अध्ययन-काल में जैसे-तैसे डिग्री तो हासिल कर ली, लेकिन विभिन्न पाठ्यक्रमों में निर्धारित विषयों का भली प्रकार से अध्ययन नहीं किया जिससे उनका ज्ञान मामूली व घटिया किस्म का रह गया। आजकल कला, वाणिज्य व विज्ञान के ऐसे अनेक विद्यार्थी पाये जाते हैं जिन्होंने विभिन्न विषयों की स्टेण्डर्ड रचनाएँ छुई तक नहीं। ऐसी स्थिति में उनका ज्ञान उन्हें जीवन में सफल नहीं बना सकता और उन्हें पर्याप्त आत्म-विश्वास भी नहीं दे सकता।

शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी को दूर करने के लिए आवश्यक सुझाव

1 माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education) में इस प्रकार का परिवर्तन किया जाना चाहिए कि छात्रों के द्वारा विश्वविद्यालयों की तरफ जाने की वर्तमान प्रवृत्ति में कमी की जा सके और माध्यमिक स्कूल छोड़ते समय विद्यार्थी को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाय जिसका रोजगार की दृष्टि से महत्व हो।

वर्तमान समय में भारतीय ग्रेज्यूएट (स्नातक), बी. ए. व बी. एससी. की डिग्री के होते हुए भी तकनीकी व व्यावसायिक योग्यता के अभाव में रोजगार के लायक नहीं हो पाते हैं। इस स्तर पर ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि विद्यार्थी एम. ए. व एम. एससी. पाठ्यक्रमों की तरफ न जाकर आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करके लाभप्रद रोजगार की तरफ जा सकें। इससे उनका व समाज दोनों का हित-वर्धन होगा।

2 दसवीं कक्षा के बाद व्यावसायिक पाठ्यक्रमों (vocational courses) के लिए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान पोलोटेक्निक्स, व कृषि-स्कूलों आदि का विस्तार किया जाना चाहिए। स्मरण रहे कि माध्यमिक शिक्षा में भी रोजगार की तरफ प्रवृत्ति लानी होगी। ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों में फसलों की जुताई बागवानी, लघु सिंचाई आदि का ज्ञान कराया जाना चाहिए। इसी प्रकार शहरी स्कूलों में टाइपराइटिंग व स्टेनोग्राफी पर विशेष रूप से बल देना चाहिए। इस तरह शिक्षा के वर्तमान साहित्यिक झुकाव की जगह विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से शिक्षित बेरोजगारी का संकट कुछ सीमा तक कम हो जायगा।

3 इन्जीनियरों व तकनीकी विशेषज्ञों एवं अन्य शिक्षित व्यक्तियों के लिए सरकारी सहायता से लघु उद्योग स्थापित करने की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे इन लोगों के लिए स्वरोजगार के अवसर खुलेंगे जिनमें यथासम्भव अधिकाधिक वृद्धि की जानी चाहिए।

4. विश्वविद्यालय रोजगार सूचना व निर्देश-संस्थानों को सुदृढ़ करके इन्हें रोजगार एजेन्सियों के समीप लाना चाहिए।

5 ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास इस तरह से किया जाना चाहिए कि लोगों को देहाती क्षेत्रों म विविध प्रकार की आर्थिक क्रियाओं मे रोजगार मिल सके।

6 बैंकिंग व बीमा आदि कार्यों के विकास से काफी शिक्षित व्यक्तियों के लिए रोजगार के नये अवसर खुल सकते है।

हम आगे चलकर बेरोजगारी को दूर करने के लिए जो सामान्य सुझाव देंगे उसमे से अधिकाश सुझाव शिक्षित बेरोजगारी को दूर करने पर भी लागू होंगे। सरकार ने शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार की एक स्कीम 1983 से लागू की है। इसके अन्तर्गत 25 हजार रु तक का कर्ज दिया जाता है। केन्द्रीय बजट म 1984-85 के लिए 25 करोड रु का प्रावधान किया गया था, ताकि उद्यमकर्ताओं द्वारा लिये गये बैंक-ऋण पर इस राशि म से 25% तक पूंजीगत सब्सिडी दी जा सके।

शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता व चरित्र सम्बन्धी गुणों का समुचित रूप से विकास किया जाना चाहिए। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की परिस्थितिया उत्पन्न करती है। शिक्षा के ढाँचे मे इस प्रकार के परिवर्तन किए जाने चाहिएँ ताकि समाज म आवश्यक दक्षताएँ प्रोत्साहित की जा सके तथा अनावश्यक दक्षताएँ हतोत्साहित की जा सकें। किसी भी कार्य के लिए योग्यताओं को भी इस प्रकार से बदला जाना चाहिए कि उनके लिए अनावश्यक रूप से 'ऊँची योग्यताओं' का दबाव कम किया जा सके। वर्तमान सरकार नई शिक्षा प्रणाली' पर विचार कर रही है। साथ म नौकरियों को यथासम्भव डिग्रियों से पृथक करने की चर्चा भी होती रही है। आशा है इस दिशा मे कुछ प्रगति होगी।

सातवीं पचवर्षीय योजना, 1985–90 मे शिक्षित बेरोजगारी के सम्बन्ध मे नीति—वैसे सामान्य बेरोजगारी के हल से शिक्षित बेरोजगारी का भी अशत समाधान निकलता है। लेकिन सातवीं योजना ने शिक्षित व्यक्तियों के लिए निम्न दिशाओं मे रोजगार बढाने के प्रयास किये जायेंगे।

1 अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों म आर्थिक क्रियाओं के विस्तार व टेक्नालोजिकल प्रगति से शिक्षित मानवीय शक्ति के लिए रोजगार के अवसर बढेंगे। सगठित व असगठित क्षेत्रों मे मैट्रिक/हायर सैकण्डरी परीक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए काम के अवसर बढेंगे। उद्योग, बैंकिंग परिवहन, सचार व सार्वजनिक सेवाओं मे उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए काम के अवसर उत्पन्न होंगे।

2 तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को इलेक्ट्रोनिक्स, कम्प्यूटर-प्रणाली, न्यूक्लियर विज्ञान, पर्यावरण-इन्जीनियरी, बायो-इन्जीनियरी व ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोतों से सम्बन्धित क्षेत्रों में नया काम मिलेगा।

3. तकनीकी व्यक्तियों को ऊर्जा के क्षेत्र में अधिक रोजगार मिलेगा। सामुद्रिक सम्पदा की खोज व विदोहन में तकनीकी जानकारी की मांग होगी।

4. ग्रामीण विकास के विविध कार्यों में शिक्षित लोगों के लिए रोजगार के नये अवसर खुलेंगे। इन्हें स्वरोजगार के विविध कार्यों में भी अतिरिक्त काम-धन्धा मिल सकेगा।

जैसा कि पहले बताया गया है शिक्षित बेरोजगार युवावर्ग के लिए स्वरोजगार की नई स्कीम अगस्त 1983 से चालू की गई जिसके अन्तर्गत 1983-84 में 2 5 लाख व्यक्तियों को काम देने का लक्ष्य रखा गया था। यह स्कीम (DICs) के माध्यम से क्रियान्वित की गई है।

क्या भारतीय योजनाओं में रोजगार सम्बन्धी नीति दोषपूर्ण रही है ?

पहले बताया जा चुका है कि भारतीय नियोजन में रोजगार बढ़ाने पर सदैव बल दिया गया है और इसके लिए ग्रामीण निर्माण-कार्यक्रम (RWP) तथा ग्रामीण रोजगार की शीघ्र व प्रभावी परिणाम देने वाली योजना (क्रैश स्कीम) (Crash Scheme for Rural Employment) (CSRE) आदि कार्यक्रमों पर धन-राशि व्यय की गई है जिससे कुछ सीमा तक रोजगार के नये अवसर खुले हैं। यदि योजनाओं में रोजगार बढ़ाने का प्रयास नहीं किया जाता, तो सम्भवतः आज बेरोजगारी की स्थिति और भी बदतर होती।

सातवीं योजना के प्रारम्भ में 5 वर्ष व अधिक के आयु-समूह में लगभग 92 लाख व्यक्तियों की बेरोजगारी (सामान्य स्टेटस के अनुसार) की समस्या मुँह बाये खड़ी है जिससे कुछ व्यक्ति यह समझते हैं कि भारत में पिछले लगभग चार दशकों में आयित नियोजन रोजगार बढ़ाने की दृष्टि से विफल रहा है। योजना-काल में बेरोजगारी की समस्या के बने रहने तथा बढ़ने के लिए निम्न कारण उत्तरदायी माने जा सकते हैं—

1. पूँजी-गहन विधियों पर अधिक जोर—विद्वानों का मत है कि भारत में योजनाकाल में पूँजी-गहन विधियों (capital intensive methods) के इस्तेमाल पर अधिक जोर देने के कारण रोजगार के अवसरों का पर्याप्त रूप से विस्तार नहीं किया जा सका है। द्वितीय योजना के प्रारम्भ से विकास की महलानोबिस नीति के

नहीं कर पायी है । इसका कारण यह है कि काफी विनियोग पूँजी-गहन क्रियाओं में किया गया है जिनमे रोजगार की वृद्धि बहुत सीमित मात्रा मे हो पाती है । ध्यान देने की बात यह है कि देश मे वित्तीय साधन तो मौजूद हैं लेकिन आवश्यकता है उनको एकत्र करने व उनका सदुपयोग करने की । भारत मे काला धन व काली मुद्रा विशाल मात्रा म उत्पन्न हो गय हैं । कृषिगत क्षेत्र से कर लगाकर अधिक साधन एकत्र किये जा सकते हैं जिसके लिए राज समिति ने सिफारिशें प्रस्तुत की थी । लेकिन अभी तक राजनीतिक कारणों से इस दिशा मे सक्रिय प्रयास नहीं किये गये हैं । भारत म अनुत्पादक सरकारी खर्च म भी कमी की जानी चाहिए । सरकारी उपक्रमों से अधिक लाभ अर्जित किया जाना चाहिए । अत वित्तीय साधनों को जुटाकर विनियोग की दर ऊँची रखी जा सकती है । विनियोग की दर को बढ़ाए बिना रोजगार के अवसर बढ़ाना सम्भव नहीं है । लेकिन साथ मे विनियोग का प्रारूप भी श्रम गहन बनाया जाना चाहिए ताकि उसम से अधिक मात्रा मे रोजगार प्राप्त किया जा सके । इसके लिए कृषि सहायक उद्योगों व विकेन्द्रित लघु उद्योगों के विकास के लिए अधिक धनराशि नियत की जानी चाहिए । आठवीं योजना मे विनियोग की दर 24 9% करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है तथा रोजगार म 3% वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है ।

2 **जनसंख्या की वृद्धि पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण**—भारत म 1971 81 म जनसंख्या की चक्रवृद्धि दर 2 2% रही है । देशव्यापी परिवार नियोजन अभियान चला कर इसम कमी की जानी चाहिए । हालांकि अगले 15 20 वर्षों म जिन व्यक्तियों को काम पर लगाना है व तो अब तक जन्म ले चुके हैं । लेकिन जन्म दर को घटाने का विशेष महत्त्व है जिसम अधिक ढील नहीं दी जानी चाहिए ।

3 **जन शक्ति नियोजन की आवश्यकता (Need for Manpower planning)**—आजकल शिक्षित व दक्ष जनशक्ति के सम्बन्ध म नियोजन की आवश्यकता पर विशेष रूप से बल दिया जाने लगा है । यदि शिक्षित व दक्ष जन शक्ति की पूर्ति अर्थ व्यवस्था म उत्पन्न माग के अनुसार होती रहती है तो व्यक्ति व समाज दोनो का लाभ पहुँचता है । व्यक्ति को अपने भविष्य के सम्बन्ध म निर्णय लेते समय यह विश्वास होता है कि उसके प्रशिक्षण का उचित उपयोग हो जायगा और वह लाभप्रद ढग से काम कर सकेगा समाज को यह लाभ होता है कि वह शिक्षा का विकास आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुसार कर सकता है । इसम कई अनिश्चितताए व कठिनाइया अवश्य आती हैं लेकिन जनशक्ति नियोजन की सफलता इसी बात म है कि वह भावी माग का अपेक्षाकृत सही अनुमान लगाकर पूर्ति की व्यवस्था के लिए आवश्यक सुझाव दे । यदि नियोजन म त्रुटि के कारण भविष्य म दक्ष श्रमिकों का अभाव रहता है तो अर्थव्यवस्था के विकास को धक्का पहुँचता है । यदि दक्ष व प्रशिक्षित जन शक्ति आवश्यकता से थोड़ी ज्यादा रहती है तो उसके उपयोग की व्यवस्था कर सकना विशेष कठिन नहीं होता ।

चूंकि समस्त जन शक्ति एक-सी नही होती इसलिए जनशक्ति-नियोजन मे विभिन्न श्रेणियो जैसे डॉक्टरो नर्सों इन्जीनियरो, कृषि-स्नातको एव दस्तकारो आदि पर उनकी अलग-अलग शिक्षा व विशिष्टीकरण के अनुसार विचार किया जाता है। शिक्षित व दक्ष जन-शक्ति के आधिक्य की स्थिति को टालने के लिए इस प्रकार का नियोजन करना बहुत आवश्यक माना गया है।

4 योजनाओ मे विनियोग के स्वरूप मे परिवर्तन (Change in the Pattern of Investment in the Plans) —अब तक हमारी योजनाओ मे विशेषतया द्वितीय योजना के आरम्भ से आधारभूत व भारी उद्योगो के विकास पर अधिक बल दिया गया है। इससे अर्थव्यवस्था के भावी विकास का आधार तो सुदृढ हो गया लेकिन रोजगार के अवसर पर्याप्त मात्रा मे नही बढ सके है। अब हम इस स्थिति मे पहुच गये है कि रोजगार बढाने वाले उद्योगो पर अधिक ध्यान दे सके। इसके लिए आम जरूरत की उपभोग्य वस्तुओ के उद्योगो मे विशेष रूप से विनियोग करना होगा जिससे एक तरफ रोजगार के अवसर बढ सकगे और दूसरी तरफ मुद्रास्फीति पर भी नियन्त्रण स्थापित किया जा सकेगा। आशा है भावी योजनाओ मे जन-साधारण की आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन बढाया जायेगा और उनके वितरण की व्यवस्था भी सुधारी जायेगी।

स्पष्ट है कि हमे बडे उद्योगो के स्थान पर ग्रामीण व लघु उद्योगों को अधिक प्रोत्साहन देना होगा और ऐसी टेक्नोलॉजी चुननी होगी जो अधिक मात्रा मे श्रम का उपयोग कर सके। इस सम्बन्ध मे मध्यवर्ती या बीच की टेक्नोलाजी (intermediate technology) को अपनाने पर अधिक बल देना चाहिए जो रोजगार बढाने वाला होती है।

5 हरित क्रांति और रोजगार की समस्याएं—1966 से कृषि मे अधिक उपज देने वाली किस्मो का कार्यक्रम एव बहु फसल कार्यक्रम अपनाया गया है। भविष्य मे सिचाई के लघु साधनो का विस्तार करके एव रासायनिक खाद कीट-नाशक दवाइयो आदि का उपयोग करके कृषि मे अल्परोजगार की समस्या कम की जा सकती है। भारतीय कृषि मे टक्नोलाजी निम्न स्तर को छोडकर उच्च स्तर की ओर अग्रसर होने लगी है। इससे कृषिगत उत्पादकता व आय मे वृद्धि हुई है। कृषि के व्यवसायीकरण से कृषिगत विनियोगो म वृद्धि हो रही है। अधिक विनियोग से अधिक रोजगार की सम्भावनाओ का खुलना भी स्वाभाविक है। अधिक उपज देने वाली किस्मो का कार्यक्रम अधिक क्षेत्रो मे अपनाने से अधिक श्रमिको को काम मिलेगा क्योकि इससे सिचाई खाद कीटनाशक दवाइयो का उपयोग बिक्री आदि सभी कृषिगत क्रियाओ मे श्रम की माग बढेगी। कृषि मे श्रमिको की मजदूरी बढेगी। बहु-फसल कार्यक्रम से भी कृषि मे श्रम की माग बढेगी।

6 कृषि मे संस्थागत परिवर्तनों का रोजगार पर प्रभाव—भारत मे भूमि पर सीमा-निर्धारण करके अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनो मे वितरित करने से भी कुछ

सीमा तक रोजगार के अवसर बढ़ाये जा सकते हैं तथा निर्धनता कम की जा सकती है। कृषि में संस्थागत व तकनीकी परिवर्तन साथ साथ होने चाहिए। एक तरफ भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किये जाने चाहिएँ तथा दूसरी तरफ सिंचाई, उर्वरक, बीज, खाद आदि का तेजी से विस्तार करके कृषिगत उत्पादकता बढ़ायी जानी चाहिए। इनसे कृषिगत विकास की दर बढ़ेगी तथा रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे।

पिछले वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार बढ़ा है जो एक उचित प्रवृत्ति है। फूड प्रोसेसिंग क्रियाओं में उत्पादन बढ़ने से रोजगार के अवसर बढ़े हैं जिनमें भविष्य में और वृद्धि की जा सकेगी।

7 ग्रामीण औद्योगीकरण—ग्रामीण विद्युतीकरण से विकेन्द्रित आधार पर लघु व मध्यम श्रेणी के उद्योगों के विस्तार की आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं। विभिन्न ग्रामीण उद्योगों का विकास करके देहातों में लोगों को रोजगार दिया जा सकता है। ग्रामीण विद्युतीकरण से इसमें काफी मदद मिलेगी।

8. कृषि के विभिन्न सहायक धन्धों का विकास—सदैव से भारतीय कृषक कृषि के साथ-साथ अन्य सहायक क्रियाओं में भी संलग्न रहा है। आज देश में पशु-पालन, भेड़-पालन, सूअर-पालन, मुर्गी-पालन, आदि के विकास के लिए और भी अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं। इनसे कृषकों की आय में वृद्धि की जा सकती है।

9. ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों के विस्तार की आवश्यकता—पहले बतलाया जा चुका है कि भारत में गम्भीर किस्म की मौसमी बेरोजगारी वाले प्रदेशों से खेतिहर श्रमिकों, अनुसूचित व आदिम जातियों, आदि के लोगों को रोजगार देने तथा साथ में उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करने के लिए ग्रामीण कार्यक्रमों का पृथक् से भी चलाने की आवश्यकता है। देहातों में ऐसे अनेक कार्य किये जा सकते हैं जिनसे पूँजी का निर्माण होता है। ग्रामीण निर्माण कार्यों के जरिए लोगों को काम की गारण्टी भी दी जा सकती है।

10. गाँवों में रोजगारोन्मुख नियोजन (Employment-Oriented Planning for Villages) की आवश्यकता—गावों में दक्ष व अदक्ष, शिक्षित व प्रशिक्षित, पुरुष व स्त्री सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए रोजगार के अनेक अवसर उत्पन्न किये जा सकते हैं, लेकिन आवश्यकता है गावों को ठीक से बसाने की एवं उनका समुचित विकास करने की। गांव में इन्जीनियरों, ओवरसियरों, डॉक्टरों, अध्यापकों डाक-बाबुओं, व डाकियों, मोटर चालकों, मिस्त्रियों, छोटे उद्यमकर्ताओं व अन्य व्यक्तियों के लिए रोजगार की काफी सम्भावनाएँ निहित हैं। गावों में स्टोरेज, परिवहन व बिक्री की सुविधाओं का विस्तार करके रोजगार बढ़ाया जा सकता है। जब लाखों गाँवों के निर्माण का कार्यक्रम व्यवस्थित ढंग से संचालित किया जायगा तो कोने-कोने में अनेक प्रकार के नये काम खुलेंगे जिनकी गिनती लगाना कठिन है। अभी तक ऐसा प्रतीत होता है कि देहातों की तरफ पर्याप्त मात्रा में ध्यान नहीं दिया गया है। ऐसी दशा में देहात आकर्षण के केन्द्र न होकर मात्र उजड़े हुए स्थल बन

गये हैं। विद्युतीकरण से गावों में आधुनिक जीवन की सभी सुविधाएँ पहुँचायी जा सकती है और धीरे-धीरे वहा की जन-शक्ति को उत्पादक कार्यों में लगाया जा सकता है। स्मरण रहे कि हमारे लक्ष्य केवल 'मजदूरी पर रोजगार' के अवसर उत्पन्न करना मात्र नहीं हैं, बल्कि साथ में 'स्वरोजगार के अनेक अवसर' भी उत्पन्न करना है।

11 शिक्षा-प्रणाली मे परिवर्तन—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, माध्यमिक शिक्षा को रोजगारोन्मुख बनाया जाना चाहिए और शिक्षा को यथासम्भव व्यावसायिक मोड देना चाहिए। जब तक शिक्षा प्रणाली का आर्थिक विकास की आवश्यकताओं से पूरा ताल-मेल नहीं बैठेगा, तब तक शिक्षा प्रणाली की देन समाज के लिए अशाति व असन्ताप को ही जन्म देगी। अत माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति करने के तुरन्त बाद ही अधिकांश छात्र-छात्राओं को रोजगार की तरफ ले जाने का प्रयास करना चाहिए। एम एस सी एम ई एम बी बी एस, पी एच डी आदि डिग्रियों के लिए सीमित लोगों की कठोर चयन से भर्ती की जानी चाहिए। मध्यम श्रेणी के पाठ्यक्रम (middle-level courses) प्रकाशन, मुद्रण, टूरिज्म, बीमा, लेखा-पद्धति, सार्वजनिक स्वास्थ्य, फोटोग्राफी, स्टेजक्राफ्ट इलेक्ट्रोनिक्स, पशु-पालन, मछली-पालन, टाइपिंग, वाहन-चालक, आदि के लिए चलाए जाने चाहिए ताकि इनमे अधिक शिक्षित लोगों को काम दिया जा सके।

12 सामाजिक परिवर्तन—देहातों मे सयुक्त परिवार-प्रणाली, जाति-प्रथा व सामाजिक असमानताओं के कारण श्रम की गतिशीलता के मार्ग मे अनेक प्रकार की बाधाएँ रहती हैं। भविष्य में सामाजिक एव आर्थिक विकास से इन सामाजिक बन्धनों का प्रभाव कम हो जायेगा और श्रम की गतिशीलता बढ़ेगी। सामाजिक कठोरताओं व बन्धनों के घटने से कुछ वर्गों के लिए रोजगार के अवसर ज्यादा मात्रा म उत्पन्न हो सकेंगे।

13 रोजगार प्रदान करने वाले विनिमयालयों का विस्तार—मालिक व व मजदूर मे अधिक निकट का सम्पर्क स्थापित करने के लिए रोजगार विनिमयालयो क विस्तार की भी आवश्यकता हैं। मालिकों को इन कार्यालयों की सेवाओं का अधिक मात्रा म उपयोग करना चाहिए। साथ मे इनके कुशल सचालन की भी आवश्यकता है।

14 महाराष्ट्र रोजगार-गारण्टी स्कीम के नमूने पर अन्य राज्यो मे कार्य-क्रम बनाये जाएँ—महाराष्ट्र मे 1972–73 से रोजगार-गारण्टी स्कीम लागू की गई थी। इसके अन्तर्गत गाँवों मे रोजगार चाहने वालो को रोजगार की गारण्टी दी जाती है। राज्य विधान सभा मे अगस्त 1977 मे रोजगार-गारण्टी बिल पारित करके इसे वैधानिक रूप द दिया गया था। काम की गारण्टी अदक्ष श्रमिकों को दी जाती है। इससे ग्रामीण रोजगार व विकास मे मदद मिली है। ज्यादातर काम सिचाई-कार्यों मे दिया गया है। महाराष्ट्र मे यह स्कीम 1974 से काफी प्रगति पर

आधार पर पूंजी-निर्माण के कार्यों को संचालित करे। इससे रोजगार में स्थायित्व आयेगा, ग्रामीण जनता की क्रयशक्ति बढ़ेगी, सामुदायिक परिसम्पत्तियों का निर्माण होगा, उत्पादन बढ़ेगा तथा विकास के लाभों में ग्रामीण-निर्धन प्रत्यक्ष रूप से भाग ले सकेंगे।

चूंकि पिछले वर्षों में इन्डोनेशिया मलेशिया, फिलीपीन व थाईलैण्ड में रोजगार के 'विशिष्ट कार्यक्रमों के बिना' रोजगार बढ़ाने में सफलता प्राप्त की है, अत भारत को भी योजना के माध्यम से ही रोजगार बढ़ाने का भरपूर प्रयास करना चाहिए। यदि जिला-स्तर पर नियोजन को सुदृढ़ किया जाय और रोजगार परियोजनाओं का चुनाव व क्रियान्वयन दृढ़तापूर्वक किया जाय तो रोजगार बढ़ाने में निश्चित रूप से अधिक सफलता मिलेगी।

बेरोजगारी की समस्या भारत के समक्ष एक महान चुनौती है। भारत को इसका हल निकालने के लिए भारी प्रयास करना होगा। सातवीं पचवर्षीय योजना (1985-90) में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP), स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवावर्ग के प्रशिक्षण (TRYSEM), शिक्षित बेरोजगार युवा-वर्ग के लिए स्वरोजगार की स्कीम, तथा ग्रामीण-भूमिहीन-रोजगार-गारण्टी-कार्यक्रम (RLEGP) के माध्यम से रोजगार बढ़ाने का प्रयास किया गया है ताकि न केवल सम्पूर्ण नई श्रम-शक्ति को काम मिल सके बल्कि बेरोजगारी की पुरानी बकाया मात्रा (backlog) में भी कुछ कमी की जा सके।

अब जवाहर-रोजगार-योजना के माध्यम से ग्रामीण निर्धन-परिवारों में रोजगार की गारण्टी देने की दिशा में प्रयास शुरू किया गया है जिससे रोजगार बढ़ने की सम्भावना है। लेकिन इसके लिए नियोजन का अभाव दूर करना होगा।

आज सरकार के सामने भी एक दुविधा की स्थिति है। वह उत्पादन की कार्यकुशलता बढ़ाने व लागत घटाने के लिए नई टेक्नोलोजी के विकास, आधुनिकीकरण, उत्पादन के बड़े पैमाने, पैमाने की किफायतें प्राप्त करने व प्रतियोगिता को बढ़ाने पर जोर देना चाहती है। इसके लिए नई कम्प्यूटर नीति (नवम्बर 1984), नई इलोक्ट्रोनिक्स नीति (मार्च 1985) व नई टेक्सटाइल नीति (जून 1985) आदि घोषित की गई है। इनसे लागतें घटाने में तो मदद मिलेगी, लेकिन इस बात में तनिक संदेह है कि इससे रोजगार के अवसरों में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हो सकेगी या नहीं। अतः भारत को कृषि व पारिवारिक उद्योगों के विकास पर अधिक ध्यान देना चाहिए ताकि रोजगार के अवसर बढ़ सकें। आठवीं योजना में रोजगार में 3% सालाना वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त करने का भरसक प्रयास करना चाहिए। 2000 ईस्वी में भारत के समक्ष करोड़ों नर-नारियों को रोजगार देने की जटिल समस्या विद्यमान रहेगी।

प्रश्न

1. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

   (i) भारत में शिक्षित-वर्ग में बेरोजगारी की समीक्षा,

   (Raj. IIYr. T. D. C., 1987)

   (ii) भारत में अल्प-रोजगार,

   (Raj. II Yr. T. D. C., 1984, 1985 & 1988)

   (iii) भारत में श्रम शक्ति तथा

   (iv) भारतीय अर्थव्यवस्था में अल्प रोजगार।

   (Raj. II Yr. T. D. C., 1980)

2. "भारत बेरोजगारी जैसी गम्भीर समस्या का सामना कर रहा है।" भारतीय सन्दर्भ में इस समस्या के कारणों, निराकरण के कार्यक्रमों तथा इसके समाधान के समुचित उपायों की विवेचना कीजिए।

   (Raj. II Yr. T. D. C., 1981)

28

आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रति दृष्टिकोण

(Approach to Eighth Five Year Plan)

योजना आयोग ने आठवी पचवर्षीय योजना (1990-1995) के दृष्टिकोण-*प्रपत्र के सशोधित रूप को अपनी 29 अगस्त 1989 की बैठक मे स्वीकृति प्रदान* कर दी। इसमे आठवी योजना के उद्देश्यो व्यूहरचनाओ व विकास के आयामो पर एक अध्याय मे प्रकाश डाला गया है।[1]

भारत की पचवर्षीय योजनाओ का उद्देश्य सामाजिक न्याय के साथ विकास, आधुनिकीकरण, आत्म-निर्भरता व परिवेश-सन्तुलन व स्थिरता प्राप्त करना रहा है। आर्थिक विकास के माध्यम से लाभप्रद रोजगार, भोजन, जल, वस्त्र व आवास, ऊर्जा, शिक्षा व स्वास्थ्य की सुविधाओ का विकास करने का प्रयास निरन्तर जारी रहा है।

पृष्ठभूमि.—सातवीं पचवर्षीय योजना मे सकल घरेलू उत्पत्ति (Gross Domestic Product) (GDP) मे औसत वृद्धि दर 5 4% प्राप्त होने की आशा है। अस्सी के दशक मे भारतीय अर्थव्यवस्था मे विकास दर पहले से ऊँची रही है। हाल के वर्षों मे *कृषिगत विकास कृषित क्षेत्रफल मे वृद्धि की बजाय उत्पादकता मे वृद्धि* के कारण हुआ है। देश के पूर्वी भाग म खाद्यान्नो का उत्पादन बढा है। औद्योगिक उत्पादन मे 8% से अधिक वृद्धि-दर रही है। उर्वरको व सुपर थर्मल पावर सयन्त्रो जैसे क्षेत्रो मे उल्लेखनीय सुधार हुआ है। कुछ क्षेत्रों मे भारतीय उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रतिस्पर्धी हो गये हैं। आधार ढाचे की कमिया व बन्धन कम हुए है। सातवी योजना मे विद्युत-सृजन पहले से 60% अधिक हुआ है। 1986-87 से निर्यातो मे वृद्धि-दर (मात्रा के रूप मे) औसतन 10% वार्षिक रही है। निर्धनता का अनुपात 1961-62 मे 54% से घटकर 1983-84 मे 37% पर आ गया तथा सातवी योजना के अन्त मे इसके 30% से कम रहने की सम्भावना है।

---

1. यह The Economic Times, September 2, 1989 मे पृष्ठ 7 पर छापा गया है जिसका यहाँ उपयोग किया गया है।

लेकिन अर्थव्यवस्था में कुछ चिन्ताजनक प्रवृत्तियाँ भी उभरी है जिनका सामना देश को आठवीं योजना में करना होगा। सर्वप्रथम जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2 1% जारी है। प्रति वर्ष जनसंख्या 16–17 मिलियन बढ़ जाती है। मूल्य नीति 2 5% सालाना बढ़ रही है जबकि रोजगार 2% सालाना बढ़ रहा है जो कम है। शहरीकरण तेज गति से बढ़ रहा है। इस शताब्दी के अन्त तक शहरी जनसंख्या के 32 करोड़ हो जाने की आशा है। प्रादेशिक अन्तर बने हुए हैं। भूमि, ऊर्जा साधनों व खनिज-पदार्थों के उपयोग की वर्तमान पद्धति में कई दोष हैं। पूंजी-उत्पत्ति अनुपात ऊँचा बना हुआ है और ऊर्जा का उपयोग भी अकार्यकुशल बना हुआ है। ऋण पर ब्याज व ऋण भार ऊँचा हो गया है। भुगतान-सन्तुलन की तरफ भारी चिंता बनी हुयी है। शिक्षा व संस्कृति में ऐसे परिवर्तन नहीं हो गये हैं जो राष्ट्र की एकता की तरफ ले जा सकें।

इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आठवीं पंचवर्षीय योजना के निम्न उद्देश्य (Objectives) रखे गये हैं।

उद्देश्य —विकास व आधुनिकीकरण

(i) सकल घरेलू उत्पत्ति में कम से कम 6% वार्षिक वृद्धि-दर प्राप्त करना (at least 6% annual growth rate)

(ii) असमानताओं को कम करने व विकेन्द्रित विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रादेशिक विकास पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना

(iii) विनिर्माण (manufacturing) के क्षेत्र मे बढ़ती हुई सीमाओं तक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की दशा प्राप्त करना और चुने हुए क्षेत्रों में उत्तमता व गुणवत्ता हासिल करना,

(iv) टेक्नोलोजी, खाद्य सुरक्षा व विनियोग के साधनों में आत्म निर्भरता प्राप्त करना

(v) बदलती हुई अन्तराष्ट्रीय परिस्थितियों का लाभ उठाने के लिए और उनके अनुकूल देश की अर्थव्यवस्था को ढालने के लिए इसको अधिक सक्षम बनाना

निर्धनता–उन्मूलन व समानता

(vi) सातवी योजना के अन्त मे निर्धनता अनुपात 28–30% से घटाकर आठवी योजना के अन्त में 18–20% तक लाना

(vii) रोजगार में 3% वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करना ताकि निर्धनों को रोजगार की गारन्टी मिल सके तथा

(viii) स्त्रियों, बच्चो व अन्य कमजोर समूहों के विकास पर विशेष रूप से जोर देना।

आठवीं योजना मे 1989-90 के भावों पर कुल विनियोग 645,000-650,000 करोड रु प्रस्तावित किया गया है जिसमें सार्वजनिक विनियोग लगभग 300,000 करोड रु. तथा सार्वजनिक परिव्यय लगभग 350,000 करोड रु. होगा। इतने साधन प्राप्त करने के लिए कर सकल घरेलू उत्पत्ति (GDP) का अनुपात 17% से बढ़कर 18·9% करना होगा। (1·9% वृद्धि) यह कार्य काफी दुष्कर प्रतीत होता है। हालांकि असम्भव नही है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में सुझायी गयी व्यूहरचनाएँ (Strategies)

(1) निर्धनता-निवारण व रोजगार-संवर्द्धन—कार्यक्रमो पर नये सिरे से जोर दिया जायगा ताकि गरीबी की रेखा से नीचे के लोगों की उत्पादकता व आमदनी मे वृद्धि की जा सके। मजदूरी-रोजगार कार्यक्रम चलाया जायगा ताकि लोगो को 'काम का अधिकार' दिया जा सके। स्वरोजगार के अवसर भी बढाये जायेंगे तथा दक्षता का विकास किया जायगा।

(2) निर्धनोन्मुख सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए खाद्यान्नो का उत्पादन बढाया जायगा।

कृषि के विविधीकरण व कृषि आधारित उद्योगो व प्रोसेसिंग का विकास किया जायगा ताकि रोजगार के अवसर बढ सकें। प्रादेशिक दृष्टिकोण, भूमि-विकास कार्यक्रम, वैज्ञानिक जल-प्रबन्ध, भूमि-विकास कार्यक्रम, जल-प्रबन्ध, भूमि सर्वोत्तम उपयोग व नए फसल-प्रारूप विकसित किये जायेंगे।

(3) ग्रामीण निर्धनो को लाभ पहुचाने के लिए ग्रामीण सडको, आवास व स्वास्थ्य की सुविधाओ, साफ पेयजल व तकनीकी शिक्षा आदि का विकास किया जायगा।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम पर जोर दिया जायगा।

(4) लघु पैमाने के उद्योगो के विकास को ऊंची प्राथमिकता दी जायगी ताकि रोजगार तेजी से बढ सके।

(5) पर्यावरण की सुरक्षा व परिवेश-सन्तुलन के लिए विकास-प्रयासो को नया मोड दिया जायगा।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व आर्थिक परिवर्तनो व प्रवृत्तियों पर अधिक नजर रखी जायगी ताकि भारत तीव्र गति से आर्थिक विकास की प्रक्रिया जारी रख सके।

(7) ऊंची विकास की दर प्राप्त करने के लिए साधनो के उपयोग की कार्यकुशलता बढानी होगी, बचत व विनियोग की दरें बढ़ानी होगी (GDP से) निर्यात की वृद्धि-दर ऊंची करनी होगी।

निम्न तालिका में कुछ प्रमुख लक्ष्य दिये गये हैं जिन्हें आठवीं योजना में प्राप्त करना होगा ताकि विकास की वार्षिक दर कम से कम 6% उपलब्ध हो सके।

तालिका 1

6% विकास-दर के लिए निम्न समष्टिगत आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति आवश्यक

समष्टिगत आर्थिक सूचक	सातवीं योजना (प्रत्याशित औसत)	आठवीं योजना (औसत प्रारम्भिक अनुमान)
(1) वर्द्धमान पूंजी-उत्पत्ति अनुपात (ICOR)	4 30	4·15
(2) कुल बचत (GDP का %)	21·1	23·3
निजी निगमित	1·8	2·0
घरेलू	16 9	17·7
सार्वजनिक	2·4	3 6
(3) कुल विनियोग (GDP का%)	23·1	24·9
(4) शुद्ध पूंजी का आयात (GDP का%)	2·0	1·6
(5) कर-अनुपात (GDP का%)	17 0	18·9
(6) सार्वजनिक उपभोग (GDP का%)	12 1	13·3
(7) निर्यात वृद्धि (मात्रा में % प्रतिवर्ष)	7-7 5	11·5

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि आठवी योजना मे निम्न समष्टिगत आर्थिक लक्ष्यो को प्राप्त करना बहुत जरूरी माना गया है ताकि विकास की वार्षिक दर कम से कम 6% हो सके।

(1) सीमान्त पूंजी-उत्पत्ति-अनुपात 4·3 से घटाकर 4·15 करना होगा। राष्ट्रीय लेखों के नये सिरीज के अनुसार यह सातवी योजना मे 4·3 रहा जिसे आठवी योजना मे घटाकर 4·15 पर लाना होगा। इसके लिए निम्न कदम उठाने होंगे :—

(अ) श्रम व माल (men and materials) की उत्पादकता बढ़ानी होगी। इसके लिए हर प्रकार की फिजूलखर्ची समाप्त करनी होगी तथा साधनो का सर्वोत्तम आवटन करना होगा। सभी क्षेत्रो मे प्रस्थापित क्षमताओं का पूरा उपयोग करना होगा। (आ) नीचे ICOR वाले क्षेत्रों मे विनियोग को ऊंची प्राथमिकता देनी होगी ताकि रोजगार ज्यादा से ज्यादा बढ सके। इसके लिए ग्रामीण व लघु उद्योगो व अन्य श्रम-गहन क्रियाओ पर बल देना होगा। (इ) प्रोजेक्टो को जल्दी पूरा करने के कार्य को उचित प्रायमिकता देनी होगी। वितरण-प्रणाली के रिसावो व हानियों (leakages and losses) को न्यूनतम करना होगा तथा निर्माण व सरक्षण टेक्नोलोजी का कार्यकुशल उपयोग करना होगा। (ई) ऊर्जा के उपयोग मे कार्यकुशलता बढाने से भी ICOR नीचा आयेगा। (उ) सार्वजनिक विनियोग की प्राथमिकताओ, लाइसेंस व व्यापार प्रणालियो, प्रशासित मूल्यो, करो, अनुसधान व विकास, गुणवत्ता-नियन्त्रण व टेक्नोलोजिकल उत्थान, आदि सभी दिशाओं मे कार्यकुशलता के ऊचे स्तर प्राप्त करने से ही ICOR घटाया जा सकेगा।

इस प्रकार आठवी पचवर्षीय योजना मे ICOR घटाना होगा ताकि एक रुपये की उत्पत्ति प्राप्त करने के लिए, स्थिर मूल्यों पर, कम पूंजी की मात्रा से काम चलाया जा सके।

बचत की दर 21·1% से बढाकर 23·3% करनी होगी तथा विनियोग की दर 23·1% से बढाकर 24·9% करनी होगी। निर्यात की वार्षिक दर 7–7½% (मात्रा के रूप मे) से बढ़ाकर 11·5–12% वार्षिक करनी होगी। आठवीं योजना मे मूल्य-स्थिरता पर भी जोर दिया गया है।

निम्न तालिका म आठवी पचवर्षीय योजना के लिए विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों मे विकास का प्रारूप दिया गया है -

क्षेत्र	जोड गये मूल्य में विकास की दर 1981-82 से 1987-88 तक	1990-91 से 1994-95 तक का अनुमानित	कुल GDP मे अश 1989-90	1994 95
1 कृषि	1 7	3 0	30 6	26 6
2 खनन	9 5	9 0	3 7	4 3
3 विनिर्माण	8 2	9 0	20 8	23 9
4 निर्माण	3 1	4 0	4 2	3 8
5 विद्युत	9 4	10 0	2 2	2 7
6 परिवहन	7 7	7 8	5 6	6 1
7 सचार	6 3	10 5	0 8	0 9
8 सेवाए	5 7	5 8	32 1	31 7
कुल GDP	4 9	6 0	100 0	100 0

तालिका के प्रमुख निष्कर्ष —

(1) आठवी पचवर्षीय योजना म कृषिगत विकास की वार्षिक दर 3% रखी

गयी है, जबकि 1981-82 से 1987-88 तक यह 1·7% रही थी, हालांकि 1988-89 व 1989-90 के अनुमान शामिल करने पर यह 2·8% आती है।

(2) विनिर्माण में विकास की दर 9% सुझायी गयी है जो पूर्व अनुमान के अनुरूप है।

(3) आठवीं योजना के अन्तिम वर्ष 1994-95 में अर्थव्यवस्था में भारी संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Change) की सम्भावना व्यक्त की गई है क्योंकि उस समय खनन व विनिर्माण का GDP में अंश 28·2% हो जाएगा जो कृषि के 26·6% के अंश से अधिक होगा। ऐसा पहली बार दर्शाया गया है।

इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था परिवर्तन के एक नये दौर में प्रवेश करने जा रही है जहाँ खनन व विनिर्माण का राष्ट्रीय आय में अंश कृषि से भी अधिक होने की आशा है।

भारत में जनसंख्या की दृष्टि से स्थिति के काफी कठिन रहने की आशा है। जो राज्य जनसंख्या-नियोजन में पीछे रह गये हैं जैसे राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, हरियाणा, मध्य प्रदेश, जम्मू-कश्मीर व त्रिपुरा, उनमें स्त्री-शिक्षा बढ़ाने, शिशु मृत्यु-दर घटाने, तथा माता व शिशु की उचित देखभाल करने की आवश्यकता है ताकि परिवार का आकार कम किया जा सके।

इस प्रकार आठवीं पंचवर्षीय योजना में विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का प्रयास किया जायगा।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र (Approach paper) की समीक्षा[1]

हमने ऊपर आठवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण-पत्र में दी गई मुख्य बातों का उल्लेख किया है। इससे पता लगता है कि इसमें कम से कम 6% वार्षिक विकास की दर का लक्ष्य महत्वाकांक्षी प्रतीत होता है और अन्य लक्ष्य जैसे बचत की दर, विनियोग की दर, निर्यात वृद्धि-दर आदि, इसी प्रकार लक्ष्य की पूर्ति में प्रस्तुत किये गये हैं।

---

1 *"State of Indian Economy, Document in Mainstream, August, 19, 1989, pp. 11-12; D. T. Lakdawala, Decentralised Planning must be given a fair trial in the Economic Times, July 6, 1989 and S. P. Gupta, Growth Target for VIII Plan in Financial Express, August 7, 1989.*

विभिन्न विद्वानों ने आठवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण-प्रपत्र के पूर्व रूपों पर अपने विचार प्रकट किये हैं जिनमें उनकी भावी भारतीय नियोजन पर विचार-धारा का पता चलता है। दृष्टिकोण-प्रपत्र में उद्देश्यों, व्यूहरचनाओं व विकास के आयामों के सम्बन्ध में कोई विशेष नयी बात नजर नहीं आती। सच पूछा जाय तो आठवीं योजना पूर्व योजनाओं, विशेषतया सातवीं योजना, का विस्तार मात्र प्रतीत होती है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण प्रपत्र के सम्बन्ध में निम्न समीक्षा प्रस्तुत की जा सकती है :

(1) **इसमें देश की वर्तमान गम्भीर आर्थिक स्थिति का परिचय, कारण व** *समाधान नहीं प्रतीत होते :—*

इस समय, अर्थात् आठवीं पंचवर्षीय योजना की पूर्व सन्ध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था गम्भीर संकट में फंसी हुयी है जिसका आभास इस दृष्टिकोण-प्रपत्र से नहीं लगता। सरकार राजकोषीय संकट का सामना कर रही है। राजस्व-घाटे की पूर्ति पूँजी-खाते से की जाती है जिसके लिए उधार का आश्रय लिया जाता है। इससे ऋण-सेवा भार बहुत बढ़ गया है।

(अ) देश पर विदेशी कर्ज की राशि 1 लाख करोड़ रुपये की सीमा पार कर चुकी है। ऋण-सेवा भार चालू प्राप्तियों (Current receipts) का 30% तक हो गया है, जो सुरक्षित सीमा (20%) से काफी ऊँचा है। विदेशी कर्ज का भार बढ़ने से अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों व्यापारिक बैंकों व विदेशी सरकारों का हमारी आर्थिक नीतियों पर दबाव बढ़ने का भय उत्पन्न हो गया है।

(ब) **सरकार का व्यय (योजना व गैर-योजना) काफी बढ़ गया है।** केन्द्रीय सरकार का योजना-व्यय 1980-81 में लगभग 9 हजार करोड़ रु. से बढ़कर 1989-90 (बजट-अनुमानों) में लगभग 28 हजार करोड़ रु तथा गैर-योजना व्यय लगभग 13 हजार करोड़ रु से बढ़कर 54 हजार करोड़ रु हो गया है। इस प्रकार गैर-योजना व्यय योजना-व्यय से अधिक तेज गति से बढ़ा है। कुल व्यय में योजना-व्यय का अंश 1980-81 में 41% था जो घटकर 1989-90 में 34% पर आ गया है। इसी अवधि में केन्द्रीय व राज्यीय सब्सिडी की राशि 3160 करोड़ रु से बढ़कर 16 हजार करोड़ रुपये तक पहुँच गयी है। केन्द्रीय ऋणों पर ब्याज के भुगतान 2500 करोड़ रु से बढ़कर 17 हजार करोड़ रु. तक हो गये हैं। भारत सरकार का सुरक्षा व्यय 13 हजार करोड़ रु. तक पहुँच गया है। इस प्रकार 1989-90 में भारतीय अर्थव्यवस्था ऋण के फंदे में फँस गयी है। आज योजना की वित्तीय व्यवस्था उधार व घाटे की वित्त-व्यवस्था से की जाती है जो एक चिन्ता का विषय है। उपभोग-व्यय तेज गति से बढ़ रहा है।

देश मे परोक्ष करो का भार बढ़ने से ग्राम जनता की दिक्कतें बढी है। सेवा क्षेत्र से आमदनी के बढने की रफ्तार कृषिगत व औद्योगिक क्षेत्रो की तुलना म अधिक है।

(स) औद्योगिक विकास की दर तो ऊँची रही है लेकिन ऊर्जा गहन व आयात-गहन विकास होने से इसने भुगतान असतुलन बढाया है। एक वर्ग-विशेष के लाभ क लिए उत्पादन का ढाँचा काम कर रहा है। ग्राम जनता के काम की वस्तुओ का उत्पादन सीमित मात्रा म बढ गया है जबकि विलासिता की वस्तुओ का उत्पादन अधिक तज गति से बढा है। इस प्रकार भारत म विकृत-किस्म का व ग्राम आदमी के हितो के विपरीत किस्म का विकास जोर पकडता जा रहा है।

(द) महगाई के कारण भारतीय रुपये का मूल्य जून 1989 मे 1960 की तुलना मे केवल 12 पैसे रह गया है। रुपये का विदेशी विनिमय मूल्य डालर जर्मन मार्क स्टर्लिग येन आदि मे काफी गिर गया है और लगातार गिरता जा रहा है। अत इन विविध प्रकार की समस्याओ के प्रति आठवी योजना के दृष्टिकोण-प्रपत्र मे पर्याप्त जागरूकता प्रगट होनी चाहिए थी जो नही हो पायी हैं। इसलिए ऐसा लगता है कि आठवी योजना दश को आर्थिक सकट के गर्त मे से निकालने के बजाय इसे उसम और गहरा फँसा देगी। इसलिए अर्थव्यवस्था मे सुधार के लिए नया मार्ग अपनाने की आवश्यकता है जिसका उल्लख दृष्टिकोण-प्रपत्र म नही मिलता।

(2) डा एस पी गुप्ता का कहना है कि 6% विकास की दर प्राप्त करने के लिए केवल बचत की दर व वर्द्धमान पूँजी-उत्पत्ति अनुपात (ICOR) पर ध्यान देना ही पर्याप्त नही है बल्कि सावजनिक क्षेत्र से वित्तीय बचतो व साधनो की उपलब्धि भुगतान सन्तुलन आदि पर भी पर्याप्त ध्यान देना होगा।

भारत मे घाट की वित्त व्यवस्था विदेशी भुगतान-खाते मे चालू खाते का घाटा (Current account deficit) आदि बहुत ऊँचे हो गये है। भारत मे नोट छापकर बजट के घाटे की पूर्ति की सीमा बहुत ऊँची हो गई है। इसलिए बचत की दर को बढाने मे काफी कठिनाई का सामना करना होगा। कहने का आशय है कि आठवी योजना की वित्तीय व्यवस्था के लिए आवश्यक साधन जुटा पाना कठिन होगा। इसलिए विकास की दर का लक्ष्य 6% से कम रखना सम्भवत ज्यादा व्यावहारिक व वास्तविक होता।

निष्कर्ष —

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय मे देश गम्भीर आर्थिक सकट के दौर मे गुजर रहा है। अत आठवी पचवर्षीय योजना मे नियोजन की

नीतियों में आमूल-चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता हो गई है। सरकार को सम्पूर्ण अर्थतंत्र आम जनता के हितों की तरफ मोड़ देना चाहिए। इसके लिए आयातों पर भारी अंकुश लगाना होगा, विशेषतया विलासी उपभोग को बढ़ाने वाले आयातों को कम करना होगा। मजदूरी-आय-कीमत नीति निर्धारित करके आम जनता को मुद्रास्फीति की कठिनाइयों से बचाना होगा। सार्वजनिक व्यय की वृद्धि को सीमित करके उधार व घाटे की वित्त-व्यवस्था के उपयोग में कमी करनी होगी। इस प्रकार जन-समर्थक प्रगतिशील नीतियां अपनाकर भारत को आत्म-निर्भर आर्थिक विकास के लक्ष्य की ओर पुनः अग्रसर होना चाहिए ताकि नियोजन में जनता की आस्था बढ़ सके और भारत समता, विकास, आत्म निर्भरता व आधुनिकीकरण की दिशा में अधिक सुनिश्चित प्रगति कर सके।

29

राजस्थान के आर्थिक व मानवीय साधन : भूमि, जल, पशु, खनिज-पदार्थ व जनसंख्या

(Economic and Human Resources of Rajasthan : Land, Water, Cattle, Minerals and Population)

राजस्थान का गौरवमय इतिहास

राजस्थान का भारत के इतिहास मे एक गोरवमय स्थान रहा है । यहाँ की पवित्र भूमि ने महाराणा प्रताप जैसे पराक्रमी व साहसी योद्धाओ को जन्म दिया है। उनके वीरतापूर्ण एव त्याग से ओत प्रोत कार्य अनेक ऐतिहासिक तथा काव्य-कृतियो मे विद्यमान है जो भावी युगों मे देशवासियो को प्रेरणा देते रहेगे । टॉड की प्रसिद्ध पुस्तक : Annals and Antiquities of Rajasthan के पृष्ठ यहाँ के वीरो की अनेक गुण-गाथाओ से भरे हुए है । वीरोचित कार्यो एव शौर्य की यह परम्परा आधुनिक राजस्थान का 'आध्यात्मिक आधार' (spiritual base) मानी जा सकती है । जहाँ एक तरफ राजस्थान की इतनी उच्च ऐतिहासिक व सास्कृतिक परम्पराएँ रही हैं, वहाँ दूसरी तरफ इसी भूमि को यह सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है कि यहाँ के उद्यमकर्ताओं ने देश के विभिन्न भागो मे जाकर उद्योग व व्यापार मे सक्रिय रूप से भाग लिया है । इन्होने विदेशो मे औद्योगिक उपक्रम स्थापित किये हैं । राजस्थान ने ही बिडला, बाँगड, सिंघानिया, सूरजमल नागरमल, आदि उद्योगपतियो व व्यावसायिक समूहो को जन्म दिया है । यहाँ के शिल्पकार व कारीगर पत्थर, सगमरमर, लकडी, पीतल, सोना चादी, चीनी मिट्टी, चमडा व वस्त्र पर अपनी कलाकृतियो मे बेजोड हैं और देश-विदेश मे ख्याति प्राप्त हैं । वे आज भी अपनी प्रतिभा को न केवल कायम रखे हुए हैं, बल्कि अनेक प्रकार की कठिनाइयो के बावजूद उसको बढाने का प्रयत्न करते रहते हैं । साथ मे हमे यह भी स्मरण रखना है कि प्राकृतिक कठिनाइयो के कारण यहा जन-साधारण को समय-समय पर आर्थिक

जीवन में कई प्रकार के कष्टों को भी झेलना पडा है। प्रति वर्ष राज्य के किसी न किसी भाग मे सूखे व अकाल की काली छाया पड़ती रहती है। राज्य सरकार के लिए अकाल राहत कार्यों का बडा महत्व है। इनके द्वारा अकाल पीडित लोगो के लिए रोजगार व खाद्यान्नों की व्यवस्था की जाती है। साथ में पेयजल की सप्लाई भी बढ़ायी जाती है, तथा पशुओ के लिए चारे का इन्तजाम किया जाता है। राज्य बाढ से भी क्षतिग्रस्त होता रहा है। इस अध्याय मे हम राजस्थान के भौतिक वातावरण व प्राकृतिक साधनों का संक्षिप्त परिचय देकर राज्य की जनसख्या सम्बन्धी स्थिति का वर्णन करेंगे।

राजस्थान का निर्माण

वर्तमान राजस्थान राज्य एकीकरण की एक लम्बी प्रक्रिया के बाद बन पाया है। यह प्रक्रिया 17 मार्च 1948 को प्रारम्भ होकर 1956 मे समाप्त हुई थी। शुरू मे 17 मार्च 1948 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर व करौली राज्यो एव नीमराना की चोफशिप को मिलाकर मत्स्य सघ बनाया गया था। 25 मार्च 1948 को अन्य पडोसी राज्य, जैसे कोटा, बून्दी, झालावाड, बांसवाडा, डूगरपुर, किशनगढ प्रतापगढ, शाहपुरा व टोंक इस सघ मे मिल गये। इसस पूर्व-राजस्थान का निर्माण कार्य सम्पन्न हो गया। मत्स्य सघ के निर्माण के एक माह बाद उसमें उदयपुर शामिल हो गया। 30 मार्च 1949 तक पहले के राजस्थान मे बीकानेर, जयपुर, जैसलमेर व जोधपुर भी शामिल हो गये और इस प्रकार वृहद् राजस्थान का निर्माण हुआ। छठी अवस्था म सिरोही राज्य का कुछ भाग इसमें मिला दिया गया। 1956 मे राज्य पुनर्गठन अधिनियम लागू हो जाने पर अजमेर राज्य, पहले बम्बई राज्य का आबू रोड तालुका एव पहले के मध्य भारत का सुनल थापा प्रदेश राजस्थान मे मिल गये और कोटा जिले का सिरोज उप-खण्ड मध्य प्रदेश को दे दिया गया।

भौगोलिक वातावरण

(अ) स्थिति, सीमा क्षेत्रफल व प्राकृतिक दशा—राजस्थान भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग मे 23°3′ से 30°12′ उत्तरी अक्षाशो एव 69°30′ से 78°17′ पूर्वी देशान्तरों के बीच मे स्थित है। इसका क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्रफल मे यह मध्य प्रदेश के बाद भारत का दूसरा सबसे बडा राज्य है। राज्य की पश्चिमी व उत्तरी सीमाए पश्चिमी पाकिस्तान की पूर्वी सीमाओं से जुडी हुई हैं। इसके उत्तर व उत्तर-पूर्व म पजाब व उत्तर-प्रदेश पूर्व व दक्षिण-पूर्व मे मध्य प्रदेश और दक्षिण-पश्चिम मे गुजरात राज्य हैं। इसका क्षेत्रफल समस्त भारत के क्षेत्रफल का लगभग दसवाँ भाग है (10 4%)। 1981 की जनगणना के अनुसार राज्य की जनसख्या 3 43 करोड थी जो भारत की कुल जनसख्या का 5% थी। 19 1-81 मे इसमें लगभग 33% की वृद्धि हुई, जबकि इसी अवधि मे समस्त भारत की वृद्धि दर 25% थी। इस प्रकार राजस्थान म जनसख्या की वृद्धि की दस वर्षीय दर

भारत की तुलना मे 8 प्रतिशत बिन्दु अधिक रही है, जो वास्तव मे एक चिन्ता का विषय है।

राजस्थान की पश्चिमी सीमा पर भारत और पश्चिमी पाकिस्तान एक-दूसरे के समक्ष लगभग 1070 किलामीटर की दूरी तक अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बनाते हैं। राजस्थान व पश्चिमी पाकिस्तान के बीच की सीमा मूलत प्राकृतिक है और यह थार के रेगिस्तान मे से गुजरती है। इस क्षेत्र मे वर्षा कम होती है और यातायात की कठिनाइयाँ भी पायी जाती हैं। इस क्षेत्र की इन प्राकृतिक कठिनाइयो के कारण ही सीमा सुरक्षा पर व्यय की मात्रा अधिक होती है और इस क्षेत्र मे सड़कें व रेलें बनाना भी आवश्यक है जिससे युद्ध व सघर्ष के समय सैनिक व सैनिक साज-सामान सुगमता पूर्वक भेजे जा सकें। वैसे सीमा पर रेगिस्तान के आ जाने म इस पर कुछ प्राकृतिक रोक सी लग जाती है लेकिन 1965 के भारत पाक सघर्ष ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यातायात की आधुनिक सुविधाओ का लाभ उठाकर शत्रु राष्ट्र द्वारा प्राकृतिक सीमा का भी उल्लघन किया जा सकता है।

अरावली पहाड—राजस्थान की भौतिक विशेषताओ पर अरावली पहाड का बडा प्रभाव पडा है। अरावली पर्वतमालाएँ राज्य को चीरती हुई दक्षिण पश्चिम से उत्तर-पूर्व तक फैली हुई हैं, इनका दक्षिणी पश्चिमी छोर माउण्ट आबू के समीप है और इनका उत्तरी-पूर्वी भाग खेतडी के समीप समाप्त होता है। अरावली पर्वत-मालाओ ने राजस्थान को प्राकृतिक भागो मे बाँट दिया है—राजस्थान का 3/5 भाग अरावली के उत्तर-पश्चिम मे पडता है और 2/5 भाग दक्षिण पूर्व मे। इनका जलवायु पर भी असर पडता है। ये पश्चिम मे आने वाली मिट्टी को भी रोकते हैं।

पश्चिमी राजस्थान—अरावली के पश्चिमी व उत्तर पश्चिम का प्रदेश बालू रेत से भरा हुआ है। इसमे जनसख्या कम है। इस प्रदेश का पूर्वी भाग मारवाड कहलाता है। पश्चिमी भाग थार का रेगिस्तान (Thar Desert) कहलाता है। बाडमेर, जैसलमेर, बीकानेर व गगानगर के कुछ हिस्सो के निवासियो को रेगिस्तान के शुष्क जीवन का सामना करना पडता है। गगानगर के कुछ भागो को छोडकर इस प्रदेश मे अन्य कही भी बहता हुआ जल नही है। इस प्रदेश मे प्राय अकाल पडा करते हैं। काफी दूर तक यात्रा करने पर भी वनस्पति का नामोनिशान नहीं दिखाई देता। केवल सावन की घास ही कहीं कहीं नजर आती है। पशुओ के लिए यह घास ईश्वर का वरदान मानी जाती है। रेगिस्तान का निर्माण अरब सागर व कच्छ के रण की दिशा से आने वाली उत्तरी-पश्चिमी हवाओ से हुआ है जो अपने साथ मिट्टी के कण लाती हैं।

हम आगे चल कर देखेंगे कि रेगिस्तान की इस समस्या का समाधान इन्दिरा गांधी नहर (पहले राजस्थान नहर कहलाती थी) है जो समस्त प्रदेश को हरा-भरा कर देगी।

दक्षिण-पूर्वी राजस्थान—इस भाग में उपजाऊ भूमि पाई जाती है तथा नदियाँ बहती हैं। इसी भाग में उदयपुर (मेवाड) का प्रदेश है जो 'राजस्थान का हृदय' कहलाता है। बासवाडा जिले का दक्षिणी व पूर्वी भाग अत्यन्त सुन्दर है। वर्षा के तुरन्त बाद यह बहुत आकर्षक हो जाता है। बनास व चम्बल नदियाँ राजस्थान के आर्थिक जीवन में विशेष महत्व रखती हैं। इस प्रदेश में कोटा व बून्दी के क्षेत्र हैं जो 'पठार' का प्रदेश बनाते हैं। भरतपुर के मैदानी भाग इसी में आते हैं।

नदियाँ व झीलें—राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी भाग में केवल लूनी नदी ही काम की है। इसका उद्गम अजमेर के पास पुष्कर घाटी के समीप होता है और यह पश्चिम में बहती हुई दक्षिण-पश्चिमी भाग में 320 किलोमीटर तक बहकर कच्छ के रण में प्रवेश करती है। पहले कहा जा चुका है कि राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी भाग में नदियों का विशेष स्थान है। चम्बल राजस्थान की सबसे बडी नदी है। चम्बल घाटी परियोजना राजस्थान व मध्य प्रदेश के आर्थिक विकास में विशेष महत्व रखती है। चम्बल के बाद बनास नदी का स्थान आता है। यह कुम्भलगढ जिले के पास अरावली से निकलकर लगभग 480 किलोमीटर बहकर चम्बल में मिल जाती है। बाणगंगा जयपुर के पास से निकलकर पूर्वी भाग में बहती हुई (भरतपुर व धौलपुर में से) यमुना में मिलती। माही नदी मुख्यतया गुजरात की नदी है, लेकिन यह कुछ दूरी तक बाँसवाडा में तथा डूगरपुर की सीमा पर बहती है।

राजस्थान में साँभर व डीडवाना में नमक की झीलें हैं। राज्य अपनी कृत्रिम झीलों के लिए प्रसिद्ध रहा है। उदयपुर की जयसमद झील विश्व की सबसे बडी कृत्रिम झीलों में से एक मानी गयी है। दूसरी झील राजसमन्द है। यह अकाल-सहायता कार्य का काफी पुराना नमूना प्रस्तुत करती है। तीसरी झील उदयसागर है। पिछोला झील भी काफी मशहूर है। इसके अलावा फतहसागर झील है। अजमेर में अन्नासागर झील काफी प्रसिद्ध झीलों में से एक मानी गई है। अजमेर से 11 किलोमीटर दूर पुष्कर झील है। अजमेर में दो झीलें हैं। जोधपुर, अलवर, व माउण्ट आबू में भी झीलें हैं। ये स्थल पर्यटकों के लिए विशेष रूप से आकर्षण के केन्द्र हैं। माउण्ट आबू का नक्की तालाब काफी सुन्दर व रमणीय है।

(आ) जलवायु—राजस्थान की जलवायु का एक विशेष लक्षण यह है कि यहाँ तापक्रम में भारी अन्तर पाया जाता है। यहाँ शीतकाल में बहुत ठण्ड पडती है और कई स्थानों पर तापक्रम हिम-बिन्दु से भी नीचे आ जाता है और पाला पड जाता है। दूसरी तरफ ग्रीष्म ऋतु में गर्मी बहुत तेज पडती है। पश्चिमी राजस्थान का रेगिस्तानी प्रदेश भारत का सबसे ज्यादा गर्म प्रदेश माना जाता है।

सभी राज्यों की अपेक्षा राजस्थान में सामान्य वर्षा का स्तर (51 सेन्टीमीटर) न्यूनतम स्तर का माना गया है। यहाँ वर्षा का वितरण असामान्य व अनिश्चित किस्म का रहता है। यहाँ पर सामान्य वर्षा झालावाड जिले की पहाडियों में 100

सेन्टीमीटर तक होती है, जबकि जैसलमेर जिले के रेगिस्तान मे यह 16 सेन्टीमीटर तक होती है।

(इ) मिट्टी व वनस्पति—राजस्थान की मिट्टियो को मुख्यतया सात भागो मे बाँटा गया है·

1 रेगिस्तानी मिट्टी—राजस्थान मे यह सबसे ज्यादा क्षेत्रफल मे फैली हुई है। अरावली मे पश्चिम मे राज्य के समस्त भागो मे रेगिस्तानी मिट्टी पाई जाती है। इसमे प्रमुख जिले इस प्रकार हैं : श्री गगानगर, चुरू, झुझुनू, बीकानेर, जैसलमेर, नागौर, बाडमेर, जोधपुर तथा सीकर। यह काफी अनुपजाऊ होती है।

2 भूरी-पीली (रेगिस्तानी मिट्टी —यह बाडमेर, जालौर, जोधपुर, सिरोही, पाली, नागौर, सीकर व झुंझुनू जिलो मे पायी जाती है। इस मिट्टी मे फोस्फेट का अंश ऊँचा होता है।

3 लाल व पीली मिट्टी—यह उदयपुर, भीलवाडा, व अजमेर जिलो के पश्चिमी भाग मे पायी जाती है। इस मिट्टी मे कार्बोनेट व ह्यूमस तत्व कम मात्रा में पाया जाता है।

4. फेरूजीनस (Ferruginous) लाल मिट्टी—यह मिट्टी उदयपुर जिलो के मध्य व दक्षिणी भाग मे एव सम्पूर्ण डूगरपुर जिले मे पायी जाती है। इसमे नाइट्रोजन, फोस्फोरस व ह्यूमस की कमी होती है।

5. मिश्रित लाल व काली मिट्टी—यह मिट्टी उदयपुर, चित्तौडगढ, डूगरपुर, बासवाडा व भीलवाडा के पूर्वी भागो मे मिलती है।

6 मध्यम श्रेणी की काली मिट्टी—यह आमतौर पर कोटा, बूदी व झालावाड जिलो मे पायी जाती है।

7. कछारी मिट्टी (Alluvial Soils)—यह मुख्यत अलवर, भरतपुर व सवाई माधोपुर जिलो मे पाई जाती है· इसमे चूना, फास्फोरिक अम्ल व ह्यूमस कम होती है।

वनस्पति—राजस्थान मे कई प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति पायी जाती है। पश्चिमी शुष्क प्रदेश मे मामूली वनस्पति से लेकर अरावली के पूर्व व दक्षिण पूर्व मे पतझड व सदाबहार किस्म के जगल पाये जाते हैं। राज्य के कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र के लगभग 6·3% भाग मे वन पाये जाते हैं। पजाब को छोडकर देश मे सबसे कम वन-सम्पदा राजस्थान की ही मानी जाती है। वनो के अन्तर्गत कम क्षेत्रफल के कारण राज्य में ईधन व औद्योगिक लकडी की माँग की पूर्ति कर सकना कठिन रहता है। पश्चिमी राजस्थान मे वनो का नितान्त अभाव पाया जाता है।

राजस्थान का पशु-धन

राजस्थान के लिए पशु-सम्पदा का विशेष रूप से आर्थिक महत्व माना गया है। राज्य के कुल क्षेत्र का 5 5 प्रतिशत मरुस्थलीय प्रदेश है जहाँ जीविकोपार्जन का

मुख्य साधन पशुपालन करना है। इससे राज्य की शुद्ध घरेलू उत्पत्ति का 12% से अधिक अंश प्राप्त होता है। राजस्थान में देश के पशु धन का 7% तथा भेड़ों का 30% अंश पाया जाता है। राज्य में देश के दुग्ध उत्पादन का 11% तथा ऊन के उत्पादन का 40% प्राप्त होता है। पशुओं की संख्या 1977 में 4·14 करोड़ से बढ़कर 1983 में 4·95 करोड़ हो गई थी। इस प्रकार इस अवधि में पशुओं की संख्या में 19·65% की वृद्धि हुई। विशेष वृद्धि बकरी, भेड़, व भैंस (नर-मादा) में हुई है। 1983 में पशुओं का वर्गीकरण इस प्रकार था : गोधन (गाय-बैल) 1·35 करोड़, भैंस भैंसों सहित 60·34 लाख, भेड़ भेड़ें 133·9 लाख, बकरी-बकरे 1·54 करोड़ तथा अन्य 12 लाख।

राजस्थान में पशुओं की कुछ सर्वोत्तम नस्लें पायी जाती हैं। नागौरी बैल भार ढोने में बहुत चुस्त पाये गये हैं। ये प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में राजस्थान से बाहर भी भेजे जाते हैं। राज्य सरकार ने राठी, थारपारकर अथवा नागौरी नस्लों वाले क्षेत्रों में चुने हुए ढंग पर पशुओं के प्रजनन (selective breeding) की नीति अपनायी है। इसके अन्तर्गत एक नस्ल के उत्तम पशुओं को चुना जाता है। कान्केज, गिर, हरियाणा व मालवी नस्लों के लिए चुने हुए ढंग पर (सिलेक्टिव) तथा 'क्रोस ब्रीडिंग' दोनों विधियों के आधार पर पशुओं की नस्ल-विकास का काम किया जाता है। क्रोस ब्रीडिंग में दूसरी नस्ल के उत्तम पशुओं का प्रजनन हेतु प्रयोग किया जाता है। यह पशुओं की उत्पादकता बढ़ाने में मदद देता है।

देश में ऊन के कुल उत्पादन का लगभग 40% अंश अकेले राजस्थान में उत्पन्न होता है। राजस्थान में भेड़ों की निम्न 8 नस्लें हैं : चोकला, मागरा, नाली, पूगल, जैसलमेरी, मारवाड़ी, मालपुरा तथा सोनाड़ी। इनमें प्रथम तीन बीकानेर की प्रमुख नस्लें हैं। जोधपुर की मारवाड़ी नस्ल मशहूर है। चोकला भेड़ से वस्त्रों की ऊन प्राप्त होता है। नाली नस्ल का ऊन दोनों में काम आता है। राज्य में 1951 में भेड़ों की संख्या 53·9 लाख थी जो 1983 में बढ़कर 133·9 लाख हो गई। राजस्थान में देश की कुल भेड़ों का लगभग 30% अंश होने पर भी देश के कुल ऊन के उत्पादन का 40% अंश प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ प्रति भेड़ ऊन की मात्रा ज्यादा प्राप्त होती है। यहाँ प्रति भेड़ लगभग 1·6 किलो ऊन प्राप्त होता है, जबकि समस्त देश का औसत केवल 0·9 किलो माना गया है। नस्ल सुधार कार्यक्रम में मारवाड़ी, जैसलमेरी व मागरा भेड़ों को 'सिलेक्टिव ब्रीडिंग' स्कीम में लिया गया है। इसके लिए उसी नस्ल के चुने हुए मेंढे प्रयुक्त किये जाते हैं। नाली, चोकला, सोनाड़ी व मालपुरा नस्लों का विकास 'क्रोस ब्रीडिंग' के माध्यम से किया जाता है जिसमें दूसरी नस्ल के उत्तम मेंढे प्रजनन हेतु प्रयुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार भेड़ों में गुणात्मक सुधार करने के लिए दोनों प्रकार के प्रजनन या उत्पत्ति पर जोर दिया जाता है। राज्य में 1984—85 में 1½ करोड़ किलोग्राम ऊन उत्पन्न किया गया

था। राज्य में लगभग 1½ लाख परिवार ऊन के उत्पादन में संलग्न हैं। बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर व भीलवाड़ा के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में ऊन-आधारित उद्योग का विकास किया जा रहा है। कोटा व सवाई माधोपुर में बकरियों की नस्ल का दूध व मांस दोनों दृष्टियों से उत्तम मानी गयी है। राज्य में ऊँटों की कई नस्लें पायी जाती हैं। राज्य में प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धि समस्त भारत के औसत की तुलना में अधिक है। राजस्थान से प्रतिदिन काफी अण्डे अन्य राज्यों को भेजे जाते हैं।

राजस्थान में कृषि के बाद जीविकोपार्जन का दूसरा महत्वपूर्ण साधन पशुपालन ही है। इसलिए यहाँ की अर्थव्यवस्था को कृषि व पशुपालन की अर्थव्यवस्था कहा जाता है। सरकार को पशुपालन के विकास पर काफी ध्यान देना चाहिए। राज्य के निवासियों की आय बढ़ाने के लिए पशु-धन के विकास पर ज्यादा बल देना उचित होगा। पानी, चारा (उत्पादन एवं संग्रह) आदि के विस्तार से पशु-सम्पत्ति को अधिक उत्पादक बनाया जा सकता है। अकाल व सूखा पड़ जाने से पिछले वर्षों में कई बार राजस्थान के पशुओं को अन्यत्र भेजना/ले जाना पड़ा और पशु-धन को काफी क्षति पहुँची। लेकिन अब अन्य राज्यों में भी कठिनाइयाँ होने के कारण यहाँ पशुओं को भेजना मुश्किल होता जा रहा है। राज्य में पानी व चारे की सुविधाएँ बढ़ाकर अर्द्धशुष्क व शुष्क प्रदेशों में भेड़-पालन व अन्य पशुओं का विकास किया जाना चाहिए। राजस्थान में ऐसे उद्योगों के विकास की सम्भावनाएँ हैं जैसे ऊन का उद्योग, दुग्ध व दुग्ध-निर्मित पदार्थ, मांस का उद्योग, चमड़े का उद्योग, व हड्डी का उद्योग। यदि पशु धन के विकास पर समुचित ध्यान दिया जाये तो सरकार व जनता दोनों की आय में वृद्धि हो सकती है।

राजस्थान सहकारी डेयरी संघ सहकारी आधार पर डेयरी के विकास में संलग्न है। जनवरी 1989 के अन्त में राज्य में डेयरी संयंत्र 10 व अवशीतन केन्द्र (chilling centres) 21 थे। डेयरी संयंत्रों की प्रति दिन की औसत क्षमता 9 लाख लीटर तथा अवशीतन केन्द्रों की 4 10 लाख लीटर थी।

जनवरी 1989 के अन्त में दुग्ध उत्पादकों की सहकारी समितियाँ 4312 थी तथा उनके कुल सदस्य 311639 दुग्ध उत्पादक थे। 1988-89 में जनवरी 1989 तक प्रतिदिन दुग्ध का औसत संग्रहण 2 36 लाख लीटर हो पाया था।[1] हाल में 'सरस रसगुल्लों' का उत्पादन प्रारम्भ हुआ है। इसके अलावा सरस पनीर व 90 दिन तक खराब न होने वाले "टैट्रा पैक दूध" (Tetrapak milk) के उत्पादन की भी योजना है।[2]

---

1. आयव्ययक अध्ययन (Budget Study) 1989-90 पृष्ठ 76-77।
2. बजट-भाषण 23 मार्च, 1989 पृ. 24

राज्य में पशु पालन व डेयरी विकास के सम्बन्ध मे नीति व राजकीय प्रयास —राज्य म पशु पालन व डेयरी विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं। इस विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत पशुधन के विकास को प्राथमिकता दी गई है। पशुओं की नस्ल सुधारने के लिए प्रजनन की उत्तम विधियाँ अपनायी गयी हैं कृत्रिम गर्भाधान की व्यवस्था की गई है। पशुओं में बीमारी की रोक-थाम का इन्तजाम किया गया है। इसके लिए पशु चिकित्सा केन्द्र खोले गये हैं।

प्रतिदिन दूध के संकलन की व्यवस्था की गई है। जैसा कि ऊपर कहा गया है 10 डयरी संयत्र लगाये जा चुके हैं तथा 24 अवशीतन केन्द्र स्थापित किये गये हैं। दूध का उत्पादन करने वालों की सहकारी समितियां बनायी गयी हैं। उनको सन्तुलित पशु-आहार व चारा उपलब्ध कराया जाता है।

पशु-पालकों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए 1 अप्रैल 1986 को भारतीय एग्रो इण्डस्ट्रीज फाउण्डेशन (BAIF) की सहायता से क्रोस-ब्रीडिंग के लिए 50 केन्द्र स्थापित करने का समझौता किया गया है। ये केन्द्र भीलवाडा, कोटा, बूंदी, उदयपुर चित्तौडगढ, डूंगरपुर व बांसवाडा जिलों में स्थापित किये जा रहे हैं।

इस प्रकार सरकार पशुओं की नस्ल सुधार, पशु-चिकित्सा, पशु पालकों की आर्थिक स्थिति को ठीक करने तथा पशुधन की अभिवृद्धि करके राज्य की आय बढ़ाने का प्रयास कर रही है। इससे राज्य के पश्चिमी भागों को विशेष लाभ हो रहा है।

राजस्थान में खनिज पदार्थों का विकास[1]

राजस्थान खनिज पदार्थों का अजायबघर (museum of minerals) माना गया है। बिहार के बाद खनिज सम्पदा में राजस्थान की ही गिनती होती है। राजस्थान म 50 से अधिक खनिज पाये जाते हैं अधात्विक खनिजों (non-metallic minerals) के उत्पादन मूल्य में भारत में इसका प्रथम स्थान है तथा धात्विक खनिजों के उत्पादन मूल्य मे चौथा स्थान है। प्रचलित कीमतों पर (at current prices) खनन म 1983-84 म 181 3 करोड रुपये की आमदनी हुई थी जो राज्य की शुद्ध घरेलू उत्पत्ति (NSDP) का 2 45 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 1987-88 में 322 4 करोड रुपए हो गई जो राज्य की शुद्ध घरेलू उत्पत्ति का 3 39 प्रतिशत थी। अभी तक राज्य म खनन को उद्योग घोषित नहीं किया गया है।

इस समय राज्य म लगभग छः धात्विक (metallic) और बीस अधात्विक (non-metallic) औद्योगिक खनिजों के निकालने का काय जारी है। धात्विक समूह

---

1. आय-व्ययक अध्ययन, 1989-90, पृ. 112 तथा एम. वी मायुर समिति (आठवीं पंचवर्षीय योजना म औद्योगिक विकास की व्यूहरचना (strategy) पर उच्चाधिकार समिति) रिपोर्ट खण्ड I, पृ 35-37.

में मुख्य खनिज इस प्रकार है—सीसा, जस्ता, चाँदी, केडमियम (रागे से मिलता-जुलता), मैंगनीज, वुल्फ्रामाइट (टंगस्टन उत्पन्न करने वाला खनिज पदार्थ) व कच्चा लोहा। अधात्विक समूह के मुख्य खनिज निम्नांकित हैं—ऐसबेस्टस (asbestos), बेराइट्स barytes), केल्साइट, चायना क्ले, डोलोमाइट, पन्ना (emerald), फेल्सपार, फायर क्ले, फ्लोराइट, रक्तमणिका तामडा (garnet), मुल्तानी (मिट्टी (fuller's earth), खडिया मिट्टी (gypsum), रोक-फॉस्फेट, लाइमस्टोन, संगमरमर (marble), अभ्रक, क्वार्ट्ज, सिलिका मिट्टी, घीया पत्थर (soapstone), पाइरोफिलाइट, व वरमीक्यूलाइट। इनके अलावा ग्रेफाइट, काइनाइट (kyanite), लाल व पीली ओकर्स (ochres), स्लेटस्टोन व टुरमेलाइन (tourmaline) का भी थोडा मात्रा मे उत्पादन होता है। मग्नेसाइट के विस्तृत भण्डारो का भी पता लगाया गया है और उनके व्यापिक उपयोग की छान-बीन जारी है। उदयपुर के समीप झामर-कोटरा (Jhamar-Kotra) की खानो से राक फास्फेट के उत्पादन से राज्य ने खनिज विकास के क्षेत्र मे एक नया कदम रखा है। दो राजस्थान स्टेट माइन्स एण्ड मिनरल्स लि. के तत्वावधान मे रॉक-फास्फट के खनन का कार्य किया जा रहा है।

भारत मे राजस्थान ही एकमात्र ऐसा राज्य है जो एमरेल्ड गार्नेट (अब्रेसिव व जेम दोनो किस्मो का), सीसा, जस्ता, केडमियम व चांदी का उत्पादन करता है। राजस्थान कई खनिजो के उत्पादन मे देश मे अग्रणी है जैसे चाँदी, वुल्फ्रामाइट, एस्बेस्टस, केल्साइट, फेल्सपार, जिप्सम, सीसा, जस्ता, रोक-फोस्फेट आदि।

खनिज ईंधनो (mineral fuels) मे पलाना की लिग्नाइट की खानें आती हैं, जिनमे काफी वर्षों से काम होता रहा है। बीकानेर के गुढा क्षेत्र मे लिग्नाइट के लगभग 1½ करोड टन के भण्डार अनुमानित किये गये हैं। मई 1983 की सूचना के अनुसार जैसलमेर जिले मे घोटारू नामक स्थान पर प्राकृतिक गैस का विशाल भण्डार पाया गया है। यहाँ एक अरब घनमीटर मे प्राकृतिक गैस मिली है। इस गैस मे सीमेंट प्लांट और विद्युत गृह स्थापित करने की योजना है। घोटारू के बाद सोडेवाला व लोगेवाला मे काम शुरू किया जायेगा। मार्च 1984 की सूचना के अनुसार जैसलमेर मे करीब 145 किलोमीटर दूर सदेवाला मे तेल का बडा भण्डार मिला है। तेल व प्राकृतिक गैस आयोग ने जून 1983 के अन्त मे वहाँ खुदाई का काम शुरू किया था। जैसलमेर मे तेल व प्राकृतिक गैस आयोग एक हिलियम गैस प्लान्ट लगाने का विचार कर रहा है। सादेवाला से पाक सीमा के बीच करीब छह किलोमीटर की ही दूरी है। रामपुरा-आगुचा मे जिंक व सीसे के विपुल भण्डार मिलने से राजस्थान मे भारत सरकार ने एक जिंक स्मेल्टर प्लान्ट लगाने की स्वीकृति दे दी है जिसकी लागत लगभग 366 करोड रु. अनुमानित है। इसे हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड

कार्यान्वित करेगा। चित्तौड़गढ़ जिले के गांव केसरपुरा (प्रतापगढ़) के निकट हीरे की खोज उल्लेखनीय है। इसका विस्तृत सर्वे किया जा रहा है।

हाल में जैसलमेर जिले के सोनू क्षेत्र में 500 मिलियन टन स्टील ग्रेड लाइमस्टोन के भण्डारों का पता लगाया गया है। इसके उपयोग से आयात कम होगा तथा विदेशी मुद्रा की बचत होगी।[1]

नीचे विभिन्न खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

धात्विक खनिज (Metallic Minerals)

(i) तांबा—खेतड़ी की तांबे की खानें सिंघाना से रघुनाथपुर तक फैली हुई है। राज्य के अन्य भागों में भी तांबे के भण्डारों का सर्वेक्षण किया गया है। दरीबा के समीप का क्षेत्र भी उल्लेखनीय है। झुन्झुनू जिले के खेतड़ी में तांबा निकाला जाता है। भीलवाड़ा जिले में भी तांबे का क्षेत्र है। सिरोही जिले में आबू रोड के समीप सोना, जस्ता व तांबा पाये गये हैं। उदयपुर जिले के अंजनी क्षेत्र में तांबे के भण्डार मिले हैं।

खेतड़ी के समीप तांबे के बड़े भण्डार हैं। इनका उपयोग करके गलाने की क्षमता का विकास किया जा रहा है। इससे उपोत्पत्ति (by-product) के रूप में सल्फ्यूरिक एसिड प्राप्त होगी और थोड़ी चांदी व सोने की मात्रा भी उपलब्ध होगी। सल्फ्यूरिक एसिड प्राप्त होने से सुपरफोस्फेट का उत्पादन भी चलू किया जा सकेगा।

राजस्थान में कच्चे तांबे (copper ore) का उत्पादन 1988 में 18 लाख टन अनुमानित है, जबकि 1987 में 16.94 लाख टन का उत्पादन हुआ था।

(ii) सीसा व जस्ता—उदयपुर से 40 किलोमीटर की दूरी पर जावर स्थान पर सीसे व जस्ते की खानें स्थित हैं। सीसे के डले गलाने के लिए बिहार भेज दिये जाते हैं और जस्ते के डले जो पहले जापान भेज दिये जाते थे, अब देबारी (उदयपुर के पास) में जस्ता गलाने के संयत्र में प्रयुक्त किये जाते हैं। इस कार्य के संचालन के लिए 'दी हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड', देबारी की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है। जस्ता गलाने की उपोत्पत्ति के रूप में सुपरफोस्फेट एसिड व केडमियम प्राप्त होते हैं। सल्फ्यूरिक एसिड का उपयोग सुपरफोस्फेट के उत्पादन में किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है रामपुरा-आगुचा में जस्ते व सीसे के विपुल भण्डार मिले हैं जिससे एक जिंक स्मेल्टर संयत्र लगाया जा रहा है।

1988 में राजस्थान में सीसे के डलों का उत्पादन 36 हजार टन, जस्ते के डलों का 109 हजार टन और चांदी का 18890 किलोग्राम अनुमानित है।

---

1. बजट भाषण 1989-90, 23 मार्च, 1989, पृ. 41 (हिन्दी में)

(iii) कच्चा लोहा—राजस्थान मे थोडी मात्रा मे कच्चा लोहा जयपुर उदयपुर भ झनू सीकर, व अलवर जिलो मे पाया जाता है। मुख्य मण्डार जयपुर व उदयपुर जिलो मे स्थित है। 1988 मे कच्चे लोहे का उत्पादन 65 हजार टन हुआ था।

(iv) मैंगनीज—बासवाडा जिले मे घटिया किस्म की मैंगनीज पाई गई है। राज्य मे मैंगनीज का उत्पादन बहुत कम हो पाया है।

(v) टगस्टन (शीलाइट खनिज)—नागौर जिले मे डेगाना के पास पहाडियो मे टगस्टन के मण्डार विद्यमान हैं। हाल मे एक सर्वेक्षण से इन मण्डारो की पुष्टि हुई है। यहाँ पर टगस्टन की किस्म भी काफी अच्छी बताई जाती है। पाली जिले मे टगस्टन के मण्डार मिले हैं। टगस्टन का उपयोग एलोय तथा स्पशल स्टील के निर्माण मे होता है। यह विद्युत के साज सामान में भी प्रयुक्त किया जाता है। टगस्टन रक्षा विभाग को सप्लाई किया जाता है। 1988 मे राजस्थान मे 32 टन टगस्टन के डलो का उत्पादन हुआ जो पिछले वर्ष के उत्पादन से कुछ अधिक था। भारत मे टगस्टन के उत्पादन का बडा अश राजस्थान से ही प्राप्त होता है।

औद्योगिक व अधात्विक खनिज
(Industrial and Non Metallic Minerals)

इन खनिजो का वर्णन निम्न समूहो म विभाजित करके किया जा सकता है—

(अ) पृथक करने के काम आने वाले खनिज ताकि ताप का प्रभाव न पडे (Insulants) ताप सहन करने मे मदद देने वाले खनिज (refractories) व चीनी मिट्टी के बतन बनाने मे काम आने वाले खनिज (ceramic minerals)। इस समूह मे निम्न खनिज शामिल होते हैं।

(i) ऐसबेस्टस—ऐसबेस्टस का उपयोग ऐसबेस्टस सीमेंट, छत की चद्दरें पाइप आदि बनाने म किया जाता है। 1988 मे 30 हजार टन ऐसबेस्टस का उत्पादन हुआ था।

(ii) फेल्सपार (Felspar)—यह काच, मिट्टी के बतन आदि उद्योगो मे प्रयुक्त होता है। देश मे फेल्सपार की कुल उत्पत्ति का लगभग 75% राजस्थान मे उत्पन्न होता है यह मुख्यतया अजमेर मे पाया जाता है और थोडी मात्रा मे सिरोही, उदयपुर अलवर और पाली जिले में भी पाया जाता है। 1988 मे इसका उत्पादन 25 हजार टन हुआ था।

(iii) सिलिका रेत (Silica Sand)—यह काँच उद्योग म कच्चे माल के रूप म काम आती है। यह अधिकाशत जयपुर और बूँदी जिलों म निकाली जाती है।

(iv) बराइट्स—यह चीनी मिट्टी के उद्योग व इलेक्ट्रानिक उद्योगों में प्रयुक्त होता है। यह अजमेर, सीकर, सिरोही व अलवर जिलों में मिलता है।

(v) मैग्नेसाइट—यह रिफ्रैक्टरी ईंटों के निर्माण में व्यापक रूप से प्रयुक्त किया जाता है। यह थोड़ी मात्रा में कांच के उद्योगों में भी काम आता है। यह अजमेर जिले में भी पाया जाता है।

(vi) वरमीक्यूलाइट—अजमेर जिले में एक खान से थोड़ी मात्रा में वरमीक्यूलाइट निकाला जाता है। इस पर अग्नि का प्रभाव नहीं होता। यह ताप व ध्वनि का अच्छा इन्स्यूलेटर होता है।

(vii) वालस्टोनाइट—यह एक नवीन खनिज है जिसके उपयोग बढ़ते जा रहे हैं। यह सिरेमिक उद्योग में काफी काम आता है। यह पेंट व कागज उद्योग में भी प्रयुक्त होता है। यह सिरोही जिले में मिलता है।

(viii) चायना क्ले व ग्लास्ट क्ले—यह बर्तन बनाने व विद्युत इन्स्यूलेटर के रूप में काम आता है। यह सवाई माधोपुर, सीकर, अलवर, नागौर व जालौर जिलों में पाया जाता है।

(ix) फायर क्ले—यह फायर ईंट, क्लॉयम आदि बनाने के काम आती है। यह बीकानेर जिले में पायी जाती है।

(x) डोलोमाइट—यह अजमेर, अलवर, जयपुर, जोधपुर, सीकर व उदयपुर जिलों में निकाला जाता है। यह जिप्सम व पाउडर तथा चूना बनाने में भी काम आता है।

(xi) इलेक्ट्रोनिक व आणविक खनिज—इस समूह में अभ्रक व बेरिल आते हैं।

(i) अभ्रक (mica)—राजस्थान में अभ्रक की खानें भीलवाड़ा, टोंक, अजमेर, जयपुर व उदयपुर जिलों में पायी जाती है। अभ्रक विद्युत साज-सामानों में प्रयुक्त होता है। यह रबर टायरों के निर्माण में भी प्रयुक्त होता है।

बिहार व आन्ध्र प्रदेश के बाद अभ्रक के उत्पादन में राजस्थान का तृतीय स्थान आता है। भारत का लगभग एक-चौथाई अभ्रक राजस्थान में उत्पन्न होता है। 1988 के अनुमानों के अनुसार अभ्रक का उत्पादन 6 लाख टन हुआ जो पिछले वर्ष से अधिक था।

(ii) आणविक खनिज—आणविक खनिजों में भी राजस्थान की स्थिति उत्साहवर्द्धक मानी जाती है। अजमेर व राजगढ़ की खानों में लिथियम की कुछ मात्रा मिली है। उदयपुर के समीप यूरेनियम की खोज की जा रही है। राजस्थान बेरिल का भी प्रमुख उत्पादक है।

(इ) कीमती पत्थर व अब्रेजिव्स (Gem Stones and Abrasives) :

(i) पन्ना (Emerald)—अजमेर व उदयपुर जिलो मे कुछ स्थानों पर एमरल्ड मिलता है । पिछले वर्षों मे इसका उत्पादन काफी घट गया है ।

(ii) गारनेट—यह अजमेर, भीलवाडा व टोंक जिलों मे पाया जाता है । इसकी दो किस्में होती हैं—एक तो एब्रेसिव और दूसरी जैम । राजस्थान में इसकी दोनो किस्मे पायी जाती हैं ।

(ई) उर्वरक खनिज—इस समूह मे जिप्सम रॉक-फॉस्फेट व पाइराइटस आते हैं ।

(i) जिप्सम—राजस्थान मे जिप्सम के काफी भण्डार भरे पडे है । देश मे कुल उत्पादन का लगभग 90% राजस्थान के हिस्से मे आया है । जिप्सम की खानें बीकानेर, श्रीगगानगर,चुरू, जैसलमेर, नागौर, बाडमेर, जालौर व पाली जिलो मे पाइ जाती है । पहले यह भवन-प्लास्टर मे ज्यादा प्रयुक्त होती थी, अब यह उर्वरक उद्योग का प्रमुख कच्चा माल मानी जाती है । यह सीमेंट उद्योग मे भी प्रयुक्त होती है । देश मे गन्धक की कमी होने से जिप्सम आधारित सल्फ्यूरिक एसिड का निर्माण बहुत उपयोगी माना जा सकता है ।

(ii) रॉक फॉस्फेट—उदयपुर के समीप रॉक फॉस्फेट के विशाल भण्डारो की खोज ने राजस्थान के खनिज इतिहास मे एक नया अध्याय जोड दिया है । पहले यह जैसलमेर जिले मे बिरमेनिया स्थान पर ढूंढा गया था । झामर-कोटडा के भण्डार बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं । अन्य छोटे-छोटे भण्डार भी पाये गये हैं । झामर-कोटडा क्षेत्र मे उत्पादन मार्च, 1968 से प्रारम्भ हो गया था । रॉक फास्फेट का उपयोग सुपर फॉस्फेट के उत्पादन मे किया जा रहा है । 1969 मे राज्य मे लगभग 69 हजार टन रॉक फॉस्फेट का उत्पादन एक महत्वपूण घटना मानी जा सकती है । इससे विदेशी विनिमय की काफी बचत हुई है । 1988 मे रॉक फास्फेट का उत्पादन 4 50 लाख टन हुआ जो पिछले वर्ष से कम था । रॉक-फॉस्फेट की बिक्री से राज्य सरकार को 1988 मे 20 6 करोड रुपये की आय हुई थी । रॉक-फॉस्फेट के परिशोधन के लिए एक बडा सयत्र लगाने की योजना है जिसकी विस्तृत रिपोर्ट सोफरा माइन्स, फ्रास द्वारा तैयार कर ई गई है ।

(iii) पाइराइट्स (Pyrites)—सीकर जिले मे सलादीपुरा मे पाइराइटस की काफी मात्रा उपलब्ध हुई है । इसमे गन्धक का अम्ल निकाला जा सकता है । गन्धक का अम्ल या तेजाब उर्वरक उद्योग मे काम आता है । उदयपुर के समीप रॉक-फॉस्फेट के भण्डारो व सलादीपुरा को पाइराइट्स का उपयोग करके राज्य मे एक उर्वरक काम्प्लेक्स या समूह स्थापित किया जा सकता है ।

(उ) रसायन उद्योग के खनिज—इस समूह मे लाइमस्टोन, फ्लोर्सपार व बेराइट्स आते हैं ।

(i) लाइमस्टोन या चूना पत्थर—सौभाग्य से राजस्थान को सीमेंट के उत्पादन के लिए लाइमस्टोन के विस्तृत भण्डार प्राप्त हैं। नौ सीमेंट के प्लाण्ट—लाखेरी, सवाई माधोपुर चित्तौड़गढ़, डाबोली (उदयपुर), निम्बाहेड़ा (चित्तौड़ जिला), मोड़क (कोटा) बनास (सिरोही), ब्यावर व कोटा मे चल रहे हैं। पिछले तीन वर्षों मे राज्य मे सीमेंट का उत्पादन काफी बढ़ा है। राज्य के विभिन्न भागो मे लाइमस्टोन के पाये जाने से सीमेंट के उद्योग का भविष्य उज्जवल है। जैसलमेर, उदयपुर, बासवाड़ा चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा सिरोही व पाली जिलों के विभिन्न क्षेत्रों मे लाइमस्टोन की सबल मात्रा व श्रेणी निश्चित करने के लिए प्रोसपेक्टिंग का कार्य चल रहा है।

(ii) फ्लोर्सपार (Floursparं) डूंगरपुर जिले मे माडो की-पाल नामक स्थान पर फ्लोर्सपार के भण्डार पाये गये हैं। इसका विकास पहले के वर्षों मे राजस्थान ग्रौद्योगिक व खनिज विकास निगम के द्वारा किया गया है। यह फ्लोर्सपार स्टील मैटेलर्जी मे व हाइड्रोक्लोरिक एसिड इत्यादि बनाने मे काम आता है। राज्य मे 1980 मे चार हजार टन फ्लोराइट का उत्पादन हुआ था।

(iii) बेराइटस— यह तल के कुओ की ड्रिलिंग के दौरान घोल या कीचड़ बनाने के काम आता है। यह पेंट लिथोपेन उद्योग तथा बेरियम रसायनो मे प्रयुक्त होता है। यह कागज व रबड़ उद्योग मे भी काम आता है। यह अलवर जिले मे तथा नाथद्वारा के समीप मिलता है।

(ड) छोटे खनिज (Minor Minerals)

(i) बेन्टोनाइट—यह एक प्रकार की मिट्टी होती है। यह ड्रिलिंग मड तैयार करने व सौंदर्य प्रसाधनों (cosmetics) के निर्माण मे प्रयुक्त होता है। यह बाड़मेर जिले मे पाया जाता है।

(ii) मुलतानी मिट्टी (Fuller's earth)—बीकानेर व जोधपुर जिले मे इसके भण्डार पाये जाते है। यह चिकनाहट को सोख लेती है और तेल से रगीन पदार्थ हटाने मे प्रयुक्त होती है।

(iii) संगमरमर, ग्रेनाइट व अन्य भवन निर्माण के पत्थर—मकराने का संगमरमर ताजमहल के निर्माण में प्रयुक्त किया गया था। नागौर, पाली, सिरोही, बूंदी, उदयपुर व जयपुर जिलों मे संगमरमर की प्राप्ति के अन्य स्थान भी मिले हैं। जालोर जिले म गुलाबी रग का ग्रेनाइट पत्थर पाया जाता है। राज्य के विभिन्न भागों में सैण्डस्टोन व लाइमस्टोन पाये जाते हैं।

(ए) विविध

(i) घीया पत्थर टेल्क व पाइरोफिलाइट—राजस्थान इनका प्रमुख उत्पादक क्षेत्र माना गया है। ये खनिज टैल्कम पाउडर, खिलौने आदि बनाने मे प्रमुख होते हैं। ये उदयपुर, जयपुर, सवाई माधोपुर, भीलवाड़ा व डूंगरपुर जिलो म पाये जाते है।

(ii) केल्साइट—यह रसायन के रूप मे कैल्शियम कार्बनिट होता है। यह कागज, वस्त्र, चीनी मिट्टी उद्योग, पेंट इत्यादि मे काम आता है। यह सीकर जिले मे प्राप्त होता है। लेकिन कुछ मात्रा सिरोही, पाली, जयपुर व उदयपुर जिलो में भी निकाली जाती है।

(iii) ओकर्स (Ochres) (लाल और पीले)—ये खनिज पिगमेंट होते हैं जो घुलते नही है और रग बनाने, सीमेंट, रबड, प्लास्टिक आदि उद्योगो में काम आते है। यह चित्तौडगढ जिले में कई स्थानो पर मिलता है। यह कुछ अन्य जिलो में भी मिलता है।

(iv) नमक—राजस्थान मे सामर झील में काफी नमक उत्पन्न किया जाता है। डीडवाना, पचपदरा व लूनकरनसर भी नमक के उत्पादन के मुख्य क्षेत्र माने गये हैं।

खनिज ईंधन (Mineral Fuels)

राजस्थान खनिज ईंधन की दृष्टि से पिछडा हुआ है। प्राय बीकानेर जिले में पलाना के लिग्नाइट कोयले के भण्डारो का उल्लेख किया जाता है। लेकिन यहाँ 1969 में आग लग जाने से एक खान को बन्द करना पडा था। पलाना में लिग्नाइट भण्डार के कुछ क्षेत्र और ढूँढ गये हैं और केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण ने यहाँ एक थर्मल पावर स्टेशन स्थापित करने की स्वीकृति दी है। अब सरकार ने इस थर्मल पावर स्टेशन स्थापित करने का काम नैवेली लिग्नाइट कारपोरेशन को सौंप दिया है। यहाँ कोयला प्रचुर मात्रा में पाये जाने के कारण 250 मेगावाट की दो इकाइयाँ स्थापित की जा सकती हैं। बीकानेर, नागौर व बाडमेर जिलो में लगभग 25 करोड टन लिग्नाइट (भूरा कोयल) के भण्डार आके गये हैं। इस भण्डार मे राज्य ने देश मे दूसरा स्थान प्राप्त कर लिया है।

राजस्थान में खनिज-आधारित उद्योग
(Mineral-based Industries in Rajasthan)

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान मे खनिज-आधारित उद्योगो के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं। राज्य मे सीमेंट, उर्वरक, रसायन व अन्य उद्योगो के विकास के लिए आवश्यक खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। हम नीचे पिछले वर्षों की प्रगति व भावी सम्भावनाओ का उल्लेख करते हैं—

1. जस्ता व गलाई सयत्र (Zinc Smelter Plant)—उदयपुर के समीप देबारी नामक स्थान पर 18 हजार टन की प्रारम्भिक क्षमता से एक जिंक स्मेल्टर प्लाण्ट चालू किया गया है। ऊँची किस्म का जस्ता तैयार करने के साथ-साथ वह उपोत्पत्ति के रूप में कैडमियम व गन्धक का तेजाब (सल्फ्यूरिक एसिड) भी तैयार करेगा। सल्फ्यूरिक एसिड से सुपरफोस्फेट तैयार किया जायेगा।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है रामपुरा-आगुचा में जिंक व सीसे के पर्याप्त भण्डार पाये जाने से भारत सरकार ने राजस्थान में जिंक स्मेल्टर संयंत्र लगाने की स्वीकृति दे दी है जिसे हिन्दुस्तान जिंक लि. कार्यान्वित करेगा।

2 निम्बाहेड़ा में एक सीमेंट का कारखाना डाला गया है। राज्य में सीमेंट के नौ बड़े कारखाने हो गये हैं। भविष्य में नये कारखाने भी स्थापित किये जा रहे हैं। राज्य में सीमेंट के छोटे संयत्र (Mini cement Plants) भी लगाये गये है।

3. खेतड़ी ताम्बा गलाने का संयत्र (Copper Smelter Plant)—खेतड़ी में ताम्बा गलाने के संयत्र की क्षमता 30 हजार टन है जो भविष्य में बढ़ाई जा सकती है। यहाँ भी सल्फ्यूरिक एसिड प्राप्त होता है जिसका उपयोग करने के लिए अन्य उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं।

4. जैसा कि पहले कहा जा चुका है उदयपुर के समीप झामर-कोटड़ा क्षेत्र में प्राप्त रॉक-फॉस्फेट के भण्डारों का उपयोग करके सुपर-फॉस्फेट का उत्पादन किया जा सकेगा। सीकर (सलादीपुरा) में पाइराइटस के भण्डारों का उपयोग करके सल्फ्यूरिक एसिड उत्पन्न की जा सकेगी जिसका उपयोग उर्वरक उद्योग में किया जायेगा।

इस प्रकार राज्य में कई तरह से सुपरफॉस्फेट के उत्पादन में वृद्धि होने से विकास को नया मोड़ मिलेगा।

5. नीम-का-थाना में निजी क्षेत्र में बने-खनिज प्लांट स्थापित किया गया है।

6 कुछ वर्ष पूर्व राजस्थान औद्योगिक व खनिज विकास निगम ने डूंगरपुर में माडों की पाल नामक स्थान पर फ्लोर्सपार बेनिफिशियेशन प्लांट प्रारम्भ किया था जिससे रसायन उद्योगों को बढ़ावा मिला है।

7. जालोर में एक ग्रेनाइट पोलिशिंग फैक्ट्री राजस्थान औद्योगिक व खनिज विकास निगम के अधिकार में ली गई थी जिसका विकास किया गया है।

8. अन्य—इसके अलावा हाई-टेक प्रिसीजन ग्लास, जोधपुर में ग्लास व ग्लास प्रोडक्ट्स, पर्फेक्ट पोटरी कम्पनी लिमिटेड, भरतपुर में फायर ब्रिक्स, स्टोनवेयर व पाइप, भूपाल माइनिंग वर्क्स, भीलवाड़ा में ब्रिक्स माइका इन्सुलेटिंग ब्रिक्स तथा जयपुर ग्लास एण्ड पॉटरीज वर्क्स जयपुर में कार्य करती है।

सवाई माधोपुर में खाद का कारखाना नहीं लगाया जायगा क्योंकि पर्यावरण की दृष्टि से यह स्थान उपयुक्त नहीं पाया गया है। इसलिए अब यह कारखाना कटेपान में लगाया जायगा, जिसके लिए निर्णय लिया जा चुका है।

बीकानेर व बाड़मेर में लिग्नाइट के भण्डारों का विदोहन करने के सम्बन्ध में नेदनी लिग्नाइट से समझौता किया गया है। इस पर शीघ्र ही कार्य प्रारम्भ होगा। यहाँ लिग्नाइट का वैज्ञानिक ढंग से विदोहन किया जायगा जिससे पर्यावरण की कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

सूरतगढ़ के पास मनोरा में 18 मिलियन क्यूबिक फीट गैस का भण्डार मिला है जिसमें से वर्तमान में 5 मिलियन क्यूबेक फीट का ही उपयोग हो पा रहा है। यहाँ एक पेट्रोरसायन काम्पलेक्स बनाने का प्रस्ताव है।

भावी सम्भावनाएं

1 कोटा में जिप्सम आधारित सल्फ्यूरिक एसिड के निर्माण का संयत्र लगाने पर सक्रिय रूप से विचार किया जाना चाहिए।

2 उदयपुर में एक पिग लोहा संयन्त्र लगाने की आवश्यकता है। वहाँ निकटवर्ती क्षेत्रों के कच्चे लोहे का उपयोग किया जा सकता है।

3 निम्न श्रेणी की जिप्सम से दीवारों के बोर्ड बनाये जा सकते हैं जिसके पूर्व-निर्मित-भवन (Pre fabricated-House) बनाकर कुछ सीमा तक भवन समस्या का समाधान निकाला जा सकता है।

उत्तम सेलेनाइट के भण्डारों का उपयोग प्लास्टर ऑफ पेरिस व अन्य उद्योगों का विकास करने में किया जाना चाहिए।

4 फेल्सपार, क्वार्टज व चिकनी मिट्टी के उपयोग से चीनी मिट्टी के सामान के कारखानों की स्थापना का क्षेत्र बढ़ सकता है। सिलिका के उपयोग से कॉच के उद्योग का विस्तार किया जा सकता है।

निष्कर्ष—उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान में तांबा, सीसा व जस्ता एवं सम्बद्ध धातुओं का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। भारत में इनका नितान्त अभाव है अतः राज्य को इनके विकास पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए और केन्द्र को इनमें अपना सक्रिय सहयोग देना चाहिए। विभिन्न स्रोतों से सुपर-फोस्फेट का उत्पादन के बढ़ने से उर्वरकों की सप्लाई बढ़ सकती है जिससे कृषिगत उत्पादन में वृद्धि हो सकेगी। लाइमस्टोन का उत्पादन बढ़ाकर सीमेंट व स्टील उद्योग का लाभ पहुंचाया जा सकता है।

राज्य की खनिज नीति

परिवहन व शक्ति के साधनों के विकास से राजस्थान में खनिज-आधारित उद्योगों के विकास की सम्भावनाएं बढ़ रही हैं राज्य में खनिज विकास के लिए 1978 में नई खनिज नीति घोषित की गई थी। इसमें खनिज पदार्थों की खोज हेतु सर्वेक्षण एवं अन्वेषण पर जोर दिया गया था। इसमें सड़कों के मास्टर प्लान बनाने बिजली उपलब्ध कराने व खनन कार्य के लिए बैंकों, सहकारी संस्थाओं तथा राजस्थान वित्त निगम आदि के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया था। इसमें कहा गया कि छोटे व लघु खनिकों को ऋण दिया जायगा तथा अप्रधान खनिजों जैसे लाइमस्टोन, संगमरमर आदि के पट्टे अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के व्यक्तियों को भी प्राथमिकता के आधार पर दिये जायेंगे।

राज्य में खनिजों के विकास के लिए नवम्बर 1979 में राजस्थान राज्य खनिज विकास निगम (RSMDC) स्थापित किया गया है। पहले यह कार्य

RIMDC के अन्तर्गत किया जाता था। रॉक-फॉस्फेट के खनन के लिए राजस्थान राज्य खान व खनन लिमिटेड कार्यरत है। एम. वी. माथुर समिति ने खनन-विकास के लिए निम्न सुझाव दिये हैं[1] :—

(i) खनन को उद्योग घोषित कर देना चाहिए ताकि इसको भी राजकोषीय लाभ व प्रेरणाएं मिल सकें।

(ii) खनन व भूगर्भ संचालक को सभी खनन लीजहोल्ड क्षेत्रों का बड़ा पैमाने पर भूगर्भीय नक्शा बनवाना चाहिए।

(iii) रामगंज, मोडक व झालावाड़ क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर लाइमस्टोन की टूटफूट व व्यर्थ डला पड़े हैं जिनसे पोजलाना (Puzzalana) सीमेंट बन सकती है बशर्ते कि इन पर उत्पादन-शुल्क घटाया जाय। इससे रोजगार बढ़ेगा तथा सरकार को आमदनी होगी।

(iv) बिहार सरकार की भांति अभ्रक को राजकीय व केन्द्रीय बिक्री कर से मुक्त रखा जाय;

(v) खनन की वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग बढ़ाया जाय।

(vi) खनन विभाग को खानों के पट्टे देने व लगान तथा रायल्टी इकट्ठा करने के अलावा खनिज पदार्थों के भण्डारण, श्रेणी, आदि के बारे में विस्तृत सूचना रखनी चाहिए, एवं

(vii) भवन निर्माण सामग्री का उपयोग करने के लिए निर्माण-उद्योग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए इसके लिए भूमि-रूपान्तरण, प्रशासित नियमों व बिल आदि की व्यवस्था बदलकर निर्माण-उद्योग को आगे बढ़ाना चाहिए। इससे राज्य में इन्फ्रास्ट्रक्चर भी मजबूत होगा।

आशा है इन सुझावों को कार्यान्वित किया जायगा।

राजस्थान में ऊर्जा का विकास
(Energy Development in Rajasthan)

आर्थिक विकास में ऊर्जा का केन्द्रीय स्थान होता है। ऊर्जा के स्रोत दो भागों में बांटे जाते हैं।

1. परम्परागत स्रोत (Conventional Sources)—इसमें जल-विद्युत, थर्मल-पावर (कोयला, गैस, व तेल से उत्पन्न), व अणु शक्ति से उत्पन्न पावर शामिल होते हैं।

2 गैर-परम्परागत स्रोत (Non-conventional Sources)—इसमें लकड़ी, बायो-गैस, सौर-ऊर्जा (solar energy), निर्धूम चूल्हा, पवन चक्की, वगैरा शामिल होते हैं।

---

1. पुरोहित रिपोर्ट, जून, 1989, भाग I, पृ. 36-37.

राजस्थान मे प्रति व्यक्ति व्यावसायिक ऊर्जा का उपभोग 95 किलोवाट घण्टे प्रति वर्ष है, जबकि समस्त देश का औसत 134 किलोवाट घण्टे (KWH) है। अतः समस्त भारत व राजस्थान के बीच ऊर्जा के उपभोग के अन्तर को कम करने की आवश्यकता है।

1989 के मध्य मे राजस्थान मे शक्ति की प्रस्थापित क्षमता लगभग 2500 मेगावाट के स्तर तक पहुंच चुकी है। इसमे लगभग आधी जल विद्युत शक्ति तथा आधी थर्मल पावर है। जल विद्युत परियोजनाएं जिनसे राजस्थान को विद्युत प्राप्त होती है इस प्रकार हैं :

भाखड़ा नागल, व्यास इकाई I व इकाई II चम्बल परियोजना (गांधी सागर, राणा प्रताप सागर व जवाहर सागर), माही बजाज सागर परियोजना। राजस्थान मे मिनी हाइडल स्कीमो के विकास की भावी सम्भावनाएं भी हैं। अनूपगढ मिनी हाइडल स्कीम से राज्य को लाभ होगा।

थर्मल परियोजनाओ मे सतपुड़ा, सिंगरौली, राजस्थान अणु शक्ति केन्द्र, कोटा I व II तथा कोटा थर्मल पावर सयत्र हैं।

नई थर्मल परियोजनाएं

राष्ट्रीय थर्मल पावर कॉरपोरेशन कोटा जिले मे अन्ता (Anta) शहर मे एक गैस आधारित पावर स्टेशन (केन्द्रीय क्षेत्र मे) स्थापित करने जा रहा है जिसकी क्षमता 600 मेगावाट करने की आशा है (फिलहाल 430 मेगावाट है)। यह परियोजना सातवी योजना के अन्त तक तैयार हो जायगी। इस प्रकार नैवेली लिग्नाइट कॉरपोरेशन को पलाना लिग्नाइट की खानो का उपयोग करके एक थर्मल प्लान्ट स्थापित करने का काम सौपा गया है। इसमे 60 मेगावाट की दो यूनिट लगाने का प्रस्ताव तो केन्द्र ने मजूर कर दिया था, लेकिन प्रचुर मात्रा मे कोयला मिलने से वहां 250 मेगावाट की दो इकाइयां स्थापित करने के नये प्रस्ताव भारत सरकार को भेजे गये हैं।

अन्ता परियोजना व पलाना लिग्नाइट परियोजना के चालू हो जाने पर राजस्थान मे पावर-सकट कम हो जायेगा। आठवी व नवी पचवर्षीय योजना मे बिजली की माग की पूर्ति के लिए पाँच थर्मल या तापीय योजनाएं चालू की जायेंगी इसके लिए कोटा तृतीय चरण, चित्तौड़गढ, माडलगढ, सूरतगढ एव धौलपुर के लिए योजनाएं भारत सरकार को प्रेषित की गई हैं।

रावतभाटा मे भारत सरकार द्वारा 235 मेगावाट की दो इकाइयां स्थापित की जा रही हैं, जबकि 500 मेगावाट क्षमता की चार इकाइयां स्थापित करने पर सिद्धान्तत: सहमति प्रकट की जा चुकी है। इस प्रकार रावतभाटा से 2470 मेगावाट विद्युत उत्पादित होगी और यह देश का सबसे बडा 'अणु बिजली कॉम्प्लेक्स' बन सकेगा।

सरकार ने गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का विकास करने के लिए राजस्थान ऊर्जा-विकास एजेन्सी (Raj. Energy Dev. Agency) (REDA) की स्थापना की है।

1989-90 में 7000 सोलर-कुकर्स वितरित किये जायेंगे तथा 900 सौर-ऊर्जा चालित रोड लाइटें लगायी जायेंगी। इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र में चारा विक्रय हेतु 100 पवन चक्कियाँ लगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। जोधपुर क्षेत्र में 30 मेगावाट का सोलर-थर्मल भवन लगाने का प्रस्ताव है।[1]

पिछले वर्षों में राज्य में काफी संख्या में निर्धूम चूल्हे स्थापित किये जा चुके हैं। इनका विस्तार किया जा रहा है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों को काफी लाभ होगा। इस प्रकार गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का विकास कार्य भी जारी है।

राजस्थान में जनसंख्या की स्थिति

जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि—1981 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या 3 43 करोड़ व्यक्ति आँकी गई है। 1971 में यह लगभग 2 58 करोड़ व्यक्ति थी। 1971-81 की अवधि में राज्य की जनसंख्या में लगभग 85 लाख व्यक्तियों की बढ़ोतरी हुई है, जो लगभग 33 प्रतिशत है। इसी अवधि में समस्त भारत में जनसंख्या की वृद्धि 25 प्रतिशत रही। इस प्रकार राजस्थान में जनसंख्या की वृद्धि-दर समस्त भारत से 8 प्रतिशत बिन्दु अधिक रही है। निम्न तालिका में 1941 से 1981 तक की अवधि में राजस्थान में जनसंख्या की दस वर्षीय वृद्धि का परिचय दिया गया है।[2]

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	दस वर्षीय वृद्धि दर (%)
1941	1·39	18 0
1951	1 59	15 2
1961	2 01	26 2
1971	2 58	27 8
1981	3 43	33 0

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि 1941-81 के बीच राजस्थान की जनसंख्या 1 39 करोड़ व्यक्तियों से बढ़कर 3 43 करोड़ व्यक्ति हो गयी। राज्य में 1981 में प्रति 1000 पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या 919 थी। यह राज्य का लिंग-अनुपात (sex ratio) कहलाता है। अतः राज्य में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से अधिक है। राज्य में अनुसूचित व जनजातियों की संख्या काफी ऊँची है। 1979 में यह कुल जनसंख्या का 8% थी। 1981 में शहरी जनसंख्या कुल जनसंख्या का 21·05% थी। इस प्रकार आज भी राजस्थान में 10 में से 2 व्यक्ति शहरों में तथा 8 व्यक्ति

1. बजट-भाषण, 23 मार्च, 1989, पृ. 11-12.
2. Some facts about Rajasthan, 1987, P. 21.

गांवो मे निवास करते है। 1981 मे 11 शहरो मे जनसंख्या एक लाख से ऊपर पायी गई जो अध्याय के अन्त मे परिशिष्ट 2 मे दी गई है।

1971-81 की अवधि मे राज्य मे विभिन्न जिलो में जनसंख्या की वृद्धि-दर मे काफी अन्तर पाये गये थे। बीकानेर जिले मे जनसख्या की वृद्धि पर 48 1% रही, जो सर्वाधिक थी और भीलवाडा जिले मे यह 24 2% रही जो न्यूनतम थी।[1]

राज्य मे जनसंख्या की वृद्धि-दर (लगभग 33%) समस्त भारत की वृद्धि-दर (25%) से काफी अधिक रही है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि राज्य सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से काफी पिछडा हुआ है और बाहर से लोग आकर बस गये हैं। 1981 मे राज्य की जनसख्या का 30 48% मुख्य श्रमिको (main workers) की श्रेणी मे तथा 6·13% सीमान्त श्रमिको (marginal workers) की श्रेणी मे पाया गया था।

राजस्थान मे पिछडी जातियो व जनजातियो के लोगो की भी सख्या काफी है। राज्य मे शिक्षा का भी अभाव है। इस प्रकार भविष्य मे राज्य मे जनसख्या की वृद्धि-दर को नियन्त्रित करने के लिए अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध मे विशेष ध्यान बीकानेर श्री गगानगर, बाडमेर, जोधपुर जैसलमेर, जयपुर कोटा, बांसवाडा व जालोर जिलो पर दिया जाना चाहिए जहां 1971-81 की अवधि मे जनसख्या 35% से अधिक बढी। (देखिए परिशिष्ट 1)। जनसख्या को नियन्त्रित करने के लिए आवश्यक उपायो का वर्णन जनसख्या के अध्याय मे किया जा चुका है। प्रोफेसर के सुन्दरम ने बतलाया है कि राजस्थान मे परिवार नियोजन अपनाने वाले दम्पत्तियो का प्रतिशत 1983 मे 15 7 था जो वर्ष 2000 तक बढकर ज्यादा से ज्यादा 31% हो सकेगा, जबकि समस्त राज्यो के लिए उस वर्ष के लिए लक्ष्य 60% रखा गया है।[2] इस प्रकार लक्ष्य की तुलना मे राजस्थान की उपलब्धि आधी ही रह पायेगी। इसलिए राज्य मे परिवार-नियोजन की दिशा मे विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

1981 मे राजस्थान की जनसख्या देश की कुल जनसंख्या का 5 प्रतिशत थी। राज्य मे जनसख्या का घनत्व 1981 मे प्रति वर्ग किलोमीटर 100 व्यक्ति पाया गया है, जबकि 1971 मे यह 75 था। राज्य के विभिन्न जिलो मे जनसंख्या के घनत्व में भी भारी अन्तर पाया जाता है, जैसे जैसलमेर के रेगिस्तानी भागो में यह 6 है, जबकि जयपुर जिले में यह 242 व्यक्ति है।

राज्य में 1981 की जनगणना के अनुसार लगभग 24·4 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर थे। इसमें पुरुषो का प्रतिशत 36 3 तथा स्त्रियों का 11 4 था। इस प्रकार

---

1 विभिन्न जिलो मे हुई जनसख्या की वृद्धि का विवरण इस अध्याय के अन्त मे परिशिष्ट 1 मे दिया गया है।

2. K. Sundaram, article in EPW, August 25, 1984, p. 1481.

आज भी राज्य में $\frac{3}{4}$ व्यक्ति निरक्षर हैं, जबकि भारत में इसका अनुपात $\frac{2}{3}$ है। राजस्थान के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि 1981 में भी यहाँ की ग्रामीण स्त्रियों में केवल 5 5% ही साक्षर थीं। साक्षरता की स्थिति शहरों में बेहतर है, जहाँ 1981 में 60·6% पुरुष व 34 5% स्त्रियाँ साक्षर थी। अतः गाँवों में महिला-वर्ग को साक्षर व शिक्षित बनाने की नितान्त आवश्यकता है। इससे शादी की उम्र भी बढ़ेगी तथा परिवार नियोजन पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। देहातो मे महिलाओं में फैली हुयी व्यापक निरक्षरता राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक प्रगति मे बाधक मानी जा सकती है।

श्रम शक्ति का व्यावसायिक वितरण[1]

राज्य मे 1971 मे कुल श्रम-शक्ति जनसख्या का 34 1% थी जो 1981 में 36 6% हो गई। इसमे मुख्य श्रमिक व सीमान्त श्रमिक दोनो को शामिल कर लिया गया है। इसे काम मे भाग लेने की दर (work participation rate) भी कहते हैं।

कुल श्रमिको का विभिन्न औद्योगिक श्रेणियो के अनुसार वितरण तालिका मे दर्शाया गया है—

औद्योगिक श्रेणी	1971	1981 (प्रतिशत मे)
I कृषक	64·9	64 5
II खेतिहर मजदूर	9·3	8 5
III पशुधन, मछली, वन, आदि	2·5	2·8
IV खनन व पत्थर निकालना	0 4	0 7

1. 1971 के आंकड़ों के लिए Report of the Committee on Unemployment, May 1973, p 344, तथा 1981 के लिए Census of India 1981, Series 18, Rajasthan Part II, Special Report and Table Based on 5 Percent Sample Data p. 87 का उपयोग किया गया है।

V (अ) घरेलू उद्योग	3·4	3·0
(आ) घरेलू उद्योग के अलावा उद्योग	3·2	5·0
VI निर्माण (construction)	1·3	1·7
VII व्यापार व वाणिज्य	4 4	4·4
VIII परिवहन, संग्रह व संचार	2·0	2·1
IX अन्य सेवाएँ	8 5	7·3
कुल (लगभग)	100 0	100·0

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1971 में कृषि व सहायक क्रियाओं में (श्रेणी I से III तक) 76·7% श्रमिक लगे हुए थे जो 1981 में 75·8% हो गये। खनन व उद्योगों में (श्रेणी IV व V) 7% से 8·7% हो गये एवं अन्य में (श्रेणी VI से IX तक) 16 2% से 15·5% हो गये।

इस प्रकार 1981 में कृषि व सहायक क्रियाओं में श्रम शक्ति का अनुपात 1971 की तुलना में लगभग 1% कम हुआ, खनन व उद्योगों में यह 1·7% बढ़ा तथा निर्माण एवं सेवाओं में मामूली घटा है।

1981 में राजस्थान में श्रम-शक्ति के व्यावसायिक वितरण में 1971 की तुलना में जो परिवर्तन आया है, वह एक सही दिशा में होने वाला परिवर्तन माना जा सकता है। इससे राज्य में कृषि के अलावा अन्य क्रियाओं की प्रगति झलकती है। आशा है आगामी वर्षों में राज्य के औद्योगिक विकास से यह प्रवृत्ति और जोर पकड़ेगी।

मानवीय साधनों से सम्बन्धित उपर्युक्त तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि राजस्थान में एक तरफ जनसंख्या की वृद्धि को नियन्त्रित किया जाना चाहिए और दूसरी तरफ तीव्र गति से आर्थिक विकास किया जाना चाहिए। राजस्थान में कृषिगत विकास व

औद्योगिक विकास की गति को तेज करके लोगो की आर्थिक स्थिति मे आवश्यक सुधार लाया जा सकता है। आगे के अध्यायो मे हम इन पहलुओं पर अधिक प्रकाश डालेंगे।

परिशिष्ट—1

1971–81 की अवधि मे जिलो को जनसंख्या की वृद्धि की दस-वर्षीय दरें[1]

(प्रतिशत मे)

बीकानेर	48 1	उदयपुर	30·7
गगानगर	45 6	चित्तौडगढ	30·4
बाडमेर	44·4	नागौर	29·0
जोधपुर	44 8	सवाई माधोपुर	28·7
जैसलमेर	44·8	झुन्झुनू	30 4
जयपुर	38·5	डूगरपुर	28 8
कोटा	36·6	सिरोही	27·9
बांसवाडा	35 4	भरतपुर	26 1
जालौर	35 2	धौलपुर	27 3
चुरू	34 9	अलवर	26·2
सीकर	32·1	झालावाड	25·8
पाली	31·4	अजमेर	25 5
बूंदी	30 7	टोंक	25·2
		भीलवाडा	24 2

[समस्त राजस्थान 33·0]

1981 की जनगणना के अनुसार राजस्थान के 11 शहरों की जनसख्या एक लाख के ऊपर रही है, जो इस प्रकार है :

1. Some Facts about Rajasthan, 1987, pp 10–11, (DES, Jaipur)

30

राजस्थान का कृषिगत विकास

(Agricultural Development of Rajasthan)

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। 1987-88 में राज्य की आय (प्रचलित भावों पर) लगभग 9502 करोड़ रुपये थी जिसमें कृषि का योगदान 4146 करोड़ रुपये, अर्थात् लगभग 43 6 प्रतिशत था। 1970 71 की कीमतों पर लेने पर कृषि का योगदान राज्य की कुल आय में 1987-88 में 45·7% आंका गया है।[1] इस प्रकार स्थिर भावों पर कृषि (पशुधन सहित) का योगदान राज्य की कुल आय (SDP) में लगभग आधा माना जाता है। 1987-88 में अनुकूल मूसों के कारण यह लगभग 46% रहा था। राज्य की कृषिगत आय में काफी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ की कृषिगत अर्थव्यवस्था मूलतः अस्थिर (unstable) है और इस पर अकालों की काली छाया निरन्तर पड़ती रहती है :

(अ) भूमि का उपयोग—निम्न तालिका में 1951-52 व 1986-87 के वर्षों में राजस्थान में भूमि के उपयोग का परिवर्तन दर्शाया गया है :

राजस्थान में भूमि का उपयोग[2]

वर्गीकरण	(लाख हैक्टेयर में) 1951-52	रिपोर्टिंग क्षेत्र का प्रतिशत	(लाख हैक्टेयर में 1986–87	रिपोर्टिंग क्षेत्र का प्रतिशत
1 रिपोर्टिंग क्षेत्रफल	342 8	100 0	342 3	100 0
2. वन	11 6	3·4	22·5	6 6
3. कृषि के लिए अप्राप्य*	89 8	26 2	63 1	18·4
4 कृषि योग्य व्यर्थ भूमि	90 0	26·3	57 5	16 8
5. परती भूमि	58 3	17 0	44·9	13 1
6. शुद्ध कृषित भूमि	93 1	27 1	154·3	45 1
7. एक से अधिक बार जोता गया क्षेत्र	4 4	1·3	22 1	6·5**
8 सकल कृषित क्षेत्र	97 4	28 5	176 4	51 6

1. आय-व्ययक अध्ययन (DES) 1989-90 p 52 & p. 54.
2 10 years of Agricultural Statistics Rajasthan, 1977-78 to 1986-87, DES, Jaipur, July, 1988, p. 2.

* इसमें निम्नांकित क्षेत्र शामिल किये गये हैं : (i) गैर-कृषिगत उपयोगों में लगाई गई भूमि, (ii) बंजर व अकृष्य भूमि, (iii) स्थाई चरागाह व अन्य चराई की भूमि तथा (iv) विविध पेड़ों, फसलों व कुंजों की भूमि।

** 1986 87 में एक से अधिक बार जोता गया क्षेत्र कुल रिपोर्टिंग क्षेत्रफल का 6 5% तथा शुद्ध कृषित क्षेत्रफल का 14·3% था।

तालिका से यह पता चलता है कि राजस्थान मे 1986-87 मे कुल रिपोर्टिंग क्षेत्रफल 3.42 करोड़ हैक्टेयर भूमि था। शुद्ध कृषित क्षेत्र (net area sown) इसका 45.1 प्रतिशत था जो 1951-52 मे केवल 27 प्रतिशत था। यह 1951-52 में 93 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 1986-87 मे 154.3 लाख हैक्टेयर हो गया। इस प्रकार योजना काल मे राज्य म नई भूमि पर खेती का काफी विस्तार किया गया है। एक से अधिक बार जोता गया क्षेत्र 1951-52 मे 4.4 लाख हैक्टेयर था जो 1986-87 मे 22.1 लाख हैक्टेयर हो गया। इस प्रकार सिंचाई के साधनों का विकास होने से राज्य मे गहन कृषि का भी विकास किया गया है। परिणामस्वरूप कुल कृषित क्षेत्र (total cropped area) जो 1951-52 म कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र का 28.4% था, वह 1986-87 म 51.6% हो गया। राज्य मे आज भी वनों का क्षेत्रफल कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र का 6.6% मात्र है। कृषि योग्य व्यर्थ भूमि (Culturable Waste Land) व परती भूमि (Fallow Land) (मद 4—मद 5) 30 प्रतिशत है। भविष्य मे इसमे से कुछ क्षेत्र कृषि मे लाया जा सकता है। अतः राज्य में विस्तृत व गहन दोनों प्रकार की कृषि के विकास की भावी सम्भावनाए विद्यमान हैं।

1986-87 मे शुद्ध कृषित क्षेत्रफल 1.54 करोड हैक्टेयर रहा, जो कुल रिपोर्टिंग क्षेत्रफल का 45.1% था। 1986-87 मे सकल कृषित क्षेत्र (gross cropped area) 17.6 करोड़ हैक्टेयर था जो कुल रिपोर्टिंग क्षेत्रफल का लगभग 52% था।

राजस्थान में 1985-86 में कार्यशील जोतों का विवरण[1]

जोतों की किस्मे	जोतो की सख्या (लाख में)	कुल का %	समाया हुआ क्षेत्रफल (लाख हैक्टेयर में)	कुल का %
1 सीमान्त जोत (1 हैक्टेयर तक)	13.6	28.6	6.4	3.1
2 लघु जोतें (1-2 है)	9.2	19.3	13.3	6.4
3 लघु-मध्यम (2-4 है)	9.8	20.6	27.9	13.5
4 मध्यम (4-10 तक है)	9.9	20.8	61.2	29.6
5 बड़ी (10 है से ज्यादा)	5.1	10.7	97.9	47.4
कुल	47.6	100.0	206.7	100.0

तालिका से स्पष्ट होगा है कि राज्य में कार्यशील जोतों का वितरण काफी असमान है। एक हैक्टेयर तक की जोतें कुल जोतों का लगभग 29% है, लेकिन

1. Some facts About Rajasthan, 1987, p. 33.
(प्रतिशत निकाले गये हैं)

इनमें कुल क्षेत्रफल का केवल 3·1% भाग ही समाया हुआ है। इसके विपरीत 10 हैक्टेयर से ऊपर की जोतें लगभग 11% हैं, जबकि इनमें 47% क्षेत्र समाया हुआ है। 1970-71 में राजस्थान में कार्यशील जोतो का औसत आकार 5 45 हैक्टेयर था, जो समस्त भारत के औसत आकार 2·28 हैक्टेयर का 2½ गुना था, एव सभी राज्यो की तुलना में यह सर्वाधिक था। 1985-86 में राजस्थान के जोतो का औसत आकार घटकर 4 34 हैक्टेयर पर आ गया है तथा इसी वर्ष भू-जोतो की कुल सख्या 47 63 लाख थी जिनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल लगभग 2 करोड 6 लाख 71 हजार हैक्टेयर समाया हुआ था।

शुष्क प्रदेश मे सिचाई का महत्व—राजस्थान में शुष्क प्रदेश (arid region) में पानी की सुविधा का महत्व इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि बीकानेर व गगानगर जिले में मुख्य अन्तर यही है कि गगानगर जिले को गग नहर से सिंचाई की सुविधा मिली हुई है। बीकानेर जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्र गगानगर जिले से ज्यादा होते हुए भी कृषित क्षेत्र उससे कम है। कृषि योग्य बजर भूमि बीकानेर जिले में ज्यादा है। गगानगर जिले में लगभग 25 तरह की फसलें बोई जाती हैं, जबकि बीकानेर में 5 या 6 तरह की। पशुपालन भी गगानगर जिले मे ज्यादा उन्नत है। कपास, गन्ना, तिलहन गेहूँ, चावल आदि की फसलें होती हैं।

(आ) सिंचित क्षेत्र—राजस्थान में नहरो, तालाबो व कुओ आदि साधनो की सहायता से सिंचाई की जाती है। विभिन्न स्रोतो के अनुसार सकल सिंचित क्षेत्र (gross irrigated area) 1951-52 में 11 7 लाख हैक्टेयर था जो 1985-86 में 38·6 लाख हैक्टेयर हो गया। 1986-87 में यह 43·5 लाख हैक्टेयर रहा। विभिन्न स्रोतों द्वारा सिंचित क्षेत्रफल निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

विभिन्न साधनों द्वारा सिंचित क्षेत्र[1]

(लाख हैक्टेयर मे)

वर्ष	नहरें	तालाब	कुए व अन्य साधन	योग
1951-52	2 2	0 8	7 0	10 0
1985-86	15·1	1 0	22 5	38 6
1986 87	16 4	1 4	25 7	43 5

1. Budget Study 1989-90, p. 76, (1985-86 व 1986-87 के लिए)

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1986–87 मे नहरो की सिचाई 1951-52 की तुलना मे लगभग 7½ गुना हो गई। लेकिन राज्य मे आज भी सिचाई के साधनों मे कुओ व ट्यूबवैल का सर्वोच्च स्थान है, जो लगभग 60% है।

1951-52 मे कुल सिंचित क्षेत्रफल कुल कृषित क्षेत्रफल का 12% था जो बढकर 1970-71 में 14·7% तथा 1986-87 में 24 6% हो गया। इस प्रकार योजनाकाल मे राज्य मे सिचाई के साधनो का काफी विस्तार हुआ है और सकल सिंचित क्षेत्रफल सकल कृषित क्षेत्रफल का 12% से बढकर 24–25% हो गया है।

राज्य में अधिक मात्रा में सिंचित फसलो में गन्ना, कपास, जौ व गेहूँ का स्थान आता है और ज्वार, बाजरा व मूँगफली का स्थान काफी कम सिंचित फसलो में आता है। राज्य में सिचाई के विकास की काफी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। इसके लिए सिंचाई के क्षेत्र में भारी मात्रा मे पूँजी लगाने की आवश्यकता है। 1986-87 मे खाद्यान्नो की फसलो मे 27 8 लाख हैक्टेयर मे सिचाई की गई जो कुल सिंचित क्षेत्रफल 43 5 लाख हैक्टेयर का 64% थी।

पिछले वर्षों मे राज्य मे शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल (net irrigated area) लगभग 32 लाख हैक्टेयर रहा है। 1986-87 में यह बढकर 34·2 लाख हैक्टेयर हो गया है। इस प्रकार 1986-87 मे शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल 34 2 लाख हैक्टेयर व सकल सिंचित क्षेत्रफल 43·5 लाख हैक्टेयर पाया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि 9·3 लाख हैक्टेयर भूमि मे एक से अधिक बार सिंचाई की गई।

$\frac{\text{सकल सिंचित क्षेत्रफल}}{\text{शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल}}$ = सिचाई की गहनता (irrigation intensity) कहलाती

है, जो 1986-87 के लिए $\frac{43\ 5}{34 \cdot 2} = 1 \cdot 27$ रही। यह 1971-78 में $\frac{31 \cdot 7}{27 \cdot 6} = 1 \cdot 15$ रही थी। इसको और बढाने की आवश्यकता है।

राजस्थान की बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएं तथा सिचाई की वृहद् परियोनाए

(अ) राजस्थान की बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएँ इस प्रकार हैं:

1 भाखडा नांगल परियोजना मे हिस्सा,
2 चम्बल परियोजना में हिस्सा,
3 व्यास परियोजना
4 माही परियोजना

(आ) सिचाई की वृहद् परियोजनाएँ जिन पर कार्य किया जा रहा है — वृहद् परियोजनाओ के अन्तर्गत कमाण्ड क्षेत्रफल 1 हजार हैक्टेयर से अधिक होता है।

हैं। तृतीय अवस्था में जवाहरसागर बांध बनाया जा रहा है। चम्बल परियोजना से राजस्थान में मुख्यतया कोटा व बूंदी जिलों में सिंचाई की सुविधा बढ़ेगी। चम्बल कमाण्ड क्षेत्र में पानी के जमाव, क्षारयुक्त भूमि व पानी के मिट्टी में सोख लिए जाने, आदि की समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं जिससे सिंचाई की पूरी क्षमता का उपयोग नहीं हो पा रहा है। विश्व बैंक की सहायक संस्था अन्तर्राष्ट्रीय विकास एसोसियेशन की सहायता से इन समस्याओं को हल करने का प्रयास किया जा रहा है। आधुनिकीकरण व पानी के निकास की व्यवस्था बहुत आवश्यक है। छठी योजना (1980-85) की अवधि मे राण प्रताप सागर, जवाहर सागर तथा लिफ्ट स्कीम के चालू कार्यक्रमो के लिए धनराशि की व्यवस्था की गयी थी। चम्बल परियोजना के नये कार्यक्रमो मे बूंदी शाखा का विस्तार, कोटा जलाशय को ऊंचा करना तथा डाउन स्ट्रीम प्रोटेक्शन वर्क्स शामिल किये गये हैं। अब चम्बल परियोजना का कार्य पूरा हो गया है। इससे 4 5 लाख हैक्टेयर भूमि मे सिंचाई की जाती है तथा 386 मेगावाट जल विद्युत का उत्पादन होता है।

3 व्यास परियोजना (Beas Project)—यह पजाब, हरियाणा और राजस्थान राज्यो की मिली-जुली बहुउद्देश्यीय याजना है। इस योजना मे सतलज, रावी और व्यास तीनों के जल का उपयोग किया जा रहा है। इसकी निम्न इकाइयां हैं: (1) व्यास सतलज कड़ी, (2) पोंग स्थान पर व्यास नदी पर बांध तथा (3) व्यास ट्रान्समिशन प्रणाली। पहली इकाई में पाण्डाह (Pandoh) नामक स्थान पर एक बांध, दो सुरंगें, सात मील लम्बी खुली हाइडल चेनल (बग्गो से सुन्दरनगर तक) एव एक शक्ति-संयत्र (देहर स्थान पर) शामिल किया गया है।

दूसरी इकाई मे पोंग बाध का उद्देश्य राजस्थान के लिए पानी एकत्र रखना है। इससे पजाब हरियाणा व राजस्थान मे सिंचाई की व्यवस्था की जा सकेगी। इसमें एक शक्ति-संयत्र को स्थापित करने की भी योजना है। इसका निर्माण कार्य व्यास-नियन्त्रण मण्डल की देख-रेख में सम्पन्न किया जा रहा है। राजस्थान को व्यास परियोजना से प्रत्यक्ष रूप से सिंचाई का लाभ नहीं मिलेगा। यह इन्दिरा गांधी नहर परियोजना को स्थायी रूप से जल-सप्लाई करेगी। इस योजना से तीनों राज्यो में 21 लाख हैक्टयर भूमि को सिंचाई हो सकेगी। इस परियोजना से राजस्थान राज्य को 150 मेगावाट विद्युत प्राप्त होगी।

रावी-व्यास नदी जल-विवाद[1]—पिछले दो दशकों से रावी-व्यास नदी जल-विवाद चलता आ रहा है। अन्तर्राज्यीय जल-विवाद (संशोधन) अधिनियम, 1986

---

1. मूंगालाल सुरेका, 'पजाब व राजस्थान आमने सामने" राजस्थान पत्रिका, 6 जून, 1986, तथा "इराडी पचाट की असहनीय कार्यवाही," राजस्थान पत्रिका, 26 मई, 1987.

पंजाब समझौते को लागू करने के लिए पारित किया गया था । इसके अन्तर्गत इराडी आयोग का गठन किया गया जिसे दो कार्य सौंपे गये थे :—

(i) यह निर्धारित करना कि पंजाब, राजस्थान व हरियाणा के किसान 1 जुलाई को रावी-व्यास नदियों का कितना-कितना पानी उपयोग में ला रहे थे ताकि कम से कम उतना पानी उनको मिलता रहे । (पंजाब समझौते के पैरा 9 (1) के अनुसार)

(ii) आयोग यह निर्णय करेगा कि पंजाब व हरियाणा के बाकी बचे हुए अपने हिस्से में से कितना पानी किस राज्य (पंजाब व हरियाणा) को मिलेगा । आयोग का यह निर्णय केवल इन्हीं दो राज्यों पर लागू होगा । (पंजाब समझौते पैरा 9 (2) के अनुसार)

इस प्रकार इराडी आयोग की नियुक्ति किसी स्वतंत्र न्यायिक निर्णय के लिए नहीं की गई थी । बल्कि लोंगोवाल-राजीव पंजाब समझौते में किये गये राजनीतिक निर्णय को लागू करने में मदद देने के लिए की गई थी ।

पंजाब का यह तर्क रहा है कि रावी-व्यास नदियां राजस्थान से होकर नहीं गुजरती, इसलिए इनके पानी पर राजस्थान का कोई अधिकार नहीं है । वस्तु-स्थिति यह है कि पंजाब व हरियाणा के आपसी विवाद में राजस्थान को अनावश्यक रूप से घसीट लिया गया है । राजस्थान सिंध नदी का प्रदेश है और इस प्रकार इन नदियों के पानी का पूरा भागीदार माना जाना चाहिए । राजस्थान के विशाल रेगिस्तान व सूखा क्षेत्रों को सिंचाई के लिए पानी की नितान्त आवश्यकता है ।

इराडी आयोग ने अपनी रिपोर्ट मई 1987 में पेश कर दी थी जिसके अनुसार पंजाब, हरियाणा व राजस्थान के पानी के हिस्से इस प्रकार निश्चित किये गये थे—

	नये निर्धारित अंश	पूर्व अंश
(1) पंजाब :	50 लाख एकड़ फुट	42.2 लाख एकड़ फुट
(2) हरियाणा :	38 लाख 30 हजार एकड़ फुट	35 लाख ,, ,,
(3) राजस्थान :	86 लाख एकड़ फुट	86 लाख ,, ,,

इस प्रकार इराडी आयोग की सिफारिशों से पंजाब व हरियाणा के हिस्से बढ़े हैं तथा राजस्थान का यथावत रहा है । इससे राजस्थान का वास्तविक अंश रावी-व्यास पानी से 3% कम हो गया है । इस बात को लेकर राजस्थान में असन्तोष है क्योंकि राज्य में प्रायः सूखा पड़ता रहता है और यहां की जल की आवश्यकता काफी अधिक है । इसलिए राजस्थान का हिस्सा भी आनुपातिक रूप से बढ़ाया जाना चाहिए था । लेकिन पंजाब समझौते के अन्तर्गत अतिरिक्त पानी पंजाब व हरियाणा में ही विभाजित होना था । इसलिए राजस्थान सरकार असमंजस की स्थिति में पड़ गयी है ।

4. माही बजाज सागर परियोजना—यह राजस्थान व गुजरात की मिली-जुली परियोजना है । इससे दक्षिणी राजस्थान व उत्तरी गुजरात में सिंचाई की

जायेगी। इसमे बासवाडा जिले मे 80 हजार हैक्टयर भमि मे सिचाई की जायेगी। जून 1983 में मुख्य बाध का कार्य पूरा हो गया है। यह बाँसवाडा के समीप तैयार की गई है। योजना का तीसरी इकाई मे पावर का विकास किया जा रहा है। पावर हाउस न 2 का कार्य काफी आगे बढ गया है। इस पर 45–45 मेगावाट की दो इकाइयाँ लगायी जा रही हैं। प्रथम पावर हाउस में 25-25 मेगावाट की दो इकाइयां हैं। इसे जनवरी 1986 को राष्ट्र को समर्पित किया गया था। पावर हाउस न. 2 की पहली इकाई फरवरी 1986 में शुरु कर दी गई थी। दूसरी इकाई के निकट भविष्य में चालू होने का कार्यक्रम है। राजस्थान व गुजरात राज्यो में8 8 लाख हैक्टेयर भूमि में सिचाई की क्षमता प्राप्त हो गई है। राजस्थान व गुजरात राज्यो को 1:2 अनुपात में सिचाई का पानी मिलेगा।

सिचाई व विद्युत की सुविधा मिलने से इस आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र का कृषिगत व औद्योगिक विकास होगा जिससे लोगो के जनजीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हो जायगा।

सिचाई की वृहद परियोजनाए (Major Irrigation Project &)

इन्दिरा गाधी नहर परियोजना का मानचित्र—

1. इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना (Indira Gandhi Canal Project) का विवरण—यह पहले राजस्थान नहर परियोजना कहलाती थी। इस परियोजना के पूरा हो जाने पर यह विश्व की सबसे लम्बी सिंचाई प्रणालियों (irrigation systems) में से एक मानी जायेगी। यह थार के रेगिस्तान के बड़े भू भाग को हरा-भरा बना देगी तथा गंगानगर, बीकानेर व जैसलमेर जिलों में पूर्ण विकास होने पर चरण I व II मैंसमतल नहरी प्रवाह क्षेत्र तथा लिफ्ट नहरी प्रवाह क्षेत्र को मिलाकर 13 88 अथवा लगभग 14 लाख हैक्टर में सिंचाई करेगी तथा पास के क्षेत्रों के लिए पेय जल सप्लाई करेगी।

प्रथम चरण मे 5·73 लाख हैक्टेयर में तथा द्वितीय चरण में 8 10 लाख हैक्टेयर मे सिंचाई की क्षमता प्राप्त करने के लक्ष्य रखे गये हैं।[1]

प्रथम चरण Stage I) के अन्तगत 204 किलोमीटर राजस्थान फीडर (जो पंजाब मे व्यास व सतलज नदियो के सगम पर हरीके बांध से प्रारम्भ होनी है 189 किलोमीटर लम्बी राजस्थान मुख्य नहर तथा 3075 किलोमीटर मे वितरिकाओ के निर्माण-कार्य रख गये थे जो पूरा होने मे आ गये हैं। द्वितीय चरण (Stage II) मे 256 किलोमीटर लम्बी मुख्य नहर (189 किलोमीटर से 445 किलोमीटर तक) तथा 4800 किलोमीटर मे वितरिकाओ के निर्माण काय रखे गये हैं। 1 जनवरी 1987 को मुख्य नहर के अन्तिम छोर तक पानी पहुँचाया गया था। हिमालय की गगनचुम्बी बर्फीली चट्टानो स सैकडों मील दूर प्यासे और तपते हुए रेगिस्तान को जीवनदायी जल का पहुँचाना एक भगीरथ प्रयास की सुखद परिणति है। इसके साथ ही वितरिकाओं का निर्माण कार्य भी कराया गया है। मुख्य नहर पर मिट्टी की खुदाई का काम पूरा हो चुका है तथा वितरक-प्रणालियो पर भी आशिक रूप से मिट्टी की खुदाई का काम किया गया है। इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना की कुल सम्भावित लागत 1186 करोड रुपये आकी गई है जिनमे प्रथम चरण की लागत का अनुमान 255 करोड रुपये व द्वितीय चरण का 931 करोड रुपये है।

जैसलमेर जिले को समृद्ध बनाने में लाठी सिरोज के क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान होगा। यहाँ पानी पहुँचते ही खेती होने लगेगी। वैसे भी यहा मामूली बरसात से सीवण घास पैदा होती है जो पशुओं के लिए पौष्टिक मानी जाती है। मोहनगढ से आगे राजस्थान नहर के अन्तिम छोर से लीलवा शाखा निकाली जा रही है। यह 90 किलोमीटर लम्बी होगी और लाठी सिरोज क्षेत्र मे सिंचाई करेगी। ताजा सूचना के अनुसार राजस्थान नहर का पानी सदियो से प्यासे पश्चिमी राजस्थान के मरुस्थलीय जैसलमर जिले मे मोहनगढ के करीब 18 किलोमीटर आगे तक पहुँच गया है। पानी के अभाव म वीरान पडे हुए मोहनगढ क्षेत्र के निवासियो एव पशु-

---

1 Indira Gandhi Nahar Project, February 1988, (IGN बोर्ड का प्रकाशन)

पक्षियों को पहली बार मीठा पेयजल मिला है तथा शुष्क इलाके को सिंचाई की सुविधा मिली है। अब परियोजना को बाड़मेर में गडरा रोड तक बनाने की स्वीकृति मिल गयी है।

इन्दिरा गांधी नहर परियोजना से राज्य में गेहूँ कपास व तिलहन की पैदावार काफी बढ़ेगी। नये उद्योग, नये नगर, नई बस्तियाँ ये सब इस नहर के ही वरदान होंगे। नहरी क्षेत्र में लाखों व्यक्तियों को बसाने का कार्यक्रम है। इसके लिए 'मास्टर प्लान' पर कार्य किया जा रहा है। इस परियोजना की यह विशेषता है कि इससे पहली बार नई भूमि पर खेती की जा सकेगी। इससे रावी-व्यास के जल का ज्यादा गहरा उपयोग हो सकेगा और कमाण्ड क्षेत्र में निरन्तर पड़ने वाले अकाल के कारण अकाल राहत-व्यय में काफी कमी की जा सकेगी। इसमें विश्व बैंक की सहायता से भूमि का विकास-कार्य किया जा रहा है। इसलिए इस परियोजना का महत्व काफी बढ़ गया है। इस परियोजना के पूरा होने पर सम्पन्न दश लाभान्वित होगा।

जैसे कि पहले बताया जा चुका है एक अतिरिक्त गंगानहर (लीलवा शाखा) के निर्माण का काम चल रहा है। मुख्य नहर के आखिरी छोर से एक और बड़ी शाखा दोघा भी निकाली जायेगी जिसका निर्माण-कार्य भी हाथ में लिया जा रहा है। इन दोनों शाखाओं से जैसलमेर का क्षेत्र कुछ ही वर्षों में चमन हो जायेगा।

योजना के कार्यक्रमों को पूरा करने में सीमेन्ट व कोयले का अभाव बाधा डाल रहे हैं। इस नहर से लिफ्ट सिंचाई (जलोत्थान) स्कीम को कार्यान्वित करने की भी योजना बनायी गई है ताकि राज्य के पश्चिमी भाग को सिंचाई के लिए जल मिल सके। मुख्य नहर से 6 लिफ्ट नहरें निकाली गई हैं। इन लिफ्ट नहरों में पानी को ऊपर चढ़ाया जाता है। एक बार के लिफ्ट में पानी को 60 मीटर ऊपर चढ़ा सकते हैं। जोधपुर को लिफ्ट नहर योजना से 1992 में पानी मिलेगा। 6 लिफ्ट नहरों के नाम इस प्रकार हैं

(1) बीकानेर-लूणकरणसर लिफ्ट नहर—इससे बीकानेर शहर को पानी मिलेगा।

(2) गजनेर लिफ्ट नहर

(3) सहवा लिफ्ट-नहर–इससे कई गाँवों के अलावा सरदार शहर व तारानगर को पानी मिलेगा।

(4) कोलायत लिफ्ट नहर

(5) फलौदी लिफ्ट नहर

(6) पोखरन लिफ्ट नहर

इन्दिरा गांधी नहर परियोजना से थार के बड़े क्षेत्र को सिंचाई का लाभ मिलेगा तथा फलों के पेड़ों का विस्तार किया जा सकेगा। राज्य सरकार चाहती है कि इस परियोजना को केन्द्र पूरा करे क्योंकि इसके लिए भारी मात्रा में वित्तीय व्यय की आवश्यकता है। अतः सतलज-यमुना लिंक (SYL) की भाँति इसका वित्तीय भार भी केन्द्र को वहन करना चाहिए। इससे राज्य के आर्थिक विकास में विभिन्न

प्रकार से मदद मिलेगी जैसे सिंचित क्षेत्र मे वृद्धि, कृषिगत उपज मे वृद्धि, बिजली के उत्पादन मे वृद्धि, पेयजल की सप्लाई में वृद्धि, रेगिस्तान के प्रसार पर रोक, मछली-पालन को प्रोत्साहन, परिवहन का विकास, अनाज की मण्डियो का निर्माण, पशु-पालन का विकास, औद्योगिक विकास, पर्यटन विकास, आदि ।

2 **अन्य वृहद् सिंचाई की परियोजनाएं**—जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि इस समय सिंचाई की निम्न 8 बडी परियोजनाओ पर भी काम किया जा रहा है : गुडगांव नहर ओखला जलाशय, नर्मदा, जाखम (जनजाति उपयोजना के अन्तर्गत), चौन बांध, बीसलपुर (जिला टोंक), लोहर फीडर तथा सिंध पुल ।

जवाई परियोजना—यह सिंचाई की मध्यम दर्जे की परियोजना है । जवाई नदी मारवाड की प्रसिद्ध लूनी नदी की सहायक है । यह जोधपुर डिवीजन के दक्षिण में बहती है । जवाई बाध पश्चिमी रेल्वे की दिल्ली-अहमदाबाद रेल लाइन पर रेल्वे स्टेशन से कोई तीन किलोमीटर दूर अरावली पर्वत की गोद मे स्थित है । इसका निर्माण-कार्य मई 1946 मे जोधपुर रियासत के तत्कालीन महाराजा उम्मेद-सिंह ने करवा । था जो 1951-52 मे पूरा हो गया था । इस परियोजना पर 2 6 करोड रु की लागत आई थी। जवाई बाध को सिरोही, पाली, जालोर व जोधपुर जिलो की प्याऊ बतलाया गया है, क्योंकि इससे चार जिलों की प्यास बुझाई जाती है । इस बाध से पाली जिले के 33 गावो तथा जालोर जिले के 24 गावों की जमीन सींची जाती है । पाली जिले में 20 हजार हैक्टेयर भूमि तथा जालोर जिले में 15 हजार हैक्टेयर भूमि मे सिंचाई की जाती है ।

जवाई बाध पश्चिमी राजस्थान में सिंचाई का सबसे बडा स्रोत है । इससे अभी तक सिरोही जिले को पूरा लाभ नहीं मिल पाया है । सरकार ने जवाई कमांड एरिया की नहरों के आधुनिकीकरण की एक योजना अपने हाथ मे ली है जिसके अन्तर्गत नहरो को पक्का करवाने, उनकी क्षमता को बढाने आदि से सम्बन्धित कार्य किये जायेंगे । जवाई परियोजना के पानी का अधिकतम उपयोग हो सकेगा ।

सिंचाई की मध्यम परियोजनाएं जिन पर काम जारी है—सिंचाई की निम्न मध्यम परियोजनाओ पर काम जारी है जिनके पूरा होने पर 74 हजार हैक्टेयर भूमि में सिंचाई की सम्भावना उत्पन्न हो जायगी ।

इनमें तीन परियोजनाएं बंगन डाइवर्जन, बस्सी तथा गोमुन्डा चित्तौडगढ जिले को लाभ पहुंचायेंगी : दो परियोजनाएँ : मेजा फीडर व कोठारी भीलवाडा जिले को, भीमसागर व हरीशचन्द्र सागर झालावाड जिले को, सोम-कामला-अम्बा डूगरपुर जिले को, सोम-कागदार उदयपुर जिले को तथा पचाना सवाई माधोपुर जिले को लाभ पहुंचायेंगी ।

सिंचाई की मध्यम परियोजनाओ के लिए राजस्थान को अन्तराष्ट्रीय विकास के लिए सयुक्त राज्य एजेन्सी (USAID) से कर्ज प्राप्त हुआ है । भविष्य में सिंचाई-

व्यवस्था का आधुनिकीकरण भी किया जायेगा। राज्य में घग्घर कट्रोल व भरतपुर ड्रेन वर्क्स व बाढ़ नियन्त्रण के सम्बन्ध में कार्य किया गया है।

राज्य में सिंचाई की सुविधाओं के विस्तार पर वर्ष 1989-90 में 159·90 करोड़ रुपये का व्यय प्रस्तावित है जो वर्ष की कुल योजना का लगभग 20 प्रतिशत है। इसमें 63 करोड़ रुपये इन्दिरा गांधी नहर परियोजना तथा 19 करोड़ रुपये माही बजाजसागर परियोजना के शामिल हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि राज्य में वृहद् व मध्यम सिंचाई की नई परियोजनाओं के लिए विकास की काफी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं जिनका उपयोग करके राज्य की कृषिगत अर्थव्यवस्था को अधिक स्थिरता व सबलता प्रदान की जा सकती है।

(इ) राजस्थान में फसलों का ढांचा (Cropping Pattern in Rajasthan)– राजस्थान में खाद्यान्नों की फसलों में अनाज में बाजरा, ज्वार, गेहूँ, मक्का, जौ, मोटे अनाज व चावल एवं दालों में चना, तुर, अन्य रबी की दालें व अन्य खरीफ की दालें शामिल हैं एवं गैर-खाद्यान्नों की फसलों में तिलहन में राई व सरसों, अलसी, मूंगफली व अरण्डी एवं अन्य में कपास, तम्बाकू, सन, गन्ना, हल्दी, धनिया, मिर्च, आलू, अदरक, अफीम व ग्वार आदि शामिल हैं।

1986-87 में कुल कृषित क्षेत्रफल 1·76 करोड़ हैक्टेयर था। इसका विभिन्न फसलों के अनुसार वितरण नीचे दिया जाता है :[1]

	(लाख हैक्टेयर)	कुल कृषित क्षेत्रफल का प्रतिशत
1. अनाज	95 7	54·2
2. दालें	32·1	18·2
3. तिलहन	15 0	8·5

1. 10 years of Agricultural Statistics Rajasthan, 1977-78 to 1986-87, *July*, 1988, (DES *Jaipur*), pp 11–15—आगे फसलों के उत्पादन के आंकड़े भी ज्यादातर इसी पर आधारित हैं।

4 कपास	3 6	2 0
5 अन्य	30 0	17 0
कुल	176 4	100 0 (लगभग)

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1986 87 में 72 4 प्रतिशत क्षेत्रफल खाद्यान्नों की फसलों (अनाज व दालों के अन्तर्गत था और शेष 27 6 प्रतिशत गैर खाद्यान्नों की फसलों के अन्तर्गत था। राज्य में कुल कृषित क्षेत्र के आधे से कुछ अधिक भाग पर अनाज बोया जाता है और $\frac{1}{5}$ भाग पर दालें बोयी जाती हैं। स्मरण रहे कि राज्य के लगभग $\frac{1}{4}$ क्षेत्रफल मे अकेले बाजरे की खेती की जाती है। राज्य में तिलहन गन्ना व कपास की पैदावार होने से इनसे सम्बन्धित उद्योगों (तिल उद्योग चीनी व गुड उद्योग सूती वस्त्र उद्योग) का विकास किया जा सकता है। मसालों में लाल मिर्च, जीरा धनिया तथा हल्दी के उत्पादन का भी महत्व है। इनके उत्पादन से कृषकों को अच्छी आय होती है। राज्य में ग्वार, तम्बाकू अफीम, आदि की भी पैदावार होती है। ग्वार के अन्तर्गत कुल क्षेत्र का 1/8 भाग पाया जाता है।

1952 5 में खाद्यान्नों के अन्तर्गत कुल कृषित क्षेत्रफल का लगभग 91 6 प्रतिशत तथा गैर-खाद्यान्नों में 8 4 प्रतिशत था। 1986 87 में ये प्रतिशत क्रमश लगभग 72 व 28 हो गये थे। इस प्रकार 1952 53 से 1986 87 के 34 वर्षों की अवधि में फसलों के ढाचे में काफी परिवर्तन हुआ है। खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्रफल का प्रतिशत घटा है और गैर खाद्यान्नों में बढा है।

(ई) राजस्थान में कृषिगत उत्पादन—राजस्थान में फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में ज्यादा महत्वपूर्ण स्थान बाजरा गेहूँ मक्का जो ज्वार दाल तिल मूँगफली व कपास का है। लेकिन क्षेत्रफल म प्रति वर्ष मौसमी परिवर्तनों के कारण काफी उतार चढाव आते रहते हैं। राजस्थान में प्रति हैक्टेयर उपज बहुत कम है। प्रमुख फसलों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है

1 गेहूँ—राजस्थान गेहूँ का उत्पादन करने की दृष्टि से भारत म पाँचवा सबसे बडा राज्य है विशेष रूप म गंगानगर भरतपुर कोटा अलवर व चित्तौडगढ जिलों मे गेहूँ की खेती की जाती है। 1986 87 मे राज्य मे लगभग 10 5% कृषित भूमि पर गेहूँ बोया गया था और अनाज के कुल उत्पादन का लगभग 58 2% गेहूँ था। गेहूँ रबी की फसल है। 1986 87 मे गेहूँ का उत्पादन 34 लाख टन हुआ जबकि पिछले वर्ष 1985 86 मे 39 2 लाख टन हुआ था जो अब तक का सर्वाधिक

उत्पादन था। गेहूँ का प्रति हैक्टेयर उत्पादन 1986-87 मे 1845 किलोग्राम रहा जो पिछले वर्ष से कम था। राज्य मे गेहूँ की सोना-कल्याण, मैक्सिकन सोनेरा, कोहीनूर आदि विकसित किस्मे बोयी जाती है जो कम सिंचाई के क्षेत्रों मे भी काफी फसल देती है।

2. चना—उत्तर-प्रदेश के बाद चना उत्पादन करने मे राजस्थान का नम्बर आता है। इसके प्रमुख जिले गगानगर, अलवर, भरतपुर, जयपुर व सवाई माधोपुर हैं। राज्य का $\frac{3}{4}$ चना इन्ही जिलो मे उत्पन्न किया जाता है। 1986-87 मे चने का उत्पादन 7 6 लाख टन हुआ था जबकि इसके पिछले वर्ष 1985-86 मे 16 2 लाख टन हुआ था जो सर्वाधिक था। 1986-87 मे राज्य की 8% कृषित भूमि पर चना बोया गया था तथा कुल दालो के उत्पादन मे इसका अश 87% रहा था।

3 बाजरा—बाजरे के उत्पादन मे राजस्थान का भारत में प्रथम स्थान आता हैं। देश में कुल बाजरे की उपज का 2.% ($\frac{1}{8}$ अश) राजस्थान में उत्पन्न होता है। बाडमेर, जालौर, जोधपुर जयपुर व नागौर जिलो में राज्य का अधिकाश बाजरा उत्पन्न होता है। राज्य मे बाजरे का उत्पादन बहुत घटता बढता रहता है। 1986-87 मे बाजरे का उत्पादन 10 1 लाख टन हुआ था जबकि 1983-84 मे 24 5 लाख टन हुआ था जो सर्वाधिक था। यह खरीफ की फसल है। 1986-87 मे कुल कृषित क्षेत्रफल के 30% भाग मे बाजरा बोया गया था तथा अनाजो की कुल पैदावार मे इसका अश 17 4% रहा था। बाजरे की प्रति हैक्टेयर उपज 1986-87 में 192 किलोग्राम रही जबकि 1983-84 मे 491 किलोग्राम रही थी। इस प्रकार इसमें काफी उतार-चढाव आते रहते है।

4 जौ—उत्तर प्रदेश के बाद राजस्थान का स्थान जौ उत्पन्न करने वाले राज्यो मे आता है। देश का चौथाया जौ राजस्थान मे पैदा होता है। यह जयपुर, उदयपुर, अलवर, टोक व भीलवाडा मे उत्पन्न होता है। आजकल नई किस्मो का प्रचलन भी हो गया है जैसे ज्योति, आर एस–6 आदि। 1986–87 मे जौ का उत्पादन 4·1 लाख टन हुआ जबकि 1977–78 मे 6·6 लाख टन हुआ था जो सर्वाधिक था।

5 मक्का—देश मे कुल मक्का की पैदावार का $\frac{1}{8}$ अश राजस्थान मे होता है। यह उदपुर, चितौडगढ, भीलवाडा व बाँसवाडा मे पैदा की जाती है। 1986-87 मे मक्के का उत्पादन 6·5 लाख टन हुआ जबकि 1983–84 में 12 3 लाख टन हुआ जो सर्वाधिक था।

6. सरसो, राई व तिल—राज्य में सरसो व राई का उत्पादन उत्तर प्रदेश के बाद सबसे ज्यादा होता है। पहले सरसो अलवर, भरतपुर, जयपुर तथा श्री गगानगर जिलो में पैदा होती थी, लेकिन अब कृषि विस्तार कार्यक्रमो के फलस्वरूप यह

जालौर, सिरोही, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, कोटा व बूंदी जिलों में भी होने लगी है। 1986–87 में सरसों व राई का उत्पादन 6·5 लाख टन हुआ जबकि 1984–85 में 8·7 लाख टन हुआ जो सर्वाधिक था। तिल के उत्पादन में राज्य का स्थान उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के बाद आता है। पाली जिले में भी काफी तिल होता है। 1986–87 में तिल का उत्पादन 27 हजार टन हुआ जबकि 1984–85 में 73 हजार टन रहा था जो सर्वाधिक था। राज्य में अलसी, अरण्डी, तारामीरा, सोयाबीन आदि का भी उत्पादन होता है। 1986–87 में सोयाबीन का उत्पादन 39,214 टन हुआ था जो पहले से अधिक था।

खाद्यान्नों का उत्पादन—राजस्थान में खाद्यान्नों के उत्पादन में भारी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। राज्य में 1950-51 में खाद्यान्नों का उत्पादन 30 लाख टन हुआ था जो बढ़कर 1960–61 में 45 5 लाख टन, तथा 1965–66 में घटकर 38.4 लाख टन पर आ गया था। 1970–71 में यह 88 4 लाख टन तक पहुँच गया था जो 1974–75 में घटकर 49·8 लाख टन पर आ गया। उसके बाद के वर्षों में भी उत्पादन में उतार-चढ़ाव आते रहे। 1983–84 में राजस्थान में खाद्यान्नों का उत्पादन पहली बार एक करोड़ टन को पार कर गया। उसके बाद के वर्षों की स्थिति निम्न तालिका में दर्शायी गयी है।

1983–84 से 1988–89 तक खाद्यान्नों का उत्पादन[1]

वर्ष	(लाख टनों में)
1983–84	100·8
1984–85	67·9
1985–86	81 3
1986–87	67 9
1987–88	48·0
1988–89	100 8

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1983-84 में खाद्यान्नों का उत्पादन पहली बार 1 करोड़ टन की सीमा को पार कर गया जो बाद में इससे नीचे घूमता रहा और 1987-88 के अभूतपूर्व सूखे व अकाल के कारण 48 लाख टन पर आ गया। लेकिन 1988-89 में इसके पुन 1 करोड़ टन के समीप रहने की आशा है। इस प्रकार एक वर्ष में खाद्यान्नों के उत्पादन का स्तर पुनः दुगना होना एक असामान्य स्थिति का परिचायक है।

1. Econom c Survey 1988–89, p. S–19, & Raj Budget Study 1989–90, p. 74

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि राजस्थान में खाद्यान्नों के उत्पादन में स्थिरता लाना बहुत आवश्यक है और इसके लिए सिंचाई का विस्तार किया जाना चाहिए।

नीचे राज्य में कृषिगत उत्पादन के सूचकांक दिये जाते हैं[1] —

कृषिगत उत्पादन के सूचकांक (1979-80 से 1981-82 = 100)

वर्ष	खाद्यान्न फसलें	अखाद्यान्न फसलें	समस्त वस्तुएं
1980-81	102·1	91·6	100·1
1985-86	132·2	163·0	138·0
1986-87 (अन्तिम)	102 9	172·5	116·0

तालिका से स्पष्ट होता है कि 1979-80 से 1981-82 तक के त्रिवर्षीय औसत = 100 की तुलना में 1985-86 में सभी फसलों का उत्पादन लगभग 38% बढ़ा खाद्यान्न फसलों की तुलना में अखाद्यान्न फसलों का उत्पादन अधिक बढ़ा है।

राज्य में विभिन्न फसलों के क्षेत्रफल, उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि की दरें[2]

राजस्थान में 1967-68 से 1975-76 तथा 1976-7n से 1984-85 की अवधियों में कृषिगत विकास की चक्रवृद्धि दरें इस प्रकार रहीं :

अवधि I : 1967-68 से 1975-76

अवधि II : 1976-77 से 1984-85

	क्षेत्रफल		उत्पादकता		उत्पादन	
	I	II	I	II	I	II
(i) अनाज	(–)0 15	1·4	2 6	3·1	2 4	4·6
(ii) सभी दालें	2·8	(–)1·9	(–)0 5	(–)1 3	2·3	(–)3·1
(iii) सभी तिलहन	0 9	7 2	7·5	7 2	8·5	14 9

1. 10 Years of Agricultural Statistics, Rajasthan, DES, Jaipur, pp. 37-38.
2. आय-व्ययक अध्ययन, 1986-87, पृष्ठ 107 (दशमलव के बाद एक स्थान तक)

(iv) गन्ना	5 4	(–)6·5	17·6	(–)0·05	24·1	(–)6·6
(v) कपास	2·9	1·5	7·2	1·0	10·4	2 5

तालिका से पता चलता है कि अनाज के सम्बन्ध में द्वितीय अवधि में क्षेत्रफल, उत्पादन व उत्पादकता में पहली अवधि की तुलना में अधिक तेज गति से वृद्धि हुई है। दालों में क्षेत्रफल, उत्पादन व उत्पादकता तीनों दृष्टियों से द्वितीय अवधि प्रथम अवधि की तुलना में निकृष्ट रही। द्वितीय अवधि में यह ऋणात्मक रही। सभी तिलहनों में उत्पादन की वृद्धि दर पहले से तेज हुई हैं। गन्ने की स्थिति भी क्षेत्रफल, उत्पादन व उत्पादकता सभी दृष्टियों से प्रथम अवधि की तुलना में बिगड़ी है और विकास की वार्षिक दरें ऋणात्मक रही हैं। कपास में भी द्वितीय अवधि प्रथम अवधि की तुलना में घटिया रही है।

राजस्थान में खाद्यान्नों के विकास व सिंचाई की दृष्टि से भारत के संदर्भ में स्थिति[1]—

यहाँ भारतीय संदर्भ में राजस्थान की खाद्यान्नों में विकास की दर (क्षेत्रफल, उत्पादन व प्रति हैक्टर उपज) तथा सकल सिंचित क्षेत्रफल सकल कृषित क्षेत्रफल के प्रतिशत के रूप में दर्शाये गये हैं। अवधि 1979-80 से 1985-86 तक की ली गई है (त्रिवर्षीय औसत, समाप्त होने वाले वर्ष के आधार पर अन्तिम वर्ष जैसे 1979-80 एवं 1985-86 लेने पर)

	खाद्यान्नों में विकास की दर 1979-80 से 1985-86 तक (त्रिवर्षीय औसत लेने पर समाप्त होने वाले वर्ष पर)			सकल सिंचित क्षेत्रफल सकल कृषित क्षेत्रफल के प्रतिशत के रूप में	
	क्षेत्रफल	उत्पादन	प्रति हैक्टेयर उपज (Yield)	वर्ष अंत 1979-80 (त्रिवर्षीय औसत)	वर्ष अंत 1983-84 (त्रिवर्षीय औसत)
राजस्थान	0 67	4 35	3·66	21·1	21·2
समस्त भारत	0 14	3·35	3·21	27 8	29·7

1. Seventh Five Year Plan, Mid-Term Appraisal, 1988, p. 97.

इस प्रकार खाद्यान्नों के सम्बन्ध में विकास की दर राजस्थान में समस्त भारत की तुलना में 1979-80 से 1985-86 की अवधि में बेहतर रही है। राज्य कुल सिंचित क्षेत्रफल कुल कृषित क्षेत्रफल का 1983-84 मे 21% रहा जबकि भारत मे यह 30% के समीप पहुँच गया था।

(ड) कृषिगत विकास की नयी नीति का उपयोग अथवा राजस्थान मे हरित-क्रांति—अन्य राज्यो की भाँति राजस्थान मे भी हरित-क्रांति का प्रारम्भ 1965-66 से हुआ था। इसके अन्तर्गत चुने हुए क्षेत्रो मे गहन कृषि विकास के कार्यक्रम अपनाए गए है। सकर-बाजरा, ज्वार, मक्का एवं ताइचुग धान व मैक्सिकन गेहूँ के अन्तर्गत नया क्षेत्र लाया गया है। सवाई माधोपुर, टोंक व बूँदी जिलो मे सघन कृषि कार्यक्रम लागू किया गया है। राज्य मे किसानो ने सकर बाजरा व मैक्सिकन गेहूँ का उपयोग किया है। अधिक उपज देने वाली किस्मो के अन्तर्गत 1985-86 मे 27 4 लाख हैक्टेयर भूमि (खरीफ+रबी) आ चुकी थी। 1987-88 मे यह थोडी घट गई थी। अधिक उपज देने वाली किस्मो के अन्तर्गत व सुधरी हुई किस्मो अन्तर्गत बीजो का वितरण किया गया है। रासायनिक उर्वरको का वितरण 1987-88 मे 214 हजार टन हुआ जो बढकर 1988-89 मे 301 हजार टन हो जायगा।

राज्य के कृषि विभाग अनुसधान सगठन ने आर. एस. 31-1 गेहूँ निकाला है जो सूखे का मुकाबला कर सकता है। इसने लालबहादुर नामक गेहूँ के बीज की एक ट्रिपिल ड्वार्फ किस्म भी पैदा की है। दुर्गापुर मे जौ की एक नयी ड्वार्फ किस्म उत्पन्न की गयी है। बारानी क्षेत्रो मे बोने के लिए आर. एफ 6 नामक जौ का बीज तैयार किया गया है।

भूतकाल मे कृषि पुनर्वित्त व विकास निगम (ARDC) ने राज्य मे लघु सिंचाई कार्यक्रमो के लिए वित्तीय व्यवस्था की है। निगम ने नये कुओ के निर्माण, पुराने कुओ को गहरा करने, पम्प-सैट स्थापित करने तथा अन्य लघु सिंचाई कार्यक्रमो मे मदद पहुँचायी है। अब यह कार्य नाबार्ड के द्वारा किया जाता है।

सहकारी क्षेत्र में वृद्धि[1]—राज्य मे अब तक 99% ग्राम तथा 87% कृषक परिवार सहकारिता के क्षेत्र मे आ चुके हैं। वर्ष 1989-90 मे 150 करोड रु के अल्पकालीन, 8 करोड रु के मध्यमकालीन तथा 32 50 करोड रु के दीर्घकालीन ऋण वितरित किये जाने की योजना है।

कृषि उद्योग निगम (Agro-Industries Corporation)

अगस्त, 1969 मे केन्द्रीय व राज्य सरकार की साझेदारी मे एक कृषि-उद्योग-निगम की स्थापना की गयी थी। यह निम्न कार्यों में सलग्न रहा है: कृषिगत औजारो

1. बजट-भाषण 1989-90, पृ 16

का निर्माण करना, शहरी रिफ्यूज को प्रोसेस करना, बेरोजगार टैक्नोक्रेटो को प्रशिक्षण प्रदान करना ताकि वे स्वरोजगार के अन्तर्गत कृषि-सेवा केन्द्र स्थापित कर सकें। इसी योजना मे निगम के कार्य बढ़ाये गये हैं।

लघु व सीमान्त कृषकों के लिए कार्यक्रम

भूतकाल मे भारत सरकार ने लघु कृषकों सीमांत कृषकों और भूमिहीन श्रमिकों के लिये मार्गदर्शी परियोजनाएँ (pilot projects) स्वीकृत की हैं। राजस्थान में लघु कृषकों के लिए भरतपुर, उदयपुर, व अलवर में तीन परियोजनाएँ चालू की गई हैं। सीमांत कृषकों व खेतिहर मजदूरों के लिए अजमेर व भीलवाड़ा जिलों मे कार्य किया गया है। प्रत्येक जिले मे लघु कृषक-विकास एजेन्सी को 1·50 करोड रुपये के अनुदान दिये गये हैं। सीमांत कृषकों व भूमिहीन श्रमिकों के लिए प्रत्येक जिले में व्यय का प्रावधान एक करोड रुपए रखा गया है। अब यह कार्यक्रम एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) मे मिला दिया गया है। इस कार्यक्रम के माध्यम से निर्धनता की रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वाले परिवारो को ऋण व अनुदान देकर लाभ पहुँचाया जाता है।

क्षेत्रीय व अन्य विकास-कार्यक्रम

(अ) कमाण्ड क्षेत्र विकास (Command Area Development)—राज्य सरकार ने पाँचवी योजना में स्वीकृत कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम शामिल किया था। वैसे इस कार्यक्रम पर चतुर्थ योजना की अवधि में भी कुछ सीमा तक बल दिया गया था। इसके अन्तर्गत इन्दिरा गांधी नहर परियोजना का क्षेत्रीय विकास-कार्यक्रम तथा चम्बल कमाण्ड क्षेत्र का विकास-कार्यक्रम शामिल किये गये हैं। इनका विवरण नीचे दिया जाता है:

(i) इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र विकास-कार्यक्रम—इसमें निम्न प्रकार के कार्यक्रम आते हैं जो रेगिस्तानी क्षेत्रो में जल का उपयोग करने के लिए आवश्यक है—

(अ) भूमि को समतल करना;

(आ) पानी की नालियो को पक्का करना,

(इ) सड़क, शिक्षा, मण्डियो का विकास, ग्रामीण जल सप्लाई, कृषि व पशु-पालन। इन कार्यों को संचालित करने में विश्व बैंक की सहायक संस्था अन्तर्राष्ट्रीय विकास एसोसियेशन से मदद ली गई है।

(ii) चम्बल कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम—यहाँ पर कार्य 1974-75 में चालू किया गया था। इस क्षेत्र के विकास-कार्यक्रम इन्दिरा गांधी क्षेत्र के विकास-कार्यक्रम से थोड़े भिन्न हैं, क्योंकि यह एक पहले से बसा हुआ इलाका था, जहाँ लम्बी अवधि से रैयतवारी प्रशासन चला आ रहा था। सामाजिक सेवाओं का कुछ सीमा तक विकास हो चुका था। अतः इस क्षेत्र में जल का अधिकतम उपयोग करने के

लिए उचित जल की निकास प्रणाली (drainage system) का विकास किया जाना चाहिए तथा जगली घास पात को उखाडने की समस्या का हल किया जाना चाहिए। अन्य कार्यक्रमों में 'वृक्षारोपण, कृषि के कच्चे माल पर आधारित उद्योगों के विकास, प्रोसेसिंग उद्योग ग्रामीण गोदाम व ग्रामीण भवन निर्माण पर जोर दिया जाना चाहिए। इसके लिए भी विश्व बैंक से सहायता ली गई है। चम्बल कमाण्ड क्षेत्र के कार्यक्रम की अवधि जून 1982 में समाप्त हो गई थी लेकिन इसे छठी योजनावधि में जारी रखा गया था।

कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम विश्व बैंक व भारत सरकार की मदद से क्षेत्र विकास-कमिश्नरों की देख-रेख में किया जाता है। इससे इन इलाको के आर्थिक विकास में काफी मदद मिलती है। गग नहर प्रणाली व उत्तरी पश्चिमी भाखडा नहर प्रणाली में भी कमाड क्षेत्र विकास-कार्यक्रम लागू किया गया है।

(आ) राजस्थान में सूखा-सम्भाव्य क्षेत्रफल कार्यक्रम एव मरु विकास कार्यक्रम (Drought Prone Area Programme (DPAP) and Desert Development Programme (DDP) in Rajasthan)–1974-79 की अवधि में DPAP कार्यक्रम के अन्तर्गत जोधपुर व नागौर जिले (विश्व बैंक सहायता कार्यक्रम में), तथा पाली जालोर, बाडमेर, जैसलमेर, बीकानेर, चूरू, बांसवाडा व डूगरपुर जिले एव राज्य की छ तहसीले (उदयपुर जिले की खेरवाडा भीम व देवगढ, अजमेर जिले की ब्यावर तथा झुझुनूँ जिले की चिडावा झुझुनूँ तहसीले) शामिल की गई है। इनमे बासवाडा डूगरपुर जनजाति क्षेत्र थे। छठी योजना (1980-85) की अवधि म ये कार्यक्रम डूगरपुर व बासवाडा के जनजाति जिलो तथा उदयपुर की भीम, देवगढ तथा खेरवाडा तहसीलो एव अजमेर जिले की ब्यावर तहसील तक सीमित कर दिये गये। सातवी योजना मे इनमे कुल 30 खण्ड शामिल हैं। DPAP के अन्तर्गत भूसरक्षण व वृक्षारोपण पर अधिक बल दिया जाता है। DPAP के जिलो के लिए उपयुक्त कार्यक्रम स्वीकृत जिला सूखा प्रूफिंग योजनाओ मे शामिल माने जाते हैं। इनके विकास से सूखे से प्रभावित होने वाले क्षेत्रो को लाभ पहुँचता है।

1977-78 मे राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिशो के फलस्वरूप इसे सुदृढ करने के लिए मरु विकास कार्यक्रम (DDP) का श्रीगणेश किया गया। DDP रेगिस्तानी का मरु जिलो के लिए होते हैं। इन क्षेत्रो मे निम्न कार्यक्रम सचालित किये जाते हैं:—मिट्टी व जल सरक्षण मरु प्रदेश मे पानी को रोकने के लिए खडीनों (Khadeens) तथा DPAP क्षेत्रों मे एनीकटो (anicuts) का निर्माण, भूतल के जल का विकास खुले कुओ व नलकूपो का विकास, वृक्षारोपण, भेड-पालन का विकास, पशु पालन व डेयरी विकास सिंचाई व विद्युत विकास आदि। DDP के अन्तगत

परिवेश सतुलन (ecological balance) के लिए भूमि, जल व पेडो के सतुलित विकास का प्रयास किया जाता है। यह कार्यक्रम राज्य के 11 मरुस्थलीय जिलों मे चलाया जा रहा है और वर्ष 1985-86 से पूर्णतया केन्द्र-प्रवर्तित योजना के अन्तर्गत आ गया है। अत: इसका सम्पूर्ण भार केन्द्र वहन करने लगा है। 1986-87 मे इस कार्यक्रम हेतु 30 करोड रु का प्रावधान था, जबकि 1987-88 के लिए इस बढाकर 40 करोड रु. कर दिया गया।

(इ) डेयरी या दुग्ध विकास (Dairy Development)—पहले बतलाया जा चुका है कि राजस्थान मे पशु-धन के विकास की काफी सम्भावनाए हैं। राज्य के 6 पूर्वी जिलो मे विश्व बैंक की सहायता से डेयरी विकास कार्यक्रम राजस्थान डेयरी विकास निगम (RDDC) की देख रेख मे चल रहे हैं, अन्य जिलो मे डेयरी विकास के कार्यक्रम सम्बन्धित विभाग की देख-रेख मे चल रहे है। 1979-80 तक जोधपुर बीकानेर, अजमेर व अलवर म चार डेयरी सयत्र काम कर रहे थे। जनवरी 1989 के अत तक डेयरी सयत्रो की सख्या 10 हो गयी थी। इनके कार्यों मे दूध एकत्र करना, उत्पादको की सहकारी समितिया बनाना, आवश्यक दुग्ध पदार्थ तैयार करना आदि आते हैं। अब तक राज्य मे 24 अवशीतन (दूध ठण्डा करने के) सयत्र (chilling plants) स्थापित किये जा चुके है।

राज्य मे दूध उत्पादक सहकारी-समितिया स्थापित की गयी हैं। दूध का दैनिक सकलन काफी बढ या गया है।

भारतीय डेयरी निगम को 6 वर्ष के लिए आपरेशन फ्लड 2 की 68 करोड रुपये की परियोजना प्रस्तुत की गई जिसको स्वीकृति मिल गई थी। इस योजना के अन्तर्गत चार नये दुग्ध सयत्र व 14 अवशीतन केन्द्र बनाने तथा औसत दुग्ध-सकलन 10 लाख लीटर प्रति दिन करने का कार्यक्रम है।

(ई) मैसिव कार्यक्रम (Massive Programme)—इस कार्यक्रम का उद्देश्य लघु एव सीमात कृषको द्वारा कृषिगत उत्पादन बढाना है। इसके अन्तर्गत प्रति पचायत समिति को 5 लाख रुपये का अनुदान दिया जाता है जिसमे लघु सिचाई पर 3 5 लाख रुपय व दलो तिलहन व मोटे अनाज के वितरण पर 0 5 लाख रुपय तथा भूमि विकास कार्यों के लिए 1 लाख रुपये नियत होते हैं। इससे लघु व सीमान्त कृषको को सिचाई के लिए अनुदान की सुविधा प्राप्त हुई हैं।

(उ) सूखी खेती, क्षारयुक्त भूमि मे सुधार व फलो का विकास—सूखी खेती कार्यक्रम के अन्तर्गत 25 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में विस्तार के माध्यम से कृषको को उन्नत विधियाँ अपनाने के लिए प्रेरित करने का लक्ष्य रखा गया है। सूखी खेती के प्रदर्शन आयोजित होने से 14 हजार कृषक लाभान्वित होंगे। क्षार युक्त व लवणीय भूमि के सुधार के लिए कार्यक्रम रखे जाते हैं। राज्य में नाबाड के सहयोग से फलों

के नए बगीचे लगाने का कार्यक्रम है इससे कमजोर वर्ग के किसानों को लाभ पहुँचाया जायगा। सब्जियों की खेती को बढ़ावा देने के लिए किसानों को मिनीकिट वितरित किये जायेंगे।

राज्य में कृषिगत विकास के सम्बन्ध में मुख्य निष्कर्ष

राजस्थान में कृषिगत विकास के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि राज्य में कृषि क्षेत्र का विस्तार हुआ है, सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ी हैं, तब कृषि-विकास की नई नीति को लागू किया गया है। राज्य में उन्नत बीज, खाद सिंचाई, कीटनाशक दवाई आदि इन्पुटों का उपयोग बढ़ाकर प्रति हैक्टयर उपज में वृद्धि की जानी चाहिए। अकाल व सूखे की स्थिति का मुकाबला करने के लिए भी सिंचाई का विस्तार किया जाना चाहिए।

कृषकों की आय बढ़ाने के लिए कृषि के साथ साथ पशु-धन के विकास पर भी समुचित रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। पहले बतलाया जा चुका है कि राजस्थान में पशु धन के विकास के लिए पर्याप्त अवसर व सुविधाएँ विद्यमान हैं। इस प्रकार राज्य हरित क्रान्ति (green revolution) के साथ-साथ श्वेत क्रान्ति (white revolution) करने की स्थिति में भी आ गया है। राज्य में ट्रैक्टरों के उपयोग के बढ़ने से कृषिगत कार्यों को पंजाब की भांति कुछ सीमा तक नया स्वरूप मिलने लगा है।

आशा है भविष्य में सिंचाई की बढ़ती हुई सुविधाओं के फलस्वरूप राज्य की कृषिगत अर्थव्यवस्था को अधिक स्थिरता प्रदान की जा सकेगी। राज्य में आधुनिक कृषि की ओर अग्रसर होने के लिए पर्याप्त अवसर उत्पन्न हो रहे हैं। विभिन्न कृषिगत साधनों की सप्लाई बढ़ाकर एवं सस्यावर्तन व भूमि-सुधार सम्पन्न करके कृषि के क्षेत्र में समुचित विकास का मार्ग प्रशस्त किया जाना चाहिए। राज्य में घटिया मिट्टी व जल-साधनों की समस्या है। सूखी खेती की विधियों का प्रयोग करके राज्य में कृषि का विकास किया जाना चाहिए। विद्वानों का मत है कि राज्य में कृषिगत अनुसंधान पर स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। दालों, तिलहन आदि का उत्पादन बढ़ाया जाना चाहिए। राज्य में चरागाहों को बढ़ाकर मरुभूमि में पशु धन का विकास किया जाना चाहिए। जोधपुर में 'काजरी' (CAZRI) (Central Arid Zone Research Institute) सूखे प्रदेशों की विभिन्न कृषिगत समस्याओं के अध्ययन में कार्यरत है। इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना के पूरा हो जाने से जैसलमेर जिले में भी कृषिगत पैदावार तेजी से बढ़ेगी। अतः राज्य का कृषिगत भविष्य उज्ज्वल बनाया जाना चाहिए।

प्रश्न

1. राजस्थान की महत्वपूर्ण सिचाई परियोजनाओ का वर्णन कीजिए।
(Raj II yr TDC, 1984 & 1987)

2. पचवर्षीय योजनाओं के दौरान राजस्थान के कृषि विकास की विवेचना कीजिए। *(Raj II yr TDC, 1988, व ऐसा ही प्रश्न 1985 मे)*

3. निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (i) इन्दिरा गांधी नहर परियोजना,
   (ii) चम्बल परियोजना,
   (iii) राजस्थान में डेयरी विकास-कार्यक्रम,
   (iv) राजस्थान मे कमाड क्षेत्र विकास कार्यक्रम,
   (v) *सूखा सभाव्य क्षेत्र विकास-कार्यक्रम तथा मरु-विकास कार्यक्रम,*
   (vi) राजस्थान मे कृषि-विकास। (Raj. II yr. TDC, 1989)

31

राजस्थान में भूमि-सुधार[1]

(Land Reforms in Rajasthan)

राज्य में भूमि-व्यवस्था का परिचय

मार्च सन् 1949 में राजस्थान के निर्माण से पूर्व इसमें कई छोटे छोटे राज्य थे जिनमें शासकों ने भूमि विभिन्न व्यक्तियों को जैसे, जागीरदारों, जमींदारों व बिस्वेदारों को दे रखी थी जो काश्तकारों से लगान वसूल करके उसका बहुत थोड़ा अंश राज्य को देते थे। राज्य के कुल 8 36 करोड़ एकड़ क्षेत्रफल में से लगभग 60 प्रतिशत भूमि ऐसे व्यक्तियों के पास थी और शेष 40 प्रतिशत खालसा भूमि के काश्तकारों का राज्य से सीधा सम्बन्ध पाया जाता था। मध्यस्थ-वर्ग की विशाल संख्या के कारण काश्तकारों की दशा बड़ी दयनीय हो गयी थी। वे काश्तकारों से लगान व लाग-बाग के रूप में काफी माल वसूल कर लेते थे।

डॉ० दूलसिंह ने जागीर क्षेत्रों की कुछ लाग-बागों अथवा उपकरों (Cesses) की सूची दी है। 29 तरह की लाग बागों में से चार भूमि/पशु धन पर आधारित हैं, तीन स्पष्टत अनिवार्य या जबरन श्रम से सम्बद्ध हैं तथा शेष बाईस सामाजिक शोषण पर आधारित हैं एव इनमें इस तरह की लाग-बागें है जैसे 'माताजी की भेंट', 'बाईजी का हाथ खर्च' व ये जन्म से मृत्यु तथा त्योहार व उत्सव आदि सभी अवसरों को शामिल करती है जिसमें जागीरदार या स्वयं कृषक भाग लेते हैं।[2]

राजस्थान में भूमि-सुधार का कार्य मध्यस्थों की शक्ति व प्रभाव विभिन्न छोटे छोटे राज्यों में प्रचलित भूमि-व्यवस्थाओं, रेवेन्यू प्रशासन की कुशल या एक-सी व्यवस्था के अभाव एव विश्वस्त भूमि रिकार्डों के अभाव के कारण और भी पचीदा

---

1 Report of the National Commission on Agriculture, 1976, pp 97-98, pp 129-130, pp 141-142.

2. Quoted in Vidya Sagar & Kanta Ahuja Rural Transformation in a Developing Economy, 1986

हो गया था। इन सब कठिनाइयों के बावजूद यहाँ पर भूमि-सुधार का कार्य काफी सफलतापूर्वक किया गया है। इस विषय में जो कानून बनाये गये हैं, वे सुदृढ़ हैं और उनमें काफी सूझ-बूझ से काम लिया गया है। लेकिन भूमि-सुधारों से सम्बन्धित कुछ सहायक काम धीमा रहा है और क्रियान्वयन की दिक्कतें व कमियाँ महसूस की गई हैं।

राजस्थान राज्य के बन जाने के बाद नये राज्य के समक्ष दो समस्याएँ थीं। एक तो मध्यस्थों को हटाना और दूसरा काश्तकारी कानून में समानता लाना जिससे काश्तकारों के हितों की रक्षा हो सके। दूसरे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए (The Rajasthan Protection of Tenants Ordinance 1949 जारी किया गया। जिसमें काश्तकारों की बेदखली से रक्षा की गयी। 1951 में सरकार ने (Rajasthan Produce Rents Regulating Act जारी किया गया जिसमें मध्यस्थों के द्वारा काश्तकारों से ली जाने वाली राशि कुल उपज की ज्यादा से ज्यादा $\frac{1}{6}$ रखी गयी। ऐसे ही उद्देश्यों के लिए Agricultural Rents Control Act 1952 पास किया गया जो बाद में रद्द करना पड़ा। लेकिन इसकी धाराएँ Rajasthan Agricultural Rent Control Act, 1954 में शामिल कर ली गयी। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि मध्यस्थ-वर्ग मालगुजारी के दुगुने से ज्यादा लगान वसूल नहीं कर सकेगा। बाद में राजस्थान काश्तकारी कानून, 1955 (Rajasthan Tenancy Act,1955) बनाया गया जो एक व्यापक कानून है। इसमें काश्तकारों की विभिन्न श्रेणियाँ रखी गयी हैं। इसमें काश्तकारों को अधिकार देने, जोतों के हस्तान्तरण व विभाजन, लगान को निश्चित करने और इसको वसूल करने के ढंग को निर्धारित करने की व्यवस्था की गयी है। इनमें उन दशाओं को बतलाया गया है जिनमें काश्तकारों को बेदखल किया जा सकता है और झगड़ों को निपटाने के लिए अदालतों की स्थापना की गयी है। बाद में इसकी कई धाराओं में संशोधन किया गया है।

राजस्थान काश्तकारी कानून 1955 के अनुसार लगान की राशि मालगुजारी या भू- राजस्व के $1\frac{1}{2}$ गुने से 3 गुने तक निर्धारित की गई (जहाँ लगान नकद दिया जाता था)। यदि भूमि की खुदकाश्त के लिए आवश्यकता हो तो काश्तकार को बेदखल किया जा सकता था, बशर्ते कि काश्तकार के पास एक निश्चित सीमा से अधिक भूमि हो। गैर पुनर्ग्रहण वाले क्षेत्रों (non-resumable areas) में काश्तकारों व उप काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार या खातेदारी अधिकार दिये जा सकते हैं। भू-स्वामी को दिया जाने वाला मुआवजा सिंचित भूमि के लगान का 20 गुना तथा असिंचित भूमि का 15 गुना निश्चित किया गया।

राजस्थान काश्तकारी कानून 1955 की कई धाराओं में संशोधन के लिए राजस्थान काश्तकारी बिल 1972 में पेश किया गया था जिसे कई वर्ष बाद पास किया गया।

जागीरदार एक मध्यस्थ होता था जो काश्तकार से कुल उपज का एक बड़ा भाग लेता था और 'बेगार' व 'लाग-बाग' ऊपर से लिया करता था। जागीर क्षेत्रों में बेदखली का डरवाला था। जागीरदार भूमि का क्रय-विक्रय तो नहीं कर सकते थे, लेकिन दीवानी और फौजदारी अधिकारों व प्रभुत्व के कारण वे प्रजा पर काफी अत्याचार करते थे। उनके द्वारा ली जाने वाली कई प्रकार की लाग-बागों का संकेत अध्याय के प्रारम्भ में दिया जा चुका है।

राज्य विधान सभा ने राजस्थान भूमि सुधार व जागीर पुनर्ग्रहण अधिनियम, 1952 (The Rajasthan Land Reform and Resumption of Jagir Act, 1951) पास कर दिया। कुछ जागीरदारों ने 'स्टे आर्डर' लाकर लगभग दो वर्ष तक इसे लागू होने से रोक दिया। तत्पश्चात् स्वर्गीय श्री नेहरू और स्वर्गीय श्री पन्त के प्रयत्नों से फैसला किया गया और जागीरदारों को मुआवजा व पुनर्वास अनुदान देने के लिए दरें निर्धारित की गयीं। मुआवजा आधार वर्ष की विशुद्ध आय (net income) का सात गुना रखा गया। यह $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर 15 समान किश्तों में चुकाना निश्चित किया गया। जिन जागीरदारों की कुल आय 5,000 रुपये से अधिक नहीं थी, उनको विशुद्ध आय के पांच से ग्यारह गुने तक पुनर्वास अनुदान देने का निश्चय किया गया। अन्य जागीरदारों को विशुद्ध आय के दुगुने से चार गुने तक पुनर्वास अनुदान देने का निश्चय किया गया।

धार्मिक जागीरों के पुनर्ग्रहण का कार्य कुछ देर से आरम्भ हुआ। 1 नवम्बर, 1959 से 5000 रुपये से ऊपर की आय वाली ऐसी जागीरों और 1 अगस्त, 1960 से 1000 रुपये से ऊपर की आय की जागीरों का पुनर्ग्रहण किया गया। 1 जुलाई 1963 से निम्नतम श्रेणी की जागीरों का भी पुनर्ग्रहण किया जा चुका है। अतः अब धार्मिक व गैर-धार्मिक सभी जागीरों के पुनर्ग्रहण का कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। पुनर्ग्रहण की प्रत्यक्ष लागत 1971 तक लगभग 51·3 करोड़ रु. आकी गयी थी। इसमें मुआवजा व पुनर्वास अनुदान, इन पर ब्याज, स्थायी वार्षिक जागीर स्थापन व पेंशन शामिल है। इनके अतिरिक्त भी राज्य को कुछ व्यय करना होगा।

2 जमींदारी व बिस्वेदारी प्रथा का अन्त—राजस्थान जमींदारी व बिस्वेदारी उन्मूलन अधिनियम 1 नवम्बर 1959 से लागू किया गया। यह प्रथा राजस्थान के लगभग 5,000 गांवों में, तथा 10 जिलों (भरतपुर, अलवर, अजमेर, गंगानगर, जयपुर, झालावाड़, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, कोटा व सीकर) में फैली हुई थी। गंगानगर जिले की कुछ विशेष समस्याएं थीं। जमींदार व बिस्वेदार भी काश्तकारों से मनमाना लगान लेते थे, वे उन्हें बेदखल कर देते थे और उनका अधिक शोषण करते थे। इस प्रथा के समाप्त होने से काश्तकार का सरकार से सीधा सम्बन्ध हो गया है।

The Rajasthan Land Reform and Acquisition of Land Owner's Estates Act, 1963 के अन्तर्गत राजस्थान में विलीन होने वाले राज्यों के शासकों की भू-सम्पत्ति लेन की व्यवस्था भी कर दी गई। इस प्रकार राजस्थान में मध्यस्थ वर्ग को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया।

राजस्थान में भूमि सुधारों का प्रभाव

हम नीचे राजस्थान में भूमि सुधारों व काश्तकारी कानून के प्रभावों का विवरण देते हैं।

भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों ने काश्तकार की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। लेकिन कानूनों को लागू करने में गम्भीर कमियां भी रह गयी हैं। राजस्थान में काश्तकारों को खातेदारी अधिकार मिलने से वे भूमि के मालिक जैसे हो गये हैं। जागीरदारों ने खुदकाश्त के अन्तर्गत कुछ भूमि रख ली, लेकिन उसकी मात्रा पहले के कुल जागीर क्षेत्र की मात्रा की तुलना में थोड़ी पायी गई है।

जागीरदारों ने बिक्री, उपहार अथवा अन्य रूपों में काफी भूमि का हस्तान्तरण किया है। ऐसा जागीर पुनर्ग्रहण अधिनियम के लागू होने से पूर्व किया गया है।

जागीरों के समाप्त करने से जागीरदारों के जीवन पर भी प्रभाव पड़ा है। मध्यम श्रेणी के ठिकाने तो ऋणग्रस्त थे। उनके ठिकानेदार कोई भी उपयोगी काम करना अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ समझते थे। इससे उनका मानसिक व नैतिक पतन हो गया था। अधिकांश जागीरदार अब खेती में लग गये हैं। इस तरह उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

राजस्थान काश्तकारी कानून, 1955 के लागू होने के समय 10 प्रतिशत काश्तकारों को खातेदारी अधिकारों के समान अधिकार प्राप्त थे लेकिन अब सभी को खातेदारी अधिकार प्राप्त हो गये हैं। यह स्थिति बहुत सन्तोषप्रद है। राज्य में गैर खातेदार काश्तकारों की संख्या अधिक नहीं है।

उप-काश्तकारों (Sub tenants) के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना उपलब्ध नहीं है। लेकिन प्रमुख काश्तकार (tenant in chief) इनसे नौकरनामा' लिखाकर काश्त करवाते हैं और इनका शोषण करते हैं। इस प्रकार उप-काश्तकार प्रमुख काश्तकारों की दया पर आश्रित है। प्रमुख काश्तकार इनसे उपज के रूप में ऊँचा लगान लेते हैं और उन्हें चाहे जब बेदखल कर देते हैं। फसल-बटाई (crop-sharing) अनुचित रूप में प्रचलित है। इस प्रकार अब प्रमुख काश्तकार उन शोषण के तरीकों का उपयोग उप-काश्तकारों पर करने लग गये हैं जिनका उपयोग पहले स्वयं भू-स्वामी उन पर किया करते थे। यह एक निराशाजनक स्थिति है। इसका समुचित उपाय होना चाहिए तभी भूमि को जोतने वाला स्वयं भू-स्वामी हो सकेगा।

श्री अमीर रजा, तत्कालीन संयुक्त सचिव, योजना आयोग ने राजस्थान में भूमि-सुधारों के क्रियान्वयन पर अपनी रिपोर्ट में कहा था कि मध्यस्थों की समाप्ति से सम्बन्धित कार्यों, जैसे मुदकाश्त के आवंटन के लिए आवेदन-पत्रों का अन्तिम

निवटारा, दावो (Claims) को तैयार करना, मुआवजे के लिए दावे को अंतिम रूप देने एवं मुआवजा व पुनर्वास-अनुदान चुकाने के सम्बन्ध में बडी धीमी प्रगति रही है। इस बात की विश्वस्त सूचना उपलब्ध नही है कि जागीरदारो व मध्यस्थो के पास खुदकाश्त म कितनी भूमि है, कितनी भूमि पर काश्तकारो ने खातेदारी अधिकार ग्रहण किये हैं और कितने शेष किस्म की है।[1]

सरकारी स्पष्टीकरणो से ऐसा प्रतीत होता है कि उप काश्तकारी व फसल बटाई को रोकना सदैव सम्भव नहीं है क्योंकि कुछ परिस्थितियो म भू स्वामी स्वय बीमारी व अन्य कारणों से भूमि को जोतने की स्थिति म नही होता है और कभी-कभी दूसरो से बैल की जोडी श्रम व अन्य साधन लेने के लिए साझेदारी स्वीकार करनी होती है। अत आवश्यक दशाओ मे इन्हें कृषिगत उत्पादन के हित म स्वीकार करने का समर्थन दिया गया है।

दैनिक न्यूनतम मजदूरी— राज्य मे खेतिहर मजदूरो के लिए दैनिक न्यूनतम मजदूरी समय समय पर पुन निर्धारित की गई है। 1 मार्च 1987 से अकुशल (unskilled) श्रमिको के लिए दैनिक मजदूरी की न्यूनतम दर 14 रु, अर्द्धकुशल श्रमिको के लिए 15 5 रु व कुशल श्रमिको के लिए 17 रु कर दी गई है।

राजस्थान मे सीलिंग कानून की काफी अवहेलना की गई है। जब 3 नवम्बर 1969 को अनूपगढ मे भूमि की नीलामी चालू हुई तो किसान आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। सरकार नीलामी से वित्तीय साधन जुटाना चाहती थी लेकिन इससे भूमि *हीनो को भूमि नही मिल सकती थी। इस स्थिति मे राजनीतिक दलो ने सघर्ष चालू* कर दिया था। बाद मे सरकार ने नहरी क्षेत्र मे नीलामी बद कर दी और भूमिहीनो को निश्चित भावो पर भूमि देने का निर्णय किया। 3 एकड मे नीचे की भूमि पर खुशहाली-कर (betterment levy) समाप्त कर दिया गया, कपास पर उपकर नही लिया गया और भू राजस्व की वृद्धि नहीं की गयी।

निष्कर्ष—यह दुर्भाग्य का विषय है कि राजस्थान म सीलिंग कानून कडाई से लागू नही किया गया जिससे अतिरिक्त (Surplus) भूमि कम मात्रा मे ही मिल पायी। सरकार भूमि सुधारो को लागू करना चाहती है। लेकिन इनके मार्ग मे आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयो का जाल बिछ गया है। वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक व कानूनी ढाँचों के अन्तर्गत भूमि का कोई विशेष पुनर्वितरण सम्भव नहीं प्रतीत होता। ऐसी स्थिति म कुछ विद्वानों का सुझाव है कि निर्धन लोगों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए वैकल्पिक उपाय ढूँढे जाने चाहिएँ जिससे उनको रोजगार मिले तथा आमदनी बढाने का अवसर मिले। भूमि के पुनर्वितरण से इनकी समस्या का पूरा समाधान निकाल सकना सम्भव नही प्रतीत होता। राजस्थान म भूमि के

---

1 *Implementation of Land Reforms*, Planning Commission. New Delhi, August 1966, pp 120–28.

वितरण का जिनी गुणांक (gini-coefficient) 1953-54 में 0·69 था जो 1971-72 में 0·61 पर आ गया।* इस प्रकार भूमि के वितरण की असमानता में मामूली गिरावट आयी है। राज्य में खेतिहर श्रमिकों की संख्या 1961 में 2 2 लाख से बढ़कर 1981 में 4 8 लाख हो गयी है। 1961 व 1971 के बीच में तो इनकी संख्या दुगुनी से अधिक हो गयी थी। इस प्रकार राज्य में खेतिहर श्रमिकों की समस्या काफी बड़ी है।

भारत में भूमि सुधारों का उद्देश्य कभी ठीक से परिभाषित नहीं किया गया। इसके अलावा गाँवों में शक्ति-सन्तुलन निर्धन व भूमिहीनों के पक्ष में नहीं है। इसलिए बारम्बार भूमि सुधारों को लागू करने पर जोर देने का विशेष अर्थ नहीं निकलता। अतः निर्धन लोगों के कल्याण के लिए वैकल्पिक प्रयास करने जरूरी हैं। उनके लिए रोजगार की व्यवस्था की जानी चाहिए। सरकार ने नियमित अथवा स्वरोजगार प्रदान करने के लिए कई योजनाएँ बना रखी हैं। इनमें कम्पोजिट लोन स्कीम, महिलाओं के लिए गृह उद्योग दस्तकारों के लिए रोजगार, शिक्षितों के लिए स्वरोजगार, अनुसूचित जाति के लोगों के लिए पैकेज कार्यक्रम, शहरी गरीब लोगों के लिए स्वरोजगार के कार्यक्रम, आदि शामिल हैं।

प्रश्न

1. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—
   (i) राजस्थान में भूमि-सुधार
   (Raj II Year TDC, 1986 व 87)
   (ii) आपके राज्य में भूमि-सुधार
   (Raj II Year TDC, 1982)
2. राजस्थान सरकार ने 1948 के पश्चात् जो प्रमुख भूमि-सुधार किये हैं, उनकी विशेषताएँ संक्षेप में लिखिए और बतलाइए कि इनसे कृषक का आर्थिक स्तर कितना उन्नत हुआ है ?

---

* जिनी-अनुपात या गुणांक के माप की विधि आय की असमानता के अध्याय में विस्तार से समझायी गयी है।

32

राजस्थान में अकाल व सूखा

(Famines and Droughts in Rajasthan)

राजस्थान के लिए अकाल व अभाव बहुत जाने-पहचाने शब्द हैं। यहाँ के ग्रामीण जीवन में इनका चोली दामन का सम्बन्ध रहा है। राज्य के कई जिले प्रायः अकाल से प्रभावित होते रहते हैं। सरकार अकाल राहत कार्य खोलती है तथा लोगों को भूख-प्यास से मरने नहीं देती। पशुओं के लिए भी यथासम्भव पानी व चारे की व्यवस्था करने की कोशिश की जाती है। कभी-कभी अकाल भयंकर रूप धारण कर लेता है और स्थिति का मुकाबला करने के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों को भारी प्रयास करना होता है। 1985-86 का अकाल काफी भयंकर था। इसने धौलपुर को छोडकर 27 में से 26 जिलों को अपनी गिरफ्त में ले लिया था। इसमें राज्य के 26859 गाँव लगभग 2 करोड़ 19 लाख जनसंख्या व तीन करोड़ से अधिक पशु प्रभावित हुए थे। 1986-87 की अवधि में राज्य के 27 जिलों की 194 तहसीलों में 31,9[illegible]2 गाँवों की 2 53 करोड़ जनसंख्या सूखे की गम्भीर स्थिति से प्रभावित हुयी थी। पुनः 1987 88 में सभी 27 जिले अकाल से प्रभावित हुए। इस वर्ष 36,252 गाँव व 3 17 करोड़ व्यक्ति अकाल से प्रभावित हुए। सरकार ने विभिन्न जिलो में अकाल-राहत कार्य चालू किये और चारे, पानी, अनाज, आदि की सप्लाई बढ़ाने का भरसक प्रयास किया।[1] इस प्रकार अकाल व सूखे की समस्या राजस्थान की अर्थव्यवस्था से गहरी जुडी हुई है जिससे इसके विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है।

अकाल के क्षेत्र/जिले

सर्वप्रथम हमें यह जानना चाहिए कि राजस्थान मे अकाल के कौन-से क्षेत्र प्रमुख हैं। वैसे विभिन्न वर्षों मे अकाल से प्रभावित होने वाले जिलो की सख्या अलग-अलग होती है, फिर भी राजस्थान का दक्षिणी भाग तो प्राय अकाल की

---

1. Budget Study 1989 90, p. 64

घपट में आता ही रहता है। अकाल के सम्बन्ध में निम्न दोहा मशहूर माना गया है। इसमें अकाल के प्रदेशों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[1]

"पग पूगल, धड़ कोटड़े बाहु बाड़मेर
जोय लाद्दे जोधपुर, ठावो जैसलमेर ॥"

इसका अर्थ यह है कि अकाल के पैर पूगल (बीकानेर) में, धड़ कोटड़ा (मारवाड़) में, भुजाएँ बाड़मेर (मालानी) में स्थायी रूप में हैं। लेकिन तलाश करने पर यह जोधपुर में भी मिल जाता है एवं जैसलमेर में तो इसका खास ठिकाना (ठायो) है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग ने राजस्थान के निम्न 11 जिलों को मरुस्थलीय माना है। इनमें राज्य के क्षेत्रफल का 60% तथा जनसंख्या का 40% भाग शामिल है। इन ग्यारह जिलों की लगभग दो लाख नौ हजार वर्ग किलोमीटर भूमि में प्रायः अकाल एक अनचाहे मेहमान की तरह जमा बैठा रहता है। ये 11 जिले इस प्रकार हैं: जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, गंगानगर, नागौर, चूरू, पाली, जालौर, सीकर व झुंझुनू। इन जिलों की मरु भूमि अकाल जैसे दानव के पंजों में जकड़ी हुई है। इन क्षेत्रों में वर्षा कम व अनियमित होती है। बहते जल व भूमि के नीचे जल की कमी होती है। पानी के भाप बनकर उड़ जाने की रफ्तार तेज होती है। ग्रीष्म ऋतु में प्रायः धूलभरी आंधियाँ चलती हैं एवं बालू मिट्टी का हवा से कटाव होता रहता है। दुनिया के अन्य भागों में मरुस्थलों की तुलना में राजस्थान के मरुस्थल में जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है जिससे यहाँ पर अकाल की समस्या का अधिक जटिल होना स्वाभाविक है।

पिछले दो दशकों में अकाल/अभाव की स्थिति से हुई क्षति[2]:—

यह कहना गलत न होगा कि राजस्थान में प्रतिवर्ष किसी-न-किसी जगह अकाल व अभाव की स्थिति अवश्य पायी जाती है। यही नहीं वर्ष 1968-69 से 1987-88 तक के दो दशकों में से 7 वर्षों में 26 जिलों में एवं 2 वर्षों में 27 जिलों में अकाल की दशाएँ पायी गई हैं। 26 जिलों के अकाल वाले वर्ष इस प्रकार थे: 1968-69, 1972-73, 1979-80, 1980-81, 1981-82, 1982-83 तथा 1985-86। 1986-87 व 1987-88 में समस्त 27 जिलों में अकाल पड़ा है। अन्य वर्षों में भी स्थिति काफी गम्भीर रही है। 1974-75 में अकाल से 25 जिले, 1978-79 में 24 जिले तथा 1969-70 में 23 जिले प्रभावित हुए थे। इस प्रकार

---

1 सईद अहमद खां का लेख, मुकाबला कोई आसान नहीं, राजस्थान पत्रिका अकाल राहत परिशिष्ट, 24 अप्रैल, 1986, पृष्ठ 4

2 Budget Study 1989-90, DES, Rajasthan, Jaipur, p.64.

राज्य के विभिन्न जिलो म अकाल की काली छाया निरन्तर मडराती रहती है जिससे काफी जनसख्या व पशु धन पर बुरा असर पडता है और सरकार को राहत कार्यों पर व्यय करना पडता है एव भू-राजस्व की वसूली म भी ढील दनी पडती है । 1985 86 मे 12 5 करोड रुपयो के भू राजस्व (land reverue) की वसूली रोकनी पडी थी ।

पिछले वर्षों मे पानी का अकाल विशेष रूप से पाया गया है । इससे जन-जीवन व पशुधन दोनो पर दुष्प्रभाव पडा है। सरकार अनाज के अभाव को तो अधिक आसानी से दूर कर सकती है लेकिन पानी का अभाव इतनी आसनी से दूर नही किया जा सकता ।

अकाल सूखे व अभाव की समस्या के कारण

निरतर पडने वाले अकाल प्रकृति व पुरुष के बीच सघर्ष की दशा को सूचित करते हैं । इसके लिए प्राकृतिक कारण प्रमुख होते है लेकिन साथ मे आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियो को भी काफी सीमा तक उत्तरदायी ठहराया जा सकता है । इन पर नीचे प्रकाश डाला जाता है —

1 प्राकृतिक कारण—

(अ) धरातल की बनावट जलवायु वगैरह—दूर दूर तक फैला मरुस्थल या मरु प्रदेश जहा ग्रीष्म ऋतु मे तपती धरती तपता आसमान तपत इसान व तपते पशु- सब नियति के जाल मे फसे है जिससे छुटकारा पाना कठिन है, क्योकि 11 मरुस्थलीय जिलो मे सर्वत्र बालू के टीले है तथा धरती के नीचे व इसकी सतह पर जल का नितान्त अभाव है। हम पहल बतला चुके है कि इन ग्यारह जिलो की दो लाख नौ हजार वग किलोमीटर भूमि इस मरु दानव के पजो मे जकडी हुई है ।

इन क्षेत्रो मे हवा से मिट्टी का कटाव निरतर होता रहता है जिससे रेगिस्तान सुनिश्चित गति से आगे बढता जा रहा है । आगे चल कर अन्य राज्यो की उपज ऊ धरती को भी इससे खतरा हो सकता है ।

(आ) वर्षा की कमी अनियमितता व अनिश्चितता—अकाल व सूखे की स्थिति का प्रधान कारण मानसून का विफल होना माना गया है । राजस्थान के उपर्युक्त 11 मरुस्थलीय जिलो मे साल भर मे सामान्यतया वर्षा पचास सेंटीमीटर से अधिक नही होती । जैसलमेर म औसतम 16 से मी वर्षा ही हो पाती है । पिछले 100 वर्षों मे यहां केवल 25 वष बारिश हुई जिससे इस इलाके मे वर्षा के अभाव का अनुमान लगाया जा सकता है । अत आवश्यकता के अनुसार वर्षा का न होना, कभी-कभी वर्षा का बिलकुल न होना तथा कभी देर स होना, ये सब अकाल व सूखे की स्थितियो को जन्म देते हैं । अभाव की य स्थितियाँ कभी-कभी नियन्त्रण से बाहर होने लगती हैं । तब लाखो लोग अपने मवेशियो को लेकर निकटवर्ती राज्यो मे चारे

व पानी की तलाश मे पलायन करने लगते हैं। इससे पशु-धन की हानि भी होती है। कभी-कभी निकटवर्ती राज्यो मे भी अभाव व सूखे के कारण उनमे पशुओ के प्रवेश स कोई लाभ नही होती, बल्कि पडोसी राज्य इसका विरोध भी करते हैं।

2 आर्थिक कारण—आर्थिक विकास के अभाव से भी अकाल व सूखे की समस्या अधिक जटिल होती गयी है। मरुप्रदेश व मरु जैसे प्रदेश मे इन्फ्रास्ट्रक्टर का पर्याप्त विकास नही हो पाया है। जनसख्या के बढने मे आर्थिक साधनो पर दबाव बढा है। लोगों के लिए रोटी-रोजी की समस्या काफी गम्भीर हो गयी है। परम्परागत कुटीर व ग्रामीण उद्योगो का ह्रास हुआ है तथा सिचाई के साधनों के अभाव मे कृषि को उन्नत करन मे बाधा पहुँचती है। बालू मिट्टी अनुपजाऊ होती है। जोधपुर की सेंट्रल एरिड जोन रिसर्च इन्स्टीट्यूट (काजरी) की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार चारे का कमी का कारण बढती हुई पशु-सख्या है। 1972-77 की अवधि में पशुओं की सख्या 44 5 लाख बढी है जिसमे प्रति पशु चराई की भूमि घट गई है। जनसख्या का दबाव बढने से अधिक भूमि पर खेती की जाने लगी है जिससे सन्तुलित विकास मे बाधा पहुँची है। पशुओ के लिए पर्याप्त मात्रा मे चारा नही उगाया जाता। चारे के अभाव मे इसके दाम बढ जाते हैं जिससे दुग्ध व दुग्ध पदार्थों के दाम बढाने पडते हैं। मरुस्थलीय प्रदेशो मे कृषिगत उत्पादकता नीची पायी जाती है जिससे कृषको की आमदनी कम होती है। सहायक धन्धो के अभाव मे आमदनी बढा सकना भी सुगम नही होता। अत बेरोजगारी व अल्परोजगार की समस्या भी काफी तीव्र हो गई है। लघु कृषको व सीमान्त कृषकों भूमिहीन किसानो व ग्रामीण काश्तकार: के श्रम का पूरा उपयोग नही हो पाता जिससे अकाल के समय इनकी आर्थिक हालत बडी दयनीय हो जाती है। सरकार राहत कार्य चलाकर इन लोगो को लाभ पहुँचाने का प्रयास करती है।

3 सामाजिक कारण—जलाने की लकडी के अभाव की समस्या काफी जटिल रूप धारण कर चुकी है। लोगो ने अध धुंध पेड काट डाले हैं व अनियन्त्रित चराई से मिट्टी के कटाव की समस्या को तीव्र कर दिया है। कृषि भूमि, वन, जल आदि का परस्पर सन्तुलन बिगड जाने से परिवेश असन्तुलन (ecological imbalance) की समस्या उत्पन्न हो गई है। इसके लिए उचित जल व भूमि प्रबन्ध की आवश्यकता है।

4 राजनीतिक कारण—अकाल व सूखे की समस्या का सम्बन्ध राजनीतिक कारणो से भी माना गया है। विभिन्न योजनाओ की अवधि मे सरकार ने स्थायी व उत्पादक राहत कार्यों की बजाय अस्थायी राहत कार्यों पर ध्यान दिया जिससे उत्पादक सामुदायिक परिसम्पत्तियों का निर्माण तेजी से आगे नही बढ सका है।

फलस्वरूप राहत-कार्यों पर किया गया व्यय दीर्घकालीन दृष्टि से प्रतिफल नहीं दे पाया है और अकालो को रोकने की दृष्टि से उनकी उपयोगिता सीमित रही है। यदि प्रारम्भ से ही सुनियोजित तरीके से अकाला से लडने का प्रयास किया जाता तो इस अनचाहे मेहमान को अपने घर वापस भेजना सम्भव हो सकता था। लेकिन प्रशासनिक कमियों कारण यह जमकर बैठा हुआ है और जाने का नाम नही लेता।

इस प्रकार अकाल व सूखे की समस्या प्राकृतिक आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक कारणो की देन है। राज्य सरकार के पास वित्तीय साधनो की कमी रही है जिससे वह राज्य को अकाल के दानव से मुक्त नही करा सकी है। फिर भी कई प्रकार के राहत कार्यक्रम चलाकर सरकार लोगो को भूख-प्यास से मरने नहीं देती और अकाल से जूझने के लिए सदैव कृत-सकल्प रहती है, जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट हो जायगा।

राजस्थान में अकाल व सूखे की समस्या के हल के लिए सरकारी प्रयास विशेषतया 1985-86 1986-87 व 1987-88 की स्थिति के सदर्भ में

राजस्थान म अकाल की समस्या एक अल्पकालीन समस्या नही है। बल्कि एक दीर्घकालीन समस्या है। अत इस समस्या का स्थायी हल तो दीर्घकाल मे ही सम्भव हो सकता है। फिर भी राज्य सरकार ने इसके हल के लिए भूतकाल म प्रयास किये हैं और वतमान में भी प्रयास जारी हैं। आगामी वर्षों म भी इस समस्या के समाधान क लिए निरन्तर प्रयास जारी रखने होंगे।

अकाल की समस्या को हल करने के सम्बन्ध म सरकार की मुख्य नीति राहत कार्य चालू करने की रही है। इसके लिए केन्द्र से वित्तीय सहायता देने की माग की जाती है। वित्तीय साधनो के आधार पर भू सरक्षण, सडक-निर्माण,पाठशाला व औषधालय निर्माण, सिंचाई के लिए कुओं के निर्माण तालाबों व अन्य सिंचाई के साधनो के निर्माण व उनकी मरम्मत तथा रख रखाव जल की सप्लाई बढाने (ताकि लोगों का पेय जल उपलब्ध किया जा सके तथा पशुओं को भी पीने का पानी मिल सके) एव चारे की उपलब्धि बढाने जैसे अनेक प्रकार के कार्यक्रम चलाये जाते हैं ताकि लोगों को रोजगार व आमदनी मिल सके एव उत्पादक सामुदायिक परिसम्पत्तियों का निर्माण किया जा सके।

राज्य सरकार न अकाल की समस्या के हल के लिए निम्न दिशाओ म प्रयास किये हैं। राज्य में विशिष्ट योजना सगठन की स्थापना 1971 मे की गई थी। इसकी तरफ से विभिन्न योजनाए चल रही है जैसे एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम सूखा सम्भव्य (सम्भावित) क्षेत्रीय कार्यक्रम मरु विकास कार्यक्रम वायो

और इसने 27 मे से 26 जिलो को प्रभावित किया था। इससे राज्य की 2 करोड 19 लाख जनसख्या व 3 करोड से अधिक पशु प्रभावित हुए थे। अकाल के समय पीने के पानी, पशुओ के लिए चारे व मनुष्यो के लिए अन्न का अभाव उत्पन्न हो जाता है।

राज्य सरकार ने अक्टूबर 1985 से 15 जुलाई 1985 तक विभिन्न प्रकार के अकाल राहत कार्य सचालित किये थे जिससे लोगो के लिए रोजगार व आमदनी की व्यवस्था की जा सकी है तथा कई स्थानों मे टैंकरो बैलगाडियो ऊँटगाडियो, आदि की सहायता से पीने का पानी पहुँचाया गया था। तब पशुओ के लिए चारे व पानी की सुविधा बढायी गयी थी। जैसलमेर जिले ने दिसम्बर 1985 से मार्च 1986 तक के चार महीनो मे 1½ लाख क्विटल घास कटवा कर सूखा ग्रस्त जिलो को भेजी गयी थी औरउससे राज्य सरकार को करीब 2 करोड रु की नकद आय हुई थी। जैसलमेर के उत्तरी-पश्चिमी भाग मे भारत पाकिस्तान सीमा पर 125 किलोमीटर लम्बी व 25-30 किलोमीटर चौडी भूमि की पट्टी पर 'सेवण' घास ईश्वर का वरदान मानी जाती है। यह 45 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान मे उग व पनप सकती है। इस पट्टी पर 50 से 80 लाख क्विटल घास रहती है। यह पशुओ के लिए पौष्टिक आहार होती है। सरकार को जैसलमेर के इस घास के खजाने का विस्तार करना चाहिए। मई 1986 मे 7 लाख 63 हजार श्रमिको को अकाल-राहत कार्यों में रोजगार मिल सका था।

1985-86 मे अकाल-राहत कार्यों की दो विशेषताएं रही : (1) मजदूरी का भुगतान अनाज के रूप मे किया गया तथा भारत सरकार से जो सहायता मिली उसे सामग्री के अश के रूप मे व्यय किया गया। भारत सरकार ने 35 81 करोड रु. अकाल राहत सहायता के तौर उपलब्ध किये जिसमे 22 50 करोड रु का अनाज नि.शुल्क उपलब्ध कराने की स्वीकृति भी शामिल थी। इससे लोगो को रोजगार दे पाना सम्भव हो सका है।

(2) दूसरी विशेषता यह थी कि स्थायी महत्व एव उत्पादक किस्म के कार्यों को प्राथमिकता दी गई ताकि सिचाई, भू सरक्षण, वन एव सडक निर्माण के कार्यों का भली-भाति विस्तार किया जा सके।

मार्च, 1986 तक विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों के लिए 125 करोड रुपये के राहत कार्य प्रारम्भ करने की स्वीकृति दी गई थी। इसमे सर्वाधिक राशि (65 करोड रुपये) सिचाई कार्यों पर व्यय करने का प्रावधान था। दूसरा स्थान सडक

1 थार के रेगिस्तान मे घास की खेती, डॉ यश गोयल, राज पत्रिका, 26 जून 1986

निर्माण कार्यों को लिया गया । इसके बाद भू-संरक्षण, वनों के विस्तार व विकास आदि का स्थान आता है ।

स्मरण रहे कि अधिकांश राहत कार्य राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) के अन्तर्गत किये गये । रोजगार देने में भूमिहीन श्रमिकों, लघु एव सीमान्त कृषकों तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति के लोगों को प्राथमिकता दी गई थी ।

पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से भी व्यापक निर्माण कार्यक्रम हाथ में लिये गए थे । इसके लिए उनको विभिन्न विभागों जैसे शिक्षा व जन-जाति विकास, आदि से एवं भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारंटी योजना के अन्तर्गत धनराशि उपलब्ध कराई गई थी ताकि पाठशाला-भवनों आदि का निर्माण कराया जा सके । अन्य कार्य पटवार घर पंचायत घर औषधालय भवन, पशुपालन की दुकानें, पेयजल कुओं का निर्माण, कुओं को गहरा कराने, खरंजा नाली एवं सम्पर्क सड़कों का निर्माण, सामुदायिक भवन का निर्माण तथा तालाब की मरम्मत व गहरा कराने आदि के कार्य सम्मिलित हैं ।

ये कार्य सामान्य ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम व अकाल राहत कार्यों के अतिरिक्त थे ।

1986–87 के भीषण अकाल से सम्बन्धित राहत-कार्य[1]

1986 87 के भीषण-अकाल का दुष्प्रभाव 31922 गांवों 2 53 करोड़ लोगों व 3 27 करोड़ पशुओं पर पड़ा था ।

अकाल राहत कार्य निम्न विभागों द्वारा चलाये गये थे :

(i) राहत विभाग, (ii) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के तहत, (iii) सार्वजनिक निर्माण विभाग, (iv) सिंचाई विभाग, (v) वन-विभाग, (vi) पंचायत समितियों के माध्यम से ।

राहत कार्यों में कुओं के निर्माण, भवन-निर्माण, सिंचाई के कार्य, सड़क-निर्माण, भू-संरक्षण, आदि शामिल थे । जून 1987 में 14 73 लाख लोगों को राहत कार्यों पर रोजगार उपलब्ध कराया गया था । भारत सरकार ने राजस्थान को राहत सहायता के तौर 2 लाख टन गेहूं आवंटित किया था ।

अगस्त 1987 में राज्य सरकार ने अकाल से निपटने के लिए निम्न उपाय घोषित किये थे[2]—

1 राहत कार्यों पर तत्काल मजदूरों की संख्या 7 लाख बढ़ाने की घोषणा की गई ।

---

1 राजस्थान पत्रिका, 10 जून, 1987, पृ 1,

2. राजस्थान पत्रिका, 20 अगस्त 1987

2 असिंचित क्षेत्रो मे लगान व सहकारी कर्जों की वसूलियाँ तुरन्त स्थगित करने का फैसला लिया गया।

जिन गाँवो मे लगातार चार साल म अकाल पड रहा था वहाँ एक साल का लगान माफ करने की कार्यवाही करने का निर्णय लिया गया। अल्पावधि सहकारी कर्जों को मध्यावधि कर्जों मे परिवर्तित किया गया।

3 राठी, थारपारकर, कांकरेज आदि उन्नत नस्ल की गायो को बचाने के लिए एक विशेष कार्यक्रम बनाया गया। इसके अनुसार ऐसी गायो को विशेष रूप से गगानगर के कैम्पो मे रखा गया जहाँ उन्हे चारा पानी दवाइयाँ आदि उपलब्ध हो और साथ मे उनका दूध बिक सके। स्वय सेवी सस्थाओ का भी व्यापक रूप से उपयोग किया गया। इन्होने चारे का वितरण करने मे मदद की। चारे के परिवहन के लिए राज्य सरकार ने सब्सिडी प्रदान की।

4 एक सौ ट्यूब-वैल जो उस समय उपयोग मे नही आ रहे थे उनका विद्युतीकरण करके घास उगाने का काम करने का निर्णय लिया गया।

5 सूरतगढ व जैतसर कृषि फार्मों मे चारा उगाने की व्यवस्था की गयी।

6 पीने के पानी के लिए जयपुर जोधपुर उदयपुर, आबू, पाली, राजसमन्द भरतपुर, अजमेर ब्यावर, किशनगढ़ आदि शहरो में हैण्ड पम्प व ट्यूब वैल खुदवाने का कार्य प्रारम्भ किया गया।

7 सार्वजनिक वितरण की दूकानो की सख्या बढायी गयी। आदिवासी क्षेत्रो मे भ्रमणशील दूकानें खोली गई।

8 पजाब व हरियाणा से चारा खरीदने की व्यवस्था की गई।

9 प्रभावग्रस्त क्षेत्रो मे चारा पहुँचाने के लिए केन्द्र जो अनुदान देता है उसे 30 रु प्रति क्विटल से बढ कर भाड़े का वास्तविक खर्च वहन करने की सिफारिश की गई। सरकार ने एक वृहद् आपात योजना को लागू करने का निश्चय किया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि अकाल की समस्या राज्य सरकार के समक्ष एक महान चुनौती है। सरकार ने राहत कार्यों को कुशलतापूर्वक चलाने का प्रयास किया है, लेकिन प्रमुख कठिनाई वित्त के अभाव की रही है। सरकार केन्द्र से अधिक से अधिक सहायता लेने का प्रयास करती है ताकि सूखे पर काबू पाया जा सके। 198.-86 मे गुजरात व मध्य प्रदेश मे भी सूखा पडने के कारण राजस्थान से पशुओ का निष्क्रमण वहाँ नही हो पाया था और दो लाख से अधिक पशुओ को जैसलमेर के चराग हो मे भेजा गया था और उनके लिए वहाँ पीने के पानी की विशेष व्यवस्था की गयी थी। दुधारू पशुओ को पशु आहार उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने व्यवस्था की थी तथा गाँवो मे पेयजल की व्यवस्था बढायी गयी थी। 1986-87 के अकाल का मुकाबला करने के लिए सरकार को पुन. सक्रिय होना पडा था और विभिन्न राहत कार्यों पर निर्माण-कार्य चलाये गये थे। ये राहत

कार्य जून 1987 के बाद भी कुछ अवधि तक जारी रखने पड़े थे। राज्य सरकार ने केन्द्र से राहत कार्यों के लिए सहायता मांगी थी।

1987-88 के अकाल में राहत-कार्य[1] —

जैसा कि पहले कहा जा चुका है 1987-88 में 27 जिलों को अकालग्रस्त घोषित किया गया। इसमें 36252 गाँव प्रभावित हुए जिनमें 3·17 करोड़ जनसंख्या अकाल की चपेट में आ गई। इतनी विशाल जनसंख्या को जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध कराना एक चुनौती भरा कार्य था। इस अकाल में 3 लाख राहत कार्य प्रारम्भ कर कुल 42·4 करोड़ मानव-दिवस का कार्य सृजित किया गया। सूखा-प्रबन्ध पर 1987–88 में 599 करोड़ रु. व्यय हुए तथा वर्ष 1988–89 में लगभग 361 करोड़ रुपये व्यय हुए जिनमें गेहूँ का मूल्य भी शामिल है। राज्य ने केन्द्रीय सहायता के अतिरिक्त स्वयं के साधनों से करोड़ों रुपये व्यय किये। सूखा-प्रबन्ध पर इन 16 महीनों में (1987 88 व बाद में) जो राशि व्यय की गई वह गत चार दशकों में अकाल राहत सहायता पर व्यय की गई कुल राशि से भी बहुत अधिक रही है।

निष्कर्ष—राजस्थान पर प्रायः अकाल के काले बादल छाये रहते हैं। विद्वानों का मत है कि राज्य को अकाल से पूर्णतया छुटकारा मिलना तो कठिन जान पड़ता है लेकिन सतत प्रयास करने पर अकालों की सघनता व इनसे होने वाली क्षति में कमी अवश्य की जा सकती है और की जानी चाहिए। इसके लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं—

1. इन्दिरा गांधी नहर परियोजना को प्रत्येक दृष्टि से शीघ्र पूरा किया जाना चाहिए जैसे नहर के दूसरे चरण के संशोधित रूप को पूरा करना, कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम लागू करना तथा अन्य कार्य पूरे करना ताकि उनके लाभ आम आदमी तक शीघ्र पहुँच सकें। इसके लिए प्रशासन को सुदृढ़ करना होगा।

2. योजना में शामिल विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों, सामान्य राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों, अकाल राहत कार्यक्रमों, पंचायतों के विभिन्न विकास कार्यक्रमों तथा अन्य विकास कार्यक्रमों में परस्पर प्रभावपूर्ण तालमेल स्थापित किया जाना चाहिए ताकि उत्पादक सामुदायिक परिसम्पत्तियों के निर्माण में तेजी लायी जा सके।

3 लूनी नदी के क्षेत्र (बेसिन) का भी विकास किया जाना चाहिए। यह मरु-प्रदेश की मुख्य नदी है तथा कच्छ की खाड़ी में गिरती है। यदि सिंचाई, वृक्षारोपण, भू-संरक्षण व गाँवों में सड़क व भवन निर्माण के कार्यों को सफल बनाया जा सका तो राजस्थान में ग्रामीण जनता की खुशहाली बढ़ सकती है। इस समय आवश्यकता

1. बजट-भाषण 1989-90, पृ. 4

है जब जिला व खण्ड स्तर पर विकास के विभिन्न स्पष्ट, व्यावहारिक व लाभकारी कार्यक्रम संचालित करके हम विभिन्न प्रदेशों की अर्थव्यवस्थाओं को अकाल मुक्त कर सकते हैं। इसके लिए व्यापक ग्रामीण जनसहयोग की शर्त भी स्वीकार करनी होगी।

4 **अकाल राहत केन्द्रों में मजदूरों की उपस्थिति के 'मास्टर रोल' ठीक से बनाये जाने चाहिए।** उनमे मनमाने नाम भर कर रकम हड़पने से समाज को लाभ नही हो सकता। अकाल राहत कार्यों मे स्कूल, डिस्पेन्सरी सडक आदि का निर्माण किया जाना चाहिए। राहत केन्द्रो की व्यवस्था मे सुधार करने से लोगो की रोटी-रोजी की समस्या एक साथ हल हो सकती है। इसलिए अकाल राहत कार्यों मे प्रशासनिक कार्यकुशलता बढायी जानी चाहिए। इनके सम्बन्ध मे आये दिन विभिन्न प्रकार की अनियमितताओ व कमियो के समाचार मिलते रहते है जिससे प्रभावित लोगो को पूरी राहत नही मिल पाती। अकाल राहत-कार्यों पर व्यय करके लोगो को रोजगार देने, पशुधन को बचाने चारा उपलब्ध कराने पेयजल पहुँचाने, कुपोषण व बीमारियो से बचाने तथा कृषि क्षेत्र के विकास मे योगदान दिया जाता है। अत इस धनराशि का सर्वोत्तम उपयोग करके अकालग्रस्त क्षेत्रो को सर्वाधिक लाभ पहुँचाया जाना चाहिए।

प्रश्न

1. "राजस्थान मे अकाल - समस्या व समाधान' पर एक संक्षिप्त व आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।
2. क्या राजस्थान को अकालो की काली छाया से कभी मुक्ति मिल पायेगी ?
3. राजस्थान मे अकाल-समस्या के निवारण हेतु कोई स्थाई कार्यक्रम सुझाइए।

न तिका से स्पष्ट होता है कि 1984-85 में भी राजस्थान का भारत की औद्योगिक अर्थव्यवस्था में काफी नीचा स्थान था। इस वर्ष समस्त भारत में पंजीकृत फैक्ट्रियों का 2 8% राजस्थान में था, जबकि महाराष्ट्र में 15·7% था। फैक्ट्री रोजगार की दृष्टि से राजस्थान का अंश 2 8% था, जबकि महाराष्ट्र का 16 0% था। विनिर्माण के द्वारा जोड़े गये शुद्ध मूल्य (net value added) में राजस्थान का अंश 2 6% था जबकि महाराष्ट्र का 22 8% था। इस प्रकार जोड़े गये शुद्ध मूल्य में भारत में जहाँ महाराष्ट्र का अंश 1/5 से भी अधिक था वहाँ राजस्थान का केवल 1/40 ही था। फैक्ट्री क्षेत्र में जोड़ा गया मूल्य राजस्थान में 1960-61 में समस्त भारत का 1% था जो 1970-71 में 2 1% तथा 1984-85 में 2 6% हो गया। इस तरह राजस्थान का स्थान औद्योगिक दृष्टि से काफी नीचे माना है लेकिन जोड़े गए मूल्य में इसकी स्थिति असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर व उड़ीसा से बेहतर मानी गयी है।

राज्य में 1951 में 103 पंजीकृत फैक्ट्रियाँ थी जिनमें लगभग 18 हजार व्यक्ति काम पाते हुए थे और केवल 9 करोड़ रुपयों की पूंजी लगी हुई थी। 1984-85 में रिपोर्टिंग फैक्ट्रियों की संख्या 2701 विनियोजित पूंजी की राशि लगभग 3092 करोड़ रुपये, श्रमिकों की संख्या 1 72 लाख तथा विनिर्माण द्वारा जोड़े गये शुद्ध मूल्य (net value added) की राशि 550 करोड़ रुपये रही थी। 1987-88 में स्थिर कीमतों (1970-71) पर राज्य की आय का 10·8% भाग खनन व विनिर्माण (पंजीकृत व गैर-पंजीकृत) से प्राप्त हुआ था। इसमें खनन का भाग 2·4% तथा विनिर्माण (manufacturing) का भाग 8·45% था। इस वर्ष राज्य की आय स्थिर कीमतों पर लगभग 2383 करोड़ रुपये हुई थी तथा खनन व विनिर्माण से लगभग 259 करोड़ रुपये हुई थी।[1] राजस्थान में लघु इकाइयों में ज्यादातर, अति लघु इकाइयाँ' (संयंत्र व मशीनरी में 25 हजार रुपये तक का विनियोग) पायी गई हैं। आधी से अधिक इकाइयाँ धातु पदार्थों, चमड़े की वस्तुओं व अधात्विक खनिज पदार्थों के निर्माण में लगी हुई है।

सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में राज्य के औद्योगीकरण के लिए विद्युत-सृजन पर काफी बल दिया है। भाखड़ा व चम्बल परियोजनाओं से विद्युत प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। थर्मल व डीजल विद्युत संयंत्रों की भी स्थापना की गयी है। राज्य में अणु-शक्ति का भी विकास किया गया है। प्रथम योजना के प्रारम्भ में शक्ति की उपलब्धि केवल 8 मेगावाट थी जो 1989 के मध्य में 2500 मेगावाट (प्रस्थापित क्षमता) हो गई है। इसी प्रकार पानी की व्यवस्था का भी कई नगरों व गाँवों में विस्तार किया गया है। सड़कों का निर्माण किया गया है और उद्यमकर्ताओं को कई प्रकार की रियायतें दी गई हैं जिनका सम्बन्ध भूमि के आवंटन, विद्युत

1. Budget Study 1989-90, p. 54.

की दरो, बिक्री-कर व चुंगी एव वित्तीय सहायता व पूंजी-सब्सिडी आदि से रहा है। *इन रियायतो के फलस्वरूप राज्य मे पजीकृत फैक्ट्रियो की सख्या काफी बढी है।* 1987 मे पजीकृत फैक्ट्रियो की सख्या 9665 हो गई थी जिनमे कुल रोजगार 2·25 लाख व्यक्तियो को मिला हुआ था।

1980 मे राज्य मे 20 सूती व सिन्थेटिक रेशे की इकाइयाँ, 10 ऊनी, 3 चीनी, 5 सीमेट, 3 मिनी सीमेट की इकाइयाँ, एक टेलीविजन फैक्ट्री, एक टायर व ट्यूब फैक्ट्री, 9 वनस्पति तेल की मिलें, 20 इन्जीनियरी की औद्योगिक इकाइयाँ तथा 5 खनिज-आधारित बडी व मध्यम श्रेणी की इकाइयाँ हो गई थी। इनके अलावा केन्द्रीय क्षेत्र मे केवल 7 औद्योगिक इकाइयाँ हैं जिनके नाम इस प्रकार है—हिन्दुस्तान जिक लि , हिन्दुस्तान कॉपर लि , हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि , इन्स्ट्रूमेन्टेशन लि., हिन्दुस्तान सॉल्टस लि , मॉडर्न बेकरीज एव राज. इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड इन्स्ट्रूमेण्ट्स लि.। राजस्थान के औद्योगिक क्षेत्र मे समस्त भारत के कुल केन्द्रीय विनियोगो का लगभग 2% अश पाया जाता है।

राजस्थान मे इस समय लगभग 400 बडे एव मध्यम दर्जे के उद्योग लगे हुए हैं। दिसम्बर 1988 के अन्त मे उद्योग-विभाग मे पजीकृत लघु पैमाने के उद्योगो व कारीगरो की इकाइयो की सख्या 1·42 लाख थी जिनमे 668 करोड रुपये का विनियोग किया गया था तथा 5·25 लाख व्यक्ति काम पाये हुए थे।[1]

राजस्थान का औद्योगिक ढाँचा (Industrial Structure of Rajasthan)

औद्योगिक ढाचे मे उपयोग-आधारित वर्गीकरण (use-based Classification) के अनुसार निम्न चार प्रकार के उद्योगो का सापेक्ष महत्त्व देखा जाता है।

(1) आधारभूत वस्तुओ के उद्योग (Basic Goods Industries)

(2) पूंजीगत वस्तुओ के उद्योग (Capital Goods Industries)

(3) मध्यवर्ती वस्तुओ के उद्योग (Intermediate Goods Industries)

(4) उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योग (Consumer Goods Industries)

राजस्थान मे इनमे से प्रत्येक की स्थिति का सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है

(1) आधारभूत वस्तुओ के उद्योग—इस श्रेणी मे प्रमुख उद्योगो के नाम इस प्रकार है सीमेट, बेसिक रसायन, लोहा व इस्पात, उर्वरक व कीटनाशक, तावा पीतल अल्यूमिनियम, जस्ता व अन्य अलौह धातु, नमक एव विद्युत।

(i) **सीमेन्ट**—1988 मे राज्य मे सीमेन्ट की 9 बडी इकाइया थीं। सीमेन्ट के कारखाने सवाई माधोपुर, लाखेरी चित्तौडगढ, उदयपुर, निम्बाहेडा, ब्यावर व

---

1 Budget Study 1989-90, p 107,

कोटा में निजी क्षेत्र में तथा रीको से सहायता प्राप्त दो कारखाने मोड़क (कोटा) (मगलम सीमेन्ट लि.) तथा बनास (सिरोही) (स्ट्रा प्रोडक्ट्स, जे के. ग्रुप का) में चल रहे हैं। राज्य में सीमेन्ट के और कारखाने स्थापित किये जा सकते हैं। राज्य में मिनी सीमेन्ट प्लान्ट भी लगाये गये हैं जिनसे सिरोही, बासवाडा व जयपुर जिलो में सीमेन्ट का उत्पादन होने लगा है।

(ii) रासायनिक उद्योग—इसमें मुख्यतया राजस्थान स्टेट केमिकल वर्क्स, *डीडवाना आता है। यह सोडियम सल्फेट व सोडियम सल्फाइड उत्पन्न करता है।* डीडवाना में नमक का भी उत्पादन होता है। कोटा में श्रीराम केमिकल इन्डस्ट्रीज लि. भी इसी श्रेणी में आता है। उदयपुर फोस्फेट्स एण्ड फर्टिलाइजर्स तथा मोदी एल्कलाइज एण्ड केमिकल्स लि, अलवर भी आधारभूत उद्योगो की सूची मे आते है।

धौलपुर मे सयुक्त क्षेत्र मे रीको व IDL केमिकल्स लि., हैदराबाद के परस्पर सहयोग से, दी राजस्थान एक्सप्लोजिव्स एण्ड केमिकल्स लि., की स्थापना की गई है जहाँ विस्फोटक (detonators) बनाये जाते हैं। यहाँ मार्च 1981 मे उत्पादन चालू किया गया था।

(iii) डूगरपुर जिले मे मॉडो-की-पाल नामक स्थान पर फ्लोर्सपार बेनेफिशियेशन प्लाण्ट लगाया गया है जो फ्लोर्सपार उत्पन्न करता है। यह इस्पात बनाने मे प्रयुक्त होता है।

(iv) राज्य मे उदयपुर म जस्ता गलाने का सयत्र (हिन्दुस्तान जिक लि.) तथा खेतडी मे तावा गलाने का सयत्र (हिन्दुस्तान कापर लि.) कार्यरत हैं। इस प्रकार *राज्य मे आधारभूत उद्योगो के अन्तर्गत सीमेंट, रसायन, उर्वरक तथा तांबा व जस्ता* के कारखाने चल रहे है।

(2) पूँजीगत वस्तुओ के उद्योग—*पूँजीगत उद्योगो की सूची मे औद्योगिक* मशीनरी, रेफ्रिजरेटर व एयर कन्डीशनर, मशीनी औजार, विद्युत मशीनरी, विद्युत कम्प्यूटर व पुर्जे, वैगन (रेल परिवहन का साज-सामान) वगैरह आते हैं। भरतपुर में सिम्को वैगन फैक्ट्री है। अजमेर मे हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि. (HMT Limited) तथा कोटा मे इन्स्ट्रूमेन्टेशन लि. है। जयपुर मे नेशनल इन्जीनियरिंग इन्डस्ट्रीज लि. मे बॉल बियरिंग एव अशोक लीलेण्ड लि., अलवर मे व्यापारिक वाहन बनाये जाते हैं तथा कुछ और इन्जीनियरिंग उद्योग भी है। इस प्रकार राजस्थान मे पूँजीगत वस्तुओ के भी कारखाने हैं।

(3) मध्यवर्ती वस्तुओ के उद्योग—इस श्रेणी के उद्योगो के *नाम* इस प्रकार हैं : कॉटन जिनिंग, क्लीनिंग व बेलिंग, सूती वस्त्रो की छपाई, रगाई व ब्लीचिंग, ऊन की सफाई, रगाई व ब्लीचिंग, चमडे की रगाई व तैयारी, टायर-ट्यूब, पेंट, व वार्निश आदि। जयपुर मे पानी व बिजली के मीटर बनाये जाते है। उदयपुर के पास कांकरोली मे जे. के. टायर्स का कारखाना चालू किया गया है जिसमे ऑटोमोबाइल टायर व ट्यूब्स बनाये जाते हैं।

(4) उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग—राजस्थान में सूती वस्त्र, सिन्थेटिक वस्त्र चीनी गुड़ वनस्पति घी व वनस्पति तेल, साबुन, क्रोकरी, टेलीविजन सेट्स, साइकिल के पुर्जे जूते (चमड़े व रबड़ के) स्कूटर्स व मोपेड (केल्विनेटर्स ऑफ इण्डिया लि.) ऊनी माल (बीकानेर, चूरू व लाडनू), बीड़ी (मयूर बीड़ी उद्योग, टोंक) आदि उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग आते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान में सभी प्रकार के उपयोग-आधारित उद्योगों (use-based industries) की इकाइयाँ पाई जाती हैं, हालांकि राज्य का समस्त देश की औद्योगिक अर्थव्यवस्था में आज भी नीचा स्थान है। योजनाकाल में इन विभिन्न श्रेणियों के उद्योगों का योगदान रोजगार व जोड़े गये मूल्य आदि में बदला है जो निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

फैक्ट्री क्षेत्र में विभिन्न औद्योगिक श्रेणियों का योगदान[1]

उद्योगों की श्रेणी	रोजगार में अंश (प्रतिशत)		जोड़े गये मूल्य में अंश (प्रतिशत)	
	1970	1980-81	1970	1980-81
1. आधारभूत वस्तुओं के उद्योग	30 0	34·6	39·0	51·4
2. पूँजीगत " " "	21·5	14·3	18 8	15·5
3. मध्यवर्ती " " "	5·4	15·6	2·8	9 0
4. उपभोक्ता " " "	43 1	35·5	39 4	24 1
कुल	100 0	100 0	100 0	100 0
कुल मात्रा	1·12 लाख	1·92 लाख	62·4 करोड़ रु.	370 करोड़ रु.

1 Industrial Structure of Rajasthan, 1970, and A.S.I. 1980-81 (Rajasthan) (DES) के आँकड़ों के आधार पर प्रतिशत निकाले गये हैं।

तालिका से पता चलता है कि 1980 से 1970-81 की अवधि में राजस्थान में आधारभूत उद्योगों का योगदान रोजगार व जोड़े गये मूल्य में बढ़ा है, पूंजीगत उद्योगों का घटा है, मध्यवर्ती उद्योगों का काफी बढ़ा है तथा उपभोक्ता-उद्योगों का घटा है। 1980-81 में आधारभूत उद्योगों का अंश जोड़े गये मूल्य में लगभग $\frac{1}{3}$ व उपभोक्ता-उद्योगों का $\frac{1}{4}$ पाया गया है। आधारभूत उद्योगों के योगदान में बढ़ने के पीछे मुख्य कारण विद्युत का इस श्रेणी में शामिल होना है।

उद्योगों का साधन-आधारित वर्गीकरण (Input-based Classification of Industries)—उद्योगों का अध्ययन इनपुटों के आधार पर वर्गीकरण करके भी किया जा सकता है जैसे—*कृषि-आधारित वन-आधारित पशुधन-आधारित, खनिज पदार्थ-आधारित* व रसायन-आधारित आदि। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

1. कृषि-आधारित व फूड-प्रोसेसिंग उद्योग—व्यापक अर्थ में कृषि-आधारित उद्योगों में खाद्य-पदार्थ दुग्ध-पदार्थ व मांस-पदार्थ शामिल किये जाते हैं लेकिन संकीर्ण अर्थ में इस श्रेणी में कृषिगत कच्चे माल पर आधारित उद्योग आते है, जैसे कॉटन जिनिंग व प्रेसिंग फैक्ट्रियाँ, सूती कपड़ा उद्योग, (कताई व बुनाई) (खादी, हथकरघा, शक्तिकरघा व मिलकरघा), रेशम उद्योग तिलहन पर आधारित वनस्पति घी व वनस्पति तेल उद्योग, साबुन उद्योग, गन्ने पर आधारित गुड़, खंडसारी व चीनी, अचार-मुरब्बा, दाल मिल, बेकरी व कॉन्फेक्सनरी उद्योग, आदि। इसी में सुपारी, चूर्ण, पाली की मेहंदी व बांसवाड़ा का आम-पापड़, बीकानेर के पापड़-भुजिया, जोधपुर-नागौर क्षेत्र की मेथी, झालावाड़ व गंगानगर के रसदार फल, आबू-सिरोही क्षेत्र के टमाटर तथा पुष्कर के गुलाब के फूल, सब्जी व फल आदि आते है।

2. वन-आधारित उद्योग—इसमें लकड़ी का फर्नीचर उद्योग, रबड़, गोंद, रात, लाख आदि पर आधारित उद्योग आते है।

3. पशु-धन आधारित उद्योग—राजस्थान में पशु-धन आधारित उद्योगों में ऊन, दूध, दूध से बने पदार्थ, चमड़ा, खालें हड्डियाँ व मांस आदि शामिल होते हैं।

4. खनिज-पदार्थ आधारित उद्योग—(अ) धातु-आधारित जैसे इस्पात उद्योग, मशीनरी, परिवहन का सामान (वैगन), धातु से बनी वस्तुएँ जैसे इस्पात का फर्नीचर, मोटर-साइकिल आदि।

(ब) अधातु खनिज उद्योग (non-metallic mineral industries)—इसमें पत्थर व मारबल से बनी वस्तुएं, काँच व काँच का सामान, चायना क्ले व सिरेमिक की इकाइयाँ, एस्बेस्ट्स, सीमेंट, सीमेंट पाइप आदि आते है।

राजस्थान में कृषि-आधारित, खनिज-आधारित, व पशु-आधारित उद्योगों का बड़ा महत्त्व है। इनके विकास से अकाल, निर्धनता व बेरोजगारी की समस्याओं

का समाधान निकालन म मदद मिल सकती है । इस समय राज्य म 23 सूती वस्त्र मिलें हैं, तीन चीनी के बडे कारखाने है तथा वेजिटेबल घी व वनस्पति तेल की कई फैक्ट्रिया है ।

राजस्थान मे सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योग[1]
(Public Sector Industries in Rajasthan)
(अ) राजस्थान सरकार के औद्योगिक उपक्रम
(Industrial Undertakings of Rajasthan Government)

राज्य सरकार के निम्न औद्योगिक उपक्रमो मे उत्पादन किया जाता है—

(1) दी गगानगर शुगर मिल्स लि., श्री गगानगर—जनवरी 1957 म *'बीकानेर औद्योगिक निगम लि.' का नाम बदलकर 'दी गगानगर शुगर मिल्स लि.'* रखा गया था। 1986-87 म इसकी अधिकृत पूंजी 2·5 करोड रु. थी जो 50 रु. प्रति शेयर के अनुसार 5 लाख शेयरो मे विभक्त थी। इसकी परिदत्त पूंजी लगभग 2·23 करोड रु. थी।

कम्पनी वर्तमान मे निम्न इकाइयो का संचालन कर रही है :

1. शुगर फैक्ट्री, श्री गगानगर, जहाँ गन्ने एव चुकन्दर से चीनी का उत्पादन किया जाता है ।

2. श्री गगानगर एव अटरू म स्थित डिस्टलरीज व राज्य के अन्य भागो म स्थित मदिरा गृह/डिस्टलरीज मे शोधित स्पिरिट (rectified spirit) का उत्पादन किया जाता है। मदिरा-गृहो से *लाइसैंस-शुदा व्यापारियो का मदिरा* सप्लाई की जाती है।

3 कोटा व उदयपुर डिवीजन के जनजाति क्षेत्र मे देशी मदिरा की दुकाना का सचालन तथा,

4 हाईटेक ग्लास फैक्ट्री, धौलपुर म काच का सामान, बोतलें व रेलवे जार्स बनाये जाते हैं ।

इन चारो प्रकार की इकाइया से कम्पनी का 1985 -86 म कर से पूर्व लाभ 11 2 लाख रुपये व 1986–87 म 20 4 लाख रुपये प्राप्त हुए । 1985–86 मे पानी की कमी, अकाल व पायरोला नामक कीडे के कारण चीनी के उत्पादन को धक्का लगा ।

---

1 विस्तृत विवरण अगले अध्याय मे दिया गया है । यहाँ सक्षिप्त परिचय दिया जाता है ।
स्रोत . Public Enterprises Profile, 1986–87, Bureau of Public Enterprises, State Enterprises Department, Government of Rajasthan, Jaipur, July, 1988

धौलपुर की हाईटेक ग्लास फैक्ट्री को 1 जुलाई, 1986 से लीज पर चलाया जा रहा है। यह मदिरा विभाग के लिए बोतलों का उत्पादन करता है।

(ii) राजस्थान स्टेट केमिकल्स वर्क्स, डीडवाना—इसके अन्तर्गत निम्न तीन इकाइयाँ आती हैं :

(क) सोडियम सल्फेट वर्क्स, (ख) सोडियम सल्फेट प्लान्ट, (ग) सोडियम सल्फाइड फैक्ट्री।

(क) सोडियम सल्फेट वर्क्स—नमक की क्यारों में सर्दी के मौसम में सल्फेट अलग होकर धीरे-धीरे परतों में जम जाता है 10-12 वर्षों में यह परत मोटी हो जाती है जिसे क्रूड सोडियम सल्फेट कहा जाता है। यह सल्फेट सल्फाइड उत्पादन के काम आता है जो विभागीय सल्फाइड इकाई में प्रयुक्त किया जाता है।

(ख) सोडियम सल्फेट प्लान्ट—ब्राइन से सोडियम सल्फेट निकालकर शुद्ध नमक बनाने की योजना 1960 से शुरू की गई थी। सितम्बर 1981 से यह संयंत्र मैसर्स डीडवाना केमिकल्स प्राइवेट लि. को 3·91 लाख रु के वार्षिक लीज पर दिया गया। अब विवाद के कारण यह प्लान्ट बन्द पड़ा है।

(ग) सोडियम सल्फाईड फैक्ट्री—सोडियम सल्फाईड क्रूड सल्फेट व कोयले की रासायनिक प्रक्रिया से बनाया जाता है। यह 1966 में शुरू किया गया था। सोडियम सल्फाईड चमड़ा व रंगाई उद्योग में काम आता है। इसे पिछले वर्षों में घाटा उठाना पड़ा है।

(iii) राजकीय लवण स्रोत, डीडवाना व पंचपदरा—डीडवाना का नमक स्रोत 1910 एकड़ में फैला है। वर्तमान में 400 क्यारे पुश्तैनी देशवालों द्वारा तथा 800 क्यारे विभाग द्वारा दिये गये 10 वर्ष के लीज पर कार्यरत हैं। स्रोत के दोनों तरफ बांध लगाकर वर्षा का पानी इकट्ठा किया जाता है। यह पानी रिसकर नमक उत्पादन क्षेत्र में आता है। इस पानी को ब्राइन कहा जाता है। डीडवाना के ब्राइन में नमक के अलावा सोडियम सल्फेट प्रचुर मात्रा में मिला हुआ होता है जिससे यहाँ बनने वाला नमक अधिकतर खाने के काम नहीं आता।

पचपदरा स्रोत 32 वर्गमील में फैला है। यहाँ नमक के उत्पादन की क्षमता 6 लाख क्विंटल सालाना है। नमक का उत्पादन पुश्तैनी खारवालों के द्वारा किया जाता है।

(iv) स्टेट वूलन मिल्स, बीकानेर—1968 में बीकानेर में 1,200 तकुए लगाकर एक ऊनी मिल स्थापित की गई थी जो गलीचे, बनियान, कम्बल तथा बुनाई का ऊनी धागा तैयार करती है।

लगातार घाटे में चलने के कारण जून, 1976 में इसे मैसर्स जगन्नाथ जीवन मल वूलन मिल्स प्रा. लि. को 10 वर्ष के लिए 18·12 लाख रुपये वार्षिक लाइसेंस राशि पर पट्टे पर दिया गया था। लेकिन समय पर पट्टा राशि न मिलने के

कारण अप्रेल 1966 मे न्यायालय से आदेश प्राप्त करके इसे सरकार ने पुनः अपने हाथ मे ले लिया है तथा इसके विक्रय की कार्यवाही चल रही है।

(v) चूरू व लाडनू की वर्स्टेड स्पिनिंग मिल्स भी राजस्थान सरकार के औद्योगिक उपक्रमो मे आती है। ये राजस्थान लघु उद्योग निगम ने चालू की है। ये ऊन की कताई करती है। चूरू मे राजस्थान वूल कॉमर्स नामक इकाई भी इसी निगम ने स्थापित की है।

(vi) राजस्थान स्टेट टेनरीज लि., टोंक—टोंक मे एक लेदर टेनरी राज्य उपक्रम विभाग के अन्तर्गत स्थापित की गयी है। यह लेदर फोम, स्किन/हाइड्स व सोल लेदर तैयार करती है। इसका मुख्य उत्पाद भेड की खाल से तैयार किया गया चमडा है जिसे देश-विदेश मे बेचा जाता है। चमडे का प्रयोग चमडे के वस्त्र, दस्ताने तथा बैग्स आदि बनाने मे किया जाता है। कुल माल का लगभग 50% विदेशो को निर्यात किया जाता है। टेनरी की वित्तीय दशा बहुत खराब है। इसे 1983–84 मे 62·7 लाख रु., 1984–85 मे 44·1 लाख रु., 1985–86 मे 55 लाख रु., व 1986–87 मे 52·8 लाख रु., का घाटा हुआ है। श्री आई. एस. कावडिया की अध्यक्षता मे नियुक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को पेश की थी ताकि कम्पनी की दशा सुधारी जा सके।

(vii) फ्लोर्सपार बेनिफिशियेशन प्लांट, माडो-की-पाल, डूंगरपुर जिला—राजस्थान राज्य औद्योगिक व खनिज विकास निगम (अब राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम लि अथवा 'रीको') ने डूंगरपुर जिले मे माडो-की-पाल नामक स्थान पर फ्लोर्सपार बेनेफिशियेशन सन्यन्त्र डाला है। यहां एसिड ग्रेड का फ्लोर्सपार तैयार किया जाता है। फ्लोर्सपार धातुकार्मिक उद्योगो मे एक महत्त्वपूर्ण खनिज माना जाता है। यह इस्पात बनाने व फाउण्ड्री कार्य मे प्रयुक्त होता है। इस प्लांट पर उत्पादन-कार्य जारी है। इससे विदेशी मुद्रा की बचत होती है।

(आ) केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित शात औद्योगिक उपक्रम या संस्थान
(Industrial Undertakings of the Central Government)

(i) हिन्दुस्तान जिंक लि., देबारी, (उदयपुर)—भारत सरकार ने 10 जनवरी, 1966 को हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड की स्थापना की थी। उदयपुर के पास जावर नामक स्थान पर सीसे व जस्ते के भण्डार पाये गये हैं। जस्ते के डले जिंक स्मेल्टर मे प्रयुक्त किये जाते है जो देबारी में स्थित है। यह उदयपुर के समीप है। सीसे के डले बिहार के टुन्डु स्थान मे गलाने के लिए भेज दिये जाते हैं। जस्ता-सीसा गलाने से सल्फ्यूरिक एसिड भी प्राप्त होता है जिससे सिंगल सुपर-फॉस्फेट खाद बनाया जाता है। इस प्रकार यहाँ जिंक कैडमियम, चांदी, सिंगल सुपर फास्फेट व गन्धक का तेजाब आदि उत्पन्न किये जाते है। स्मरण रहे कि हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड के

(v) साभर सॉल्ट्स लि —यह हिन्दुस्तान सॉल्ट्स लि की सहायक संस्था है। इसने 1964 से कार्यारम्भ कर दिया था। इसके द्वारा कई तरह के नमक तैयार किये जाते है। सांभर झील 90 वर्गमील मे फैली है। सांभर सॉल्ट्स मे 60% अश हिन्दुस्तान सॉल्ट्स का तथा 40% राजस्थान सरकार का है। इसे पिछले वर्षों मे घाटा उठाना पडा है। 1987–88 मे 45 लाख रुपयो का घाटा हुआ है।

(vi) मॉडर्न बेकरीज इण्डिया लि. विश्वकर्मा औद्योगिक क्षेत्र जयपुर। यह मॉडर्न फूड इन्डस्ट्रीज (इण्डया) लि. के अन्तर्गत है। यह 13 ब्रेड इकाइयाँ सचालित करती है।

(vii) राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड इन्स्ट्रूमेण्ट्स लि —यह कनकपुर मे स्थित है। इसमे भारत सरकार का 51% अश है तथा शेष रीको का है। यहाँ इलेक्ट्रोनिक मिल्क टस्टर्स बनाये जाते हैं। इसे 1987–88 मे कर के पश्चात 42 लाख रुपये का मुनाफा हुआ है जो पहले से अधिक है।

यह ध्यान देने की बात है कि विभिन्न राज्यो के बीच केन्द्रीय सरकार के उपक्रमो मे विनियोगो का वितरण काफी असमान रहा है। 1966–67 मे केन्द्रीय सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमो मे राजस्थान मे किया गया पूँजी-विनियोजन लगभग 17 करोड रुपये था जो बढकर 1977–78 मे 277 करोड रुपये हो गया। इस प्रकार पिछले वर्षों मे केन्द्रीय सरकार ने राजस्थान मे सार्वजनिक उपक्रमों मे विनियोग की राशि बढायी है। 1985 मे राजस्थान का समस्त राज्यो के केन्द्रीय औद्योगिक विनियोगो मे 1·4% अश था जबकि मध्यप्रदेश व उडीसा आदि मे इस्पात उद्योगो की स्थापना के कारण यह प्रतिशत काफी ऊँचा था। यह एक उत्साहवर्द्धक बात है कि पिछले वर्षों मे राजस्थान मे केन्द्रीय सरकार की तरफ से औद्योगिक उपक्रमो मे विनियोगो की राशि बढी है। राष्ट्रीय थर्मल पावर निगम द्वारा अन्ता (कोटा) मे गैस-आधारित पावर प्रोजेक्ट लगाये जाने पर राजस्थान मे केन्द्रीय क्षेत्र मे विनियोगो की राशि और बढेगी।

पिछले वर्षों मे राज्य मे औद्योगिक उत्पादन बढा है तथा इसमे विविधता भी आयी है। अब राजस्थान मे सिन्थेटिक यार्न, सीमेंट टी वी सेट्स व पिक्चर ट्यूब्स, रसायनो व उर्वरको, टायर व ट्यूब्स इलेक्ट्रोनिक उपकरणों, जस्ता, ताँबा, कॉपर फायल एण्ड लेमिनेट व अन्य कई प्रकार की मदें बनने लगी हैं। राजस्थान का इलेक्ट्रोनिक्स के उत्पादन मे देश मे 5% योगदान होता है। राज्य मे अति लघु, लघु व सगठित क्षेत्र मे इलेक्ट्रोनिक इकाइयाँ 140 है जिनमे 6 हजार व्यक्ति लगे हैं तथा 50 करोड रु की पूँजी लगी है।

भिवाडी मे इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगों की प्रगति—राज्य मे भिवाडी औद्योगिक क्षेत्र का विकास उल्लेखनीय है। यहाँ मई, 1987 मे (Kienzle Indian Samay-Ltd) द्वारा क्वार्ट्ज एनालाग टाइमिंग मूवमेंट का उत्पादन करने के लिए एक

प्लास्टिक का सामान, रसायन, तेल, फर्नीचर, आदि वस्तुएं बनाने में संलग्न हैं।

राज्य की पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास

विभिन्न योजनाओं में औद्योगिक विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय तथा कार्यक्रमों का विवरण नीचे दिया जाता है।

राजस्थान की पंचवर्षीय योजनाओं में सार्वजनिक व्यय में सर्वोच्च प्राथमिकता "सिंचाई व शक्ति" को दी गई है। 'उद्योग व खनन' पर व्यय की राशि कुल सार्वजनिक परिव्यय का काफी नीचा अंश रही है। यह निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

योजनाओं में उद्योग व खनन पर परिव्यय[1]

योजना	सार्वजनिक क्षेत्र में कुल वास्तविक परिव्यय (करोड़ रुपये में)	उद्योग व खनन पर परिव्यय (करोड़ रुपये में)	उद्योगों व खनन पर कुल परिव्यय का %
I	54	0 46	0·8
II	103	3·37	3 3
III	213	3·31	1 6
तीन वार्षिक योजनाएँ : (1966–69)	137	2·06	1·5
IV	309	8·55	2·8
V (1974–79)	858	34·53	4·0
वार्षिक योजना (1979–80)	290	11·87	4·1
VI (1980–85)	2131	83·66	3·9
VII (1985–90) (प्रस्तावित)	3000	190·52	6·35
1985–88	1600	70·0	4·4
1988–89	710	29·0	4·1
1989–90	705	39·3	4·95 या 5·0

तालिका से स्पष्ट होता है कि छठी योजना की अवधि (1980–85) में उद्योग व खनन पर किया गया परिव्यय कुल सार्वजनिक क्षेत्र के परिव्यय का 3·9%

1. आय-व्ययक अध्ययन, 1989–90, राजस्थान, पृष्ठ 48 व पृष्ठ 123–124.

रहा। सातवीं योजना (1985–90) की अवधि में इसे बढ़ाकर 6·4% रखने का प्रावधान किया गया था। 1989–90 की वार्षिक योजना में उद्योग व खनन के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र के परिव्यय का लगभग 5% ही आवंटित किया गया है।

माथुर समिति ने सिफारिश की है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना में प्रस्तावित सार्वजनिक व्यय का लगभग 10% औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए निर्धारित किया जाए। (रिपोर्ट, खण्ड I पृ. 47)

1969 से राजस्थान के औद्योगिक विकास की प्रवृत्तियाँ

1. चतुर्थ योजनाकाल में औद्योगिक विकास

राजस्थान की चतुर्थ योजना में औद्योगिक क्षेत्र में तीव्रगति से प्रगति हुई थी। पंजीकृत फैक्ट्रियों की संख्या 1968 में 1846 से बढ़कर 1973 के अन्त में 2800 हो गई थी। 1969 में राजस्थान राज्य औद्योगिक खनन विकास निगम (RIMDC) स्थापित किया गया था। निगम ने औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया था। योजना के अन्त में वनस्पति तेल, उर्वरकों, नायलोन सूत, सीमेंट व बॉल बियरिंग का उत्पादन योजना के प्रारम्भ की तुलना में बढ़ा था।

औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए 16 जिले पिछड़े हुए घोषित किये गये जिनमें से 6 जिलों को पूँजी-निवेश में 15 प्रतिशत केन्द्रीय अनुदान (सब्सिडी) के लिए चुना गया था। चतुर्थ योजना की अवधि में झामर-कोटड़ा में रॉक-फॉस्फेट का उत्पादन चालू हुआ जिससे आगे चल कर विकास के नये अवसर खुले।

2. पांचवी पंचवर्षीय योजना 1974-79 व बाद में औद्योगिक विकास

इस अवधि में लघु-उद्योगों हस्तशिल्प एवं खादी व ग्रामीण उद्योगों के विकास पर अधिक बल दिया गया। औद्योगिक विकास के लिए कई प्रकार की रियायतें प्रदान की गई जैसे चुंगी शुल्क से मुक्ति, विद्युत-शुल्क के भुगतान की छूट, बिक्री-कर की एवज में ब्याज-मुक्त कर्ज, आदि।

RIMDC (अब RIICO) RFC RAJSICO (राजस्थान लघु उद्योग निगम) व जिला उद्योग केन्द्र (District Industries Centres) (DICs) ने औद्योगिक विकास में सहायता प्रदान की है। इनके कार्यों पर आगे चल कर प्रकाश डाला गया है। रीको की स्वयं 3 परियोजनाएँ (टी वी, वाच एसेम्बली व राजस्थान कम्यूनिकेशन) हैं तथा इसने संयुक्त क्षेत्र में कई परियोजनाओं को स्थापित करने में मदद दी है। राजस्थान लघु उद्योग निगम ने गलीचा प्रशिक्षण केन्द्रों व हस्त-शिल्प को सहायता प्रदान की है। 1976 में हथकरघा विकास बोर्ड स्थापित किया गया था। सूती खादी व ग्रामीण उद्योगों में उत्पादन में वृद्धि हुई है एवं इनमें अधिक लोगों को रोजगार दिया गया है। सूती खादी का उत्पादन 1977–78 में 37 लाख रु. से बढ़कर 1986–87 में 6 करोड़ रु. ऊनी खादी का 3·7 करोड़ रु. से बढ़कर

17·6 करोड रु. तथा ग्रामीण उद्योगो का 7 5 करोड रु से बढकर 104 करोड रु. हो गया है।[1]

3 छठी पचवर्षीय योजना, 1980–85 मे औद्योगिक विकास

छठी योजना मे उद्योग व खनन के विकास पर 83·7 करोड रु की राशि व्यय की गई जिसमे से ग्रामीण उद्योगो पर 23 2 करोड र मध्यम व बडे उद्योगो पर 44 1 करोड रु. व खनन पर 16 4 करोड रु व्यय किये गये।

सरकार ने उद्योगो के लिए इन्फ्रास्ट्रक्चर सब्सिडी व बिक्री की सुविधाओ का विस्तार किया है। 1979 मे समस्त औद्योगिक बस्तियो का काम रीको को सौंप दिया गया था।

27 जिलो मे से 16 जिलो को भारत सरकार न विनियोग सब्सिडी प्रदान की तथा शेष 11 जिलो को (1 अप्रैल 1983 से) राज्य सरकार ने सब्सिडी की सुविधा प्रदान की।

राज्य मे लघु उद्योगो की सख्या उत्तरोत्तर बढती गयी है। दिसम्बर 1988 के अत मे उद्योग विभाग के द्वारा पजीकृत लघु औद्योगिक इकाइयो व टाइनी इकाइयो की सख्या लगभग 1 42 लाख थी जिनमे विनियोग की राशि 668 करोड रु. व रोजगार 5 25 लाख व्यक्तियो को मिला हुआ था।

छठी योजना के अत मे रीको के स्वय के 3 प्रोजेक्ट व 29 सयुक्त क्षेत्र के प्रोजेक्ट तथा 100 सहायता-प्राप्त क्षेत्र के प्रोजेक्ट चल रहे थे। योजना के अन्त मे रीको के पास 161 औद्योगिक बस्तियाँ थी।

राजस्थान वित्त निगम ने छठी योजना की अवधि मे 172 करोड र की वित्तीय सहायता वितरित की। 1984–85 मे राजस्थान लघु उद्योग निगम 30 गलीचा प्रशिक्षण केन्द्र चला रहा था। राजकीय उपक्रम विभाग ने नमक खानो आदि के उत्पादन को बढाने मे योगदान दिया है। 1984 मे हाथकरघा विकास निगम स्थापित किया गया था 1979–80 मे हाथकरघे के वस्त्र का उत्पादन 14 7 लाख मीटर से बढकर 1984–85 मे 46 लाख मीटर, सूती खादी का 3·3 करोड र से बढ कर 5 1 करोड रु, तथा ऊनी खादी का 10 करोड रु. से बढ कर 11 8 करोड रु हो गया। ग्रामीण उद्योगो का उत्पादन 12·2 करोड रु से बढ कर 74 करोड रु. हो गया। इसी अवधि मे ग्रामीण उद्योगो मे रोजगार 37 हजार व्यक्तियो से बढ कर 1 77 लाख हो गया।

पंचवर्षीय योजनाओ मे कुटीर लघु उद्योगो का विकास

विभिन्न योजनाओ मे ग्रामीण व लघु उद्योगो के विकास के लिए वास्तविक व्यय की राशियाँ इस प्रकार रही—

---

1. 10 years of Industrial & Mineral Statistics Rajasthan 1977-78 to 1986–87, August 1988, DES Jaipur, pp 17–18

	(लाख रुपयों में)
I योजना	32·4
II योजना	325 3
III योजना	198·2
तीन वार्षिक योजनाएं (1966–69)	31·4
IV योजना	87·7
V योजना	395 0
VI योजना	2318·0

तालिका से स्पष्ट होता है कि द्वितीय योजना में ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास के लिए काफी धनराशि व्यय की गई थी। छठी योजना में इनके विकास पर लगभग 23·2 करोड़ रु व्यय किये गये हैं।

लघु उद्योगों को कम ब्याज पर कर्ज दिये गये हैं तथा कारीगरों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। औद्योगिक बस्तियों का विकास किया गया है।

राजस्थान लघु उद्योग निगम लघु इकाइयों के माल की बिक्री की व्यवस्था करता है। इसने गलीचा प्रशिक्षण केन्द्रों तथा हस्तशिल्प के विकास में सहायता देने के अलावा सांगानेर हवाई अड्डे पर एयर कारगो काम्प्लेक्स (Air Cargo Complex) की स्थापना में भी योगदान दिया है। कॉम्प्लेक्स के माध्यम से हस्तकला वस्तुओं, जवाहरात, सिले-सिलाये वस्त्रों, गलीचों, आदि के निर्यात में वृद्धि हुई है।

1986–87 में राज्य में खादी उद्योगों में 1·44 लाख व्यक्ति रोजगार (पूर्णकालिक व अंशकालिक) पाये हुए थे तथा ग्रामीण उद्योगों में 2·23 लाख व्यक्ति कार्यरत थ।

राज्य के विभिन्न भागों में हथकरघा, हस्तशिल्प, खादी, ग्रामीण उद्योगों व लघु उद्योगों के विकास की काफी सम्भावनाएं हैं।

राजस्थान में जिलेवार फैक्ट्रियों में औद्योगिक उत्पादन की स्थिति

राज्य में जिलेवार फैक्ट्रियों का वितरण बहुत असंतुलित पाया जाता है। 1982–83 में राज्य में 2368 फैक्ट्रियों से प्राप्त सूचना का अध्ययन करने से पता चलता है कि लगभग 3/4 फैक्ट्रियां निम्न 7 जिलों में केन्द्रित थीं—

जिला	1982–83 में फैक्ट्रियों की संख्या
1 जयपुर	546
2 श्री गंगानगर	257
3 पाली	172
4 अजमेर	184
5 जोधपुर	232
6 उदयपुर	177
7. कोटा	133
सात जिलों का जोड़	1701 (कुल का 72%)

इसी अवधि मे जैसलमेर जिले मे फैक्ट्रियो की सख्या 3, डूंगरपुर मे 2, जालोर मे 2, झुन्झुनूं मे 7, सिरोही मे 11 तथा झालावाड मे 7 थी। 1982-83 मे आठ जिलो मे जैसे जयपुर, अजमेर कोटा, श्रीगगानगर, पाली, जोधपुर उदयपुर व भीलवाडा जिलो मे फैक्ट्रियो मे लगभग 1·85 लाख व्यक्ति काम पाये हुए थे, जो कुल फैक्ट्री रोजगार का लगभग 82% या 4/5 अश था। शेष 19 जिलो मे केवल 1/5 फैक्ट्री रोजगार मिला हुआ था। 1970 से 1982-83 के बीच पाली व उदयपुर जिलो का औद्योगिक स्थान ऊँचा हुआ है। लेकिन फैक्ट्री-रोजगार के हिसाब से प्रथम चार स्थान जयपुर कोटा, श्रीगगानगर व अजमेर को ही मिले हुए हैं। अत: ये राजस्थान के अपेक्षाकृत अधिक विकसित जिले माने जा सकते हैं। पाली जिले मे सूती वस्त्रो की छपाई, रगाई व ब्लीचिंग का काम बढा है तथा उदयपुर जिले मे अधात्विक खनिज पदार्थों का काम बढा है। राज्य के अधिकाश जिले आधुनिक फैक्ट्री उत्पादन की दृष्टि से काफी पिछडे हुए माने जाते हैं।

राज्य मे औद्योगिक विकास के लिए रियायतें व सुविधाएं[1]

(Concessions & Facilities for Industrial Development in the State)

पिछली दो दशाब्दियो मे राजस्थान सरकार ने औद्योगिक विकास के लिए उद्यमकर्त्ताओ को आकर्षित करने के लिए कई प्रकार की रियायतें, सुविधाएँ तथा प्रेरणाएँ प्रदान की हैं। राज्य का उद्योग-निदेशालय (Directorate of Industries) लघु व कुटीर उद्योगो की प्रगति का कार्य देखता है। इसके द्वारा लघु इकाइयों का पजीकरण किया जाता है तथा यह उनके लिए कच्चे माल का आवटन करने की सिफारिश करता है। इसी के अन्तर्गत 27 (धौलपुर सहित) जिला-उद्योग-केन्द्र (District Industries Centres) (DICs) काम कर रहे हैं जिनमे RFC, RIICO व RSIC तथा व्यापारिक बैंको के प्रतिनिधि सचालन कार्य मे भाग ले रहे है।

राजस्थान सरकार ने औद्योगिक क्षेत्रो के विकास मे तथा उद्यमकर्त्ताओ को पूंजी की सुविधा प्रदान करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओ का विवरण इस प्रकार है—

1. भूमि का आवंटन—राज्य सरकार ने चुने हुए स्थानो पर उद्योगो की स्थापना के लिए बडे भू-क्षेत्र निर्धारित किये है। इन औद्योगिक क्षेत्रो (industrial areas) मे उद्योगो को 99 वर्ष के 'लीज' पर भूमि आवटित की जाती है। भूमि आवटन की दरें विभिन्न क्षेत्रो मे अलग-अलग रखी गयी है। ये पिछडे जिलो के औद्योगिक क्षेत्रो मे अपेक्षाकृत कम हैं। 30 औद्योगिक क्षेत्रो मे भू-आवटन की दरें सशोधित की गई हैं। अब ये प्रति वर्ग मीटर 15 रुपये (फतेहनगर, प्रतापगढ व

---

1. RIICO Newsletter, July 1989, pp. 1–8.

खण्डला में) से 60 रुपये (बालोतरा, पाली (चतुर्थ चरण) तथा मेवाड (उदयपुर में) की गई हैं।

2 औद्योगिक बस्तियां व औद्योगिक क्षेत्र—(रीको) (राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं विनियम निगम लि.) ने औद्योगिक क्षेत्र विकसित किये हैं। इनमें पावर सडक, जल व पानी के निकास की सुविधाएं दी गई हैं। इसके द्वारा विकसित किये गये क्षेत्र जयपुर (विश्वकर्मा, मालवीय), कोटा, अलवर, जोधपुर, उदयपुर अजमेर, पाली, चिड़ावा, पिलानी, बून्दी, टोंक, निवाई, सीकर, बालोतरा बाड़मेर, सादुलपुर व चित्तौड़गढ़ आदि में स्थित हैं। अब तक रीको ने 174 औद्योगिक क्षेत्रों का प्रशासनिक कार्य अपने ऊपर लिया है। विभिन्न स्थानों में उद्योगों को दस हजार से अधिक भूखण्ड (plots) आवंटित किये जा चुके हैं।

व्यापारिक बस्तियों में नीचे दूकान व ऊपर रिहायशी मकान की व्यवस्था होती है। रीको ने इलेक्ट्रोनिक उद्योगों के लिए जयपुर व पिलानी में कार्यात्मक बस्तियाँ (functional estates) विकसित की हैं।

भिवाडी औद्योगिक क्षेत्र में काफी पूँजी का विनियोजन हो चुका है। यह अपनी क्षमता के उच्च शिखर पर पहुँच गया है। अब वहाँ पर्यावरण-सम्बन्धी समस्याएं बढने लगी हैं। रीको खस्ता हाल औद्योगिक क्षेत्रों को बेचने का कार्य भी संचालित करता है। भिवाडी औद्योगिक क्षेत्र की ही कुछ अतिरिक्त भूमि को भी रीको ने अलवर नगर विकास न्यास को बेचा है।

3. वित्तीय सहायता—उद्योगों को वित्तीय सहायता राज्य सरकार के उद्योग विभाग, राजस्थान वित्त निगम, राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम, भारतीय स्टेट बैंक व इसके सहायक बैंक तथा अन्य राष्ट्रीयकृत बैंकों से प्राप्त होती है। इस सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति का उल्लेख नीचे किया जाता है।

राजस्थान वित्त निगम (RFC) लघु व मध्यम उद्योगों को दीर्घकालीन कर्ज देता है जिनकी राशि प्रति इकाई 2 हजार रु. से 30 लाख रुपये के बीच हो सकती है। अब यह बढ़ाकर 60 लाख रुपये कर दी गयी है। कर्ज देने की कई स्कीमें हैं जैसे कम्पाजिट टर्म लोन उदार ऋण योजना, परिवहन ऋण (सिंगल वाहन), होटल कर्ज, डीजल जेनरेटिंग के लिए कर्ज, टेक्नीशियन सहायता स्कीम, अनुसूचित जाति/जनजाति उद्यमकर्ता स्कीम, भूतपूर्व सैनिकों के लिए स्कीम, शारीरिक दृष्टि से अयोग्य व्यक्तियों तथा डॉक्टरों के लिए स्कीम। एकाकी स्वामित्व व साझेदारी फर्म के लिए ऋण की अधिकतम सीमा 15 लाख रुपये रखी गई है। RFC अपनी उदार ऋण योजना (Soft Loan Scheme) के अन्तर्गत 2 हजार रुपये से 2 लाख रुपये तक की राशि लघु इकाइयों को भूमि खरीदने, फैक्ट्री का भवन बनाने व संयन्त्र तथा मशीनरी खरीदने के लिए कर्ज के रूप में देता है (टेक्नोक्रेट्स को 5 लाख रु. तक)। टेक्नीशियनों को 5 लाख रुपयों तक कर्ज (बिना मार्जिन रखे) दिये जाते हैं।

कम्पोजिट टर्म लोन योजना के अन्तर्गत 2 हजार रु से 25 हजार रु तक का कर्ज दस्तकारो व उद्यमियो को उपलब्ध कराया जाता है।

अब रीको 90 लाख रुपये तक के अवधि-कर्ज (term-loans) प्रदान कर सकता है। व्यापारिक बैंक 80 लाख रुपये तक के कर्ज दे सकते है। इस प्रकार RFC RIICO व व्यापारिक बैंक एक साथ 200 लाख रुपया तक का कर्ज (RFC की सीमा के बढ़ने पर यह भी बढ़ गयी है प्रदान कर सकते हैं जिसम 300 लाख रुपयो तक की लागत के प्रोजक्ट की वित्तीय व्यवस्था सम्भव हो सकती है। शेष राशि शेयर बेचकर जुटायी जा सकती है। उद्योग विभाग भी 25 000 रुपये तक कर्ज लघु इकाइयों को उपलब्ध करता है।

रीको व RFC के द्वारा बिक्री कर की राशि के बराबर ब्याज-मुक्त ऋण (Interest free lonas) भी दिये जाते है। राज्य सरकार ने 5 मार्च 1987 स 31 मार्च 1992 तक की अवधि के लिए उद्योगो को बिक्री कर से कुछ वर्षो के लिए मुक्त व आस्थगन" रखने की नई प्रेरणादायक स्कीम भी घोषित की है।

4. विद्युत की सप्लाई बढ़ायी गई है एव इस दिशा मे प्रयास जारी है। विद्युत-प्रशुल्क पर रिबेट दी जाती है। जल-सप्लाई व कच्चे माल की पूर्ति बढाई गयी है।

5 करो मे राहत (Tax Relief—सरकार ने कारखानो म लगायी जाने वाली मशीनरी को चु गी शुल्क से मुक्त किया है। कच्च माल पर भी यह छूट दी गयी है। राज्य सरकार ने मशीनो व कच्चे माल पर बिक्री-कर की छूट दी है। विद्युत-शुल्क म भी छूट दी गयी है। अब बिक्री-कर से छूट आस्थगन की नई स्कीम लागू की गई है।

6 राजस्थान के पिछड़े जिलो का औद्योगिक विकास—जैसा कि पहले कहा जा चुका है राज्य मे 16 जिलो को औद्योगिक विकास की दृष्टि से पिछड़ा घोषित किया गया है। ये जिले इस प्रकार हैं—जालोर, नागौर, जोधपुर, चूरू, सीकर झालावाडा टोंक अलवर, सिरोही, उदयपुर बांसवाडा, डूगरपुर, भीलवाडा झुझुनु जैसलमेर, व बाडमेर। सितम्बर 1988 तक 27 जिलो मे से 16 को भारत सरकार की तरफ स विनियोग-सब्सिडी दी जाती थी (जो बाद मे बद कर दी गई) तथा शेष 11 जिलो को राज्य सरकार की तरफ से दी जाती रही है।

सब्सिडी की व्यवस्था—पहल केन्द्रीय सब्सिडी की व्यवस्था मे पिछड़े जिलो का तीन श्रेणिया A, B तथा C के अन्तर्गत विभक्त किया गया था जो इस प्रकार थ. (A) इसक अन्तगत 25% सब्सिडी जैसलमेर, सिरोही चूरू व बाडमेर जिलो के लिए रखी गयी थी। ये शून्य उद्योग जिले (No industrics Districts (NIDs) घोषित किये गये। सब्सिडी की अधिकतम सीमा 25 लाख रुपये रखी गई।

(B) इसके अन्तर्गत 15 प्रतिशत सब्सिडी पाच जिलों बाँसवाडा, अलवर, भीलवाडा, जोधपुर नागौर व उदयपुर के लिए रखी गयी तथा इसकी अधिकतम राशि 15 लाख रुपए रखी गयी। (C) इसके अन्तर्गत 10 प्रतिशत सब्सिडी सात जिलों बाड़-वाडा, डूगरपुर, जालौर, झालावाड, झुंझुनू, सीकर व टोंक के लिए थी तथा सब्सिडी की अधिकतम राशि 10 लाख रुपये रखी गई थी।

इस प्रकार केन्द्रीय सब्सिडी की नई व्यवस्था काफी लचीली थी। शेष 11 जिलो—अजमेर, भरतपुर, बूंदी, बीकानेर, चित्तौगढ, जयपुर, गगानगर, कोटा, पाली सवाई माधोपुर, व धौलपुर के लिए राज्य सरकार सब्सिडी देती रही है जो बडी व मध्यम इकाइयों के लिए 10% (अधिकतम 10 लाख रु) एव लघु इकाइयों के लिए 15% (अधिकतम 3 लाख रु.) (अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए लघु इकाइयों पर 20%, तथा नन्ही (tiny) इकाइयों के लिए 25% रखी गई है। निम्न क्षेत्रों को सब्सिडी नही दी जाती। मत्स्य (अलवर), मरुधर (जोधपुर), जयपुर के विश्वकर्मा व मालवीय तथा मेवाड (उदयपुर)। सार्वजनिक वित्तीय सस्थाएं पिछडे क्षेत्र के विकास के लिए उदार शर्तों पर ऋण प्रदान करती है।

1 अप्रैल, 1985 से 31 मार्च 1990 तक के लिए ब्याज-मुक्त बिक्री कर कर्ज-व्यवस्था (Interest-free sales-tax loan scheme) भी जारी है। इस कर्ज के दिशा-निर्देश नीचे दिये जाते हैं—

(अ) बडे पैमाने के उद्योगो के लिए स्थिर परिसम्पत्ति का 8 प्रतिशत कर्ज, अधिकतम राशि 50 लाख रुपए तक, (आ) मध्यम श्रेणी के उद्योगो के लिए स्थिर परिसम्पत्ति का 15%, तथा अधिकतम सीमा 50 लाख रु. तक, (इ) लघु उद्योगो के लिए स्थिर परिसम्पत्तियो का 25% कर्ज तथा अधिकतम सीमा 50 लाख रु. तक, (ई) एक विकास खण्ड मे 1.5 करोड या ऊपर के स्थिर पूंजी-विनियोग से पहली बार स्थापित की जाने वाली औद्योगिक इकाई (Pioneering industry) को अधिकतम 1 करोड रु तक, (उ) 25 करोड रु. व अधिक के स्थिर पूंजी विनियोग से स्थापित किये जाने वाले प्रतिष्ठामूलक उद्योग (prestigious industry) के लिए 1.5 करोड रुपए तक कर्ज अथवा इतना ही कर्ज एक शुरू के उद्योग (pioneering industry) के लिए जिसमे 10 करोड रुपये तक का विनियोग हो।

इस ब्याज-मुक्त बिक्री-कर की स्कीम के कर्ज का भुगतान पाच समान किस्तों मे देय होगा और यह वितरण की तिथि के छठे वर्ष से चालू होगा।

23 मई 1987 को मुख्य मंत्री ने नये उद्योगो को उत्पादित माल पर बिक्री कर मे 31 मार्च 1992 तक रियायतें देने की घोषणा की थी। 5 मार्च 1987 के बाद उत्पादन मे आने वाले सभी नये उद्योगों को पिछडे जिलों मे सात वर्ष तक उत्पादित माल पर यह छूट दी गई। जब कि विकसित जिलो में यह पांच वर्ष तक दी गई। यह छूट आइसक्रीम, बडे सीमेंट, प्लांट, होटल तथा अधिक विद्युत की खपत वाली इकाइयो को नही दी गई।

पिछड़े जिलो मे छोटे उद्योगो के लिए छूट की सीमा उनकी स्थायी परिसम्पत्ति की 100% तक मध्यम व बडे उद्योगो के लिए 90% तक तथा विकसित जिलो के लिए ये सीमाए क्रमश: 85% व 75% तक रखी गई।

योजना के अन्तर्गत 'पायनिर्वरिंग' व 'प्रेस्टीजियस' उद्योगो को यह सुविधा दो अतिरिक्त वर्षों के लिए दी गयी। उद्योगो को बिक्री कर-मुक्ति के बजाय बिक्री कर-आस्थगन (Sales Tax Deferment) की सुविधा भी दी गई है।

(7) विभिन्न निगमो का राज्य के औद्योगिक विकास में योगदान

(1) राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एव विनियोग निगम लिमिटेड अथवा रीको—

यह नवम्बर, 1979 मे स्थापित किया गया था। इससे पूर्व राजस्थान औद्योगिक व खनिज विकास निगम (RIMDC) 1969 मे *स्थापित किया गया था। बाद* मे नवम्बर मे राजस्थान राज्य खनिज विकास निगम (RSMDC) के अलग से स्थापित होने के बाद रीको का कार्य क्षेत्र औद्योगिक विकास तक सीमित कर दिया गया। रीको के विभिन्न कार्य इस प्रकार हैं: (1) यह औद्योगिक क्षेत्रो/बस्तियों का निर्माण करता है। (11) सार्वजनिक सयुक्त व सहायता-प्राप्त क्षेत्रो मे औद्योगिक परियोजनाएं स्थापित करता है। (111) औद्योगिक उपक्रमो की शेयर पूंजी मे भाग लेता है, शेयरो का अभिगोपन (underwrite) करता है तथा स्वय औद्योगिक परियोजनाओ का सचालन कर सकता है। (1v) यह उद्यमकर्त्ताओ को कई प्रकार की रियायतें, सुविधायें व प्रेरणाएं देता है। इस प्रकार राज्य के औद्योगिक विकास मे इसका योगदान निरन्तर बढता जा रहा है। (v) यह प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार करवाता है तथा तकनीकी मार्ग-दर्शन करता है। यह वस्तुओ, क्षेत्रो व साधनो का सर्वेक्षण करवाता है। सरकार ने इसके वित्तीय साधनो मे वृद्धि की है। 31 मार्च, 198९ को इसकी अधिकृत पूंजी 50 करोड रुपये व परिदत्त पूंजी 37·145 करोड रुपये थी। इसने डिबेन्चर वेचकर भी साधन जुटाए हैं तथा इसे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से पुनर्वित्त व सीड पूंजी सहायता मिलती है।

सितम्बर, 1976 मे IDBI ने रीको को वित्तीय सस्था के रूप मे मान्यता प्रदान की थी जिससे इसकी विनियोग-सम्बन्धी क्रियाओ मे काफी वृद्धि हुई है। साधारणतया रीको सयुक्त-क्षेत्र (Joint sector) की परियोजनाओ की शेयर पूंजी (equity) मे 26% *अश लेता है (जहा 49% शेयर पब्लिक को बेचे जाते हैं) तथा* सहायता-प्राप्त परियोजनाओ (assisted projects) की 10% से 15% तक शेयर-पूंजी लेता है। इसके द्वारा 3 करोड रु. स अधिक राशि की परियोजनाओ को कर्ज नही दिया जाता बल्कि उनकी इक्विटी मे भाग लिया जाता है।

इसकी दो सहायक कम्पनियां (subsidiary companies) इस प्रकार है: (1) राजस्थान कम्यूनिकेशन्स लि., (11) राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स लि.। एक नई सहायक कम्पनी I. G. Telecom/Limited 20 मई, 1988 को पजीकृत हुई है।

1987-88 म रीको के कुल 186 प्रोजेक्ट उत्पादन म एव 79 क्रियान्वयन म थ।[1] इनम स तीन प्रोजेक्ट स्वय के क्षेत्र में, कुछ सयुक्त क्षेत्र मे व शेष सहायता प्राप्त क्षेत्र म ह। इनसे काफी प्रोजेक्ट पिछड़े क्षेत्रो मे लगाये गए हैं तथा कुछ जनजाति क्षत्रा म भी लगाये गए हैं। इस प्रकार रीको पिछड़े क्षेत्रों व जनजाति क्षेत्रो क विकास के लिए प्रयत्नशील रहा है।

रीको की स्वय की तीन परियोजनायें इस प्रकार है : टी. वी., घड़ी व ट्-वे रेडियो सचार-उपकरण परियोजनायें। टी-वी. इकाई मे टेलीविजन सेट्स का उत्पादन बढ़ा है तथा 51 सेन्टीमीटर नरग, 51 सेन्टीमीटर रगीन व 37 सेन्टीमीटर मिनी टी वी सेटस बनाये गये हैं।

रीको की वाच एसेम्बली इकाई म लाउडस्पीकर, डिजीटल क्लॉक, विद्युत इमरजन्सी लाइट्स आदि के निर्माण की योजना बनायी है। घडियो के उत्पादन की क्षमता ढाई-लाख से 3·6 लाख करने का कार्यक्रम बनाया गया है।

रीको ने सयुक्त क्षेत्र मे औद्योगिक परियोजनाओ की स्थापना को प्रोत्साहन दिया है। 1986-87 मे 33 इकाइयों मे उत्पादन चालू हो गया था, कुछ क्रियान्वयन की स्थिति म थीं तथा कुछ पाइप-लाइन मे थी, अर्थात् विचाराधीन थीं। सयुक्त क्षेत्र के प्रोजेक्टो म प्रसिद्धि इकाइयां कार्पेट यार्न व सिन्थेटिक यार्न बनाती है। इनमे कुछ के नाम व स्थान अध्याय के अन्त मे एक परिशिष्ट मे दिये गये हैं। रीको ने स्वय के क्षेत्र (सार्वजनिक क्षेत्र), सयुक्त क्षेत्र व सहायता-प्राप्त क्षेत्र सभी का विकास करने का प्रयास किया है। कुछ प्रोजेक्टो में विदशी टेक्नोलॉजी का भी उपयोग किया गया है। आशा है रीको के प्रयत्नो से भविष्य मे इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग का विकास होगा तथा राज्य के पिछड़े क्षेत्रों म भी औद्योगिक इकाइयो का विस्तार होगा।

31 मार्च, 1989 को रीको से वित्तीय सहायता प्राप्त 22 इलेक्ट्रोनिक्स प्रोजेक्ट उत्पादन मे आ चुके थे। इनमे स 11 भिवाड़ी, 6 जयपुर, 2 उदयपुर, तथा एक-एक अजमेर, अलवर व कोटा मे स्थित थ। इनमे से कुछ बड़े प्रोजक्टो के नाम इस प्रकार हैं, परताप राजस्थान कॉपर फोइ स एण्ड लेमीनेट्स लि. जयपुर, मामटल इण्डिया लि., भिवाडी, नोवा मैग्नटिक्स लि. (चरण I), भिवाडी तथा टेलीट्यूब इलेक्ट्रोनिक्स लि. भिवाड़ी।

अन्य कई इलेक्ट्रोनिक्स क प्रोजक्ट क्रियान्वयन व विकास के विभिन्न चरणो म थे। इस प्रकार, राज्य इलेक्ट्रोनिक्स के क्षेत्र मे काफी आगे बढ़ रहा है।

रीको ने 1987-88 म कुल लगभग 39·1 करोड़ रु. की वित्तीय सहायता स्वीकृत की तथा 24 9 करोड़ रु. की वितरित की जो पिछले वर्ष मे क्रमश: 33 8

1. RIICO, 19th Annual Report, 1987-88 p. 7.

रियम 8 सहरा मे स्थापित किये गये हृ। इसने फर्नीचर बनाने का केन्द्र जयपुर मे चालू किया है।

(iv) राज्य उपक्रम विभाग (State Enterprises Department)—इसकी दख-रेख मे निम्न इकाइयाँ सचालित की जा रही है। राजस्थान स्टेट केमिकल्स वर्क्स डीडवाना, राजकीय लवण स्रोत, डीडवाना व पचपदरा, राजस्थान स्टेट टेनरीज लि टोंक, गगानगर शुगर मिल्स लि. श्रीगगानगर, (हाई-टेक प्रिसीजन ग्लास लि. धौलपुर सहित) तथा राजकीय ऊनी मिल, बीकानर। इनका सक्षिप्त परिचय पहले दिया जा चुका है।

(v) अन्य सार्वजनिक वित्तीय सस्थाओ द्वारा वित्तीय सहायता[1]

अखिल भारतीय वित्तीय सस्थाओ ने राजस्थान को बहुत कम वित्तीय सहायता प्रदान की है। वित्तीय सस्थाओ द्वारा स्वीकृत राशि का विवरण इस प्रकार है—

(अ) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) ने राजस्थान को 1948-88 की अवधि मे लगभग 251 करोड रुपये की सहायता स्वीकृत की। तथा 190 करोड रुपये की वितरित की। मार्च, 1988 तक कुल वितरित सहायता मे राजस्थान का अ श केवल 5·8% था जबकि महाराष्ट्र का 15·3% था।

(आ) भारतीय औद्योगिक साख व विनियोग निगम (ICICI) ने मार्च, 1988 तक राजस्थान को लगभग 261 करोड रुपये की सहायता स्वीकार की तथा 195 करोड रुपये की वितरित की। अब तक की वितरित राशि मे राजस्थान का अ श 4 2% तथा महाराष्ट्र का 25·8% रहा।

(इ) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) न 1964-88 की अवधि से राजस्थान को लगभग 1114 करोड रुपये की सहायता स्वीकृत हुई तथा 836 करोड रु की वितरित हुई। अब तक की वितरित राशि म राजस्थान का अ श 4 4% तथा महाराष्ट्र का 14 6% रहा। इस प्रकार देश की विशिष्ट वित्तीय सस्थाओ ने अब तक राजस्थान को बहुत कम मात्रा म वित्तीय सहायता वितरित की है। इसका कारण राजस्थान से प्रस्तुत किये जाने वाले प्रोजेक्टो का अभाव भी माना गया है।

राजस्थान मे जनता सरकार की औद्योगिक नीति, जून 1978—राज्य मे जनता सरकार ने 24 जून, 1978 को अपनी नई औद्योगिक नीति घोषित की थी। इस नीति की कुछ बातें आज भी उपयोगी है। इसलिए इसका सक्षिप्त परिचय दिया जाता है। इसमे उद्योगो मे प्राथमिकताओ का क्रम निश्चित किया गया था, क्षेत्रीय

---

1 Report on Development Banking in India, 1987–88, IDBI pp. 100–115

असन्तुलनो को कम करने के उपाय बतलाये गये थे उद्योगो को दी जाने वाली सहायताएँ व सुविधाएँ स्पष्ट की गई थीं और बीमार औद्योगिक इकाइयो को दी जाने वाली सहायता के बारे मे नीति निर्धारित की गई थी।

(i) उद्योगो मे प्राथमिकता का क्रम—उद्योगो का प्राथमिकता के क्रम म खादी ग्रामोद्योग हथकरघा व हस्तशिल्प को सबसे ऊपर रखा गया था। उसके बाद एक लाख रुपये तक की पूँजी वाले उद्योग फिर क्रमश 10 लाख रु व 50 लाख रुपये वाले उद्योग तथा अन्त म वृहद उद्योग रखे गये थे।

(ii) क्षेत्रीय प्राथमिकता का क्रम—क्षेत्रीय असमानताए कम करने के लिए क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ तय की गयी थीं। इनका क्रम इस प्रकार रखा गया था : पहल गाँव फिर अर्द्ध-शहरी क्षेत्र तथा अन्त म शहर। नये सार्वजनिक व सयुक्त क्षेत्र के उद्योग क्षेत्रीय आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर लगाने का निश्चय किया गया था।

स्थानीय साधनो पर आधारित उद्योगो को प्रोत्साहन देने का निश्चय किया गया था। श्रम प्रधान उद्योगो को पूँजी प्रधान उद्योगो की तुलना म अधिक महत्व दिया गया था।

(iii) सार्वजनिक उद्योग—सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो की कार्यकुशलता म सुधार करने के लिए राजस्थान प्रबन्धक सेवा-संवर्ग (Rajasthan Management Cadre) बनाने का प्रस्ताव किया गया था। एक ब्यूरो ऑफ पब्लिक एन्टरप्राइजेज बनाने का प्रस्ताव किया गया था जो सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यकुशलता व कार्य-प्रणाली की निरन्तर समीक्षा करेगा। सयुक्त क्षेत्र मे उद्योगो को प्रोत्साहित करने के लिए इक्विटी पूँजी मे 10% सरकारी सहयोग की नीति घोषित की गई थी।

(iv) बीमार औद्योगिक इकाइयो के प्रति नीति—जिस औद्योगिक इकाई म कुल क्षमता का 20% से कम उत्पादन हो रहा हो तथा जो घाटे मे चल रही हो व जिसने पिछले तीन वर्ष से ब्याज या मूलधन का भुगतान न किया हो, वह बीमार या रुग्ण इकाई मानी गई थी। इनके सम्बन्ध म यह कहा गया था कि ऐसी इकाई को उद्योग-निदेशक प्रमाण-पत्र देगा। रुग्णता का कारण खोजा जायेगा। राजस्थान वित्त निगम ऐसी इकाइयो के ऋणो के भुगतान की दूसरी तिथि निर्धारित करेगा (reschedule)। ऐसी इकाइयो से की गई सरकारी खरीद का भुगतान एक माह के भीतर कर दिया जायेगा। सरकारी खरीद मे भी ऐसी इकाइयो के माल को प्राथमिकता दी जायेगी।

(v) नयी सहायताएँ व सुविधाएँ—औद्योगिक नीति म यह भी कहा गया था कि उद्योगो के लिए आवश्यक गोचर भूमि जिलाधीश ग्राम पचायत की सिफारिश पर रूपान्तरित (convert) करेंगे। स्वय का उद्योग लगाने पर किसान की खातेदारी की 500 वर्गमीटर भूमि का रूपान्तरण अपने आप माना जायेगा। इसके लिए

केवल परिवर्तन शुल्क जमा कराना होगा। दाल मिल, चावल मिल आदि को 25 हजार से कम आबादी वाले ग्रामीण क्षेत्रो मे स्थापित करने पर बिजली खर्च मे 25% सब्सिडी देने की नीति घोषित की गई थी।

अब राज्य मे कांग्रेस (आई) सरकार पर राजस्थान के औद्योगीकरण की जिम्मेदारी है। आशा है विभिन्न प्रकार की रियायतो व सुविधाओ का लाभ मिलने से राज्य की प्रगति औद्योगीकरण की दिशा मे अधिक तेज गति से हो सकेगी। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है राज्य मे रीको राजस्थान वित्त निगम, राजस्थान लघु उद्योग निगम उद्योग-निदेशालय आदि औद्योगीकरण को आगे बढाने का भरपूर प्रयास कर रहे हैं। पिछले वर्षो म उद्योगो के विकास के लिए केन्द्रीय पूँजीगत सब्सिडी व राज्यीय पूँजीगत सब्सिडी का काफी विस्तार किया गया। विदेशा मे बसे भारतीयो को राजस्थान मे पूँजी लगाने के लिए आकर्षित किया गया है।

राजस्थान की सातवीं पंचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास की व्यूह रचना

(Industrial Strategy During Seventh Plan of Rajasthan)[1]

राज्य के योजना विभाग ने सातवी पचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार करके दिल्ली मे भारत सरकार को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया था। उसमे 1985-90 की अवधि के लिए औद्योगिक विकास की व्यूहरचना के सम्बन्ध मे निम्न बातो का समावेश किया गया था। राज्य सरकार ने पृथक् से सातवी योजना मे औद्योगिक व्यूहरचना की घोषणा नही की है। इसलिए औद्योगिक विकास के सम्बन्ध मे किसी व्यवस्थित व अनुमोदित नीति के अभाव मे निम्न बातों का सकेतात्मक हो माना जाना चाहिए।

औद्योगिक नीति के उद्देश्य—इस बात पर बल दिया गया कि औद्योगिक नीति क अन्तगत राज्य मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध साधनो का उपयोग किया जायगा बडे पैमाने पर रोजगार के अवसर उत्पन्न किये जायेंगे प्रादेशिक असन्तुलनों को कम किया जायगा परम्परागत शिल्पकलाओ का विकास किया जायगा, उद्यमकर्त्ताओ को सहायता दी जायगी तथा औद्योगिक इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास व विस्तार किया जायेगा।

---

1 Draft Seventh Five Year Plan (1985–90) and Annual Plan 1985–86 Planning Department Chapter 15, on Industrial Development.

ब्रोडगेज लाइन को पूरा किया जाना चाहिए ताकि राज्य में सीमेंट के प्लाण्ट बढ़ाये जा सकें। दिल्ली-अहमदाबाद तथा जयपुर-सवाई माधोपुर मीटर गेज लाइनों को ब्राड गेज लाइनों में बदलने से औद्योगिक विकास में मदद मिलेगी। इन्दिरा गांधी नहर परियोजना क्षेत्र में रेल की लाइनें बिछाने से औद्योगिक विकास में सहायता मिलेगी।

यह स्वीकार किया गया कि सातवीं योजना में औद्योगिक व्यूहरचना व नीति को कार्यान्वित करने व सफल बनाने के लिए काफी वित्तीय साधनों की आवश्यकता होगी। इसके लिए सरकार व निजी उद्यमकर्ताओं (स्वदेशी व प्रवासी) को मिल-जुल कर काम करना होगा।

मार्च 1987 में राज्य के मुख्य मंत्री ने औद्योगीकरण का एक व्यापक कार्यक्रम प्रस्तावित किया था। जिसकी विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं :[1]—

1 रीको एक 'वन विन्डो सर्विस' चालू करेगा जिसके तहत उद्यमकर्ताओं को आवश्यक सहायता समयबद्ध सारणी के अनुसार एक साथ एक स्थान पर प्रदान की जायगी।

2. रीको राज्य वित्त निगम तथा उद्योग-विभाग राज्य के अन्दर व बाहर अभियान चला कर उद्योगों को आकर्षित करने का प्रयास करेंगे।

3. 1987-88 में RFC व RIICO लगभग 100 करोड़ रु. का अवधि-ऋण देंगे जिसका लाभ लघु व मध्यम श्रेणी के उद्योग उठायेंगे।

4. डीजल जेनरेटिंग सेट् के लिए 'आपत्ति नहीं सर्टिफिकेट' (NOC) जारी करने की विधि सरल की जायगी। इसके लिए विद्युत-शुल्क में भी राहत दी जायगी।

5 खनन पट्टे स्वीकृत करने का समयबद्ध कार्यक्रम अपनाकर खनिज आधारित उद्योगों का तीव्र गति से विकास किया जायगा।

6 कृषि व पशु-धन पर आधारित उद्योगों को भूमि, विद्युत-कनेक्शन, कर्ज आदि में प्राथमिकता दी जायगी। इनको अतिरिक्त कर-राहत भी दिया जायगा।

7 श्रम-सघन उद्योगों को भूमि पावर कनेक्शन व कर्ज में प्राथमिकता दी जायगी। उनको कर-राहत भी दिया जायगा।

8 रुग्ण उद्योगों को कर-राहत दिया जायगा तथा औद्योगिक व वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड की सेवाओं का लाभ उठाया जायगा।

9 सरकार की वर्तमान क्रय-नीति (Purchase policy) का विस्तार किया जायगा ताकि स्थानीय उद्योग उसका लाभ उठा सकें।

10 नयी इलेक्ट्रानिक्स इकाइयों को सब्सिडी बढ़ाई जावेगी। 5 करोड़ रु. से अधिक स्थिर पूंजी के विनियोग वाली इकाई को 25% सब्सिडी, अथवा 25 लाख रु. की राशि दी जायगी (जो भी कम हो) एवं 5 करोड़ रु. से कम वाली इकाइयों

---

1 बजट-भाषण, 5 मार्च 1987, पृष्ठ 29-33, पैरा 77 के विभिन्न बिन्दु।

के लिए 15% सब्सिडी अथवा 15 लाख रु की राशि रखी गयी है। यह लाभ सातवीं योजना के अन्त तक दिया गया।

11 नाबार्ड की सहायता से 1987-88 मे 10 हजार लघु व लघुतम (tiny) इकाइयाँ स्थापित की जायेंगी।

12 निर्धन हथकरघा बुनकरों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए बचत-कोष-स्कीम लागू की जायगी।

13 उद्यमशीलता-विकास-केन्द्र स्थापित किया जायगा तथा

14 विकसित जिलो मे नये उद्योगो को 5 वर्ष के लिए तथा पिछडे जिलो मे 7 वर्ष के लिए बिक्री-कर से मुक्त रखा जायगा।

जहा एक भी बडा उद्योग नही है वहाँ यह सुविधा क्रमश 7 वर्ष व 9 वर्ष के लिए होगी। इस सम्बन्ध मे विस्तृत घोषणा हाल मे राज्य सरकार ने की है जिस पर 'रियायतो व प्रेरणाओ' के खण्ड मे प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार औद्योगीकरण के लिए राज्य सरकार ने एक व्यापक व नया कार्यक्रम अपनाया है।

राज्य मे औद्योगिक विकास की सम्भावनाए —

राज्य म कृषि आधारित वन-आधारित खनिज-पदार्थ-आधारित पशु-आधारित उद्योगो के विकास की काफी सम्भावनाए विद्यमान हैं। इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगो का भविष्य भी उज्जवल है। नीचे औद्योगिक विकास की सम्भावनाओ का परिचय दिया जाता है —

(i) राजकोन (Rajasthan Consultancy Organisation) के जैसलमेर व सिरोही जिलों के सर्वेक्षण के परिणाम —

राजकोन ने एक *अध्ययन के द्वारा* जैसलमेर जिले मे जैसलमेर व पोकरन तथा सिरोही जिले मे आबू रोड व सिरोही रोड औद्योगिक विकास केन्द्र छाटे हैं। जैसलमेर जिले के लिए जो औद्योगिक प्रोजेक्ट सुझाये गये है वे इस प्रकार हैं. उपलब्ध लाइमस्टोन के आधार पर एक बडा सीमेंट सयन्त्र स्थानीय ऊन पर आधारित एक अर्द्ध-वर्स्टेड स्पिनिंग मिल तथा पर्यटको की सुविधा के लिए एक थ्री स्टार होटल (72 कमरो की क्षमता वाले एक एयर कण्डीशन होटल)। इसके अलावा स्थानीय औद्योगिक साधनो का उपयोग करके निम्न लघु उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं: *मार्बल प्रोसेसिंग ऊनी व खादी कॉम्पलेक्स, ऊनी यार्न रगाई, हाथ से बने ऊनी* गलीचे, कार्पेट फिनिशिंग, तुम्बा तेल प्लास्टर ऑफ पेरिस हड्डी का चूरा, हाइड्रेटेड चूना आदि।

इसी प्रकार सिरोही जिले के लिए निम्न उद्योग सुझाये गये हैं एक बडा सीमेंट प्लाण्ट तथा मिनी-सीमेंट प्लाण्ट्स क्योंकि यहाँ भी सीमेंट ग्रेड वाला लाइमस्टोन काफी मात्रा मे पाया जाता है। मार्बल की कटाई व पॉलिश एव मार्बल की टाइलें बनाने की इकाइयाँ स्थापित की जा सकती हैं। इनके अलावा एक एच. टी इन्सुलेटर प्लाण्ट पहले ही स्थापित किया जा चुका है।

ऐसे ही अध्ययन चूरू व बाडमेर जिलों के लिए किये गये है ।

(ii) रीको द्वारा इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग मे 400 करोड रुपये के विनियोजन के कार्यक्रम ।

रीको ने सातवी पचवर्षीय योजना मे इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगो मे 400 करोड रुपये का नया विनियोजन करने के कार्यक्रम तैयार किये थे । इस समय उन उद्योगो मे राजस्थान का अश 5 प्रतिशत है । यह भी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई इन्स्ट्रूमेटेशन लि कोटा की वजह से है जिसकी वार्षिक बिक्री 100 करोड रुपये के लगभग है ।

रीको ने इस क्षेत्र मे स्वय प्रोजेक्ट लगाने, तथा निजी क्षेत्र मे विनियोजन को प्रोत्साहित करने के कार्यक्रम रखे थ । निगम इन्फ्रास्ट्रक्चर की सुविधायें देता है । जो विशेष रियायतें व सुविधायें भिवाडी, जयपुर, जोधपुर व पिलानी जैसे स्थानो को इन उद्योगो के लिए दी गई हैं, वे अन्य स्थानो को भी दी गयी हैं । ये इस प्रकार है . भूमि की लागत पर 20% की रिबेट, औद्योगिक भूमि के आवटन मे प्राथमिकता समय-बाधित वित्तीय सहायता कार्यक्रम, सम्भावना-सर्वेक्षणो पर सब्सिडी व इक्विटी मे हिस्सा, आदि ।

जनवरी, 1986 से समस्त इलेक्ट्रोनिक उद्योगो को केवल 4% बिक्रीकर देने की सुविधा प्रदान की गई । सातवी योजना की पूरी अवधि तक इस क्षेत्र मे नये उद्योगो का बिक्री-कर से 5 वर्षो के लिए मुक्ति दी गयी ।

भिवाडी औद्योगिक क्षेत्र एक महत्वपूर्ण इलेक्टोनिक्स केन्द्र के रूप मे उभरा है । अब निगम राजस्थान-हरियाणा सीमा पर शाहजहांपुर मे एक नया इलेक्ट्रोनिक्स केन्द्र विकसित कर रहा है । आबू राड (सिरोही जिला) मे भी इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग विकसित किये जा सकते हैं ।

प्रशिक्षित कर्मचारियो की सख्या बढाने के लिए कॉलेजो व पोलीटेक्नीक्स का विकास किया जा रहा है । रीको ने अपना टी वी यूनिट अपनी सहायक कम्पनी राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स लि को सौंप दिया है । रीको ने ग्रामीण स्वचालित एक्सचेंजेज व कम्यूनिकेशन रिसीवर्स के लिए आशय-पत्र (letter of intent) प्राप्त किये हैं और इनकी स्थापना की जा रही है ।

आगामी वर्षों के लिए उद्यमकर्त्ता निम्न उद्योगो को स्थापित करने की चेष्टा कर रहे हैं : रगीन टी वी ट्यूब्स के दो प्रोजेक्ट, इलेक्ट्रोनिक्स पी. ए. बी. एक्स. प्रणालियो के तीन प्रोजेक्ट, टेलीफोन उपकरणो के 2 प्रोजेक्ट, पब्लिक टेलीफोन प्रणालियां, प्रदूषण-मोनिटरिंग-उपकरण, हाइब्रिड सरकिट्स, डोट मैट्रिक्स प्रिंटर्स मोडम्स एण्ड यू एच एफ रेडियो रिले लिंक्स । इसके अलावा सेमटल इंडिया लि भिवाडी ने औद्योगिक क्षेत्र में ग्लास-शेल्स (glass shells) का प्रोजेक्ट चालू किया है । इन सबके कारण पूंजी-विनियोजन बढ रहा है ।

राजस्थान में औद्योगिक विकास के मार्ग में बाधाएं

1. रेलों का विकास—राज्य मे मीटर गेज रेलवे का अधिक विस्तार होने से माल की ढुलाई मे बाधा पडती है। केवल भरतपुर कोटा व सवाई माधोपुर ही ब्राड गेज लाइन पर स्थित है। कोटा-चित्तौडगढ को ब्रोड गेज की रेलवे लाइन से जोडने पर 5 बडी सीमेंट की इकाइयां स्थापित की जा सकती हैं जिनमे एक सुपर सीमेंट संयन्त्र भी शामिल है। दिल्ली-अहमदाबाद तथा जयपुर-सवाई माधोपुर मीटर गेज लाइनो को ब्रोडगेज लाइनो म बदल देने से औद्योगिक विकास के नये अवसर खुल सकते हैं। इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र मे नई रेल-लाइनें बिछाने से औद्योगिक विकास का आधार-ढांचा सुदृढ हो सकता है।

2 राज्य मे विद्युत की दरो मे कमी व पूर्ति मे वृद्धि की आवश्यकता—राज्य मे बिजली की दरें अन्य राज्यों से अधिक हैं। ये इलक्ट्रो-थर्मल व इलक्ट्रो-मैटलर्जिकल उद्योगो मे कम की जानी चाहिए। इसके अलावा राज्य मे उद्योगो के लिए बिजली का अभाव भी पाया जाता है। राज्य की सातवीं योजना में विद्युत के विकास के लिए 927 5 करोड रु का प्रावधान किया गया था जो कुल योजना के व्यय का 31% था। योजना मे माही जल-विद्युत परियोजना, कोटा तापीय विद्युत घर अनूपगढ पन-बिजली व पलाना लिग्नाइट योजना वगैरह पर धनराशि व्यय करने राज्य मे विद्युत की प्रस्थापित क्षमता म वृद्धि करने के कार्यक्रम रखे गये थे।

3. पिछले वर्षों मे राज्य मे औद्योगिक सम्बन्धों मे भी गिरावट आयी थी। भूतकाल मे श्रीराम रेयोन्स कोटा को औद्योगिक विवाद के कारण काफी हानि उठानी पडी है। भरतपुर मे सिम्को वैगन फैक्ट्री मे तालाबन्दी से क्षति हुई है। कोटा, अलवर, भरतपुर व जयपुर जिलो मे काफी लघु इकाइयां रुग्णता के कारण बन्द हुयी हैं। मजदूर-संघो मे परस्पर स्पर्धा व बोनस की माग के कारण औद्योगिक विवाद बढे हैं। अतः सरकार को एक सक्रिय तथा व्यावहारिक श्रम-नीति अपनानी चाहिए ताकि औद्योगिक शांति बनी रहे और राज्य मे प्रवासी उद्यमकर्त्ताओ को उद्योग लगाने के लिए काफी संख्या मे आकर्षित किया जा सके।

4 हाल मे राजस्थान वित्त निगम को कर्जों की वापसी की अदायगी मे कठिनाई का सामना करना पडा है। इसके कारणों की जाच की जानी चाहिए ताकि RFC को समय पर पुराने कर्जो का भुगतान मिल सके।

आठवीं पचवर्षीय योजना (1990–95) मे औद्योगिक विकास की व्यूहरचना के सम्बन्ध मे उच्चाधिकार प्राप्त माथुर समिति के प्रमुख सुझाव व सिफारिशें[1]—

---

1. High Power Committee Report on Strategy for Industrial Development In Eighth Five Year Plan, Vol I 1989., Govt. of Rajasthan, Ch. V–Thrust Areas and Ch. VI–Conclusions pp. 31–48.

आठवीं पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास की व्यूहरचना पर मायुर समिति (अध्यक्ष प्रोफेसर एम वी मायुर) ने अपनी रिपोर्ट मुख्य मत्री को 26 जून, 1989 का पेश की। इसमे औद्योगिक विकास के नये क्षेत्रो के बारे मे सुझाव दिये गये हैं तथा इस सम्बन्ध म विकास की नीतियो व आवश्यक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये हैं।

रिपोर्ट की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं—

1 राज्य के विभिन्न प्रदेशों मे अलग-अलग प्रकार के उद्योग विकसित किये जाने चाहिए, जैसे, दक्षिणी राजस्थान मे खनिज आधारित उद्योग, पश्चिम मे नहर-सिंचित क्षेत्र मे कृषि-प्रोसेसिंग उद्योग, पूर्वी क्षेत्र मे विविध प्रकार के उद्योग तथा अर्सिचित पश्चिमी जिलो मे दक्षता-आधारित हस्तशिल्प उद्योग विकसित किये जाने चाहिएँ। जैसलमेर क्षेत्रो मे स्टील ग्रेड लाइमस्टोन व गैस-आधारित औद्योगिक इकाइयाँ भी विकसित की जा सकती हैं।

2 समिति न जिन औद्योगिक क्षेत्रो पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाना है वे निम्नांकित बतलाये हैं—इलेक्ट्रोनिक्स, कृषि आधारित व फूड-प्रोसेसिंग, खनन व खनिज-पदार्थ, पर्यटन (tourism) रत्नमणि व जवाहरात उद्योग, तथा दस्तकारियो (चमडा व चमडे की वस्तुओ सहित)।

3 आठवीं पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक व्यय का लगभग 10% भाग औद्योगिक विकास के लिए निर्धारित किया जाना चाहिए जो वर्तमान स्तर का (प्रतिशत मे) लगभग दुगुना होगा। इससे औद्योगिक विकास के लिए ज्यादा वित्तीय साधन उपलब्ध हो सकेंगे।

4. वर्तमान मे विनिर्माण (Manufacturing) का राज्य की आमदनी मे लगभग 8-9% अश है जिसे बढाकर आठवीं योजना मे 12% करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

5 राज्य सरकार को उद्योगो को दी जाने वाली वर्तमान रियायतों को प्रभावपूर्ण ढग से लागू करना चाहिए। इन्फ्रास्ट्रक्चर व अन्य सेवाओ की व्यवस्था बढानी चाहिए। उन उद्योगो के विकास पर जोर देना चाहिए जिनमे राज्य को विशेष लाभ प्राप्त हैं जैसे पशु आधारित उद्योग व पर्यटन जवाहरात व आभूषण, खनिज-पदार्थ दस्तकारियां।

6 भविष्य मे रीको को औद्योगिक बस्तियो के विकास के लिए तभी भूमि अवाप्त करनी चाहिए जब वह अत्यावश्यक हो। जहाँ आगामी कुछ वर्षों मे कोई उद्योग नही लगना है वहाँ भूमि को अवाप्त नही करना चाहिए तथा अन्य क्षेत्रो के विकास पर ध्यान देना चाहिए।

7. उच्चाधिकार प्राप्त औद्योगिक सलाहकार परिषद को राज्य के औद्योगिक विकास की समीक्षा करने के लिए नियमित रूप से अपनी बैठक करनी चाहिए।

8. सार्वजनिक उपक्रमो के कर्मचारियो के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। एक सार्वजनिक उपक्रम, चयन बोर्ड (Selection Board) गठित किया जाना चाहिए जो कर्मचारियो के चयन की व्यवस्था करे।

9. अभ्रक को बिक्री-कर से मुक्त कर देना चाहिए जैसा कि बिहार सरकार ने किया है।

10. चमडे व दस्तकारियो के लिए टेक्नोलोजी मिशन स्थापित किया जाना चाहिए ताकि हमारे शिल्पकारो को आधुनिक विज्ञान व टेक्नोलोजी का लाभ मिल सके। इसके लिए विभिन्न सस्थाओ के साधन मिलाने होगे जैसे उद्योग-निदेशालय, राजस्थान लघु उद्योग निगम, खादी व ग्रामोद्योग बोर्ड, जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी पचायती राज व ग्रामीण विकास विभाग आदि।

माथुर समिति ने राज्य के औद्योगिक विकास के लिए बहुत उपयोगी सुझाव दिये है जिनको कार्यान्वित करने से इस क्षेत्र मे अधिक तेजी से प्रगति हो सकेगी!

राज्य के तीव्र औद्योगिक विकास के लिए अन्य सुझाव[1]—

1971 से 1985 की अवधि मे राजस्थान मे औद्योगिक विकास की वार्षिक दर (आधार-वर्ष 1970 = 100) 6% रही (इसमे विनिर्माण, खनन व विद्युत तीनो को शामिल किया गया है)। भविष्य मे इसको और तेज करने की आवश्यकता है। इसके लिए राज्य मे फैक्ट्री क्षेत्र व गैर-फैक्ट्री क्षेत्र दोनो मे औद्योगिक माल का उत्पादन बढाने की आवश्यकता है। राजस्थान का समस्त भारत के फैक्ट्री-क्षेत्र मे अश 3% से अधिक करने के लिए काफी प्रयास करना होगा।

(1) पिछड़े क्षेत्रो के विकास के लिए पूंजी-सब्सिडी की व्यवस्था को पुन-र्जीवित करना—

सितम्बर 1988 के बाद राज्य में केन्द्रीय पूंजी-सब्सिडी की स्कीम बद कर दी गई जिससे पिछड़े क्षेत्रो मे नई औद्योगिक इकाइयो की स्थापना पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। पिछडे इलाको मे लघु व मध्यम पैमाने की इकाइयो की स्थापना पर पूंजी-सब्सिडी की सुविधा से काफी अनुकूल प्रभाव पडता है। अक्टूबर, 1988 से केन्द्रीय सब्सिडी के बन्द होने से राज्य के औद्योगिक क्षेत्र मे अनिश्चितता का वातावरण छा गया है। पहले पूर्णतया उद्योग/विहीन जिले मे एक करोड रुपये के प्रोजेक्ट पर 25 लाख रुपये की सब्सिडी मिलने से उसकी स्थापना को काफी प्रोत्साहन मिलता था। राजस्थान मे केन्द्रीय सब्सिडी की राशि 1981-82 मे 2 करोड रु.

---

1. देखिए मेरे द्वारा प्रेषित लेख, (**Industrial Structure and Industrial Incentives in Rajasthan**, in Development of Rajasthan Challenge and Response, (Edited by Ashok Bapna, SID, Rajasthan Chaper, Jaipur) 1989, Ch. 9, *pp. 166-167.*

से बढ़कर 1984-85 में 8 करोड़ रु. हो गई थी। इससे उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला था।

केन्द्रीय सब्सिडी स्कीम के अक्टूबर 1988 से बंद होने के बाद अन्य राज्यों ने अपने पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिए अपनी-अपनी नयी औद्योगिक नीतियां घोषित की ताकि इनमें विकास की गति को बनाए रखा जा सके। उदाहरण के लिए, पश्चिमी बंगाल ने राजकीय सब्सिडी 15% से 30% कर दी जबकि केन्द्रीय सब्सिडी 10% से 15% तक ही थी। तमिलनाडु ने पिछड़े "तालुकों" में राजकीय सब्सिडी देना चालू कर दिया। उत्तर प्रदेश ने पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिए 10 करोड़ रु. का एक उपक्रम-कोष (Venture fund) स्थापित किया है। हरियाणा ने पावर-सब्सिडी 50 हजार रु. से बढ़ाकर 15 लाख रुपये कर दी ताकि उद्यमकर्ता अपने डीजल जेनरेटिंग सेट लगा सकें।

इस प्रकार अन्य राज्यों ने केन्द्रीय सब्सिडी के अभाव को दूर करने का प्रयास किया है। राजस्थान को भी औद्योगिक रियायतों व प्रेरणाओं का एक नया पैकेज घोषित करना चाहिए ताकि हमारे राज्य से अन्य राज्यों की ओर उद्योग व उद्योगपतियों का पलायन रुक सके। वैसे प्रतियोगी किस्म की सब्सिडी देने की होड़ अपने आप में सही नहीं होती, लेकिन जब अन्य राज्य अपनी तरफ उद्यमकर्ताओं को आकर्षित करने लगें तो हमारे लिए भी उनसे अधिक आकर्षक रियायतें देने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाता।

(2) राज्य सरकार को बिक्री-कर से मुक्ति, बिक्री-कर आस्थगन, आदि की स्कीमों को व्यवहार में सक्रिय रूप से लागू करना चाहिए। कोषों का अभाव इसमें बाधक नहीं होने देना चाहिए।

(3) उद्यमकर्ताओं की कार्यशील पूंजी (Working Capital) की आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए।

(4) उद्यमकर्ताओं पर लगे प्रशासनिक नियन्त्रणों का भार कम किया जाना चाहिए ताकि वे उत्पादन बढ़ाने पर अधिक ध्यान दे सकें। इस सम्बन्ध में उद्यमकर्ताओं से खुली बातचीत की जानी चाहिए।

(5) विकास-केन्द्रों (growth-Centres) की नयी नीति में उद्योगों के लिए विकास-केन्द्रों का चयन पूरी सावधानी से किया जाना चाहिए ताकि विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त औद्योगिक विकास की असमानता कम की जा सके और सन्तुलित विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

(6) यथासम्भव पूंजी-गहन उद्योगों के स्थान पर श्रम-गहन उद्योगों को अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(7) इन्फ्रास्ट्रक्चर—पावर, परिवहन, जल, आदि का विकास तेजी से पूरा किया जाना चाहिए।

स्मरण रहे कि इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास, पूँजीगत सब्सिडी की सुविधा, कर्ज की सुविधा, औद्योगिक क्षेत्र की स्थापना, करों की छूट, आदि अपने आप में औद्योगिक विकास की आवश्यक शर्तें हैं, लेकिन ये पर्याप्त शर्तें नहीं है। औद्योगिक विकास को उचित गति प्रदान करने के लिए सुदृढ इन्फ्रास्ट्रक्चर, रियायती कर्ज, पूँजीगत-सब्सिडी, नवीन व उन्नत टेक्नोलोजी, उचित औद्योगिक सम्बन्ध, पर्याप्त माँग व बिक्री की सुविधाएं आदि सभी जरूरी हैं। लेकिन इनसे भी अधिक जरूरी है उचित औद्योगिक नियोजन जो निम्न चीजों को परिभाषित करेगा :—

(i) कृषि व उद्योग के बीच किस प्रकार की कड़ी हो,

(ii) विभिन्न उद्योगों के बीच किस प्रकार की कड़ी हो,

(iii) विभिन्न जिलों, क्षेत्रों/प्रदेशों के बीच किस प्रकार की कड़ी हो,

(iv) उद्योगों का सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र व सहकारी क्षेत्र के बीच बटवारा किस प्रकार का हो,

(v) एक वर्षीय, पचवर्षीय व दीर्घकालीन औद्योगिक नियोजन में समन्वय किया जाये।

उपर्युक्त ढंग पर 'वैज्ञानिक' औद्योगिक नियोजन व "प्रखर" औद्योगिक व्यूहरचना से ही औद्योगिक विकास की गति तेज की जा सकती है।

परिशिष्ट

(i) वर्तमान में संयुक्त क्षेत्र की कुछ परियोजनाएं इस प्रकार हैं

नाम व स्थान	उत्पादित वस्तु का नाम
1. बाँसवाडा सिन्टेक्स लि., बाँसवाडा	सिन्थेटिक यार्न
2. स्टैण्डर्ड वूलन्स लि., जोधपुर	कार्पेट यार्न (रुग्ण इकाई)
3. परताप राजस्थान स्पेशल स्टील लि., जयपुर	स्पेशल स्टील
4. भीलवाडा वूलटेक्स लि., भीलवाडा	कार्पेट यार्न (रुग्ण इकाई)
5. जयपुर सिंटेक्स लि., बहरोड	सिन्थेटिक यार्न
6. अरावली इस्पात लि., अलवर	स्पेशल स्टील (रुग्ण इकाई)
7. श्री राजस्थान सिन्टेक्स लि., डूंगरपुर	सिन्थेटिक यार्न
8. राजस्थान ड्रग्स एण्ड फार्मास्यूटिकल्स लि., जयपुर	दवाएं
9. राजस्थान ग्लायोक्सल लि., उदयपुर	ग्लायोक्सल (रुग्ण इकाई)
10. मॉडर्न थ्रेड्स इण्डिया लि., भीलवाड़ा	औद्योगिक धागा
11. राजस्थान वूलटेक्स लि., जयपुर	कार्पेट यार्न (रुग्ण इकाई)
12. जयपुर पोलीस्पिन लि., रींगस	सिन्थेटिक यार्न

13 राजस्थान एक्सप्लोजिव्स
एण्ड केमिकल्स लि., धौलपुर — विस्फोटक (detonators)

14 राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड
इन्स्ट्रुमेंटेशन लि., जयपुर — विद्युत मिल्क टेस्टर (tester)
(दूध विश्लेषक यन्त्र, इसे केन्द्रीय उपक्रम भी माना गया है)

15 हरबी टैक्सटाइल्स लि., जोधपुर — सिन्थेटिक यार्न

16 तिरुपति फाइबर्स एण्ड इण्डस्ट्री लि., आबू रोड — सिन्थेटिक यार्न

17 श्रुती सिन्थेटिक लि., उदयपुर — ,, ,,

18 परतात राजस्थान कॉपर
फॉयल्स लि., जयपुर — कॉपर फायल्स (foils) एण्ड लेमिनेट्स (Laminates) (रुग्ण इकाई)

19. सर्राफ सिन्थेटिक (राजस्थान लि.) अलवर — सिन्थेटिक यार्न

20. लेम्प्स एण्ड लाइटिंग्स लि. अलवर — जी एल एस लेम्प्स (रुग्ण इकाई)

21 सुपर सिन्कोटेक्स (इण्डिया) लि., गुलाबपुरा — सिन्थेटिक यार्न

22. कल्याण सुन्दरम सीमेंट उद्योग, बांसवाड़ा — (रुग्ण इकाई)

23 श्री पाइप्स लि. हमीरगढ़ (जिला भीलवाड़ा)

24. स्वदेशी सीमेंट लि., कोटपूतली

इस प्रकार संयुक्त क्षेत्र की अधिकांश इकाइयाँ सिन्थेटिक यार्न बनाती हैं एवं शेष अन्य वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

(ii) रीको की सहायता-प्राप्त क्षेत्र की इकाइयाँ

(Assisted Sector Units)

रीको ने संयुक्त क्षेत्र के अलावा सहायता-प्राप्त क्षेत्र की परियोजनाओं (Assisted Sector projects) को भी प्रोत्साहित किया है जिनमें कई इकाइयों में उत्पादन चालू हो गया है, कुछ क्रियान्वयन की अवस्था में हैं तथा कुछ इकाइयाँ फिलहाल पाइप-लाइन में हैं। जिन इकाइयों में उत्पादन चालू हो गया है उनमें सूती व ऊनी उद्योगों, गैस-सिलेण्डर बनाने वाली इकाइयाँ, वनस्पति तथा ग्रेनाइट व संगमरमर आदि की इकाइयाँ हैं। वित्तीय साधनों के अभाव के कारण आजकल रीको संयुक्त क्षेत्र की तुलना में सहायता-प्राप्त क्षेत्र को अधिक प्राथमिकता देने लगा है, क्योंकि इसमें अपेक्षाकृत कम मात्रा में पूँजी लगानी होती है।

रीको ने कुछ बड़ी सहायता प्राप्त इकाइयों की स्थापना में योगदान दिया है व अग्र प्रकार हैं :—

नाम व स्थान	उत्पादित वस्तु
1. मगलम् सीमेण्ट्स लि., मोडक (कोटा)	सीमेंट
2. अजय पेपर मिल्स लि., भिवाडी	सिन्थेटिक यार्न
3. बेल्विनेटर्स ऑफ इण्डिया लि., अलवर	रेफ्रिजरेटर्स व मोपेड
4. सेम्टल इन्डिया लि., भिवाडी	टी वी की पिक्चर ट्यूब
5. परसरामपुरिया सिन्थेटिक्स लि., भिवाडी	फिलामेंट यार्न की टेक्सराइजिंग
6. मोदी एल्केलीज एण्ड केमिकल्स लि. अलवर	कॉस्टिक सोडा व सहायक पदार्थ
7. इण्डेग (Indag) रबर लि., भिवाडी	कोल्ड टायर रिट्रीडिंग

प्रश्न

1. निम्न निगमो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए .—
   (i) राजस्थान वित्त निगम,
   (ii) राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोजन निगम (रीको)
   (iii) राजस्थान लघु उद्योग निगम
2. योजनाकाल मे राजस्थान के औद्योगिक विकास की मुख्य प्रवृत्तियों की जाँच कीजिए। क्या आपकी राय मे राज्य मे भावी औद्योगिक विकास की व्यापक सम्भावनाएँ विद्यमान हैं ? (Raj. II yr. T.D.C. 1980)
3. पचवर्षीय योजनाओ मे राजस्थान की औद्योगिक प्रगति की समीक्षा कीजिए। राज्य के औद्योगिक विकास मे राज्य सरकार की क्या भूमिका रही है ? (Raj. IIyr. T. D. C., 1981)

———

34

राजस्थान में सार्वजनिक उपक्रम
(Public Enterprises in Rajasthan)

योजनाबद्ध विकास में सार्वजनिक उपक्रमों की महत्वपूर्ण भूमिका मानी गई है। वे न केवल आधार-ढाँचे के निर्माण में मदद देते हैं, बल्कि पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास, रोजगार-संवर्धन, निर्धनता-उन्मूलन व कई प्रकार से जन-कल्याण में सहयोग देते हैं।

पिछले अध्याय में बतलाया गया था कि राजस्थान में सार्वजनिक उपक्रमों को दो भागों में बांटा जा सकता है (अ) केन्द्रीय सरकार के द्वारा स्थापित किये गये उद्योग (आ) राजस्थान सरकार द्वारा स्थापित सार्वजनिक उद्योग।

(अ) केन्द्रीय क्षेत्र के सार्वजनिक उपक्रम[1] —19c5 में राजस्थान में कुल केन्द्रीय औद्योगिक विनियोगों का 1·4% अंश लगा था, जबकि 1970 में यह केवल 0·9% ही था। केन्द्रीय क्षेत्र की सार्वजनिक इकाइयों में हिन्दुस्तान जिंक लि (देबारी, उदयपुर), हिन्दुस्तान कॉपर लि., (खेतड़ी), हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, अजमेर, इन्स्ट्रूमेंटेशन लि., कोटा, साम्भर सॉल्ट्स लि. (हिन्दुस्तान साल्ट्स, लि. की सहायक) मॉडर्न बेकरीज (विश्वकर्मा औद्योगिक क्षेत्र, जयपुर तथा राजस्थान इलेक्ट्रॉनिक्स एण्ड इन्स्ट्रूमेण्ट्स लि., कनकपुरा, जयपुर के समीप (इसमें भारत सरकार का अंश 51% है, इसे दोनों की संयुक्त क्षेत्र की इकाइयों में भी दिखाया गया है) गिने जाते हैं। 1987-88 में हिन्दुस्तान कॉपर लि को मुनाफा हुआ था। एच एम टी लि. इन्जीनियरी, सुरक्षा व वाहन उद्योग के लिए प्रिसीजन ग्राइण्डिंग मशीनों का उत्पादन करती है। जैसाकि पिछले अध्याय में बतलाया गया था, राष्ट्रीय थर्मल पावर निगम (NTPC) द्वारा अन्ता (कोटा) में गैस आधारित पावर स्टेशन की स्थापना से राज्य में केन्द्रीय विनियोगों में वृद्धि हुयी है।

विभिन्न इकाइयों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है

(1) हिन्दुस्तान जिंक लि —इसके अन्तर्गत 2 खानें (तीन राजस्थान में, एक आन्ध्रप्रदेश में तथा एक उड़ीसा में) तथा 3 स्मेल्टर्स हैं (एक राजस्थान, एक

---

1. Public Enterprises Survey, 1987-88, Vol 3, Part I. 31 मार्च 1986 तक राज्य में सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों (केन्द्रीय क्षेत्र) में 715 करोड़ 41 लाख रुपये का पूँजी-विनियोजन किया गया (पत्रिका, 7-1187)

यह केन्द्रीय सरकार के उपक्रमों में शामिल की जाती है। इसे 1987-88 में 42 लाख रुपये का शुद्ध मुनाफा हुआ था।

अन्य—राजस्थान ड्रग्स व फार्मास्यूटिकल्स लि. की स्थापना नवम्बर 1978 में प्रधान कम्पनी IDPL की सहायक इकाई के रूप में रीको के साथ संयुक्त क्षेत्र में की गई थी। इसे लगातार घाटा उठाना पड़ा है। बिक्री के आर्डर न मिलने से उत्पादन-क्षमता का पूरा उपयोग नहीं किया जा सका है तथा छोटे उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा है। कम्पनी को कार्यशील पूँजी की कमी का भी सामना करना पड़ा है।

(आ) राजस्थान के सार्वजनिक उपक्रमों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। 1986-87 में इनकी संख्या 39 थी। इनका वर्गीकरण इस प्रकार है:

(i) वैधानिक निगम/बोर्ड—इनकी संख्या 6 थी। इस श्रेणी में राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड (RSEB), राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम, राजस्थान वित्त निगम राजस्थान राज्य वेयरहाउसिंग निगम, राजस्थान हाउसिंग बोर्ड तथा राजस्थान भूमि विकास निगम आते हैं।

(ii) पंजीकृत कम्पनियाँ—इनकी संख्या 16 थी और ये कम्पनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत पंजीकृत हुयी थी। इनके नाम इस प्रकार हैं: दी गंगानगर शुगर मिल्स लि. स्टेट टेनरीज लि., स्टेट माइन्स व मिनरल्स लि., रीको, राजस्थान राज्य खनिज विकास निगम, राजस्थान लघु उद्योग निगम, राज्य होटल निगम लि., पर्यटन विकास निगम लि., राज्य बीज निगम लि., कृषि-उद्योग निगम लि., ब्रिज व कन्स्ट्रक्शन लि. तथा हथकरघा विकास निगम लि., जल साधन विकास निगम लि., राज्य वन विकास निगम लि., राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स लि. तथा राज्य टन्स्टन विकास निगम लि.। इनमें कई इकाइयों के नामों में निगम के बाद 'लिमिटेड' शब्द आने से ये कम्पनी संगठन में शामिल हो गई हैं।

(iii) पंजीकृत सहकारी समितियाँ—इस श्रेणी की 13 इकाइयाँ इस प्रकार थी: अनुसूचित जाति विकास सहकारी निगम लि. राज्य बुनकर सहकारी संघ लि. सहकारी डेयरी फेडरेशन लि., सहकारी भेड़ व ऊन विपणन फेडरेशन लि., राज्य सहकारी मार्केटिंग फेडरेशन लि., सहकारी उपभोक्ता संघ, लि., श्री केशोरायपाटन सहकारी शुगर मिल्स लि., केशोरायपाटन, तीन सहकारी स्पिनिंग मिल्स (गुलाबपुरा, गंगानगर तथा हनुमानगढ़) सहकारी हाउसिंग वित्त समिति लि., तिलहन प्रोसेसिंग मिल्स, गजसिंहपुर, तथा जनजाति क्षेत्र विकास संघ लि.।

(iv) विभागीय उपक्रम—इस श्रेणी में निम्न 4 उपक्रम लिए गये हैं केमिकल वर्क्स (सोडियम सल्फेट फैक्ट्री), डीडवाना, सल्फेट वर्क्स, डीडवाना, राजकीय नमक वर्क्स, डीडवाना तथा राजकीय नमक वर्क्स, पचपदरा।

बहुधा सार्वजनिक उपक्रमों में सहकारी संगठनों को शामिल नहीं किया जाता और इनमें वैधानिक निगम बोर्ड पंजीकृत कम्पनियों व विभागीय उपक्रमों को ही शामिल किया जाता है। लेकिन राजस्थान सरकार के राज्य उपक्रम विभाग (सार्वजनिक उपक्रमों के ब्यूरो) द्वारा प्रकाशित "Public Enterprises Profile" में सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय उपलब्धियों में सहकारी इकाइयों को भी शामिल किया गया है। इसलिए यहाँ इन सभी की इकट्ठी उपलब्धियों की चर्चा की जाती है।

सार्वजनिक उपक्रमों का पूँजीगत ढांचा—1986-87 में इनमें (उपर्युक्त 39 उपक्रमों में) कुल लगायी गयी पूँजी (Capital employed)[1] 2781 करोड़ रु थी तथा कुल विनियोजित पूँजी (Capital invested)[2] 1779 6 करोड़ रुपए थी।

1986-87 में पूँजी व अवधि-कर्ज के रूप में कुल विनियोगों की दृष्टि से 89 5% अंश निम्न 9 उपक्रमों में था

राज्य विद्युत मण्डल भूमि विकास निगम आवासन मण्डल, राजस्थान वित्त निगम व रीको। राज्य विद्युत बोर्ड का कुल घाटो में 72 0% अंश था। कुल घाटों का 89% अंश राज्य विद्युत बोर्ड भूमि विकास निगम राज्य सड़क परिवहन निगम, सहकारी डेयरी संघ लि० तथा श्री केशोरायपाटन सहकारी शुगर मिल्स लि० का था।

स्मरण रहे कि राजस्थान राज्य विद्युत मंडल (RSEB), राजस्थान हाउसिंग बोर्ड तथा राजस्थान हथकरघा विकास निगम लि बिना शेयर पूँजी या इक्विटी के संचालित किये जा रहे हैं। इन्हें अवधि-कर्ज पर आश्रित रहना पड़ता है।

राजस्थान के सार्वजनिक उपक्रमों में पिछले वर्षों में कर्ज व शेयर पूँजी का अनुपात (debt-equity ratio) लगभग 8 : 1 रहा है जो काफी ऊँचा माना जा सकता है।

वित्तीय कार्य-सिद्धि (Financial Performance)—राजस्थान के सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय कार्य-सिद्धि बहुत कमजोर रही है जो निम्न आंकड़ों से प्रकट होती है.

---

1 लगायी गयी पूँजी (Capital employed) में शुद्ध स्थिर परिसम्पत्ति—चालू परिसम्पत्तियाँ आती हैं।

2 विनियोजित पूँजी (Capital invested) में प्रदत्त पूँजी+फ्री रिजर्व व सरप्लस+अवधि-कर्ज—संचयी घाटे (accumulated losses) आते हैं। नेट वर्थ (net worth) = विनियोजित पूँजी—अवधि कर्ज होती है।

वर्ष	कर से पूर्व लाभ हानि (करोड़ रु) (Losses befors tax)		
980–81	1`	1985–86	(–) 570
981 82	– 4	1986–87	(–) 160
1987–83	– 34		
1983 84	– 52		
1984–85	– 88	1980–87 तक म 3 वर्षों म	
छठी योजना म कुल (–) 23		कुल घाटा = 306 करोड़ रु	

इस प्रकार छठी योजना के पांच वर्षों में कर से पूर्व घाटे की कुल राशि 233 ... रही जिसमें लगभग 90% घाटा अकेले राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल का था। अतः राजस्थान के सार्वजनिक उपक्रमों में सर्वाधिक घाटा उठाने वाला उपक्रम राजस्थान राज्य विद्युत मंडल है।

राजस्थान के सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में विनियोजित पूंजी पर प्रतिफल की दर (ब्याज व करों से पूर्व सकल मुनाफे की दर) निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाती है।[1]

	1983 84	1984 85	1985 86	1986 87
राजस्थान	0 61%	( )1 48%	49%	3 55%
भारत	10 1%	10 8%	10 6%	7 0%

तालिका से स्पष्ट होता है कि राजस्थान में सार्वजनिक उपक्रमों में लगी पूंजी पर प्रतिफल की दर 1983 87 की अवधि में काफी नीची थी। यह 1986 87 में 3 5 % रहा। इसके विपरीत समस्त भारत के लिए ऊँची रही है। इस प्रकार राजस्थान के सार्वजनिक उपक्रमों में प्रतिफल की दर का नीचा रहना एक चिंता का विषय है।

---

1 Public Enterprises Profile 1986 87 BPE Govt of Raj 1988 p 8

कर के पश्चात् शुद्ध लाभ की मात्रा नेट वर्थ (net worth)[1] (परिदत्त पूंजी + रिजर्व व सरप्लस—सचयी घाटे) के अनुपात के रूप में :—वित्तीय कार्यसिद्धि के अध्ययन मे कर के पश्चात् शुद्ध लाभ को शुद्ध वर्थ के अनुपात के रूप मे भी देखा जा सकता है। राजस्थान मे चार वर्षों की स्थिति बहुत गम्भीर रही है जो निम्न आंकड़ो मे स्पष्ट हो जाती है—

	1983-84	1984-85	1985-86	1986-87
राजस्थान	(–) 7 5%	(–) 14%	(–) 8 9%	(–) 2·3%
भारत	1 6%	2 7%	2·8%	3·4%

इस प्रकार राजस्थान मे 1984-85 मे विशुद्ध घाटा शुद्ध वर्थ का 14% तथा 1986-87 मे 2 3% रहा। स्मरण रहे कि यहाँ नेट वर्थ मे राज्य सरकार द्वारा राज्य विद्युत मण्डल को दिया गया कर्ज भी ऋण-पूंजी ही मान लिया गया है। यदि इस नेट वर्थ मे शामिल नही किया जाता तो शुद्ध घाटो का अनुपात नेट वर्थ मे बहुत ऊँचा निकलता, जैसा कि स्वय ब्यूरो ने अपनी पूर्व रिपोर्टों मे दर्शाया था।

हालाकि 1986-87 मे समग्र रूप से वित्तीय कार्य-सिद्धि निराशाजनक रही, फिर भी निम्न 5 उपक्रमो ने मुनाफा अर्जित किया, जैसे राज्य सडक परिवहन निगम, राज्य वेयरहाउसिंग निगम, राजस्थान वित्त निगम, राज्य खनन विकास निगम लि., तथा रीको।

राज्य मे सार्वजनिक उपक्रमों की कमजोर वित्तीय दशा के कारण—सार्वजनिक उपक्रमो की कार्यसिद्धि का मूल्याकन केवल लाभ-हानि के आकडो के आधार पर नही किया जा सकता। इसके लिए उनका रोजगार, उत्पादन, पिछड़े क्षेत्रो के विकास व सार्वजनिक कल्याण मे वृद्धि, आदि के रूप मे भी योगदान देखा जाना चाहिए। लेकिन इस बात पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए कि यथासम्भव उनके वित्तीय घाटे कम किये जा सकें। इसलिए घाटे के कारणो का उपक्रमानुसार अध्ययन किया जाना चाहिए। उपक्रमो मे कई कारणों से घाटे हो सकते हैं जैसे गलत परियोजना (wrong project का चुनाव, पर्याप्त मात्रा मे कच्चे माल की उपलब्धि का अभाव, माग की कमी, प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइया, गलत मूल्य-नीति, आवश्यकता से अधिक श्रमिको की नियुक्ति, खराब श्रम-सम्बन्ध, आदि।

राज्य विद्युत मण्डल के घाटों का कारण

राजस्थान राज्य विद्युत मंडल को भारी मात्रा मे घाटे की स्थिति का सामना करना पड़ा है। 1983-84 मे 44 करोड रुपये का घाटा हुआ जो बढकर 1986-87 मे 90 करोड रुपये तक पहुँच गया। इसका सचयी घाटा काफी ऊँचा हो गया है।

---

1 राज्य विद्युत मण्डल को राज्य सरकार द्वारा दिये गये ऋण उनकी विशेष प्रकृति के कारण ऋण-पूंजी मान लिया गया है।

1 इतने भारी घाटे का मुख्य कारण यह है कि लागतों में निरन्तर वृद्धि होती गई है जबकि विद्युत-प्रशुल्कों (electricity tariffs) में आनुपातिक वृद्धि नहीं हो पायी है। अगस्त 1985 में विद्युत-प्रशुल्क में वृद्धि की गई थी, लेकिन इसके अच्छे परिणाम 1985-86 व 1986-87 के वर्षों में मिले। फिर भी घाटे की दशा जारी रही। इसका आशय यह है कि राज्य विद्युत मण्डल को घाटा कम करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

2 राजस्थान में विद्युत में ट्रान्समिशन व वितरण की हानि का अनुपात 26.54% आया है, जबकि समस्त देश का औसत 21.7% आया है। अनुमान है कि यदि राजस्थान में ट्रान्समिशन व वितरण की हानि का अंश राष्ट्रीय औसत के बराबर आ जाय तो विद्युत मण्डल का वार्षिक घाटा 18 करोड़ रु. कम हो जायगा। ट्रांसमिशन व वितरण का घाटा 1% कम होने पर 3½ करोड़ रु. बचत होती है।

3 राजस्थान में विद्युत इकाइयों में श्रमिक आवश्यकता से ज्यादा लगे हुए हैं। अतः इस क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम की समस्या पायी जाती है। उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण (सम्पन्न सेक्टर), 1984-85 के अनुसार राजस्थान में कुल फैक्ट्री कर्मचारियों का लगभग 26% श्रम विद्युत में लगा था, जबकि समस्त देश के लिए यह औसत 11.5% था। 1984-85 में ही राजस्थान में पूंजी-उत्पत्ति अनुपात[1] विद्युत-क्षेत्र में 1½ : 1 पाया गया जबकि भारत के लिए यह 8.7 : 1 रहा था।

इस प्रकार विद्युत मंडल को ऊँचे पूंजी-उत्पत्ति-अनुपात व अतिरिक्त श्रम की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। जयपुर व अजमेर के निर्माण खण्डों में हजारों तकनीकी व दक्ष श्रमिक मौजूद हैं, फिर भी 132 व 220 के वी लाइनों का निर्माण करने के लिए प्राइवेट ठेकेदारों को करोड़ों रुपये दिये गये हैं। ऐसी दशा में घाटा होना स्वाभाविक है।

4 विद्युत के बिलों की राशि सही नहीं होती। बिजली की चोरी होने से कम राशि के बिल बनाये जाते हैं। 1987 में विद्युत मंडल ने कोटा की एक फर्म का मामला सुप्रीम कोर्ट में जीता है जिससे 17 करोड़ रु. के दावे की राशि का भुगतान विद्युत मंडल को प्राप्त होगा। हालांकि यह राशि 24 समान किश्तों में वसूल की जायगी, फिर भी स्पष्ट है कि बिजली की चोरी रोकने का प्रयास करने से स्थिति सुधरती और इसे भविष्य में और सुधारा जाना चाहिए।

सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए सुझाव—सार्वजनिक उपक्रमों की दशा को सुधारने के लिए अर्जुन सेन गुप्ता समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश की थी, जो साप्ताहिक पत्रिका Mainstream के मार्च, 14 व 21

---

1. पूंजी उत्पत्ति अनुपात जानने के लिए स्थिर पूंजी में शुद्ध जोड़े गए मूल्य का भाग दिया गया है।

1987 के अंकों में प्रकाशित हुयी थी। मई, 1987 मे प्रोफेसर सुखमॉय चक्रवर्ती की अध्यक्षता में आर्थिक सलाहकार परिषद (Economic Advisory Council) ने प्रधान मंत्री को Public Enterprise in India. Some Current Issues पर अपनी रिपोर्ट पेश की थी जिसमे सार्वजनिक उपक्रमो को केन्द्र व राज्य स्तरो पर अधिक कार्यकुशल बनाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये थे।

चक्रवर्ती समिति का मत है कि अलग अलग क्षेत्रो के सार्वजनिक उपक्रमो व अलग-अलग इकाइयो की समस्याओ के हल के लिए विशिष्ट समाधान ढूँढने होगे। समिति ने उत्पादन क्षमता के उपयोग को बढाने पर बल दिया है।

जिस प्रकार देश की अर्थव्यवस्था मे सार्वजनिक उपक्रमो का महत्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार राजस्थान की नियोजित अर्थव्यवस्था मे भी सार्वजनिक उपक्रमो की कार्यकुशलता व उपलब्धियो का महत्व है। इसलिए इनकी लाभप्रदता मे सुधार करने के लिए उपक्रमानुसार कार्यक्रम बनाये जाने आवश्यक है। पिछले वर्षों मे इस सम्बन्ध मे निम्न सुझाव सामने आये हैं जिन्हे कार्यान्वित करने से स्थिति मे अवश्य सुधार होगा :

1. प्रमुख अधिकारियो व प्रबन्ध सचालकों के कार्यकाल में वृद्धि—सार्वजनिक उपक्रमो के प्रमुख अधिकारियो व पूर्णकालिक प्रबध सचालको को कम से कम पाच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। "प्रबन्ध मे व्यवसायीकरण" की नितान्त आवश्यकता है। दो वर्ष तक की अवधि के डेप्यूटेशन पर अध्यक्षो व प्रमुख अधिकारियो की नियुक्ति से प्रबन्ध मे दक्षता व निरन्तरता नही आ पाती।

2 स्वायत्तता (Autonomy)—सार्वजनिक उपक्रमो के प्रमुख अधिकारियों को स्वायत्तता दी जानी चाहिए ताकि वे उपक्रम के हित मे शीघ्रता से सही निणय ले सकें। मत्रालय व सार्वजनिक उपक्रमो के प्रबन्ध मे उचित ताल-मेल होना चाहिए।

3. लेखादेयता (Accountability)—जहाँ एक तरफ प्रबन्ध मे स्वायत्तता दी जानी चाहिए, वहाँ दूसरी तरफ प्रबन्धको पर कार्य-सिद्धि के सम्बन्ध मे अधिक जिम्मेदारी डाली जानी चाहिए। इसको कारगर बनाने के लिए प्रबन्धको से मेमोरेण्डम ऑफ अण्डरस्टेंडिंग(MOUs) भरवाये जाने चाहिए जिसमे आवश्यक विचार-विमर्श के बाद उत्पादन के लक्ष्य, लाभ के लक्ष्य आदि का वर्णन होना चाहिए। ऐसा केन्द्रीय स्तर पर इस्पात उद्योग या कोयला उद्योग मे चालू किया गया है, हालाकि उसके परिणामो का मूल्याकन करने मे अभी समय लगेगा।

स्वायत्तता व लेखादेयता के बीच उचित सतुलन स्थापित किया जाना चाहिए इस सम्बन्ध मे प्रतियोगी वातावरण मे काम करने वाली इकाइयो व अन्य प्रकार की इकाइयो मे अन्तर किया जाना चाहिए।

4 औद्योगिक सम्बन्धो में सुधार किया जाना चाहिए। सार्वजनिक उपक्रमों मे श्रम को प्रबन्ध व पूँजी मे साझेदारी दी जानी चाहिए जिससे श्रमिकों का उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने मे अधिक योगदान मिलेगा। इस दिशा में मजदूर-संघों का समुचित सहयोग वांछित होगा।[1]

5 अतिरिक्त श्रमिकों की समस्या का समाधान यह होगा कि उनको प्रशिक्षण देकर अन्य प्रकार की क्रियाओं मे लगाया जाना चाहिए। इसके लिए सार्वजनिक उपक्रमों की क्रियाओं का विविधीकरण (diversif cation) किया जाना चाहिए।

6 निरन्तर घाटा उठाने वाले इकाइयों को बन्द कर देना चाहिए तथा श्रमिकों को अन्य कामो मे लगाने की जिम्मेदारी सरकार को अपने कधों पर लेनी चाहिए।

7 चने हुए उपक्रमों के 'निजीकरण' (privatisation) का प्रयास किया जाना चाहिए। यह प्रारम्भ में प्रबन्ध मे किया जा सकता है तथा बाद मे स्वामित्व मे। यदि घाटा उठाने वाली इकाइयों को वार्षिक "लीज" की निर्धारित राशि पर निजी कम्पनियों/निजी व्यक्तियों द्वारा चलाने का निर्णय किया जाय तो उसके लिए भी प्रयास किया जा सकता है। लेकिन इस सम्बन्ध मे सोडियम सल्फेट संयन्त्र, डीडवाना तथा राजकीय ऊनी मिलस, बीकानेर का अनुभव बहुत सुखद व उत्साहवर्द्धक नही रहा है क्योंकि 'लीज' की राशि का भुगतान न होने से न्यायालय की शरण लेनी पड़ी है।

8 राज्य सरकार को उन सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों का विस्तृत अध्ययन करवाना चाहिए जिनमे पिछले तीन-चार सालों से लगातार घाटा हो रहा है और भविष्य मे भी वित्तीय स्थिति के सुधरने के आसार नहीं है। उनकी रिपोर्टों पर शीघ्र उचित कार्यवाही होनी चाहिए।

9 जिस प्रकार केन्द्र सार्वजनिक क्षेत्र पर एक श्वेत पत्र तैयार कर रहा है, उसी प्रकार राज्य सरकार को भी इनके सम्बन्ध में एक श्वेत पत्र बनवाना चाहिए जिनमें इनकी मूल समस्याओ पर उपक्रमानुसार विचार किया जाय तथा भविष्य मे सुधार के लिए सुझाव पेश किये जाएँ। इस सम्बन्ध मे विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष—आशा है उपर्युक्त सुझावों को लागू करने पर राजस्थान मे आगामी वर्षों मे सार्वजनिक उपक्रमो की वित्तीय दशा मे सुधार होगा जिससे इनके भावी

---

1. "Workers" participation in management along with issue of equity shares as bonus is proposed as means of increasing the morale of the workers and raising productivity", Chakravarty report, May 1987.

विकास के लिए साधन जुटाने मे मदद मिलेगी। पिछले वर्षों में इनमे घाटे की दशा के पाये जाने के कारण ग्राम जनता मे इनकी उपयोगिता व उपादेयता के सम्बन्ध मे सन्देह उत्पन्न हो गया है जिसे दूर करने के लिए इनमे प्रबन्धकीय कार्यकुशलता का विकास करना आवश्यक हो गया है। एक मजबूत, कार्यकुशल व प्रावैगिक सार्वजनिक क्षेत्र नियोजित अर्थव्यवस्था का 'हृदय' होता है तथा एक दुर्बल, अकार्यकुशल व गतिहीन सार्वजनिक क्षेत्र नियोजन को निष्प्राण बना देता है। अतः इस क्षेत्र को अधिक सजीव व अधिक सबल बनाना सभी के हित मे होगा।

प्रश्न

1. राजस्थान के सार्वजनिक उपक्रमो को वित्तीय कार्यसिद्धि का परिचय दीजिए तथा इसको सुधारने के लिए आवश्यक सुझाव दीजिए।
2. राजस्थान राज्य-विद्युत बोर्ड को निरन्तर घाटा क्यो होता है? इन घाटों को कम करने के सम्बन्ध मे व्यावहारिक सुझाव दीजिए।

35

राजस्थान में आर्थिक नियोजन

(Economic Planning in Rajasthan)

नियोजन के प्रारम्भ में राजस्थान की आर्थिक स्थिति

पहले बतलाया जा चुका है कि राजस्थान 'एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था में एक पिछड़ा हुआ प्रदेश' (a backward region in a backward economy) माना गया है। राज्य में वर्षा का वार्षिक औसत कम रहता है और उत्तर-पश्चिमी व पश्चिमी भागों में बहुत कम वर्षा होने एवं थार का रेगिस्तान पाये जाने के कारण आर्थिक विकास में काफी कठिनाइयाँ आती हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत पिछड़ी हुई थी। 1950-51 में खाद्यान्नों का उत्पादन केवल 29 ~ लाख टन हुआ था और 1951-52 में कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र का लगभग 27% भाग ही शुद्ध बोया गया क्षेत्र (net area sown) था। उस समय सिंचित क्षेत्रफल 11.7 लाख हैक्टेयर था जो कुल कृषित क्षेत्रफल का केवल 12% था।

राज्य में बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योगों का बड़ा अभाव था। 1950-51 के अन्त में विद्युत की प्रस्थापित क्षमता केवल 8 मेगावाट थी और 42 स्थानों को ही बिजली मिली हुई थी। केवल 17,339 किलोमीटर में सड़कें थीं। सड़क, पानी व बिजली के अभाव में बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास सम्भव नहीं था।

राज्य शिक्षा व चिकित्सा की सुविधाओं की दृष्टि से भी काफी पिछड़ा हुआ था। 1950-51 के अन्त में 6–11 वर्ष की उम्र के बच्चों में स्कूल जाने वालों का अनुपात 16.6%, 11–14 वर्ष की उम्र वालों में 5.4% एवं 14–17 वर्ष की उम्र वालों में 1.8% ही था। इससे राज्य के शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ेपन का भी पता लगता है। 1950-51 के अन्त में अस्पताल में रोगियों के बिस्तरों की संख्या केवल 5,720 थी। परिवार नियोजन केन्द्रों व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों (PHC) की स्थापना ही नहीं हुई थी। अस्पतालों व दवाखानों की संख्या भी बहुत सीमित थी। एलोपैथिक अस्पताल 234 व डिस्पेन्सरी 156 तथा आयुर्वेदिक अस्पताल 14 व डिस्पेन्सरी 33 ही थे।

इस अध्याय मे हम नियोजित विकास के 38 वर्षों (1951-89) की प्रगति का वर्णन करेंगे। विभिन्न योजनाओं मे सार्वजनिक क्षेत्र मे किये गये व्यय पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

राजस्थान में नियोजित विकास के 38 वर्ष

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, राजस्थान का निर्माण 19 छोटे-छोटे राज्यो व तीन चीफशिपों के एकीकरण से हुआ था। ये राज्य आकार, जनसंख्या, राजनीतिक महत्व, प्रशासनिक कुशलता व आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी भिन्न व असमान स्तर वाले थे। एकीकरण की प्रक्रिया 1948 मे प्रारम्भ होकर 1956 मे पूरी हुई। इस प्रकार प्रथम पचवर्षीय योजना के निर्माण के समय राज्य एकीकरण की समस्याओं मे उलझा हुआ था। उस समय राज्य मे भावी विकास का अनुमान लगाने के लिए आधारभूत आकडो का भी नितान्त अभाव था।

राजस्थान मे विभिन्न योजनाओ मे सार्वजनिक क्षेत्र मे प्रस्तावित व्यय तथा वास्तविक व्यय की राशियाँ निम्न तालिका मे दी गई हैं।[1]

तालिका 1.

(करोड रुपयो मे)

	प्रस्तावित व्यय की राशि	वास्तविक व्यय की राशि
प्रथम योजना	64 5	54·1
द्वितीय योजना	105 3	102 7
तृतीय योजना	236 0	212 7
वार्षिक योजनाएँ (1966-69)	132·7	136·8
चतुर्थ योजना	306·2	308 8
पचम योजना	847 2	857·6
वर्ष 1979-80 की योजना	275·0	290 2
छठी योजना (1980-85)	2,025	2130 7
सातवीं योजना (1985-90)	3000	—
1985-88	1600	1600
1988-89	710	710
1989 90	795	योजना जारी

तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रथम योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे व्यय की राशि 54 करोड रुपये से बढ़कर द्वितीय योजना मे 103 करोड रुपये, तृतीय योजना मे 213 करोड रुपये, *1966-69 के तीन वर्षों में* 137 करोड रुपये व चतुर्थ योजना मे 309 करोड रुपये हो गई। पांचवी योजना की अवधि मे राज्य सरकार ने सार्व-

1. आय व्ययक अध्ययन, 1989-90, पृ. 46 व 48 तथा पृ. 123-124 (DES) Jaipur).

जनिक क्षेत्र मे व्यय हेतु 847 करोड रुपये की राशि का प्रावधान किया था, लेकिन वास्तविक व्यय की राशि 858 करोड रुपये रही।

1979-80 की वार्षिक योजना मे 290 करोड रुपये व्यय हुये। छठी पंचवर्षीय योजना का आकार 2025 करोड रु. रखा गया था जबकि वास्तविक व्यय लगभग 2131 करोड रु. रहा है।

सातवीं योजना का आकार 3000 करोड रु रखा गया था जो छठी योजना से लगभग 48 प्रतिशत अधिक था। ताजा अनुमानों के अनुसार सातवी पंचवर्षीय योजना मे वास्तविक व्यय लगभग 3105 करोड रु. रहेगा।

आगे तालिका 2 मे विभिन्न योजनाओं मे सार्वजनिक व्यय का विभिन्न मदों पर आवटन दर्शाया गया है। इसमे हमने वास्तविक व्यय का आवटन को ही लिया है. केवल सातवी पंचवर्षीय योजना (1985–90) का ही प्रस्तावित आवटन दिया गया है।

तालिका से स्पष्ट होता है कि राजस्थान की वार्षिक योजनाओं मे सर्वोच्च प्राथमिकता सिंचाई व शक्ति को दी गई है जो उचित मानी जा सकती है। प्रथम योजना मे कुल व्यय का 58·3% सिंचाई व शक्ति पर व्यय किया गया जो पंचम योजना मे भी लगभग उतना ही (57 2%) रहा। छठी योजना मे यह 52·6% रहा। कृषि सहकारिता व सामुदायिक विकास पर प्रथम योजना मे लगभग 13% व्यय हुआ, जो छठी योजना मे 11 4 रहा। राज्य सामाजिक सेवाओं (शिक्षा, चिकित्सा, जल सप्लाई) की दृष्टि से भी काफी पिछडा हुआ रहा है। अत: इनके विकास को भी ऊंची प्राथमिकता दी गई है। प्रथम योजना के कुल व्यय के 17% से प्रारम्भ करके चतुर्थ योजना मे इसे 24% तक पहुंचा दिया गया था। पंचम योजना मे यह पुन: 17·4% पर आ गया तथा छठी योजना मे 20% रहा। इस प्रकार राजस्थान एक तरफ सिंचाई व विद्युत का विकास करने में लगा रहा और दूसरी तरफ इसने जन-कल्याण के लिए सामाजिक सेवाओं के विस्तार को भी ऊंची प्राथमिकता दी है।

पिछले 38 वर्षों मे विभिन्न पंचवर्षीय व वार्षिक योजनाओं में सार्वजनिक व्यय के आवटन का अध्ययन करने से पता चलता है कि सभी योजनाओं की प्राथमिकताएं लगभग एक सी रही हैं। योजनाओं मे सार्वजनिक व्यय का लगभग आधा भाग सिंचाई व शक्ति पर तथा 1/5 भाग सामाजिक सेवाओं पर व्यय किया जाता रहा है।

अब हम विभिन्न योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र मे परिव्यय एव प्रगति का उल्लेख करेंगे।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56)

प्रथम पंचवर्षीय योजना मे आधारभूत आंकडों का अभाव होते हुए भी योजना की प्राथमिकताएं बिल्कुल स्पष्ट थी। योजना का प्रमुख लक्ष्य सिंचाई की सुविधाओं

तालिका 2

योजनाओं में सार्वजनिक व्यय की स्थिति[1]

(कुल वास्तविक व्यय मे %)

विकास का शीर्षक	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	तीन वार्षिक योजनाएं	चतुर्थ योजना	पंचम योजना	1979–80	छठी योजना 80-85	सातवीं योजना 85-90 (प्रस्तावित)
1. कृषि व सहायक कार्यक्रम	6·6	11 0	11·3	14 6	8 2	9·3	17·6	10 2[2]	11 7
2. सहकारिता व सामुदायिक विकास	6·0	14·0	8·0	3 7	2 7	1·8	1·6	1·2	1·5
3. सिंचाई व शक्ति	58 3	37·2	54·4	60·6	58·4	57 2	54 8	52·6	53·7
4. उद्योग व खनन	0·8	3·3	1 4	1·5	2 6	4 0	4·1	3 9	6 3
5. परिवहन, सचार व पर्यटन	10 3	9 8	4·7	3·2	3·2	9 8	7 8	11 8	4 7
6. सामाजिक सेवाएं	16·9	23 6	19·7	15·0	24 0	17·4	13·7	19 8	21·1
7. विविध	1·1	1 1	0·5	0·9	0·9	0 5	0·4	0 5	1 0
	100 0	100 0	100·0	100 0	100 0	100·0	100 0	100 0	100·0
वास्तविक व्यय (करोड रुपयो मे)	54·1	102 7	212·7	136·8	308·8	857 6	290·2	2130 7	3000 0

1. आय-व्ययक अध्ययन राजस्थान, 1989-90, p. 48 तथा p. 123-124. (प्रतिशत निकाले गये हैं)
2. इसमे कृषि, सम्बद्ध सेवायें व ग्रामीण विकास पर व्यय शामिल है।

में वृद्धि करना था, इसलिए प्रथम योजना में भाखड़ा व अन्य महत्वपूर्ण सिंचाई की परियोजनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया। प्रथम योजना में 64.5 करोड़ रुपये के व्यय का प्रावधान किया गया था, लेकिन वास्तविक व्यय 54·1 करोड़ रुपये हुआ, जिसका विभिन्न मदों पर वितरण पहले दिया जा चुका है।

तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि प्रथम योजना में कुल व्यय का 58.3% सिंचाई व शक्ति पर व्यय किया गया। प्रथम योजना में कृषित क्षेत्रफल के विस्तार एवं सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि होने से खाद्यान्नों का उत्पादन 1955-56 में 42.4 लाख टन हुआ था। सिंचित क्षेत्रफल 15.93 लाख हैक्टेयर हो गया था। शक्ति की प्रस्थापित क्षमता 15 मेगावाट हो गयी थी जो योजना के प्रारम्भ की तुलना में लगभग दुगुनी थी। योजना में 17% व्यय सामाजिक सेवाओं पर किया गया जिससे शिक्षा व चिकित्सा आदि की सुविधाओं का विस्तार हुआ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61)

जब द्वितीय योजना का निर्माण किया गया तो राज्य की आर्थिक स्थिति पहले से ठीक हो गयी थी। इसलिए इस योजना का आकार बड़ा रखा गया। सिंचाई व शक्ति पर आवश्यक बल देना जारी रखा गया और इस अवधि में सिंचाई व शक्ति के कुछ बड़े कार्यक्रम भी चालू किये गये। जागीरदारी, जमींदारी व बिस्वेदारी प्रथाओं की समाप्ति से गाँवों में सामन्ती प्रथा को मिटाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये।

द्वितीय योजना में 105·3 करोड़ रु. के व्यय का प्रावधान रखा गया था। लेकिन योजना में वास्तविक व्यय 102·7 करोड़ रुपये का हुआ जिसका विभिन्न मदों पर प्रतिशत आवंटन पहले दिया जा चुका है।

तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि द्वितीय योजना में कुल वास्तविक व्यय का 37.2% सिंचाई व शक्ति पर किया गया जो प्रथम योजना की तुलना में नीचा था। सामाजिक सेवाओं पर लगभग 24% राशि व्यय की गयी। उद्योग व खनन पर केवल 3.3% राशि ही व्यय की गयी।

द्वितीय योजना में खाद्यान्नों के अन्तर्गत अतिरिक्त उत्पादन क्षमता तो काफी बढ़ी लेकिन 1960-61 में मौसम की प्रतिकूलता के कारण वास्तविक उत्पादन 45.5 लाख टन ही हुआ जो 1955-56 के उत्पादन से थोड़ा ही अधिक था। अतिरिक्त उत्पादन क्षमता का वास्तविक लाभ 1961-62 में मिला, जबकि खाद्यानों का वास्तविक उत्पादन बढ़कर 55.7 लाख टन हो गया था। द्वितीय योजना के अन्त में सिंचित क्षेत्र 17·5 लाख हैक्टेयर हो गया था। विद्युत की प्रस्थापित क्षमता 1960-61 में 1955-56 की तुलना में चौगुनी से भी अधिक हो गई थी। 1960-61 के अन्त में विद्युत की प्रस्थापित क्षमता 65 मेगावाट हो गयी थी। सामाजिक सेवाओं

का भी विस्तार किया गया और शहरी क्षेत्रों में जल की पूर्ति के कार्यक्रम लागू किये गये।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961—66)

तृतीय योजना के प्रारम्भ में राज्य में आर्थिक विकास के लिए आधारभूत ढांचा काफी सीमा तक तैयार हो गया था। सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार हो जाने से गहन कृषि की पद्धतियों का उपयोग करना सम्भव हो गया था। शक्ति व यातायात का विकास होने से उद्योगों की स्थापना करना सम्भव हो गया था। तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप प्रशिक्षित व योग्यता-प्राप्त व्यक्तियों की अधिक उपलब्धि होने लग गई थी। इन सब बातों के कारण तृतीय योजना का आकार द्वितीय योजना का लगभग दुगुना रखा गया और 236 करोड रु के व्यय का प्रावधान किया गया था। लेकिन वास्तविक व्यय लगभग 213 करोड रु. ही हो पाया जिसका विवरण तालिका 2 में दिया जा चुका है।

उस तालिका से पता चलता है कि तृतीय योजना में सिंचाई व शक्ति पर कुल व्यय का लगभग 54% अंश व्यय किया गया। सामाजिक सेवाओं पर कुल व्यय का लगभग 20% किया गया जो पहले से मात्रा की दृष्टि से काफी अधिक था। 1962 में चीनी आक्रमण के बाद समस्त राष्ट्र में कृषि के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया और चुने हुए क्षेत्रों में गहन विकास की नीति अपनायी गयी। इसके लिए गहन कृषि जिला कार्यक्रम (I. A. D. P) तथा पैकेज प्रोग्राम एवं गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (I.A A.P.) व तीव्र प्रभाव दिखाने वाले कार्यक्रम (crash programmes) अपनाये गये ताकि उत्पादन में तेजी से वृद्धि की जा सके। तृतीय योजना में काफी तनाव व दबाव की स्थिति रहने से पहले के विनियोगों से शीघ्र प्रतिफल प्राप्त करने की नीति अपनायी गयी। इसलिए चालू परियोजनाओं पर अधिक ध्यान दिया गया और पुराने लाभों को सुदृढ करने की दिशा में अधिक प्रयास किये गये।

तृतीय योजना की अवधि में आर्थिक प्रगति

तृतीय योजना की प्रगति वित्तीय दृष्टि से तो सन्तोषजनक रही, लेकिन इस अवधि में बार-बार एवं व्यापक रूप में अकाल व अभाव की परिस्थितियों ने अर्थ-व्यवस्था पर भारी दबाव डाले। 1963-64 व 1965-66 के अकालों की भीषणता अभूतपूर्व थी। खाद्यान्नों का उत्पादन जो 1961-62 में 55·7 लाख टन के स्तर पर पहुँच चुका था, वह 1965-66 में केवल 38·4 लाख टन ही रह गया। यदि इन असाधारण परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाय तो तृतीय योजना की अवधि में आर्थिक प्रगति सन्तोषजनक मानी जा सकती है।

1965-66 में सिंचित क्षेत्र 20 7 लाख हैक्टेयर हो गया जो 1960-61 की तुलना में लगभग 3 2 लाख हैक्टेयर अधिक था। गांधीसागर क्षेत्र में वर्षा के अभाव

के कारण उत्पन्न गम्भीर कठिनाइयों के बावजूद शक्ति की प्रस्थापित क्षमता 65 मेगावाट से बढ़कर 96 मेगावाट (ड्योढ़ी) हो गयी। योजनाओं के अन्त में 1,242 स्थानों मे बिजली की व्यवस्था कर दी गयी। शक्ति के क्षेत्र मे किये गये विनियोगों का पूरा लाभ तृतीय योजना की अवधि मे नही मिल पाया क्योंकि सतपुड़ा, राणाप्रताप सागर व भाखड़ा (दायें भाग) की बड़ी परियोजनाओं के पूर्ण होने मे विलम्ब हो गया था। इसके लाभ 1966-67 से आगे की अवधि मे मिल सके। योजना के अन्तिम वर्षों मे शक्ति के अभाव व औद्योगिक विकास को धक्का पहुँचा, यद्यपि विकास का आधारभूत ढाँचा बहुत कुछ सुधर चुका था।

सम्भवतः तृतीय योजना मे सर्वाधिक लाभ सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र मे प्राप्त किये गये। राज्य मे शिक्षा का विकास हुआ। चिकित्सा की सुविधाओं के विस्तार एवं बीमारियों के नियन्त्रण व उन्मूलन के राष्ट्रीय कार्यक्रम को लागू करने से लोगों के स्वास्थ्य मे सुधार हुआ। योजनाकाल मे तीन मेडिकल कॉलेज स्थापित किये गये और कई शहरों व गावों मे जल-पूर्ति के कार्यक्रम लागू किये गये। विकास के विस्तृत कार्यक्रमों को लागू करने के लिए प्रशासनिक मशीनरी का निर्माण किया गया।

तीन वार्षिक योजनाएँ (1966-69)

1965 मे पाकिस्तान से संघर्ष के बाद विदेशी सहायता के सम्बन्ध मे काफी अनिश्चितता की दशा उत्पन्न हो गयी और 1965-66 व 1966-67 मे लगातार दो वर्षों तक सूखा व अकाल पड़ने से विकास के लिए उपलब्ध साधनों का अभाव रहा जिससे चतुर्थ पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1966 से प्रारम्भ नहीं की जा सकी। 1966-69 की अवधि मे वार्षिक योजनाएँ कार्यान्वित करके नियोजन की प्रक्रिया को जारी रखा गया। इस अवधि मे पुराने लाभों को बनाये रखने एवं विनियोगों से शीघ्र प्रतिफल प्राप्त करने के प्रयास किये गये।

खाद्य स्थिति के जटिल होने के कारण कृषि में अधिक उपज देने वाली किस्मों के कार्यक्रम अपनाये गये। शक्ति के क्षेत्र में उपलब्ध क्षमता का उपयोग करने के लिए बिजली की लाइनों के निर्माण पर जोर दिया गया। साधनों के अभाव के कारण शिक्षा, चिकित्सा व सड़कों के विकास पर पर्याप्त मात्रा में ध्यान नहीं दिया जा सका। ग्रामीण जल-पूर्ति का कार्य ज्यादा तेजी से प्रगति नहीं कर सका।

तीन वार्षिक योजनाओं में कुल व्यय लगभग 137 करोड़ रुपयों का हुआ, जिसका आवंटन तालिका 2 में दिया गया है।

उस तालिका से प्रतीत होता है कि कुल व्यय का लगभग 61% सिंचाई व शक्ति पर हुआ और सामाजिक सेवाओं पर 15.5% हुआ। इस प्रकार सिंचाई व शक्ति को पहले से दी जाने वाली प्राथमिकता में और वृद्धि की गयी। सामाजिक सेवाओं पर किये जाने वाले प्रतिशत व्यय में द्वितीय व तृतीय योजनाओं की तुलना में

कमी हो गयी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, साधनो के अभाव में इस अवधि मे योजनाओं की प्राथमिकताओं में मामूली फेरबदल करना आवश्यक हो गया था।

तीन वार्षिक योजनाओं की अवधि में आर्थिक प्रगति

ऊपर बताया जा चुका है कि 1966 69 के तीन वर्षों में से दो वर्ष 1966-67 व 1968-69 अकाल व सूखे के वर्ष रहे जिससे अर्थव्यवस्था को काफी क्षति पहुँची थी।

अनेक कठिनाइयों के बावजूद भी वार्षिक योजनाओं की अवधि में कुछ क्षेत्रो में प्रगति जारी रही। 1967 68 में खाद्यान्नो का उत्पादन 66 लाख टन हुआ जबकि 1966-67 में 43·5 लाख टन हुआ था। 1968-69 में खाद्यान्नों का उत्पादन पुनः घटकर 35 5 लाख टन पर आ गया। शक्ति की क्षमता तृतीय योजना के अन्त में 96 मेगावाट से बढकर 1968-69 के अन्त मे 174 मेगावाट हो गयी थी। 1967-68 में गांधीसागर परियोजना के क्षेत्र में अच्छी वर्षा हो जाने से पिछले वर्षों में की गयी विद्युत शक्ति की कटौतियाँ हटा ली गयी और औद्योगिक क्षेत्र में विनियोगों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी।

तीन वार्षिक योजनाओं की अवधि मे सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र मे प्रगति जारी रही। स्कूल जाने वाले बच्चों का प्रतिशत बढा। बीमारियों पर नियन्त्रण व परिवार नियोजन का कार्यक्रम आगे बढाया गया। ग्रामीण जल-पूर्ति व शहरी जल-पूर्ति के कार्यक्रम आगे बढाये गये।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना (1969 74)

राज्य की चतुर्थ पचवर्षीय योजना की अवधि 1 अप्रैल, 1969 मे प्रारम्भ हो गयी थी, लेकिन कुछ कारणो से इसे अन्तिम रूप नही दिया जा सका था। विकास के क्रम मे बाधा न हो इसके लिए वार्षिक योजनाए जारी रखी गयी। योजना मे 306 करोड रुपये के व्यय का प्रावधान किया गया था, जबकि वास्तविक व्यय 309 करोड रुपयों का हुआ जिसका आवटन तालिका 2 मे दिया जा चुका है। इस योजना मे भी 58·4 प्रतिशत राशि सिंचाई व शक्ति पर व्यय की गई। सामाजिक सेवाओं पर 24 प्रतिशत व्यय हुआ जो प्रतिशत की दृष्टि से पुनः द्वितीय योजना के स्तर पर आ गया था।

पूर्व योजना की भाँति चतुर्थ योजना मे भी आर्थिक विकास की अधिकतम दर प्राप्त करने, रोजगार के अवसर बढाने, कृषिगत व औद्योगिक उत्पादन बढाने, शिक्षा व चिकित्सा की सुविधाएँ बढाने तथा राजस्थान नहर व चम्बल कमाण्ड क्षेत्रो का विकास करने और गरीब लोगो के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने पर बल दिया गया था। इसके लिए चालू परियोजनाओं व कार्यक्रमो को पूरा करना आवश्यक समझा गया। योजना मे सिंचाई के विकास को प्राथमिकता दी गई ताकि कृषिगत विकास का आधार सुदृढ हो सके।

चतुर्थ योजना की उपलब्धियां

राज्य को चतुर्थ योजना की अवधि में प्रतिकूल मौसमों व अकालों का सामना करना पड़ा। फिर भी अधिक उपज देने वाली किस्मों के अन्तर्गत क्षेत्रफल 1968-69 में 5 24 लाख हैक्टेयर से बढ़ाकर 1973-74 मे 10 54 लाख हैक्टेयर कर दिया गया 1968-69 म रासायनिक उर्वरकों का उपयोग 30 हजार टन से बढ़कर 1973-74 में लगभग 74 हजार टन हो गया। 1973-74 में खाद्यान्नों का उत्पादन 67 2 लाख टन रहा जो 1970-71 के 88 4 लाख टन से काफी कम था 1968-69 मे सभी साधनों से कुल सिंचाई क्षेत्रफल 21·2 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 1973-74 में 26 2 लाख हैक्टेयर हो गया था।

पावर की प्रस्थापित क्षमता 1968-69 में 174 मेगावाट से बढ़कर 1973-74 मे 432 मेगावाट पर आ गई थी।

चतुर्थ योजना की अवधि में वनस्पति तेल, सीमेंट, पावर केबल्स, सूती धागे, चीनी एव नाइलोन के धागे आदि के उद्योग स्थापित किये गये। बिजली की कमी व अनेक बाधाओं के बावजूद औद्योगिक उत्पादन बढ़ा। राज्य में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों मे विनियोग की राशि 1966-67 मे 17 करोड़ रुपये से बढ़कर 1973-74 मे 100 करोड़ रुपये हो गयी थी। चतुर्थ योजना की अवधि के अन्त में झामर-कोटड़ा की खानों से प्राप्त रॉक-फॉस्फेट से 6·23 करोड़ रुपये की आय हुई। योजना मे तांबा, कच्चे लोहे, अभ्रक, चांदी, सीसे व कैलसाइट का उत्पादन बढ़ा था।

राजस्थान की पांचवीं पंचवर्षीय योजना 1974–79

राजस्थान की पांचवीं पचवर्षीय योजना का प्रारूप—राज्य सरकार ने जुलाई, 1973 मे पांचवी पचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार करके योजना आयोग के समक्ष पेश किया था। इसमे राज्य की योजना का आकार 635 करोड रुपये प्रस्तावित किया गया था। लेकिन वास्तविक व्यय की कुल राशि 858 करोड रु. रही। यह योजना के प्रारूप मे प्रस्तावित राशि से काफी अधिक थी।

उद्देश्य व मूल नीति—विभिन्न क्षेत्रों मे विकास के कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित किये गये ताकि समाज के कमजोर वर्गों को विशेष रूप से लाभ पहुंचे। उनको रोजगार देने व उनकी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास किया गया। राज्य में कृषि, पशु-पालन, उद्योग व खनन का विकास किया गया।

कृषि-नियोजन में प्रति हैक्टेयर उपज बढ़ाने की नीति अपनायी गयी। राज्य मे पशु-पालन के विकास की विशाल सम्भावनाएं हैं इसके लिए चरागाहों व चारे का विकास करने पर बल दिया गया। भूमि के नीचे के जल (ground water) का विशेष रूप से प्रयोग करने पर जोर दिया गया क्योंकि राज्य में सतह के जल (surface water) की मात्रा सीमित पायी जाती है।

कृषकों के लिए कृषि व पशु-पालन के विकास के लिए साख की सुविधा बढ़ाने, भूमि को समतल करने, भू-संरक्षण व सूखी खेती के कार्यक्रमों को बढ़ावा देने पर बल दिया गया। इसके लिए चम्बल व इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के सिंचाई के क्षेत्रों का समन्वित ढंग से विकास करने तथा इनमें सड़क व मण्डियों का निर्माण, विद्युतीकरण, व वैज्ञानिक कृषि की पद्धतियाँ अपनाने की आवश्यकता पर ध्यान दिया गया। चम्बल क्षेत्र में पानी के निकास की समस्या, मिट्टी के खारेपन व नहर में वीड्स (घास-पात) की अनियन्त्रित बढ़ोतरी को रोकने के लिए विश्व बैंक की सहायता का उपयोग करने पर बल दिया गया।

पांचवीं योजना में आर्थिक प्रगति

पाँचवी योजना में स्थिर भावों पर (1970-71 के मूल्यों पर) राज्य की घरेलू उत्पत्ति में प्रतिवर्ष 5 2% तथा प्रति व्यक्ति आय में 2 1% वृद्धि हुयी।[1] 1979 में राज्य में गम्भीर सूखे की स्थिति पायी गयी थी।

कृषि व सम्बद्ध क्रियाओं की प्रगति—खाद्यान्नों का उत्पादन 1973-74 में 67 2 लाख टन से बढ़कर 1978-79 में 77 80 लाख टन हो गया। तिलहन, गन्ना व कपास के उत्पादन में भी वृद्धि हुई थी।

अधिक उपज देने वाली किस्मों का फैलाव 1973–74 में 10·5 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 1978–79 में 15·8 लाख हैक्टेयर में हो गया। रासायनिक उर्वरकों का उपयोग 0 73 लाख टन से बढ़कर 1 34 लाख टन हो गया। सकल सिंचित क्षेत्रफल 26 8 लाख टन हैक्टेयर से बढ़कर 30 4 लाख हैक्टेयर हो गया।

शक्ति की प्रस्थापित क्षमता 8L0·8 मेगावाट से बढ़कर 959·6 मेगावाट हो गयी।

औद्योगिक क्षेत्र में 'रीको' RFC, 'राजसीको' व जिला-उद्योग केन्द्रों (DICs) ने औद्योगिक विकास में भाग लिया। सूती खादी, ऊनी खादी व ग्रामीण उद्योगों में उत्पादन व रोजगार बढ़ा। राज्य के सभी जिलों में जिला उद्योग केन्द्र स्थापित किये गये।

---

1. पाँचवी योजना व छठी योजना के लिए राज्य घरेलू उत्पत्ति (SDP) व प्रति व्यक्ति आय के आंकड़े वर्षवार इस अध्याय के परिशिष्ट में दिये गये है। हमने औसत वृद्धि-दर का सूत्र प्रयुक्त किया है। इसके लिए प्रति वर्ष के प्रतिशत परिवर्तनों का ज्यामितीय औसत (Geometric mean) निकाला गया है। राज्य की कुल आय व प्रति व्यक्ति आय के लिए DES, जयपुर से प्राप्त नवीनतम आंकड़ों का उपयोग किया गया है।

छठी पचवर्षीय योजना (1980-85) :

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है छठी पचवर्षीय योजना का अनुमोदित परिव्यय 2025 करोड रु रखा गया था। लेकिन कुल योजना-व्यय लगभग 2131 करोड रु रहा।

छठी पचवर्षीय योजना मे वास्तविक व्यय का 52·6% सिचाई व शक्ति पर तथा 19 8% सामाजिक सेवाओ पर किया गया जो पूर्व योजनाओ की भांति ही था। कृषि, ग्रामीण विकास व सामुदायिक विकास तथा सहकारिता पर 11·4% व्यय किया गया। उद्योग व खनन पर केवल 3 9% ही व्यय हुआ।

इस प्रकार छठी योजना मे भी राज्य की अर्थव्यवस्था का आधारभूत ढांचा (इन्फ्रास्ट्रक्चर) सुदृढ करने का प्रयास जारी रहा।

छठी पंचवर्षीय योजना में आर्थिक प्रगति[1]

राज्य की आय अथवा शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद (NSDP) छठी योजना मे 1970-71 की कीमतो पर 6·9% वार्षिक बढ़ी। इस प्रकार विकास की वार्षिक दर सतोषप्रद रही। प्रति व्यक्ति आय (स्थिर भावो पर) 1979-80 मे 522 रुपये से बढकर 1984 85 मे 639 रुपये हो गई। छठी योजना की अवधि में प्रति व्यक्ति आय मे स्थिर भावो पर 4·1% वार्षिक की दर से वृद्धि हुई।

कृषि—1984-85 मे खाद्यान्नो का उत्पादन 79·1 लाख टन हुआ जबकि 1979-80 मे 52 4 लाख टन हुआ था। 1984-85 में तिलहन का उत्पादन 12 3 लाख टन, गन्ने का 13 7 लाख टन तथा कपास का 4·4 लाख गाठे हुआ था। वर्ष 1983-84 को छोडकर अन्य वर्षों में मानसून कमजोर व अनियमित रहा था। जिससे चार वर्षों मे राज्य मे अकाल व सूखे का कुप्रभाव पडा था।

1984-85 मे अधिक उपज देने वाली किस्मो मे 26·9 लाख हैक्टेयर भूमि आ चुकी थी तथा उर्वरको का वितरण 2 लाख टन से कुछ अधिक हो गया था।

छठी योजना में लगभग 21 लाख हैक्टेयर भूमि में अतिरिक्त सिचाई की क्षमता का विकास किया गया। राज्य मे डेयरी का विकास किया गया तथा ऊन का उत्पादन 127 लाख किलोग्राम से बढकर योजना के अत में 156 लाख किलोग्राम हो गया था।

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम से छठी योजना मे 7·1 लाख परिवार लाभान्वित हुए जिनमे आधे से ज्यादा अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के थे। ग्रामीण रोजगार मे वृद्धि की गई।

---

1. Budget Study 1989-90 (DES), March, 1989 एव D. E. S, जयपुर द्वारा उपलब्ध अन्य आकडे जो 1977-78 से 1986-87 की दस वर्षों की अवधि के लिए 1988 मे जारी किये गये हैं।

शक्ति की प्रस्थापित क्षमता 1979-80 मे 1032 82 मेगावाट से बढ़कर 1984-85 में 1747 86 मेगावाट हो गई।

योजना के प्रारम्भ मे 38% गांवो मे बिजली पहुँचाई जा चुकी थी जो 1984-85 मे 58% के स्तर तक पहुँच गई। राज्य मे बायो-गैस सयत्रो का विकास किया गया जिनमे गोबर का उपयोग होता है।

उद्योग—राज्य मे विनियोग-सब्सिडी का विस्तार किया गया तथा रीको ने सयुक्त क्षेत्र व सहायता-प्राप्त क्षेत्र मे उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। मार्च 1985 मे राज्य म 29 सयुक्त क्षेत्र की इकाइयों मे उत्पादन कार्य चालू हो गया था।

खादी (सूती व ऊनी), ग्रामीण उद्योगो, हथकरघा आदि मे उत्पादन बढा तथा ग्रामीण उद्योगो मे रोजगार 62 हजार व्यक्तियो से बढकर 1 7 लाख व्यक्ति हो गया राज्य मे खनिज पदार्थों मे रोक-फॉस्फेट, जिप्सम, आदि का उत्पादन बढाया गया।

विविध—राज्य मे सडको का विस्तार किया गया है। सामान्य शिक्षा का अधिक फैलाव हुआ है। अस्पतालो की सख्या 171 से बढकर 186 हो गई है। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम मे सडको, प्रारम्भिक शिक्षा, पेयजल आदि का विस्तार किया गया है।

इस प्रकार छठी योजना की अवधि मे राज्य का आर्थिक व सामाजिक इन्फास्ट्रक्चर सुदृढ हुआ है। लेकिन राज्य मे अकाल व अभाव की समस्या के कारण ग्रामीण जनता को निरतर काफी कष्टो का सामना करना पडा है और राज्य सरकार के सामने अकाल राहत की समस्या बहुत जटिल रूप मे विद्यमान रही है।

सातवीं पचवर्षीय योजना (1985-90) में सार्वजनिक परिव्यय का प्रस्तावित आवटन

(प्रस्तावित)

	(करोड रु मे)	(कुल का प्रतिशत)
(1) कृषि व सहायक क्रियाएँ एव ग्रामीण विकास	290 3	9 7
(2) सहकारिता	46 2	15

(3) सिचाई-बाढ़-नियन्त्रण व शक्ति[1]	1608·5	53·7
(4) उद्योग व खनन	190 5	6·3
(5) परिवहन	153·3	5 1
(6) सामाजिक व सामुदायिक सेवाएं	674·7	22·5
(7) विविध	36·5	1 2
	3000 0	100 0

तालिका से स्पष्ट होता है कि सातवो योजना का आकार 3000 करोड़ रु. का स्वीकृत किया गया था। यह छठी योजना के लिए स्वीकृत धनराशि से 48% अधिक था। सातवी योजना मे भी आधी से कुछ अधिक राशि (54%) सिचाई बाढ़-नियंत्रण व विद्युत के विकास पर तथा 1/5 से अधिक राशि (22·5%) सामाजिक व सामुदायिक सेवाओ पर व्यय के लिए निर्धारित की गई। इस प्रकार योजना मे बिजली, खाद्यान्न, औद्योगिक उत्पादन व रोजगार मे वृद्धि पर जोर दिया गया।

यह कहा गया कि सातवी योजना के लिए लगभग 1140 करोड़ रु. की राशि केन्द्रीय सहायता के रूप मे प्राप्त होगी तथा राज्य सरकार को 1000 करोड़ रु. के अतिरिक्त साधन जुटाने होंगे।

सातवी योजना मे विद्युत उत्पादन क्षमता को 1713 मेगावाट से बढ़कर 2660 मेगावाट करने का लक्ष्य रखा गया। अतः इसमे 62% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में 4·38 लाख हैक्टेयर क्षेत्र मे अतिरिक्त सिचाई की व्यवस्था का लक्ष्य रखा गया। 1500 से अधिक जनसंख्या वाले सभी गांवों तथा 1000 से 1500 तक की जनसंख्या वाले 50% गांवों को सड़को से जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। शिक्षा, चिकित्सा, पेयजल, आदि का विकास करने के कार्यक्रम रखे गये। इलेक्ट्रोनिक्स इकाइयो के लिए कई प्रकार की छूटें व रियायतें दी गई।

---

1. इसमे शक्ति का अंश 927 5 करोड़ रु है जो कुल व्यय का 31% है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक व्यय का अनुमानित आवंटन[1]

1985-88 के वास्तविक व्यय, 1988-89 के अनुमानित व्यय व 1989-90 के प्रस्तावित व्यय के आधार पर आगे की तालिका मे राजस्थान की सातवी पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक व्यय का विभिन्न क्षेत्रो मे सम्भावित आवटन प्रस्तुत किया गया है। इससे सातवी योजना में सार्वजनिक व्यय के प्रारूप का अनुमान लगाया जा सकता है।

सातवीं पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक व्यय का स्वरूप
(करोड रु मे)

	1985-88 (वास्तविक)	1988-89 (अनुमानित)	1989-90 (प्रस्तावित)	1985-90 (सम्भावित)	कुल का %
1. कृषि व सहायक क्रियाए ग्रामीण विकास व सहकारिता	189 1	95 5	95 5	380 1	12·2
2. सिचाई, बाढ नियत्रण व शक्ति	899 8	336·0	375·3	1611·1	51·9
3. उद्योग व खनिज......	70 0	29·0	39·3	138·3	4·5
4 परिवहन	59 1	48·1	36 0	143·2	4 6
5. सामाजिक व सामुदायिक सेवाएँ	315 5	182 6	225 7	723·8	23·3
6 विविध (वैज्ञानिक व आर्थिक सेवाए, प्रशासनिक सुधार, सेवात विकास, आदि)	65 6	18·1	23·1	107·8	3·5
अंक दशमलव के एक स्थान तक लेने के कारण लगभग कुल योग	1600 0	710·0	795·0	3105·0	100·0

1. आय-व्ययक अध्ययन 1989-90, पृ. 48 व पृ. 123-124.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि सातवीं योजना में सम्भावित व्यय 3105 करोड़ रु. आंका गया है जो प्रस्तावित व्यय से अधिक होगा। इसका 52% सिंचाई व शक्ति पर तथा 23% सामाजिक सेवाओं पर व्यय होने की सम्भावना है। इस प्रकार 3/4 व्यय इन दो मदों के अन्तर्गत होगा। खनन व उद्योग पर कुल सार्वजनिक व्यय का 4 5% होने का अनुमान है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में आर्थिक प्रगति विशेषतया (1985 88 की अवधि में)—दुर्भाग्य से सातवी योजना के प्रथम तीन वर्ष भीषण अकाल व अभाव के वर्ष रहे। प्रथम वर्ष मे 26 जिले अकाल से प्रभावित हुए तथा 1986 87 व 1987-88 मे प्रत्येक मे समस्त 27 जिले अकाल व सूखे की चपेट मे रहे।

1987-88 मे राज्य की शुद्ध घरेलू उत्पत्ति (NSDP) घट गई। फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय भी 1987-88 मे 583 रुपये पर आ गई जो 1984 85 के 639 रुपयो से भी कम थी। 1985-88 की अवधि मे स्थिर भावो पर राज्य की शुद्ध घरेलू उत्पत्ति मे प्रतिवर्ष ½% की गिरावट आयी तथा प्रति व्यक्ति आय 3% वार्षिक दर से घटी।

खाद्यान्नों का उत्पादन 1987-88 मे 48 लाख टन पर आ गया जबकि 1985-86 में यह 81 3 लाख टन रहा था। लेकिन 1988-89 मे इसके बढ़कर 1 करोड़ टन की सीमा को पार कर जाने का अनुमान है।

तिलहन का उत्पादन 1987-88 मे पिछले वर्ष की तुलना मे बढ़ा था। 1988-89 मे इसके 15 8 लाख टन होने की आशा है। 1988–89 मे गन्ने व कपास के उत्पादन में भी पिछले वर्ष की तुलना मे काफी वृद्धि होगी। कपास का उत्पादन तो 1988-89 मे सम्भवत पिछले वर्ष की तुलना में दुगुने से भी अधिक रहने की आशा है। 1987-88 में कपास का उत्पादन 2 18 लाख गाँठे हुआ था जबकि 1988-89 मे 5 47 लाख गाँठे रहने की सम्भावना है।

1986 87 मे कुल सिंचित क्षेत्रफल 43 5 लाख हैक्टेयर रहा जब कि 1984 85 मे यह 38 3 लाख हैक्टेयर रहा था।

पावर व औद्योगिक क्षेत्र मे प्रगति—

1984 85 मे विद्युत की कुल प्रस्थापित क्षमता 1747 86 मेगावाट थी जो 1988 89 मे लगभग 2500 मेगावाट तक पहुच गई है। 1989 90 में इसमे और वृद्धि की आशा है। इस वृद्धि में कोटा थर्मल चरण II की दो इकाइयो माही हाइडल पावर हाउस-2 की दो इकाइयो (अन्ता) गैस पावर

स्टेशन व रिहन्द सुपर थर्मल पावर स्टेशन मे हिस्सा मिलने, आदि से मदद मिलेगी। इस प्रकार राजस्थान की पावर-स्थिति काफी सुधर रही है।

राज्य मे भिवाड़ी क्षेत्र मे इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगो का विकास किया जा रहा है। 1988-89 मे ग्रामीण उद्योगो का उत्पादन 120 करोड रुपये होने की आशा है तथा इनमे रोजगार बढ कर 2 6 लाख व्यक्तियो तक हो जाने का अनुमान है। सूती व ऊनी खादी का उत्पादन 1988-89 मे 25 50 करोड रु. रहने की आशा है।

राज्य मे 1989-90 मे ग्रामीण निर्धनो को जवाहर-योजना के अन्तर्गत रोजगार उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है।

राज्य मे उपलब्ध साधनो पर आधारित औद्योगिक विकास की काफी सम्भावनाए हैं। सरकार आठवी पचवर्षीय योजना मे अर्थव्यवस्था को अधिक गतिमान बनाने का प्रयत्न करेगी।

अब हम योजनाकाल में आर्थिक प्रगति की समीक्षा करने से पूर्व सक्षेप मे जनता शासन-काल की अन्त्योदय योजना का परिचय देंगे। सम्भवत. आगे चल कर इस प्रकार के प्रयोग से लाभ उठाया जा सके।

जनता सरकार का निर्धनता को दूर करने की दिशा मे अन्त्योदय कार्यक्रम

राज्य मे जनता सरकार द्वारा ग्रामीण निर्धनता को दूर करने की दिशा मे "अन्त्योदय कार्यक्रम" अपनाया गया था। इस कार्यक्रम ने अन्य राज्यो का ध्यान भी अपनी तरफ आकर्षित किया था। राजस्थान को इस कार्यक्रम के सम्बन्ध मे अग्रणी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जो एक सराहनीय बात थी। इसका ऐतिहासिक महत्व रहा है, इसलिए यहा इसका सक्षिप्त विवेचन किया जाता है।

अन्त्योदय कार्यक्रम गाधीवादी कार्यक्रम की एक कडी माना जा सकता है। यह 1977-78 से प्रारम्भ किया गया था। इसमे प्रत्येक गांव से सबसे अधिक निर्धन पांच परिवार चुने जाते थे जिनको आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने का प्रयास किया जाता था। राज्य मे लगभग 33 हजार गाव हैं। इन निर्धनतम परिवारो का चयन ग्राम-सभाओ व गाव के लोगो की सलाह से किया गया था। इनको सहकारी व व्यापारिक बैंको से कर्ज उपलब्ध कराये जाते थे ताकि ये दुधारू पशु-गाय, भैंस बकरी आदि खरीद सकें या भेड-पालन व सूअर-पालन कर सकें अथवा बैलगाड़ी या बैल ऊटगाडी या कहीं-कही रिक्शा आदि भी खरीद सकें अथवा दस्तकारी, कुटीर उद्योगो को स्थापित करके अपना जीविकोपार्जन कर सकें। इन्हे कृषि के लिए

भूमि भी दी जा सकती थी। इस प्रकार यह सबसे गरीब वर्ग के लोगों को आर्थिक दृष्टि से साधन प्रदान करके उन्हें स्वावलम्बी बनाने का एक उत्तम तरीका माना गया था। ऐसे लोग योजनाकाल में विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाये थे और विकास के लाभ कुछ सम्पन्न व अर्द्ध-सम्पन्न परिवारों तक ही सिमट कर रह गए थे।

अन्त्योदय कार्यक्रम के अन्तर्गत जिन निर्धन परिवारों का चयन किया जाता था उनकी प्रति व्यक्ति प्रति माह आमदनी 20 रुपयों से भी कम होती थी, हालांकि उस समय प्रति व्यक्ति प्रति माह 55 रुपये से कम आय वाले व्यक्ति निर्धनता की रेखा से नीचे माने गये थे।

अन्त्योदय योजना में भूमिहीन श्रमिकों व ग्रामीण दस्तकारों को अधिक लाभ मिलने की आशा थी। ये लोग सर्वोच्च प्राथमिकता कृषि योग्य भूमि को देते हैं और बाद में पशु-पालन, कुटीर-उद्योग हथकरघा उद्योग, आदि को महत्व देते हैं। जनता सरकार का विचार था कि यदि इस कार्यक्रम के लिए बड़ी मात्रा में धनराशि की व्यवस्था की जा सके तो राज्य में निर्धनता को दूर किया जा सकता है।

लन्दन के समाचार-पत्र "दी इकोनोमिस्ट" ने यह मत प्रकट किया था कि "अन्त्योदय योजना" को गावों के सम्पन्न भू-स्वामियों से कोई खतरा नहीं है, जैसा कि भूमि-सुधार के कार्यक्रम को रहा है। 'अन्त्योदय योजना' व 'समग्र ग्रामोदय योजना' को योजना की नई शैली का आधार बनाने का प्रयोजन यही था कि हमारी योजनाएं ग्रामोन्मुख गरीबोन्मुख, रोजगारोन्मुख व कुटीर उद्योगोन्मुख बनें, ताकि समाज के कमजोर वर्गों को अपनी आर्थिक दशा सुधारने का उत्तम अवसर मिले, जो उन्हें पूर्व योजनाओं में नहीं मिल पाया था।

बीस सकल्पों की घोषणा

राज्य में कांग्रेस (आई) सरकार के पुनः सत्तारूढ़ हो जाने पर 'अन्त्योदय कार्यक्रम' के स्थान पर नया 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को लागू किया गया है। 1985-86 म बीस सूत्री कार्यक्रम के लिए 300 करोड़ रु के व्यय की व्यवस्था की गई थी जो योजना में प्रस्त वित्त व्यय का 70% थी। सितम्बर 1981 में मुख्यमंत्री श्री शिवचरण माथुर की सरकार ने 'पिछड़े को पहले' कार्यक्रम के अन्तर्गत 20 सकल्पों को पूरा करने पर भी जोर दिया था। ये बीस सकल्प इस प्रकार थे: (1) पूरे चुनाव, (2) बढ़िया शिक्षा, (3) सस्ता न्याय, (4) गरीब को छप्पर, (5) छोटा परिवार, (6) नई ऊर्जा (7) राजस्थान नहर, (8) कोटा थर्मल, (9) जगल में मगल, (10) ग्राम तक सड़क, (11) खेत में बिजली, (12) पीने का पानी, (13) पिछड़े का पहले, (14) विकलाग कल्याण, (15) नशीभ्रष्ट मुक्ति, (16) राष्ट्रीय एकता,

(17) डेयरी विकास, (18) मुर्गी पालन, (19) कृषि व सहकारिता और (20) हस्त-शिल्प एवं उद्योग।

पिछड़े को पहले' अभियान अन्त्योदय का ही एक विकसित स्वरूप माना जा सकता है। अन्त्योदय गाँव के सबसे पिछड़े पाँच परिवारों के आर्थिक उत्थान का कार्यक्रम था, जबकि पिछड़े को पहले' ग्रामीण विकास की रणनीति के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

राजस्थान में योजनाकाल के 38 वर्षों (1951-89) में आर्थिक प्रगति[1]

राजस्थान मे योजनाकाल मे आर्थिक प्रगति हुई है, फिर भी यह राज्य भारत मे सबसे ज्यादा निर्धन व पिछड़े हुए राज्यो मे गिना जाता है।। हम नीचे संक्षेप मे 1951 से 1989 तक की अवधि मे हुई आर्थिक प्रगति पर प्रकाश डालेंगे जिससे पता चलेगा कि राजस्थान ने 38 वर्षों मे राज्य की आमदनी (state income), कृषिगत उत्पादन, सिंचाई शक्ति औद्योगिक विकास, सड़क शिक्षा, चिकित्सा जल-सप्लाई आदि क्षेत्रो मे काफी प्रगति की है। लेकिन आगामी वर्षों मे विकास की यात्रा व विकास की प्रक्रिया को अधिक तेज करना है।

1. राज्य की आय मे वृद्धि—योजनाकाल के प्रथम दो दशकों मे राज्य की आय लगभग दुगुनी हो गई थी। बाद मे राज्य की आय के आंकड़े 1970-71 के भावो पर दिये जाने लगे। इनके अनुसार राज्य की आय 1970-71 मे 1637 करोड़ रुपयो से बढ़कर 1987-88 मे 2383 करोड़ रुपये (स्थिर कीमतो पर) हो गई है। 1986 87 में यह 2524 करोड़ रुपये रही थी। लेकिन प्रतिव्यक्ति आय 1970-71 मे 651 रुपये थी जो स्थिर मूल्यो पर 1986-87 मे 634 रुपये तथा 1987-88 मे 583 रुपये रही है। यह एक निराशाजनक स्थिति है। 1970-71 से 1987-88 के 17 वर्षों मे राज्य की प्रति व्यक्ति आय के सम्बन्ध मे एक विशेष बात उल्लेखनीय है। यह 1970-71 मे 651रु. थी। बाद मे केवल 1982-83 तथा 1983-84 को छोड़कर अन्य सभी वर्षों मे यह स्थिर भावो पर 651 रु से कम रही है, जिससे राज्य के आर्थिक विकास मे धीमेपन व गतिहीनता की शिकायत की गई है। वैसे भी हम देख चुके हैं कि स्थिर भावों पर पाँचवी योजना व छठी योजना में राज्य की घरेलू उत्पत्ति/आय मे क्रमशः 5 2% व 6 9% वार्षिक वृद्धि की दरें प्राप्त की गई हैं। इसलिए 1970-71 की प्रति व्यक्ति आय को लेकर आगे चलने पर विकास की गति काफी निराशा-जनक लगती है। वैसे पांचवी व छठी योजनाओ मे प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि-दरें (स्थिर भावों पर) क्रमशः 2·1% व 4 1% रही हैं, जिन पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

---

1. आय-व्ययक अध्ययन, 1989-90, आर्थिक समीक्षा, 1988-89, पृ. 71–96 एव Shri S. K. Bhargava, Director, DES, का लेख "A Note on Perspective For Eighth Five year Plan, June 1989, (DES Jaipur)

छठी योजना मे राज्य की अर्थव्यवस्था में 6·9% सालाना की दर से वृद्धि हुई थी। चूँकि 1979-80 का आधार-वर्ष काफी कमजोर रहा था, इसलिए यह वृद्धि अतिशयोक्तिपूर्ण मानी जा सकती है। वास्तव मे 1984-85 वर्ष मे राज्य की शुद्ध घरेलू उत्पत्ति (Net State Domestic Product) 4 8% घटी थी। लेकिन 1982-83 मे यह 16% तथा 1983-84 में 8·6% बढ़ी थी। यद्यपि छठी योजना में वार्षिक विकास की दर 6·9% रही, लेकिन इस लम्बी अवधि में प्राप्त कर सकना काफी कठिन होगा क्योंकि कृषिगत उत्पादन में भारी उतार-चढ़ाव आने से राज्य की आमदनी भी प्रभावित होती रहती है। राज्य की अर्थव्यवस्था बहुत अस्थिर व अनिश्चित किस्म की है।

2 कृषिगत उत्पादन व सिंचाई—राज्य में खाद्यान्नों का उत्पादन 1950-51 मे 29·5 लाख टन हुआ था जो 1983 84 मे 100 8 लाख टन हो गया (लगभग एक करोड़ टन)। लेकिन 1987-88 मे यह घट कर 48 लाख टन पर आ गया एव 1988 89 मे इसके पुनः 1 करोड़ टन रहने की सम्भावना बतलायी गयी है। राज्य में अकाल व सूखे के कारण उत्पादन घटा है। राज्य मे सिंचित क्षेत्रफल 1950-51 मे 10 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 1986 87 मे 43·5 लाख हैक्टेयर तक पहुँच गया था। इस प्रकार सिंचित क्षेत्र चार गुना से अधिक हो गया, फिर भी राज्य का 77% अथवा 3/4 कृषित क्षेत्रफल मानसून की दया पर आश्रित रहता है। राज्य में प्रतिवर्ष खाद्यान्नों के उत्पादन में भारी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं जिन्हें सिंचाई का विस्तार करके ही कम किया जा सकता है। राज्य में सिंचाई की अन्तिम सम्भाव्यता 51·5 लाख हैक्टेयर आकी गयी है जिसमे से 27 5 लाख हैक्टेयर मे वृहद् व मध्यम साधनो स तथा 24 लाख हैक्टेयर मे लघु साधनों में मानी गयी है।

राज्य में अधिक उपज देने वाली किस्मों का उपयोग बढ़ रहा है। 1968-69 में ये किस्मे 5·24 लाख हैक्टेयर में बोई गई जिनके 1988-89 में लगभग 30 लाख हैक्टेयर मे फैला दिये जाने की आशा है। सुधरे हुए बीजों का वितरण भी किया गया है। रासायनिक खाद का उपयोग 1951-52 में केवल 324 टन हुआ था जो बढ़कर 1988-89 में 3 लाख टन (सम्भावित) पर पहुँच गया है। कपास का उत्पादन 1988 89 मे 5 47 लाख गाँठें (प्रति गाँठ = 170 किलोग्राम) रहने की आशा है जबकि 1987-88 मे 2 18 लाख गाँठें ही हुआ था। राज्य में सिंचाई के साधनों के विस्तार से खाद्यान्नों के अतिरिक्त उत्पादन की क्षमता बढ़ी है। जैसा कि पहले बताया गया है कि राजस्थान मे सकल कृषित क्षेत्रफल 1951-52 मे रिपोर्टिंग क्षेत्रफल के 28% से बढ़कर 1986 87 मे 52% हो गया है। जिससे राज्य में विस्तृत खेती की प्रगति का परिचय मिलता है।

राज्य म योजनाकाल मे डेयरी का विकास किया गया है। राज्य में डेयरी सयंत्रों की सख्या 30 हो गई है तथा औसत दैनिक दुग्ध सग्रह का स्तर 8 25 लाख

लीटर है जिसके 1988-89 तक 10 60 लाख लीटर प्रति दिन होने का अनुमान है। राज्य मे दुग्ध सहकारी समितियो का विकास किया गया है।

3.. विद्युत-शक्ति की प्रगति—राज्य मे 1950-51 मे शक्ति की प्रस्थापित क्षमता 8 मेगावाट थी। यह 1988-89 मे बढकर लगभग 2500 मेगवाट हो गई है। इस प्रकार शक्ति की प्रस्थापित क्षमता काफी बढी है। राज्य मे बिजली प्राप्त स्थानो की सख्या 42 से बढकर मार्च, 1989 के अत तक 24039 तथा शक्ति-चालित कुओं (wells energised) की संख्या 1038 से बढकर 3 2 लाख से कुछ अधिक हो गयी है। शक्ति की प्रस्तापित क्षमता की वृद्धि मे प्रमुख योगदान कोटा थर्मल चरण II की प्रथम इकाई, माही हाइडल पावर हाउस-2, अन्ता गैस पावर स्टेशन, इकाई I व II, तथा रिहन्द सुपर-थर्मल पावर स्टेशन मे राज्य के हिस्से ने दिया है। भविष्य मे शक्ति की प्रस्थापित क्षमता के बढने की ओर सम्भावनाए हैं।

4. औद्योगिक विकास—पिछले अध्याय मे बताया जा चुका है कि योजना की अवधि मे राज्य मे कई नये कारखाने खोले गये हैं जिससे पजीकृत फैक्ट्रियाँ 1949 मे 207 से बढकर 1988 के अन्त मे 10512 हो गई हैं। राज्य मे सीमेंट का उत्पादन 1951 मे 2·58 लाख टन से बढकर 1988 मे 40·3 लाख टन (लगभग 16 गुना) हो गया है। चीनी का उत्पादन 1951 मे 1·5 हजार टन से बढकर 1987 मे 23 हजार टन व 1988 मे 5 हजार टन हो गया है। सूती वस्त्र और सूत का उत्पादन बढा है। राज्य मे बॉल बियरिंग व बीजली के मीटर बनने लगे हैं जिसकी सख्या 1988 मे क्रमश: 139 लाख व 868 हजार हो गई थी। राज्य मे नमक का उत्पादन भी पहले से बढा है। 1988 मे नमक का उत्पादन 10 4 लाख टन हुआ जबकि 1971 में यह 5 5 लाख टन हुआ था।

1971 से 1985 तक औद्योगिक उत्पादन-सूचनाक (आधार वर्ष 1970 = 100) में वार्षिक वृद्धि पर विनिर्माण (manufacturing) में 3·7% रही एव औद्योगिक विकास की दर 6% रही।

5. सडको का विकास—राज्य में 1950-51 के अन्त में सड़को की लम्बाई 17,339 किलोमीटर थी जो बढकर 1987-88 में 53523 किलोमीटर हो गयी है। इस प्रकार सडको की लम्बाई लगभग तिगुनी हो गई है। 1960-61 में प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में सडकों की लम्बाई 7·72 किलोमीटर थी जो बढ़कर 1987-88 मे 15·64 किलोमीटर हो गई, लेकिन फिर भी यह 1984-85 में समस्त भारत के औसत स्तर 53·92 किलोमीटर से नीची ही थी।[1] 1987-88 के अत तक 1500 व अधिक जनसख्या वाले 86% गाँव तथा 1000-1500 जनसख्या वाले 6.% गाँव सडको से जोड दिये गये थे।

---

1. S K. Bhargava's paper, p. 13

6 शिक्षा की प्रगति—3 000 व उपर की जनसंख्या वाले सभी गाँवों में प्राथमिक स्कूल खोल दिये गये हैं। सभी पंचायत समितियों में एक या अधिक माध्यमिक उच्चतर माध्यमिक स्कूल खोले गये हैं। राज्य के सभी जिलों में कालेज स्तरीय शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई है। राज्य में बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स व टक्नोलोजी (पिलानी और मालवीय रीजनल इन्जीनियरिंग कालेज (जयपुर) के स्थापित हो जाने से टेक्नीकल शिक्षा की सुविधाएँ बढ़ गई हैं। राज्य में पोलीटेक्नीक संस्थाएँ भी स्थापित की गई। राज्य में वर्ष 1986 87 में 137 कॉलेज उच्च शिक्षा में संलग्न थे जिनमें 67 राजकीय थे तथा 70 सहायता प्राप्त कालेज थे। तकनीकी शिक्षा के अन्तर्गत 5 इन्जीनियरिंग कालेज व 13 पोलीटेक्नीक कार्यरत हैं। राज्य में स्कूली शिक्षा का काफी विस्तार हुआ है। राज्य में साक्षरता का अनुपात 1961 में 15 2% से बढ़कर 1981 में 24 4% हो गया है। समस्त भारत के लिए साक्षरता का अनुपात = 36·3%) इस प्रकार योजनाकाल में शिक्षण संस्थाओं का काफी विकास किया गया है। जुलाई 1987 से राज्य में अजमेर, कोटा व बीकानेर में नये विश्वविद्यालय चालू किये गये हैं। 1950 51 में प्राथमिक स्कूलों में बच्चों की भर्ती 3 30 लाख थी जो बढ़कर 1988-89 में 47 8 लाख हो गई है। फिर भी लाखों बच्चे (6-11 वर्ष की आयु) अभी स्कूल नहीं जा पा रहे हैं।

7 चिकित्सा व जल पूर्ति के क्षेत्र में प्रगति—राज्य में मलेरिया व चेचक आदि पर काफी मात्रा में नियंत्रण स्थापित कर लिया गया है। राज्य को 1977 में चेचक से मुक्त घोषित कर दिया गया था। अस्पतालों में रोगियों के लिए बिस्तरों की संख्या बढ़ायी गई है और चिकित्सा की सुविधा भी बढ़ी है। सभी पंचायत समितियों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित कर दिये गये हैं। 1951-52 में अस्पतालों व डिस्पेन्सरियों एवं मातृत्व व बाल-कल्याण केन्द्रों की संख्या 418 थी जो 1986 87 में बढ़कर 1961 हो गई है। इनमें प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या 598 अस्पतालों की 208 डिस्पेन्सरियों की संख्या 1044 व मातृत्व व बाल कल्याण केन्द्रों की संख्या 111 थी। इनके अलावा 92 उपकेन्द्र भी कार्यरत थे। शहरों के मुख्य अस्पतालों की भीड़भाड़ को कम करने की दृष्टि से 5 सैटेलाइट अस्पताल भी चालू किये गये हैं।

मार्च 1990 तक 32400 गाँवों में पेयजल की सुविधा हो जायगी।

राज्य में नगरों व गाँवों में जल-सप्लाई की व्यवस्था में सुधार किया गया है।

8 राज्य में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) की प्रगति—IRDP निर्धनता कम करने से सम्बन्धित कार्यक्रम है। 1977-78 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति प्रतिमाह 63 रु (ग्रामीण क्षेत्रों में) तथा 75 रु (शहरी क्षेत्रों में) से कम व्यय करने वाले व्यक्ति निर्धन माने गये थे, जिनका अनुपात राजस्थान के लिए

33·5% आया था, हालांकि यू.पी. के लिए यह 50% बिहार के लिए 57½%. पश्चिमी बंगाल के लिए 52½% तथा तमिलनाडु के लिए 52% आया था। इस प्रकार राजस्थान कम निर्धन माना गया है।

छठी योजना में IRDP के माध्यम से निर्धन वर्ग को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने के लिए प्रयास किये गये हैं लेकिन उनमें पर्याप्त सफलता नहीं मिल पायी है। डॉ. सी एच. हनुमन्त राव ने अनुमान लगाया है कि राजस्थान में ग्रामीण निर्धनता का अनुपात 1977-78 में 33 5% से बढ़कर 1983-84 में 36·6% हो गया है। राजस्थान ही एक ऐसा राज्य है जिसमें उपरोक्त प्रवृत्ति में ग्रामीण निर्धनता का अनुपात (Poverty ratio) बढ़ा है, जबकि अन्य राज्यों व समस्त भारत में यह घटा है।[1]

1948 में जयपुर जिले (मार्सन महुआ व मार्सन) व जोधपुर (मार्सन नागाड़ें) जिलों में IRDP की प्रगति के सर्वेक्षण हुए थे जिनसे प्राप्त परिणाम सन्तोषजनक स्थिति के सूचक नहीं हैं। जयपुर जिले में 14 7% परिवार तथा जोधपुर जिले में 21 4% परिवार जो गरीब मान लिये गये थे, वस्तुतः गरीब नहीं थे। जयपुर के अध्ययन में बतलाया गया है कि 54% कर्ज लेने वालों ने अपने पशु बेच दिये अथवा उनके पशु मर गए। उनके चारे की कमी के कारण बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। केवल 18% कर्ज लेने वाले ही निर्धनता की रेखा को पार कर पाये हैं। भेड़ बकरी, आदि के सम्बन्ध में स्थिति काफी खराब रही है। इस प्रकार IRDP की उपलब्धियां सीमित ही रही हैं। राजस्थान के योजना विभाग की सूचना के अनुसार छठी पंचवर्षीय योजना में 7·1 लाख परिवारों को IRDP से लाभ पहुँचा है जिनमें लगभग आधे अनुसूचित जनजाति के परिवार हैं।

फरवरी 1989 तक 1 37 लाख परिवारों को लाभान्वित किया जा चुका है। 1989-90 में इस कार्यक्रम के लिए 35·6 करोड़ रुपयों के व्यय का प्रावधान किया गया है। लाभान्वित होने वाले परिवारों के माल के विक्रय की व्यवस्था भी की जा रही है।

9. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP)—इसके तहत ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाने की व्यवस्था की जाती है। अकाल-राहत के कार्य भी कराये जाते हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पेयजल के लिए कुओं का निर्माण, स्कूल भवनों, डिस्पेन्सरियों, ग्रामीण सड़कों, लघु सिंचाई के साधनों व भू-संरक्षण के कार्य किये जाते हैं।

---

1. C H. Hanumantha Rao, Changes in Rural Poverty in India' Mainstream, January, 11, 1986, p 11.

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP), ट्राइसेम, मैचिंग कार्यक्रम (लघु कृषकों के लिए), मरुविकास, सूखा सम्भाव्य क्षेत्र विकास, रेगिस्तान विकास, जवाहर रोजगार योजना, नहरी क्षेत्र मवेशी विकास (मरु विकास, कमाण्ड एरिया डेवलपमेंट) कार्यक्रम आदि के लिए धनराशि व्यय की गई है तथा सम्बन्धित व्यक्तियों को लाभान्वित किया जा रहा है। 1989-90 में ग्रामीण क्षेत्रों में 2.5 लाख व्यक्तियों को 120 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने का प्रयास किया जायगा। अन्य कार्यक्रमों से 1.2 लाख व्यक्तियों को लाभ पहुँचाया जायगा। इसके अलावा जवाहर-रोजगार-योजना के अन्तर्गत ग्रामीण निर्धन परिवारों के लिए रोजगार उपलब्ध कराया जायगा।

सारांश—योजनाकाल में 38 वर्षों की आर्थिक प्रगति से राज्य में आधार-ढाँचा (इन्फ्रास्ट्रक्चर) सुदृढ़ हुआ है। सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ी हैं, विद्युत की प्रस्थापित क्षमता बढ़ी है और राज्य औद्योगिक विकास के नये कार्यक्रम अपनाने की स्थिति में आ गया है। रीको ने संयुक्त क्षेत्र में कई इकाइयाँ स्थापित की हैं। जिनमें से कई इकाइयों में उत्पादन कार्य चालू हुआ है। RFC लघु व मध्यम उद्योगों को काफी मात्रा में दीर्घकालीन कर्ज देने लगा है।

लेकिन राज्य में जनसंख्या की वृद्धि-दर 1961-71 में 27.8% से बढ़ कर 1971-81 में लगभग 33% हो गई है, जो नियोजन की विफलता की सूचक है। राज्य में कृषिगत उत्पादन में काफी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। प्रतिवर्ष राज्य में अकाल व अभाव की स्थिति बनी रहती है। विद्युत की सृजन-क्षमता के बढ़ने पर भी कृषिगत व औद्योगिक कार्यों के लिए प्रायः विद्युत की कमी बनी रहती है जिससे कृषि व उद्योगों दोनों के विकास में बाधा पहुँचती है। पर्यटन का विकास भी वांछित मात्रा में हुआ है।

हम नीचे राजस्थान के विकास में प्रमुख बाधक तत्वों का उल्लेख करके भावी विकास के लिए आवश्यक व व्यावहारिक सुझाव देंगे ताकि राजस्थान की अर्थव्यवस्था अधिक तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर हो सके।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था की धीमी प्रगति के कारण
(Causes of Slow Growth of the Economy of Rajasthan)

नियोजन के प्रारम्भ में राजस्थान को 'एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था में एक पिछड़ा हुआ प्रदेश' (A backward region in a backward economy) कहा जाता था। उस समय यह राज्य आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व अन्य दृष्टियों से देश के अन्य भागों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ था। पिछले 38 वर्षों में कई क्षेत्रों में प्रगति होने से राज्य के सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन में कमी आयी है। *लेकिन अभी तक इस दिशा में बहुत कार्य करना शेष है।* हम पहले बतला चुके हैं कि राज्य की प्रति व्यक्ति आय 1970-71 में 651 रु. रही थी जो बाद में, स्थिर भावों पर, 1982-83 व 1983-84 को छोड़ कर 1987-88 तक किसी भी वर्ष इससे अधिक नहीं रही। बल्कि 1982-83 में यह 652 रु. पर ही रही। इससे

राज्य की धीमी आर्थिक प्रगति का ही नहीं, बल्कि आर्थिक गतिहीनता की दशा का भी पता लगता है। स्मरण रहे कि पांचवीं व छठी योजनाओं में राज्य की कुल आय के क्रमश. 5·2% व 6·9% वार्षिक दर से बढ़ने से यह भ्रम हो सकता है कि राज्य में आर्थिक प्रगति धीमी नहीं है। लेकिन राज्य में 1974-75 से 1987-88 तक के 14 वर्षों में से 11 वर्षों में अकाल व अभाव की स्थिति पायी गयी। 1987-88 में 27 जिलों में अकाल व सूखा पड़ा और इस वर्ष प्रति व्यक्ति आय में (स्थिर भावों में) काफी गिरावट आयी है।

गत वर्षों से राज्य की प्रति व्यक्ति आय 1970-71 के स्तर के आस-पास ही मडराती रही है जिससे राज्य मे धीमी प्रगति का ही आभास होता है। इसके कारणो पर आगे प्रकाश डाला गया है। ये तत्व ही राज्य के आर्थिक विकास मे बाधक हैं।

1 प्राकृतिक बाधाएं–पहले बतलाया जा चुका है कि अरावली पर्वतमालाओं के पश्चिम में थार का रेगिस्तानी प्रदेश है जिसमें वर्षा बहुत कम होती है और मिट्टी भी उपजाऊ नही है। इससे कृषि-कार्यों मे बहुत बाधा पहुंचती है।

विभिन्न प्राकृतिक बाधाएँ इस प्रकार हैं :—

(i) वर्षा की अनिश्चितता सूखा अकाल आदि—राज्य मे वर्षा का वार्षिक औसत अन्य कई राज्यो की तुलना मे कम है। वर्षा की अनिश्चितता व अनियमितता समस्त भारत की विशेषता है, लेकिन इसका विशेष कुप्रभाव राजस्थान पर पड़ता रहा है। राज्य में वर्षा का सामान्य वार्षिक औसत 59 सेंटीमीटर माना गया है जो जैसलमेर में 15 सेन्टीमीटर से झालावाड जिले में 104 सेन्टीमीटर तक पाया जाता हैं। यहाँ एक ही समय में राज्य के कुछ भागो में अतिवृष्टि के फलस्वरूप बाढ़ के कारण जान-माल की भारी हानि देखी जाती है तो दूसरी तरफ अनावृष्टि व सूखे के कारण लोगो को पीने का पानी तक नही मिलता और पानी व चारे के अभाव में पशुधन को भी भारी क्षति पहुंचती है। भूतकाल मे राज्य से प्रतिवर्ष पशुओं का अन्य प्रदेश गुजरात, उत्तर प्रदेश व अन्य राज्यो को निष्क्रमण हुआ है। प्राकृतिक प्रकोपों से प्रभावित क्षेत्रो में सरकार को राहत कार्य (relief works) चालू करने पड़ते है और भू-राजस्व आदि की छूटें देनी पड़ती है। वर्षा की कमी के कारण राजस्थान में हर वर्ष किसी न किसी क्षत्र में अकाल की स्थिति अवश्य पायी जाती है। कभी-कभी अकाल की व्यापकता व भीषणता बहुत बढ जाती है। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) की अवधि मे एक वर्ष को छोड़कर बाकी सभी वर्षों मे राज्य मे सूखे की स्थिति रही। अतिवृष्टि व अनावृष्टि दोनो के कारण राज्य को अकाल के संकट का सामना करना पड़ता है। सातवीं योजना के प्रथम तीन वर्ष 1985-86, 1986-87 व 1987-88 अकाल की चपेट मे रहे हैं।

अकाल के कारण लोग रोजगार की तलाश मे इधर उधर भटकने लगते हैं तथा पशुओं के लिए भी चारे व पानी का भारी संकट उत्पन्न हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि राजस्थान के पशु-पालकों का जीवन कितना कष्टमय व निराशाओं से भरा हुआ है। सरकार को अन्य राज्यों से चारे की खरीद करनी होती है। लेकिन प्राय वह पर्याप्त नही होती और फलस्वरूप चारा महगा हो जाता है। इससे दूध के भावो पर भी भारी असर आता है।

(ii) पीने के पानी का अभाव—राज्य के कई जिलो में भूमि के नीचे पानी बहुत गहराई पर निकलता है, अथवा कभी-कभी भूमि के नीचे जल बिल्कुल ही नहीं निकलता और कुछ दशाओं मे खारा पानी (Brackish water) निकलता है जो किसी भी काम का नहीं होता। इस प्रकार पीने के पानी के अभाव मे लोगो को काफी दूर से पानी की व्यवस्था करनी पड़ती है जिसमे अनावश्यक मात्रा मे श्रम, शक्ति व साधन नष्ट हो जाते हैं। सूखे की स्थिति मे तो भयानक गर्मी व प्यास से कभी-कभी मनुष्य व पशु मौत के शिकार हो जाते हैं। गाँवो म पेयजल पहुँचाने की व्यवस्था करनी होती है। इस प्रकार राज्य में आज भी काफी गाँव ऐसे हैं जिनमे पेयजल की पर्याप्त सुविधा नही हो पायी है। राज्य सरकार हैण्ड पम्प व नलकूप तैयार करने पर काफी बल दे रही है। काफी गाँवो मे पेयजल की कठिनाई दूर करने का प्रयास जारी है। सरकार को ट्रकें व टैंकरों की सहायता स गाँवो मे पेयजल पहुँचाना होता है। इसके अलावा प्राइवेट ट्रकों, ऊँटगाडियों व बैलगाडियो का भी पेयजल को पहुँचाने मे उपयोग किया जाता है।

(iii) भूमि का कटाव—राज्य म तेज हवा के कारण भूमि के कटाव की भी गम्भीर समस्या पायी जाती है। पशुओ के द्वारा अनियन्त्रित चराई के कारण घास की अन्तिम पत्ती तक साफ कर दी जाती है जिससे भूमि का कटाव और भी तेज हो जाता है। इस प्रकार वर्षा की कमी व अनियमितता, भूमि के नीचे पानी की कमी और मिट्टी के कटाव ने राज्य को कभी अकालो से मुक्त नही होने दिया है।

2 सिंचाई के साधनों का अभाव—यद्यपि योजनाकाल मे सिंचित क्षेत्र लगभग 4 गुना हो गया है, तथापि आज भी कुल जोते-बोये क्षेत्र का चौथाये से कुछ कम भाग 22% ही सिंचाई के अन्तर्गत आ पाया है। राज्य का तीन-चौथाया कृषित क्षेत्र मानसून की दया पर आश्रित रहता है। सिंचाई के अभाव में एक से अधिक फसलें बोना सम्भव नही हो पाता और गहन कृषि की पद्धतियो को अपनाने मे भी कठिनाई होती है। फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों के लिए रासायनिक खाद के साथ-साथ पर्याप्त मात्रा मे जल की भी आवश्यकता होती है।

3 विद्युत शक्ति का अभाव—राज्य मे योजनाकाल मे विद्युत की प्रस्थापित क्षमता तो 8 मेगावाट से बढकर 1989 के मध्य म लगभग 2500 मेगावाट कर दी गई है, लेकिन चम्बल क्षेत्र म वर्षाभाव के कारण पिछले वर्षों में विद्युत की पूर्ति में

लिए कई कारण बतलाये गये हैं। लेकिन एक कारण यह है कि विभिन्न वस्तुओं के उपभोग के मुख्य केन्द्र राजस्थान के बाहर पाये जाते हैं जिससे टिकाऊ या गैर-टिकाऊ उपभोग्य वस्तुओं अथवा उत्पादक व पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन राजस्थान मे न किया जाकर देश के पूर्वी व पश्चिमी प्रदेशो मे किया जाता है। राजस्थान के प्रमुख उद्योगपति भी उद्योगो की स्थापना के लिए देश के अन्य भागों मे गये और उन्होने राजस्थान मे आज तक पर्याप्त मात्रा मे रुचि नही दिखलायी। राज्य के सभी मुख्य मन्त्री प्रवासी उद्यमकर्त्ताओ को राजस्थान के औद्योगीकरण मे सहयोग देने के लिए निरन्तर अपील करते रहे हैं। लेकिन उसका वांछित रूप से आशाजनक व उत्साहवर्द्धक परिणाम अभी तक सामने नही आ पाया है। भविष्य में उनकी शकाओं व शिकायतों का उचित समाधान निकालने की आवश्यकता है। इसके लिए समय-समय पर विचार गोष्ठियो का आयोजन किया जाना चाहिए ताकि व्यावहारिक समस्याएँ सामने आ सकें।

7. सरकार के पास वित्तीय साधनों का अभाव—आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है। राजस्थान सरकार ने पिछले वर्षों में विकास-कार्यों एव अकाल-सहायता-कार्यों के लिए केन्द्रीय सरकार, वित्तीय सस्थाओ व जनता से काफी कर्ज लिया है जिसकी कुल बकाया राशि 31 मार्च 1989 के अत तक 4269 करोड रुपये हो गयी थी जिसमे केन्द्रीय ऋणो की राशि 2889 करोड रु या लगभग 62% थी। आन्तरिक कर्ज की राशि 871 करोड रु. व प्रोविडेण्ट फण्ड आदि की 809 करोड रु थी।[1] इस प्रकार राज्य पर केन्द्रीय सरकार से प्राप्त कर्ज व अग्रिम राशियों का भार काफी ऊँचा है। आजकल नए केन्द्रीय ऋण पुराने ऋणो की अदायगी मे प्रयुक्त होने लगे हैं। 1988-89 मे केन्द्रीय कर्ज की प्राप्ति 543 करोड रु व अदायगी 211 करोड रु रही। इस प्रकार शुद्ध कर्ज की प्राप्ति लगभग 332 करोड रु. रही। अत: राजस्थान कर्ज के भार से काफी दब गया है। केन्द्रीय सहायता भी ऋणो के पुनर्भुगतान मे प्रयुक्त हो जाती है। इससे राज्य की कमजोर वित्तीय स्थिति का पता चलता है। राज्य को नयी योजनाओ के लिए भी केन्द्रीय सहायता की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी दशा मे सरकार के समक्ष वित्तीय साधनो को जुटाने की जटिल समस्या उपस्थित हो गई है। सिंचाई व विद्युत आदि क्षेत्रों मे किये गये विनियोगो से उचित प्रतिफल नही मिलने से गहरा वित्तीय सकट बना रहता है। वित्तीय साधनो की हानि को कम करने के लिए सरकार ने शराबबन्दी को समाप्त कर दिया है। इससे राज्य-आबकारी

---

1. Report on Currency a Finance 1987-88, Vol II, P.142, मार्च 1989 के अत के लिए बजट-अनुमान हैं।

कर से पुन. अच्छी आमदनी होने लगी है। 1989 90 के बजट मे इससे 184 करोड रु. का आय का अनुमान लगाया गया है।

8 जनसख्या मे तीव्र वृद्धि, बेरोजगारी व अल्प-रोजगार की समस्याएँ—1971-81 के बीच मे राजस्थान की जनसख्या मे लगभग 33% की वृद्धि हुई जो भारत मे औसत वृद्धि (25 प्रतिशत) से 8% बिन्दु अधिक थी। राज्य मे रोजगार के साधनो के अभाव मे बेरोजगारी की समस्या भी विद्यमान है। छठी योजना से प्रारम्भ मे राज्य में (श्रम-शक्ति के 3% बेरोजगारी की दर पर) 4 22 लाख व्यक्ति बेरोगार थे। अकाल के वर्षों में बेरोजगारी की समस्या और भी जटिल हो जाती है। लोग यथासम्भव रोजगार के लिए शहरो की तरफ आने लगते हैं जिससे शहरो की स्थिति और भी खराब हो जाती है। राज्य में अनुसूचित जाति व आदिम जाति के कल्याण की समस्या भी बहुत जटिल है। इसका सामाजिक पहलू भी है। अतः उनको हल करने के लिए कई दिशाओ में प्रयत्न करने आवश्यक हो गये हैं।

9 धीमी आर्थिक प्रगति के अन्य कारण—उपर्युक्त तत्वो के अलावा राज्य के आर्थिक विकास में अन्य तत्व भी बाधक रहे है, जैसे गाँवो का सामाजिक पिछड़ापन शिक्षा का अभाव, कुशल व ईमानदार प्रशासन का अभाव एव पर्याप्त जन-सहयोग की कमी। इनमे से कुछ कारण तो समस्त देश मे धीमी आर्थिक प्रगति, के लिए उत्तरदायी रहे हैं। लेकिन राजस्थान का सामती वातावरण, सामाजिक पिछड़ापन, जाति-प्रथा, ऊँच-नीच का भेद-भाव एव शिक्षा की कमी आदि यहाँ के विकास को विशेष रूप स अवरुद्ध करते रहे है। योजना-काल पर जितना व्यय किया जाता है, उसका पूरा लाभ नही मिल पाता। साधनो के अभाव की स्थिति मे साधनो का सर्वोत्तम उपयोग और भी अधिक आवश्यक हो गया है।

राजस्थान की धीमी आर्थिक प्रगति के उत्तरदायी कारणों का उल्लेख करने के बाद अब हम राज्य मे आर्थिक प्रगति को तेज करने के उपायो के बारे मे आवश्यक सुझाव देते हैं।

भविष्य में आर्थिक प्रगति को तेज करने के उपायो के बारे में सुझाव

(Suggestions for Measures Towards Rapid Economic Growth in Future)

राज्य मे आठवी पचवर्षीय योजना का निर्माण-कार्य जारी है। वर्तमान मे सातवी पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष 1989-90 की योजना पर कार्य जारी है। अतः हमें भूतकाल के अनुभवों से लाभ उठाकर भावी नियोजन को अधिक सक्रिय व सफल बनाने का प्रयास करना चाहिए। ताकि राज्य मे विकास की गति तेज की जा सके। इस सम्बन्ध म अग्र सुझाव दिये जा सकते हैं :

1 ग्रार्थिक सर्वेक्षण—राज्य मे आर्थिक सर्वेक्षण अधिक मात्रा में होने चाहिए जिससे औद्योगिक व खनिज विकास की भावी सम्भावनाओं का पता लगाया जा सके। सर्वेक्षणों से आवश्यक आंकड़े उपलब्ध हो सकेंगे। ग्रार्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद् (NCAER) ने राज्य के लिए 1974-89 की अवधि के लिए एक दीर्घकालीन योजना तैयार की थी जिसमे राज्य के भावी विकास के लिए काफी उपयोगी सुझाव दिये गये थे। एम वी माथुर समिति ने आठवीं पचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास की व्यूहरचना निर्धारित करने के लिए अपनी जून, 1989 की रिपोर्ट में कई उपयोगी सझाव दिये हैं।

2 सूखे से बचने के लिए सिंचाई के साधनों का विकास—राज्य मे निरंतर पड़ने वाले अकालों से बचने के लिए सिंचाई के साधनो का विस्तार किया जाना चाहिए। इसके लिए सिंचाई के साधनों पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। राज्य के सभी प्रकार के साधनो से अन्तिम सिंचाई की सम्भाव्यता 51·50 लाख हैक्टेयर आकी गई है जिसमे से अभी तक लगभग 40 लाख हैक्टेयर क्षमता का विकास किया गया है। अतः भविष्य में सिंचाई के विकास की काफी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं जिसका सदुपयोग किया जाना चाहिए। पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था भी बढ़ायी जानी चाहिए और ट्यूबवेलों के समीप चारे को जमा करने के लिए 'फॉडर बैंक' बनाने चाहिए। सिंचाई के विस्तार का एक प्रतिकूल प्रभाव यह पड़ा है कि गग नहर अथवा इन्दिरा गांधी नहर के क्षेत्र मे जहा कुछ वर्ष पूर्व चराई के मैदानों मे 'सेवन' (sevan) घास उपलब्ध हो जाती थी, अब वहाँ खेती का विस्तार होने से घास की मात्रा काफी कम हो गई है और पशुओं को सुदूर के स्थानों मे चराई के लिए ले जाना पड़ता है। इसलिए राज्य मे चारे का उत्पादन बढ़ाने पर भी ध्यान देना होगा। इस दिशा मे डेयरी विकास निगम, राजस्थान गो-सवर्धक सघ व इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के प्राधिकारी चारे का उत्पादन बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं।

3 राजस्थान के शुष्क प्रदेश मे भू-सरक्षण व जल-व्यवस्था—राजस्थान के शुष्क प्रदेश मे सिंचाई के विकास की सम्भावनाएँ सीमित होने मे उपलब्ध नमी के सरक्षण व कुशल उपयोग पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। फसलो का ऐसा प्रारूप अपनाना होगा जो कम नमी के अनुकूल हो इसके लिए बन्डिग या कन्टूर बन्डिंग की विधि ज्यादा उपयुक्त होगी, बनिस्बत टरसिंग (terracing), रिज-मेकिंग (ridge making), चेक-डेम (check dam), के निर्माण, आदि के। बन्ध के खेतो म चने की फसल कम वर्षा के समय भी हो सकती है। हवा को रोकने मे पेड़ व झाड़ियाँ भी लाभप्रद हो सकती हैं। शुष्क प्रदेशो मे कैर आदि के पेड़ बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। कुछ स्थायी घास की किस्मे सुरक्षात्मक टुकड़ियो का काम कर सकती हैं। इन टुकड़ियो के बीच में खेती की जा सकती है। इनसे खड़ी फसलों की रक्षा होती है। मिट्टी का हवा से होने वाला कटाव रुकता है और नमी

पर नियन्त्रण हो पाता है। इन सरक्षण के उपायों से शुष्क प्रदेश मे फसलो के उत्पादन को बढाने में बहुत मदद मिलेगी।

4. पेयजल की सुविधा—राज्य के जिन क्षेत्रो म पयजल का अभाव पाया जाता है, उनमे जल-पूर्ति के कार्यक्रम तजी स लागू करन होंग। खारे पानी की पट्टी मे पडन वाले क्षत्रो के लिए गांवो के समूह के लिए क्षेत्रीय योजनाएं बनानी पडेंगी और पास के इलाको मे नलो क जरिए पानी पहुंचाने की व्यवस्था करनी होगी। जहां पानी गहराई म उपलब्ध है और मनुष्य व पशुओ के पीने योग्य है, वहां अधिक सख्या म टयूब वैल लगाने होग। कुछ क्षत्रो मे नय कुएं खोदन और पुराने कुओ का गहरा करन स भी काफी सीमा तक पयजल की समस्या हल हो सकती है।

5 इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के अन्तगत क्षत्रीय विकास—इन्दिरा गाधी नहर परियोजना क क्षेत्र मे नयी बस्तियां बसानी हैं जिनमे काफी लोगो को रोजगार दिया जा सकता है अत इस क्षत्र मे मिट्टी के सर्वेक्षण, सडक निर्माण, वृक्षारोपण पानी की व्यवस्था आदि पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। सच पूछा जाय तो मरुभूमि का कल्याण इस नहर को पूरा करन पर निभर करता है। इस योजना के पूरा हो जाने पर सारा प्रदेश हरा-भरा हो जायगा और सारी धरती लहलहा उठेगी। अत केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकार दोनो मिलकर यथासम्भव शीघ्रता से इस परियोजना के दोनों चरणो का पूरा करन का प्रयास करना चाहिए। अनावश्यक विलम्ब होने से भविष्य मे परियोजना की लागत और बढ जायेगी और अन्य कठिनाइयां भी उत्पन्न हो सकती हैं। राज्य सरकार चाहती है कि भारी वित्तीय व्यय की आवश्यकता के कारण इस केन्द्र द्वारा पूरा किया जाना चाहिए।

अकाल-राहत कार्यों म सडक निर्माण के नाम पर काफी रुपया प्रतिवर्ष व्यय होता रहा है लेकिन सडकें ठीक से नहीं बन पाती हैं। यदि यही धनराशि इन्दिरा गांधी नहर परियोजना को पूरा करने मे लगती तो राज्य के लिए ज्यादा अच्छा होता। इस प्रकार साधनों के अभाव की स्थिति मे भी साधनो का दुरुपयोग होना वास्तव मे एक चिन्ता का विषय है और वह प्रभावपूर्ण नियोजन के अभाव का सूचक है।

निरन्तर सूखाग्रस्त रहन वाले क्षेत्रो के लिए केन्द्रीय सरकार ने ग्रामीण-निर्माण-कार्यक्रम निर्धारित किये हैं। ये कार्यक्रम जैसलमेर, बाडमेर, जोधपुर, पाली, जालौर नागौर चूरू, बीकानेर, बांसवाडा, व डूंगरपुर जिलो मे लागू किये जा रहे हैं। इन कार्यक्रमो म सडक, लघु सिंचाई, वृक्षारोपण, चरागाह विकास, ग्राम्य-जल सप्लाई योजना आदि पर बल देन से अकालो की भीषणता म कमी होगी और लोगो

को अधिक रोजगार मिलेगा । राज्य में अकाल राहत कार्यों के माध्यम से आर्थिक विकास किया जाना चाहिए ।

6 आधुनिक किस्म के लघु उद्योगों का विकास—अभी तक राजस्थान मे आधुनिक किस्म के लघु उद्योगो का विकास बहुत कम हुआ है । राज्य मे कृषिगत उत्पादन बढाने से कृषि-आधारित उद्योगों (agro-based industries) व फूड प्रोसेसिंग उद्योगों जैसे तेल उद्योग, कॉटन जिनिंग व प्रेसिंग, खंडसारी उद्योग, ब्रेड, बिस्कुट, फलों एव सब्जियों को डिब्बे मे भरने, मेथी, पापड भुजिया, शर्बत, मसालों, आदि का विकास किया जा सकता है । भीलवाडा चित्तौड व भालावाड मे शक्ति-करघो का विस्तार किया जा सकता है । लकडी आधारित उद्योग भी डूंगरपुर, व भालावाड मे स्थापित किये जा सकते हैं । इस सम्बन्ध मे लकडी की पेटियाँ, काडं-बोर्ड- औजारो के हत्थे, लकडी चीरने आदि के उद्योग, गिनाये जा सकते हैं । राज्य में खनिज आधारित उद्योगो में चीनी मिट्टी के बर्तन, अभ्रक की पिसाई, मारबल कटिंग व ड्रेसिंग, ईंटें बनाना, कांच के बर्तन, केल्शियम नाइट्रेट, केल्शियम क्लोराइड, गारनेट ड्रेसिंग आदि का विकास किया जा सकता है । रसायन उद्योगो म साबुन, पेंट-वार्निश, प्लास्टिक, बूट पॉलिश आदि का विकास सम्भव है । धातु-आधारित उद्योगों मे शीट मेटल राज्य का सामान्य उद्योग रहा है । भविष्य म कृषि के औजार, तारों का निर्माण, आटा मिलें, स्टील फर्नीचर, स्टोव, कुकर्स, ताले साइकिल व खिलौने आदि बनाये जा सकते हैं । विविध समूह मे खेल का सामान, बर्फ, आइसक्रीम, सिले-सिलाये वस्त्र गलीचो, जूतों, दुग्ध-पदार्थ आदि का उत्पादन भी बढाया जा सकता है । राज्य म रत्न-जवाहरात व आभूषणो, नाना प्रकार की दस्तकारियो, पर्यटन आदि के विकास के अवसर विद्यमान हैं जिनका उपयोग किया जाना चाहिए ।

इस प्रकार विभिन्न किस्मो के उद्योगों का विस्तार करके उपभोक्ता-माल व अन्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है । राज्य मे इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगो के विकास के भी काफी अवसर हैं ।

7 प्रवासी उद्यमकर्ताओ को आकर्षित करना—औद्योगिक विकास मे उद्योगपतियों से अधिक विचार-विमर्श किया जाना चाहिए और उन्हे नये उद्योग स्थापित करने के लिए आकर्षित किया जाना चाहिए । राजस्थान के कुछ उद्योगपति अन्य राज्यो मे उद्योगों को काफी आगे बढा रहे हैं । उन्हे अपने राज्य मे आकर उद्योगो को स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । आज की परि-वर्तित परिस्थितियो म निजी क्षेत्र एव सार्वजनिक क्षेत्र' की नीति का विशेष अर्थ नहीं रह गया है, बल्कि निजी क्षेत्र एव सार्वजनिक क्षेत्र' दोनो के शीघ्र व पर्याप्त विकास एव विस्तार की नीति अपनायी जानी चाहिए । निजी उद्योगपतियो मे उद्योगो के संस्थापन संचालन व विकास म की जा योग्यता है, उसका पूरा उपयोग किया जाना चाहिए । हम अनियन्त्रित पूंजीवाद की शोषण-प्रवृत्ति एव सार्वजनिक क्षेत्र को

प्रशासनिक कार्यकुशलता व ग्रर्थक्षमता के बीच का कोई अधिक सही एवं व्यावहारिक मार्ग ढूँढना चाहिए। देश के आर्थिक विकास मे दोनो क्षेत्रो का सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए। इसके लिए संयुक्त क्षेत्र का विकास करना भी उचित होगा। रीको के द्वारा संयुक्त क्षेत्र व सहायता प्राप्त क्षेत्र के उद्योगो को बढावा देने से राज्य मे आने वाले वर्षों मे औद्योगिक विनियोगो मे काफी वृद्धि होने की सम्भावना है।

8 वित्तीय साधनो मे वृद्धि—पहले बतलाया जा चुका है कि राज्य के पास योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए वित्तीय साधनो की कमी रहती है। इनमे वृद्धि करना *अत्यावश्यक* है। इसके लिए सिंचाई व विद्युत-परियोजनाओ मे किये गये पुराने विनियोगो से उचित प्रतिफल प्राप्त करने होगे। जिन क्षेत्रो व जिन वर्गों की आमदनी बढी है, उनसे अधिक साधन जुटाने होगे और भविष्य मे अपव्ययपूर्ण खर्च को रोकना होगा। राज्य को आन्तरिक साधनो के संग्रह पर अधिक बल देना चाहिए। गैर योजना व्यय की वृद्धि पर रोक न लग सकने के कारण राज्य की वित्तीय स्थिति काफी शोचनीय हो गई है। 1986-87 मे राज्य कर्मचारियो को संशोधित वेतनमान स्वीकृत करने व बोनस देने से 92 करोड रु का अतिरिक्त वित्तीय भार पडा था और 1989 के प्रारम्भ मे राज्य कर्मचारियो की लम्बी हडताल के बाद जो समझौता किया गया है उसका वार्षिक भार लगभग 114 करोड रुपये आका गया है। इस प्रकार राज्य के राजस्व का बडा भाग प्रशासन पर व्यय हो जाता है। जिससे विकास कार्यों के लिए वित्तीय साधनो का अभाव रहने लगा है। सरकार ने पानी, बिजली व बसो के किराये बढाकर साधन-संग्रह करने का प्रयास किया है, लेकिन इससे सर्वसाधारण पर भार बढा है। विभिन्न परियोजनाओ की लागत कम करने व प्रशासनिक कार्यकुशलता मे सुधार लाने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

9. राज्य को पशुधन के विकास पर अधिक ध्यान देना चाहिए—राजस्थान मे पशुपालन एक महत्वपूर्ण सहायक व्यवसाय है। इससे राज्य की आय मे लगभग 13% का योगदान मिलता है, लेकिन योजना के परिव्यय का 1% से कम अंश पशुपालन पर खर्च किया जाता है। अतः इस असन्तुलन को कम करने की आवश्यकता है। पशुधन के विकास पर अधिक विनियोजन करने की आवश्यकता है।

10. पर्यटन का विकास किया जाना चाहिए—राजस्थान मे कई पर्यटक-स्थल है जहाँ किले, मन्दिर (जैसे माउण्ट आबू मे देलवाडा का सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर आदि) झीलें, पर्वतीय, प्रदेश, वन, पुरानी सास्कृतिक व ऐतिहासिक कला-कृतियाँ आदि दर्शनीय है। इनको देख कर विदेशी पर्यटक बहुत प्रभावित होते है। अतः पर्यटन-विकास पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके लिए जयपुर एयरपोर्ट को अन्तर्राष्ट्रीय एयरपोर्ट मे बदला जाना चाहिए ताकि सीधी चार्टर उडाने इस शहर तक हो सकें। इसके लिए पर्यटन-निदेशालय को अनेक प्रकार के कार्य सम्पन्न करने होगे। दस्तकारियो का विकास करना होगा। गाइडो व टैक्सी-ड्राइवरों की

गलत आदतों पर अंकुश लगाना होगा जिनके सम्पर्क में विदेशी पर्यटक आने ही बहुत निराश हो जाते हैं। राज्य में पर्यटन को उद्योग घोषित करने का कदम सराहनीय रहा है।

11. जिलास्तरीय नियोजन को सक्रिय रूप देकर स्थानीय साधनों का अधिक कारगर उपयोग किया जाना चाहिए तथा विकेन्द्रित नियोजन को सफल बनाया जाना चाहिए। नियोजन की तकनीक में सुधार किया जाना चाहिए। विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में नये सिरे से लागत-लाभ अध्ययन किये जाने चाहिए। IRDP व NREP के लिए परियोजनाओं का चयन सही ढंग से किया जाना चाहिए। अब जवाहर-रोजगार-योजना को सफल बनाने तथा पंचायती राज-संस्थाओं को सक्रिय करने के लिए जिला, खण्ड व ग्राम-स्तर पर परियोजनाओं के चयन का महत्व बढ़ गया है। इस सम्बन्ध में नये सिरे से प्रयास करने की आवश्यकता बढ़ गयी है ताकि वित्तीय साधनों का अपव्यय रोका जा सके और उत्पादक रोजगार बढ़ाया जा सके।

12 अन्य सुझाव—विकास की प्रक्रिया में आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में समुचित ताल-मेल बैठाया जाना चाहिए। राज्य में शिक्षा का प्रसार करके सामाजिक पिछड़ेपन को दूर किया जाना चाहिए और प्रशासनिक कुशलता में भी सुधार किया जाना चाहिए। स्मरण रहे कि नियोजन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य सामाजिक असमानता को भी कम करना है जिसके लिए राज्य में अनुसूचित जातियों, आदिम जातियों व हरिजनों के कल्याण के लिए विशिष्ट कार्यक्रम चलाने होंगे। प्रशासनिक कुशलता में वृद्धि करने की नीति के साथ-साथ कार्यकुशल व ईमानदार व्यक्ति के लिए उचित प्रेरणाएँ व पुरस्कार एवं अकार्यकुशल व बेईमान व्यक्तियों के लिए पर्याप्त व कड़ी सजाओं की व्यवस्था होनी चाहिये। ये बातें काफी जानी-बूझी हैं। लेकिन आवश्यकता है इनको व्यवहार में लागू करने की, जिससे विकास की गति तेज की जा सके तथा सभी क्षेत्रों में उत्पादन व कार्यकुशलता बढ़ायी जा सके।

13 राज्य नियोजन व विकास बोर्ड को सक्रिय बनाने तथा पंचवर्षीय योजना का संशोधन प्रारूप तैयार करने की आवश्यकता—कुछ वर्ष पूर्व राजस्थान में राज्य नियोजन बोर्ड (State Planning Board) गठित किया गया था। लेकिन उसने योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन व मूल्यांकन में अभी तक कोई प्रभावशाली भूमिका नहीं निभायी है। सरकार को केन्द्र से आवश्यक विचार-विमर्श करके इसे अधिक सक्रिय बनाना चाहिए। योजना आयोग की भाँति इसका भी पुनर्गठन किया जाना चाहिए ताकि राज्य की विभिन्न समस्याओं के विशेषज्ञ अपने-अपने क्षेत्रों में गहन अध्ययन करके राज्य के तीव्र आर्थिक विकास के व्यावहारिक कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकें।

राज्य का योजना विभाग पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार करके दिल्ली में योजना आयोग को पेश करता है जिसमें आवश्यक कटौती व संशोधन करके योजना आयोग अपनी स्वीकृति दे देता है। उसके बाद पंचवर्षीय योजना का संशोधित व अन्तिम रूप फिर से विस्तृत रूप से तैयार करने की कोशिश नहीं होती बल्कि वार्षिक योजनाओं के माध्यम से ही योजना की प्रक्रिया जैसे-तैसे जारी रखी जाती है। इससे नियोजन के सम्बन्ध में आवश्यक दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य या दृष्टि का अभाव सदैव बना रहता है। यहाँ तक कि पंचवर्षीय दृष्टि भी ठीक से सामने नहीं आ पाती है। 10 या 15 वर्षों के परिप्रेक्ष्य का तो कहीं नामोनिशान भी नहीं नजर आता। अतः भविष्य में आवश्यक संशोधन के बाद पंचवर्षीय योजना का अन्तिम मसौदा भी विस्तारपूर्वक जरूर तैयार किया जाना चाहिए। पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य राज्य की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित किये जाने चाहिए। राजस्थान में भारत सरकार के योजना आयोग द्वारा स्वीकृत सार्वजनिक व्यय की राशि के आधार एक पंचवर्षीय योजना का ब्योरेवार संशोधित व नया प्रारूप तैयार किया जाना चाहिए। उसमें विकास व उत्पादन के लक्ष्यों के अलावा उनको प्राप्त करने की नीतियों व उपायों पर अधिक प्रकाश डाला जाना चाहिए। ऐसा करने से राज्य में नियोजन की भूमिका अधिक सबल व सार्थक बन सकेगी। इस समय राज्य में बहुत कुछ वार्षिक योजनाओं के माध्यम से ही काम चलाया जाता रहा है जो काफी नहीं है।

यहाँ भी गुजरात की भांति औद्योगिक योजना को अधिक वैज्ञानिक ढंग से बनाया जाना चाहिए। इसके लिए काफी तकनीकी कार्य करना होगा, जैसे विभिन्न उद्योगों के बीच कड़ियों को स्थापित करना (inter industry linkages), विभिन्न जिलों या प्रदेशों के बीच औद्योगिक कड़ियां स्थापित करना, कृषि व उद्योगों के बीच कड़ी स्थापित करना, औद्योगिक संगठन व प्रबन्ध के नए ढांचे तैयार करना, प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलाना सार्वजनिक क्षेत्र की प्रबन्ध-व्यवस्था में सुधार करना, इन्फ्रास्ट्रक्चर व उद्योगों के बीच कड़ी स्थापित करना, टेक्नोलोजी मिशनों का औद्योगिक विकास में उपयोग करना, आदि, आदि। अभी तक इस प्रकार के औद्योगिक नियोजन का नितान्त अभाव रहा है और बहुत कुछ ऐच्छिक किस्म के निर्णयों से काम चलाया जाता रहा है। आशा है 1990-2000 की अवधि में आठवीं व नवीं पंचवर्षीय योजनाएं पहले की काम चलाऊ प्रवृत्तियों व प्रक्रियाओं से मुक्त होकर वैज्ञानिक व तकनीकी नियोजन का मार्ग ग्रहण कर पायेंगी जिनके अभाव में नियोजन एक भुलावे व छलावे के अलावा और कुछ नहीं है, बल्कि वह एक तरह से शुद्ध पूंजीवादी बाजार-तन्त्र से भी बदतर है।

इन्दिरा गांधी नहर व चम्बल कमाण्ड क्षेत्रों में विकास के क्षेत्रीय कार्यक्रमों को सफल बनाने से राज्य को काफी लाभ प्राप्त होगा। राज्य में खनिज-सम्पदा,

डेयरी विकास व पशु धन के विकास की काफी सम्भावनाएं विद्यमान है। राज्य सरकार चारे का उत्पादन बढ़ाने का प्रयास कर रही। इसके लिए इंदिरा गांधी नहर क्षेत्र का उपयोग घास उगाने के लिए भी करना होगा। इस दिशा मे अधिक दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। इस प्रकार कोई कारण नही कि सुनियोजित व अधिक सक्रिय ढग से आगे बढ़ने पर राज्य अपना आर्थिक विकास अधिक तेज गति से न कर सके।

परिशिष्ट 1

पाचवीं योजना, छठी योजना व सातवीं योजना के प्रथम तीन वर्षों मे राजस्थान राज्य की घरेलू उत्पत्ति (SDP) व प्रति व्यक्ति आय (1970-71) के भावों के आधार पर विकास की वार्षिक दरें

पाचवी योजना (1974-79) वर्ष	राज्य की घरेलू उत्पत्ति (SDP) (करोड रु) (निकटतम)	SDP म वार्षिक वृद्धि दर (प्रतिशत मे)	राज्य की प्रति व्यक्ति आय (रुपयों मे)	प्रति व्यक्ति आय मे वार्षिक वृद्धि दर (प्रतिशत मे)
(आधार वर्ष) 1973 74	1550		567	
1974-75	1399	(–)10	496	(–) 12 5
1975-76	1711	22 3	589	18 7
1976-77	1826	6 7	611	3 7
1977-78	1906	4 4	615	0 7

1. आर्थिक व सांख्यिकी निदेशालय, राजस्थान जयपुर, मार्च, 1989 मे जारी किये गये नवीनतम आंकड़े के आधार पर। योजनाकाल मे वार्षिक वृद्धि-दर निकालने के लिए प्रतिवर्ष के प्रतिशत परिवर्तनों का ज्यामितीय औसत लिया गया है।

सातवीं योजना (1985-88 तक)

आधार वर्ष 1984 85 1985 86	2413	—	639	—
	2417	0 2	623	(−)2 5
1986-87	2524	4 4	634	1·8
1987-88	2383	(−)5 6	583	(−)8 0
(इ) VII योजना मे 1985-88 क वर्षों म ग्रौसत वृद्धि दर		(−)0 5		(−)3

परिशिष्ट 2

राजस्थान मे छठी योजना की अवधि मे विकास की वार्षिक दर निकालने की विधि का विवरण

पिछली तालिका के आधार पर स्थिर मूल्यों (1970-71 के भावो) पर राज्य की घरेलू उत्पत्ति (SDP) मे वार्षिक परिवतन नीचे दिये गये हैं।

आधार वर्ष (1979-80)	SDP म परिवतन % (1)	सूचनाक (2)	सूचनाग्रो के लाग (Logs (3)	
1980 81	6 0	106 0	2 0253	
1981-82	10 8	110 8	2 0445	
1982-83	16 1	116 1	2 0611	

36

राजस्थान के बजट व राज्य की वित्तीय स्थिति

(Rajasthan Budget and State Finances)

वर्तमान स्थिति का परिचय

योजनाकाल में राजस्थान के वित्तीय ढाँचे में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इस अध्याय में राज्य की बजट-सम्बन्धी प्रवृत्तियों (budgetary trends), नवें वित्त आयोग की प्रथम रिपोर्ट (1989-90 के लिए) द्वारा राज्य की तरफ किये गये वित्तीय हस्तान्तरणों तथा राज्य की वर्तमान वित्तीय स्थिति पर प्रकाश डाला जायगा। निरन्तर पड़ने वाले अकालों व सूखे के कारण राज्य की वित्तीय दशा काफी कमजोर रही है। राज्य के सुदृढ़ आर्थिक विकास व केन्द्र की तरफ से अधिक वित्तीय सहायता से राजस्थान का आर्थिक भविष्य उज्ज्वल बनाया जा सकता है।

1989 90 के बजट-अनुमानों के अनुसार राजस्व-खाते में घाटा 75 8 करोड़ रु. व पूँजी-खाते में बचत 124 6 करोड़ रु. दिखायी गयी है। इस प्रकार समग्र बचत 48 8 करोड़ रु. दिखायी गयी है। 1988-89 के अन्त में रहे 148·7 करोड़ रु. के घाटे को शामिल करके 1989-90 की अवधि के लिए कुल घाटे की राशि लगभग 100 करोड़ रु. हो जाती है। सरकारी कर्मचारियों की लम्बी हड़ताल के बाद जो समझौता किया गया है उसका वार्षिक वित्तीय भार लगभग 114 करोड़ रु. का आंका गया है। इसके अतिरिक्त 1989-90 में लगभग 28 करोड़ रुपये के एरियर्स का भार है, लेकिन वर्ष 1989-90 में नकद भुगतान 104 करोड़ रु. का ही करना है जिससे इस वर्ष के अन्त में सम्भावित घाटा 204 करोड़ (100 + 104) रुपये होने का अनुमान है।[1]

---

1. बजट-भाषण, 23 मार्च 1989, पृ. 51-52

अब हम राजस्व-खाते मे आय व्यय की प्रवृत्तियो पूंजी-खाते मे आय-व्यय की प्रवृत्तियो, सार्वजनिक कर्ज के भार आदि पर प्रकाश डालेंगे।

राजस्व खाते में आय की प्रवृत्तियां[1]

(Trends in Receipts under Revenue-account)

राजस्व खाते मे विभिन्न प्राप्तियो को तीन श्रेणियो मे बाटा जाता है:—

कर-राजस्व अ-कर राजस्व तथा सहायतार्थ अनुदान (grants-in aid)

1 कर राजस्व—इसमे अन्तर्गत राज्य का केन्द्रीय करो मे हिस्सा तथा स्वय राज्य मे लगाय गये करो का राजस्व दिखाया जाता है। आजकल राजस्थान को अन्य राज्यो की भाँति केन्द्रीय आयकर व सघीय उत्पादन-शुल्क मे अश प्राप्त होता है। राज्य को स्वय के प्रदेश मे लगाये गये निम्न करो से राजस्व की प्राप्ति होती है: भू राजस्व (land revenue), स्टाम्प व रजिस्ट्रेशन शुल्क, राज्य आबकारी (state excise), बिक्री कर (sales tax) वाहनो पर कर, सामान व यात्रियो पर कर, विद्युत पर कर व शुल्क तथा अन्य कर व महसूल। अन्य करो मे मनोरजन कर, व्यापारिक फसलो पर उपकर वगैरा शामिल हैं।

1951-52 मे कुल कर राजस्व की प्राप्ति 11 6 करोड रु हुयी जो बढकर 1961-62 मे 29 करोड रु. 1971-72 म 109 करोड रु, 1981-82 मे 508 करोड रु. तथा 1987-88 म 1183 करोड रु हो गयी 1989-90 के बजट-अनुमानो मे कर-राजस्व से 1586 करोड रु की राशि दिखायी गयी है।

करो को प्रत्यक्ष व परोक्ष दो श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है। प्रत्यक्ष करो का भार किसी दूसरे पर नही खिसकाया जा सकता, जबकि परोक्ष करो का खिसकाया जा सकता है। राजस्थान राज्य को जिन प्रत्यक्ष करो से राजस्व प्राप्त होता है उनमे निम्न शामिल हैं: मुख्यतया केन्द्रीय आयकर मे अश, भू-राजस्व (land revenues), स्टाम्प व रजिस्ट्रेशन शुल्क तथा अचल सम्पत्ति पर कर। परोक्ष करो (indirect taxes) मे निम्न कर आते हैं: सघीय आबकारी या उत्पादन-शुल्को मे अश, राजकीय आबकारी, बिक्री कर व वाहनो पर कर, सामान व यात्रियो पर कर, विद्युत-शुल्क, मनोरजन कर तथा व्यापारिक फसलो पर उपकर।

1971 72 मे कुल कर-राजस्व मे प्रत्यक्ष करो का अश 29% था जो 1987-88 मे 15·6% हो गया। 1989-90 के बजट-अनुमानो मे इसके लगभग 14·8% रहने का अनुमान है। इस प्रकार कर राजस्व मे प्रत्यक्ष करो का योगदान घटता गया है और परोक्ष करो का बढता गया है। पिछले वर्षों मे परोक्ष करो का अश लगभग 85% रहा है।

---

1 नवीनतम आकडे आयव्ययक अध्ययन, 1989-90 से लिये गये हैं।

कर राजस्व का विश्लेषण—निम्न तालिका में विभिन्न वर्षों के लिए कर राजस्व म विभिन्न मदों क योगदान का विश्लेषण किया जाता है

शीर्षक	1971-72 (Accounts) (लख करोड़ रु)	(प्रतिशत)	1987 88 (Accounts) (लख करोड़ रु)	(%)	1989 90 (B E) बजट अनुमान) (करोड़ रु)	(%)
1 केन्द्रीय करों में अंश	43 3	39 7	410 3	34 7	588 1	37 0
2 राज्य कर राजस्व	65 7	60 3	772 5	65 3	998 1	63 0
(i) भू राजस्व	8 6	7 9	22 6	1 9	27 1	1 7
(ii) स्टाम्प व रजिस्ट्रेशन शुल्क	3 5	3 2	39 9	3 4	49 6	3 1
(iii) राज्य आबकारी	9 4	8 6	127 3	10 8	184 0	11 6
(iv) बिक्री-कर	33 1	30 4	450 5	8 1	575 0	36 3
(v) वाहनों पर कर	3 8	3 5	84 3	7 1	102 3	6 4
(vi) अन्य	7 3	6 7	47 8	4 0	60 1	3 8
कुल कर राजस्व	109 0	100 0	1182 8	100·0	1586 2	100 0

तालिका स पता चलता है कि 1971–72 में कुल कर राजस्व में केन्द्रीय करों का अंश 40% था जो 1989 90 क बजट-अनुमानों में घट कर 37% पर आ गया है। इस प्रकार राज्य क स्वयं क कर राजस्व का अंश 60% स बढ़कर 63% हो गया है। भू राजस्व का अंश काफी घट गया है। 1971-72 में 8%

से घटकर 1989-90 के बजट-अनुमानों में 1 7% पर आ गया है। इसी प्रवृत्ति में बिक्री-कर का योगदान 30% से बढ़कर 36% पर आ गया है।

आजकल राज्य के कर राजस्व में बिक्री-कर का स्थान प्रथम है। 1989-90 के बजट में राज्य का स्वयं का कुल कर-राजस्व 998 करोड़ रु. आंका गया है जिसमें बिक्री-कर अंश 575 करोड़ रु अर्थात 58% है। इस प्रकार राज्य की करों से प्राप्त राशि बिक्री-कर की सर्वोपरिता है। दूसरा स्थान राज्य आबकारी का तथा तीसरा वाहनों पर कर का है। भूमि-सुधारों के फलस्वरूप भू-राजस्व का योगदान कुल कर-राजस्व में केवल 1 7% रह गया है।

2 अ-कर राजस्व (Non Tax Revenue)—राजस्व-खाते में आय का यह दूसरा स्रोत है। सहायतार्थ अनुदान (grants-in-aid) जो केन्द्र से प्राप्त होते हैं वे भी इसी के अन्तर्गत दिखाये जाते हैं, हालांकि उनकी राशि ऊंची होने से उनका विवेचन अलग से भी किया जाता है। अ-कर राजस्व की आय निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत दिखायी जाती है : ब्याज की प्राप्तियाँ, लाभांश एवं लाभ, सामान्य सेवाओं से प्राप्त राशि, सामाजिक सेवाओं, आर्थिक सेवाओं व अन्य से प्राप्त राशियाँ एवं सहायतार्थ अनुदान।

सामाजिक सेवाओं के अन्तर्गत निम्न मदें शामिल होती हैं : (i) शिक्षा, कला व संस्कृति, (ii) चिकित्सा, स्वास्थ्य और परिवार-कल्याण, (iii) जलपूर्ति, सफाई, आवास और शहरी विकास तथा (iv) अन्य। आर्थिक सेवाओं में निम्न मदें आती हैं : (i) लघु सिंचाई, (ii) वानिकी व वन्य जीवन, (iii) उद्योग, ग्रामीण व लघु उद्योग, (iv) वृहद् एवं मध्यम सिंचाई, (v) अलौह धातु, खनन व धातु कार्मिक उद्योग व (vi) अन्य।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सहायतार्थ अनुदान भी अ-कर राजस्व के अन्तर्गत ही दिखाये जाते हैं।

अ कर राजस्व का वर्गीकरण 1972-73 से बदला गया है। 1951-52 में अ-कर राजस्व की राशि (सहायतार्थ अनुदानों सहित) 4·4 करोड़ रु. थी जो बढ़कर 1961-62 में 17 करोड़ रु. 1971-72 में 76 करोड़ रु. व 1981-82 में 349·7 करोड़ रु हो गई। 1987-88 में अ-कर राजस्व की राशि 1000 करोड़ रु. रही तथा 1989-90 के बजट अनुमानों में 938 करोड़ रु. आंकी गई है। यह कमी सहायतार्थ अनुदानों में कमी करने से हुयी है।

राजस्व-खाते में आय के इन तीन स्रोतों का योगदान अग्र तालिका में दर्शाया गया है :

(प्रतिशत मे)

	1987-88 (लेखे मे)	1989-90 (बजट-अनुमानो मे)
(i) कर-राजस्व	54·2	62·8
(ii) अ-कर राजस्व	16 9	15·8
(iii) सहायतार्थ अनुदान	28·9	21·4
	100 0	100 0
कुल राजस्व प्राप्तियाँ (करोड रु.)	2183	2524

तालिका से स्पष्ट होता है कि राजस्व-खाते की कुल प्राप्तियो मे सहायतार्थ अनुदानो का अंश 1989-90 के बजट-अनुमानो मे लगभग 1/5 आंका गया है जो 1987-88 से कम है।

राजस्थान मे कुल कर-राजस्व की घरेलू उत्पत्ति से अनुपात

निम्न तालिका मे 1971-72, 1981-82 तथा 1986-87 के लिए राज्य मे कुल कर-राजस्व व राज्य की घरेलू उत्पत्ति (प्रचलित भावों पर) आकड़े दिये गये हैं— (करोड रु)

	1971–72	1981–82	1987–88
1. कुल कर-राजस्व	109	508	1183
2. राज्य की घरेलू उत्पत्ति (प्रचलित भावों पर	1534	4978	9502
3 कुल कर-राजस्व का राज्य की आय से अनुपात	7 1%	10 2%	12 5%

इस प्रकार कुल कर-राजस्व (केन्द्रीय करों मे अंश सहित) राज्य की आय का 1987-88 मे 12·5% रहा जो 1971-72 की तुलना मे लगभग 5% अधिक था।

राज्य मे कर-प्रयास की लोच (Elasticity of tax effort in the State)–दो वर्षों के बीच कुल कर-राजस्व की प्रतिशत वृद्धि मे राज्य की आय की प्रतिशत वृद्धि

का भाग देने से जो परिणाम आता है उसे राज्य के कर-प्रयास की लोच कहा जाता है। गणना प्रचलित मूल्यों के आधार पर की जाती है।

राजस्थान में 1960–61 से 1970-71 के बीच कर-प्रयास की लोच 1·5 रही थी। 1971-72 से 1987-88 के बीच यह 1 90 रही। इसका अर्थ यह है कि राज्य में कर-प्रयास लोचदार रहा है। कुल कर-राजस्व की प्रतिशत वृद्धि राज्य की आय की प्रतिशत वृद्धि से अधिक रही है। इस प्रकार राज्य ने करों से अधिक आय जुटाने की दिशा में प्रगति दर्शायी है। यदि कर-प्रयास की लोच एक से कम होती तो राज्य अपने कर-प्रयास में पिछड़ा हुआ माना जाता है। समय के दो बिन्दुओं पर आधारित होने के कारण कर-प्रयास की लोच काफी बदलती रहती। 1971-72 से 1981-82 की अवधि लेने पर यह 1 63 आती है। अतः कुल मिलाकर राजस्थान में कर-प्रयास की लोच थोड़ी बढ़ी है।

राजस्व-खाते में व्यय की प्रवृत्तियां
(Trends in Expenditure in Revenue Account)

राजस्व-व्यय को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत दिखाया जाता है :

1 सामान्य सेवाओं पर व्यय—इसमें राज्य के अंगों (organs of state) पर व्यय (मंत्री परिषद, विधान सभा, न्याय प्रशासन, निर्वाचन आदि), राजकोषीय सेवाएं (कर वसूली व्यय) ऋण परिशोधन व ब्याज का भुगतान, प्रशासनिक सेवाएं, पेन्शन व विविध सामान्य सेवाएं तथा सहायतार्थ अनुदान (जो राज्य सरकार देती है) शामिल होते हैं।

2 सामाजिक सेवाओं पर व्यय—इसमें निम्न मदों का व्यय आता है :

(i) शिक्षा खेल- कला एवं संस्कृति, (ii) चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, (iii) जलपूर्ति, सफाई आवास व शहरी विकास, (iv) श्रमिक व श्रमिक-कल्याण, (v) अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों का कल्याण, समाज कल्याण व पोषाहार।

3 आर्थिक सेवाओं पर व्यय—इसमें निम्न मदें शामिल होती है : (i) कृषि व सम्बद्ध क्रियाएं, (ii) ग्रामीण विकास व विशेष क्षेत्र कार्यक्रम, (iii) उद्योग व खनिज, (iv) सिंचाई, बाढ़-नियन्त्रण व ऊर्जा, (v) परिवहन, (vi) विज्ञान, टेक्नोलोजी व पर्यावरण तथा (vii) सामान्य आर्थिक सेवाएं।

1951–52 में कुल राजस्व-व्यय 17·2 करोड़ रु हुआ जो बढ़ कर 1961-62 में 52 करोड़ रु, 1971–72 में 203 करोड़ रु व 1981–82 में 823 करोड़ रु हो गया। 1987–88 में राजस्व व्यय 2539 करोड़ रु हुआ जिसके 1989 90 के बजट-अनुमानों में 2600 करोड़ रु रहने का अनुमान है।

1989-90 मे राजस्व-व्यय का सर्वाधिक अश लगभग 39% सामाजिक सेवाश्रो पर, 37% सामान्य सेवाश्रो पर तथा शेष 24% श्रार्थिक सेवाश्रो पर व्यय हेतु रखा गया था।

नीचे 1987-88 (वास्तविक व्यय) व 1989 90 (बजट-अनुमानों) के लिए कुछ व्यय की मदो पर कुल राजस्व व्यय का ग्रनुपात दर्शाया गया है :

शीर्षक	1987-88 लेखे (A/Cs) (करोड रु)	कुल राजस्व व्यय का प्रतिशत	1989-90 (बजट-अनुमान) (करोड रु)	कुल राजस्व-व्यय का प्रतिशत
1. ऋण-परिशोधन व ब्याज का भुगतान (सामान्य सेवाश्रो मे)	298 7	11·8	431 1	16·6
2. शिक्षा, खेल, कला व सस्कृति (सामाजिक सेवाश्रो मे)	473·3	18·6	196·4	23·0
3. सिचाई, बाढ-नियन्त्रण व ऊर्जा (आर्थिक सेवाश्रों के श्रन्तर्गत	256·3	10·1	599 2	7 6
4. प्रशासनिक सेवाए (सामान्य सेवाश्रो के श्रन्तर्गत)	174·6	6·9	224 6	8 6
(श्रन्य सहित) कुल राजस्व-व्यय (Total Revenue Exp)	2539		2600	

तालिका से स्पष्ट होता है कि राज्य का ऋण भार इतना बढ गया है कि कुल राजस्व-व्यय का लगभग 16—17 प्रतिशत ऋण-भुगतान व ब्याज के भुगतान पर लग जाता है। लगभग 1/4 व्यय शिक्षा, खेल, कला व सस्कृति नाम की मद पर होता है। प्रशासनिक सेवाश्रो पर कुल राजस्व-व्यय का लगभग 9% व्यय होने लग गया है।

राजस्व-व्यय को (i) विकास-व्यय व (ii) श्र-विकास व्यय मे भी विभाजित किया जाता है। 1951-52 मे विकास व्यय कुल राजस्व व्यय का 42% हुश्रा

करता था जो 1971-72 में 58%, 1981-82 में 70% व 1987-88 में 75% रहा, लेकिन 1989-90 के बजट-अनुमानों में लगभग 63% ही रखा गया है।

इस प्रकार योजनाकाल में विकास-व्यय का अनुपात बढ़ा है। लेकिन 1989-90 के बजट-अनुमानों में 1987-88 के वास्तविक व्यय की तुलना में यह लगभग 12% घटा है जो एक चिंता का विषय है।

1973-74 से राजस्व व्यय के प्रस्तुतीकरण का रूप बदल गया है। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है अब यह सामान्य सेवाओं, सामाजिक सेवाओं व आर्थिक सेवाओं के अन्तर्गत विभिन्न मदों पर दिखाया जाता है।

राजस्व खाते में घाटा

राजस्थान में राजस्व-खाते में 1951-52 में 1 2 करोड़ रु का घाटा हुआ था जो 1971-72 में 17 9 करोड़ रु रहा। 1981 82 में राजस्व खाते में 156 करोड़ रु का अभूतपूर्व घाटा रहा तथा 1989 90 के बजट-अनुमानों में 76 करोड़ रु का घाटा दिखाया गया है। राज्य कर्मचारियों से समझौता करने से राज्य पर 114 करोड़ रु का वित्तीय भार आ गया है जिससे राज्य की वित्तीय स्थिति और कमजोर हो गई है।

राजस्व-खाते के अतिरिक्त लेन देन
(Transactions outside the Revenue Account)

(क) प्राप्तियाँ (Receipts)—राजस्व-खाते के अलावा अन्य प्राप्तियाँ निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत दिखायी जाती हैं :

(i) स्थायी ऋण (Permanent debt)—इसके अन्तर्गत जनता से लिये गये बाजार ऋण शामिल किये जाते हैं। ये ब्याज वाले व बिना ब्याज वाले दो प्रकार के होते हैं। ये विकास-कर्ज होते हैं जो राज्य की विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए जारी किये जाते हैं। इनमें भारतीय रिजर्व बैंक से लिये गये 'फ्लोटिंग-ऋण' या अल्पकालीन ऋण भी शामिल किये जाते हैं।

(ii) अस्थायी ऋण (Floating debt)—इनकी मात्रा राज्य के व्यय के साधनों व आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। ये काफी परिवर्तनशील होते हैं।

(iii) केन्द्रीय सरकार से लिये गये ऋण (Loans from the Central Government)—राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार से भी ऋण लेती है। ऐसे अवसर भी आये हैं जब भारतीय रिजर्व बैंक से ली गई ओवरड्राफ्ट की राशि को चुकाने के लिए केन्द्र ने राज्य को ऋण दिये हैं।

(iv) अन्य ऋणों (Other Loans)—इसमें राज्य सरकार द्वारा सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं से लिये जाने वाले ऋण शामिल होते हैं।

(v) सार्वजनिक लेखा (Public Account)—इस शीर्षक से प्राप्त राशि काफी ऊँची होती है। इसमे अ-कोषीय ऋण (un funded debt) व अन्य ऋणों की प्राप्तियां आती है।

(vi) ऋण व अग्रिम (Loans and Advance)—राज्य सरकार को सामान्य सेवाओ सामाजिक सेवाओं व आर्थिक सेवाओ के अन्तर्गत दिये गये कर्ज की राशि प्राप्त होती है—वह इस शीर्षक के नीचे दिखाई जाती है।

नीचे 1987-88 व 1989 90 (बजट-अनुमानों) की अवधि के लिए राजस्व खाते के अतिरिक्त कुल प्राप्त राशियों का उल्लेख किया गया है (इनमे से चुकाई गई राशियां नही घटाई गई हैं)— (करोड रु मे)

शीर्षक	1987-88 (लेखे)	1989 90 (बजट-अनुमान)
(i) स्थायी ऋण	119 0	165·2
(ii) अल्पकालीन ऋण (Floating debt)	498 6	500 0
(iii) केन्द्रीय सरकार से लिया गया ऋण	553 7	407 2
(iv) अन्य ऋण	16 3	29 8
(v) सार्वजनिक लेखा (अ-कोषीय ऋण व अन्य ऋण)	4726 8	3145 8
(vi) ऋण व अग्रिम	43 8	61·2
(vii) आकस्मिकता निधि	—	—
	5958 2	5309 2

इस प्रकार राजस्व-खाते के अलावा अन्य प्राप्तियों मे सार्वजनिक लेखे के अन्तर्गत ऋण, जमाओ व भुगतान के सौदो की राशियां सर्वाधिक होती है। इसके अलावा केन्द्र से लिये गये ऋण व बाजार से लिये गये स्थायी व अल्पकालीन ऋणों का भी काफी महत्व होता है। कहने का तात्पर्य है यह कि इनमे विभिन्न प्रकार के ऋणों की राशियां आती हैं। छठी मद—"ऋण व अग्रिम" के अन्तर्गत सामान्य सेवाओ, सामाजिक सेवाओ व आर्थिक सेवाओ को दिये गये ऋणो की रिकवरी की राशियां' आती है।

(ख) राजस्व-खाते के अलावा वितरण (disbursements) की अन्य राशियां—इसके अन्तर्गत पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure) तथा स्थायी ऋण, अल्पकालीन ऋण, केन्द्र सरकार को चुकाये गये ऋण अन्य ऋण, सार्वजनिक लेखा, ऋण व अग्रिम वगैरा के अन्तर्गत किये गये वापसी भुगतानो की राशिया आती हैं।

पूंजीगत व्यय राजस्व-व्यय की भांति सामान्य सेवाओ, सामाजिक सेवाओ व आर्थिक सेवाओ की विभिन्न मदो के अन्तर्गत दिखाया जाता है। इसका प्रयोजन परिसम्पत्ति का निर्माण करना होता है।

राजस्व-खाते के अलावा वितरण की राशिया 1984-85 (लेखे) व 1987-88(बजट) के लिए निम्न तालिका मे दिखायी गयी है ताकि विभिन्न मदो के आकार की जानकारी हो सके :—

वितरण (disbursements)

(करोड रु. मे)

	1987-88 (लेखे)	1989-90 (बजट-अनुमान)
(i) पूंजीगत व्यय (शुद्ध)	400·2	- 441·7
(ii) स्थायी ऋण..............	23·9	22·8
(iii) अल्पकालीन ऋण...	447·9	500 0
(iv) केन्द्रीय सरकार से लिया गया ऋण......... ..	223·8	163 2
(v) अन्य ऋण........	6·1	8 3
(vi) सार्वजनिक लेखा (अ-कोषीय ऋण व जमाएं)	4379 5	3906·4
(vii) ऋण व अग्रिम........	190·8	142·2
(viii) आकस्मिकता निधि का विनियोग (Appropriation to Contingency Fund) —		—
कुल वितरण (Total Disbursement)	5672·2	5184·6

तालिका से स्पष्ट होता है कि वितरण-पक्ष की ओर भी सर्वोपरि राशि 'सार्वजनिक लेने' की ही होती है। इसके अलावा पूंजीगत व्यय, स्थायी ऋण व अल्पकालीन ऋण तथा केन्द्रीय सरकार से लिये गये ऋणों को चुकाने की राशियां दिखायी जाती है। इस प्रकार विभिन्न किस्म के ऋणों के पुनर्भुगतान की राशियां इस खाते के 'वितरण' पक्ष में शामिल होती है।

राजस्व-खाते के अतिरिक्त बचत (+) या घाटा (−)

पिछले वर्षों में राजस्व-खाते के अतिरिक्त बकाया की राशिया निम्न तालिका में दर्शायी गयी है :—

	(करोड रु)
1981-82	(−) 28 3
1984-85	(+) 61·6
1987-88	(+) 286·1
1988-89 (सं. अनुमान)	221 7
1989-90 (बजट-अनुमान)	124·6

इस प्रकार पिछले वर्षों में राजस्व-खाते के अलावा अन्य लेन-देनों में अन्य वर्षों में बचत की स्थिति रही है। जिन वर्षों में राजस्व-खाते व इसके अलावा अन्य लेन-देनों में अर्थात् दोनों मे घाटा होता है, उन वर्षों में समग्र घाटा बहुत ऊंचा रहता है जो आगे दिखाया गया है।

समग्र घाटे या बचत की स्थिति—1981-82 (लेखे) से 1989-90 (बजट-अनुमानों) तक समग्र घाटे या बचत की स्थिति निम्न तालिका में दर्शायी गयी है :[1]

वर्ष	बचत (+) या घाटा (−) (करोड रु. में)
1981-82 (लेखे)	(+) 5 9
1982-83 (")	(+) 23·2
1983-84 (")	(+) 8·9

1. Budget Study 1989 90 व पूर्व वर्षों के लिए, DES, Jaipur, and Budget Speech 1989-90, 23 मार्च 1989, पृ. 51-52.

काफी चरमरा गयी थी, इसलिए मुख्यमंत्री ने अपने बजट-भाषण में नये कर लगाने के स्थान पर करों की बेहतर वसूली व करों के अपवंचन को रोकने पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया।

बिक्री-कर के सम्बन्ध में कुछ सरलीकरण के उपाय घोषित किये गये हैं। जो व्यापारी कर मुक्त व कर दी हुई (tax-paid) वस्तुओं में लगे हैं उन्हें रिटर्न फाइल करने की आवश्यकता से मुक्त कर दिया गया है। इस प्रकार दो वर्षों में लगभग 80 हजार खुदरा व्यापारी रिटर्न फाइल करने से मुक्त कर दिये गये हैं। इनका व्यापारिक क्षेत्रों मे स्वागत किया गया है।

जो व्यापारी 10 लाख से ऊपर की बिक्री दिखाते रहे हैं, यदि वे अपनी करदेय बिक्री की राशि में 15% वृद्धि कर दें, तो उन्हें भी नई स्वकर-निर्धारण स्कीम में ले लिया जायगा। राजस्थान बिक्री-कर (संशोधन) बिल, 1989 पेश किया गया है ताकि इनमें उचित संशोधन किया जा सके।

ट्रैक्टर स्पेयर पार्ट्स पर कर की दर 10% से घटा कर 4% कर दी गयी है। गुड़, वनस्पति घी, व खल पर कर कम किये गये हैं। रत्नों व स्टोन्स पर कर कम किये गये हैं। हीरों पर बिक्री-कर मे छूट दी गई है। पतंग, पतंग-डोरी व पतंग-चरखी पर कर हटाया गया है। शक्ति करघों के कल-पुर्जों आदि पर कर कम किया गया है। हाथ से बने ऊनी रोयेंदार गलीचों, झाडू व बांस की टोकरियों को बिक्री-कर मे छूट दी गई है। दैनिक उपभोग की कई मदों जैसे हल्दी सोंफ, अमचूर, माचिस, बर्तन, मैदा, सिलाई के धागों आदि पर करों मे कमी की गयी है। इसी प्रकार साबुन, ब्लेड, पेन, थर्मस, स्कूली बैग आदि अन्य वस्तुओं पर कर घटाये गये हैं।

इस प्रकार 1989 90 के बजट मे आम उपभोक्ता के लिए करों मे काफी राहत दी गई है।

1989-90 के अंत मे कुल घाटा लगभग 204 करोड़ रुपये रहने का अनुमान है जिसे फिलहाल अपूरित छोड़ा गया है। इस घाटे की पूर्ति वस्तुओं पर क्षेप कर (consignment tax) लगा कर, करों की बेहतर वसूली करके, बकाया कर्जों की वसूली करके, केन्द्रीय सरकार से अधिक धनराशि प्राप्त करके अनुत्पादक व गैर-आवश्यक व्यय मे किफायत, आदि करके पूरी की जायगी। वित्तीय अनुशासन व सरकारी व्यय पर [illegible] का सहारा लिया जायगा।

[illegible] स्पष्ट होता है कि राज्य वित्तीय सकट के दौर से गुजर [illegible] कठिनाइयाँ हैं :—

1. Budget Study 19[illegible]
Budget Speech 1989-

(1) 1989-90 के बजट में विकास-व्यय कुल राजस्व-व्यय का 63% रह गया है जबकि 1987 88 मे यह 75% था। इस प्रकार गैर-विकास के अनुपात का बढ़ना उचित नही है।

(2) राज्य पर ब्याज की अदायगी व ऋण चुकाने का भार बहुत बढ़ गया है। यह 1985-86 मे 201 करोड रु था जिसके 1989 90 में बढ कर 431 करोड रु. होने का अनुमान है। इस प्रकार चार वर्षों की अल्पावधि मे यह दुगुने से अधिक हो गया है।

(3) इसी प्रकार प्रशासनिक सेवाओं (लोक सेवा आयोग, सचिवालय, जिला प्रशासन, ट्रेजरी, पुलिस, जेल, प्रिंटिंग आदि) पर व्यय 1985-86 मे 138 करोड रु से बढ कर 1989-90 मे 225 करोड रु हो जाने का अनुमान है। 1989-90 में राज्य के स्वयं के कर-साधनो से 998 करोड रु के राजस्व की प्राप्ति का अनुमान है। केन्द्रीय करो में हिस्से के रूप में 588 करोड रु के राजस्व का अनुमान है। इस प्रकार स्वयं के कर-राजस्व का लगभग 22 5% प्रशासन पर व्यय किया जाता है जो काफी ऊँचा है।

ब्याज की अदायगी व ऋण-परिशोधन तथा प्रशासनिक सेवाओं पर राज्य के स्वयं के कर-राजस्व का 66%, अथवा 2/3, लग जाता है जिससे अन्य कार्यों के लिए साधन बहुत सीमित रह जाते हैं।

(4) राज्य पर मार्च 1989 के अंत में कर्ज की बकाया राशि 4569 करोड रु. थी जिसमे केन्द्रीय सरकार के कर्जों की राशि 2889 करोड रु. थी। इस प्रकार राज्य की केन्द्रीय कर्जों पर निर्भरता बहुत अधिक है। केन्द्र द्वारा समस्त 25 राज्यों को दिया गया कुल बकाया कर्ज मार्च 1989 तक 56173 करोड रु था जिसमे राजस्थान का अंश 5·1% था। अत: राज्य पर ऋण चुकाने का भार असह्य हो चला है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि राज्य की वर्तमान वित्तीय स्थिति काफी नाजुक व असन्तोषजनक है। इसी वजह से सरकार के बारम्बार केन्द्र से अधिक वित्तीय सहायता की मांग करनी पड़ती है, चाहे वह ममला योजना के लिए अधिक सहायता देने के रूप मे रखा जाय, अथवा अकाल व सूखे के लिए राहत-सहायता बढाने के रूप में रखा जाय, अथवा इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के लिए अधिक केन्द्रीय सहायता देने के रूप मे रखा जाय अथवा पुराने ऋणो मे कमी करने के रूप मे पेश किया जाय अथवा केन्द्र को कुछ ऋणो की समाप्ति के लिए निवेदन किया जाय। राज्य का वित्तीय संकट सर्वविदित है और इसके लिए राज्य का केन्द्र की तरफ झुकना स्वाभाविक है।

कुछ क्षेत्रो मे यह चर्चा रही है कि आठवें वित्त आयोग की सिफारिशो का राज्य की वित्तीय स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ा है क्योंकि आयोग की सिफारिशें

सातवें व आठवें वित्त आयोगों की सिफारिशों के अनुसार राजस्थान का अंश

विभिन्न मदें	सातवें वित्त आयोग के अनुसार		आठवें वित्त आयोग के अनुसार (आय-कर के सिक्किम में न लगने पर)	(आय-कर के सिक्किम में लगने पर)
1 आय-कर की विभाज्य आय में राजस्थान का अंश	सिक्किम के बिना 4 364%	सिक्किम सहित 4 362%	अथवा (सिक्किम के बिना) 4 547%	अथवा (सिक्किम सहित) 4 545%
2 संघीय उत्पादन-शुल्क में राजस्थान का अंश	4 813%		4 695% (40% अंश में से) 1 940% आय 5% में से (केवल 1984 85 के लिए)	
3 अतिरिक्त उत्पादन शुल्कों में (वस्त्र चीनी व तम्बाकू)	4 729%		4 827%	
4 रेल यात्री किरायों पर कर की एवज में अनुदान की विभाज्य आय में	5 48%		4 87%	
5 सहायतार्थ-अनुदान	—		42 63 करोड़ रु. (1984-85 तथा 1985-86 के लिए ही, अन्य तीन वर्षों के लिए नहीं)	
6 राहत-व्यय के लिए मार्जिन मनी अनुदान	—		8 375 करोड़ रु. (वार्षिक) अथवा 41·88 (1984-89 के लिए)	

7 केन्द्रीय सरकार के ऋणों की वापस अदायगी में राहत	137·98 करोड़ रु. (1979-84 के लिए)	239 41 करोड़ रु. (1985-89 की अवधि के लिए)
8 प्रशासन को समुन्नत करने व विशेष समस्याओं के लिए	19·29 करोड़ रु.	53·48 करोड़ रु. (1984-89 के लिए) इसमें से 10 करोड़ रु विशेष समस्याओं के लिए थे।

सातवें वित्त आयोग ने कुल केन्द्रीय राजस्व का 26% अंश, अर्थात् 20843 करोड़ रु. राज्यों को हस्तान्तरित किये थे। इसमें करों, शुल्कों व सहायतार्थ-अनुदानों की राशियां शामिल हैं। आठवें वित्त आयोग ने कुल केन्द्रीय राजस्व का 24 1%, अर्थात् 39452 करोड़ रु. सभी राज्यों को हस्तान्तरित किये।

अनुमान है कि आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप राजस्थान के पक्ष में हस्तान्तरण की कुल राशि 1676 17 करोड़ रु. आयेगी, जो कुल हस्तान्तरण-राशि (39452 करोड़ रु) का 4 25% बनती है। छठे वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार कुल हस्तान्तरणों में राजस्थान का अंश 5·8%, तथा सातवें वित्त आयोग के अनुसार 4 33% रहा था। इस प्रकार वित्त-विशेषज्ञों का कहना है कि आठवें वित्त आयोग ने कुल हस्तान्तरणों में राजस्थान का अंश पहले से कम (4 25%) कर दिया है जो आठवें वित्त आयोग का राज्य के प्रति कठोर व अनुदार दृष्टिकोण का परिचायक है।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि कुल हस्तान्तरणों में अंश की दृष्टि से चाहे राजस्थान का हिस्सा कुछ कम हुआ हो, लेकिन मात्रात्मक दृष्टि से सातवें वित्त आयोग की हस्तान्तरण राशि (922 1 करोड़ रु) के मुकाबले आठवें वित्त आयोग की हस्तान्तरण राशि (1676 17 करोड़ रु.) 82% अधिक थी। मुख्यमंत्री श्री शिवचरण माथुर ने राजस्थान विधान सभा में 17 अक्टूबर 1984 को कहा था कि आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप राज्य को केन्द्रीय करों में 1538 18 करोड़ रु मिलेंगे, जबकि सातवें वित्त आयोग के अनुसार 902·81 करोड़ रु. ही मिले थे। सातवें वित्त आयोग के अनुदान सहायतार्थ-अनुदान के रूप में एक पैसा भी नहीं मिला था, जबकि आठवें वित्त आयोग के अनुसार 42·63 करोड़ रु. मिले। सातवें वित्त आयोग ने प्रशासनिक सुधार के लिए 19 29 करोड़ रु. दिये,

जबकि आठवें वित्त आयोग ने 53 48 करोड़ रु दिये। सातवें वित्त आयोग ने मार्जिन मनी अनुदान नही दिया था, जबकि आठवें वित्त आयोग ने 41·88 करोड़ रु दिये। इस प्रकार श्री माथुर का कहना था कि आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों को राजस्थान के लिए अनुदार नहीं कहा जा सकता।

लेकिन यह भी सत्य है कि केन्द्र से राजस्थान को अधिक राशि के हस्तान्तरण के बावजूद राज्य की वित्तीय स्थिति उत्तरोत्तर कमजोर होती गयी है। इस सम्बन्ध मे एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि यदि आयकर व संघीय उत्पादन शुल्क के अशो के राज्यो मे वितरण के आधार मे जनसंख्या को जो ऊँचा भार दिया गया है (कई बिन्दुओ पर सम्बद्ध राशियो को जनसंख्या से गुणा करने के कारण) यदि वह भार नही दिया जाता, (अर्थात् सम्बद्ध राशि जैसे प्रति व्यक्ति आय के विलोम, वगैरा को जनसंख्या से गुणा न किया जाता) तो राजस्थान का अश वितरणीय राशि मे अधिक आ सकता था।

हेमलता राव ने अपने लेख म बतलाया है कि आठवें वित्त आयोग के प्रतिमानो व सूत्र के अनुसार राजस्थान का केन्द्रीय करो मे औसत अश 5 91% आता है जबकि जनसंख्या वाला भार हटा देने पर यह 7·45% हो जाता है।[1] इसलिए राज्य का प्रतिशत अश बढ़ाने के लिए जनसंख्या का आयकर व उत्पादन-शुल्क के वितरण मे विभिन्न बिन्दुओ पर दिये जाने वाले भार (जहाँ जहाँ जनसंख्या से गुणा किया जाता है जैसे प्रति व्यक्ति आय के विलोम × जनसंख्या आदि) को हटाने का सुझाव दिया गया है। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि क्या जनसंख्या क भार का समाप्त करना उचित होगा ? जिन राज्यो मे जनसंख्या अधिक है उनको आयोग के सूत्र से लाभ मिला है जैसे उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिमी बगाल, वगैरा। इसलिए जनसंख्या के भार को हटाने से ये राज्य विरोध प्रगट करेंगे। वैसे जनसंख्या को भार देने से मानवीय आवश्यकताओ को भार मिलता है जो कुछ सीमा तक उचित माना जा सकता है। लेकिन केन्द्रीय हस्तान्तरणो मे ज्यादा हिस्सा लेने के लिए प्रत्येक राज्य अपनी पसन्द का कोई न कोई आधार लेना चाहता है जैसे कोई क्षेत्रफल को, कोई जनजाति व पहाड़ी जाति को ज्यादा भार देना चाहते है। इसलिए सभी राज्यों को एक साथ लाभ पहुँचाने वाला कोई भी आधार चुन सकना कठिन है।

राजस्थान मे आये दिन अकाल व सूखा पड़ता रहता है। इ फास्ट्रक्चर को सुदृढ करने के लिए सड़क, बिजली व पानी की व्यवस्था को ठीक करना भी

---

1. Hemlata Rao, Eighth Finance Panel: New Criteria of Fiscal Transfers, in the Economic Times September 17, 1984, table

आवश्यक है। इसलिए राज्य के हित में जनसंख्या का आधार उपयुक्त नहीं माना जाता, बल्कि अकाल-राहत सहायता की आवश्यकता को सर्वोपरि स्थान मिलना चाहिए। इसके लिए राज्य को विशेष रूप से अनुदान मिलने चाहिए जो गैर-योजना क्षेत्र में हो। पिछले वर्षों में राज्य ने अकाल-सहायता के बतौर अरबों रुपयों की धनराशि व्यय की है। यह धन-राशि उस गैर-योजना अनुदानों (non-plan grants in-aid) के रूप में मिलनी चाहिए थी। तभी राज्य की वित्तीय स्थिति में सुधार सम्भव हो सकता है।

केन्द्र से राजस्थान की तरफ प्रति व्यक्ति बजट-सम्बन्धी हस्तान्तरण की राशि

(Per Capita Budgetary Transfers from Centre to Rajasthan)

के॰ के॰ जॉर्ज व आई॰ एस॰ गुलाटी ने 19.6-1981 की अवधि के लिए केन्द्र से राज्यों की तरफ किये जाने वाले विविध श्रेणी के हस्तान्तरणों की प्रति व्यक्ति राशियों का विस्तृत अध्ययन किया है।[1] वैधानिक (statutory) हस्तान्तरणों के विषय में आवश्यक सिफारिशें वित्त आयोग किया करता है जिनमें आय-कर, संघीय-उत्पादन शुल्कों आदि में राज्यों के अंश निश्चित किये जाते हैं तथा सहायतार्थ अनुदान की राशियाँ निश्चित की जाती है तथा ऋणों के सम्बन्ध में राहत की राशि निर्धारित की जाती है। योजना हस्तान्तरणों को निश्चित फार्मूले के अनुसार राज्यों में वितरित किया जाता है। अन्य हस्तान्तरण केन्द्रीय मंत्री मण्डल के निर्णय पर आधारित होते हैं, जैसे अकाल व बाढ़ राहत सहायता, आदि।

1956-1981 तक के 25 वर्षों की अवधि में राजस्थान को प्रति व्यक्ति हस्तान्तरण की राशि 1738 रुपये रही, जो नीची आय वाले अन्य राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व बिहार से लगभग 600 रुपये अधिक थी। इस प्रकार प्रति व्यक्ति हस्तान्तरण राशि की दृष्टि से राजस्थान की स्थिति इन राज्यों से बेहतर रही है। यह कहना गलत होगा कि प्रति व्यक्ति हस्तान्तरण की राशि में राजस्थान के हितों की अनदेखी हुयी है। बल्कि सच पूछा जाय तो राजस्थान की तरफ प्रति व्यक्ति बजट-सम्बन्धी हस्तान्तरण यू॰ पी॰ मध्य प्रदेश व बिहार से अधिक रहे हैं।

नवें वित्त आयोग की प्रथम रिपोर्ट (1989-90 के लिए) का राजस्थान की वित्तीय स्थिति पर प्रभाव—

---

1 George Gulati, Centre-State Resource Transfers 1951-84, An Appraisal, in EPW, February 16, 1985.

			(करोड़ रु. में) (लगभग)
(1) आयकर में हिस्सा	4·773% (सिक्किम सहित)	4·775% (सिक्किम के बिना)	143
(2) 40% उत्पादन शुल्क में अंश	5·097%	....	326
(3) 5% घाटे के राज्यों को दी जाने वाली उत्पादन-शुल्क राशि में हिस्सा	3 946%	....	32
(4) बिक्रीकर की एवज में अति-रिक्त उत्पादन शुल्क	4·636%	....	69
(5) रेल यात्री किराये पर निरस्त कर की एवज में अनुदान में हिस्सा	4 772	....	5
(6) राहत-व्यय की वित्त-व्यवस्था के लिए सीमान्त-राशि (margin money)		....	8
(7) राजस्व-घाटे की पूर्ति के लिए सहायता-अनुदान (गैर-योजना)		....	39
(8) अपग्रेडेशन-अनुदान (गैर-योजना)		....	6
(9) विभिन्न समस्याओं-थ्रूप-राहत (गैर-योजना)		———.......	23
		कुल	651

राजस्थान के हिस्से में कुल हस्तान्तरण-राशि का 4·77% आया है, जबकि पश्चिमी बंगाल के हिस्से में यह 15 83% आया है जो सर्वाधिक है। कुल हस्तान्तरण-राशि 13662 करोड़ रु. रखी गयी है। आठवें वित्त आयोग के अनुसार कुल हस्तान्तरणों में राजस्थान का अंश 4·25% आया था। इस प्रकार 1989-90 के लिए यह थोड़ा बढ़ा है। लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से राजस्थान घाटे में ही रहा है

के० के० जॉर्ज ने *नवें वित्त आयोग की प्रथम एवार्ड के मूल्यांकन*[1] में बतलाया है कि निर्धनता का आधार लेने के कारण बिहार, उत्तर प्रदेश व राजस्थान

1. EPW, April 1. 1989.

घाटे मे रहे हैं। इस आधार से भी कुछ धनी राज्य ही लाभ मे रहे, जैसे महाराष्ट्र, जहाँ गरीबो का सकेन्द्रण पाया जाता है तथा साथ मे गदी बस्ती मे रहने वालो का भी।

राजस्थान के लिए 1989 90 मे प्रति व्यक्ति हस्तान्तरण की राशि 190 रुपये आयी है, जबकि उडीसा के लिए यह 235 रुपये मध्य प्रदेश के लिए 183 रुपये तथा उत्तर प्रदेश के लिए 195 रुपये रही है। समस्त राज्यो के हस्तान्तरण को 100 माना जाय, तो नवें वित्त आयोग के अनुसार हस्तान्तरणो का सूचनाक राजस्थान के लिए 94, मध्य प्रदेश के लिए 91 तथा उत्तर प्रदेश के लिए 97 रहा है। इस प्रकार इन कम आय वाले राज्यो को नवें वित्त आयोग ने कम मात्रा मे वित्तीय हस्तान्तरण किये हैं। राजस्थान को हस्तान्तरण के बाद भी राजस्व-बचतें नही मिल पायेंगी जिससे उसमे प्रति व्यक्ति योजना व्यय का स्तर नीचे रह पायेगा। इस प्रकार राजस्थान का अश कुल हस्तान्तरणों मे 4 77% होने पर भी वह सापेक्षिक दृष्टि से थोडा घाटे मे ही रहा है क्योकि ज्यादा वित्तीय साधन धनी राज्यो की तरफ ही गये हैं।

अगस्त 1989 मे ए० एन० सिन्हा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेंज, पटना के निदेशक प्रोफेसर प्रधान एच० प्रसाद ने बतलाया है कि नवें वित्त आयोग ने पद्धति सम्बन्धी बडी भूल की है और इकोनोमेट्रिक मॉडल को सही ढग से नही लगाने से राज्यो के राजस्व के अनुमान काफी त्रुटिपूर्ण आ गये है, जिससे कई राज्यो को हस्तान्तरण मे घाटा उठाना पडा है। सम्भवत इस भूल सुधार से आयोग की अन्तिम रिपोर्ट मे कम आय वाले राज्यो को कुछ अधिक धनराशि आवटित की जा सके।

राजस्थान को वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए सुझाव

हम पहले देख चुके हैं कि वर्तमान मे राजस्थान वित्तीय सकट के दौर से गुजर रहा है। 1989-90 के अत में समग्र घाटे के बढ कर 204 करोड रु. हो जाने का अनुमान है। इसके वित्त-पोषण की उचित व्यवस्था करना कठिन जान पडता है। हमें यह स्मरण रखना होगा कि राज्य की वर्तमान जटिल वित्तीय स्थिति कोई एक दो वर्षो का परिणाम नही है, बल्कि यह दीर्घकाल से चली आ रही आर्थिक समस्याओ का इकट्ठा दुष्परिणाम है। हम पहले बतला चुके हैं कि राज्य की प्रति व्यक्ति आय 1970-71 के बाद स्थिर भावो पर बढने का नाम नही लेती। इतनी लम्बी अवधि मे प्रति व्यक्ति आय का ठहराव विकास की अत्यधिक धीमी रफ्तार को ही सूचित करता है।

1968-69 से 1987-88 तक के 20 वर्षों मे राज्य मे 16 वर्ष अकाल व सूखे की दशाएँ पायी गईं। इनमे से 12 वर्षों मे अकाल ने 20 से अधिक जिलो का

प्रभावित किया। इससे स्पष्ट होता है कि राज्य निरन्तर अकाल की विभीषिका से जूझता रहा है जिससे इसके राजस्व को काफी क्षति हुयी है और व्यय-भार में वृद्धि हुयी है। कहने का तात्पर्य है कि राज्य अकाल की समस्या पर किसी तरह का नियंत्रण नहीं कर पाया है। राज्य को पचवर्षीय योजनाएँ अकालों के सकट को कम नहीं कर पायी हैं। राज्य में निरंतर जल, चारा, अनाज व रोजगार का अभाव बना रहता है। अत राज्य के आर्थिक विकास के कार्यक्रम पर नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता है।

राज्य की वित्तीय दशा को आगामी वर्षों में ठीक करने के लिए निम्न उपाय सुझाये जा सकते हैं:—

1. वित्तीय साधन बढ़ाने के लिए बिक्री कर व अन्य करों की वसूली में सुधार किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ करके बिक्री-कर की आय काफी बढ़ायी जा सकती है। बिक्री कर की बकाया राशियाँ वसूल करने का प्रयास किया जाना चाहिए। हम पहले बतला चुके हैं कि राज्य के कुल कर-राजस्व (केन्द्रीय करों में अंश सहित) का 2/5 अंश बिक्री-कर से प्राप्त होता है। 1989-90 के बजट-अनुमानों में बिक्री-कर से 575 करोड़ रु के राजस्व का अनुमान लगाया गया है। यदि इसमें 10% वृद्धि की जा सके तो लगभग 60 करोड़ रु की राशि जुटायी जा सकती है।

2 कृषि-क्षेत्र में कर-भार में वृद्धि—पिछले वर्षों में भू राजस्व का योगदान घट कर कुल कर-राजस्व का 2% हो गया है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई से लाभ हुआ है उनमें व्यापारिक फसलों पर उपकर (cess) बढ़ा कर तथा सिंचाई की दरों में वृद्धि करके कृषिगत क्षेत्र से आमदनी बढ़ायी जा सकती है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में जिन वर्गों को लाभ प्राप्त होता है उन्हें करों के रूप में अधिक योगदान देना चाहिए।

3 देश में उत्पादन व आय बढ़ने से केन्द्र की आयकर व उत्पादन शुल्कों से आय बढ़ेगी जिससे राज्यों के हिस्से में केन्द्रीय करों की अधिक राशि आयेगी। इसलिए केन्द्र को आर्थिक विकास की गति को तेज करने का प्रयास करना चाहिए।

4 राज्य सड़क परिवहन, राज्य सिंचाई की योजनाओं, राज्य विद्युत मण्डल व अन्य राजकीय उपक्रमों को प्रबन्ध-व्यवस्था में सुधार करके इनके घाटों को कम करने अथवा लाभप्रदता के स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में अनेक स्तरों पर प्रशासन को कड़ा करना होगा ताकि अकार्यकुशलता व भ्रष्टाचार को समाप्त करके ऊँचे प्रतिफल प्राप्त किये जा सकें।

ग्रामीण विकास को जिला-नियोजन से जोड़ने की आवश्यकता है। भविष्य में अधिक ध्यान मजदूरी-रोजगार (wage-employment) को बढ़ाकर सामुदायिक परिसम्पत्तियों के निर्माण पर जोर देना चाहिए। जब तक सुदृढ़ कार्यक्रम उपलब्ध

(iv) राहत कार्यों व अन्य कार्यक्रमों के लिए प्राप्त 721 करोड़ रु की ऋण-राशि का अपलेखन (write-off) करने के लिए आयोग को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

(v) अल्प बचत में एकत्र धन राशि जो राज्यों को ऋण के रूप में दी जाती है उस अनवरत ऋण (perpetual loan) मान लिया जाना चाहिए क्योंकि इसका अधिकांश भाग विद्युत व सिंचाई परियोजनाओं में लगाया जाता है।

(vi) राज्य विद्युत मंडल को मार्च 1989 तक दिये गये 1065 करोड़ रुपयों के राज्य-ऋण को केन्द्र द्वारा साधारण ब्याज दर पर स्थायी ऋण (अनवरत ऋण) में बदलने की व्यवस्था की जानी चाहिए। इन सुझावों से स्पष्ट होता है कि राज्य की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए कई कदम उठाने होंगे।

इस प्रकार राज्य सरकार को एक तरफ वित्तीय साधनों को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए और दूसरी तरफ परियोजनाओं के उचित चयन, उचित क्रियान्वयन व उचित प्रबंध व देखभाल के जरिये उन्हें लाभप्रद बनाने का प्रयास करना चाहिए ताकि वे भविष्य में सरकारी खजाने पर भार बनने की बजाय उसमें योगदान दे सकें।

निष्कर्ष—वास्तव में राज्य की वित्तीय स्थिति का सम्बन्ध राज्य के दीर्घ-कालीन आर्थिक विकास से है। राज्य को अपने आर्थिक साधनों विशेषकर पशु धन, खनिज-पदार्थ, आदि का सदुपयोग करके आमदनी बढ़ानी चाहिए ताकि रोजगार बढ़े और भावी आर्थिक विकास के लिए साधन जुटाए जा सकें। प्राय वित्त-विशेषज्ञ राज्य की डावांडोल वित्तीय दशा के लिए वित्त आयोग की सिफारिशों को जिम्मेदार ठहराने की कोशिश करते हैं। उनका यह दृष्टिकोण रहता है कि केन्द्रीय हस्तान्तरणों में राज्य का अंश नीचा रहा है और राज्य के हितों का बलिदान कर दिया गया है तथा उनकी अनदेखी कर दी गई है, आदि।

इसमें तो दो राय नहीं हो सकती कि अधिक वित्तीय साधनों का उपयोग करने से विकास के अधिक अवसर खुलते हैं। इनके अभाव में विकास अवरुद्ध हो जाता है। लेकिन वित्तीय साधनों के हस्तान्तरण का अभी तक कोई ऐसा फार्मूला नहीं निकला है जो सभी राज्यों को समान रूप से स्वीकार्य हो। इसका कारण यह है कि अलग-अलग राज्यों की परिस्थितियां भिन्न-भिन्न किस्म की होती हैं। इसलिए सभी राज्यों को केन्द्र से उनकी आवश्यकता के अनुसार साधन मिलना सम्भव नहीं होता। इसलिए केन्द्र का काम सीमित साधनों का उचित आवंटन व हस्तान्तरण करना माना गया है।

अब भविष्य में केन्द्र को राजस्थान को अधिक वित्तीय सहायता देनी चाहिए और अकाल-राहत सहायता भी पूर्णतया अनुदानों के रूप में मिलनी चाहिए ताकि राज्य

(iii) राज्य की वित्तीय स्थिति ।

(iv) राजस्थान का योजनाकाल में कर-प्रयास ।

3. राजस्थान की वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है । इसको सुदृढ़ करने की कोई सुनिश्चित, व्यावहारिक व समयबद्ध योजना प्रस्तुत कीजिए ।

4. राजस्थान के 1989-90 के बजट का संक्षिप्त विवरण दीजिए ।

5. राजस्थान के राजस्व-खाते में आय की प्रमुख मदों का सापेक्ष महत्व बतलाते हुए वर्णन कीजिए ।

6. राजस्थान के राजस्व-खाते में व्यय की तीन प्रमुख मदें स्पष्टतया समझाइए । क्या उनमें हुयी वृद्धि वांछित मानी जा सकती है ?

इनसे रोजगार व विनिर्माण द्वारा जोड़े गये मूल्य (Value-added) का लगभग 85% अंश प्राप्त होता था।

2 1951 में विनिर्माण व खनन में श्रम-शक्ति का 9 5% अंश लगा हुआ था। 1950-51 मे राष्ट्रीय आय का 14% उद्योगो से प्राप्त हुआ था।

3 भगवती व देसाई के अनुसार 1947 तक भारत परिवहन व संचार की दृष्टि में काफी प्रगति कर चुका था। सड़को की लम्बाई लगभग 3 लाख मील थी।

4 विदेशी निजी विनियोग की राशि 1948 में 320 करोड़ रुपये थी जिसका लगभग चौथाया अंश खनन व विनिर्माण में लगा हुआ था।

5, 1948 मे कॉस्टिक सोडा साइकिल, अमोनिया सल्फेट, शीट काच व अल्यूमिनियम की माग की पूर्ति काफी मात्रा मे विदेशो से आयात करके की जाती थी।

6 1947 मे आधुनिक फैक्ट्री क्षेत्र में 20 लाख श्रमिक कायरत थे जो कुल श्रम शक्ति का 2% था।

क्या इन लक्षणो मे कालान्तर मे कोई परिवर्तन हुए है?

आज का भारत 1947 के भारत की तुलना में काफी भिन्न है। कृषिगत क्षेत्र में कुछ सीमा तक भूमि सुधार हुए हैं तथा मध्यस्थ-वर्ग को समाप्त किया गया है। सिचाई रासायनिक उर्वरको कीटनाशक दवाइयों आदि साधनो का भी विस्तार किया गया है। इससे कृषि का तकनीकी आधार सुदृढ हुआ है।

औद्योगिक क्षेत्र मे काफी विविधता आयी है। पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन व उत्पादन-क्षमता काफी बढी है। भारत की गिनती विश्व के चुने हुए औद्योगिक राष्ट्रो मे होने लगी है। देश मे सार्वजनिक क्षेत्र म कारखानों का विकास किया गया है। औद्योगिक प्रगति का असर हमारे निर्यातो पर भी पडा है। हम काफी मात्रा में विनिर्मित माल का निर्यात करने लगे हैं।

योजनाकाल मे विकास की वार्षिक दर लगभग 3 6% रही है जबकि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व कई दशाब्दियो तक यह मुश्किल से $\frac{1}{2}$% रही थी। भविष्य मे विकास की दर का बढाया जा सकता है तथा बढाया जाना चाहिए। छठी पच-वर्षीय योजना मे विकास की वार्षिक दर 5·3% रही है जो लक्ष्य के अनुकूल है। सातवी योजना (1985-90) मे विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य 5% रखा गया है जिसके प्राप्त होने की आशा है। आठवी योजना (1990 95) के लिए दृष्टिकोण प्रपत्र (Approach Document) मे विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य कम से कम 6% सुझाया गया है।

प्रश्न 2 भारत में श्रम शक्ति के व्यावसायिक वितरण को स्पष्ट करें। इसे कैसे ठीक किया जा सकता है?

व्यवसाय में केवल 2% श्रमिक लगे हुए थे एवं जापान में 12 प्रतिशत व्यक्ति लगे हुए थे। व्यावसायिक वितरण के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष ध्यान देने योग्य हैं

(अ) भारत में काफी लम्बी अवधि के बाद 1981 में व्यावसायिक वितरण मामूली बदला है। 1981 में कृषि व सहायक क्रियाओं में सलग्न श्रम शक्ति का लगभग 3·3% अंश घटा है जो एक नई व अनुकूल प्रवृत्ति का सूचक है।

(ब) कृषि से श्रम-शक्ति को हटाकर अन्य आर्थिक क्रियाओं की तरफ भेजने की विधि भारत के लिए अव्यावहारिक सिद्ध होगी। हमें कृषि में ही अधिक व्यक्तियों को काम देना है। अतः ग्रामीण निर्माण कार्यों का विस्तार करना होगा—बाँध, नहर, सड़क, वृक्षारोपण, भू-सरक्षण आदि कार्यों का विस्तार करने से देहातों में ही अधिक लोगों को काम दिया जा सकता है और दिया जाना चाहिए। इससे शहरों पर अनावश्यक रूप से जनभार नहीं बढ़ेगा।

(स) ग्रामीण औद्योगीकरण अत्यावश्यक है। गाँवों में आधुनिक ढग के लघु उद्योगों का जाल बिछाने से औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेज हो सकेगी। आर्थिक विकास से सेवाओं (परिवहन, बैंक बीमा व्यक्तिगत सेवा-कार्य जैसे—दर्जी नाई, धोबी आदि) का विकास व विस्तार होना भी स्वाभाविक है।

प्रश्न 3 भारतीय अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी व अल्परोजगार की मात्रा, स्वरूप व कारणों पर प्रकाश डालें। सरकार ने योजनाओं में इन समस्याओं को हल करने के लिए कौन से उपाय काम में लिये हैं।

उत्तर सकेत—भारत में बेरोजगारी व अल्प-रोजगार दोनों की दशाएँ पाई जाती हैं। पारिवारिक खेतों पर जितने श्रमिक काम करते हैं वे प्राय आवश्यकता से अधिक होते हैं जिससे उन्हें पूरा काम नहीं मिल पाता एवं उनकी आमदनी भी कम होती है। इसे छिपी हुई या प्रच्छन्न बेकारी या अल्प-रोजगार की स्थिति कहते हैं। यहाँ श्रम की सीमान्त उत्पादकता नीची पायी जाती है। भारत में स्वय के रोजगार में लगे व्यक्तियों की सख्या काफी अधिक है।

दांतवाला समिति ने बेरोजगार व्यक्तियों के आकड़ों में सुधार करने के सम्बन्ध में कई सुझाव दिये थे। बेरोजगार व्यक्तियों की सख्या प्रत्येक योजना के अन्त में इसके आरम्भ की तुलना में अधिक पायी गई है। इसका अर्थ है कि देश में प्रत्येक योजना में नयी श्रम शक्ति को पूरा काम नहीं मिल पाया है।

सातवीं पचवर्षीय योजना के आकड़ों के अनुसार मार्च 1985 में सामान्य स्टेटस (usual status) के अनुसार 5 वर्ष व अधिक के आयु समूह में बेरोजगारी की मात्रा 92 लाख व्यक्तियों (NSS के 38वें दौर की सूचना के अनुसार)। NSS के 32वें दौर के आधार पर 1977-78 में श्रम-शक्ति का 8 2% बेरोजगारी का शिकार था। केरल में बेरोजगारी की दर 25 7% थी तथा देश के आधे बेरोजगार व्यक्ति तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, केरल व महाराष्ट्र में पाये गये थे।

चालू दैनिक स्थिति के अनुसार 1983 मे भारत मे बेरोजगारी की दर 4 79% रही, जबकि 1972-73 मे यह 4 75% थी। 1983 मे केरल में बेरोजगारी की दर 13 4% तथा तमिलनाड मे 12 0% थी। इस प्रकार इन दोनो राज्यो मे बेरोजगारी का दबाव सर्वाधिक पाया गया।

देश मे जनसख्या की तीव्र गति मे वृद्धि, (1971-81) की अवधि मे 25 प्रतिशत), रोजगार नीति का अभाव, पूँजी का अभाव ग्रामीण औद्योगीकरण का अभाव जिला व खण्ड नियोजन का अभाव दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली आदि कारण इस समस्या के लिए उत्तरदायी माने जा सकते हैं। जब श्रम-शक्ति की पूर्ति इसकी मांग से अधिक होती है तब श्रम-बाजार मे असतुलन उत्पन्न हो जाता है जिससे बेरोजगारी व अल्प रोजगार की समस्याएँ उत्पन्न होती है।

सरकार ने योजनाओ म विभिन्न विकास कार्यक्रमो के माध्यम से रोजगार बढाने का प्रयास किया है। ग्रामीण-निर्माण कार्यक्रम (RWP) मे देहाती जनता को काम देने का प्रयास किया गया है। 1971-72 म ग्रामीण रोजगार के लिए क्रैश स्कीम' (CSRE) चालू की गयी थी जिसके अ तगत प्रत्येक जिले मे 1 000 व्यक्तियो को प्रति माह 100 रुपये मजदूरी पर 10 महीने का काम देने का कार्यक्रम रखा गया था। 1973-74 के बजट मे इस कार्यक्रम के लिए 100 करोड रुपये की राशि निर्धारित की गई थी ताकि 5 लाख शिक्षित बेरोजगारो को काम पर लगाया जा सके।

सातवी योजना 1985-90 को भी रोजगारो मुख बनाया गया है। इसमे 40 4 मिलियन व्यक्ति वर्ष का अतिरिक्त रोजगार उत्पन्न करने का लक्ष्य रखा गया है ताकि सम्पूर्ण नई श्रम शक्ति को काम देने के अलावा पहले के बेकार व्यक्तियो मे से भी कुछ को काम दिया जा सके। इसके लिए गाँवो का आर्थिक विकास करने पर जोर दिया गया है। सरकार ने एक राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) तैयार किया है जिसमें देश के सभी विकास खण्ड शामिल किय गय हैं। इनमे गाँवों म सुस्त कृषिगत मौसम म रोजगार उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता है। यह पहले के काम के बदले अनाज का ही एक संशोधित रूप है। स्व-रोजगार के लिए ग्रामीण युवा वग को विभिन्न प्रकार के कार्यों मे प्रशिक्षण देने की नीति अपनायी गयी है। इस ट्राइसम (TRYSEM) (Training Rural Youth for Self Employment) कार्यक्रम कहा गया गया है।

गाँवो मे रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (Rural Landless Employment Guarantee Programme) (RLEGP) भी चालू किया गया है। इसका लाभ ग्रामीण श्रमिकों को मिलने लगा है। यह महाराष्ट्र की रोजगार गारण्टी स्कीम के नमूने पर है और इसका सम्पूर्ण व्यय केन्द्र वहन करता है।

1989-90 को अवधि के लिए ग्रामीण रोजगार का एक व्यापक कार्यक्रम चलाया गया है जिसे जवाहर रोजगार योजना (JRY) का नाम दिया गया है। इस पर 2625 करोड़ रु की धनराशि व्यय की जायगी जिसमे केन्द्र का अंश 80% व राज्यों का 20% होगा। इसमें NREP व RLEGP को भी मिला दिया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य प्रत्येक ग्रामीण निर्धन परिवार में से कम से कम एक व्यक्ति को वर्ष मे 100 दिन का रोजगार मुहैय्या करना है ताकि उनकी आमदनी बढ सके। इस कार्यक्रम को ग्राम पंचायतों के माध्यम से सारे देश में लागू किया जायगा जिसके लिए कोष केन्द्र से सीधे पंचायतों को दिये गये हैं। इसके अन्तर्गत महिलाओं के लिए 30% के आरक्षण की व्यवस्था है। इतनी विशाल धनराशि का सदुपयोग करने तथा उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करने के लिए जिला, खण्ड व ग्राम स्तर उत्पादक रोजगार की परियोजनाओं का निर्माण करने की नितान्त आवश्यकता है जिनके अभाव में कोषों का सदुपयोग करना कठिन होगा। विभिन्न क्षेत्रों में कोषों का आवंटन निर्धनता के अनुपात में किया जायगा।

आशा है इस योजना से रोजगार-संवर्द्धन में विशेष मदद मिलेगी और इसे आठवीं योजना में अधिक व्यवस्थित रूप में संचालित किया जायगा।

प्रश्न 4 भारत में औद्योगिक लाइसेंस नीति की नवीन प्रवृत्तियाँ दीजिए।

उत्तर-संकेत--भारत मे लाइसेंस नीति मे फरवरी 1970 मे संशोधन किया गया था जिसमें दत्त समिति की सिफारिशों का समावेश था। उद्योगों के निम्न क्षेत्र घोषित किए गए थे--(i) मूल या प्रमुख (core) उद्योगों की सूची जिसमे आधारभूत, सुरक्षा सम्बन्धी व केन्द्रीय महत्व के उद्योग रखे गए थे। (ii) 5 करोड़ रुपयों में ऊपर के क्षेत्र को 'भारी विनियोग' का क्षेत्र कहा गया था। (iii) 1 करोड़ रुपये से 5 करोड़ रु. के बीच वाले क्षेत्र को मध्यम क्षेत्र (middle sector) कहा गया था। इस नीति में लघु उद्योगों के विकास व पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास पर बल दिया गया था।

2 फरवरी, 1973 को लाइसेंस नीति में पुनः संशोधन किया गया। इसका उद्देश्य पाँचवीं योजना मे औद्योगिक उत्पादन को तेजी से बढ़ाना था। इनमें 19 उद्योगों की एक सूची शामिल की गई जिसमे बड़े उद्योग समूहों को भाग लेने दिया गया। उस सूची मे मूल उद्योग (core industries) व सम्बद्ध उद्योग रखे गये। अपेक्षाकृत बड़े समूह की परिभाषा में 35 करोड़ रुपये की परिसम्पत्ति की सीमा के स्थान पर 20 करोड़ रुपये कर दिये गये। सरकार ने संयुक्त क्षेत्र के विचार को आगे बढ़ाने का निश्चय दोहराया। इस नीति में बड़े औद्योगिक समूहों को अधिक काम करने का अवसर दिया गया। कुछ विद्वानों का मत था कि इससे आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण घटने की बजाय बढ़ेगा। बाद के वर्षों मे उदार लाइसेंस नीति ही अपनाई गई है। मार्च 1978 मे औद्योगिक लाइसेंस लेने के लिए छूट की सीमा

(exemption limit) एक करोड रुपये से बढाकर तीन करोड रुपये कर दी गई। मई 1983 मे सरकार ने इसे बढाकर 5 करोड रु. कर दिया। जून 1988 मे इस सीमा को पुन. बढाकर 15 करोड रुपये कर दिया गया है। केन्द्र द्वारा घोषित पिछड़े क्षेत्रो के लिए यह सीमा 50 करोड रुपये कर दी गई है। इससे काफी सख्या मे नई परियोजनाएँ हाथ मे ली जायेंगी। वित्तीय सस्थाएँ मध्यम श्रेणी की परियोजनाओ की अधिक गहराई से जाँच-पडताल करेंगी।

सरकार ने अप्रैल 1982 मे लाइसेंस नीति को और उदार बनाया। बडे औद्योगिक घरानो व विदेशी कम्पनियो के लिए जांच और क्षेत्रो मे पिछले पाँच वर्षों के सर्वश्रेष्ठ उत्पादन से ऊपर 33 3% क्षमता की इजाजत दी गई जो पहले के 25% अतिरिक्त उत्पादन की छूट के अलावा थी। इन परिवर्तनो का उद्देश्य निर्यात-सवर्द्धन आयात-प्रतिस्थापन, पैमाने की किफायतो का लाभ उठाना व टेक्नोलॉजी को उन्नत करना था। 1985-86 के सघीय बजट मे MRTP कम्पनियो के लिए परिसम्पत्ति की सीमा 20 करोड रु से बढाकर 100 करोड रु कर दी गई तथा 25 उद्योगो को लाइसेंस मुक्त कर दिया गया।

सरकार ने 40 मदो मे ब्रोड बैंण्डिग की नीति लागू की है जैसे बिजली के पखे, गाडियो के टायर ट्यूब, काच, सीमेंट, फल-सब्जी व प्रासेस्ड फूड, आदि। इनमे बाजार माँग के अनुसार वस्तु-मिश्रण बदला जा सकेगा। उसके लिए नया लाइसेंस लेने की जरूरत नही पडेगी।

सरकार ने कुछ वस्तुओ के लिए न्यूनतम उत्पादन-क्षमताएँ घोषित की हैं जिन तक उत्पादन बढाया जा सकता है ताकि लागतें कम की जा सकें। ऐसा सीलिग पखो, बिजली के टाइपराइटरो कार्बन ब्लेक आदि के लिए किया गया है।

नई सरकार औद्योगिक नियन्त्रणो को कम करके प्रतिस्पर्धा, आधुनिकीकरण, नई टेक्नोलोजी, बडे पैमाने की किफायतें आदि प्राप्त करना चाहती है। इसके लिए लाइसेंस नीति को अधिक उदार बनाया गया है जो उदार आर्थिक नीति का प्रमुख अग है।

प्रश्न 5 विदेशी व्यापार की आधुनिक प्रवृत्तियो का उल्लेख कीजिए। इस सम्बन्ध में आवश्यक आंकड़े दीजिए।

उत्तर सकेत—भारत मे 1988 89 मे आयात की राशि 27693 करोड रुपये थी जो पिछले वर्ष से 2 ·6% अधिक थी। निर्यात की राशि 20281 करोड रुपये थी जो पिछले वर्ष से 28 8% अधिक थी। इस प्रकार 1988 89 मे व्यापार का घाटा 7412 करोड रु का रहा जो पिछले वर्ष के 6658 करोड रु. से अधिक था।

(अ) निर्यात व्यापार में परिवर्तन (1) वस्तु के अनुसार—1970-71 मे चाय का अश 9% था जो घटकर 1987-88 मे 3·8% हो गया। वस्त्र व रेडीमेड

पोशाको (cotton fabrics + readymade garments) का 9% से बढ़कर 18 1% हो गया। जूट व जूट से निर्मित माल का 12 4% से घटकर 1·5% पर आ गया। इन्जीनियरी माल का अंश भी घटा है।

(ii) दिशा के अनुसार—1970-71 से 1987-88 के बीच हमारे निर्यात-व्यापार में जापान का अंश 13 2% से घटकर 10·3% हो गया। पूर्वी योरोपीय देशों का घटकर 16 5% पर आ गया। निर्यात व्यापार में अमेरिका का अंश बढ़ा है। इस प्रकार हमारा व्यापार अमेरिका व रूस से बढ़ा है। 1987-88 में अमेरिका भारत का सबसे बड़ा निर्यात बाजार रहा तथा कुल निर्यात में इसका अंश 18 5% रहा।

(आ) आयात व्यापार में परिवर्तन (i) वस्तु के अनुसार—1970-71 से 1987-88 के बीच में काफी परिवर्तन हुआ है। 1987-88 में आयातों में पेट्रोल, तेल व चिकनाई (POL) का अंश पिछले वर्ष की तुलना में बढ़कर 18 2% पर गया।

(ii) दिशा के अनुसार—ओपेक व जापान से आयात बढ़ा है। 1970-71 से 1987-88 के बीच जापान से हमारे आयात 5·1% से बढ़कर 9·5% हो गये और ओपेक से 7 7% से बढ़कर 14·8% हो गये।

(इ) व्यापार की बाकी—व्यापार का घाटा 1988-89 में लगभग 7412 करोड़ रु रहा जो पिछले वर्ष से लगभग 750 करोड़ रु अधिक था। वैसे 1980-81 से ही व्यापार का घाटा प्रति वर्ष 55 अरब रुपये व इससे अधिक रहा है। छठी योजना में व्यापार का कुल घाटा 28581 करोड़ रुपये रहा जिससे देश के समक्ष विदेशी भुगतान की समस्या उत्पन्न हो गई।

प्रश्न 6 विदेशी सहायता की मात्रा, उपयोग व भुगतान की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर-संकेत—रिजर्व बैंक की 1987-88 की रिपोर्ट के अनुसार 31 मार्च, 1988 के अन्त तक कुल 61,441 करोड़ रुपयों की विदेशी सहायता स्वीकृत हुई थी जिसमें 42 347 करोड़ रुपये की राशि प्रयुक्त की जा सकी थी।

1988-89 में विदेशी सहायता के शुद्ध आगम (net inflow of assistance) की राशि 2599 करोड़ रुपये तक पहुँच गई है।

विदेशी सहायता का उपयोग औद्योगिक विकास, परिवहन के विकास व कृषिगत विकास आदि के लिए किया गया है। भूतकाल में पी एल. 480 के अन्तर्गत खाद्यान्नों के रियायती आयात से खाद्य-स्थिति को सुधारा जा सका था। विदेशी तकनीकी ज्ञान व दक्षता का भी उपयोग किया गया है।

पिछले वर्षों में विदेशी ऋणों के ब्याज व मूलधन की किस्त के भुगतान का संकट खड़ा हो गया है। यह अग्र तालिका में दर्शाया गया है:

के लिए संशोधित आँकड़ों के अनुसार विदेशी सहायता की राशि 5,209 करोड़ रु. (कुल का 12·8% तथा घाटे की वित्त व्यवस्था 3,560 करोड़ रु. की रही।

विदेशी सहायता के उपयोग में पुनर्भुगतान की समस्या तथा घाटे की वित्त-व्यवस्था में मुद्रास्फीति की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गयी है। इस प्रकार भारतीय नियोजन में वित्तीय व्यवस्था स्फीतिकारी प्रमाणित हुई है। छठी योजना 1980-85 के घाटे की वित्त-व्यवस्था का लक्ष्य 5 000 करोड़ रु. का था, लेकिन वास्तव में यह 15 684 करोड़ रु. की रही जो लक्ष्य के तिगुन से भी कुछ अधिक थी। विदेशी सहायता के लिए प्रावधान 9 929 करोड़ रु. का था जबकि वास्तव में यह 8,529 करोड़ रु. प्राप्त की गई।

सातवीं योजना में घाटे की वित्त व्यवस्था से 14000 करोड़ रु. का प्रावधान किया गया था, लेकिन प्रथम तीन वार्षिक योजनाओं (1985-88 की अवधि के लिए) में इससे अधिक घाटे की वित्त-व्यवस्था की जा चुकी है। आठवी पंचवर्षीय योजना को भी सार्वजनिक क्षेत्र में 3,50 000 करोड़ रुपये के परिव्यय के लिए साधन जुटाने का भारी प्रयास करना होगा। इसके लिए घरेलू बचत की दर में वृद्धि करनी होगी। इसे 21 1% से बढ़ाकर 23 3% किया जाना है।

प्रश्न 9. भारत में नियोजन काल में आर्थिक प्रगति की समीक्षा कीजिए।

उत्तर-संकेत—भारत में योजनाकाल के लगभग चार दशक पूरे हो गये हैं इस अवधि में विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति हुई है।

राष्ट्रीय आय 1985-86 में 1950-51 की तुलना में (1970-71) के भावों पर लगभग 3 6 गुनी हो गई। इसमें प्रतिवर्ष औसतन 3 6 प्रतिशत वृद्धि हुई। देश की जनसंख्या 1951 में 36 करोड़ से बढ़कर 1981 में लगभग 68·4 करोड़ व्यक्ति तथा 1989 में लगभग 82-33 करोड़ व्यक्ति हो गयी है। प्रति व्यक्ति आय 466 रु. से बढ़कर 1985-86 में 798 रु. हो गयी है (1970-71 के भावों पर)। इस प्रकार इसमें 1 5% वार्षिक चक्रवृद्धि दर में वृद्धि हुई। अब राष्ट्रीय आय की गणना का आधार वर्ष बदलकर 1980 81 कर दिया गया है। 1987-88 में 1980-81 के भावों पर राष्ट्रीय आय 150573 करोड़ रुपये तथा प्रति व्यक्ति आय 1918 रुपये आँकी गयी है।

खाद्यान्नों का उत्पादन 1950-51 में 55 मिलियन टन से बढ़कर 1987-88 में 138 मिलियन टन हो गया तथा 1988 89 के लिए उत्पादन का अनुमान ऊँचा (लगभग 170 मि. टन) लगाया गया है। तिलहन का 5 मिलियन टन से 1987-88 में 12 4 मिलियन टन एवं कपास का 2·9 मिलियन गाँठों से 6 43 मिलियन गाँठें हो गया है। देश में कृषि के क्षेत्र में अधिक उत्पादन वाली किस्मों, रासायनिक खाद, ट्रैक्टर, पम्प, कीटनाशक दवाइयों आदि का काफी विस्तार किया गया है।

1950 51 से 1978-79 की अवधि मे कृषिगत उत्पादन में वार्षिक वृद्धि दर 2·7% रही है। पांचवी योजना की अवधि (1974-99) मे यह 4 2% रही। चावल की प्रति हेक्टेयर उपज 1950-51 में 6 7 क्विटल से बढ़कर 1987-88 में 14·7 क्विंटल तथा गेहूँ की 6 6 क्विटल से बढ़कर लगभग 20 क्विंटल हो गई है।

शक्ति की प्रस्थापित क्षमता के 19·0-51 मे 23 लाख किलोवाट से बढ़कर 1986-67 में 554 लाख किलोवाट (लगभग 24 गुना) हो जाने का अनुमान है। तैयार इस्पात का उत्पादन 1950-51 मे 10 लाख टन स बढ़कर 1987-88 में 106 5 लाख टन (सैकण्डरी उत्पादकों का उत्पादन शामिल करने पर) हो गया है। क्रूड तेल का उत्पादन इसी अवधि मे 2·6 लाख टन से बढ़कर 3 करोड टन हो गया है। देश मे अल्यूमिनियम इजन, मोटरगाड़ियो, साइकिलों, विभिन्न किस्म की मशीनरी, रासायनिक खाद कोयला, सीमेंट, कास्टिक सोडा, कच्चा लोहा वगैरा का उत्पादन काफी बढ़ा है। 19^1-86 की अवधि मे औद्योगिक उत्पादन छ गुना हो गया है। 1970 के दशक मे औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 4 2% रही थी जो बढ़कर 1980-81 स 1986-87 तक 7 6% हो गइ।

घरेलू बचत की दर 1980-81 मे 21·2 प्रतिशत (राष्ट्रीय आय का) से घटकर 1987-88 मे 20·2 प्रतिशत हो गई 1986-87 में यह 21 6% रही थी। विनियोग की दर 1980-81 मे 22 7 प्रतिशत से घट कर 1987-88 मे 22·1 प्रतिशत हो गई। यह 1986-87 मे 23 4% रही थी। राष्ट्रीय आय के नये सिरीज के अनुसार जिसका आधार वर्ष अब 1980-81 कर दिया गया है।) देश म सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो का तजी से विस्तार हुआ है। 1950-^1 में इनमे कुल विनियोग 29 करोड रुपए का था जो 1987 88 के अन्त तक लगभग 71299 करोड रुपए हो गया है। देश मे कई नई वस्तुओं का उत्पादन चालू हुआ है। फिर भी मूल्य-वृद्धि, बेरोजगारी, विदेशी सहायता के कारण पुनर्भुगतान की समस्याएँ, आर्थिक सत्ता का निजी हाथो मे केन्द्रीयकरण व एकाधिकार, साधन सग्रह की कठिनाइयां, काले धन व काली मुद्रा आदि समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं जिनका उचित समाधान निकाला जाना चाहिए।

प्रश्न 10 राजस्थान का योजना-काल में कृषिगत विकास सही दिशा में हुआ है। क्या आप इस मत से सहमत हैं ? वर्णन कीजिए।

उत्तर-सकेत—राज्य मे 1951-52 मे सकल कृषिगत क्षेत्रफल कुल रिपोर्टिग क्षेत्रफल का 28% था जो बढ़कर 1980-87 मे 52 0% हो गया है। इस प्रकार राज्य में विस्तृत खेती का क्षेत्रफल काफी बढ़ा है।

सकल सिंचित क्षेत्रफल 1951-52 मे 11 7 लाख हैक्टयर था जो 1986 87 मे 43 51 लाख हैक्टेयर हो गया। इस प्रकार योजनाकाल मे सिंचित क्षेत्रफल लगभग चौगुना हो गया है।

1950 51 म स द्य सो का उत्पादन 30 लाग टन हुआ था जो 1983 84 मे लगभग एक कराड टन रहा। 1984 85 व 1985-86 में यह प्रति वर्ष लगभग 79 लाख टन रहा। सूखे के कारण 1986 87 मे 67 लाख टन व 1987-88 मे 48 लाख टन रहा लेकिन 1988 89 म इसके पुन 1 करोड टन की सीमा को पार करने की आशा है।

राज्य मे कृषिगत विकास की नई नीति का विस्तार जारी है। राज्य मे अधिक उपज देने वाली किस्मो का क्षत्रफल तथा रासायनिक खादो का उपभाग बढाया गया है।

राज्य मे मुख्य समस्या कृषिगत उत्पादकता का बढाने की है। सिचाई क साधनो का तेजी से विस्तार करने की भी आवश्यकता है।

विश्व बैंक ने इन्दिरा गांधी नहर तथा चम्बल कमाण्ड क्षत्र क विकास के लिए ऋण प्रदान किये हैं। चम्बल सिचित क्षत्र म जल के बहाव की व्यवस्था करन, सडकें बनाने नहरो के रख रखाव व भूमि के विकास के लिए इस ऋण का उपयाग किया गया है तथा इन्दिरा गांधी नहर क्षत्र में नहरो को पक्का बनाने खेतो को समतल करने टीलो के निमाण को रोकने वृक्षारोपण करन व गांवों के विकास क लिए इसका उपयोग किया जा रहा है।

प्रश्न 11 राजस्थान में योजनाकाल में औद्योगिक प्रगति का वणन कीजिए।

उत्तर सकेत—राजस्थान औद्योगिक दृष्टि से पिछडा हुआ राज्य रहा है। 1987 88 में खनन व निर्माण (पजीकृत व गैर पजीकृत (mining and manufacturing) से राज्य की कुल आय का 10 8% (1970-71 कीमतो पर) प्राप्त हुआ था।

योजनाकाल में विद्युत की उपलब्धि व बढाने म औद्योगिक विकास की भूमिका तैयार हो गयी है। 1950-51 म शक्ति की उपलब्धि 8 मेगावाट थी जा 1989 क मध्य में 2500 मेगावाट (प्रस्थापित क्षमता) हो गयी है।

राज्य में चीनी सीमेंट, यूरिया सुपर फास्फेट सूती वस्त्र सूत, बॉल-बियरिंग, पानी बिजली क मीटरो नमक आदि का उत्पादन किया जाता है।

सार्वजनिक क्षत्र में कुछ कारखाने चल रहे हैं जैसे राजस्थान सरकार की दख रख में श्रीगंगानगर शुगर मिल्स धोलपुर में हाई-टक प्रिसीजन ग्लास फैक्ट्री गोटन में सीमेंट का कारखाना माडोली का पाल (डूगरपुर जिले में) फ्लोराइड बेनि-फिसियेशन प्लांट, चुरू व लाडनू म वर्स्टेड ऊनी मिल बीकानेर म ऊनी मिल व डीडवाना म केमिकल वर्क्स चल रहे हैं। भारत सरकार क निम्न उपक्रम हैं—(i) हिन्दुस्तान जिक लि. उदयपुर (ii) हिन्दुस्तान कॉपर लि खेतडी (iii) इन्स्ट्रूमेन्टेशन लि कोटा (iv) एच एम टी लिमिटेड अजमेर व (v) साँभर साल्टस लि

(vi) मॉडर्न बेकरीज तथा (vii) राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड इन्स्ट्रूमेन्टस लि है जो कोटा इन्स्ट्रूमेंटेशन लि की सहायक इकाई (रीको का सहयोग) है।

राजस्थान मे केन्द्रीय विनियोग सार्वजनिक क्षेत्र मे 1966-67 में 1 7 करोड रुपयो से बढ़कर मार्च 1985 में 648 करोड रुपये हो गया था। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने स्कूटर प्लान्ट चमड़े के कारखाने व रॉक फोस्फेट के विकास के लिए कर्ज दिया है राज्य मे औद्योगिक विकास की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। कृषि-पदार्थ आधारित, खनिज-आधारित उद्योगो जेम्स व जवाहरात, दस्तकारी व पर्यटन, आदि का विकास किया जाना चाहिए। राज्य मे विभिन्न उद्योगो के उत्पादन की प्रगति इस प्रकार रही। सीमेन्ट का उत्पादन 1951 मे 2·58 लाख टन से बढकर 1988 मे 40 3 लाख टन हो गया। सूती वस्त्र व सूत का उत्पादन भी काफी बढा है।

राज्य म इन्जीनियरी, रासायनिक व इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगो का विकास किया जा सकता है। सरकार को ग्रामीण व लघु उद्योगो के विकास की एक व्यावहारिक योजना तैयार करके उसे निकट भविष्य मे कार्यान्वित करना चाहिए ताकि राज्य के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिल सके। इसके लिए प्रमुखतया नमक का उत्पादन छोटी इकाइयो मे किया जाना चाहिए। जनता सरकार ने जून, 1978 मे अपनी नई औद्योगिक नीति घोषित की थी जिसका प्रमुख उद्देश्य राज्य का तेजी से औद्योगिक विकास करना था। राज्य मे अशोक लीलैंड की तरफ से अलवर मे ट्रको के चेसिस बनाने का कारखाना स्थापित किया गया है। रीको की मदद से सयुक्त क्षेत्र व सहायता-प्राप्त क्षेत्र में कई औद्योगिक इकाइयो की स्थापना की गई है।

1984-85 के लिए उद्योगो के वार्षिक (सर्वेक्षण (फैक्ट्री क्षेत्र) की ताजा सूचना के अनुसार राज्य की 2701 फैक्ट्रियो में 2 2 लाख कर्मचारी कार्यरत थे श्रमिक+अन्य कर्मचारी) इनमें कुल स्थिर पूँजी 2448 करोड रुपये लगी हुयी थी और शुद्ध जोडा गया मूल्य (net value added) 550 करोड रुपये का था। राज्य मे फैक्ट्रियो मे सलग्न कुल कर्मचारियो का 25 7% अकेले विद्युत मे लगा हुआ था, जबकि समस्त भारत के लिए यह औसत 11 5% आया था। इस प्रकार राज्य मे विद्युत क्षेत्र म कर्मचारियो का अनुपात बहुत ऊँचा है। शुद्ध जोडे गये मूल्य के आधार पर राजस्थान का औद्योगिक आधार (industrial base) 1984–85 मे इस प्रकार पाया गया ऊन रेशम व मिश्रित रेशे के वस्त्र, सूती वस्त्र, अधात्विक खनिज वस्तुएँ परिवहन उपकरण रासायनिक पदार्थ मशीनरी मशीनो औजार आदि। 1984-85 मे राज्य मे उद्योगो का विशिष्टीकरण गुणाक (coefficient of specialisation) 0 234 पाया गया है जो नीचा है और यह बतलाता है कि राज्य मे औद्योगिक विविधीकरण का गुणाक 0 766 होने से कई प्रकार के उद्योग विकसित होने लगे हैं। नवम्बर 1988 मे हिन्दुस्तान जिंक लि ने भीलवाडा जिले मे रामपुरा अगुचा सीसा जस्ता माइनिंग कॉम्प्लेक्स पर काम चालू किया है।

प्रश्न 12. सरकार की खाद्य-नीति का संक्षेप मे उल्लेख कीजिए। देश के लिए उचित खाद्य-नीति का सुझाव दीजिये।

उत्तर-संकेत—सरकार की खाद्य-नीति—1973 मे सरकार के द्वारा गेहू के थोक व्यापार को अपने हाथ मे लेने की नीति घोषित की गई थी, लेकिन आवश्यक तैयारी के अभाव व कई प्रशासनिक कठिनाइयो के कारण यह पूर्णतया विफल रही। 1974 में व्यापारियो से लेवी के रूप मे अनाज निर्धारित भावो पर उनकी कुल खरीद का आधा भाग लेने की नीति अपनाई गई। 1978 मे गेहूँ का खरीद-मूल्य 105 रुपया प्रति क्विटल रखा गया जो काफी ऊँचा था। 1975 मे कृषको से लेवी के रूप मे गेहूँ की खरीद करके स्टाक बनाने की नई नीति लागू की गई। गेहूँ का वसूली मूल्य पहले जितना ही रखा गया। 1976 मे उत्पादको से लेवी वसूल की गई। अप्रैल, 1977 मे जनता सरकार ने खाद्य स्थिति अच्छी होने से उत्पादको पर लेवी समाप्त कर दी और गेहूँ के वसूली मूल्यो को न्यूनतम समर्थन मूल्यो मे बदल दिया तथा गेहूँ की क्षेत्रीय व्यवस्था समाप्त कर दी। हाल मे 1990-91 की बिक्री की मौसम के लिए गेहूँ के वसूली मूल्य 200 रुपय प्रति क्विटल रखे गये हैं जो पहले से 17 रुपये प्रति क्विटल अधिक है। पिछले वर्षों मे इनमे लगातार वृद्धि होती रही है।

सरकार की खाद्य-नीति मे निम्नलिखित का विस्तार से वर्णन करें।

(i) खाद्यान्नो के सार्वजनिक वितरण की व्यवस्था,

(ii) खाद्यान्नो के लिए आयात की व्यवस्था,

(iii) भारतीय खाद्य निगम की क्रियाएँ,

(iv) उत्पादन बढाने के लिए कार्यक्रम (कृषि मे हरित क्रान्ति, आदि)

सरकार खाद्यान्नो का पर्याप्त मात्रा मे बफर स्टॉक रखने का प्रयास करती है।

भारत के लिए उचित खाद्य नीति के मुख्य तत्व इस प्रकार होने चाहिए—

1 कृषको को अनाज के प्रेरणादायक मूल्य (incentive prices) मिले ताकि उन्हे उत्पादन बढाने की प्रेरणा मिल सके,

2. सरकार निर्धारित भावो पर अनाज खरीदकर बफर स्टॉक जमा करे ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुचारू रूप से चलाया जा सके,

3. समाज में गरीब लोगो को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के द्वारा अपेक्षाकृत नीचे भावो पर अनाज नियमित रूप से उपलब्ध किया जाना चाहिए,

4 खाद्यान्नो में जमाखोरी व संग्रह को रोका जाना चाहिए;

5. उत्पादन बढने के प्रयास निरन्तर जारी रहने चाहिएँ; तथा

6 आवश्यकतानुसार विदेशो से अनाज का आयात करके खाद्यान्नो के अभाव को दूर किया जाना चाहिए।

इन तत्वों पर ध्यान देने से उचित लाभ-नीति निर्धारित की जा सकती है।

प्रश्न 13. भारत मे 1923 से सामाजिक सुरक्षा की दिशा में हुई प्रगति का विवेचन कीजिए।

उत्तर संकेत—सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत वह सुरक्षा आती है जो एक समाज अपने सदस्यों को विभिन्न प्रकार की जोखिमों जैसे बीमारी, काम के अयोग्य हो जाने, बेकारी, वृद्धापा, मृत्यु व प्रसूति आदि से सुरक्षा प्रदान करने के लिए देता है। अकेला व्यक्ति इन जोखिमों का मुकाबला नहीं कर सकता। अत. सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है। इसमें सामाजिक बीमा व सामाजिक सहायता दोनों कार्यक्रम शामिल होते हैं। पहले कर्मचारियों को प्रीमियम के रूप में धनराशि देनी होती है, जबकि सामाजिक सहायता निशुल्क प्रदान की जाती है।

भारत मे सामाजिक सुरक्षा के लिए निम्न अधिनियम बनाये गये हैं जिनके अन्तर्गत कई प्रकार की जोखिमों के प्रति सुरक्षा प्रदान की गई है। इनका आगे विवेचन किया गया है—

1. मजदूर-क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923—इसके अन्तर्गत मालिक मजदूर को उस स्थिति में मुआवजा देता है जबकि काम करते हुए उसे चोट आ जाए, वह सदैव के लिए अयोग्य हो जाय अथवा उसकी मृत्यु हो जाये। हाल मे यह 1984 में संशोधित किया गया है। यह पहले 1000 ₹ मासिक तक वेतन पाने वाले श्रमिकों पर लागू होता था जो सीमा अब हटा दी गई है। मुआवजे की दरें भिन्न भिन्न होती हैं। इस नियम का पूरी तरह से पालन किया जाना चाहिए। अब मुआवजा आयु से जोड़ा गया है।

2 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948—यह उन स्थायी फैक्ट्रियों पर लागू होता है जो शक्ति का उपयोग करती है और जिनमे 20 या अधिक व्यक्ति नियुक्त होते हैं। इसके अन्तर्गत चिकित्सा-लाभ, बीमारी के दिनों में नकद राशि, प्रसूती लाभ, काम करते समय चोट आ जाने पर मिलने वाला मुआवजा तथा चोट से मृत्यु हो जाने पर आश्रितों को पेंशन देने की व्यवस्था आती हैं। ESI की काफी डिस्पेन्सरियाँ चल रही हैं। अब यह 1600 रुपये मासिक वेतन तक पाने वालों पर लागू हो गया है।

3. कर्मचारी प्रोविडेण्ट फण्ड व विविध प्रोविजन्स अधिनियम, 1952—यह दिसम्बर 1986 को जम्मू-कश्मीर को छोड़कर समस्त भारत के 173 उद्योगों पर लागू हो गया था। यह सरकारी प्रतिष्ठानों व 50 से कम तथा बिना शक्ति की सहायता से चलाए जाने वाले प्रतिष्ठानों पर लागू नहीं होता। साधारणतया मालिक बेसिक मजदूरी व महँगाई भत्ते का $6\frac{1}{4}$ प्रतिशत अंशदान देते हैं जो 123 उद्योगों में 8 प्रतिशत कर दिया गया है। देश में काफी कर्मचारी इस योजना का लाभ उठा रहे

विवादों को रोकने व निपटाने की प्रणाली—भारत में औद्योगिक विवादों को निबटाने की वैधानिक व्यवस्था औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अंतर्गत की गई है जिसे 1956 व 1965 में संशोधित किया गया है। इसमें निम्न व्यवस्थाएँ की गई हैं :

(अ) वर्क्स समितियों की स्थापना—प्रत्येक कारखाने में जहाँ 100 से अधिक श्रमिक काम करते हैं वहाँ एक वर्क्स समिति बनाई जाती है जो मालिकों व मजदूरों के दैनिक मतभेदों को दूर करने में मदद करती है। देश के कई प्रतिष्ठानों में वर्क्स समितियां काम कर रही हैं।

(आ) समझौता अधिकारी, समझौता बोर्ड व जांच-न्यायालय—स्थापित किये जाते हैं। इनका काम दोनों पक्षों में समझौता कराना होता है।

(इ) स्थायी औद्योगिक न्यायालय—समझौते की प्रक्रिया के विफल हो जाने पर मामला औद्योगिक न्यायालय को सौंपा जाता है जिसका निर्णय लागू किया जाता है। अत: 1947 में अनिवार्य पंच-निर्णय (compulsory arbitration) की व्यवस्था की गई थी। स्वर्गीय राष्ट्रपति श्री गिरी ने इसके स्थान पर सामूहिक सौदाकारी (collective bargaining) का समर्थन किया था जिसमें मालिक व मजदूर आपस में विचार विमर्श करते हैं।

1950 में औद्योगिक न्यायालयों के निर्णयों पर अपील सुनने के लिए अपील न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गई थी। 1956 के संशोधन के अनुसार अपील न्यायालय समाप्त कर दिये गए हैं। इस संशोधन के अनुसार निम्न न्यायालय स्थापित हुए हैं—

(i) श्रम अदालतें—ये मजदूरों को हटाने व हड़ताल की वैधानिकता जैसे औद्योगिक विवादों को लेते हैं।

(ii) औद्योगिक न्यायालय—ये मजदूरी, काम के घण्टे, बोनस, छंटनी व आधुनिकीकरण के प्रश्न लेते हैं।

(iii) राष्ट्रीय न्यायालय—इनकी स्थापना राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों व एक से अधिक राज्यों में स्थित औद्योगिक उपक्रमों के मामलों पर विचार करने के लिए की गयी है।

केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्धों की आवश्यक मशीनरी केन्द्रीय मुख्य श्रम-कमिश्नर के संगठन के द्वारा संचालित होती है। सार्वजनिक उपयोगिता सम्बन्धी सेवा प्रतिष्ठानों में समझौते की कार्यवाही चालू करना (आपसी बातचीत के विफल होने पर) अनिवार्य होता है। केन्द्रीय क्षेत्र में विवादों पर निर्णय देने के लिए 7 औद्योगिक न्यायालय व श्रम-न्यायालय हैं। राज्यों में ये अलग से स्थापित किये गए हैं।

सरकार ने ट्रेड यूनियन व औद्योगिक विवाद (संशोधन) बिल 1988 संसद मे पेश किया है जिसमे निम्न बातो पर बल दिया गया है :

(i) औद्योगिक सम्बन्ध आयोगो (IRC) की केन्द्र व राज्यो मे स्थापना करना, (ii) औद्योगिक विवाद अधिनियम की अवहेलना करने पर मालिको को कडी सजा देना (कैद सहित); (iii) अनेक मजदूर-संघो की स्थिति को समाप्त करना; तथा (iv) आन्तरिक नेतृत्व का विकास करना।

सरकार ने इस बिल मे 100 से ऊपर श्रमिकों वाली इकाइयो में एक ट्रेड यूनियन मे कम से कम 10% सदस्यता की शर्त रजिस्ट्रेशन के लिए आवश्यक मानी है ताकि अनेक मजदूर सघ न बनें। लॉक आउट घोषित करने के लिए 14 दिन का नोटिस देना होगा। गैर-कानूनी ले-आफ, छँटनी, लॉक-आउट व फैक्ट्री बन्द करने पर कडी सजा की व्यवस्था की गई है। श्रमिक अपनी छँटनी वगैरा के मामले सीधे श्रम अदालत मे ले जा सकेंगे। श्रम-अदालत के निर्णयो पर अपीलें IRC सुनेंगे।

औद्योगिक विवादो को उत्पन्न होने से रोकने के लिए श्रमिको की दशा सुधारी जानी चाहिए, मुद्रास्फीति को नियन्त्रित किया जाना चाहिए, श्रमिको को प्रबन्ध व लाभ मे हिस्सा देना चाहिए और मालिको-मजदूरो दोनो का दृष्टिकोण बदलना चाहिए। उत्पादन व उत्पादकता को निरन्तर बढाने के लिए औद्योगिक शान्ति स्थापित करना नितान्त आवश्यक है। हमे यथासम्भव समझौतो व ऐच्छिक पंचनिर्णय पर ही अधिक बल देना चाहिए।

प्रश्न 15 भारत के आयात व निर्यात की प्रमुख मदो का विवेचन कीजिए तथा व्यापार-सन्तुलन की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए। सरकार को निर्यात-संवर्द्धन के लिए कौन से उपाय काम मे लेने चाहिए ?

उत्तर-संकेत—हाल के वर्षों मे भारत के आयात व निर्यात मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। 1988-89 मे आयात की राशि 27693 करोड रु. तथा निर्यात की 20281 करोड रु रही, जिससे व्यापार मे 7412 करोड रु. का घाटा हुआ जो पिछले वर्ष से लगभग 700 करोड रु. अधिक था।

आयात की मदें

1. पूँजीगत माल—1987-88 मे 6285 करोड रु. का आयात किया गया इसमे मशीनरी, परिवहन-उपकरण वगैरा आते हैं। जो पिछले वर्ष से 15% ज्यादा था।

2. पेट्रोल व पेट्रोल-पदार्थ—इस मद के आयात पर 1987-88 मे 4083 करोड रु. तथा 1986-87 मे 2797 करोड रु. व्यय किये गये।

3 अनाज व अनाज से बने पदार्थ—1987-88 में अनाज व इनसे निर्मित पदार्थों के आयात पर 33 करोड़ रु व्यय किये गये, जबकि 1975 76 में 1343 करोड़ रु व्यय किये गये थे। देश की खाद्य स्थिति ठीक रहने से अनाज के आयातों में कमी कर सकना सम्भव हो सका है। लेकिन 1988 में पुन: आयात बढ़ाना पड़ा है।

4 उर्वरक व उर्वरक सामान—1987-88 में तैयार व क्रूड उर्वरकों के आयात की कुल राशि 310 करोड़ रु रही जो पिछले वर्ष से काफी कम थी।

5 लोहा व इस्पात—1987 88 में लोहे व इस्पात के आयात पर 12 3 करोड़ रु. व्यय किये गये जो पिछले वर्ष से कम थे।

निर्यात की मदें

1987 88 में भारत के निर्यात पिछले वर्ष की तुलना में 26 4% बढ़े। 1973-74 से 1976-77 तक निर्यातों में वार्षिक औसत वृद्धि-दर 27% रही थी। विश्व के बाजारों में भारतीय माल के भाव बढ़ने से यह उपलब्धि सम्भव हो सकी थी। लेकिन 1985 86 में निर्यात पिछले वर्ष से थोड़े कम रहे थे।

1987-88 में निर्यातों में चार प्रमुख वस्तुओं की क्रमानुसार स्थिति इस प्रकार रही:

	करोड़ रुपये
1 दस्तकारी का माल	3253
2 रेडीमेड पोशाकें	1792
3. इन्जीनियरी का माल	1433
4 चमड़ा व चमड़े की वस्तुए (जूतों सहित)	1149

भारत के परम्परागत निर्यातों में पटसन के माल व चाय का स्थान आता है। निर्यातों में विशेष वृद्धि इन्जीनियरी के माल, खली, सूती वस्त्र व रेडीमेड पोशाकों में हुई है। मछली व मछली से तैयार माल, तम्बाकू तथा दस्तकारी के माल के निर्यातों में काफी वृद्धि हुई है। 1987-88 में निर्यातों में वृद्धि दर 26 4% तथा 1988 89 में 28 8% रही। भविष्य में भी निर्यातों में वार्षिक वृद्धि-दर काफी ऊँची रखनी होगी ताकि भुगतान-असंतुलन से उत्पन्न कठिनाइयों को कम किया जा सके।

निर्यात बढ़ाने के लिए सुझाव—(1) निर्यात के योग्य वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जाय और उन्हें प्रतिस्पर्धात्मक मूल्यों पर विश्व के बाजारों में भेजा जाय, (2) निर्यात शुल्कों में आवश्यकतानुसार कमी की जाय, (3) निर्यातकों को आर्थिक सहायता व कच्चे माल के आयात की सुविधा दी जाय, (4) भविष्य में इन्जीनियरी के माल, दस्तकारी के सामान, चमड़े की वस्तुएँ, सामुद्रिक पदार्थ, आदि का निर्यात बढ़ाया जाय।

प्रश्न 16. राजस्थान की खनिज-सम्पदा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

उत्तर—संकेत—राजस्थान की खनिज-स्थिति—राजस्थान खनिज पदार्थों का अजायबघर (Museum of minerals) माना गया है । भारत में इसका स्थान बिहार के बाद आता है । देश में सीसा-जस्ता, रॉक-फॉस्फेट, पन्ना व गारनेट की सम्पूर्ण उत्पत्ति राजस्थान में ही केन्द्रित है । राज्य में एस्बेस्टस घीया पत्थर, फेल्सपार चांदी एवं अभ्रक का काफी उत्पादन होता है ।

खनिज पदार्थों का कृषिगत विकास (कीटनाशक दवाइयाँ, औजार आदि) औद्योगिक विकास विदेशी मुद्रा अर्जित करने व बचाने, रोजगार बढ़ाने तथा पिछड़े क्षेत्रों का विकास करने की दृष्टि से काफी महत्व है ।

राज्य में 35 प्रकार के खनिज एवं इमारती पत्थर व संगमरमर आदि पाये जाते हैं । राजस्थान में तांबा, सीसा, जस्ता, टंगस्टन एस्बेस्टस, बेरलाइट, अभ्रक, फ्लर्स अर्थ (मुल्तानी मिट्टी), जिप्सम, क्वार्ट्ज व कई प्रकार की मिट्टियाँ (चाइना क्ले) आदि मिलते हैं । बेराइटस खनिज पेण्ट कागज व रबड़ उद्योग में काम आता है । वोल्स्टोनाइट पदार्थ चीनी मिट्टी के बर्तन फर्श व टाइलों में काम आता है । ओकर खनिज लाल व पीली किस्म का होता है । राजस्थान में डूंगरपुर जिले में मांडो-की-पाल नामक स्थान पर फ्लोर्सपार बेनिफिशियेशन प्लाण्ट (संयंत्र) लगाया गया है ।

फरवरी, 1975 में खेतड़ी में तांबा गलाने के संयन्त्र का उद्घाटन किया गया था । उदयपुर जिले में झामर-कोटरा स्थान पर रॉक-फॉस्फेट के प्रमाणित भण्डार 3 7 करोड़ टन तक के आंके गये हैं । यहाँ 1969 में उत्पादन प्रारम्भ हो गया था । इससे फॉस्फेट-युक्त उर्वरक के उत्पादन में वृद्धि हुई है । मई 1983 में जैसलमेर जिले के घोटारू नामक स्थान पर प्राकृतिक गैस का विशाल भण्डार पाया गया है । इस गैस से सीमेंट प्लाण्ट व विद्युत-गृह स्थापित किये जा सकते हैं । मार्च 1984 की सूचना के अनुसार जैसलमेर से करीब 145 किलोमीटर दूर सादेवाला में तेल का अपार भण्डार मिला है । बीकानेर, नागौर व बाड़मेर जिलों में लिग्नाइट (भूरे कोयले) के काफी बड़े भण्डार आंके गये हैं ।

राज्य में खनिज पदार्थों के विकास के लिए सस्ती विद्युत, परिवहन व जल के विकास की आवश्यकता है । खानों के पट्टे देने के साथ-साथ इनके उपयोग पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है । खनिज पदार्थों का पता लगाने, इन्हें निकालने, गलाने व सम्बन्धित उद्योगों का विकास करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधनों का उपयोग करके एक दीर्घकालीन खनिज-विकास योजना कार्यान्वित की जानी चाहिए । इस सम्बन्ध में 1979 से राजस्थान राज्य-खनिज विकास-निगम (RSMDC) सक्रिय रूप में काम कर रहा है । भारत सरकार ने रामपुरा-आगुचा में सीसा व जस्ता के भण्डार पर आधारित 366 करोड़ रु की स्मेल्टिंग परियोजना स्वीकृत की है । इससे

राज्य मे सीसे व जस्ते को गलाने की क्षमता काफी बढ जायगी। इस पर काम 20 नवम्बर 1988 से चालू हो गया है।

हाल मे जैसलमेर जिले के ग्राम सोनू (Sonu) मे लाइमस्टोन के प्रचुर भण्डार मिले हैं जिला पाली मे टंगस्टन पाया गया है जो रक्षा-उत्पादन मे काम आता है।

बीकानेर जिले म बरसिंहसर मे लिग्नाइट के भण्डार पाये गये हैं जिसके आधार पर एक थर्मल पावर प्लांट लगाया जा सकता है। गोटन मे सफेद सीमेंट का कारखाना लगाया जा चुका है। साथ में 2 बड़े पोर्टलैण्ड सीमेंट के कारखाने एव एक 'ऑयल-वेल" (oil well) सीमेंट तथा "सल्फेट रजिस्टेंट" (sulphate resistant) सीमेंट उत्पादन करने वाला कारखाना स्थापित करने की योजना है जो भारत मे अपनी तरह का एक मात्र कारखाना होगा। राज्य म निम्न श्रेणी के रॉक फॉस्फेट को उच्च श्रेणी मे बदलने की परियोजना चालू की जायेगी।

राजस्थान म दरीबा, राजपुरा, वेयुमनी और पुरबनेरा के कई हिस्सों मे तांबा, सीसा व जस्ता के भण्डार मिल हैं। राजस्थान के ग्रीनस्टोन इलाके मे तांबा और सोने के भण्डारो का पता लगाने मे सफलता मिली है।

परिशिष्ट-2

राजस्थान की अर्थव्यवस्था पर वस्तुनिष्ठ व लघु प्रश्नोत्तर

(Objective and Short Questions and Answers on Rajasthan's Economy)

नीचे राजस्थान की अर्थव्यवस्था से जुड़े प्रश्नो के वस्तुनिष्ठ व लघु उत्तर प्रस्तुत किये गये हैं तथा उन्हे आसानी से स्मरण रखा जा सके तथा उनको एक स्थान पर एक साथ पढकर राज्य के आर्थिक विकास के सम्बन्ध मे व्यापक, सही व अधिक सुनिश्चित जानकारी प्राप्त की जा सके। प्रश्नो के उत्तरों मे आकडो के अलावा विषय की मूल बातो को स्पष्ट करने का भी प्रयास किया गया है। आशा है इस परिशिष्ट का अध्ययन सभी के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा।

1. क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का भारत मे कौन-सा स्थान है ?
   (अ) तृतीय, (ब) द्वितीय, (स) चतुर्थ, (द) प्रथम [ब]
   [मध्य प्रदेश के बाद]
2. राजस्थान का क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल का कितना प्रतिशत है ?
   (अ) 15% (ब) लगभग 17% (स) लगभग 10% (द) 9% [स]
3. राजस्थान की जनसख्या भारत की जनसख्या का कितना अश है ?
   (अ) 10% (ब) 4% (स) 13% (द) 5% [द]
4. 1981 मे राजस्थान की जनसंख्या कितनी थी ?
   (अ) 3 34 करोड (ब) 3 43 करोड (स) 4·3 करोड
   (द) 4·32 करोड [ब]
5. 1971-81 के दशक मे राजस्थान की जनसंख्या की वृद्धि-दर बताइए ?
   (अ) 35% (ब) 26% (स) 33% (द) 25% [स]
6. राजस्थान मे 1981 की जनगणना के अनुसार प्रति वर्ग किलोमीटर जनसख्या का घनत्व कितना है ?
   (अ) 110 व्यक्ति (ब) 104 व्यक्ति (स) 200 व्यक्ति
   (द) 100 व्यक्ति [द]

7 राजस्थान में ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों मे साक्षरता-अनुपात क्या है ?

(अ) 25%   (ब) 15%   (स) 5·5%   (द) 5%   [स]

8. राज्य मे 1971-81 की अवधि मे किस जिले मे जनसंख्या की सर्वाधिक वृद्धि हुई व कितनी हुई ?

उत्तर—बीकानेर जिले में 48·1%

9 राज्य मे 1971 81 की अवधि मे किस जिले मे जनसंख्या की न्यूनतम वृद्धि हुयी व कितनी हुयी ?

उत्तर—भीलवाड़ा जिले मे, 24 2%

10. राजस्थान की जनसंख्या के लिए 2001 मे कितना होने का अनुमान प्रस्तुत किया गया है ?

(अ) 6 करोड   (ब) 5·6 करोड   (स) 7 करोड

(द) 5 करोड   [ब]

(स्रोत : Population Projections of Rajasthan, DES, Jaipur, 1987)

11. राजस्थान मे बेरोजगारी की स्थिति स्पष्ट कीजिए। (लगभग 150 शब्दों मे)

उत्तर—राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण के 32वें दौर के अनुसार 1977-78 की अवधि के लिए दैनिक स्टेटस के अनुसार राजस्थान मे बेरोजगारी की दर (श्रम-शक्ति मे अनुपात) 2 99% थी। उस वर्ष समस्त भारत के बेरोजगारों का 1·92% राजस्थान में पाया गया था।

एन एस एस के 38वें दौर (जनवरी-दिसम्बर 1983) की रिपोर्ट के अनुसार राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों मे पुरुष-वर्ग मे बेरोजगारों का प्रतिशत दैनिक स्टेटस के अनुसार 5 वर्ष व अधिक के कुल व्यक्तियों का 2·16% तथा महिला-वर्ग मे 0 64% पाया गया।[1] इस प्रकार राजस्थान मे बेरोजगारी की स्थिति इतनी गम्भीर नहीं है जितनी यह केरल, तमिलनाडु आन्ध्र-प्रदेश व पश्चिमी बगाल मे पायी गयी है। "दैनिक स्टेट की धारणा" म एक व्यक्ति की काम करने की स्थिति पिछले 7 दिनों मे प्रतिदिन के लिए रिकार्ड की जाती है। प्रति दिन कम से कम एक घण्टे से चार घण्टे तक काम करने वाला व्यक्ति आधे दिन कार्यरत माना जाता है और चार घण्टे या इससे ज्यादा काम करने वाला व्यक्ति पूरे दिन कार्यरत माना जाता है।

---

1. NSSO Report No 341, November 1987, सामान्य स्टेटस (usual status) के अनुसार पुरुषों के लिए 0·33% व स्त्रियों के लिए 0 05% थी (समायोजित) (सब्सिडियरी स्टेटस को छोड़कर)।

12. राजस्थान मे बेरोजगारी को दूर करने के सम्बन्ध मे सरकारी उपाय लिखिए।

उत्तर—आर्थिक विकास के फलस्वरूप बेरोजगारी कम होगी। एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के मार्फत स्वरोजगार के अवसरो मे वृद्धि की जा रही है। NREP, RLGEP, ट्राइसम व अकाल-राहत सहायता कार्यक्रमो के माध्यम से रोजगार दिया जाता है। 1989 90 मे ग्रामीण निर्धन-परिवारो मे कम से कम एक व्यक्ति को वर्ष मे 00 दिन का रोजगार देने के लिए जवाहर रोजगार योजना प्रारम्भ की गयी है जिसमे NREP व RLEGP को मिला दिया गया है।

13 राजस्थान मे निर्धनता की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1977-78 के भावो पर प्रति व्यक्ति प्रति माह 65 रु. (ग्रामीण क्षेत्रो मे) तथा 75 रु (शहरी क्षेत्रो मे) से कम व्यय करने वाले व्यक्ति निर्धन माने गये। 1983-84 के भावो पर ये सीमाएं ग्रामीण क्षेत्रो के लिए 101 रुपये 80 पैसे तथा शहरी क्षेत्रो के लिए 117 रुपये 0 पैसे कर दी गयी। सातवी योजना मे प्रति परिवार प्रति वर्ष व्यय की सीमा 6400 रुपये रखी गयी है जिससे नीचा व्यय करने वाले परिवार निर्धन माने गये है। पहले यह सीमा 3500 रुपये थी।

सातवी योजना के टेक्नीकल नोट (योजना आयोग, जून 1986) के अनुसार राजस्थान मे 1977-78 मे निर्धनता-अनुपात 33 6% था जो 1983-84 मे बढ़कर 34 3% हो गया। इस अवधि मे समस्त भारत के लिए यह 48 3% से घट कर 37·4% पर आ गया था। इस प्रकार भारत मे निर्धनता का अनुपात घटा, लेकिन राजस्थान मे यह थोड़ा बढ़ा था। डा. सी एच. हनुमन्थ राव के एक अध्ययन के अनुसार राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रो मे उपरोक्त अवधि मे यह 33·5% से बढ़कर 36 6% हो गया था अर्थात् लगभग 3% बढ गया था जो वास्तव मे एक चिंता का विषय है; क्योकि अन्य सभी राज्यो मे यह घटा है। केलोरी को आधार-स्वरूप लेने पर राजस्थान मे निर्धनता-अनुपात नीचा आया है क्योकि बाजरे मे केलोरी की मात्रा अधिक पायी जाती है जो यहाँ का मुख्य अनाज है।

14 राजस्थान मे प्रायः अकाल क्यो पडते हैं ?

उत्तर—पिछले चार वर्षों मे, 1984-85, 1985 86, 1986-87 तथा 1987-88 मे लगातार राज्य मे वर्षा का अभाव रहा है। वर्षों से चले आ रहे हवा व पानी से मिट्टी के कटाव से उपजाऊ भूमि बेकार होती गई है। अनियन्त्रित चराई वृक्षो की कटाई व जल-प्रबन्ध के अभाव से परिवश-असन्तुलन (ecological imbalance) उत्पन्न हो गया है। 'वृक्ष नही, पानी नहीं', 'वृक्ष नही, उपजाऊ भूमि नहीं' का दुष्चक्र चल रहा है। जल, वृक्ष, मिट्टी आदि के परस्पर सतुलन बिगड गये हैं जिससे मनुष्य व पशु दोनो पर भारी विपदा आ गयी है। 1986-87 व 1987-88 मे सभी 28 जिले अकालग्रस्त घोषित किये गये थे।

15 सरकार अकाल राहत सहायता मे कौन-से कार्यक्रम चलाती है ?

उत्तर—अकाल राहत-विभाग, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत सार्वजनिक निर्माण विभाग, वन-विभाग, तथा पंचायतो आदि के मार्फत विविध प्रकार के निर्माण-कार्यों पर (स्कूल भवनो, सडकों, तालाबो आदि का निर्माण या मरम्मत) लोगो को रोजगार उपलब्ध किया जाता है। काम के बदले मजदूरी का कुछ अंश अनाज के रूप मे दिया जाता है। पीने के पानी की व्यवस्था टंकियों, टैंकरो, ट्रको, बैलगाडियो, ऊँटगाडियो वगैरा का उपयोग करके की जाती है। पशुओ के लिए चारे की सप्लाई बढाई जाती है। चारे की खरीद विभिन्न राज्यो से करके जरूरत के केन्द्रो मे पहुँचने की व्यवस्था की जाती है। चारे पर परिवहन सब्सिडी दी जाती है।

16. 1987-88 के अकाल की विशेष बातो का उल्लेख करें।

उत्तर—इससे सभी 27 जिले प्रभावित हुए। प्रभावित गाँवों की सख्या 36252 तथा जनसख्या 3·17 करोड रही। राज्य सरकार ने 7·54 करोड रुपये की भू-राजस्व की वसूली रोक दी। पिछले वर्ष की भाँति इस वर्ष भी राज्य के सभी जिले अकालग्रस्त घोषित किये गये। कृषिगत उत्पादन पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पडा है। 1987-88 मे खाद्यान्नो का उत्पादन घट कर 48 लाख टन के स्तर पर आ गया था।

17 राजस्थान के प्रमुख खनिजो के नाम लिखिए।

उत्तर—ताँबा, सीसा व जस्ता, टंगस्टन, लाइमस्टोन, संगमरमर का पत्थर, अभ्रक, जिप्सम, भवन-निर्माण के पत्थर, रॉक-फोस्फेट, मुल्तानी मिट्टी फ्लोर्सपार, आदि।

18. हाल के वर्षों मे राजस्थान मे कौन-से खनिज-भण्डारो का पता चला है ?

उत्तर—जैसलमेर जिले मे घोटारू नामक स्थान पर प्राकृतिक गैस का विशाल भण्डार पाया जाता है। रामपुरा आगुचा मे जस्ते व सीसे के विपुल भण्डार मिले हैं बीकानेर जिले मे बरसिंहपुर मे लिग्नाइट के भण्डार मिले है जिनसे थर्मल पावर प्लान्ट लगाया जा सकता है। चित्तौडगढ जिले के गाँव केसरपुरा (प्रतापगढ) के निकट हीरे की खोज उल्लेखनीय है। बीकानेर, नागौर व बाडमेर जिलो में लिग्नाइट के भण्डार मिले हैं। जैसलमेर जिले में लाइमस्टोन तथा पाली जिले में टंगस्टन के भण्डार प्राप्त हुए हैं।

19 राजस्थान में सकल कृषिगत क्षेत्र व सिंचित क्षेत्र की मात्रा बताइए।

उत्तर—1986-87 के अनुसार कुल कृषित क्षेत्रफल 176 4 लाख हैक्टेयर था जो कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र का लगभग 52% था। इसी वर्ष सकल सिंचित क्षेत्रफल

43 5 लाख हैक्टेयर रहा जो कुल कृषित क्षेत्रफल का 24% था। 1960-61 में यह 15% था। इस प्रकार कुल सिंचित क्षेत्रफल बढ़ा है।

2 . राजस्थान की खरीफ की फसलों के नाम लिखिए—

उत्तर—धान, जुवार, मक्का, बाजरा, खरीफ की दालें जैसे तुर, मूंग, मोठ, चोला, उड़द।

21. राजस्थान को रबी की फसलों के नाम लिखिए—

उत्तर—गेहूँ जौ चना, रबी की अन्य दालें जैसे मसूर की दाल, आदि।

22 राजस्थान में गेहूं बाजरा, व धान की खेती किन जिलों में प्रमुखतया की जाती है?

उत्तर—(अ) गेहूँ—गंगानगर, अलवर कोटा, भरतपुर, सवाई माधोपुर व चित्तौड़गढ़।

(आ) बाजरा—अलवर, भरतपुर जयपुर झुन्झनूं, नागौर, जालोर, जोधपुर, पाली, सवाई माधोपुर, सीकर व टोंक।

(इ) धान—गंगानगर, कोटा, डूंगरपुर, भरतपुर, व झालावाड़।

23. राजस्थान मे व्यापारिक फसलों या नकद फसलों के नाम लिखिए।

उत्तर—तिलहन-तिल, सरसों, अलसी, मूंगफली, अरण्डी, सोयाबीन आदि। कपास, गन्ना तम्बाकू, लालमिर्च, आलू, धनिया, जीरा आदि।

24 राजस्थान की खाद्य फसलों की विशेषता का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—कुल कृषित क्षेत्रफल के आधे भाग पर अनाजों की फसलें होती हैं। अनाजों में सर्वाधिक क्षेत्रफल बाजरे के अन्तर्गत पाया जाता है, यह अनाजों के क्षेत्रफल के आधे भाग में, अथवा कुल कृषित क्षेत्रफल के लगभग 25% या 1/4 भाग पर बोया जाता है। 1986-87 में बाजरा 52·8 लाख हैक्टेयर में बोया गया तथा कुल कृषित क्षेत्रफल 176 4 लाख हैक्टेयर था। इस प्रकार इस वर्ष तो बाजरे के अन्तर्गत क्षेत्रफल कुल कृषित क्षेत्रफल का 30% रहा।

25. राजस्थान में योजनाकाल में खाद्यान्न के उत्पादन में क्या परिवर्तन हुए?

उत्तर—राजस्थान में खाद्यान्नों का उत्पादन 1950-51 में 30 लाख टन से बढ़कर 1983-84 में लगभग 1 करोड़ टन हो गया था। इसमें वार्षिक उतार-चढ़ाव बहुत आते रहे हैं। 1987 88 के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन का अनुमान 48 लाख टन लगाया गया है। 1986-87 के लिए संशोधित अनुमान 68 लाख टन लगाया गया है। 1988-89 के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन का अनुमान 100 75 लाख टन (1 करोड़ टन से अधिक) प्रस्तुत किया गया है। प्रायः खरीफ की फसल अकाल व सूखे का शिकार हो जाती है जिससे उत्पादन घट

जाता है। पिछले वर्षों में रबी में खाद्यान्नों का उत्पादन खरीफ के खाद्यान्नों से अधिक रहा है।

26. राजस्थान में कृषि-गत इन्पुटों पर आधारित उद्योगों के नाम लिखिए।

उत्तर—(i) खाद्य-पदार्थ—दुग्ध-पदार्थ, फल व सब्जियाँ, (डिब्बों के अचार-मरब्बा) आटा-मिलें दाल-मिलें बेकरी, चीनी, गुड, देशी खाड. वनस्पति घी, खाद्य-तेल, वगैरा। इसी में जोधपुर, व नागौर क्षेत्र की मेथी, पाली की महन्दी, पुष्कर क्षेत्र के फल सब्जी व गुलाब के फूल बाँसवाडा का आम-पापड व बीकानेर के पापड-भुजिया आते हैं।

(ii) तम्बाकू पदार्थ—जरदा, बीडी।

(iii) कॉटन प्रोसेसिंग व कॉटन वस्त्र—जिनिंग व प्रेसिंग फैक्ट्रियाँ, कताई व बुनाई, रगाई छपाई व ब्लीचिंग (बुनाई के लिए कई प्रकार की टेक्नोलोजी प्रयुक्त होती है जैसे हथकरघा शक्ति करघा, मिल करघा, वगैरा)

(iv) रेशम का उद्योग।

(v) टेक्सटाइल वस्तुएँ—गलीचे, निटिंग मिलें, गार्मेंट, रेनकोट, कपडे के जूते।

एग्रो उद्योगों (agro industries) के व्यापक अर्थ में पशु-आधारित व वन-उद्योगों के अलावा कृषि के लिए इन्पुट तैयार करने वाले उद्योगों जैसे उर्वरक, कीट-नाशक दवाइयाँ, ट्रैक्टर, कृषिगत औजार आदि को भी शामिल किया जाता है। लेकिन संकीर्ण अर्थ में कृषि के कच्चे माल पर आधारित उद्योग लिए जाते हैं।

27 राजस्थान में सूती वस्त्र मिलों के स्थान बताइए।

उत्तर—ये पाली, भीलवाडा, किशनगढ, ब्यावर, श्री गंगानगर, जयपुर, उदयपुर, कोटा व भवानी मंडी में स्थित हैं। वर्तमान में इनकी संख्या 23 बतायी गई है। इनमें से 17 निजी क्षेत्र में, 3 सार्वजनिक क्षेत्र में व 3 सहकारी क्षेत्र में हैं।

28. राजस्थान के पशुधन की विशेषता बताइए तथा इस पर आधारित उद्योगों के नाम लिखिए।

उत्तर—1983 में राज्य में पशुओं की संख्या 4·95 करोड हो गयी थी। राज्य में पशुओं की कुछ सर्वोत्तम नस्लें पायी जाती हैं। राजस्थान में भेडों की उत्तम नस्लें पायी जाती हैं, जैसे बीकानेर की नाली, चोकला व मागरा, जैसलमेर की जैसलमेरी व जोधपुर की मारवाडी।

पशुधन पर आधारित उद्योग—डेयरी उद्योग दूध व दूध से बने पदार्थ, ऊन, मांस, चमडा, हड्डी। राज्य में पशुधन का विकास करके लोगों को रोजगार दिया

जा सकता है व आमदनी बढ़ायी जा सकती है। ये कृषि के सहायक उद्योगों के रूप मे भी विकसित किये जा सकते है।

29 राजस्थान की बहुउद्देश्यीय नदी घाटी योजनाओ के नाम लिखिए।

उत्तर—राजस्थान का निम्न बहुराज्यीय बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाओ मे हिस्सा है—

(i) भाखड़ा-नागल (पजाब, हरियाणा व राजस्थान)

(ii) चम्बल (मध्य-प्रदेश व राजस्थान)

(iii) व्यास (पजाब हरियाणा व राजस्थान)

(iv) माही बजाजसागर (गुजरात व राजस्थान)।

30 माही बजाजसागर परियोजना के बारे म आप क्या जानते हैं ?

उत्तर—इसका निर्माण बाँसवाडा के समीप किया गया है। यह कुल 80 हजार हैक्टेयर मे सिंचाई कर सकेगी। पावर हाउस न 1 पर 25-25 मेगावाट की दो इकाइयाँ जनवरी, 1986 मे चालू कर दी गई हैं।

पावर हाउस न 2 पर 45-45 मेगावाट की दो इकाइयाँ बनायी जा रही हैं। सातवी योजना मे पूर्ण हो जाने पर राजस्थान मे पावर सप्लाई भी बढ जायगी।

31 राजस्थान की वृहद सिचाई की परियोजनाएँ कौन-कौन सी हैं ? इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना की प्रगति का सक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—राजस्थान की वृहद सिंचाई की परियोजनाओ (जिनके नीचे कमाड क्षेत्र 10 हजार हैक्टेयर से अधिक होगा) में निम्नलिखित हैं—

1. इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना,

2 गुडगाव 3 ओखला जलाशय 4. नर्बदा, 5 जासम 6 थीन बाघ (पजाब) 7. नोहर फीडर 8 सिधमुख 9 बीसलपुर (जिला टोक) इन सभी पर कार्य प्रगति पर है।

इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना मे मुख्य नहर व्यास-सतलज के संगम पर हरीके बाध से प्रारम्भ होती है। इसे बाडमेर मे गडरा रोड तक ले जाया जायगा। फीडर की लम्बाई 204 किलोमीटर है तथा मुख्य नहर की लम्बाई 445 किलोमीटर है। इस पर लगभग 30 वर्षों से कार्य किया जा रहा। मुख्य नहर 1 जनवरी 1987 तक अपने सुदूर छोर तक पहुँचा दी गई है। इसके पूरा होने पर 13 88 लाख हैक्टेयर भूमि मे सिचाई हो सकेगी तथा अनाज, गन्ना, कपास तिलहन, आदि की पैदावार बढ़ेगी। द्वितीय चरण की स्कीम मे साहवा, गजनेर, कोलायत, फलोदी, पोकरन व बाडमेर लिफ्ट सिचाई योजनाओ (जलोत्थान योजनाओ के द्वारा 60 मीटर ऊँचाई तक नहरी पानी को ऊँचा उठाकर सिचाई की व्यवस्था की जायेगी।

1986-87 में इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना से 5·28 लाख हैक्टेयर में सिंचाई की गई। जनवरी 1988 में योजना आयोग की बैठक में यह संकेत दिया गया कि 1988-89 तथा 1989-90 की अवधि के लिए प्रति वर्ष इस परियोजना के लिए 125 करोड़ रुपये उपलब्ध किये जायेंगे।

इस परियोजना को दो चरणों में पूरा किया जा रहा है। प्रथम चरण की लागत 255 करोड़ रुपये तथा दूसरे चरण की लागत 931 करोड़ रुपये रखी गयी है (कुल 1186 करोड़ रुपये)। वितरण-प्रणाली की दोनों चरणों की लम्बाई 7875 किलोमीटर होगी, जिसमें बहाव-क्षेत्र (flow area) व लिफ्ट क्षेत्र क्रमशः 5568 किलोमीटर व 2307 किलोमीटर होंगे (स्रोत, इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना, फरवरी, 1988, इन्दिरा गाँधी नहर बोर्ड द्वारा जारी)।

32 थार मरुस्थल (Thar desert) का प्रदेश बताइए।

उत्तर—अरावली के पश्चिम व उत्तर-पश्चिम का प्रदेश बालू रेत से भरा है। इसका सुदूर पश्चिमी भाग (western-most part) "थार मरुस्थल" कहलाता है जो पाकिस्तान की सीमा पर कच्छ के रन के सहारे-सहारे पंजाब तक फैला है। बाड़मेर, जैसलमेर व बीकानेर के कुछ भागों में बड़े-बड़े टीले पाये जाते हैं। यहाँ के निवासियों को शुष्क जीवन का सामना करना पड़ता है। यह भारत का सबसे अधिक गर्म प्रदेश माना जाता है। इसमें कहीं हरियाली नजर नहीं आती। भीषण जलवायु, कम वर्षा, सुदूर प्रदेश व कठोर जीवन मरुस्थल की विशेषताएँ हैं।

33. राजस्थान के मरुस्थलीय जिलों के नाम बताइए।

उत्तर—राज्य के निम्न 11 जिले मरुस्थलीय या रेगिस्तानी जिले कहलाते हैं। इनमें राज्य का 60% क्षेत्रफल तथा 40% जनसंख्या शामिल होते हैं। ये जिले इस प्रकार हैं—जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, गंगानगर, नागौर, चूरू, पाली जालोर, सीकर तथा झुन्झुनूं।

34. मरु-विकास-परियोजनाओं को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—मरु विकास परियोजनाओं (DDP) का उद्देश्य रेगिस्तान की मार्च या फैलाव को रोकना तथा मरु प्रदेश का आर्थिक विकास करना है 1985-86 से यह पूर्णतया केन्द्र-चालित-कार्यक्रम में परिवर्तित कर दिया गया। इसके अन्तर्गत निम्न कार्य प्रमुख हैं: भू संरक्षण, वानिकी या वन-विकास, भूतल जल विकास (ground water development), भेड़ व ऊन-विकास, पेयजल स्कीम व लघु सिंचाई की योजनाएं। 1988-89 के लिए मरु विकास कार्यक्रम के लिए 37 करोड़ रु. के व्यय का प्रावधान किया गया है।

35 राजस्थान के सूखा-सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम का परिचय दीजिए।

उत्तर—इसे DPAP भी शामिल माना जाता है। यह 1970-71 में प्रारम्भ किया गया था। इसके अन्तर्गत पहले कई जिले शामिल किये गये थे, लेकिन छठी

योजना मे इसे निम्न प्रदेशो तक सीमित कर दिया गया क्योंकि अन्य प्रदेशो मे मरु-विकास-कार्यक्रम चालू हो गया। DPAP के क्षेत्र इस प्रकार है: डूंगरपुर व बासवाडा के जनजाति के जिले, उदयपुर जिले की भीम, देवगढ व खेरवाडा तहसीलें तथा अजमेर जिले की ब्यावर तहसील। DPAP के अन्तर्गत भू-सरक्षण, लघु सिंचाई व वृक्षारोपण पर प्रमुख रूप से बल दिया जाता है। इस कार्यक्रम के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार व आमदनी बढायी जाती है। *1988-89 म इस कार्यक्रम पर 5 करोड रु के व्यय का प्रावधान किया गया था।* इसके *अन्तर्गत कुल 30 खण्ड* (blocks) हैं। DDP व DPAP कार्यक्रमो मे पचायतो का अधिक सहयोग लिया जाना चाहिए।

36 राजस्थान के सन्दर्भ मे व्यर्थ भू-खण्डो (wastelands) की समस्या का रूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1986-87 मे राजस्थान म लगभग 57 5 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल मे कृषियोग्य व्यर्थ भू-खण्ड थे, जो कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र का 17% अश था। व्यर्थ भू-खण्ड व परती भमि का योग 30% था। परती भूमि किन्ही कारणो से बिना काश्त के छोड दी जाती है। व्यर्थ भू-खण्डो के कई रूप होते है जैसे कन्दराएँ व गहरी पतली घाटियाँ (ravines), बालू रेत के टीले, जलमग्न क्षेत्र, क्षारयुक्त व लवणयुक्त भू-खण्ड, *जनजाति क्षेत्रो मे झूम खेती वाले भूखण्ड, आदि। व्यर्थ भू-खण्डो की समस्या के उग्र होने का कारण अत्यधिक चराई, वृक्षो को अधाधुध ढग से काट डालना तथा फलस्वरूप परिवेश-सतुलन को नष्ट कर डालना है।* भूमि का 'कवर' हट जाने से मिट्टी का कटाव प्रारम्भ हो जाता है। वन-विभाग, रेवेन्यू-विभाग, व पचायतो को व्यर्थ भूखण्डो का उपयोग करके पशुओ के लिए चारे, ग्रामीणो के लिए जलाने की लकडी उद्योगो के लिए कच्चे माल का उत्पादन बढ़ाना चाहिए। राजस्थान में व्यर्थ भूखडो की समस्या को हल करने हेतु राज्य भूमि विकास निगम की स्थापना की गई है। व्यर्थ भूखण्डो का सर्वेक्षण कराया जाना चाहिए तथा इनके सदुपयोग के कार्यक्रम बनाये जाने चाहिए ताकि ग्रामीण जनता पशु आदि लाभान्वित हो सकें।

37 *राजस्थान में सीमेंट, चीनी, सिन्थेटिक यार्न व रसायन-उद्योगो के विभिन्न स्थान बताइए।*

उत्तर—(अ) राजथान मे सीमेन्ट के कारखाने निम्न स्थानो में है :—

सवाई माधोपुर, लाखेरी चित्तौडगढ, उदयपुर, निम्बाहेडा गोटन (नागौर) (सफेद सीमेन्ट सयत्र), मोडक (कोटा) बनास (सिरोही) ब्यावर तथा कोटा। इस प्रकार सफेद सीमेंट सहित राज्य मे सीमेंट की 10 बडी इकाइयाँ हैं।

मिनी सीमेंट प्लान्ट सिरोही (पिडवाडा), बासवाडा व कोटपूतली मे स्थित हैं। राजस्थान मे सीमेंट उद्योग के विकास की भावी सम्भावनाएँ भी है।

(आ) चीनी—भूपालसागर (चित्तौड़गढ़), श्रीगंगानगर, व केशोरायपटना। इस प्रकार राज्य में चीनी के 3 बड़े कारखाने चल रहे हैं।

(इ) सिन्थेटिक यार्न—बांसवाड़ा, बहरोड़, डूंगरपुर, रींगस, जोधपुर, आबू-रोड उदयपुर, अलवर, गुलाबपुरा, (रीको द्वारा संयुक्त क्षेत्र व सहायता प्राप्त क्षेत्रों में)

(ई) रसायन-उद्योग—डीडवाना में रसायन वर्क्स सांभर सॉल्ट्स, सांभर, श्री राम फर्टिलाइजर्स, कोटा, उदयपुर फोस्फेट्स एण्ड फर्टिलाइजर्स उदयपुर, राजस्थान एक्सप्लोजिव्स व केमिकल्स लि., धौलपुर (विस्फोटक (detonators) बनाता है), मोदी अल्केलीज एण्ड केमिकल्स लि., अलवर, हिन्दुस्तान जिंक लि., देबारी, उदयपुर, हिन्दुस्तान कापर लि., खेतड़ी आदि।

38 राजस्थान में खनिज-आधारित उद्योगों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—इन्हें धात्विक (metallic) व अधात्विक (non metallic) दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

(i) धात्विक खनिज आधारित उद्योग—इस्पात उद्योग जो कच्चे लोहे, चूने के पत्थर, डोलोमाइट, वगैरह पर आधारित है। इसके अलावा स्टील फर्नीचर, मशीनरी व औजारों का निर्माण आदि।

(ii) अधात्विक खनिजों पर आधारित उद्योगों में निम्न आते हैं—सीमेंट, स्टोन वस्तु उद्योग, कांच व कांच का सामान, चायना क्ले पर आधारित चीनी मिट्टी के बर्तन, एस्बेस्टस व सीमेंट के पाइप/पदार्थ आदि।

39 राजस्थान के औद्योगिक जीवन में लघु उद्योगों की क्या भूमिका है?

उत्तर—जुलाई 1980 में लघु उद्योगों के लिए संयत्र एवं मशीनरी में विनियोग की सीमा बढ़ा कर 20 लाख रु. कर दी गई थी। मार्च 1985 में यह पुनः बढ़ाकर 35 लाख रुपये की गई थी। 1980-81 में यहां फैक्ट्री क्षेत्र में लघु इकाइयों की संख्या लगभग 90% थी। इनमें फैक्ट्री रोजगार का 36% तथा सभी फैक्ट्रियों में लगी उत्पादक पूंजी का $\frac{1}{8}$ भाग लगा हुआ था। इस प्रकार इनका रोजगार में ऊँचा अंश पाया गया है। फैक्ट्री क्षेत्र की अधिकांश इकाइयां इसी क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं।

40 राजस्थान की प्रमुख दस्तकारी अथवा हस्तशिल्प की वस्तुओं का परिचय दीजिए।

उत्तर—जयपुर के मूल्यवान व अर्द्ध-मूल्यवान रत्नों एवं सोने चांदी के कलात्मक आभूषण, पीतल की खुदाई व मीनाकारी के बर्तन, लाख से बनी चूड़ियां, संगमरमर की मूर्तियां, कारीगरी की जूतियां (मोजड़ियां व नागरे) ब्लू पॉटरी की नाना प्रकार की वस्तुएँ, सांगानेरी व बगरू प्रिंट के वस्त्र, मिट्टी के खिलौने, चन्दन

व हाथी दाँत से बनी वस्तुएँ लहरिए, चूनड़ियाँ व ओढ़नियाँ, गलीचे (बीकानेर व जयपुर के), जोधपुर के बन्दले, ऊँट की खाल से बनी कलात्मक वस्तुएँ, लकड़ी के खिलौने नाथद्वारा की 'पिछवाइयाँ' तथा फड़' (वस्त्र पर पेंटिंग की कलाकृतियाँ), सलमा-सितारे व गोटे किनारी के काम से युक्त परिधान । इस प्रकार वस्त्र, लकड़ी, खाल, धातु, सोने चाँदी आदि पर हस्तशिल्प व अद्भुत कारीगरी का काम राजस्थान के कुटार उद्योगों की अपनी विशेषता है । इनका काफी मात्रा में निर्यात भी किया जाता है । राजस्थान से गलीचों का निर्यात होता है ।

41. राजस्थान में जन-जाति-अर्थव्यवस्था (tribal economy) की मुख्य विशेषताएँ लिखिए ।

उत्तर—1981 की जनगणना के अनुसार लोगों की संख्या राजस्थान में 41·8 लाख थी । इसके अलावा अघोषित जनजाति (denotified tribes) के 0 8 लाख व्यक्ति भी थे । राज्य में 10 घुमक्कड़ (खानाबदोश) व 13 अर्द्ध-घुमक्कड़ जनजातियाँ निवास करती हैं । अधिकांश जनजाति के लोग बांसवाड़ा व डूंगरपुर के पूरे जिलों में तथा उदयपुर, चित्तौड़गढ़ व सिरोही जिलों की कुछ तहसीलों में रहते हैं ।

1981 में राज्य में जनजाति के लोगों की संख्या कुल जनसंख्या का 12·2% थी (सारे देश का औसत 8% था) । 1980-81 में जनजाति के पाँच जिलों में 45% आदिवासियों के पास एक हैक्टेयर से कम कृषिगत जोत थी । औसत जोत 1·7 हैक्टेयर पायी गयी (राज्य का औसत 4·4 हैक्टेयर) । इस प्रकार इनके पास जोत का आकार छोटा पाया जाता है । इनके लिए दस्तकारी का अभाव पाया जाता है । परिवहन की कठिनाई होती है । सिंचाई व पेयजल की कमी होती है । इनका जीवन जंगलों में लकड़ी की कटाई पर आश्रित होता है । प्रायः राहत कार्यों पर इनको मजदूरी पर काम दिया जाता है । ये आर्थिक शोषण, सामाजिक पिछड़ेपन व कुरीतियों, अन्ध-विश्वास, कुपोषण अशिक्षा, वगैरा के शिकार पाये जाते है । इनमें बहु-विवाह (polygamy) की प्रथा पायी जाती है ।

42 राज्य सरकार की जनजाति विकास-योजनाओं का स्पष्टीकरण दीजिए ।

उत्तर—राज्य सरकार जनजाति-विकास के लिए चार प्रकार की योजनाएं संचालित कर रही है जो इस प्रकार हैं—

1. जनजाति उपयोजना क्षेत्र—यह 1974-75 से प्रारम्भ की गई थी । इसके अन्तर्गत 4409 गाँव आते हैं । इसके अन्तर्गत अधिकांश राशि सिंचाई, पावर, फल-विकास, 'बेर-बडिंग', सामुदायिक सिंचाई (डीजल पम्पिंग सेट द्वारा) कृषि-वानिकी के कार्यों पर किया जाता है । इस उपयोजना के अन्तर्गत 1989-90 के लिए 119·4 करोड़ रुपये की राशि व्यय के लिए रखी गयी है । आदिवासियों को

बीज व उर्वरकों का वितरण भी किया जाता है। भविष्य में कुओं को गहरा करने, डीजल पम्प-सेटों के वितरण, सामुदायिक व्यर्थ भूमण्ड विकास कार्यक्रम, पशु-प्रजनन सुधार कार्यक्रम मुर्गीपालन कार्यक्रम, वतम कार्यक्रम, रेशम कार्यक्रम, लघु व कुटीर उद्योग, प्रतियोगी परीक्षाओं में कोचिंग कार्यक्रम तथा गांवों गेम भवन की स्थापना व सड़क-निर्माण पर बल दिया जायगा।

2 परिवर्तित क्षेत्र विकास दृष्टिकोण (माडा)—यह 1978 79 से प्रारम्भ किया गया। इसमें 13 जिलों के लगभग दस लाख व्यक्ति शामिल हैं। गावों की संख्या 2939 है। इसमें विशिष्ट केन्द्रीय सहायता (spec al central assistance) के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 के लिए 3 6 करोड़ रु का प्रावधान किया गया था।

3 सहरिया विकास कार्यक्रम—यह 1977-78 में लागू किया गया है। इससे 435 गांवों के 50 हजार व्यक्ति लाभान्वित होंगे। यह कार्यक्रम कोटा जिले की किशनगंज व शाहबाद पंचायत समितियों में सहरिया आदिम जाति (primitive tribe) को लाभ पहुंचायेगा। 1988-89 में विशेष केन्द्रीय सहायता 20 लाख रु. की रखी गई थी। प्रस्तावित व्यय का 47% शिक्षा पर तथा 28% लघु सिंचाई पर व्यय किया जायगा ताकि सहरिया कृषिगत परिवारों को सिंचाई की सुविधा मिल सके तथा उनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो सके।

4 बिखरी जनजाति के लिए विकास कार्यक्रम—यह जनजाति क्षेत्र विकास विभाग (Tribe Area Development Department) (TADD) के अन्तर्गत संचालित किया जा रहा है। 1988-89 के लिए 70 लाख रु की व्यवस्था की गई थी।

राजस्थान में 41·8 लाख जनजाति के लोगों में से 27 5 लाख लोगों को जन-जाति उप-योजना, माडा व सहरिया कार्यक्रमों में लाभान्वित किया जा रहा है जो समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित किए जा रहे हैं। शेष 14 3 लाख बिखरी जनजाति के लोगों को (TADD) के अन्तर्गत लाभान्वित किया जा रहा है।

43. राजस्थान में विभिन्न क्षेत्रीय व अन्य प्रकार के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का परिचय दीजिए।

उत्तर—(i) मरु विकास कार्यक्रम (DDP)

(ii) सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)

(iii) कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम (CADP)

(अ) इन्दिरा गांधी नहर परियोजना का क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम : भूमि को समतल बनाना, पानी की नालियों को पक्का करना, सड़क, मण्डी, जल सप्लाई, वृक्ष पशु पालन आदि।

(आ) चम्बल कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम—उचित ड्रेनेज, वृक्षारोपण, जंगली घास-पात उखाड़ना, गोदाम भवन-निर्माण आदि।

(iv) मेगिक कार्यक्रम : लघु व सीमान्त कृषकों को नल-कूप के लिए कर्ज व सब्सिडी।

(v) सीमा-क्षेत्र विकास कार्यक्रम (BADP) (Border Area Development Programme)

(vi) मेवात विकास भरतपुर व अलवर म मेव बाहुल्य क्षेत्रों के लिए। 1989 90 मे 1 15 करोड रु की राशि मेवात विकास बोर्ड के लिए निर्धारित की गयी है।

(vii) डेयरी विकास

(viii) सामाजिक वानिकी—सडक, नहर आदि के किनारे-किनारे बन्दरा क्षेत्र म वायुयान से बीजारोपण।

(xi) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP). निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रम, स्वरोजगार के अवसरो मे वृद्धि परिसम्पत्ति का वितरण सब्सिडी का तत्व। ऊँटगाडी, बलगाडी, बकरी भैंस, सिलाई की मशीनो का वितरण। यह 1978-79 स चलाया जा रहा है। फरवरी 1989 तक 1 37 परिवार लाभान्वित, 1989-90 के लिए 35 6 करोड रुपय का प्रावधान 30% महिलाओं को लाभान्वित किया जायगा। इनके माल की बिक्री की व्यवस्था म सुधार किया जायगा।

(x) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) 1988-89 म 20 करोड रुपयो का प्रावधान, 6० लाख मानव-दिवस रोजगार का लक्ष्य।

(xi) ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कायक्रम (RLEGP) : 1988-89 मे 22'9 करोड रुपये प्रस्तावित, 75 लाख मानव दिवस रोजगार का सृजन।

(xii) बायो-गैस सयन्त्र योजना तथा निर्धूम चूल्हा योजना, गाँवो के लाभार्थ।

1989-90 के लिए (NREP) व (RLEGP) को मिला दिया गया है। अब ग्रामीण रोजगार का विम्नृत कार्यक्रम जवाहर-रोजगार योजना के अन्तर्गत चलाया जायगा ताकि ग्रामीण निधन परिवारो मे रोजगार व आमदनी का विस्तार किया जा सके।

44 राजस्थान मे विकास सस्थाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—(क) ग्रामीण विकास विभाग तथा विशिष्ट आयोजना सगठन (Special Schemes Organisation) (SSO) द्वारा मरुविकास कार्यक्रम, सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम व ट्राइसम का सचालन किया जाता है। व्यर्थ भू-खण्डो के विकास का कार्यक्रम राजस्थान भूमि विकास निगम द्वारा किया जाता है। सामाजिक वानिकी कार्यक्रम वन विभाग द्वारा, डेयरी विकास कार्यक्रम राजस्थान सहकारी डेयरी फेडरेशन द्वारा सचालित किया जाता है। उद्योगों

अकाल व सूखो के कारण राज्य की प्रति व्यक्ति आय गतिहीन बना हुयी है। (राजस्थान के आर्थिक व सांख्यिकी निदेशालय के नवीनतम आंकड़ो के अनुसार)

चूंकि काफी लम्बी अवधि तक प्रति व्यक्ति आय, स्थिर भावो पर, गतिहीन बनी रही, इसलिए लोगो मे यह धारणा जोर पकड़ती गई कि राजस्थान आर्थिक गतिहीनता का शिकार हो गया है। लेकिन संशोधित आंकडो के आधार पर पाचवी योजना मे प्रति व्यक्ति आय (स्थिर मूल्यो पर) 2 1% वार्षिक तथा छठी योजना (1980 85) मे 4 1% व पिर बढी, जो आर्थिक प्रगति की परिचायक है। लेकिन पिछले चार वर्षो से लगातार अकाल व सूखा पड़ने से राज्य की अर्थव्यवस्था को काफी क्षति पहुंची है। अत राज्य का आर्थिक विकास काफी अनिश्चित व अस्थिर गति से हो रहा है। यह भविष्य के लिए एक गम्भीर चुनौती है। राज्य की प्रति व्यक्ति आय 1987 88 मे 583 रुपये आकी गयी है जो 1970—71 के 651 रुपये के स्तर से कम है। यह स्थिति वास्तव मे एक भारी चिन्ता का विषय है।

50 राजस्थान की पावर की स्थिति बताइए।

उत्तर—1989 के मध्य मे राजस्थान मे विद्युत-सृजन-क्षमता लगभग 2 00 मेगावाट हो गयी है। राज्य मे लगभग आधी सृजन क्षमता जल विद्युत (हाइडल पावर) की तथा आधी थर्मल पावर की रही है। कुछ विद्युत-उत्पादन स्थानीय तौर पर डीजल व थर्मल से भी होता है।

(अ) जल-विद्युत के स्रोत इस प्रकार है :

(i) भाखड़ा-नागल, (ii) व्यास, इकाई I व इकाई II, (iii) गाधी नहर (iv) राणा प्रताप सागर (v) जवाहर सागर। (तीनो चम्बल परियोजना के अन्तर्गत)। (vi) माही बजाज सागर पावर हाउस न I

(आ) थर्मल परियोजना—(i) सतपुड़ा, (ii) सिंगरोली, (iii) राजस्थान अणु-शक्ति केन्द्र, कोटा 1 व II, (iv) कोटा थर्मल पावर सयत्र।

राज्य मे सातवी योजना के अन्त तक विद्युत की कमी के दूर हो जाने की आशा है।

51. राजस्थान किस प्रकार विद्युत-सृजन-क्षमता बढाने का प्रयास कर रहा है ?

अथवा

राजस्थान मे विद्युत-सृजन-क्षमता बढाने के नये प्रयासो का परिचय दीजिए।

उत्तर—(1) कोटा थर्मल परियोजना के द्वितीय चरण तथा माही परियोजना के पावर हाउस न. 2 का कार्य प्रगति पर है। इन दोनों परियोजनाओं के 1989-90 मे

पूरा होने की आशा है । कोटा थर्मल पावर स्टेशन के प्रथम चरण (stage I) को 1983 में चालू किया गया था । इसमें 110 मेगावाट की 2 इकाइयाँ थी । द्वितीय चरण (stage II) में 210 मेगावाट की 2 इकाइयाँ होंगी, जिनमें से 210 मेगावाट की प्रथम इकाई 25 सितम्बर 1988 को चालू कर दी गई । इसी क्रम की द्वितीय इकाई 1989-90 में चालू की जायगी । कोटा थर्मल पावर स्टेशन राजस्थान की भावी सम्पन्नता व विकास का स्तम्भ माना जा सकता है । (ii) अनूपगढ़ लघु विद्युत परियोजना के प्रथम व द्वितीय विद्युत गृहों से निकट भविष्य में पावर की सप्लाई बढ़ेगी । (iii) पलाना थर्मल विद्युत गृह से 120 मेगावाट विद्युत उत्पन्न करने के कार्यक्रम को योजना आयोग ने स्वीकृति दे दी है । यह परियोजना कार्यान्वयन हेतु नैवेली लिग्नाइट कार्पोरेशन को सौंपी गयी है । इसकी क्षमता बढ़ायी जा सकती है । (iv) राज्य सरकार ने नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन को अन्ता में गैस पर आधारित 430 मेगावाट की परियोजना के कार्यान्वयन के लिए भूमि उपलब्ध करा दी है । इसकी क्षमता भी बढ़ायी जा सकती है । सातवी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक इस परियोजना के क्रियान्वयन से राजस्थान में विद्युत की कमी काफी सीमा तक दूर की जायगी । जनवरी व फरवरी 1989 में 88 मेगावाट की दो इकाइयाँ चालू कर दी गई हैं ।

52 राजस्थान में सहकारिता आन्दोलन की प्रगति का परिचय दीजिए ।

उत्तर—1985 86 के अंत तक राज्य में सहकारी समितियों की संख्या 19076 तथा सदस्य संख्या 61 लाख व्यक्ति हो गयी थी । प्राथमिक कृषि-साख समितियाँ 5267 तथा सदस्य संख्या 42 9 लाख थी । राज्य में 99% ग्राम व 87% कृषक परिवार सहकारिता के दायरे में आ चुके हैं । सहकारी ऋणों (अल्पकालीन, मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन) के सम्बन्ध में 1989-90 के लिए कुल 190·50 करोड़ रु के वितरण का लक्ष्य रखा गया है जिसमें से अल्पकालीन ऋणों की राशि 150 करोड़ रु होगी ।

53 राज्य में औद्योगिक क्षेत्र में सहकारिता के नये कार्यक्रम बताइए ।

उत्तर—(i) कोटा में सोयाबीन से प्रतिदिन 200 टन तेल निकालने के कारखाने की स्थापना की जायगी । इससे कोटा, बूंदी, झालावाड़, चित्तौड़ व बांसवाड़ा के 50 हजार काश्तकारों को लाभ होगा ।

(ii) गंगानगर (2), जालौर, नागौर, झुन्झुनूं व सवाई माधोपुर में सरसों के घ्रसयंत्र लगाने का कार्यक्रम है । सरसों, रायड़ा, व तोरिया की सप्लाई से कृषकों की आमदनी बढ़ेगी ।

(iii) गंगानगर में आधुनिक तकनीक पर आधारित सूती वस्त्र की मिल स्थापित की जायेगी जिसमें आयातित मशीनरी का उपयोग होगा । इससे रोजगार में वृद्धि होगी । इस प्रकार वनस्पति तेल व वस्त्रोद्योग में सहकारिता का प्रयोग करने के कार्यक्रम हैं ।

54 राजस्थान की सातवीं योजना में सार्वजनिक परिव्यय का प्रस्तावित आवंटन बताइए।

उत्तर—कृषि ग्रामीण विकास व सहकारिता पर 13% सिंचाई व शक्ति पर 54%, उद्योग व खनन पर 6% परिवहन पर 5%, सामाजिक सेवाओं पर 21% तथा शेष 1% अन्य पर रखा गया है। इस प्रकार सिंचाई व शक्ति के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है।

55 राजस्थान में बिक्री-मूल्य की दृष्टि से चार बड़े खनिजों के नाम लिखिए।

उत्तर—संगमरमर रोक फास्फेट सेंडस्टोन व ताम्बा।

56 रीको का परिचयात्मक विवरण दीजिए।

उत्तर—राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम लि अथवा रीको नवम्बर 1979 में स्थापित किया गया था। इसके पूर्व राजस्थान राज्य औद्योगिक व खनन विकास निगम 1969 में स्थापित किया गया था जिससे राजस्थान राज्य खनन-विकास निगम अलग करके 1979 में रीको की स्थापना की गई। रीको के कार्य इस प्रकार हैं। (i) औद्योगिक क्षेत्रों/ बस्तियों का निर्माण करना, (ii) सार्वजनिक संयुक्त व सहायता प्राप्त क्षेत्र में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करना, (iii) औद्योगिक शेयर पूँजी/अभिगोपन में भाग लेना, (iv) औद्योगिक विकास के लिए सर्वेक्षण करवाना व प्रोजेक्ट तैयार करवाना (v) रियायतें व प्रेरणाओं की व्यवस्था करना। रीको का स्वयं की तीन परियोजनाएं इस प्रकार है—टी वी घड़ी टू वे रेडियो सचार उपकरण परियोजनाएं। राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स लि. व राजस्थान कम्यूनिकेशन्स लि इसकी दो सहायक कम्पनियाँ हैं।

57 'संयुक्त क्षेत्र' की धारणा स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'संयुक्त क्षेत्र' के अन्तर्गत एक औद्योगिक इकाई में सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र दोनों का एक साथ अस्तित्व होता है। प्रायः पूँजी सार्वजनिक क्षेत्र से आती है तथा प्रबन्ध निजी हाथों में होता है। 'संयुक्त क्षेत्र' का समर्थन सार्वजनिक व निजी क्षेत्र दोनों की कमियों को दूर करने के लिए किया गया है। निजी क्षेत्र में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने के लिए संयुक्त क्षेत्र के विकास का समर्थन किया गया है। यह सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र के मिले जुले प्रयास से उत्पन्न होता है छोटी को निजी कम्पनियों को संयुक्त क्षेत्र में लाने से कई प्रकार की समस्याएँ हल हो जाती हैं। संयुक्त क्षेत्र में लाकर इनका विकास करने व पैमाने की किफायतें प्राप्त करने से सम्पूर्ण समाज को लाभ पहुँचता है। इनका तकनीकी विकास सुगम हो जाता है। राष्ट्रीयकरण किये बिना उद्योगों को सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित करने का सरल विधि संयुक्त क्षेत्र का विकास करने की होती है।

58 सार्वजनिक क्षेत्र संयुक्त क्षेत्र व सहायता-प्राप्त क्षेत्र में अन्तर करें।

उत्तर—सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिक इकाई का स्वामित्व, नियन्त्रण व प्रबन्ध पूर्णतया सरकार के अधिकार में होता है, जैसे राजस्थान में गंगानगर शुगर मिल्स लि. सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई है। संयुक्त क्षेत्र में राजस्थान का (रीको के माध्यम से इक्विटी में 26% अंश होता है। इसका प्रबन्ध निजी हाथों में सौंपा जाता है। सहायता-प्राप्त क्षेत्र में रीको का इक्विटी या शेयर पूंजी में प्रायः 10-15% अंश होता है। ये औद्योगिक विकास के लिए स्थापित किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के संगठन होते हैं।

59 राजस्थान में 'संयुक्त क्षेत्र' में औद्योगिक प्रगति का परिचय दीजिए।

उत्तर—राज्य में पिछले वर्षों में संयुक्त क्षेत्र में कई औद्योगिक इकाइयों ने उत्पादन चालू किया है। संयुक्त क्षेत्र में कई इकाइयाँ उत्पादन में संलग्न हैं। इनमें कई इकाइयाँ कार्पेट यान तथा विद्युत यान बना रही है। शेष इकाइयाँ रसायन, इलेक्ट्रोनिक्स, आदि क्षेत्रों से सम्बन्ध रखती हैं। राजस्थान एक्सप्लोजिव्स एण्ड केमिकल्स लि., धौलपुर में 'विस्फोटक' (detonators) बनाये जाते हैं। राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड इन्स्ट्रूमेन्टेशन लि. कनकपुरा जयपुर में विद्युत मिल्क टेस्टर-(tester) (दुग्ध-विश्लेषक-यंत्र) बनाये जाते हैं। यह इकाई कोटा इन्स्ट्रूमेन्टेशन लि. की सहायक होने के नाते केन्द्रीय इकाई के अन्तर्गत भी आ सकती है। परन्तु राजस्थान कॉपर फॉयल्स लि. जयपुर कॉपर फायल्स (Copper foils) व लेमिनेट्स (lam nates) बनाता है। किन्तु व अन्य कठिनाइयों के कारण राज्य में संयुक्त क्षेत्र के विकास की गति धीमी पड़ गयी है। इसकी कुछ इकाइयां रूग्ण हो गई हैं जिससे इस क्षेत्र को धक्का पहुँचा है।

60. राजस्थान वित्त निगम व राज्य के वित्त विभाग में अन्तर करिए।

उत्तर—राजस्थान वित्त निगम 1955 में लघु व मध्यम श्रेणी के उद्योगों को वित्तीय सहायता देने के लिए स्थापित किया गया था। अब इसकी प्रति इकाई सहायता की सीमा बढ़कर 60 लाख रुपये कर दी गई है। यह परिवहन व होटल के लिए भी कर्ज देता है। उदार ऋण-स्कीम में इसका काम काफी बढ़ा है।

राज्य का वित्त विभाग राज्य के सचिवालय में एक विभाग होता है जो सरकार के वित्त सम्बन्धी मामलों पर ध्यान केन्द्रित करता है। यह बजट-निर्माण में सहायता देता है तथा सरकारी आय व्यय का हिसाब रखता है। वित्त विभाग प्रत्येक नये वित्त-आयोग के समक्ष एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है जिसमें 5 वर्षों की अवधि के लिए आय-व्यय के अनुमान होते हैं जिनके आधार पर आयोग राज्य की वित्तीय आवश्यकताओं का अनुमान लगाता है।

61. 'राजसीको' की भूमिका समझाइए।

उत्तर—"राजसीको" का पूरा अर्थ है राजस्थान लघु उद्योग निगम (Rajasthan Small Industries Corporation) यह 1964 में स्थापित किया गया था। यह कच्चे माल जैसे कोयला/कोक, इस्पात, सीमेंट जस्ता आदि का वितरण करता है। इसने दस्तकारों के एम्पोरियम तथा गलीचा-प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित किये हैं। इसने चुरू व लाडनूं में ऊनी मिलें, टोंक में मयूर बीड़ी फैक्ट्री, तेंदू की पत्तियों के संग्रह की व्यवस्था तथा सांगानेर एयर पोर्ट पर निर्यात की सुविधा के लिए एक 'एयर कार्गो कॉम्पलेक्स' स्थापित किया है। राजसीको लघु उद्योगों के विकास के लिए कार्य करता है।

62 राजस्थान के आर्थिक जीवन में खादी व ग्रामोद्योगों का क्या स्थान है ?

उत्तर—राज्य में सूती व ऊनी खादी का उत्पादन होता है। 1987-88 में लगभग 21 8 करोड़ रु. की खादी का उत्पादन हुआ था। इस उद्योग में काफी लोग अल्पकालिक व पूर्णकालिक काम पाये हुए हैं। ग्रामोद्योगों में घानी का तेल, गुड़ व खाण्डसारी, हाथ का कागज, अखाद्य तेल से बनी साबुन, चमड़े की वस्तुएँ, मिट्टी के बर्तन, मधुमक्खी-पालन व धान का हाथ से कूटकर छिलका हटाने आदि के काम शामिल हैं। ग्रामोद्योगों के उत्पादन का मूल्य 1987-88 में 116 5 करोड़ रु. *हुआ था जिसके 1988-89 में बढ़कर 120 करोड़ रु हो जाने का अनुमान है।* खादी व ग्रामोद्योगों का रोजगार, आमदनी व निर्धनता-निवारण कार्यक्रमों की दृष्टि से *बहुत महत्व है। ये ग्रामवासियों के आर्थिक जीवन का आधार* स्तम्भ है।

63. राजस्थान सरकार ने नये उद्योगों को बिक्री-कर में क्या छूट दी है ?

उत्तर—राज्य सरकार की मई 1987 की घोषणा के अनुसार पिछड़े जिलों में नये उद्योगों को सात वर्ष तक तथा विकसित जिलों में पाँच वर्ष तक बिक्री-कर की छूट रहेगी। छूट की सीमा पिछड़े जिलों में छोटे उद्योगों के लिए स्थायी परिसम्पत्ति का सौ प्रतिशत तथा बड़े उद्योगों के लिए 90% तक होगी। विकसित जिलों के लिए ये क्रमश: 85% व 75% *तक होंगी। 'पायनियरिंग' व 'प्रेस्टीजियस' उद्योगों* के लिए 2 अतिरिक्त वर्षों की बिक्री-कर की छूट रहेगी। 10 लाख रुपयों से अधिक विनियोजन वाले उद्योगों को कर मुक्ति के बजाय कर-स्थगन (tax-deferment) की सुविधा भी प्रदान हो सकेगी जिसके लिए सम्बन्धित इकाई को अपना विकल्प देना होगा।

64 1989-90 के अन्त तक राजस्थान के बजट में अपूरित घाटे की राशि *कितनी रखी गयी है ? उसको पूरा करने के क्या उपाय हैं ?*

उत्तर—1989-90 के अन्त में कुल 204 करोड़ रु का अपूरित घाटा दिखाया गया है। इसमें 1988-89 का 100 करोड़ रुपये का घाटा भी जोड़

लिया गया है। यह घाटा कुछ सीमा तक आने वाले वर्ष के दौरान कर तथा बकाया रकम की बेहतर वसूली, केन्द्र से अधिक प्राप्तियों, गैर-आवश्यक व अनुत्पादक खर्च में कमी आदि से पूरा किया जायगा। वित्तीय अनुशासन को अधिक प्रभावी व सुदृढ़ किया जायगा तथा सरकारी व्यय पर कड़ा नियन्त्रण रखा जायगा। लेकिन यह कार्य काफी कठिन प्रतीत होता है। राज्य की वित्तीय दशा काफी चिंताजनक व डांवाडोल स्थिति में है।

65 राजस्थान राज्य के व्यय के प्रमुख करों के नाम लिखिए। इनमें सर्वाधिक राजस्व किस कर से प्राप्त होता है।

उत्तर—बिक्री-कर, भू-राजस्व, राजकीय आबकारी शुल्क, स्टाम्प व रजिस्ट्रेशन, वाहनों पर कर तथा मनोरंजन कर। बिक्री-कर से सर्वाधिक आय होती है जो 1989-90 के बजट-अनुमानों में राज्य के कुल कर-राजस्व का 36% आंकी गयी है। (575 करोड़ रु. की राशि जो कुल राजस्व 1586 करोड़ रु. का लगभग 36% है)।

66. राजस्थान में फैक्ट्री क्षेत्र में प्रमुख औद्योगिक वस्तुएँ कौन-कौन सी उत्पादित होती हैं?

उत्तर—सीमेन्ट, चीनी यूरिया, सुपर फॉस्फेट, बाल बियरिंग, विद्युत मीटर, नमक, पॉलिएस्टर धागा आदि।

67 निम्नलिखित व्यक्ति किन पदों पर काम कर रहे हैं?

(i) श्री एन. के. पी. साल्वे,

(ii) डा. राजा. जे. चेलैया,

(iii) डा. वाई. के. अलघ,

(iv) प्रोफेसर सुखमोय चक्रवर्ती

उत्तर—(i) नवें वित्त आयोग के अध्यक्ष,

(ii) योजना आयोग व नवें वित्त आयोग के सदस्य,

(iii) योजना आयोग के सदस्य,

(iv) प्रधान मन्त्री की आर्थिक सलाहकार परिषद् (EAC) के अध्यक्ष तथा दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर।

68. राजस्थान में कुछ नये इलक्ट्रोनिक्स उद्योगों के नाम व स्थान बताइये।

उत्तर— i) कीन्जल इण्डियन समय लि., भिवाड़ी (Kienzle Indian Samay Ltd., Bhiwadi) यहाँ क्वॉर्टज क्लॉक टाइमिंग मूवमेंट का उत्पादन किया जायगा।

(ii) राजस्थान टेलीफोन इण्डस्ट्रीज लि. भिवाड़ी में इलेक्ट्रानिक्स पुश बटन टेलीफोन उपकरणों का निर्माण किया जायगा।

(iii) एलाइड इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड मैग्नेटिक्स लि., उदयपुर में विभिन्न इलेक्ट्रोनिक्स गैजेटों में याददाश्त का काम करने हेतु 'फ्लोपी डिस्केट्स' बनाये जायेंगे।

(iv) राजस्थान इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड इन्स्ट्रूमेन्टेशन लि., जयपुर–विद्युत मिल्क टेस्टर (दुग्ध विश्लेषक यन्त्र) (एक केन्द्रीय प्रोजेक्ट रीको के सहयोग से)

(v) इण्डिया इलेक्ट्रोनिक्स लि०, भिवाडी—कार्बन फिल्म रेजिस्टर्स (resistors)

69 'औद्योगिक अभियानों' के आयोजन से क्या तात्पर्य है?

उत्तर—राजस्थान में रीको राजस्थान वित्त निगम व उद्योग-निदेशालय के तत्वावधान में देश के अन्य भागों में जाकर उद्योगपतियों को राजस्थान में आकर उद्योग लगाने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। इन औद्योगिक अभियानों में सरकारी प्रतिनिधियों व उद्यमकर्त्ताओं की आमने-सामने बातचीत होती है और विभिन्न शंकाओं-आशंकाओं का समाधान किया जाता है। ऐसे औद्योगिक अभियान पिछले दिनों बम्बई, कलकत्ता, गुवाहाटी व शिलोंग आदि में चलाये गये हैं। इनके माध्यम से सरकार नये उद्यमकर्ताओं से सम्पर्क कर पायी है।

70 'आर्थिक क्षेत्र में उदारता की नीति' से क्या अभिप्राय है?

उत्तर—राजीव सरकार ने आर्थिक क्षेत्र में उदारता' की नीति अपनायी है। इसके अन्तर्गत अनावश्यक आर्थिक नियन्त्रणों को धीरे-धीरे समाप्त किया जाता है तथा अर्थव्यवस्था में आन्तरिक प्रतिस्पर्धा व विदेशी प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया जाता है। सरकार ने *आयात-नीति, कर-नीति व औद्योगिक नीति व लाइसेन्स-व्यवस्था* को पहले से अधिक उदार बनाया है। आयात-निर्यात नीति त्रिवर्षीय की गई है तथा उदार आयात-नीति अपनायी गई है। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति (1985–90 के लिए) भी घोषित की गई है। प्रत्यक्ष-करों की दरें कम की गई है। 'आर्थिक उदारता' के व्यापक रूप में आर्थिक विकास में निजी क्षेत्र की भूमिका बढ़ायी जाती है और उत्पादन का पैमाना बढ़ाकर लागत कम करने का प्रयास किया जाता है।

71 क्या राजस्थान में पंचवर्षीय योजना के वर्तमान स्वरूप को भंग करके केवल अकाल निवारण हेतु एक पंचवर्षीय कार्यक्रम या योजना को कार्यान्वित करना अधिक श्रेयस्कर होगा?

उत्तर—केन्द्रीय नियोजन की पद्धति के अन्तर्गत राज्य स्तर पर भी योजना के वर्तमान स्वरूप को ही जारी रखना लाभप्रद होगा, क्योंकि इसके अलावा कोई दूसरा सुदृढ़ विकल्प नहीं प्रतीत होता। इसके माध्यम से *अर्थव्यवस्था का सन्तुलित* व शीघ्र विकास करने का प्रयास किया जाता है। लेकिन राज्य के आर्थिक विकास कार्यक्रम को इस तरह ढाला जाना चाहिए कि यह अकाल व सूखे से हमें यथासम्भव राहत दिला सके।

72. राजस्थान में प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे सडको की लम्बाई बताइए।

उत्तर—[1986-87 में 15·10 किलोमीटर]

73 राजस्थान में 1985-86 में प्रति व्यक्ति पावर का उपभोग बताइए।

उत्तर—[198‑-86 में 124 किलोवाट घटे]

74 राजस्थान में जिलो, तहसीलो, पचायत समितियो, ग्राम पचायतों व गावो की सख्या बताइए।

[जिले = 27, तहसीलें = 207, पचायत समितिया = 237, ग्राम-पचायतें = 7353 कुल गाव = 37,124]

75 नवें वित्त आयोग की प्रथम रिपोर्ट के अनुसार 1989-90 वर्ष के लिए राजस्थान को क्या वित्तीय प्राप्तियाँ होगी ?

उत्तर—राजस्थान का प्रश्न		1989-90 वर्ष के लिए प्रस्ताव (करोड रु. में)
1. आयकर मे हिस्सा	4·773% (सिक्किम सहित) तथा 4·775% (सिक्किम के बिना)	142·8
2 40% उत्पादन शुल्क में हिस्सा	5·097%	326 7
3. 5% घाटे के राज्यों को दी जाने वाली उत्पादन शुल्क की राशि मे हिस्सा	3 946%	31 6
4. बिक्रीकर की एवज मे अतिरिक्त उत्पादन शुल्क (कपड़ा, चीनी व तम्बाकू)	4·636%	69·1
5. रेल यात्री किराये पर निरस्त कर की एवज मे अनुदान मे हिस्सा	4 772%	4 5
गैर-योजना अनुदान (Non-Plan Grants)		
(i) राहत-खर्च की वित्त-व्यवस्था के लिए सीमान्त-राशि (margin money)	16·75 (करोड रुपये का आधा)	8·4
(ii) राजस्व-घाटे की पूर्ति के लिए सहायता-अनुदान		38 8
(iii) स्टेण्डर्ड ऊँचे करने के लिए सहायता-अनुदान (upgradation)		6·1
(iv) विशेष समस्याओं के लिए		23·4
	कुल (लगभग)	651·3

केन्द्र से राज्यों की तरफ कुल हस्तान्तरण की राशि 13662 करोड़ रु अनुमानित है जिसमें राजस्थान का अंश 4 77% रखा गया है। के० के० जॉर्ज के एक अध्ययन से पता चला है कि नवें वित्त आयोग की सिफारिशों से कम आमदनी वाले राज्य जैसे बिहार, राजस्थान व उत्तर प्रदेश अपेक्षाकृत घाटे में रहे हैं, और धनी व सम्पन्न राज्यों को अधिक वित्तीय साधन हस्तान्तरित हुए हैं। इस आयोग ने जो इकोनोमेट्रिक मॉडल" अपनाया है उसमें गम्भीर गलती रह गई है। अत संशोधन किया जाना आवश्यक हो गया है।

'निर्धनता" का आधार लेने से महाराष्ट्र जैसे राज्य ही फायदे में रहे हैं, जहाँ निर्धनों व गंदी बस्ती के निवासियों का सकेन्द्रण अधिक है। आयोग ने 'आदर्शात्मक दृष्टिकोण' को लागू करने के लिए जिस गणितीय माडल के आधार पर विभिन्न राज्यों की राजस्व आय व राजस्व-व्यय के 1989-90 के लिए अनुमान तैयार किये हैं, वे वास्तविकता से बहुत दूर लगते हैं जिससे साधनों के राज्यवार आवंटन पर प्रतिकूल असर पड़ा है।

———

परिशिष्ट—3

चुने हुए आंकड़े
(Selected Data)

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय व राजस्थानी अर्थव्यवस्था पर एक पाठ्य-पुस्तक है। अतः इसमें आंकड़ों की कई तालिकाएँ दी गयी हैं। पाठकों से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे उन्हें याद करें। अध्ययन के समय तालिकाएँ सामने रहती हैं एवं उनके आधार पर प्रमुख निष्कर्ष निकाले जाते हैं। पाठकों को उनमें से अपने काम के इक्के-दुक्के आंकड़े छाँटने का सही अभ्यास अवश्य होना चाहिए।

विद्यार्थियों को परीक्षा में प्रश्नोत्तर लिखते समय आँकड़ों के सम्बन्ध में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए उनके मार्ग-दर्शन के लिए तथा उनकी असुविधा को दूर करने के लिए यहां चुने हुए आंकड़े एक ही जगह दिये जाते हैं जिन पर विशेष ध्यान देना उपयोगी रहेगा। अधिकांश आंकड़े भारत सरकार के Economic Survey 1988-89, Seventh Five Year Plan 1985-90 (Mid-Term Appraisal), 1988 तथा राजस्थान के आय-व्ययक अध्ययन, 1989-90 से संकलित किये गये हैं।

विद्यार्थियों को आंकड़े देते समय उनकी अवधि, मात्रा, संख्या तथा इकाई का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए। अधिकांश विद्यार्थी मिलियन, लाख व करोड़ का उपयोग सही सही नहीं करते, जिससे उन्हें ऊँचे अंक प्राप्त करने में कठिनाई हो जाती है तथा उनके उत्तरों में गम्भीर दोष उत्पन्न हो जाता है। यह स्मरण रखना होगा कि आंकड़ों की पूरी तालिकाएँ देने की बजाय चुने हुए महत्वपूर्ण आंकड़े ही पर्याप्त रहते हैं। पूरी तालिकाएँ देना न तो सम्भव है और न आवश्यक ही। परीक्षा में नक्ल करके आंकड़ों की तालिकाएँ देने से कोई लाभ नहीं क्योंकि उससे परीक्षक के मन में सन्देह बढ़ता है। उत्तम अंक प्राप्त करने के लिए चुने हुए, सही व सुनिश्चित आँकड़ों को ही पर्याप्त माना जाता है।

बहुधा विद्यार्थी यह निश्चित नहीं कर पाते कि अपने प्रश्न के उत्तर में वे कौन-से आंकड़े दें तथा कौन से न दें। इस सम्बन्ध में 'सामान्य बुद्धि' (Common-sense) से काम लेने पर आवश्यक आँकड़ों का आसानी से चयन किया जा सकता है। जैसे—श्रम-शक्ति का वर्णन करते समय यह बताया जाना चाहिए कि भारत में

श्रम-शक्ति जनसंख्या का कितना प्रतिशत है, तथा नई पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में कितने लोग श्रम-शक्ति में शामिल थे, इत्यादि। इसी प्रकार जनसंख्या-नियन्त्रण व परिवार-नियोजन के विवेचन में जन्म-दर व मृत्यु-दर का उपयोग अवश्य किया जाना चाहिए।

योजना-काल में आर्थिक प्रगति का उल्लेख करते समय राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि-दर (स्थिर भावों पर), खाद्यान्नों के उत्पादन, इस्पात, कोयला, क्रूड तेल सीमेन्ट विद्युत उवरक सिंचाई आदि से सम्बन्धित प्रमुख आँकड़ों का उपयोग अवश्य किया जाना चाहिए।

तुलना की दृष्टि से प्रतिशतों एवं अनुपातों का उपयोग करना बहुत आसान व लाभकारी होता है। अब हम प्रमुख आँकड़ों का उल्लेख करते हैं।

खाद्यान्नों का उत्पादन—1950-51 में 5½ करोड़ टन से बढ़कर 1987-88 में लगभग 13.8 करोड़ टन हो गया। 1988-89 में खाद्यान्नों का उत्पादन अनुकूल मौसम के कारण सम्भवतः 1⁻ करोड़ टन से भी अधिक रहेगा।

दालों का उत्पादन—1955-56 में 1.2 करोड़ टन तथा 1987-88 में 1·10 करोड़ टन। अतः इनके उत्पादन में गतिहीनता अथवा स्थिरता की दशा रही है। 1985-86 में दालों का उत्पादन 1.34 करोड़ टन हुआ था।

HYV का क्षेत्रफल 1970-71 में 1.54 करोड़ हैक्टेयर से बढ़कर 1987-88 में लगभग 5.1 करोड़ हैक्टेयर हो गया 1987-88 में सिंचित क्षेत्रफल 6·63 करोड़ हैक्टेयर था जिसमें 2·70 करोड़ हैक्टेयर में बड़े व मध्यम साधनों से तथा 3·93 करोड़ हैक्टेयर में लघु साधनों से सिंचाई की गई। तीनों प्रकार की रासायनिक खादों (NPK) का उपभोग 1970-71 में 21.8 लाख टन से बढ़कर 1987-88 में 90 लाख टन हो गया।

खाद्यान्नों का शुद्ध आयात—1966 में 1 करोड़ टन, 1978 से 1980 तक ऋणात्मक (Negative) आयात, अर्थात् आयात से निर्यात अधिक। 1983 में 40.7 लाख टन तथा 1984 में 23.7 लाख टन आयात किये गये। देश की खाद्य-स्थिति में सुधार होने से 1985 में आयात पुनः 3·5 लाख टन तथा 1986 एवं 1987 में भी मामूली ऋणात्मक (Negative) रहे। 1988 में खाद्यान्नों का आयात 18.7 लाख टन हुए हैं।

सरकारी खरीद (Procurement)—1987 में लगभग 1·6 करोड़ टन तथा 1988 में 1·4 करोड़ टन। इन्हीं वर्षों में सार्वजनिक वितरण की मात्रा प्रतिवर्ष 1·8 करोड़ टन रही (काम के बदले अनाज की मात्रा शामिल करके)।

कृषिगत उत्पादन में वृद्धि दर—
(पिछले वर्ष की तुलना में)

(प्रतिशत में)

भारी उतार-चढ़ाव, जैसे
1979-80 में (−) 15 2
1980-81 में (+) 15·6
1984-85 में (+) 1·2
1985-86 में (+) 2·4
1986-87 में (−) 3 7
1987-88 म (−) 2 1
1988-89 में (+) 23 (RBI वार्षिक रिपोर्ट)

जनसंख्या, श्रम-शक्ति आदि—1981 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 68·5 करोड व्यक्ति है। 1971-81 की अवधि में जनसंख्या में 25% वृद्धि हुई। 1989 में जनसंख्या लगभग 8. करोड मानी जा सकती है जो 1951 की तुलना म दुगुनी स अधिक है। अत. जनसंख्या की दृष्टि से योजनाकाल में 'एक नए भारत' का निर्माण और हो गया है।

सातवी पचवर्षीय योजना, 1985-90 के प्रतिवेदन के अनुसार मार्च 1985 म सामान्य स्टेटस के अनुसार श्रम-शक्ति 5 वर्ष व अधिक की आयु मे 30 5 करोड व्यक्ति थी, जिसके मार्च 1990 में 34 5 करोड व्यक्ति (वार्षिक वृद्धि दर 2 46%) हो जाने का अनुमान है। श्रम-शक्ति के अनुमार 15 वर्ष व अधिक की आयु के लिए तथा 15-59 वर्ष के आयु-समूह के लिए भी प्रस्तुत किय गये हैं। 1971 मे श्रम शक्ति का 72·1% कृषि व सहायक क्रियाओं में सलग्न था, तथा 10 प्रतिशत विनिर्माण व खनन में सलग्न था। 1981 की जनगणना क अनुसार कृषि व सहायक क्रियाओं का अश 68·8% तथा विनिर्माण व खनन का 11 9% हो गया था। जन्म-दर 1978 मे 33 3 प्रति हजार हो गयी थी। 1978 में मृत्यु-दर 14·2 प्रति हजार थी, तथा जनसख्या की वृद्धि-दर 19 प्रति हजार थी, अर्थात् 1 9 % थी।

मार्च 1985 मे बेरोजगारी की मात्रा (सामान्य स्टेटस के अनुसार), अर्थात् वर्षभर की बेरोजगारी की मात्रा 92 लाख व्यक्ति थी जिसमे लगभग 50 लाख व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों मे तथा 42 लाख शहरी क्षेत्रों में बेरोजगार थे।

1977-78 मे देश मे श्रम शक्ति का 8 2 प्रतिशत बेरोजगारी का शिकार था। केरल म यह 25 7 प्रतिशत था। आधे बेरोजगार व्यक्ति चार राज्यों (तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, केरल व महाराष्ट्र) म थे।

औद्योगिक वित्त—भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) ने 1987-88 (जुलाई-जून) म लगभग 351 करोड रु. की वित्तीय सहायता मजूर की तथा 730

करोड रु. की वितरित की। 1948-1988 के 40 वर्षों में स्वीकृत सहायता = 5,306 करोड रु. तथा वितरित की गयी राशि = 3,612 करोड रु. रही।

भारतीय औद्योगिक विकास बैक की 1988-89 (जुलाई-जून) मे स्वीकृत सहायता = 4,747 करोड रु. तथा वितरित सहायता = 3,381 करोड रु. रही। 1964-89 के 25 वर्षों मे स्वीकृत सहायता = 34,400 करोड रु तथा वितरित राशि = 25,112 करोड रु रही (गारटियो सहित)

मजदूर संघों की स्थिति—31 दिसम्बर 1980 को भारत मे मजदूर-सघों की सत्यापित सदस्यता (Verified membership) 61 3 ल ख थी जिसमे भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (इन्टक) की सदस्य संख्या 22 लाख 36 हजार सर्वाधिक थी तथा दूसरे नम्बर पर भारतीय मजदूर सघ था, जिसकी सदस्य सख्या 12 लाख 11 हजार थी।

विदेशी व्यापार

व्यापार का घाटा (Trade deficit) : (करोड रु. मे)

1980–81	5838	छठी योजना (1980–85)
1985–86	8763	मे कुल व्यापार का घाटा
1986–87	7748	= 28581 करोड रु.
1987–88	6658	अथवा 285·8 अरब रुपये
1988–89	7412	

(करोड रु.)

वर्ष	आयात	निर्यात
1987–88	22399	15741
1988–89	27693	20281

जनवरी 1989 को विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण, स्पेशल ड्राइंग राइट्स व विदेशी विनिमय परिसम्पत्तियो सहित) = 5967 करोड रु. (वर्तमान मे केवल 3½ महीने के आयात के लायक)

अगस्त 1989 तक लगभग 2000 करोड रु. की गिरावट (मार्च 1989 की तुलना मे)

1987-88 की अवधि मे भारत के चार प्रमुख आयात (करोड़ रु. मे)

(1) पूंजीगत माल	= 6285
(2) पेट्रोल पेट्रोल-पदार्थ व सम्बद्ध माल	= 4083
(3) मोती कीमती व अर्द्ध कीमती स्टोन्स	= 1994
(4) लोहा व इस्पात	= 1273

1987-88 मे भारत के चार प्रमुख निर्यात (करोड रु. मे) (क्रूड तेल के अलावा)

(1) दस्तकारी का माल	= 3253
(2) रेडीमेड पोशाकें	= 1792

(3) इन्जीनियरी का माल = 1433

(4) चमड़ा व चमड़े के सामान = 1149

विदेशी सहायता—मार्च 1988 तक प्रयुक्त विदेशी सहायता की राशि 42,347 करोड़ रु

ऋण-सेवा-राशि (मूलधन + ब्याज) 1988-89 = 2770 करोड़ रु । 1987-88 में ऋण-सेवा भुगतान चालू प्राप्तियों (current receipts) का 24% जो कुछ विद्वानों के अनुसार अब 30% हो गया है। भारत विदेशी कर्ज के जाल में फंसता जा रहा है। ऋण-सेवा राशि की सुरक्षित सीमा 20% मानी गई है।

राष्ट्रीय आय तथा योजना में आर्थिक प्रगति

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति 19 0-51 = 16731 करोड़ रु. (1970-71 के मूल्यों पर)'
(साधन लागत पर) 1985-86 = 60143 करोड़ रु (3·6 गुनी)

प्रति व्यक्ति आय 1950-51 = 466·0 रुपये
1985-86 = 797 7 रुपये

1950-51 से 1985-86 के बीच NNP की वार्षिक वृद्धि-दर 3·6% (स्थिर
प्रति व्यक्ति NNP ,, ,, ,, 1·5% मूल्यों पर)

विकास की वार्षिक दर—(1970-71 के मूल्यों पर) साधन-लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति का परिवर्तन (प्रतिशत में)

योजनाओं में प्राप्त विकास की वार्षिक दरें—

विभिन्न योजनाएँ

I	II	III	वार्षिक योजनाएँ (1966-69)	IV	V	1979-80	VI (1981-85)	VII (लक्ष्य)
3·6	4·0	2·2	4·0	3·4	5·2	(–)5·2	4 9	5·0

1980-81 के भावों पर

1985-86	5·0
1986-87	3·6
1987-88	3·4
1988-89	10·0 (RBI वार्षिक रिपोर्ट)

सर्वाधिक विकास की वार्षिक दर पाँचवी योजना की अवधि में 5·2% रही तथा न्यूनतम तृतीय योजना (1961-66) की अवधि में 2·2% रही। सातवीं योजना में 5·4% आँकी गई है।

राजस्थान का आर्थिक विकास[1]

1981 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 3·43 करोड़ व्यक्ति।

खाद्यान्नों का उत्पादन	(लाख टन में)
1983-84	100·8
1984-85	79·1
1985-86	81·3
1986-87	67·9
1987-88	48 0
1988-89	100 75

सकल सिंचित भूमि 1986-87 में 43·5 लाख हैक्टेयर, कुल कृषित क्षेत्रफल का लगभग 24%, 1989 के मध्य में विद्युत की प्रस्थापित क्षमता = लगभग 2500 मेगावाट, रजिस्टर्ड फैक्ट्रियों की संख्या, 1987 में = 10512 इनमें रोजगार = 2·36 लाख व्यक्ति।

औद्योगिक उत्पादन	वर्ष (1988)	
1. सीमेंट	40·3	लाख टन
2. चीनी	5	हजार टन
3. बाल बियरिंग	13 9	लाख इकाई
4. नमक	10·4	लाख टन
5. विद्युत मीटर	8·7	लाख इकाई

राज्य की आय (State Income) (1970–71 के भावों पर)

	1970–71	1986–87	1987–88
1 राज्य की आय (करोड़ रुपये में)	1654	2524	2383
2 प्रति व्यक्ति आय (रुपयों में)	651	634	583

स्थिर भावों पर छठी पंचवर्षीय योजना में विकास की दर 6·9% (संशोधित SDP के आधार पर) सालाना रही। 1979-80 का आधार-वर्ष कमजोर होने से छठी योजना में विकास की दर इतनी ऊंची हो सकी है।

1. स्रोत—आय-व्ययक अध्ययन 1989-90 (आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय जयपुर, मार्च 1989, तथा इसी की दस वर्षीय प्रगति-विवरण (1977-87) के लिए विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों की तालिकाएं।

राज्य की योजनाओ में सार्वजनिक क्षेत्र में वास्तविक व्यय की राशिया

(करोड रुपयो मे)

I	II	III	वार्षिक योजनाए	IV	V
54	103	213	137	309	858

1979–80 (वार्षिक योजना)	VI	VII (प्रस्तावित)	1985–88	1988–89	1989–90 (प्रस्तावित)
290	2031	3000	1600	710	795

31 मार्च 1989 को राजस्थान पर बकाया कर्ज की राशि
= 4569 करोड रु.

केन्द्रीय कज की बकाया राशि = 2889 करोड रु

पिछले वर्षों मे भारत सरकार से प्राप्त कर्ज की शुद्ध राशि ऋणात्मक (negative) रही, अर्थात् जितनी राशि कर्ज के रूप मे मिली उससे अधिक राशि मूलधन व ब्याज के रूप मे चुकानी पडी ।

निर्धनता-अनुपात मे परिवर्तन (ग्रामीण) प्रतिशत के)

	1977–78	1983–84
1 राजस्थान	33 5	36 6
2 बिहार	57 8	51 4
3 उत्तर प्रदेश	50 0	46 5
4 समस्त भारत	51 2	40 4

स्रोत C H Hanumantha Rao, Changes in Rural Poverty in India Mainstream January 11 1986)

राजस्थान मे निर्धनता अनुपात बढा जबकि अन्य सभी राज्यों तथा देश मे घटा है ।

के सुन्दरम के अध्ययन के अनुसार

राजस्थान म 1983 मे दम्पत्तियो का वह अनुपात जो प्रभावपूर्ण तरीके से सुरक्षा प्राप्त कर सका था (effectively protected)

अर्थात , जो परिवार-नियोजन के उपाय अपना रहा था = 15 7%

2000 मे सम्भावित = 31%

2000 मे सभी राज्यो के लिए लक्ष्य = 60%

अतः वर्ष 2000 में भी राजस्थान में परिवार-नियोजन अपनाने वाले दम्पत्तियों का प्रतिशत कम ही रहेगा। राजस्थान में परिवार-नियोजन पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है।

1981 में राजस्थान में ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता का अनुपात 5½% रहा जो एक चिंता का विषय है।

राजीव सरकार की नई आर्थिक नीतियाँ

आधार—आधुनिकीकरण, नई टेक्नोलोजी, बड़े पैमाने का उत्पादन, लाइसेंस नीति, कर-नीति व त्रिवर्षीय आयात-नीति में उदारता। नई कम्प्यूटर नीति, नई इलेक्ट्रोनिक्स नीति, नई वस्त्र नीति, आदि का झुकाव कार्यकुशल औद्योगिक उत्पादन व निर्यात-वृद्धि की ओर, प्रत्यक्ष करों में कमी। नई दीर्घकालीन राजकोषीय नीति, नई कृषिगत नीति आदि की घोषणा।

1990 के बाद वार्षिक श्रम-शक्ति की वृद्धि = लगभग 1 करोड़ व्यक्ति।

आर्थिक सलाहकार परिषद्
(Economic Advisory Council)

8 जुलाई, 1988 का पुनर्गठित EAC के सदस्य इस प्रकार हैं :

1 प्रोफेसर सुखमोय चक्रवर्ती (अध्यक्ष)
2 डा के. एन. राज
3 डा एस एस. जोहल (S. S Johl)
4. डा. सी रंगराजन (उप-गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक)
5 डा किरीत पारीख
(इसमें योजना-आयोग से कोई सदस्य नहीं लिया गया है।)
डा एस आर हाशिम परिषद् के सचिव होंगे।

डा चक्रवर्ती की स्टेटस राज्य-स्तर के मन्त्री की होगी। पुनर्गठित परिषद् का कार्यकाल 2 वर्ष का रखा गया है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में 'भोजन काम व उत्पादकता' (food, work and productivity) पर जोर, विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य लगभग 5%, सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय की राशि छठी योजना से काफी अधिक, निर्धनता, बेरोजगारी आदि को हल करने के प्रयास, 1994–95 तक निर्धनता की रेखा से नीचे के व्यक्तियों का अनुपात 10% से कम करने का लक्ष्य, राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम (NEP) पर विशेष बल। योजना के लिए वित्तीय साधनों का संकट, बढ़ते व्यापार के घाटे के कारण भविष्य में विदेशी भुगतान की गम्भीर समस्या की सम्भा-

वना विदेशी सहायता के क्षेत्र में मनिश्चितता, शीघ्र व कुशल मायात-प्रतिस्थापन व निर्यात-सवर्द्धन की मावश्यकता। देश के आर्थिक विकास पर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का बढ़ता हुआ प्रभाव। जापान, पश्चिमी जर्मनी व सोवियत सघ से उदार शर्तों पर सहायता प्राप्त।

2 अगस्त, 1988 से भारतीय योजना आयोग के सदस्य—

प्रधान मन्त्री श्री राजीव गांधी—अध्यक्ष

श्री माधवोसिंह सोलंकी, उपाध्यक्ष व योजना एवं प्रोग्राम क्रियान्वयन मन्त्री

अन्य सदस्य इस प्रकार हैं—

मन्त्री-सदस्य (Ministerial members)

1. वित्त मन्त्री श्री एस. बी. चव्हान
2. कृषि-मन्त्री श्री भजनलाल
3. ऊर्जा-मन्त्री श्री वसन्त साठे
4. उद्योग-मन्त्री श्री जे. वेंगलराव
5. मानवीय संसाधन विकास मन्त्री श्री पी. शिवशंकर
6. कानून, न्याय व जल-साधन मन्त्री श्री बी. शकरानन्द
7. पर्यावरण व वानिकी मन्त्री श्री जेड. आर. अन्सारी
8. नियोजन व प्रोग्राम क्रियान्वयन राज्य मन्त्री श्री बिरेनसिंह एंग्टी (Engti)

पूर्णकालिक सदस्य (Full time members)

1. प्रोफेसर एम. जी. के मेनन
2. डा. राजा जे. चेल्लैया
3. श्री आबिद हुसैन
4. श्री हितेन भाया
5. डा. वाई. के अलक तथा
6. प्रोफेसर पी. एन श्रीवास्तव।
7. श्री जे. एस. बैंजल (सदस्य-सचिव)

इस प्रकार उपर्युक्त सूची के अनुसार पुनर्गठित योजना आयोग मे अध्यक्ष व सदस्य-सचिव सहित कुल 17 सदस्य है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1990-95) के दृष्टिकोण-प्रपत्र (Approach-paper) के प्रमुख तथ्य—

विकास की वार्षिक दर कम से कम 6%

सार्वजनिक क्षेत्र मे प्रस्तावित व्यय की राशि = 350000 करोड रु (1989-90 के मूल्यों पर)

रोजगार मे वृद्धि-दर = 3% सालाना
निर्यात वृद्धि-दर = 12%, मात्रा (Volume) के रूप मे,
वर्द्धमान पूंजी-उत्पत्ति अनुपात (ICOR)
4·3 से घटकर 4·15
बचत GDP का 21·1% से बढकर 23·3%
निर्धनता-अनुपात = 18% आठवी योजना के अंत मे
प्रति व्यक्ति खाद्यान्नो की उपलब्धि
वर्तमान स्तर = 175 किलो वार्षिक
1994-95 मे = 195 „ „
(स्रोत : The Economic Times September 2, 1989)

———

(9) Sukhamoy Chakravarty, **Development Planning : The Indian Experience 1987**

(10) एल एन. नाथूरामका, भारतीय अर्थशास्त्र, 23 वा सस्करण सितम्बर, 1989 (लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, हॉस्पिटल रोड आगरा)

(B) रिपोर्ट, सर्वेक्षण आदि—

(1) World Development Report, 1989 (for various econmic indicators relat ng to India) (o u p)

(2) Eighth Five year plan—Approach Paper August 1989.

(3) **First Report** of the Ninth Finance Commission July 1988

(4) Economic Survey (1988-89) (Ministry of Finance (Economic Division)

(5) Budget Study 1989–90 (DES, Raj , Jaipur) March, 1989

(6) Some Facts about Rajasthan, 1987 (DES)

(7) High power committee Report on Strategy for Industial Development In Eighth Five Year Plan, Vol. I and Vol II (both) (Prof M V Mathur—Chairman) June, 1989

(8) S K Bhargava, A Note on Perspective For Eighth Five year Plan (Raj) (DES, Jaipur) 1989

(C) लेख—

(1) V M Dandekar, Agriculture, Employment and *Poverty, EPW, September 20–27, 1986*

(2) Prabhat Patnaik, **Recent Growth Experience of the Indian Economy, Some Comments** EPW, Annual Number 1987, (published in December, 1987)

(3) Deepak Nayyar, **India's Export Performance 1970-85 Underlying Factors and Constraints** EPW, Annual Number, 1987.

(4) D.T. Lakdawala, Decentralised Planning must be given a fair trial, The Economic times Mid—week Review, Approach to Eighth Plan, July 6, 1989.

(5) S. P. Gupta, Growth Target for VIII Plan, Financial *Express, August 7, 1989 (very good article on constr-* aints to high economic growth)

(6) The State and Development Planning in India, edited by Terry Byres, (to be published in 1990) (London Conference papers, Particularly by Ajit Mazoomdar, Prabhat Patnaik & Vijay Joshi and IMD little

———